महाकविशूद्रककविप्रणीतं

मृच्छकटिकम्

'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः
आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्रः

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
76

महाकविशूद्रकप्रणीतं

मृच्छकटिकम्

'विमला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः

आचार्य जगदीशचन्द्र मिश्र

साहित्याचार्य

एम० ए० (द्वितय) पी-एच्० डी० डिप्-इन-एड्०

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

मृच्छकटिकम्

पृष्ठ : 48+564

ISBN : 978-93-81484-57-9

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

संस्करण 2021 ई०

मूल्य : ₹ 240.00

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537; 32996391

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

76

MṚCCHAKAṬIKA

OF

ŚRĪ ŚUDRAKA

Edited with

'Vimla' Sankrit & Hindi Commentaries

By

Sri Jagdish Chandra Mishra

Sahityacharya, V. S.

M. A. (Double) Ph. D., Dip-in Ed.

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

MṚCCHAKAṬIKA
Pages: 48+564

(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. +91 542-2335263; 2335264
email : csp_naveen@yahoo.co.in
website : www.chaukhamba.co.in

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor, Street No. 21-A
Ansari Road. Darya Ganj
New Delhi 110002
Tel. +91 11-23286537
email: chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

•

CHAUKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

भूमिका

नामकरण की अन्वर्थकता

दार्शनिक दृष्टि से नामों में अन्वर्थकता का अभाव खटकता है। साहित्यिक दृष्टि नामों में सार्थकता मानती है। इस नामौचित्य के सम्बन्ध में क्षेमेन्द्र की 'औचित्यविचारचर्चा' में लिखा है—

'नाम्ना कर्मानुरूपेण ज्ञायते गुणदोषयोः'।

ऐसी स्थिति में किसी नाटक के प्रकृत अर्थ के अनुकूल नाम चुनने में कवि की कला परिलक्षित होती है। प्रस्तुत अर्थ के अनुरूप नाम के सुनते ही सहृदयों के हृदय विकसित हो जाते हैं। महापात्र विश्वनाथ की दृष्टि में किसी भी नाटक का नाम तो उसके गर्भित अर्थ का ही प्रकाशक होना चाहिए—

'नामकार्यं नाटकस्य गर्भितार्थप्रकाशकम्'।

यदि इसे हम प्रकरण मानते हैं, तब भी 'मालतीमाधव' की तरह इसका भी नामकरण नायिका-नायक के नाम पर आधारित 'वसन्तसेनाचारुदत्तम्' होना चाहिए था। क्योंकि साहित्यदर्पण के षष्ठ परिच्छेद में लिखा है—

'नायिकानायकाख्यानात् संज्ञाप्रकरणादिषु'।

तो फिर इस धूर्त्तसंकुल प्रस्तुत प्रकरण का शीर्षक 'मृच्छकटिकम्' अर्थात् 'मिट्टी की गाड़ी' की अन्वर्थकता क्या है? सर्वप्रथम यह प्रकरण संस्कृत रूपकों में घटनाचक्र की दृष्टि से अपूर्व एवं अतुलनीय है। घटनाचक्र की गत्यात्मकता इस रूपक की अपनी प्रमुख विशेषता है और यह नाम प्रकरण की एक घटना से सम्बद्ध है। नायक चारुदत्त का पुत्र रोहसेन मिट्टी की गाड़ी से खेलना बन्द कर देता है। वह भी अपने प्रतिवेशी सम्पन्न शिशु की तरह सोने की गाड़ी से खेलना चाहता है। नहीं मिलने पर उसके लिए रोता है। रोते-रोते गृहपरिचारिका रदनिका के साथ वसन्तसेना के पास तक पहुँच जाता है। कारण जानने के बाद वसन्तसेना उसकी मिट्टी की गाड़ी को अपने सोने के गहनों से भर देती है। ये गहने ही बाद में विदूषक के पास पकड़े जाते हैं और चारुदत्त के द्वारा स्वर्णाभूषण के लिए वसन्तसेना की हत्या किये जाने के प्रमाण बन जाते हैं।

यद्यपि मिट्टी और सोने की गाड़ी का यह कथानक बहुत छोटी घटना मालूम पड़ती है, किन्तु वास्तव में यह एक नाटकीय पूर्वाभास है। आगे चलकर घटित होने वाली प्रवहणपरिवर्तनरूपी महत्त्वपूर्ण घटना की सूचना है। षष्ठ अंक में प्रवहणपरिवर्तन के कारण ही वसन्तसेना चारुदत्त के पास पहुँचने के बदले दुष्ट शकार के पास पहुँच जाती है. और राजबन्दी भावी सम्राट्

आर्यक चारुदत्त का शरणागत बन जाता है। इसी प्रवहणपरिवर्त्तन के कारण शकार द्वारा वसन्तसेना की हत्या होती है। वसन्तसेना की हत्या के आरोप में दरिद्रचारुदत्त को न्यायालय से प्राणदण्ड की सजा मिलती है। इसी प्रवहण-परिवर्त्तन के कारण इधर राजबन्दी आर्यक राजा पालक की हत्या कर चारुदत्त का प्राणरक्षक बन जाता है।

अपने मूर्त्तरूप आकार के कारण इस प्रकरण की घटनाएँ न केवल अधिक रुचिकर हैं, प्रत्युत् हठात् हमारे मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। इस आकर्षण का रहस्य इस प्रकरण की अनेक घटनाओं की क्रिया-प्रतिक्रिया न होकर उसमें निहित हमारे मनस्तत्त्व एवं भाव हैं। घटना वसन्तसेना का अभिसार हो या उसकी हत्या, सभी का संयोजन इस तरह किया गया है कि वे हमारी आँखों के सामने अनन्त रंगों में जगमगा उठती है। इस प्रकरण का प्राण घटना है और घटनाओं से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है—उसमें निहित चरित्र और चरित्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है—इसकी सफल अभिव्यक्ति। पात्र चाहे चारुदत्त हो या वसन्तसेना, शकार हो या शर्विलक; इनकी मनोवृत्तियों का प्रकरण की घटनाओं से गहरा सम्बन्ध है और घटनाओं का सम्पूर्ण गतिचक्र संचालित है 'प्रवहण परिवर्तन' पर। रोहसेन की मिट्टी की गाड़ी इन घटना-चक्रों की धुरा है। अतः इस प्रकरण के नामकरण 'मृच्छकटिकम्' की सूपयुक्तता स्पष्ट है।

विभिन्न आलोचकों ने इस नामकरण के औचित्य को अपने-अपने ढंग से प्रमाणित किया है। कुछ की दृष्टि में चारुदत्त का पुत्र रोहसेन अपनी मिट्टी की गाड़ी से सन्तुष्ट नहीं है। उसे अपने प्रतिवेशी सम्पन्न सार्थवाह के बेटे की सोने की गाड़ी जैसी गाड़ी चाहिए। इस असन्तोष की आग में प्रायः प्रकरण के सभी पात्र झुलस रहे हैं। चारुदत्त अपनी साधुचरित्रा, विनाहिता धूता से सन्तुष्ट नहीं है, उसे कमनीयकलेवरा गणिका वसन्तसेना चाहिए। वसन्तसेना सहजसुलभ सम्पन्न शकार को नहीं चाहती। उसे दरिद्र किन्तु सम्पन्न ब्राह्मण चारुदत्त चाहिए। अपनी मिट्टी की गाड़ी की जगह सोने की गाड़ी की रोहसेन की चाह सर्वव्यापी असन्तोष का प्रतीक है। अतः उसकी मिट्टी की गाड़ी को आधार मानकर इस प्रकरण का उपयुक्त नाम 'मृच्छकटिकम्' ठीक ही है।

कुछ अन्य विद्वानों की दृष्टि में अतिसमृद्ध चारुदत्त की अतिदानशीलता के कारण होने वाली दरिद्रता को सूचित करने के लिए उसके बेटे को मिट्टी की गाड़ी खेलने के लिए दी जा रही है, जबकि वह सोने की गाड़ी से खेलने को तरस रहा है। मिट्टी की इस महत्ता को दर्शाने के लिए इस प्रकरण का नामकरण 'मृच्छकटिकम्' रक्खा गया है।

कुछ आलोचकों की दृष्टि में मृच्छकटिक की कथावस्तु के दो भाग हैं। चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रणय-गाथा और दूसरा राज्य-विप्लव और आर्यक

की राज्य-प्राप्ति । भास के नाटकों की उपलब्धि के पश्चात् यह प्रायः निश्चित हो चुका है कि शूद्रक ने अपने मृच्छकटिक की कथावस्तु का आधार भास के 'दरिद्र चारुदत्त' को बनाया है, क्योंकि दोनों कथा के बहुलांश में शब्दतः और अर्थतः समानता है । प्रकरण का प्रथम भाग पंचम अंक तक है, जो भास के चारुदत्त से गृहीत है और दूसरा भाग षष्ठ से दशम अंक तक का है, जो कविकल्पना प्रसूत है । इन दोनों भागों को मिलाकर मृच्छकटिक का निर्माण है । रोहसेन के द्वारा मिट्टी की गाड़ी से नहीं खेलने की घटना कवि-रचित नवीनांश के प्रारंभ में ही आती है । पूर्वापर घटना को स्पष्ट रूप देने के लिए ही कवि ने प्रकरण का नाम मृच्छकटिक रक्खा है । इस प्रकार विद्वानों के उर्वरक मस्तिष्क ने अनेक प्रबुद्ध कल्पनाओं से इस समस्या का समाधान ढूंढ़ा है ।

किन्तु मेरी दृष्टि में घटनौत्सुक्य ही शब्द या अर्थ की दृष्टि से अतिरमणीय एवं आकर्षक है और इस नामकरण का यही मूल रहस्य है । जहाँ भारतीय नाटकों का उद्देश्य एक मात्र रसनिष्पत्ति है; वहाँ प्रचलित परम्परा से हटकर यह प्रकरण जीवन की भौतिकता, कर्मसंकुलता और संघर्ष के प्रति आग्रहवान् है । इसकी हर घटना वह चाहे आन्तरिक हो या बाह्य, किसी न किसी वैषम्य या संघर्ष को ही दिखलाती है । यही कारण है संस्कृत के अन्य नाटकों से भिन्न इसकी पंक्ति-पंक्ति में जीवन की ऊष्मा के दर्शन होते हैं । चारुदत्त या शकार के चरित्र में क्षमा, हत्या या प्रतिशोध के कार्य हैं, वे इस प्रकरण के आकर्षण नहीं हैं । प्रत्युत् उनके कारण उन घटनाओं का जो मनोवैज्ञानिक उतार-चढ़ाव दिखलाया गया है, वे ही इस प्रकरण के प्राण हैं । अतः प्रवहण-परिवर्त्तन घटना-सम्भूत 'मृच्छकटिकम्' नाम की सूपयुक्तता स्पष्ट है । समग्र प्रकरण में नाम की अन्वर्थक क्षमता व्याप्त है ।

मृच्छकटिक के कर्त्ता

संस्कृत नाटयसाहित्य का प्रगल्भ प्रकरण 'मृच्छकटिक' राजा शूद्रक की कृति के रूप में विख्यात है । यह अपने ढंग का अकेला नाटक है । इसमें एक साथ प्रणय कथात्मक प्रकरण, धूर्त्तसंकुल भाण तथा राजनीतिक नाटक का वातावरण दूध-पानी की तरह घुला-मिला प्रतीत होता है । संस्कृत साहित्य में यह अकेला नाटककार है, जिसने अपने युग की सामाजिक समस्याओं को अपने नाटक का विषय बनाया है । जीवन और समाज की विसंगतियों को लेकर गहरी चोट करने वाली घटनाएँ तथा झकझोर देने वाले व्यंगों को सही दिशा में निर्देशित ही नहीं किया है, प्रत्युत् उन्हें पूर्णतः प्रतिबिम्बित किया है । किन्तु यह प्रकरण कब लिखा गया ? किसने लिखा ? इन दो प्रश्नों की समस्या अब तक पूरी तरह सुलझ नहीं सकी है ।

मृच्छकटिक की प्रस्तावना में लिखित श्लोक सं० ३, ४, ५, ६, ७ के अनुसार द्विजों में श्रेष्ठ शूद्रक नाम का कोई एक राजा था। वेद-वेदान्तादि विद्या में वह पारङ्गत था। हस्ति-शिक्षा और अनेक कलाओं का वह ज्ञाता था। उसने अपने पुत्र को राजा बनाकर दस दिन अधिक सौ साल की उम्र में अग्नि-प्रवेश किया था। उसी राजा शूद्रक ने उज्जयिनी के सार्थवाह दरिद्र-चारुदत्त तथा वसन्तसेना की प्रणयगाथा को लेकर इस प्रकरण की रचना की है। बस, इसी प्रस्तावना के कारण शूद्रक को मृच्छकटिक का रचनाकार मानने में कई आपत्तियाँ उपस्थित होती हैं। क्या प्रस्तावना के ये पाँच श्लोक भी शूद्रक के हैं? यदि हाँ, तो फिर उन्हें अपनी आयु की ईयत्ता का यथार्थ वोध कैसे हुआ? वह यह कैसे जान सका कि दस दिन अधिक सौ साल की आयु में वह अग्निप्रवेश करेगा—

'लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्नि प्रविष्टः'। आगे चलकर उसकी मृत्यु कब और कैसे होगी? इसका सही उल्लेख ही हमारे सन्देह को पुष्ट करता है। इसके अतिरिक्त 'एतत् कविः किल', 'कविर्बभूव', 'चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः' इस 'किल' 'चकार' 'बभूव' के प्रकाश में यह भी मानना पड़ेगा कि शूद्रक के मरने के बहुत काल बाद इन श्लोकों की रचना की गई और उन्हें प्रस्तावना के स्थान पर जोड़ दिया गया। तो फिर प्रश्न यह उठता है कि यदि ये प्रस्तावना के पद्य शूद्रक के नहीं हैं तो ये पाँच पद्य किसने जोड़े? और क्यों? क्या शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं? अगर हाँ, तो कब हुए? ये कुछ ऐसे जटिल प्रश्न हैं, जिन पर अनेक विद्वानों ने अलग-अलग अपने अभिमत व्यक्त किये हैं। किन्तु, जहाँ तक मेरी जानकारी है—आज तक इसका कोई सर्वसम्मत समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सका है।

शूद्रक कौन थे?

शूद्रक संस्कृत साहित्य का एक बहुचर्चित व्यक्तित्व रहा है। स्कन्दपुराण में एक शूद्रक का उल्लेख मिलता है। कुछ ऐतिहासिक इन्हें ही 'मृच्छकटिक' के कर्त्ता शूद्रक मानते हैं। कुछ लोग इन्हें आंध्रवंश के प्रथम राजा सिशुक या सिमुक अथवा सिप्रक से अभिन्न व्यक्ति मानते हैं। प्रो० स्टेन कोनो के अनुसार आभीर वंश के राजा शिवदत्त का ही दूसरा नाम शूद्रक था। कुछ लोग आभीर राजा शिवदत्त को शूद्रक मानने की क्लिष्ट कल्पना को पुष्ट करने के लिए मृच्छकटिक के गोपालदारक आर्यक में शिवदत्त को देखना चाहा है। 'वेतालपञ्चविंशति' में तथा कल्हण-कृत राजतरङ्गिणी और कथासरित्सागर में शूद्रक के सम्बन्ध में कई कथाएँ पाई जाती हैं। पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने शूद्रक को आन्ध्रवंश का वासिष्ठी-पुत्र पुलुमावि माना है। 'अवन्तिसुन्दरीकथासार' में इन्द्राणिगुप्त का दूसरा नाम शूद्रक वतलाया गया है। वासिष्ठी-पुत्र पुलुमावि ही शूद्रक हैं। बाण के हर्षचरित से ज्ञात होता है कि शूद्रक ने अपने शत्रु

चन्द्रकेतु, चकोर के राजा से किस तरह छुटकारा पाया। कादम्बरी में शूद्रक विदिशा का राजा है। दण्डी के दशकुमारचरित में भी शूद्रक का उल्लेख मिलता है। इन उल्लेखों पर ध्यान देने से पता चलता है कि बाद में जाकर शूद्रक भी उदयन की भाँति लोककथाओं का नायक बन गया होगा और उसके साथ भी कई कहानियाँ जोड़ दी गईं होंगी।

शूद्रक और मृच्छकटिक

डॉ० पिशेल के मतानुसार 'मृच्छकटिक' के रचयिता दण्डी हैं। उनका कहना है कि दण्डी ने तीन कृतियाँ लिखी थी—'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च'। उनमें 'काव्यादर्श' और 'दशकुमारचरित' तो उपलब्ध हैं पर, तीसरी अनुपलब्ध कृति यही 'मृच्छकटिकम्' है। यदि दण्डी की यह कृति होती तो फिर शूद्रक के नाम से क्यों प्रसिद्ध होती। इसी तरह श्री नेरुरकर मृच्छकटिक का कर्त्ता भास को मानते हैं। किन्तु, यह कल्पना भी आधारहीन ही प्रतीत होती है। क्योंकि प्रस्तावना में शूद्रक को राजा कहा गया है, जब कि दण्डी या भास इनमें कोई भी राजा नहीं है।

डॉ० सिलवाँ लेवी मृच्छकटिक को शूद्रक की कृति नहीं मानते हैं। किसी अन्य कवि ने इस रचना को शूद्रक के नाम पर इसलिए चला दिया कि इसे पुरानी कृति मानकर इसका सम्मान हो जाय। किन्तु डॉ० लेवी की कल्पना तथ्यपूर्ण नहीं प्रतीत होती है। क्योंकि केवल कृति के सम्मान-हेतु कोई रचनाकार अपनी रचना को किसी अन्य के नाम से प्रचारित नहीं कर सकता।

डॉ० कीथ भी 'मृच्छकटिक' को शूद्रक की रचना नहीं मानते। उनका कहना है कि शूद्रक सर्वप्रथम तो कोई ऐतिहासिक-व्यक्ति ही नहीं है, किसी कवि ने भास के चारुदत्त में आर्यक के विद्रोह की कथा का मिश्रण कर मृच्छकटिक की रचना की है। डॉ० कीथ के प्रथम कथ्य में बल नहीं है, क्योंकि संस्कृत साहित्य में जिस शूद्रक की इतनी प्रशंसा की गई है, उसे सीधे काल्पनिक मान लेना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। जहाँ तक दूसरी बात है, वह विवादास्पद है।

नवीन मत के अनुसार राजा शूद्रक ऐतिहासिक पुरुष हैं। कालक्रम से लोककथाओं के घटाटोप से उसे इस तरह आवृत्त कर दिया है कि उसका ऐतिहासिक स्वरूप ही कहीं खो गया। जहाँ तक मृच्छकटिक के रचयितृत्व का प्रश्न है, अभिनव आलोचक इसे शूद्रक की कृति नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि भास के दरिद्रचारुदत्त की अपूर्णता को देखकर किसी कवि ने कुछ आवश्यक संशोधन, परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन का कुछ नई कल्पनाओं का समावेश कर उसकी कथा के साथ निजन्धरी कल्पनाप्रसूत अथवा गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' से ली हुई गोपालदारक आर्यक के विद्रोह की कथा बढ़ाकर 'मृच्छकटिक' का ढाँचा खड़ा कर दिया है। किसी विशेष कारण से इस कृति

के साथ अपना नाम नहीं देकर इस रचना को शूद्रक के नाम से चला दिया। प्रस्तावना के अन्तर्गत शूद्रक के परिचय वाले पद्यों में शूद्रक का वर्णन 'परोक्षभूते लिट्' के द्वारा किया गया है। अब यह प्रश्न उठता है कि आखिर कवि ने अपना नाम कृति में क्यों नहीं दिया। डॉ० भोलाशंकर व्यास ने 'संस्कृत कवि दर्शन' में इसके दो कारण दिये हैं—एक तो मूल नाटक, जिसको आधार मानकर 'मृच्छकटिक' की रचना की गई है वह भास की रचना थी, अतः उस समग्र रचना को स्वरचित कहने में कवि को निश्चय ही हिचकिचाहट हुई होगी। दूसरे, नाटक में जिन राष्ट्रीय, सामाजिक या राजनैतिक दशाओं का चित्रण किया गया है, वे तत्कालीन राजवर्ग एवं समाज की खिल्ली उड़ाती नजर आती हैं। मृच्छकटिक में क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, सभी को समाज में गिरा हुआ दिखाया गया है। ब्राह्मण वेश्यागामी, चोर, जुआरी और चापलूस बतलाये गये हैं, क्षत्रिय क्रूर, अपकर्मी और दुराचारी। राजा नीच जाति की रखैलों को रखता था, नीच जाति के लोग उच्च पदों पर आसीन होते थे। न्याय नाम की कोई वस्तु नहीं थी। राजाज्ञा सर्वोपरि थी। सम्पूर्ण मृच्छकटिक के परिशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कवि ने अपने युग के मध्यवर्ग एवं राजन्यवर्ग पर व्यंग कसते हुए ही इस कृति का पल्लवन किया है। ये व्यंग्यात्मक रेखाएँ एक-दूसरे को काटती, उलझती, हल्की गुत्थियाँ और घुरचियाँ बनाती हुई फैली हैं और नाटककार के अभ्यस्त हाथ उन्हें समेटते हुए, अभीष्ट रूपरेखा देते हुए प्रतिपाद्य निष्कर्ष तक पहुँचा देता है। ऐसा क्रान्तिकारी कवि उस काल में राजदण्ड से बचने के लिए अपना नाम छिपा नहीं देता तो और करता ही क्या? फिर भी अनुसंधित्सुओं के अनुसन्धान की और अपेक्षा है। जब तक इस पक्ष के कोई ठोस प्रमाण हमें नहीं मिल जाते, तब तक इस कृति को हम शूद्रक-कृत ही मानेंगे।

रचयिता का व्यक्तित्व

मृच्छकटिक के रचनाकार की कल्पना और अभिव्यञ्जना अपनी समग्रता में अपने युगीन जीवन के विस्तृत परिवेश और आवेष्टन से हमें परिचित कराती हैं और उसकी गूढ, धूमिल और अदृश्य अर्थभरी छवियों से हमारा गम्भीर एवं सूक्ष्म सम्बन्ध स्थापित करती हैं। कवि के नाटक की भाषा और उसकी गम्भीर अनुभूति बाहर से जितनी स्पष्ट लगती है, आन्तरिक रूप में वह जीवन के गतिशील जल की सूक्ष्म, सूक्ष्मतर गहराइयों और अर्थच्छवियों के मर्म का स्पर्श कराने वाली हैं। जीवन ऐसा है, यह बतलाने वाला कवि महान् है, पर जीवन ऐसा भी हो सकता है, इन सम्भावनाओं की ओर संकेत कराने वाला कवि उससे भी महान् होता है। इस दृष्टि से निश्चय ही मृच्छकटिक में रचयिता का व्यक्तित्व अतिविशाल है। इस नाटक में प्राप्त कई प्रयोगों से हमें यह भी प्रतीत होता है कि इस प्रकरण का रचयिता प्रायः दाक्षिणात्य था।

वसन्तसेना के हाथी का नाम 'खुण्डमोटक' दाक्षिणात्य नाम है। पैसे के लिए इसमें 'नाणक' शब्द का प्रयोग किया गया है। इन प्रमाणों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस प्रकरण का रचयिता कोई दाक्षिणात्य था, जिसका साहित्यिक व्यक्तित्व उच्चकोटि का था।

मृच्छकटिक का रचनाकाल

मृच्छकटिक के अन्तःसाक्ष्य के आधार पर हम इसके रचनाकाल का अनुमान कर सकते हैं। ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि गुप्तों के बाद हर्षवर्द्धन तक भारत में कोई भी सार्वभौम राजा उत्पन्न नहीं हुआ। उत्तर भारत में कई छोटे-मोटे राजे थे। उज्जयिनी से गुप्तों के पैर उखड़ चुके थे। मालव की राजनैतिक स्थिति अत्यन्त चिन्त्य थी। हूणों के चतुर्दिक हमले से क्षत-विक्षत, लहू-लुहान, अस्त-व्यस्त और विक्षिप्त हिन्दू जाति पड़ी थी, जिनके सारे के सारे आदर्श कच्चे घड़ों की तरह टूट-फूट गये थे, जिनके सभी आध्यात्मिक भाव पानी के बुलबुले की तरह खण्डित हो चुके थे। सामाजिक और राजनैतिक जीवन की सभी मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न होती जा रही थी। छोटे-मोटे क्षत्रिय राजाओं का अधःपतन हो चुका था। वीरता इनसे बहुत पीछे छूट गई थी, विलास में ये आकण्ठ मग्न थे। ये राजे राजमहिषियों के अतिरिक्त कई रखेलें भी रखते थे। इनकी भुजिष्याएँ निम्न जाति की भी होती थी। प्रस्तुत प्रकरण के राजा पालक की भी कई भुजिष्याएँ थी, जिनमें एक शकार की बहन भी थी। इसीलिए शकार को काणेलीमाता अर्थात् व्यभिचारिणी का पुत्र कहा गया है। राजाओं की विलासिता के कारण ही राज्य की सारी शासन-व्यवस्था उच्छृङ्खल हो गई थी। राजा के सगे-संबंधी न्यायाधीशों को धमकी देकर मनमाना न्याय करवा लेते थे। राजा प्रजा से और प्रजा राजा से असन्तुष्ट थे। शाम होते ही राजमार्ग पर जुआरी, लम्पट, विट, वेश्याएँ और लफंगे घूमने लगते थे। राजमार्ग पर ही खुले आम इन लोगों से मारपीट भी हो जाती थी। नगर-रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। भले घर की बहू-बेटियाँ शाम के बाद घर से बाहर निकलने का साहस नहीं कर सकती थीं। राजा स्वयं अपने शत्रुओं से सर्वदा आतंकित रहता था। अवसर हाथ आते ही राजा दुश्मन को निगड़बद्ध करने से नहीं चूकता था। राजविद्रोह की सर्वदा आशंका बनी रहती थी। चोर, जुआरी, लुच्चे, लफंगे राजा के विरुद्ध षड्यंत्र किया करते थे। सिंहासनासीन राजा को समाप्त कर घण्टों में नये राजा को सिंहासनारूढ किया जा सकता था। कायस्थ और श्रेष्ठी ईमान गँवाकर काम कर रहे थे।

इतने के बावजूद राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सम्पन्न थीं। चारुदत्त स्वयं एक सार्थवाह था। अत्यधिक दान के कारण ही दरिद्र हो गया था। वसन्तसेना के

समृद्धि-वर्णन से यह स्पष्ट पता चलता है कि समाज में गणिकाओं का सम्मान था। उस समय वेश्याओं के भी दो वर्ग थे। गणिकाएँ नृत्यगीतादि से अपनी आजीविका अर्जित करती थी। ये अपना पेशा छोड़कर कुलवधुएँ भी बन सकती थीं। ब्राह्मण तक इन्हें अपनी विवाहिता के रूप में स्वीकार करते थे। चारुदत्त एवं शर्विलक दोनों ही ब्राह्मण हैं। दोनों ने क्रमशः वसन्तसेना और मदनिका को अपनी वधू के रूप में स्वीकारा है। वेश्याएँ रूपाजीवा थीं। उनका वर्ग अलग था।

देश में दासप्रथा प्रचलित थी। मदनिका वसन्तसेना की दासी थी। शर्विलक ने चोरी कर उसे दासीत्व से मुक्त करवाया। चारुदत्त और शकार के दास भी चेट थे। मालिक का रुपया चुकाकर दास स्वतंत्र नागरिक बन सकते थे। मध्य तथा निम्न वर्ग में जुआ खेलने का आम प्रचलन था। इन्हें राज्य की ओर से संवैधानिक मान्यता प्राप्त थीं। जुए में बेईमानी करने वालों तथा भागने वालों के विरुद्ध न्यायालय में दावा किया जा सकता था। आजीविका नहीं मिलने पर लोग द्यूतोपजीवी बन जाते थे। जुआ के अड्डे का मुखिया सभिक कहलाता था।

बौद्धधर्म इस समय लड़खड़ा रहा था, फिर भी बौद्ध भिक्षुओं का चारित्रिक पतन नहीं हुआ था। समाज में इनका सम्मान घट गया था। लोग इन्हें सशंक होकर देखते थे। वैदिक एवं ब्राह्मण धर्म ही राजधर्म था। शैवो एवं शाक्तों का भी यह उत्थानकाल था। मृच्छकटिक का रचयिता भी शैव था। मृच्छकटिक का रचयिता संस्कृत एवं प्राकृत भाषा पर समान अधिकार रखता था। इस प्रकरण में शौरसेनी और मागधी, प्राकृत के अतिरिक्त चाण्डाली, शकारी, ढक्की जैसी विभाषाओं और देशभाषाओं पर नाटककार का पूर्ण अधिकार था। ढक्की अपभ्रंश का ही एक रूप है। मृच्छकटिक के माथुर की उक्तियाँ उकार-बहुला हैं। इन सारे तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मृच्छकटिक की रचना कालिदास तथा हर्षवर्द्धन के बीच के सभय की विभाषाओं की ओर संकेत करती हैं। इतना ही नहीं, ऊपर वर्णित सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए मृच्छकटिक को ईसा की पाँचवीं शती के उत्तरार्द्ध या छठी शती के पूर्वार्द्ध की रचना कह सकते हैं।

मृच्छकटिक की प्राकृत

प्राकृत के प्रयोग की दृष्टि से संस्कृत में अन्य नाटकों की अपेक्षा मृच्छकटिक का अपना अलग ही महत्त्व है। नाटय-साहित्य में निर्दिष्ट प्राकृत भाषाओं में जितनी प्राकृत भाषाएँ इनके पात्रों के भाषणों में उपलब्ध होती है, उतनी संस्कृत के अन्य किसी नाटक में नहीं। मृच्छकटिक की विवृत्ति लेखक पृथ्वीधर

के अनुसार इस नाटक में सूत्रधार, नटी, रदनिका, मदनिका, वसन्तसेना, उसकी माता, चेटीं, कर्णपूरक, धूता, शोधनक और श्रेष्ठी—ये ग्यारह पात्र शौरसेनी बोलते हैं। वीरक और चन्दनक अवन्तिका बोलते हैं। विदूषक की भाषा प्राच्या है। संवाहक, वसन्तसेना तथा चारुदत्त के तीनों चेट, भिक्षु और रोहसेन, ये छः पात्र मागधी बोलते हैं। शकार शकारी प्राकृत का प्रयोग करता है। दोनों चाण्डाल चाण्डाली का प्रयोग करते हैं। माथुर द्यूतकर ढक्की बोलता है। इन भाषाओं का लक्षण संक्षेप में पृथ्वीधर ने अपनी विवृति के प्रारम्भ में दिया है। मार्कण्डेय कवीन्द्र के प्राकृत-सर्वस्व में इनकी विस्तृत विवृति दी है। पृथ्वीधर ने, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है—शौरसेनी, मागधी, प्राच्या तथा अवन्तिका को प्राकृत माना है एवं शकारी, चाण्डाली तथा ढक्की को विभाषा कहा है। मृच्छकटिक की शौरसेनी तथा मागधी वररुचि आदि प्राकृतिक वैयाकरणों से प्रभावित परिनिष्ठत प्राकृत है। आवन्ती और प्राच्या दोनों ही शौरसेनी के अवान्तर भेद हैं। पृथ्वीधर के मतानुसार आवन्ती लोकोक्ति बहुला है तथा 'र' के स्थान पर 'ल' उच्चारण होता है।

प्राच्या में स्वार्थिक ककारों की बहुलता है। डॉ० भोलाशंकर व्यास का कहना है कि मृच्छकटिक के वीरक एवं चन्दनक या विदूषक की भाषा में पृथ्वीधर के ऊपर लिखित लक्षण घटित नहीं होते हैं। ध्यान से देखने पर आवन्ती में मध्यग 'त' का लोप देखा जाता है। प्राच्या में वह 'द' के रूप में सर्वत्र उपलब्ध है। शकारी की प्रमुख विशेषता ऊटपटांग उक्तियाँ मानी गई हैं। मागधी की तरह शकारी तथा चाण्डाली में 'श, ष, स' के स्थान पर केवल 'श' पाया जाता है। 'र' का सर्वत्र 'ल' उच्चारण होता है। मागधी के प्रथमा एकवचन रूपों की तरह यहाँ भी 'एकारान्त' रूप ही पाये जाते हैं—'मणुश्शे' 'एशे' चारुदत्ते इत्यादि। माथुर की ढक्की अपभ्रंश का संकेत तो अवश्य करती है, पर उस काल की यह निश्चय ही कोई असंस्कृत जनभाषा (लिंग्वाफ्रेंका) की तरह प्रतीत होती है।

मृच्छकटिक का रूपकत्व

भारतीय राजाओं ने दृश्य काव्यों को दो खण्डों में विभक्त किया है—रूपक और उपरूपक। नाट्यशास्त्र में रूपक के दस भेद माने गये हैं तथा उपरूपक के अठ्ठारह। तदनुसार—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक और ईहामृग—ये दश रूपक हैं तथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणिका उपरूपक हैं।

मृच्छकटिक नाटक नहीं एक प्रकरण है। प्रकरण का नायक धीर-प्रशान्त लक्षणयुक्त कोई विप्र, अमात्य या वणिक् होता है। मृच्छकटिक का नायक ब्राह्मण चारुदत्त भी धीर-प्रशान्त हैं। प्रकरण की नायिका कुलजा और वेश्या में से कोई एक अथवा दोनों ही होती है। इस प्रकार नायिका के आधार पर प्रकरण के तीन भेद हैं। जिस प्रकरण में दोनों तरह की नायिकाएँ होती हैं, उसमें धूर्त, द्यूतकर, सभिक, विट, चेट आदि पात्र मंच पर उपस्थित होते हैं। मृच्छकटिक की नायिका वसन्तसेना वेश्या एवं धूता कुलजा है। इस दृष्टि से भी मृच्छकटिक एक प्रकरण है। प्रकरण की कथावस्तु भी नाटक की तरह प्रख्यात न होकर कवि-कल्पित होती है। मृच्छकटिक की भी कथा चारुदत्त एवं वसन्तसेना का संगम—शूद्रक के उर्वरक मस्तिष्क की देन है। इस विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि मृच्छकटिक निश्चय ही एक प्रकरण है। क्योंकि इसमें प्रकरण के प्रायः सभी लक्षण मिलते हैं, किन्तु नाटक के सभी लक्षण घटित नहीं होते। अतः निश्चित रूप से मृच्छकटिक एक प्रकरण है। धनञ्जय और महापात्र विश्वनाथ ने भी इसे प्रकरण ही माना है। यथा—

'भवेत् प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम् ॥
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः ॥
नायिका कुलजा, क्वापि वेश्या क्वापि क्वचिद् द्वयम्।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदतृतीयकः।
कितवद्यूतकारादिविटचेटकसङ्कुलः ॥

—साहित्यदर्पण, ६। २२४-२२६,

'मृच्छकटिक' का नाटकीय संविधान और काव्य

नाटकीय संविधान की दृष्टि से मृच्छकटिक का वातावरण अतिमनोरंजक है। कुछ आलोचकों की दृष्टि में प्रस्तुत प्रकरण में कार्यान्विति (Unity of action) का अभाव है; पर कुछ की दृष्टि में इसका अस्तित्व सुनियोजित है। क्योंकि पालक की राजनीतिक कथा को चारुदत्त की प्रेमकथा में उसका एक अविच्छेद्य अंग बना दिया गया है। फलतः सामाजिकों को मृच्छकटिक में एक ऐसा वातावरण दिखलाई पड़ता है, जो संस्कृत के किसी अन्य रूपक में उपलब्ध नहीं है।

काव्य की दृष्टि से आलोचकों को मृच्छकटिक में काव्यप्रतिभा की कमी अनुभूत हो यह संभव है, किन्तु काव्यप्रतिभा की अभिव्यञ्जना की इस रचना में विल्कुल भी कमी नहीं है। कालिदास एवं भवभूति के नाटकों की तरह इसमें वर्णनों के विस्तृत चित्र तो हमें देखने को नहीं मिलते, किन्तु काव्या-

त्मक उक्तिवैचित्र्य का अभाव कहीं नहीं खटकता है। भवभूति के मालती-माधव और कुछ सीमा तक उत्तररामचरित में भी काव्यात्मक वर्णन की दृष्टि से जो अंश अति उत्तम कोटि में रखे जा सकते हैं, उन्हीं अंशों के कारण उनका रूपकत्व समादृत है। हाँ, काव्यत्व और रूपकत्व का समन्वित एवं सन्तुलित स्वरूप केवल कालिदास के नाटकों में हम अवश्य देख सकते हैं। नाटकीय संविधान को घटना-चक्र की दृष्टि से गति देने के लिए कवि ने निश्चय ही अपनी काव्य-प्रतिभा का समुचित उपयोग मृच्छकटिक में किया है। कुछ आलोचकों ने यह आक्षेप किया है कि कवि को प्रकृति-वर्णन करने के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हुए हैं, किन्तु कवि ने या तो उसकी अनुचित उपेक्षा की अथवा असावधानी के कारण हाथ में आये अवसर खो दिए। यह सच है कि अष्टम अंक के जीर्णोद्यान-वर्णन में कवि को प्रकृति-वर्णन का पर्याप्त अवसर प्राप्त था, किन्तु यहाँ भी कवि यदि पञ्चम अंक में वर्णित वर्षा-वर्णन की तरह प्रकृति-वर्णन में उलझता तो निश्चय ही नाटकीय दृष्टि से मृच्छकटिक में जो स्वाभाविकता है, उसे यह खो देता। मृच्छकटिक का पंचम अंक श्रव्यकाव्य की दृष्टि से जितना अधिक मनोरम् है, दृश्यकाव्य की दृष्टि से उतना स्वाभाविक नहीं लगता। अभिसारिका वसन्तसेना के मुख से अनेक श्लोकों को कहलवाना भी काव्य की दृष्टि से चाहे जितना रुचिकर हो, किन्तु नाटकीय संविधान की दृष्टि से उचित नहीं प्रतीत होता है। ठीक इसी तरह चतुर्थ अंक में वसन्तसेना के महल के सातों आँगनों का विस्तृत वर्णन निश्चय ही ऊबा देने वाला है।

रंग मंच की दृष्टि से भी यह नाटक सदोष प्रतीत होता है। यह दस अंक का एक विशाल नाटक है। मंच पर एक बैठक में इसे अभिनीत करना बिल्कुल ही असंभव है। मंचीय विनोद की दृष्टि से डॉ० भोलाशंकरजी भी इसमें कुछ दोष मानते हैं। उनका कहना है—'मृच्छकटिक के प्रत्येक अंक में केवल एक ही दृश्य न होकर अनेक दृश्य पाये जाते हैं। कालिदास के नाटकों में यह बात नहीं है। उसके प्रत्येक अंक में केवल एक ही दृश्य है। मृच्छकटिक का पहला अंक ही चार दृश्यों में विभक्त है। उसी अंक में एक साथ चारुदत्त के घर अदृश्य और साथ ही गली में वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार का दृश्य दिखलाने में मंच को निःसन्देह असुविधा होगी। ऐसे दृश्य हमें अन्य अंकों में भी मिलते हैं।

मृच्छकटिक एक भारतीय सुखान्त नाटक है, फिर भी पाश्चात्य दुःखान्त वातावरण के सृजन में यह प्रकरण लाजबाब है। इसलिए कुछ आलोचकों ने इस पर यूनानी रंगमंच का प्रभाव माना है। मृच्छकटिक की शैली नितान्त सरल एवं आकर्षक है। बड़े-बड़े छन्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है। नये-नये भाव, नई उद्भावनाएँ, अछूती कल्पनाओं का सामञ्जस्य, इस प्रकरण की प्रमुख नाटकीय विशेषता है। प्रकरण की भाषा में सुकुमारता, सन्दीप्ति,

चित्रात्मकता और लाक्षणिकता का चरम विकास है। पद्य और गद्य दोनों में ही इनकी भाषा शुद्ध, प्राञ्जल एवं प्रौढ़ रही है; शैली में प्रवाह और आकर्षण का विधान कवि की सफलता का द्योतक है।

मृच्छकटिक का रस

मृच्छकटिक का मुख्य रस शृंगार है। अनेक रसों के विभिन्न सामग्रियों से परिपुष्ट शृंगार का सुन्दर रूप कवि ने दिखलाया है। सहृदय कवि ने अपनी अनुभूतिमय एवं संवेदनशील कल्पना के प्रसाद द्वारा मृच्छकटिक में इतने रससिक्त प्रसंगों की अवतारणा की है कि सारा प्रकरण वेदनाजनित आँसुओं का एक सागर-सा बन गया है। पात्रों के चरित्रांकन में, वातावरण की सजीवंता में, उद्देश्य की प्राणवत्ता में, प्रकृति के उत्कृष्ट कलात्मक वर्णन में शृंगार की सुसम्बद्ध अभिव्यक्ति जो इस प्रकरण में हुई है, संस्कृत के अन्य नाटकों में दुर्लभ है। शृंगार का ये सरस चित्र देखते ही वनता है—

'धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति ॥' ५।४९ ॥

'अपने घर पर वर्षा में भींग कर आई हुई भींगी प्रेयसियों को अपनी बाँहों में जकड़ कर जो प्रेमी आलिंगन करता है, निश्चय ही उसका जीवन धन्य है।'

वसन्तसेना के शृङ्गारोद्दीपक ललित गति का वर्णन विट की निम्न उक्ति में एक हृदयवेधक एवं मार्मिक अनुभूति का मानो साक्षात्कार करा देता है—

'किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलं प्रकरकुड्मलमुत्सृजंन्ती टङ्कैर्मनःशिलगुहेव विदार्यमाणा॥'१।२०॥

'अरी ओ वसन्तसेंने, डर कर इस तरह क्यों भाग रही हो? सरस कोमल केले के पत्ते की तरह थरथर काँपते ये तुम्हारे लाल-लाल आँचल हवा में लहरा रहे हैं। आह! तुम्हारे भागते हुए कमल कोमल पैर जो राजमार्ग के कुट्टिम पर उठ-गिर रहे हैं, वे लगते हैं मानो लाल-लाल कमल के फूलों को ही बिखेर रहे हैं। तुम्हारी देह की यह रक्ताभ छवि लगता है जैसे मनःशिल की गुहा हो, जिसे कोई छेनी से टाँक रहा हो और छेनी की चोट से उस मनःशिल के छोटे-छोटे कण उड़कर चारों ओर बिखर रहे हों।

पञ्चम अङ्क में कवि ने उद्दीपन रूप वर्षा का विशद एवं सुन्दर वर्णन किया है। इस वर्णन में चमत्कारोत्पादक अनेक सूक्तियों का समाहार दर्शनीय है। धर्मप्राण चारुदत्त को मेघाच्छन्न आकाश को देखते ही वामन भगवान् की लीला का स्मरण हो आता है—

'मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः।
आभाति संहतबलाकगृहीतशङ्खः खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः ॥'५।२॥

पानी में भींगे भैंसे के पेट और काले भौंरे की तरह ये मेघ भी काले हैं। बीच-बीच में चमकने वाली बिजलियाँ ही पीताम्बर-सी प्रतीत होती हैं। उड़ते हुए बगुलों की पंक्ति शंख की तरह श्वेत है। ऐसे मेघ को आकाश में उमड़ते देखकर लगता है कि ये दूसरे केशव आकाश-मण्डल को आक्रमित करने हेतु उद्यत हुए हैं।

हवा के कारण आकाश में उड़ते ये मेघखण्ड कई तरह के रूप बना रहे हैं। कभी मेघ के दो टुकड़े अब आपस में मिल जाते हैं तो लगता है जैसे नियुक्त चकवा-चकई एक साथ मिल गये हों, कभी उड़ते हंसों की तरह प्रतीत होते हैं तो कभी क्रुद्ध समुद्र या विस्फूर्जित नदी पुलिन पर पड़े मगर और मछलियों से लगते हैं। कभी-कभी तो ये हवाएँ उन्हें ऐसे बना देती हैं जिन्हें देख कर लगता है कि बड़ी-बड़ी श्वेत कंगूरे वाली अट्टालिकाएँ आकाश में खड़ी हों। आकाश में इन बादलों के साथ मानो हवा खेल रही है, अथवा आकाशरूपी चित्रपट पर ये हवाएँ मानों अनेक तरह की डिजाइन चित्रित कर रही हैं, जिससे आकाशरूपी चित्रफलक सुशोभित हो उठा है :—

'संसक्तैरिवचक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव
व्याबिद्धैरिवमीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः,
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना ॥ ५।५ ॥

मृच्छकटिक के प्राकृतिक वर्णन की प्रमुख विशेषता उनमें निहित प्रकृति का मानवीकृत चित्रण है। प्राकृतिक सौन्दर्य का सजीव एव स्वच्छ चित्र इसमें देखते ही बनता है। कवि के प्रकृतिवर्णन में जो नाममात्र के हैं— भाषा का माधुर्य और भावों का कल्पनामय चित्र ण प्रचुरमात्रा में उपलब्ध है। सुकुमार कल्पना, लालित्यपूर्ण पदयोजना और सरस भावों का अपूर्व संयोग, इनके वर्णन के प्राण हैं प्रकृति की शोभा और सौन्दर्य की मनोहर छवियाँ मुखर हो उठी हैं। तभी भीषण काली रात वसन्तसेना को अपनी सौत-सी दिखाई पड़ती है जो ईर्ष्या उसकी हँसी उड़ाती हुई उसकी राह रोक रही है :—

"मूढे ! निरन्तरपयोधरया मयैव कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र।
मां गर्जितैरिति मुहुर्विनिवारयन्ती मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशासपत्नी ॥

—मृ० ५।१५॥

पुष्ट पयोधर (मेघ) वाली रातरूपी मैं तुम्हारी सौतन जब रमण के साथ क्रीड़ारत हूँ ही तो फिर तुम्हारी आवश्यकता ही क्या है ? जब कान्त को रमण

सामग्री उपलब्ध है ही तो फिर तुम्हारा यह अभिसरण किस काम का ? इस प्रकार गरजती हुई यह काली रात सौत की तरह मानो मेरी राह रोक रही है ।

अकिञ्चन जीवन की दारुण समस्याओं की कसक, भावना और व्यथा की मीठी टीस, विपत्ति और कष्ट का आघात, करुण और विषाद का गीलापन भी कुछ पद्यों में पाठक के हृदय को करुणा विगलित कर देता है ।

इस तरह हम देखते हैं, इस प्रकरण का अंगी रस श्रृंगार है । वह प्रारम्भ में सम्भोग, बाद में विप्रलम्भ, पुनः सम्भोग; फिर विप्रलम्भ और पुनः संयोग श्रृंगार का रूप ग्रहण करता है । करुण, वीभत्स, भय, अद्‌भुत और हास्य-रस यथास्थान अंग बन कर आये हैं । शर्विलक और आर्यक की उक्ति में कहीं-कहीं वीररस की थोड़ी झलक भी मिल जाती है । बीच-बीच में चिन्ता, ग्लानि, निर्वेद आदि सञ्चारी भावों का भी आस्वाद मिल ही जाता है । कुल मिला कर लाक्षणिक वक्रता और अभिव्यक्ति की नई भंगिमा के साथ रस निष्पादन में यह प्रकरण अपने आप में अनोखा है ।

सामाजिक स्थिति

मृच्छकटिक में तत्कालीन मध्यवर्गीय हिन्दू समाज का सच्चा चित्र हमें मिलता है । यद्यपि इस प्रकरण का संसार अधिकतर लम्पटों का ही जगत् है; राजनैतिक षडयंत्रकारी, विवेकशून्य राजसेवक, अकर्मण्य पुलिस पदाधिकारी, निठल्ले और बेकार दादाओं, चोर, बदमाश, जुआरियों, गणिकाओं, नौक-रानियाँ, विट चेटों का विचित्र जगत है, फिर भी इनके माध्यम से प्रायः सम्पूर्ण समाज का यथार्थ चित्र इसमें स्पष्ट हो गया है ।

इस प्रकरण में चाहे राजन्यवर्ग हो अथवा ब्राह्मण वर्ग, सारा समाज ही गिरा हुआ दिखलाया गया है । सम्प्रभुता राजा में निहित थी । सचिवों की सहायता से राजा राज्य संचालन करता था । न्याधिकरण में मनु की मान्यता प्रचलित थी । न्यायाधीशों की सहायता के लिए कायस्थ एवं श्रेष्ठी सहायता के लिए रखे जाते थे । कुछ ब्राह्मण अपना जातिगत धन्धा छोड़ कर व्यापार किया करते थे । चारुदत्त स्वयं एक सार्थवाह है । इतना ही नहीं, ब्राह्मण चोर, जुआरी, वेश्यागामी तथा चापलूस भी हुआ करते थे । क्षत्रिय राजे क्रूर, अपकर्मी, विवेकहीन और दुराचारी होते थे । राजा पटरानी के अतिरिक्त नीच जाति के रखेल भी रखते थे । राष्ट्रीय श्यालक शकार नीच जाति की एक कुमारी कन्या का पुत्र (काणेलीमाता) था । इसकी वहन राजा की रखेल थी । नीच जाति के लोग उच्च पदों प्रर आसीन होते थे । न्याय नाम की कोई वस्तु नहीं थी । राजा की इच्छा ही सर्वोपरि थी ।

उस समय नगरों में एक जाति या पेशा के लोग एक ही मुहल्ले में रहा करते थे। चारुदत्त का परिचय देते हुए संवाहक ने द्वितीय अंक में कहा है— 'स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति' नगरों में बड़ी लम्बी चौड़ी सड़कें होती थी। रात में सड़कों पर अंधेरा छाया रहता था। पहरेदार पहरे पर नियुक्त रहते थे फिर भी सड़कों पर लोग खुले-आम मार-पीट किया करते थे। भले घर की बहू-बेटियों का शाम होते ही सड़कों पर निकलना मुश्किल हो जाता था। क्योंकि, अंधेरा होते ही सड़कों पर वेश्या, विट, चेट आदि घूमने लगते थे। सवारी के रूप में बैलगाड़ियों का प्रचलन था। प्रशासनिक सेवा में घोड़ों का उपयोग होता था। नवम अंक में अधिकरणिक ने वीरक को घोड़े से जीर्णोद्यान जाने को कहा था। धनियों के पास सवारी के लिए हाथी भी रहते थे। वसन्तसेना को भी 'खुण्डमोटक' नाम का एक हाथी था। बैलगाड़ियों में पर्दे लगाये जाते थे।

उस समय अन्तर्जातीय वैवाहिक प्रथा प्रचलित थी। गणिकाएँ अपनी पेशा छोड़कर कुल-वधू बन सकती थी। ब्राह्मण युवक भी इन्हें अपनी बधू बना लेते थे। चारुदत्त ने वसन्तसेना को तथा शर्विलक ने मदनिका को खुले आम अपनी बधू के रूप में स्वीकार किया था। तत्कालीन समाज में बहुविवाह प्रचलित था इसका संकेत भी इसी घटना से मिलता है। द्यूतक्रीड़ा को राजकीय संरक्षण प्राप्त था। निम्न वर्ग के लोग खुले आम चौराहे पर बैठकर जुआ खेलते थे। जुए में हारे या जीते गये रुपयों का हिसाब रक्खा जाता था। हिसाब-किताब रखने वाले को लेखक कहा जाता था। जुआरियों की अलग-अलग टोलियाँ होती थीं। टोली-मुखिया को सभिक कहा जाता था। बेइमानी करने वाले को कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी। यदि कोई हारकर रुपया देने से इनकार कर देता था तो उसका दावा न्यायालय में किया जा सकता था। जुआरी संवाहक के भाग जाने पर एक जुआरी ने माथुर से कहा— ''राजकुलं गत्वा निवेदयावः।'' शराब पीने की प्रथा भी प्रचलित थी। अष्टम में शकार ने भिक्षु से कहा—''आपनकमध्यप्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते भङ्क्ष्यामि।''

समाज में भद्र लोगों के नाम के पूर्व कुछ न कुछ सम्मान सूचक शब्द जोड़कर ही नामोच्चारण किया जाता था। स्त्रियाँ आभूषणप्रिय होती थीं। नूपुर, हस्ताभरण एवं करधनी पहनने की प्रथा प्रचलित थी। महिलाएँ मुख में प्रायः किसी तरह का पाउडर भी लगाती थीं। दास प्रथा प्रचलित थी। मनुष्य खरीदे बेचे जाते थे। मालिक को रुपया चुकाकर गुलामों को स्वतन्त्र नागरिक बनाया जा सकता था। स्थावरक के सम्बन्ध में चारुदत्त की यह उक्ति ध्यातव्य है—'सुवृत्त अदासो भवतु।'

कलाएँ उन्नत अवस्था में थी। लोग संगीतप्रेमी थे। संगीतकला, चित्रकला, स्थापत्यकला, मूर्त्तिनिर्माणकला, प्रचलित थी। लोगों की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। धनी और निर्धन दोनों कोटि के लोग समाज में थे। बच्चों के खिलौने भी कुछ लोगों के घर सोने के होते थे। वैदिक और बौद्ध दोनों धर्म प्रचलित था। किन्तु, वैदिक धर्म को राज्याश्रय प्राप्त था और बौद्धधर्म अपनी दुर्बल स्थिति में लड़खड़ा रहा था। मातृदेवियों और गृहदेवताओं को बलि अर्पित करने की प्रथा थी। सभ्य नागरिकों में देवी देवताओं में अटूट विश्वास था। लोग व्रत उपवास भी करते थे। ब्राह्मण भोजन और दान देने की प्रथा भी थी। चोर भी सेंध लगाने के पूर्व अपने अभीष्ट देवों का स्मरण करते थे। बलि देने के पूर्व चाण्डाल भी इष्ट देव का स्मरण करते थे। जनसामान्यमें धार्मिक आस्था थी। सांसारिकता से ऊबकर या जीवन में असफल होकर लोग बौद्धधर्म के अनुयायी बन जाते थे। संवाहक इसी कोटि का एक शाक्य श्रवण था। भिक्षु काषायवस्त्र पहनते थे। ये त्यागी, इन्द्रियनिग्रही एवं लोककल्याणकामी होते थे। फिर भी लोग उन्हें सशङ्क दृष्टि से देखते थे। उनके दर्शन अनाभ्युदयिक माने जाते थे। उस समय देश बौद्धों के बहुत सारे बिहार थे। बिहारों में भिक्षु और भिक्षुणियाँ भी रहती थीं। क्योंकि, वसन्तसेना को अपने साथ ले जाते समय भिक्षु उससे कहता है—"एतस्मिन् विहारे मम धर्मभगिनी तिष्ठति"। निश्चय ही वह उसकी सहोदर बहन नहीं, कोई भिक्षुणी ही है। इसी तरह चारुदत्त का यह कथन—"तत् पृथिव्यां सर्वविहारेषु कुलपतिरयं क्रियताम्" बौद्धविहारों की बहुलता का प्रमापक है।

देश की राजनीतिक स्थिति तो सब से गई बीती थी सार्वभौम राजा का बिल्कुल ही अभाव था। सम्पूर्ण देश छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त था। राजे शक्तिहीन थे। शासन-प्रबन्ध बड़ा शिथिल था। पुलिस पदाधिकारी छोटी-छोटी बातों पर भी आपस में उलझ जाते थे। पदाधिकारियों को अपने-अपने पद का बड़ा घमण्ड होता था।

वीरक और चन्दनक के दृश्य से यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है। शासनव्यवस्था शिथिल होने के कारण ही षडयन्त्रियों को षडयन्त्र करने का अच्छा अवसर मिल जाता था। षडयन्त्री देश के तथाकथित दादाओं को इकट्ठा कर षडयन्त्र करते थे। शासनव्यवस्था इतनी ढीली थी कि कुछ घण्टों में किसी के राज्य को पलट देना एक सामान्य सी बात थी। किसी भी व्यक्ति पर षडयन्त्र का सन्देह होने पर उन्हें बेड़ियों से जकड़ कर अनिश्चित काल के लिए कारा में डाल दिया जाता था। न्यायपालिका की स्थिति और बदतर थी। निर्णय लेने में न्यायाधीश स्वतन्त्र नहीं थे। खूनी की गर्दन काट दी जाती थी, उसे शूली पर चढ़ाया जाता या कुत्ते से नुचवाया जाता था। उस समय भी प्राणदण्ड देने का काम चाण्डाल ही किया करते थे। खूनी व्यक्ति

को शूली पर चढ़ाने के पूर्व रक्तचन्दन और करवीर की माला से सजाया जाता था। चाण्डाल वध्यपटह बजाते हुए अपराधी को वध्यस्थल ले जाते थे, साथ ही रास्ते में अपराधी का परिचय, उसके अपराध एवं दण्ड की घोषणा भी करते थे। सामाजिक स्थिति सम्पन्न होकर भी विपन्न थी।

वर्त्तमान परिवेश में मृच्छकटिक की प्रासङ्गिकता

मृच्छकटिक यद्यपि एक प्राचीन नाटक है फिर भी इसकी प्रासंगिकता आज भी सामाजिक स्तर पर एक नया सन्दर्भ उत्पन्न करती है। सूत्रधार सर्वप्रथम नाटककार का परिचय देते हुए कहता है—नाटककार शूद्रक एक विख्यात बलवान् क्षत्रिय था। उसकी चाल गजराज ऐरावत की तरह मस्ती से भरी थी। आँखें चकोर की तरह थी और चेहरा चन्द्रमा की तरह भव्य और दिव्य था। वह एक विख्यात कवि भी था, जिसका सामवेद, ऋग्वेद प्रभृति पर पूरा अधिकार था। उसने अपनी जिन्दगी में ही अपने बेटे को अपना राजसिंहासन सौंपकर अश्वमेध यज्ञ किया था। सौ साल और दस दिन की उम्र पाकर उसने अपने आपको यज्ञ की अग्नि में भस्म कर दिया।

इस नाटक में अवन्ती के एक युवा सौदागर की कथा है। यह सौदागर जाति का ब्राह्मण है और इसकी खूबियों पर, अपनी चौंधियाती देहयष्टि को अपनी ही झुकी-झुकी आँखों से सहलाती सिहरती वसन्तसेना नाम की गणिका तन-मन से समर्पित है। इस रचना में नाटककार ने प्रेम और सौन्दर्य, रीति और नीति, रहन-सहन, प्रकृति-पर्यावरण, कुलीनों और कमीनों की आदतों से जुड़े अनेक प्रश्नों को बड़ी संजीदगी से सजाया है। राजा पालक का राज्य विप्लव, वसन्तसेना का गला घोंटा जाना, वसन्तसेना की हत्या के आरोप में चारुदत्त को फँसाया जाना, अदालत में उनके विरुद्ध फैसला देना और अन्त उनकी प्राण रक्षा, शूद्रक के ये सारे प्रसंग वर्तमान परिवेश की एक व्यवस्थित व्याख्या जैसी प्रतीत होती है।

इसकी नाटकीयता जो पहली दृष्टि में ही पाठक या दर्शक को चमत्कृत करती है, वह है इसकी चुम्बकीय आकर्षण-शक्ति जो सबको सम्मोहित किये रहती है। ऐसा लगता है जैसे परदे पर एक के बाद एक चित्र स्वतः आता जा रहा है—बहुरंगी, बहुरूपी जीवन की एक-एक तह मानो दर्शक के सामने अपने-आप खुल रही है।

आभूषणों की पोटली वसन्तसेना छोड़ जाती है चारुदत्त के पास, चारुदत्त उसे देता है विदूषक को, विदूषक उसे देता है चोर को, चोर उसे देता है मदनिका को और मदनिका से पोटली फिर पहुँच जाती है वसन्तसेना के पास। कितना आकर्षक है यह वृत्त। ऐसा ही एक वस्तु है अनुश्रुति—एक ने दूसरे की बात सुनकर तीसरे को पहुँचाई, तीसरे ने चौथे को और चौथे ने पाँचवे

को और ये कथोपकथन एक पूरी कहानी के रूप में अपने आप सामने आ जाते हैं। इसकी सर्वाधिक विलक्षणता इसकी उन्मुक्तता है—न कहीं दुराव, न कहीं छिपाव, एक पूरा जीवन-व्यापार खुली पोथी की तरह सामने रक्खा है।

श्रृंगार की इसकी कोमल कल्पना अपने आप में अतुलनीय है। श्रृंगार और हास्य का अद्‌भुत संयोग इस नाटक की खूबी है। इस नाटक में हास्य का यह पुट न केवल विदूषक या संस्थानक के द्वारा पेश किया गया है प्रत्युत चारुदत्त और वसन्तसेना के वार्तालाप में भी इसका खुल कर प्रयोग हुआ है। आधुनिक नाटक का जो सेक्स है वही मृच्छकटिक का श्रृङ्गार है जिससे इस नाटक का प्रतिस्तंर भींगा है।

ठोस सत्य की मार्मिक अभिव्यक्ति इस नाटक की अपनी खूबी है जिसमें एक गणिका के द्वारा सच्चरित्र का निर्वाह किया गया है। इस सम्बन्ध में सामान्य परम्परा यह देखी जाती है कि गणिकाएँ या तो धन की ओर झुकती है, या फिर उनके दरवाजे पर जो आ जाए, उसका मनोरंजन करती है। शूद्रक वह कवि है जिसने इतने वर्ष पूर्व पहली बार इन दोनों परम्पराओं को तोड़ कर वसन्तसेना को चारुदत्त से मिलाया। यह काम उस वक्त कितना चुनौती-पूर्ण रहा होगा इसकी कल्पनाभर ही की जा सकती है। इसके प्यार में जो औदार्य है, वसन्तसेना उसकी मार्मिक अभिव्यक्ति है। प्यार में एक क्षण की अनुभूति ही अपनी होती है वह क्षण पूरा हो, परिपूर्ण हो, तो बस है, अपने मन में उसे चाहे कोई जितना विस्तार दे ले। भौतिक रूप से आजीवन किसी प्यार को बाँध लेने की कल्पना तो कल्पनाभर ही है। मृच्छकटिक प्यार की इस सीमा को बड़े नाजुक मोड़ पर उजागर करता है।

यह नाटक सचमुच अनूठा है। इस अर्थ में कि इसकी कथा देवताओं, ऋषियों और किसी राजा के इर्द-गिर्द नहीं घूमती। संस्कृत के श्रृंगारप्रधान अन्य नाटकों में कामबाण से विंधा हुआ नायक, नायिका को रिझाने या जीतने की कोशिश करता है। किन्तु, इस नाटक में इस परम्परा के विपरीत नायिका स्वयं नायक पर रीझकर, उसे पाने का प्रयत्न करती है। इस प्रयत्न में वह अपने प्राणों को भी संकट में डाल देती है। इतना ही नहीं यह नाटक आद्यन्त क्रान्तिकारी है। भरतमुनि के आदेशों की अवहेलना कर इस नाटक में रंगमंच पर निद्रा, मृत्यु आदि दृश्य दिखलाये गये हैं। इसका खलनायक खलता और कमीनेपन का जीता जागता प्रतीक है। इसके अन्य पात्र जनसामान्य से लिये गये हैं जैसे पेशे से सेंधमार और स्वभाव से वीर चतुर्वेदी ब्राह्मण शर्विलक, विरक्त होकर बौद्ध भिक्षु बन जाने वाले जुआरी, अत्याचारी राजा के विरुद्ध काम करने वाले राजकर्मचारी, राजनैतिक दबाव में आकर गलत फैसला देने वाला दब्बू न्यायाधीश, अपने दुष्ट मालिक के विरुद्ध साक्ष्य देने वाला बूढ़ा गाड़ीवान् और एक भले आदमी का वध करने से झिझकने वाला जल्लाद—

आधुनिक परिवेश के बहुरंगी फूल हैं। इस पुराने नाटक में भविष्यकालीन यथार्थ का एक दिलचस्प चित्र उजागर किया गया है।

वसन्तसेना उज्जयिनी की सर्वाधिक सुन्दर, सबसे सम्पन्न और एक स्पृहणीय गणिका है। सौन्दर्य और यौवन के शिखर पर रहते हुए भी वह चारुदत्त के गुणों पर मुग्ध होकर उसे अपना दिल दे बैठती है। ब्राह्मण युवा चारुदत्त रूपवान् है, कभी वह बहुत धनवान् सार्थवाह भी था, पर दीन-दुखियों को दान और कलावन्तों को इनाम देते-देते गरीब हो गया है। ठीक उसी तरह जैसे गर्मियों में पथिकों की प्यास बुझाते बुझाते कोई कुआँ सूख गया हो। उज्जयिनी के प्रजापीड़क राजा पालक का असंस्कारी साला संस्थानक बहुत समय से वसन्तसेना के पीछे पड़ा है। धन और धौंस के बल पर उसे हासिल करने की कोशिश करता है। पर जब वसन्तसेना उसकी होने से साफ इन्कार कर देती है तब वह उसका गला घोंट देता है किन्तु संयोग से वसन्तसेना जिन्दा बच जाती है और अपने प्रियतम को प्राप्त कर लेती है—बकायदा उसकी पत्नी का दर्जा प्राप्त कर लेती है। तरुणी वेश्या का ब्राह्मण की पत्नी बन जाना, सो भी समाज और राज्य की स्वीकृति से, आधुनिक सुधारवादी समाज को एक प्राचीन नाटक की अभिनव देन है। इस पवित्र प्रेम की विजय ही इस अभिनय की आत्मा है।

मृच्छकटिक में जिस गुप्तकालीन समाज का चित्रण है इसे देखने से प्रतीत होता है कि वह समाज वर्जनामुक्त था जो आधुनिक भारत के इतिहास का स्वर्णयुग था। उस समाज की वर्जनाहीनता निश्चय ही आज के समाज में सामयिक महत्व रखती है, वर्जनामुक्ति का स्पष्ट स्वरूप है, मदनिका और शर्विलक का संबंध। शर्विलक एक शातिर चोर है, जिसकी ऐसी प्रसिद्धि है कि उसकी काटी हुई सेंध देखकर लोग वाह-वाह कर उठते हैं। उसकी समाज में अपनी एक स्वतंत्र हैसियत है। वह चोर एक गणिका से प्यार करता है और उसे पेशे से निकाल कर अपनी पत्नी बनाने के लिए गहनों की चोरी कर उसका कीमत अदा करता है। उसे आजाद करा लेता है और अपनी पत्नी बनाता है। आज के समाज में स्थापित बर्जनाओं की यह चुनौती इस नाटक की एक धरोहर है।

इस देश में प्रवृति एवं निवृति मूलक दो चिन्तनधाराएँ सदा साथ-साथ बहती रही है। कभी एक प्रवल रही है कभी दूसरी। निवृतिमूलक चिन्तन दो ही पुरुषार्थ मानता है—धर्म और मोक्ष। प्रवृत्तिमूलक चिन्तन अर्थ और काम को भी पुरुषार्थ का दर्जा मानता है। चारों पुरुषार्थों में संतुलन और समन्वय साधने की बात यह देश सोचता रहा है। गुप्त युग का प्रतिनिधि कवि नाटककार कालिदास इसी दृष्टि का पुरस्कर्ता है। इसी समन्वयी दृष्टि का यह प्रसाद था कि गुप्तकालीन भारत कला, साहित्य. दर्शन, वाणिज्य, व्यापार सब

में एक साथ उन्नति साध सका। मृच्छकटिक की जीवन दृष्टि इसी सौन्दर्य मूलक प्रवृत्ति का प्रतीक है। इसी सौन्दर्यमूलक जीवन दृष्टि का उदात्त प्रसाद है नायिका के अंग-प्रत्यंग का वर्णन। उतनी ही स्वाभाविकता से उन्होंने किसी नारी के स्तन और नितम्ब का भी वर्णन किया है। क्योंकि उनकी नजर से यह जीवन की स्वस्थ अभिव्यक्ति है। मृच्छकटिक की यही अभिव्यक्ति जीवन को सजाता है, सँवारता है और अधिकतम मानवीय बनाता है। इस अभिनय की सामयिकता यदि कहीं है तो उस खोई हुई सौन्दर्यमूलक जीवनदृष्टि को उजागर करने में है। नाटककार का काल स्वर्णकाल था या नहीं यह कहना तो संभव नहीं है पर इतना तो निश्चित रूप से कहा ही जा सकता है कि वह जीवनदृष्टि यदि आज हमें मिल जाय तो यह समाज अवश्य ही सभ्यता के शिखर पर पहुँच जायगा।

अब हम इसे मृच्छकटिक के नायक चारुदत्त के आखिरी संवाद से ही समाप्त करें।

"तकदीर हमसे रहट की मटकियों की तरह खेलती है। एक को खाली कर दूसरे को भरती है। एक को ऊपर उठाकर दूसरे को नीचे गिराती है। जिन्दगी का यही चक्कर है कभी स्वर्ग तो कभी नर्क।" यह बात अभिनय प्रसंग के लिए जितना सत्य है जीवन के बारे में भी उतनी ही सही है। और नहीं तो कम से कम जिन्दगी के इस चक्कर का आनन्द लेने के लिए भी मृच्छकटिक अवश्य पठनीय है।

मृच्छकटिक की कथावस्तु

किसी प्रकरण का वृत्त लौकिक कवि कल्पित या लोकवृत्त पर आधारित होना चाहिए। मृच्छकटिक की कथा कल्पनाप्रसूत है तथा लोकप्रसिद्ध प्रेमवृत्त पर आधारित इस प्रकरण की रचना की गई है। नाटक की प्रमुख वस्तु उसका व्यापार (Action) होता है। यही किसी भी नाटक को गति प्रदान करता है। इसमें कथोपकथन के माध्यम से अभिनय को आगे बढ़ाना चाहिए। मृच्छकटिक की कथा अभिनय के द्वारा ही आगे बढ़ती है। साथ ही इस प्रकरण में नाटककार ने सामाजिक को निरन्तर आगे बढ़ने के लिए सर्वत्र कौतूहलपूर्ण अवसर और सुयोग दिये हैं। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि राजन्य वर्ग को छोड़कर इसके नाटककार ने अपनी कथावस्तु का चयन मध्यमवर्ग सें किया है। उज्जयिनी से मध्यवर्गीय समाज की दैनिक परिचर्या को इस रूपक का आधार बनाकर कवि ने इसे अत्यधिक स्वाभाविकता दे दी है। अपनी विशिष्ट कथावस्तु के कारण ही कवि ने इस प्रकरण को संस्कृत नाट्य-साहित्य में एकमात्र यथार्थवादी प्रकरण कहलाने का श्रेय प्रदान किया है। जहाँ कालिदास और भवभूति के नाटक में हमें काव्य और उदात्त भावना के

दर्शन होते हैं, वहाँ मृच्छकटिक में जीवन की ऊष्मा और कठोर वास्तविकता के परिदर्शन होते हैं ।

डॉ० व्यास का कहना है कि यद्यपि इस रूपक की कथावस्तु का जगत् चोर, जुआरी, बदमाश, राजनैतिक षडयन्त्री, भिक्षु, राजसेवक, निठल्ले, बेकार लोग, पुलिस कर्मचारी, नौकरानियाँ, विट और गणिकाओं का विचित्र जगत् है, फिर भी इनमें अनेकों रमणीय स्थल हैं जो काव्य की दृष्टि से निम्नकोटि के नहीं कहे जा सकते हैं । इसका प्रणयचित्रण राजा दुष्यन्त तथा तपोवन-सुन्दरी शकुन्तला का विलासपूर्ण प्रेम नहीं है, न वह भवभूति के राम तथा सीता का आदर्श एवं गम्भीर प्रेम है, यह तो एक सामान्य नागरिक एवं गणिका के प्रेम का चित्र है जो पवित्रता, गंभीरता एवं कोमलता में किसी से कम नहीं है । प्रकरण की विचित्र सृष्टि इस प्रेम की आधारभित्ति के रूप में संसृष्ट है । नाटककार ने इस प्रणयकथा के साथ राजनैतिक षडयन्त्र की कथा को दूधपानी की तरह इस तरह मिला दिया है कि दोनों का भेद कहीं प्रतीत ही नहीं होता है । पालक और आर्यक की राजनैतिक कथावस्तु चारुदत्त और वसन्तसेना की प्रेमगाथा में अनुस्यूत सी प्रतीत होती है । इस प्रकरण की कथावस्तु में समाज के सभी वर्गों के चुने हुए पात्र मिलते हैं । अत्यधिक सभ्य ब्राह्मण, पतित और चोर ब्राह्मण, पतिव्रता पत्नी और गणिका, पवित्र भिक्षु और पापी शकार प्रायः सभी पात्र व्यक्ति हैं, इसमें अन्य संस्कृत नाटकों की तरह प्रतिनिधि पात्र का प्रायः अभाव ही है । पवित्र हृदय विट जिसे रोजी के लिए शकार जैसे नीच की नौकरी करनी पड़ती है। अपमान और कठोर यातना सहनी पड़ती है । ब्राह्मणपुत्र शर्विलक, जिसे अपने प्रणय के कारण नहीं चाहते हुए भी चोरी करनी पड़ती है । धनलोभ से बिल्कुल मुक्त सच्चा प्रेम करने वाली गणिका वसन्तसेना, सभी पात्र अपनी एक खाश विशेषता लेकर इस कथावस्तु के कलेवर को ऐसा सजा देते हैं जो अन्यत्र कहीं खोजने पर भी नहीं मिलते । मृच्छकटिक की कथावस्तु में प्रहसन और विषाद, व्यङ्गय और करुणा, काव्य और प्रतिभा दया और मानवता को एक साथ मिलाकर इसके शिल्प अति आकर्षक बना डाला है ।

चरित्र-चित्रण

मृच्छकटिक के कवि की महत्ता चारुदत्त, वसन्तसेना, शर्विलक या शकार जैसे पात्रों के चरित्रचित्रण में ही है । इन सभी मूर्त्तियों का निर्माण तत्कालीन सामाजिकता की मृतिका से ही हुआ है । प्रकरण रचयिता धर्मशास्त्र, स्मृति, पुराण, ज्योतिष, राजनीतिशास्त्र, हिन्दूदर्शन, संस्कृत, प्राकृत और विभाषाओं का प्रकण्ड पण्डित था । व्यावहारिक तथ्यों पर पूर्ण सामाजिक वर्णन, परिमार्जित भाषा और विलक्षण वर्णनशैली इस बात के प्रमाण हैं । इनकी प्रकरणरचना,

चरित्र-चित्रण और भावप्रदर्शन अप्रतिम हैं। मृच्छकटिक संस्कृत साहित्य का सर्वाधिक सुनियोजित एक प्रकरण है। इस कवि का चरित्र-चित्रण मानव समाज के स्वभाव से उनके गम्भीर, सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचायक है।

इस प्रकरण के रचयिता संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक भावुक कवि थे। प्रत्येक पात्र की मनःस्थिति में अपने आपको डालकर तदनुकूल सोचने बोलने की अपूर्व क्षमता उन्हें प्राप्त थी वह चारुदत्त हो या शकार, वसन्तसेना हो या पतिव्रता धूता, रदनिका हो या मदनिका, विट हो या चेट—ऐसा मालूम पड़ता है कि कवि ने अपने व्यक्तित्व को उन विभिन्न पात्रों के व्यक्तित्व से इतना तदाकार कर दिया है कि भिन्न सत्ता की स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता। कथा में स्थल-स्थल पर छोटे-बड़े आवर्त्त हैं जहाँ दर्शक मानव मनोविज्ञान में, भावुक स्थलों में गहरे बैठकर अपूर्व रस बोध पाता है। यह अखण्ड और अपरिसीम तल्लीनता ही नाटककार को संस्कृत नाटच साहित्य विशेष गौरव प्रदान करती है।

चारुदत्त—

मृच्छकटिक के नायक चारुदत्त के चरित्र-चित्रण में कवि को अद्भुत सफलता मिली। चारुदत्त का अभिजात चरित्र एक विचित्र और अद्भुत् रूप लेकर हमारे सामने उपस्थित होता है। यह हमारे सामाजिक जीवन के आलोडन विलोडन पर समासीन कंक्रीट की बनी उस भव्य और दिव्य मानव-मूर्ति के समान अवस्थित है, जिसके दर्शन हिन्दू सामाजिक जीवनपरिधि के किसी भी बिन्दु से किये जा सकते हैं। यह चरित्र अपनी लौकिकता में जितना ही इस मिट्टी से संकुल, संयुक्त, कौटुम्बिक, पारिवारिक और सामाजिक है, अपनी महिमा और मानवता में उतना ही आकाश को चूमता हुआ, मानवीय और प्रभविष्णु। सम्पूर्ण संस्कृत नाटच साहित्य में इतना विलक्षण, व्यवहार-कुशल, त्यागी, गुणज्ञ एवं भव्य शील, सौन्दर्य और सौहार्द पूर्ण चरित्र नायक का निर्माण सम्भवतः आज तक नहीं हुआ है।

चारुदत्त अभिजात कुलोत्पन्न एक युवाब्राह्मण है। अपने ब्राह्मणत्व के प्रति सर्वथा सतर्क रहते हुए भी वह कर्मणा सार्थवाह है। मालतीमाधव की तरह चारुदत्त न तो मध्यवर्गीय नागरिक वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है और न प्रणय-व्यापार के लिए स्वयं सक्रिय प्रणयी। यह तो वसन्तसेना की प्रणय लीला में स्वयं एक उदासीन (Dummy) नायक की तरह दीख पड़ता है। प्रकरण की नायिका वसन्तसेना चारुदत्त के गुण से आकृष्ट, उसके व्यक्तित्व से प्रभावित प्रणयलीला में पूर्ण समर्पित स्वयं सक्रिय है। इस प्रणयलीला का सम्पूर्ण सचेष्ट संवेदना अथवा संयोगार्थ मिलन का सारा श्रेय वसन्तसेना को ही है।

इस दृष्टि से चारुदत्त में न तो कहीं विरह की आकुलता दीखती है और न कहीं, वासना की उत्कट गन्ध ही। वह एक निरपेक्ष, दयालु, सहृदय दाता एवं कर्मनिष्ठ युवा नायक है। न तो वह अधिक विलासी है और न शृंगारी ही, न साहसी है न प्रेम प्रपंची, वह केवल है—सीधा, सादा, सरल पर एक सरस सहृदय नागरिक। वह गरीबों का कल्पवृक्ष है, दीनों, दलितों, असहायों की सेवा वह दिल खोलकर करता है। ऐसा करते रहने के कारण वह स्वयं परम दरिद्र बन जाता है फिर भी दीनों और असहायों की सेवा से विमुख नहीं होता। उसके चरित्र में कुछ ऐसी मार्मिक रेखाएँ हैं जो उसे उत्कृष्ट कलात्मकता एवं उदात्त नायकत्व प्रदान करती हैं।

चारुदत्त कुलीन, सुसभ्य एवं एक सच्चरित्र युवक है। उसमें कुछ ऐसे महार्घ गुण हैं, कुछ ऐसी विलक्षणता है जिसके कारण उसने उज्जयिनी के सम्पूर्ण जन-मन को जीत लिया है। अपनी दानशीलता के कारण ही एक समुद्रश्रेष्ठी से चारुदत्त दरिद्र बन गया है, और दरिद्र हो जाने पर भी उसे दुःख इस बात का है कि याचक उसके घर को समृद्धिहीन जानकर अब वहाँ नहीं आते हैं। वह अपने को उस हाथी की तरह मानता है जिसके मदजल ने अनेकों भौरों को सन्तुष्ट किया है किन्तु उसी के सूख जाने पर अब उसके पास कोई भौंरा आता ही नहीं—

'एतत्तु मां दहति यद् गृहमस्मदीयं क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम्॥'
—मृ० १।१२

इस स्वाभिमानी युवक की वेदना निर्वेद बनकर तब फूट पड़ती है, जब चोर वसन्तसेना का निक्षिप्त आभूषण सेंध काटकर उसके घर से चुरा लेता है। उसे प्रसन्नता होती है कि चोर ही सही, पर कम से कम सेंध काटकर उसे विफल होकर तो घर से लौटना नहीं पड़ा। वसन्तसेना के उस अल्पमूल्य आभूषण के बदले अपनी साध्वी पत्नी धूता के अवशिष्ट एकमात्र आभूषण बहुमूल्य रत्नावली देने में भी हिचक नहीं होती। संस्कृत के अन्य नाटकों के नायकों की तरह चारुदत्त कोरा आदर्श नायक नहीं है, वह तो मध्यवर्ग के उस व्यक्तिगत (Individual) चित्र को उपस्थित करता है जो एक अभिजात सुसंस्कृत सामान्य युवा का है।

वसन्तसेना—

वसन्तसेना नारीचरित्र की तुङ्गता का एक प्रतीक है। सत्य और विशुद्ध प्रेम का एक प्रतिमूर्ति है। अपूर्व त्याग और गुणस्पृहा की आंच में निरन्तर जलकर, गणिकावृत्ति के कालुष्य को जलाकर, भास्वर सोने की तरह दमकता एक नारी रत्न है। भवभूति की सीता की तरह न इसमें आदर्श की

मर्यादा है और न मालती की तरह पिता की परतन्त्रता में आबद्ध किशोरी ही है। न उसमें शकुन्तला की बाल सुलभ मुग्ध मनोहारिता है और न मालविका की तरह अस्थान में फेंका गया हीरे का टुकड़ा। उर्वशी भी वसन्तसेना से कई अंशों में हीन है। यद्यपि उर्वशी की तरह ही जीवन की अनेक कटु मधुर अनुभूतियों को लेकर ही वसन्तसेना सामाजिकों के सन्मुख उपस्थित होती है, फिर भी अपने त्याग, प्रत्युत्पन्नमतित्व, शालीनता, गुणस्पृहा और एकनिष्ठ प्रेम में उर्वशी को वह बहुत पीछे छोड़ गई है। उज्जयिनी की वह एक समृद्ध गणिका की पुत्री है जिसे विट—वापी, लता या नौका की तरह सर्वभोग्या समझता है—'त्वं वापी व लतेव नौरि व जनं वेश्यासि सर्वं भज।' (१।३२) वह अति सम्पन्न प्रभावशाली राजश्यालक शकार जैसे अनुरक्त राजबल्लभ को अपनी माँ की प्रेरणा के बावजूद ठुकराकर निर्धन चारुदत्त के प्रति अपनी हार्दिक आसक्ति अभिव्यक्त कर शुद्ध एवं गम्भीर प्रेम का परिचय देती है। गणिकावृत्ति से ही उसकी माँ ने अपार समृद्धि अर्जित की है, किन्तु वसन्तसेना का कोमल एवं सात्विक हृदय इस विपुल वैभव के प्रति विद्रोह कर उठता है, गणिका के गर्हित जीवन के विरुद्ध उसका हृदय चीत्कार कर उठता है। राजश्यालक शकार ने उसे पाने के लिए उसके घर स्वर्णराशि भेज दी, माता साग्रह अनुरोध करते हुए उसे स्वीकार करने की जब प्रेरणा देने लगी, तब स्पष्ट शब्दों में उसने माँ को दो टूक जबाव दे दिया—'यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदा एवं न पुनरहं आज्ञापयितव्या।' यदि माँ मुझे जिन्दा देखना चाहती हैं तो भूल से भी ऐसा प्रस्ताव मेरे सामने कभी न आने दें। वह अपने गणिका के गर्हित जीवन को छोड़कर इस अपार सम्पदा को ठुकराकर शुद्धाचारी गुणज्ञ, अभिजात कुलोत्पन्न, दरिद्र किन्तु सदाचारी, सुशील एवं सुन्दर युवा चारुदत्त को मन ही मन अपना हृदयबल्लभ के रूप में स्वीकार कर लेती है। किन्तु, उसका मन सदैव इस आशंका से अभिभूत रहता है। कि उसकी अकुलीनता उसके इस शुद्ध एवं पवित्र प्रणय का बाधक न बन जाय। स्वभाव से अति उदार, शालीन एवं अकृपण वसन्तसेना अपरिचित जुआरी संवाहक के शरणागत होते ही उसे अभयदान दे देती है। यह संवाहक का कर्ज चुकाने के लिए बिना हिचक अपना सोने का कड़ा भेज देती है, वह भी यह कहकर कि संवाहक ने ही इसे भेजा है। वसन्तसेना के शालीन एवं मनोमुग्धकारी व्यवहार के कारण ही वसन्तसेना के विरुद्ध विट का व्यवहार सर्वथा परिवर्तित हो जाता है। वसन्तसेना को परेशान करने की अपेक्षा अब वह उसका सहयोगी बन जाता है—

कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं सौदामिनीव जलदोदरसन्धिलीना।
त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं गन्धश्च भीरु मुखराणि च नूपुराणि॥
मृच्छ० १।३५

अपने मधुर शुद्ध और पवित्र प्रणय से अन्त में चारुदत्त के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने सफलता प्राप्त कर ही लेती है। उज्जयिनी के आभूषणभूत चारुदत्त के हृदय को जीत लेती है।

शकार—

शकार इस प्रकरण का प्रतिनायक है। वह किसी व्यभिचारिणी स्त्री का पुत्र है। विट उसे 'काणेलीमातः' कहकर संबोधित करता है। इसकी बहन राजा पालक की रखैल है। यह एक नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति है। राजा के साले होने का उसे बड़ा घमंड है। अपने को वह देवपुरुष, मनुष्य, वासुदेव कहता है। मूर्खता, कायरता, हठधर्मिता, क्रूरता, विलासिता और दम्भ का विचित्र समवाय लेकर वह सामाजिक के सम्मुख उपस्थित होता है। उसे इस बात का बड़ा गौरव है कि उसकी बहन राजा की रखैल है, और वह चाहे तो अपनी माँ, बहन को कहकर न्यायाधीश को भी पदच्युत करवा सकता है। यद्यपि वह परम बेवकूफ है, महामूर्ख है, कायर और क्रूर है फिर भी लोगों के सामने अपनी विद्वता और वीरता हमेशा प्रदर्शित करना चाहता है। वह अशिक्षित और दम्भी है। बात करने की उसमें तमीज नहीं है। न उसे किसी शास्त्र का ज्ञान है और व्यवहार का ही। किन्तु, उल्टा सीधा जो मन में आता है वही बकता है। वह वसन्तसेना के बदले रदनिका को बालों से ठीक उसी प्रकार पकड़ लेता है, जैसे चाणक्य ने द्रौपदी को बालों से पकड़ कर घसीटा था—

केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी ॥ १।३९ ॥

वह वसन्तसेना को पकड़कर उसी तरह मार डालेगा जैसे हनुमान ने विश्वावसु की बहन सुभद्रा को मार डाला था। (द्र० मृ० १।३५) वह वसन्तसेना को चाहता है किन्तु वसन्तसेना उससे घृणा करती है। वह धन और बल से इसे वश में लाना चाहता है किन्तु, इसमें उसे सफलता नहीं मिलती है। अन्त में चिढ कर अवसर हाथ आते ही वसन्तसेना की हत्या कर देता है। हत्या का दोष निरीह चारुदत्त के माथे मढ़कर और प्रपंच कर उसे प्राणदण्ड दिलवाने में सफलता प्राप्त कर लेता है। भिक्षुओं का तो वह कट्टर शत्रु है। स्वाभिमान तो इसे छू तक नहीं गया है। जिस चारुदत्त को बेटे के साथ मरवाने में इसे थोड़ी भी हिचक नहीं थी उसी की शरण में गिड़गिड़ाते हुए प्राण की भीख माँगने में भी उसे संकोच नहीं होता। वह अभिनय, चाल-ढाल, बात-चीत सबसे सामाजिकों में हास्य के वातावरण की सृष्टि करता है। उसके सेवक विट और चेट भी उसे डरपोक एवं कायर समझते हैं।

शर्विलक—

अप्रतिग्रही किसी चतुर्वेदी ब्राह्मणकुल का शर्विलक एक उत्साही युवा है।

इसका चरित्र सबलता और दुर्बलता का सम्मिश्रण है। सज्जनता, दुर्जनता का संयोग है। एक वेश्या की गृहदासी मदनिका को अपनी प्रेयसी बनाने में इस ब्राह्मण-देवता को तनिक भी संकोच नहीं होता। उस गृह-दासी को ऋणमुक्त कराने के लिए धन की आवश्यकता है। किन्तु, वह तो स्वयं दरिद्र है, प्रवासी है। मित्र रेभिल के घर टिका है। किन्तु यह चोरी करने में निष्णात है। उसने योगाचार्य नामक किसी आचार्य से चौर्यकला सीखी है। अपनी प्रेयसी को ऋणमुक्त कराने के लिए यह सभी आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित होकर चोरी करने को प्रस्तुत हो जाता है।

चोरी करने को लोग बुरा मानते हैं किन्तु शर्विलक की दृष्टि में चोरी एक कला है, एक विशिष्ट गुण है। लोग इसे इसलिए बुरा मानते हैं कि लोगों के सो जाने पर उन्हें विश्वास में डालकर उनके साथ धोखाधड़ी की जाती है और इसीलिए उसे वीरता नहीं माना जा सकता। किन्तु, ठीक इसके विपरीत शर्विलक को चोरी में गुण दिखलाई पड़ते हैं। यह कार्य निन्दनीय हो सकता है पर, इसे अपनी आजीविका का साधन बनाने वाला व्यक्ति किसी की नौकरी तो नहीं करता। अपने नियोक्ता के सामने हाथ जोड़कर अपनी दीनता तो प्रदर्शित नहीं करनी पड़ती। फिर, ये चौर्यकर्म तो पुराणप्रसिद्ध भी है। आचार्य दोण के पुत्र अश्वत्थामा ने भी तो सेंध लगाकर ही पाण्डवों के प्रमुख पुत्रों की हत्या की थी। अगर यह कर्म बुरा होता तो अश्वत्थामा ही इसे क्यों करते ?—

कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्द्धते,
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः,
मार्गश्चैष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥

—मृ० ३। ११

यही कारण है कि शर्विलक नौकरी में हाथ जोड़े हुए पराधीन व्यक्ति की अपेक्षा तस्करी को आजीविका का स्वतन्त्र साधन बनाना उचित समझता है। व्यवहार के नियमन पालन में पराधीन अधिकरणिक (जज) की पराधीनता से वह पूर्णपरिचित है। वह शूर साहसी और प्रत्युत्पन्नमति है। वह किसी अवला पर किसी भी स्थिति में आक्रमण करना उचित नहीं मानता वह चोरी में भी कार्याकार्य का विचार करता है। उसमें गुणग्राहकता भी पर्याप्त मात्रा में है। मदनिका के समझाने पर चोरी करके लाये गये आभूषण भी तत्क्षण लौटा देने को प्रस्तुत हो जाता है। कठिन और विपरीत परिस्थिति में भी उसकी बुद्धि कभी कुण्ठित नहीं होती। चारुदत्त के घर सेंध लगाते समय उसे पता चलता है कि वह सेंध नापने वाला मानसूत्र भूल आया है। तब वह

घबड़ाता नहीं, उसे अपने यज्ञोपवीत की स्मृति आती है और उसकी अनेक उपयोगिता भी उसके जैसे चोर ब्राह्मण की दृष्टि में स्पष्ट हो जाती है। दीवाल पर सेंध काटने की जगह नापी जा सकती है; ताली लगे किवाड़ खोले जा सकते हैं, आभूषणों की घुण्डी छुड़ाये जा सकते हैं। सेंध लगाते समय साँप काट लेने पर जनेऊ से बाँधकर विष को ऊपर चढ़ने से रोका भी जा सकता है।

'एतेन मापयति भित्तिपु कर्ममार्गमेतेन मोचयति भूषण सम्प्रयोगान्।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनञ्च॥'

—मृ० ३।१६

शर्विलक मित्रवत्सल है। अपनी प्रेमिका मदनिका को वसन्तसेना के घर से मुक्त कराकर ज्यों ही वह बाहर निकलता है, उसे पता चलता है कि उसके प्रिय मित्र आर्यक को राजा पालक ने कैद कर लिया है। यह तुरन्त गाड़ी से नीचे उतर जाता है। प्रेयसी मदनिका को चेट के साथ रेभिल के र भेज देता है और स्वयं अपने मित्र आर्यक के उद्धार में जुट जाता है। वह न केवल अपने मित्र आर्यक को कारामुक्त ही कराता है प्रत्युत् अपनी कूटनीति से षडयन्त्र कर पालक की गद्दी पलट कर आर्यक को उस गद्दी पर अभिषिक्त करा देता है। और वही चोर शर्विलक दशम अंक में राजा आर्यक के प्रतिनिधि के रूप में सामाजिकों के सम्मुख उपस्थित होता है।

विदूषक—

विदूपक का नाम मैत्रेय है। यह जाति का ब्राह्मण तथा चारुदत्त का नर्मसचिव ही नहीं, घनिष्ठ मित्र भी है। संस्कृत के अन्य नाटकों की तरह मृच्छकटिक के विदूषक की सृष्टि केवल हास्योत्पादन के लिए ही नहीं है पर, हास्यसृष्टि भी इसके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। मैत्रेय मोदक खाने वाला केवल 'औदरिक' ब्राह्मण ही नहीं है, वह नायक चारुदत्त का एक सच्चा मित्र है, सुख-दुःख में साथ देने वाला एक अनन्य बन्धु। मैत्रेय पेटू ब्राह्मण होते हुए भी सुख में साथ देने वाला चारुदत्त का जैसा पक्का मित्र था वैसा ही उसकी दरिद्रता में भी साथ निभाने वाले सच्चा दोस्त है। चारुदत्त के शब्दों में वह उसका 'सार्वकालिक मित्र' है (अये, सर्वकालिक-मित्रं मैत्रेयः प्राप्तः)। चारुदत्त की गरीबी के कारण अब मैत्रेय को उसके यहाँ यथेच्छ वह भोजन नहीं मिलते, जिनसे वह पहले की तरह चौराहे के बैल जैसे जुगाली करता रहे; फिर भी चारुदत्त का वह ऐसा सच्चा मित्र है कि खाने पीने का जुगाड़ कहीं दूसरी जगह कर रात घोंसले की ओर लौटते कबूतर की तरह सोने के लिए चारुदत्त के घर आ जाता है। चारुदत्त के लिए कोई भी त्याग करने को वह प्रस्तुत है।

चारुदत्त की समृद्धि की वह सतत् कामना करता है। किसी भी स्थिति में वह चारुदत्त को दु:खी नहीं देखना चाहता है। वह रदनिका के अपमान की बात चारुदत्त के सामने इसलिए प्रकट नहीं होने देना चाहता है कि यह जानकर उसे मानसिक पीड़ा होगी। चारुदत्त की किसी भी तरह की वदनामी वह वर्दाश्त नहीं कर सकता था। दीपक जलाने के लिए उसके घर में तेल नहीं है—यह बात भी वह चारुदत्त के कान में ही कहता है। वह नहीं चाहता कि वसन्तसेना को चारुदत्त की दरिद्रता का थोड़ा भी आभास मिले। चारुदत्त उसे प्राणों से भी अधिक प्रिय है। उसके मरने पर वह स्वयं भी जीना नहीं चाहता है वह कट्टर धार्मिक नहीं है, देवी देवताओं की पूजा के प्रति उसकी यत्र-तत्र हल्की अनास्था प्रकट होती है। नैतिकता की अपेक्षा व्यावहारिकता में उसे विश्वास है। वसन्तसेना के चोरी गये अल्पमूल्य आभूषण के बदले धूता का बहूमूल्य रत्नहार वह नहीं देना चाहता है। 'वसन्तसेना चारुदत्त के घर आभूषण रक्खी ही नहीं' यह कहने में भी उसे हिचक नहीं होती है। वह भीतर से डरपोक है। वह अन्धेरे में अकेले चतुष्पथ पर जाने से इन्कार कर देता है। रदनिका को साथ लेकर ही वह बाहर निकलता है। रात में वसन्तसेना को भी उसके घर उसे अकेले छोड़ आने को वह प्रस्तुत नहीं होता। हाँ जब चारुदत्त उसे स्वयं पहुँचाने जाता है तो उसके साथ वह अवश्य चल देता है। स्वभाव से वह बड़ा ही विनोदी है। उसे मजाक खूब करना आता है। अपनी चेटी के साथ अभिसारिका वसन्तसेना जब चारुदत्त के घर रात में पहुँचती है तब सब कुछ जानते हुए भी बड़े मासूम ढंग से पूछता है—"देवी जी, इस घनघोर वर्षा में, अन्धेरी रात में भला आप किस लिए यहाँ पधारी हैं ?"

विदूषक थोड़ा वुद्धू भी है और क्रोधी भी—प्रथम अंक में रदनिका के अपमान से क्रुद्ध हो कर वह शकार और विट पर टूट पड़ता है। जब पैरों पर गिर कर विट गिड़गिड़ाता है तभी उसे मुक्ति मिलती है। कभी-कभी इस मूर्ख एवं अविवेकी क्रोध का दुष्परिणाम भी सामने आता है। नवम अंक में न्यायालय के दृश्य में वह शकार पर क्रुद्ध हो जाता है। परिस्थिति, परिवेश और स्थान का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। वह शकार से मार-पीट शुरू कर देता है। मार-पीट में उसकी वगल से वसन्तसेना के गहने वरामद होते ही चारुदत्त पर अभियोग सिद्ध हो जाता है और चारुदत्त को प्राणदण्ड दे दिया जाता है। वसन्तसेना को भी वह सन्दिग्ध दृष्टि से ही देखता है। यही है मैत्रेय का व्यक्तित्व।

भिक्षु—

शाक्यश्रमण होने के पूर्व भिक्षु संवाहक के रूप में सामाजिकों के सन्मुख उपस्थित होता है। यह दृढ़ प्रतिज्ञ, सत्याश्रयी, कर्मठ एवं धीर पुरुष

है। किसी भी विपरीत परिस्थिति में वह घबड़ाता नहीं है। द्वितीय अंक में वसन्तसेना के साथ वार्त्तालाप के क्रम में इसके व्यक्तित्व का परिचय हमें मिलता है। संवाहक पहले पाटलिपुत्र का एक सभ्य नागरिक था। भाग्य-विपर्यय से वह उज्जयिनी में आकर संवाहक का काम सीखकर चारुदत्त का नौकर बन जाता है। वह पुरुषार्थी है और भाग्य की चुनौती को अपनी कर्मठता के आवरण में छिपा देना चाहता है। किन्तु, दुर्भाग्य उसे यहाँ भी साथ नहीं छोड़ता। चारुदत्त के दरिद्र बन जाने पर वह अपनी आजीविका का साधन द्यूतक्रीडा को बना लेता है। एक जुआरी बनने में उसे आत्मग्लानी नहीं होती। पर, दुर्भाग्य उसे यहाँ भी चैन से नहीं रहने देता है। एक दिन जुए में वह दस मोहर हार जाता है, और माथुर को चुका नहीं पाता है, वह वहाँ से भाग जाता है। पर, माथुर और द्यूतकार उसका पीछा करते हैं। जान बचाने के लिए वह वसन्तसेना के घर में घुस जाता है। वसन्तसेना सोने का गहना देकर उसे छुड़ाती है। संवाहक को इससे बड़ी आत्मग्लानि होती है और उसी दिन प्रव्रज्या लेकर वह बौद्ध-भिक्षु बन जाता है। यही बौद्ध-भिक्षु अचेत वसन्तसेना को चैतन्य बना कर चारुदत्त से मिलाता है।

भिक्षु संवाहक एक पुरुषार्थी व्यक्ति है। विपत्ति में भी उसका पौरुष उसे साथ देता रहा है। वह अपनी देह बेचकर भी जुए में हारे रुपये लौटा देने को प्रस्तुत है। अब तक इस नैराश्य के गहन अन्धकार में भी उसकी आत्मा मरी नहीं है। वसन्तसेना के सामने भी वह जुए में हारकर भागने की बात सीधे-सीधे कबूल कर लेता है। यह उसके व्यक्तित्व की सच्चाई है। वह वसन्तसेना के सामने चारुदत्त की प्रशंसा करते अघाता नहीं है, यह उसके हृदय की गुणग्राहिता ही है। वह कृतघ्न नहीं है, वसन्तसेना द्वारा किये गये उपकार का बदला वह उसके सेवकों को संवाहनकला सीखा कर चुकाना चाहता है। वह अपने निश्चय में सर्वथा और सर्वत्र दृढ़ है। उसे अपने संकल्प कोई पीछे नहीं हटा सकता है। वसन्तसेना के लाख मना करने के बावजूद वह प्रव्रज्या ग्रहण कर ही लेता है। वह जिस सम्प्रदाय में दीक्षित हुआ है, बड़ी निष्ठा और कठोरता के साथ उसका पालन करना वह जानता है। जीर्णोद्यान में शकार अकारण इसे अपमानित करता है फिर भी इसे क्रोध छू तक नहीं जाता है। बौद्ध सम्प्रदाय में स्त्रियों का स्पर्श बिल्कुल वर्जित है। प्राणान्तिक कष्टकाल में भी वह इस नियम का पालन करना जानता है। मृतप्राया वसन्तसेना की परिचर्या यह करता है किन्तु, उसे हाथ का सहारा देकर उठा नहीं पाता है। प्रत्युत् पार्श्ववर्त्ती एक लता को झुका देता है और वसन्तसेना को उसका सहारा लेकर खड़ा हो जाने को कहता है। भिक्षु का व्यक्तित्व उन्हीं गुणों के बीच अतिव्यावहारिक एवं आकर्षक है।

धूता—

धूता चारुदत्त की विवाहिता पत्नी है। यह भारतीय पतिव्रता नारी का एक ज्वलन्त उदाहरण है। यह एक ऐसी आदर्श पत्नी है जिसे अपने पति या पति की प्रेमिका के प्रति कुछ भी शिकायत नहीं है। यह एक ऐसी हिन्दू पतिव्रता नारी है जो अपने पति की प्रसन्नता के लिए कठोर से कठोर यातना झेलने को भी तत्पर रहती है। अपने पति को कलंक से बचाने के लिए वसन्तसेना के अल्पमूल्य आभूषण के लिए अपनी एकमात्र अवशिष्ट सम्पति बहुमूल्य रत्नहार देने में उसे थोड़ी भी हिचक नहीं होती है। वह अपने पति में पूर्णतः समर्पित है। पति का सुख ही उसका सुख है और उसका दुःख ही दुःख है। अपने पति के शरीर और धन से भी अधिक उसे पति की कीर्त्ति प्यारी है। वह यह जानती है कि उसके घर में रक्खे वसन्तसेना के गहने चोरी चले गये हैं; नहीं लौटाने पर उसके पति की अपकीर्त्ति होगी और उसके मूल्य को चुकाने की क्षमता अब उसके पति में नहीं है। यही सोचकर वह अपना बहुमूल्य रत्नहार उसके आभूषण के बदले उसे भेजना चाहती है। किन्तु, अपने मन की बात वह किसी पर प्रकट नहीं होने देना चाहती है। क्योंकि उसे पता है, अगर यह बात चारुदत्त को पता चल जाय तो वह रत्नावली कभी स्वीकृत नहीं करेगा। क्योंकि वह उसके स्वभाव से, स्वाभिमान से, और उसके शील से परिचित थी। इसके अतिरिक्त ऋणमुक्ति का उसके पास कोई दूसरा साधन भी नहीं था। इसलिए धूता बिना कुछ कहे रत्नषष्ठी के दान के बहाने वह बहुमूल्य रत्नावली विदूषक के माध्यम से उसके पास भेज देना चाहती है। वह साधुचरित्रा पतिव्रता धूता लोभ-मोह, शून्य होकर अपने पतिपद की सच्ची अनुगामिनी है। शब्द के सच्चे अर्थ में सहधर्मिणी है। चोरी गए आभूषण जब वसन्तसेना को मिल जाते हैं, उसका गुप्तभेद भी जब प्रकट हो जाता है; तो वसन्तसेना वह बहुमूल्य रत्नहार धूता के पास लौटा देना चाहती है। पर उदारचरिता धूता उसे सीधे अस्वीकृत कर देती है। वह भावप्रवण एक समर्पित पत्नी थी। वह जानती थी कि जो पदार्थ पति ने अपनी प्रेयसी को दे दिया उसे वापस लेना उचित नहीं। उसे पति से इतना अधिक प्रेम है कि पति की मृत्यु का समाचार पाने के पूर्व ही वह चिता में जलकर अपने आपको समाप्त कर देना चाहती है। उसे अपने पातिव्रत के सामने पुत्रस्नेह भी फीका प्रतीत होता है। एक आदर्श भारतीय पतिव्रता की तरह सर्वतोभावेन वह अपना अस्तित्व की सत्ता में ही अनुभूत करती थी। पंचम अंक में वसन्तसेना रात भर उसी के घर में उसके पति के साथ रहती है। यह जानकर भी धूता के मन में कोई मलाल नहीं, किसी तरह की चिन्ता नहीं अथवा वसन्तसेना के प्रति कोई द्वेष नहीं। बल्कि इस रहस्य से अवगत होने के बाद वह अपने पति की चहेती के साथ सोदरा बहन

का सा व्यवहार करना उचित समझती है; और वैसा भी करती है। वह शरीर से जितनी अधिक सुन्दर है; विचार में उतनी ही अधिक शालीन; व्यवहार में उससे भी अधिक पटु एक आदर्श माँ और चतुर सद्गृहिणी है।

मदनिका—

मदनिका यद्यपि वसन्तसेना की क्रीतदासी है, फिर भी शील, विचार, चिन्तन एवं क्रिया की समरूपता के कारण वह उसकी प्रियवयस्या है। एक गणिका की गृहपरिचारिका होकर भी मदनिका के विचार विकृत नहीं हैं। अन्य रूपाजीवा की तरह उसमें न तो विच्छृंखल वासना है और न पुरुषान्तर में रमणेच्छा वह वसन्तसेना की तरह एकनिष्ठ प्रेम की कामना करती है। किसी सत्पुरुष की सद्गृहणी बनकर जीवनयापन करना चाहती है। वसन्तसेना का उस पर अगाध स्नेह ही नहीं, अनन्य विश्वास भी है। चारुदत्त-सम्बन्धी अपने गोपनीय प्रणय रहस्य भी वह मदनिका से बतला देती है और मदनिका उसके इस अनुष्ठान में हृदय से सहयोग भी करती है। मदनिका शर्विलक से प्रेम करती है किन्तु, शर्विलक दरिद्र है और मदनिका दासी। उसे दासीत्व से मुक्त कराने के लिए धन की आवश्यकता है। शर्विलक चारुदत्त के घर सेंध लगाकर धन की व्यवस्था कर लेता है। चोरी के आभूषणों के साथ शर्विलक जब उससे मिलकर उसकी मुक्ति की बात उससे कहता है तो उसे प्रसन्नता नहीं होती, प्रत्युत् आभूषण लौटा देने का सत्परामर्श उसे देती है। इससे उसके नारीत्व की विशेषता और व्यक्तित्व की गंभीरता स्पष्ट होती है। एक ओर उसके प्रणयनिवेदन दूसरी ओर कर्त्तव्यनिष्ठा। वह एक शूर, कर्मठ और स्वाभिमानी पुरुष की पत्नी बनकर रहना चाहती है। हृदय से वह साहसिक कार्यों की प्रशंसा करती है। वह वीर पत्नी बनना चाहती है। अतः पाणिग्रहण के पश्चात् वसन्तसेना के घर से बाहर निकलते ही शर्विलक को जब यह पता चला कि उसके मित्र आर्यक को राजा पालक ने बन्दी बनाकर कारागृह में डाल दिया है तो मदनिका को एक मित्र के सहारे छोड़कर स्वयं आर्यक की मुक्ति हेतु प्रस्थान कर देता है। मदनिका उसे रोकने की अपेक्षा अप्रमत्त होकर काम करने की प्रेरणा देती है। हाँ, अपने को गुरुजन के पास पहले पहुँचा देने की प्रार्थना अवश्य करती है। इससे पता चलता है कि वह एक परिष्कृत विचार की सुन्दर महिला है। वसन्तसेना के घर में ही मदनिका शर्विलक पर अपना विवाह पूर्व प्रेम प्रकट कर देती है; वसन्तसेना के घर में अन्त तक वह इस रहस्य को छिपाए रखती है और इसी रहस्य के सहारे उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ स्वतः अनकहे जुटती चली जाती हैं।

एतदतिरिक्त मृच्छकटिक के २७ पात्रों में अन्य छोटे-छोटे पात्र—जुआरिओं का सभिक, माथुर, दोनों रक्षक चेट, विट और रदनिका, रोहसेन

प्रभृति—अति प्रभावोत्पादक हैं आर्यक । चरित्र कअतिसूक्ष्म होते हुए भी अतिविशिष्ट है ।

मृच्छकटिक के चरित्र-चित्रण में संस्कृत के अन्य नाटकों की अपेक्षा एक अलग अपने ढंग की विलक्षणता है जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। इसीलिए रेडर ने मृच्छकटिक के पात्रों को सार्वदेशिक माना है। डॉ० कीथ रेडर के इस मत से सहमत नहीं है। उनकी दृष्टि में शकार, विदूषक और मदनिका जैसे पात्र जिन्हें रेडर ने Cosmopolitan (सार्वदेशिक) माना है ठीक वैसे नहीं जँचते। उन्हें मृच्छकटिक में सर्वत्र भारतीय जीवन के संघर्ष एवं इसी की ऊष्मा दीख पड़ती है। उनके अनुसार मृच्छकटिक के पात्रों की अपेक्षा कालिदास के पात्र अधिक सार्वदशिक है। इस आलोचना के बावजूद मृच्छ-कटिक के पात्रों में सार्वदेशिकता का अभाव नहीं है। हाँ, भवभूति के राम या माधव निश्चय ही शुद्ध भारतीय कहे जा सकते हैं, किन्तु 'मृच्छकटिक' के सभिक, माथुर, संस्थानक जैसे पात्र इंगलैण्ड हो या अमेरिका जर्मन हो या जापान, रूस हो या चीन—विश्व के किसी भी कोने में चलते-फिरते नजर आ सकते हैं। अतः डॉ० कीथ की अपेक्षा डॉ० रेडर की आलोचना अधिक सशक्त प्रतीत होती है। यह सच है कि मृच्छकटिक के सभी पात्र सार्वदेशिक नहीं हैं; फिर भी कुछ पात्र ऐसे अवश्य हैं जिनके दर्शन हमें वम्बई, कलकत्ता, मद्रास, पटना या टाटा के चौराहे पर आज भी हो जाते ही हैं और यही मृच्छकटिक के चरित्र-चित्रण की विशेषता है।

मृच्छकटिक की कथा

प्रथम अङ्क—

नान्दी पाठ के बाद प्रस्तावना प्रारम्भ होती है। अकस्मात् अपने घर में भोज का आयोजन देखकर सूत्रधार चकित हो जाता है। पूछने पर उसे नटी बतलाती है कि 'अभिरूपपति' नामक व्रत की समाप्ति के बाद ब्राह्मण-भोजन की वह तैयारी कर रही है। पहले तो यह सुनकर सूत्रधार झुंझला उठता है, फिर उसके समझाने पर किसी ब्राह्मण को निमन्त्रण देने के लिए घर से बाहर निकलता है। रास्ते में उसकी भेंट मैत्रेय से हो जाती है। साग्रह अनुरोध सिद्धान्न भोजन और प्रचुर दक्षिणा के प्रलोभन पर भी जव मैत्रेय भोजन करने से इनकार कर देता है तब अगत्या सूत्रधार, किसी अन्य ब्राह्मण की खोज में बाहर निकल जाता है और प्रस्तावना यहीं समाप्त हो जाती है।

प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में विदूषक चारुदत्त के मित्र चूर्णवृद्ध के द्वारा भेजा हुआ शाल लेकर आता है। चारुदत्त विदूषक को चौराहे पर मातृबलि अर्पित करने जाने को कहता है। विदूषक रात में अकेले चौराहे पर जाने से डरता है। चारुदत्त अपनी परिचारिका रदनिका को उसके साथ भेजता है।

प्रथम अङ्क के द्वितीय दृश्य में राजमार्ग पर वसन्तसेना का पीछा करते हुए शकार, विट और चेट प्रविष्ट होते हैं। शकार के कथन से वहीं वसन्तसेना को यह पता चल जाता है कि वह चारुदत्त के मकान के पास ही खड़ी है। शकार से बचने के लिए बड़े कौशल से वह चारुदत्त के घर में घुस जाती है।

इसी अङ्क के तृतीय दृश्य में रदनिका को लेकर मैत्रेय जब बाहर निकलता है, तो शकार रदनिका को ही वसन्तसेना समझ कर पकड़ लेता है। क्रुद्ध होकर मैत्रेय उसे मारने दौड़ता है। विट उसके पैरों पर गिरकर क्षमा माँग लेता है। कुछ वाद-विवाद के बाद शकार भी प्राण घातक धमकी देकर चेट के साथ लौट जाता है।

प्रथम अङ्क के चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त अंधेरे में चुपचाप खड़ी वसन्तसेना को रदनिका समझकर बालक रोहसेन को भीतर ले जाने को कहता है, किन्तु वसन्तसेना भीतर घुसने में हिचकिचाती है। इसी बीच मैत्रेय रदनिका के साथ प्रवेश करता है। तब चारुदत्त वसन्तसेना को पहचानता है। वसन्तसेना अपना आभूषण वहीं रख देती है, और चारुदत्त उसे घर तक छोड़ आता है। इस अङ्क में यह भी पता चल जाता है कि वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यान में चारुदत्त को देखकर उसके प्रति अनुरक्त हो गई थी।

द्वितीय अङ्क—

द्वितीय अंक के प्रथम दृश्य में मंच पर मदनिका के साथ वसन्तसेना उपस्थित होती है। चेटी के दुराग्रह के बावजूद वह अपने नित्यकर्म के लिए प्रस्तुत नहीं होती। मदनिका ने एकान्त में जब उदासी और उद्विग्नता का कारण पूछा तब उसके सामने उसने चारुदत्त सम्बन्धी अपना प्रेम व्यक्त कर दिया। चारुदत्त की गरीबी की ओर जब मदनिका ने संकेत किया तो उसका अनुराग कुछ और बढ़ गया।

द्वितीय अंक के द्वितीय दृश्य में एक विचित्र घटना घटती है। पाटलिपुत्र का एक सभ्य नांगरिक भाग्यविपर्यय से उज्जयिनी में आकर संवाहक का काम सीखकर चारुदत्त का सेवक बन जाता है। चारुदत्त के दरिद्र हो जाने पर, वह जुआरी बन जाता है। जुए में दस मोहर हार जाता है और माथुर को नहीं चुका पाता। माथुर और दर्दुरक में झगड़ा हो जाता है। दर्दुरक माथुर की आँखों में धूल झोंक देता है और अवसर का लाभ उठाकर संवाहक भाग निकलता है।

द्वितीय अंक के तृतीय दृश्य में माथुर और द्यूतकर की डर से भागा हुआ संवाहक वसन्तसेना के घर में घुस जाता है। द्यूतकर और माथुर उसका पीछा करते हुए वहाँ तक पहुँच जाते हैं। संवाहक चारुदत्त का पुराना नोकर है यह जानकर वसन्तसेना को बड़ी खुशी हुई। वसन्तसेना अपना सोने का

गहना उसे देकर संवाहक को छुड़ा लेती है। संवाहक को बड़ी आत्मग्लानि होती है और वह बौद्ध भिक्षु बन जाता है।

द्वितीय अङ्क के चतुर्थ दृश्य में उसी दिन वसन्तसेना का हाथी 'खण्डमोटक' छूट जाता है। रास्ते में वह एक शाक्य श्रमण को कुचलना ही चाहता था कि वसन्तसेना का चेट कर्णपूरक उसे बचा लेता है। पास में ही खड़ा चारुदत्त इससे प्रसन्न होकर कर्णपूरक को अपना दुशाला पुरस्कार में दे देता है। दुशाले को पहचान कर वसन्तसेना उसे ओढ़ लेती है और चारुदत्त को देखने के लिए अपनी अटारी की सबसे ऊँची छत पर चली जाती है।

तृतीय अङ्क—

तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में चारुदत्त का चेट मंच पर आता है। मध्यरात्रि का समय है। चारुदत्त घर नहीं लौटे हैं। अतः चेट चिन्ता व्यक्त करता है।

तृतीय अंक के द्वितीय दृश्य में चारुदत्त और मैत्रेय रेभिल के घर से संगीत सुनकर लौटते हैं। संगीत की प्रशंसा करते हैं और सो जाते हैं।

तृतीय अंक के तृतीय दृश्य में शर्विलक वसन्तसेना की दासी मदनिका को गुलामी से छुड़ाने के लिए चारुदत्त के घर सेंध लगाकर चोरी करता है। वसन्तसेना के धरोहर वाले गहने चुरा लिए जाते हैं।

तृतीय अंक के चतुर्थ दृश्य में रदनिका शोर मचाती है। चारुदत्त और विदूषक जगते हैं। विदूषक की मूर्खता से स्वर्णभाण्ड चोरी हो गया है, फिर भी चारुदत्त कुछ नहीं बोलता है। चारुदत्त की पतिव्रता भार्या धूता पति को कलंक से बचाने के लिए अपना एकमात्र बहुमूल्य रत्नहार भेजती है और उसे लेकर विदूषक वसन्तसेना के घर प्रस्थान करता है।

चतुर्थ अङ्क—

चतुर्थ अंक के प्रथम दृश्य में वसन्तसेना मदनिका के साथ चारुदत्त का चित्र देखती मंचपर उपस्थित होती है। इसी बीच एक चेटी ने वसन्तसेना को आकर बतलाया कि शकार की गाड़ी तुम्हें लेने को आई है। माँ की आज्ञा है तुम जाओ। यह सुनकर वसन्तसेना क्रुद्ध हो जाती है और वहाँ जाने से इन्कार कर देती है।

चतुर्थ अङ्क के द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना मदनिका को चारुदत्त का चित्र पलंग पर रखकर उसे पंखा लाने को भेजती है। इसी बीच शर्विलक चोरी के गहने लेकर वसन्तसेना के घर पहुँचता है। वसन्तसेना मदनिका और शर्विलक की बातों को छिपकर सुन लेती है। फलतः वसन्तसेना मदनिका को शर्विलक के हाथों में सौंप देती है।

चतुर्थ अङ्क के तृतीय दृश्य में शर्विलक राजा पालक के द्वारा आर्यक को

कैद किये जाने की घोषणा सुनता है। वह चेट के साथ मदनिका को सार्थवाह रेभिल के घर भेजकर स्वयं अपने मित्र को कारामुक्त कराने के लिए प्रस्थान करता है।

चतुर्थ अङ्क के चतुर्थ दृश्य में एक चेटी ने वसन्तसेना को यह सूचना दी है कि आर्य चारुदत्त के घर से एक ब्राह्मण आया है जो तुमसे मिलना चाहता है। वसन्तसेना प्रसन्न होकर उसे शीघ्र भीतर बुलवा लेती है। मैत्रेय ने बतलाया कि चारुदत्त उसके गहनों को जुए में हार गया है, इसलिए बदले में यह रत्नावली भेजी है। वसन्तसेना ने रत्नमाला लेकर मैत्रेय को यह कहकर बिदा कर दी कि वह स्वयं सायंकाल उससे मिलने आ रही है।

पञ्चम अङ्क—

पञ्चम अङ्क के प्रथम दृश्य में विदूषक ने लौटकर रत्नहार स्वीकृति की सूचना देते हुए यह बतला दिया आज सायंकाल वसन्तसेना स्वयं उससे मिलने आ रही है।

पञ्चम अङ्क द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना का चेट चारुदत्त के पास उपस्थित होकर वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है।

पञ्चम अङ्क के तृतीय दृश्य में वसन्तसेना विट को साथ लेकर चारुदत्त के प्रति अभिसरण करती है। चारुदत्त उसकी प्रतीक्षा करता है। बादल गरज रहे हैं, बिजली कड़क रही है, पानी से तरबतर वसन्तसेना चारुदत्त के पास पहुँच जाती है।

पञ्चम अङ्क के चतुर्थ दृश्य में चारुदत्त अपने घर पर वसन्तसेना का स्वागत करता है। विदूषक वसन्तसेना के आगमन का कारण पूछता है। वसन्तसेना की चेटी रत्नावली का मूल्य पूछती है और चोरी का रहस्य बतलाते हुए स्वर्णभाण्ड दिखाती है। वसन्तसेना उस रात वहीं रहती है।

षष्ठ अङ्क—

षष्ठ अङ्क के प्रथम दृश्य में चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में चला जाता है और जाते समय वसन्तसेना से वहीं मिलने को कहलवा जाता है। वसन्तसेना प्रसन्न हो जाती है। वह चेटी के हाथ रत्नावली धूता के पास भेजती है। धूता लेने से इन्कार करती हुई उसे वसन्तसेना के पास लौटा देती है।

षष्ठ अङ्क के द्वितीय दृश्य में रदनिका रोते हुए चारुदत्त के पुत्र को गोद में लिए हुए वसन्तसेना के पास आती है। वह उसे खेलने के लिए मिट्टी की गाड़ी देती है। वह सोने की गाड़ी के लिए रोता है। वसन्तसेना बच्चे को सोने की गाड़ी बनवाने के लिए अपने गहने उतार कर दे देती है।

षष्ठ अङ्क के तृतीय दृश्य में वसन्तसेना अपने लिए भेजी गई गाड़ी में न

बैठकर भूल से पास में खड़ी दूसरी गाड़ी में बैठ जाती है, जो शकार की है। इसी दृश्य में गोपालदारक आर्यक कैदखाने से भागकर आता है, वह चारुदत्त की खाली गाड़ी में बैठ जाता है। गाड़ीवान उसे वसन्तसेना समझकर गाड़ी हांक देता है।

षष्ठ अङ्क के चतुर्थ दृश्य में रास्ते में रक्षक चन्दनक और वीरक उस गाड़ी को देखना चाहते हैं। चन्दनक उसे देखने जाता है और पहचानकर अभय देता है। इधर वीरक भी गाड़ी को देखना चाहता है तो चन्दनक उससे झगड़ा कर बैठता है।

सप्तम अङ्क—

यह अङ्क बहुत छोटा है। चारुदत्त मैत्रेय के साथ वसन्तसेना के आगमन की प्रतीक्षा करते दिखलाई पड़ता है। इतने में गाड़ी आ जाती है। विदूषक पर्दा हटाकर भीतर झांकता है। वह चिल्लाकर किसी पुरुष के होने की सूचना देता है। चारुदत्त स्वयं देखता है। आर्यक उससे शरण माँगता है। चारुदत्त उसे अभयदान देता है और बन्धन कटवाकर उसे विदा कर देता है।

अष्टम अङ्क—

अष्टम अङ्क के प्रथम दृश्य में हाथ में भींगी चीवर लिए हुए एक भिक्षु प्रवेश करता है। उद्यान की पुष्करिणी में चीवर धोने तथा जन्म से ही प्रव्रजित न होने का अपराध लगाकर शकार भिक्षु को अकारण पीटता है। विट उसे बचाता है। संन्यासी मौका निकाल कर वहाँ से खिसक जाता है। शकार और विट स्थावरक चेट की प्रतीक्षा में वहीं रहते हैं।

अष्टम अङ्क के द्वितीय दृश्य में वसन्तसेना बैलगाड़ी से उद्यान में पहुँचती है। पर, वहाँ शकार को देखकर सहम जाती है। शकार बहाने बनाकर विट और चेट को वहाँ से अलग हटा देता है और स्वयं वसन्तसेना के प्रति प्रेम प्रदर्शित करता है। जब वसन्तसेना उसकी प्रणय प्रार्थना को ठुकरा देती है तब वह क्रुद्ध हो कर उसका गला दबा देता है। वसन्तसेना मूछित होकर गिर जाती है।

अष्टम अङ्क के तृतीय दृश्य में चेट के साथ विट शकार के पास पुनः उपस्थित होता है। विट ने जब शकार से वसन्तसेना के बारे में पूछा तब उसने वसन्तसेना की मूर्च्छित देह की ओर इंगित करते हुए कहा कि मैंने इसे मार डाला है। यह सुनकर विट को आन्तरिक पीड़ा हुई। वह वहाँ से शर्विलक की खोज में निकल गया। इधर शकार ने चेट को घर भेज दिया और वसन्तसेना की देह को पत्तों से ढँक कर छोड़ दिया। चारुदत्त के विरुद्ध वसन्तसेना की हत्या का आरोप लगाकर न्यायालय में मुकदमा करने के लिए स्वयं चला गया।

अष्टम अङ्क के चतुर्थ दृश्य में वहाँ एक भिक्षु प्रवेश करता है। यह भिक्षु वही संवाहक है जिसे वसन्तसेना ने सहायता की थी। वसन्तसेना को मृत जानकर वह उसके पास पहुँचता है, उसे होश में लाकर समीप के बिहार में ले जाता है।

नवम अङ्क—

नवम अङ्क में शकार कचहरी में जाकर चारुदत्त पर यह अभियोग लगाता है कि उसने वसन्तसेना को आभूषण के लिए मार डाला है। कचहरी में चारुदत्त का मामला पेश होता है। वसन्तसेना की माँ को बुलवाया जाता है, वीरक और अन्य अपेक्षित लोग उपस्थित होते हैं। इसी बीच विदूषक भी कचहरी में आ जाता है। उसका शकार से झगड़ा हो जाता है। मार-पीट में विदूषक की बगल से वसन्तसेना के गहने बरामद हो जाते हैं। प्रमाण मिल जाने पर चारुदत्त को फांसी का दण्ड दे दिया जाता है।

दशम अङ्क—

दशम अङ्क के प्रथम दृश्य में चाण्डाल चारुदत्त को फाँसी देने श्मशान की ओर ले जाते हैं। विदूषक चारुदत्त के पुत्र रोहसेन को वहाँ ले आता है। रोहसेन चाण्डालों से प्रार्थना करता है कि उसके पिता को छोड़ दें और उसकी जगह उसी का वध कर दें। शकार के महल से चिल्लाकर इसी बीच स्थावर ने कहा चारुदत्त नहीं वसन्तसेना का हत्यारा शकार है। पर, किसी ने यह न सुना। तब एक खिड़की से कूदकर स्थावरक ने लोगों से घिरे चण्डालों को वही बातें दुहरा दी। पर, चाण्डालों ने स्थावरक को वहाँ से खदेड़ दिया।

दशम अङ्क के द्वितीय दृश्य में भिक्षु वसन्तसेना को लेकर वध्य स्थल में उपस्थित हो जाता है। इनके पहुँचने के पूर्व चाण्डाल एक बार अपनी तलवार चारुदत्त पर चला चुका था। किन्तु, तलवार उसके हाथ से छिटक कर दूर जा गिरती है। वसन्तसेना को जीवित देखकर चाण्डाल चारुदत्त को छोड़कर राजा को समाचार देने चले जाते हैं। वसन्तसेना को उपस्थित देखकर शकार वहाँ से भाग खड़ा होता है।

दशम अङ्क के तृतीय दृश्य में राज्य में विप्लव होने की सूचना श्मशान में आकर शर्विलक ने दी। राजा पालक को मारकर आर्यक राजा बन जाता है। चारुदत्त को फाँसी से छुटकारा मिल जाता है। शकार को झूठे अभियोग के लिए फाँसी की सजा हो जाती है। इसी बीच कुछ लोग शकार को पकड़ कर वहाँ ले आते हैं। शकार चारुदत्त की शरण में आ जाता है। चारुदत्त उसे क्षमा दिलवा देता है।

दशम अङ्क के चतुर्थ दृश्य में चन्दनक आकर सूचना देता है कि चारुदत्त के वध की सूचना से सन्तप्त उसकी पत्नी धूता चिता में कूदकर प्राण त्याग कर

रही है। सभी लोग वहीं पहुँच जाते हैं। चारुदत्त को देखकर धूता प्रसन्न हो जाती है। धूता और वसन्तसेना एक दूसरे को आलिङ्गन करती हैं। चारुदत्त को राज्य मिलता है। वसन्तसेना को वधू का सम्मानित पद मिलता है। पृथ्वी के सारे विहारों का कुलपति भिक्षु (संवाहक) को बना दिया जाता है। स्थावरक को गुलामी से मुक्तकर स्वतंत्र नागरिक बना दिया जाता है। दोनों चाण्डाल चाण्डालों के अधिपति बन जाते हैं। चन्दनक को पृथ्वी दण्डपालक का पद मिलता है। शकार का अधिकार पूर्ववत् अक्षुण्ण बना रहने दिया जाता है। और भरतवाक्य के साथ प्रकरण समाप्त होता है।

उपसंहार

मृच्छकटिक के अध्ययन के पश्चात् स्वभावतः हमारे सामने एक साथ कई प्रश्न उपस्थित होते हैं। विक्रमोर्वशीय या मालतीमाधव की तुलना में मृच्छकटिक की क्या स्थिति है ? जीवन की ऊष्मा को या सामाजिक चेतना को अभिव्यक्त एवं परिष्कृत करने की दिशा में इस प्रकरण की उपलब्धि क्या है ? क्या नाटककार ने जीवन और जगत् की समस्याओं का साक्षात्कार कर उनके समाधान का प्रयत्न किया है ?

कालिदास या भवभूति की रचनाएँ कुछ भिन्न युग की प्रसूति हैं, अतः कालिदास या भवभूति की उपलब्धियों का प्रतिबिम्ब मृच्छकटिक में ढूँढ़ना ही अनुचित है। उन दोनों में जो ऋजुताएँ, ताजगी एवं एक स्वच्छ प्रवाह के दर्शन हमें होते हैं, जीवन के शाश्वत सत्यों की गहरी और व्यापक पकड़ जो हमें मिलती है उनमें वर्णित चरित्रों में हमें जो एक गरिमा या उदात्तता मिलती है उनकी खोज मृच्छकटिक में एक अनर्गल प्रयास के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

जीवन के चिरन्तन सत्यों को प्राञ्जलतापूर्वक प्रतिष्ठित करने का जो श्रेय कालिदास को दिया जा सकता है, विषयों के वैविध्य, छन्दों की बहुरूपता, अलङ्कारों के सौष्ठव, भाषा की कलात्मक सजावट या कल्पना की विच्छित्ति और सुकुमारता भवभूति में हम पाते हैं, वही सब मृच्छकटिक के आकर्षण के केन्द्र नहीं हो सकते। इनके नाटकों में अंकित चरित्रों की उदात्तता या वर्चस्विता के प्रकाश में 'मृच्छकटिकम्' के चरित्र निष्प्रभ प्रतीत होते हैं। कालिदास या भवभूति का टटकापन यहाँ अभिव्यञ्जना की परम्परा में वासीपन की गन्ध समेटे हैं, फिर भी इसकी अपनी कुछ अलग ढंग की विशेषताएँ हैं जो इस कृति को एकान्त यश का हकदार बना देती हैं।

जीवन की संघर्षशील ऊष्मा की सर्वाङ्गीण प्रतिभा का रचनात्मक व्यक्तित्व तथाकथित शूद्रक के बाद संस्कृत साहित्य में कोई दूसरा कवि उत्पन्न हुआ ही नहीं। इस कवि ने मृच्छकटिक का नवीन शैली से श्रृंगार अवश्य किया,

किन्तु, इस साजसज्जा की औपचारिक परम्परा के अभाव में वे संस्कृत नाटकों की नई दिशा के निर्देशक नहीं ठहराये जा सकते। इनसे पूर्व संस्कृत नाटकों के पात्र नाटककार के व्यक्तित्व की छाया मात्र थे। किन्तु, शूद्रक ने उन्हें स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया। शूद्रक ने अपने पात्रों के शील और स्वरूप निरूपण का प्रयास मृच्छकटिक में किया, संस्कृत नाटच साहित्य के लिए वह एक अभिनव वस्तु थी। इस दृष्टि से शूद्रक का ऐतिहासिक महत्त्व निश्चय ही अक्षुण्ण रहेगा। संस्कृत नाटक के प्रथम जीवन्त समस्या के पुरस्कर्त्ता के रूप में ख्यात रहेंगे।

मृच्छकटिक के लिए शूद्रक ने जिन घटनाओं की एक परिष्कृत सीमा तैयार की है उसका विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि शूद्रक की यह अमर प्रकरण-रचना 'मृच्छकटिकम्' प्राचीन नाटच, कला के लिए एकदम अछूता विषय नहीं रहा है। निर्धन युवा चारुदत्त और गायिका वसन्तसेना की रोमानी कथा पर रचित कई संस्कृत नाटक उपलब्ध हैं। चौथी शताब्दी में शूद्रक की इस नाटच-रचना के पूर्व दूसरी सदी में संस्कृत नाटककार भास ने 'दरिद्रचारुदत्त' लिखा था। ११ वीं शती में पुनः इसी कथा पर संस्कृत में नाटक लिखे गये और मंचित तथा चर्चित भी हुए। किन्तु, शूद्रक की विशेषता अपने आप में जीवन्त रही। इसके जीवन्त हास्य आम हास्य जैसा नहीं है, बल्कि पात्र के चरित्र, कथा के स्वरूप में स्वतः फूटता सा दिखलाई पड़ता है। इसी तरह प्रकरण के खलनायक शकार जब वसन्तसेना की हत्या करता है तो इसके पीछे है उसकी कुण्ठा, जो उसे वसन्तसेना के प्रेम में निराशा के रूप में मिलती है। लोगों का तिरस्कार, बढ़ता हुआ अकेलापन और इन सबसे उपजी कुण्ठा उसे हत्या जैसे जघन्य अपराध करने के लिए विवश करती है। मृच्छकटिक पर तो अब गिरीश कर्नाड़ के निर्देशन में 'उत्सव' नामक फिलम की रचना भी हो चुकी है।

तत्कालीन सामाजिक जीवन की पृष्ठभूमि पर शूद्रक ने बहुरंगी भारतीय संस्कृति के प्रभावोत्पादक चित्रों को उभार कर अंकित किया है। मृच्छकटिक में तात्कालिक सांस्कृतिक चित्रों में वर्त्तमान और भविष्य के लिए भी जीवन्त सन्देश है। विभिन्न विचारों का पारस्परिक संघर्ष तथा अवान्तर संस्कृतियों के वैषम्य को दिखलाते हुए भी वे मूलवर्त्ती भारतीय सांस्कृतिक धारा को सफल बनाये रखने में समर्थ दिखाई पड़ते हैं।

संस्कृत नाटकों में दुःखान्त नाटकों के लिए कोई स्थान नहीं है। शूद्रक ने भी इस परिपाटी का निर्वाह मृच्छकटिक में किया है। अतः मृच्छकटिक में आशावादिता का सन्देश सर्वत्र दिखाई पड़ेगा। नियतिवाद से अत्यधिक अभिभूत होने के कारण कवि आशावादिता को आधुनिक अर्थ के सन्दर्भ में ग्रहण

नहीं कर सका है, यह एक दूसरी बात है। मृच्छकटिक में नियतिवाद अपने पूरे उत्कर्ष पर है। सम्पूर्ण नाटक पर अवसाद की एक धुँधली परछाँई दिखाई पड़ती है। फिर भी, नाटक का पर्यवसान इस दृष्टि से आशामूलक है कि चारुदत्त ने अपनी प्रेयसी वसन्तसेना को वधू के रूप में प्राप्त कर लिया है।

शूद्रक ने चरित्र-निरूपण पर विशेष जोर देकर संस्कृत नाट्य साहित्य में अब तक चली आती हुई रस प्रधान नाटचधारा को एक जबरदस्त मोड़ दिया है। अनेक प्रकार की परिस्थितियों के बीच अपने पात्रों को खड़ा करके शूद्रक ने जिन अन्तर्द्वन्द्वों का मृच्छकटिक में विधान किया है, वे आधुनिक मनोविज्ञान के सर्वथा अनुकूल हैं। विरोधी विचारों वाले पात्रों की सृष्टि से संघर्ष की योजना में अधिक सहायता मिली है। चारुदत्त, शकार, वसन्तसेना, धूता भिन्न-भिन्न मनोदशाओं को व्यक्त करते हैं। इन सबों का चरित्र शूद्रक की काल्पनिक सृष्टि है। कवि का सशक्त व्यक्तित्व, दृढ़ इच्छाशक्ति, अदम्य उत्साह तथा प्राणवत्ता इन पात्रों के सर पर चढ़ कर बोलती है। नारी चरित्रों की द्विविध कल्पना के वे अद्भुत स्रष्टा थे। संस्कृत के अन्य नाटकों की तरह काव्यात्मक वातावरण का अभाव है। रंगमंच की दृष्टि से भी मृच्छकटिक अभिनेय नहीं है। घटना विस्तार, अंक और दृश्यों की भरमार और स्वगत कथन की अस्वाभाविकता आदि अनेक ऐसी बातें हैं जो अभिनेता के मार्ग में भयानक बाधा उपस्थित करती हैं। फिर भी इसकी लोकप्रियता अक्षुण्ण है।

विदुषां वशंवदः

डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र

मृच्छकटिकम्

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

सूत्रधार	प्रधान नट
चारुदत्त	दरिद्र द्विजसार्थवाह, नायक
मैत्रेय	चारुदत्त का मित्र, विदूषक
शकार	राजा पालक का श्यालक, प्रतिनायक
विट	शकार का सहचर
चेट	शकार का दास
वर्धमानक	चारुदत्त का दास
संवाहक	चारुदत्त का भूतपूर्व भृत्य, जूए में सर्वस्व खोकर निर्वेद से पश्चात् भिक्षु
माथुर	सभिक
द्यूतकर, दर्दुरक	जुआड़ी
कर्णपूरक	वसन्तसेना का भृत्य
शर्विलक	मदनिका का प्रेमी ब्राह्मण, चोर
चेट	वसन्तसेना का दास
बन्धुल	वेश्यापुत्र
कुम्भीलक चेट	वसन्तसेना का दास
विट	वसन्तसेना का परिचारक
रोहसेन	चारुदत्त का पुत्र
स्थावरक चेट	शकार का दास
आर्यक	गोपाल-बालक, राजा पालक का कैदी, पश्चात् राजा
वीरक	राजा पालक का सेनापति
चन्दनक	राजा पालक का बलपति
	(दोनो राजापालक के नगररक्षक हैं ।)
भिक्षु	बौद्ध-सन्यासी, पूर्व आश्रम का संवाहक
शोधनक	न्यायालय में काम करने वाला नौकर
अधिकरणिक	न्यायाधीश
श्रेष्ठी	नगर का प्रतिष्ठित पुरुष, न्याय करने में अधिकरणिक का सहायक
कायस्थ	न्यायालक का लेखक (पेशकार)
चाण्डाल	फाँसी देने वाले जल्लाद ।

स्त्री-पात्र

नटी	सूत्रधार की पत्नी
वसन्तसेना	गणिका, नायिका
रदनिका	चारुदत्त की दासी
चेटी	वसन्तसेना की दासी
मदनिका	दूसरी दासी, शर्विलक की प्रेयसी
धूता	चारुदत्त की भार्या
चेटी	वसन्तसेना की दासी
छत्रधारिणी	वसन्तसेना की दासी
चेटी	चारुदत्त की दासी
वृद्धा	वसन्तसेना की माता

॥ श्रीः ॥

महाकविशूद्रकविरचितं

मृच्छकटिकम्

'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

अथ प्रथमोऽङ्कः

पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानो-
रन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य ।
आत्मन्यात्मानमेव व्यपगतकरणं पश्यतस्तत्त्वदृष्टया
शम्भोर्वः पातु शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः ॥ १ ॥

❀ विमला ❀

संश्लिष्टशूद्रकगिरः रुचिरार्थभाने
भूयान्मनागपि नहि स्खलनं कदापि ।
इत्याकलय्य हृदि भारति सानुकम्पम्
निष्कम्पमर्पय पदं मतिमन्दिरे मे ॥

अन्वय :—पर्यङ्कग्रन्थिबन्धद्विगुणितभुजगाश्लेषसंवीतजानोः, अन्तःप्राणावरोधव्युपरतसकलज्ञानरुद्धेन्द्रियस्य, आत्मनि तत्त्वदृष्टया व्यपगतकरणं आत्मानमेव पश्यतः, शम्भोः शून्येक्षणघटितलयब्रह्मलग्नः समाधिः वः पातु ॥ १ ॥

अथ तत्रभवान् महाविद्वान् पदवाक्यप्रमाणविचक्षणः सत्काव्यनिर्माणायार्पितक्षणः शूद्रकनामा कविवरः साधुशब्दप्रयोगे 'एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः' इत्यादिश्रुत्या धर्मं संभावयन् 'मृच्छकटिका'भिधानं 'प्रकरणं' कर्तुकामो निर्विघ्नपूर्वकं प्रारिप्सितसमाप्तिफलकं नतिरूपं प्रकरणप्रयोज्यं नान्दीपाठात्मकं मङ्गलमाचरति—**पर्यङ्कमित्यादि ।** पर्यङ्कस्य=योगासनस्य यः ग्रन्थिः सन्धिस्थलः तस्य बन्धे=धारणे, द्विगुणितः=द्विगुणतांगतः, यः भुजगः=विषधरः, तस्य आश्लेषेण=परिवेष्ट-

पर्यङ्कासन लगाने में दुहरे साँप के लिपट जाने से जिनकी दोनों जाँघें स्वतः कस कर बँध गई हैं, प्राणादि वायु को देह के भीतर ही रोक लेने से जिनकी सारी इन्द्रियाँ बाहरी ज्ञान से विरत हो चुकी हैं तथा तत्त्वदृष्टि से जिन्होंने अपने आप में ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया है वैसे शिव की वह ब्रह्मलीन समाधि आप सबों की रक्षा करें ॥ १ ॥

नेन, संवीते=आबद्धे, जानुनी=जानुद्वयं यस्य तस्य बद्धपर्यङ्कासनस्येति भावः। अन्तः= देहाभ्यन्तरे, प्राणानाम्=प्राणापानसमानादिवायूनाम्, अवरोधेन=प्रतिबन्धेन, व्युपरतम्=निवृतम्, सकलम्=सम्पूर्णम्, ज्ञानम्=बाह्यविषयकावबोधः, येषां तानि, रुद्धानि =नियन्त्रितानि, इन्द्रियाणि=श्रवणादीनि यस्य तस्य। तत्त्वदृष्टया=यथार्थज्ञानेन। आत्मनि=स्वस्मिन्। व्यपगतानि=निःसृतानि, करणानि=इन्द्रियादीनि यस्मात्तम् वा, व्यपगतम्=विनष्टीभूतम्, करणम्=जननादिकम् यस्य तम्। आत्मानम्=शुद्धचैतन्यस्वरूपम्, चिद्रूपमेव। पश्यतः=भावयतः। जीवात्मपरमात्मनोरैक्यमाकलयत इति भावः। शम्भोः=शङ्करस्य। शून्यस्य=आकाररहितस्य, ईक्षणेन=दर्शनेन, घटितः= निष्पादितः, यः लयः=लीनता, तेन ब्रह्मणि=परब्रह्मणि, लग्नः=संबद्धः। समाधिः= तपः। वः=युष्मान्, सामाजिकान्। पातु=रक्षतु॥ स्रग्धरावृत्तम्, तल्लक्षणम् यथा— 'म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्त्तितेयम्'॥ १॥

विमर्श—परिगतः अङ्कम् अनया इति पर्यङ्कः (अव्य० स०)। पर्यङ्क समाधि अवस्था में योगी के बैठने की विशेष अंगस्थिति। कोषगत इसका अर्थ है—वीरासन, योगासन, पलंगप्रभृति। काले महाशय ने पर्यङ्क को वीरासन कहा है। किन्तु कोषगत अर्थसाम्यता के बावजूद पर्यङ्क एक पारिभाषिक शब्द होने के कारण वीरासन से भिन्न है। वसिष्ठ द्वारा दी गयी वीरासन की एक परिभाषा—

एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्योरौ तु संस्थितम्,
इतरस्मिंस्तथैवोरुम् वीरासनमुदाहृतम्॥

इस सन्दर्भ में शिवपुराण का भी एक श्लोक द्रष्टव्य है—

स्वस्तिकं पद्म मध्येन्दुं वीरं योगं प्रसाधितम्।
पर्यङ्कं च यथेष्टं च प्रोक्तमासनमष्टधा॥—शि० ७।२।३७।२०

शिवपुराण के इस श्लोक को देखते हुए निश्चयपूर्वक यह कहा जा सकता है कि पर्यङ्क वीरासन से भिन्न है। कुमारसंभव में कालिदास ने भी ३।४५, ५९ में 'पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायम्' का प्रयोग किया है। टीकाकार मल्लिनाथ ने पर्यङ्क की व्याख्या वीरासन के रूप में की है।

पर्यङ्कग्रन्थ+इन्। गाँठ। पिलथी लगाकर बैठने की एक प्रक्रिया।

संवीत–(भू० क० कृ०) (सम्+वृ+क्त) आच्छादित, अलंकृत या लिपटा हुआ। 'अन्तःज्ञान' का प्रयोग 'इन्द्रिय' के विशेषण अथवा 'रुद्ध' के लिए क्रियाविशेषण के रूप में भी हो सकता है। इसी तरह 'व्यपगतकरण' का प्रयोग आगे आत्मानं के लिए विशेषण के रूप में अथवा पश्यतः के लिए क्रियाविशेषण के रूप में है।

तत्त्वदृष्टया—(तन्+क्विप्, तुक्, पृषो० तत्+त्व) वास्तविक स्थिति, दृष्टया—(दृश्+क्तिन्, तृ० ए० व०) समीक्षण। तत्त्वदृष्टि विचार की एक चरमोत्कृष्ट स्थिति है जिसमें समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ आत्मलीन होकर परब्रह्म के साथ तदाकार हो जातीं हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् में इसके सम्बन्ध में लिखा गया है—"यद्वै तन्न

अपि च—

पातु वो नीलकण्ठस्य कण्ठः श्यामाम्बुदोपमः ।
गौरीभुजलता यत्र विद्युल्लेखेव राजते ॥ २ ॥

अपि च=अन्यच्च—

अन्वयः—यत्र, गौरीभुजलता, विद्युल्लेखा, इव राजते, (सः) श्यामाम्बुदोपमः, नीलकण्ठस्य, कण्ठः, वः, पातु ॥ २ ॥

पात्विति । यत्र=कण्ठे, गौरीभुजलता—गौर्याः=पार्वत्याः, भुजः=बाहुः एव लता=बल्ली । वेष्टनसाधर्म्यादत्र भुजे लतात्वारोपः । विद्युतः=तडितः, लेखा=पंक्तिः इव=यथा, राजते=शोभते । (सः) श्यामः=सलिलाधिक्यान्नीलवर्णः, अम्बुदः=वारिवाहः, एव उपमा=सादृश्यम् यस्य स श्यामाम्बुदोपमः । नीलकण्ठस्य=निपीत-गरलसम्पर्दात्, नीलवर्णः कण्ठो यस्य तस्य शिवस्य । कण्ठः=गलप्रदेशः, वः=युष्मान्, पातु=रक्षतु ॥ २ ॥

पश्यति पश्यन्वै तन्न पश्यति नहि द्रष्टुं दृष्टेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वात् । न तु तद्-द्वितीयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् (बृ० उ० ४।३) ।

शून्य-ईक्षणम्—शून्यस्य ईक्षणम्=(शूनायै प्राणिवधाय हितं रहस्यस्थानत्वात् यत्, ईक्षणम्=ईश्+ल्युट्) शून्य में देखना । यह निर्विकल्पक समाधि की स्थिति है । भूमा की एक सुखद अनुभूति है । इस समय मनुष्य न दूसरी वस्तु देखता है, न सुनता है, न तो जानता है वही भूमा है । 'यत्र नान्यत्पश्यति नान्यत् शृणोति नान्यत् विजानाति स भूमा ।' भूमा ही असली सुख है । छान्दोग्योपनिषद् में इसका उल्लेख है—"यो वै भूमा तत्सुखं नान्ये सुखमस्ति" । (७।२३।१।) इसमें द्रष्टा-दृश्य, श्रोता-श्रव्य, ज्ञाता-ज्ञेय का भाव मिट जाता है ।

सजल जलद की तरह विषपायी शिव का नीला कण्ठ, जिसमें गौरी की गोरी बाहें बिजली की तरह शोभती हैं; आप सबों की रक्षा करें ॥ २ ॥

विमर्श—मंगलाचरण का यह दूसरा श्लोक सचेष्ट कल्पना, सायास शब्द-संयोजन एवं ध्वनितत्त्वों के समावेश के कारण अत्युत्कृष्ट बन गया है । वस्तु, रस एवं अल-ङ्कारों का ऐसा समावेश किया गया है जिस कारण यह बत्तीस अक्षरों का पथ्यावक्त्र अर्थचमत्कार में ध्वनि-प्रतिध्वनियों से परिपूर्ण संगीत समारोह-सा आकर्षक हो उठा है । श्लोक की प्रथम पंक्ति में एक आदर्श देवता की आदर्श व्याख्या प्रस्तुत की गयी है जो नान्दी का एक आवश्यक तत्त्व माना जाता है । दूसरी पंक्ति में भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति व्यञ्जना की अनिवार्यता पर आरूढ़ है । श्लोक के चार शब्द 'कण्ठ' और 'भुजलता' तथा 'श्यामाम्बुद' एवं 'विद्युल्लेखा' अर्थच्छवि की दृष्टि से अधिक वेधक एवं मार्मिक हैं । पंचम अङ्क में कथाबीज का आभास हमें यहाँ ही मिल जाता है । "शिव के गले में गौरी की गोरी बाँह" से नायक चारुदत्त के प्रति नायिका वसन्तसेना का स्वाभाविक प्रेम प्रकट होता है । गौरी के द्वारा शिव के गले में बाँह

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—अलमनेन परिषत्कुतूहलविमर्दकारिणा परिश्रमेण। एवमहमार्यमिश्रान् प्रणिपत्य विज्ञापयामि, यदिदं वयं मृच्छकटिकं नाम प्रकरणं प्रयोक्तुं व्यवसिताः।

सूत्रधारः–अलमनेन–अनेन अलम् 'गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका' इति वचनात् इह साधनक्रियां प्रति अनेन करणम्। अनेनात्र साध्यं नास्तीति भावः। परिषीदन्तीति व्युत्पत्त्या परिषच्छब्दोऽत्र सभायां स्थितस्य जनस्य वाचकः। परिषदाम् =सभ्यानाम्, कुतूहलस्य=उत्सुकतायाः, विमर्दकारिणा=विनाशकेन, व्यवधानविधायिना वा, अनेन=नान्दीपाठादिरूपेण, परिश्रमेण=प्रयासेन, अलम्=व्यर्थमिति। एवम्=इत्थम्, अहम्=सूत्रधारः, आर्यमिश्रान्=आर्याश्च ते मिश्राः आर्यमिश्रास्तान् गौरवितानित्यर्थः। 'गौरवितास्त्वार्यमिश्रा' इति त्रिकाण्डशेषः। यद्वा—आर्येषु= कुलीनेषु आहोस्वित्—

डालने से गौरी की उत्कण्ठा की तरह स्वयं आगे बढ़कर नायिका वसन्तसेना की आसक्ति नायक चारुदत्त के प्रति अभिव्यक्त होती है। 'नीलाम्बुद' शब्द का प्रयोग मेघाच्छन्न दिन में वसन्तसेना का अभिसरण भी सूचित करता है। साथ ही श्वेत विद्युल्लेखा से वसन्तसेना का पवित्र प्रेम तथा श्याम नीलाम्बुद से सांसारिक शकार आदि की मलिनता भी अभिव्यक्त होती है।

प्रस्तुत श्लोक के 'नीलकण्ठस्य कण्ठः' में लाटानुप्रास है। 'श्यामाम्बुदोपमः' में आर्थी समासगतोपमालङ्कार है। 'भुज एव लता' में रूपक अलङ्कार है। 'विद्युल्लेखा इव' में उपमा अलङ्कार है। कुल मिलाकर इसमें संसृष्टि नामक अलङ्कार है। 'मिथोऽनपेक्षतयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते।'—साहित्यदर्पण। इसमें 'पथ्यावक्त्र' नामक छन्द है। इसका लक्षण—'युजोश्चतुर्थेनोजेन पथ्यावक्त्रं प्रकीर्त्तितम्'।

नन्दयतीति नन्दः, नन्द+अच्। नन्दः एव नान्द (स्वार्थे अण्); नान्द+ई नान्दी। नन्दन्ति देवता अस्याम् इति नान्दी तस्य अन्ते समाप्तौ इति नान्द्यन्ते।

नान्दी का लक्षण भरतमुनि के शब्दों में—

आशीर्वचनसंयुक्ताः स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥
यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा॥

अतः यहाँ पत्रावली नामक नान्दी है।

सूत्रधार—सभ्य जनों के नाटच दर्शन की उत्कण्ठा को भंग करने वाले इस नान्दीपाठ को बन्द करो, समादरणीय सभ्य जनों को प्रणाम कर मैं निवेदन करता हूँ कि हम लोग 'मृच्छकटिक' नामक इस प्रकरण का अभिनय करने के लिए सन्नद्ध हैं।

'कर्त्तव्यमाचरन्कर्म ह्यकर्त्तव्यमनाचरन् ।
तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य इति स्मृतः ॥'

इति स्मृत्युक्तलक्षणलक्षितेषु, मिश्राः = श्रेष्ठास्तान्, प्रणिपत्य = प्रणामं विधाय, विज्ञापयामि = आवेदयामि । वयम् = नटाः, मृच्छकटिकम्, मृदः = मृत्तिकायाः, शकटिका = चारुदत्तपुत्र-रोहसेनस्य क्रीडनार्थं षष्ठेऽङ्के वर्णितं मृत्तिकानिर्मितं क्षुद्र-शकटं यस्मिन्निति मृच्छकटिकम्, यद्वा; मृदः शकटम् मृच्छकटकम् अथ अस्तीति मृच्छ-कटिकम् 'अत इनिठनौ' (पा० ५।२।११५) इति ठन् । नाम = अन्वितार्थनामकं यदिदं, प्रकरणम्—

यत्र कविरात्मबुद्ध्या वस्तुशरीरं नायकं चैव।
औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद्बुधैर्ज्ञेयम् ॥'

इति भरतोक्तलक्षणलक्ष्यं रूपकविशेषम् । तत्प्रयोक्तुम् = अभिनयं कर्त्तुम्, व्यवसिताः = कृतनिश्चयाः ।

विमर्श—सूत्रधार— सूत्रं (कथासूत्रम्) धारयतीति, नटाध्यक्षः । सूत्र + धृञ् धारणे + अण् (कर्मण्यण्) । अर्थात् सम्पूर्ण कथासूत्र का सञ्चालन करने वाला । सूत्रधार का लक्षण इस प्रकार है—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

मृच्छकटिकः—प्राचीन ग्रन्थ 'नाटचदर्शन' पृ० ४८-५० एवं 'भावप्रकाशन' पृ० २४३ में इस प्रकरण का नाम 'मृच्छकटी' या 'मृच्छकटिका' के रूप में उल्लिखित है। किन्तु, अनेक पाण्डुलिपियों एवं अभिनव संस्करणों में 'मृच्छकटिक' ही लिखा है। यह नामकरण षष्ठ अंक की एक अतिसामान्य घटना पर अवलम्बित है। नायक चारुदत्त का पुत्र रोहसेन खिलौने की गाड़ी के लिए रो रहा था। दासी रदनिका उसे मिट्टी की गाडी से बहलाना चाह रही थी। पर वह पड़ोस में देखी हुई सोने की गाड़ी की तरह गाड़ी चाह रहा था। हारकर रदनिका उसे वसन्तसेना के घर खेलाने ले गई। वहाँ भी वह रो रहा था। रोने का कारण जानने पर वसन्तसेना ने सोने की गाड़ी बनवाने के लिए अपने सभी स्वर्णाभूषण उस मिट्टी की गाड़ी में रख दिये। इसी घटना पर आश्रित मृद् = मिट्टी, शकटिका = खिलौने की गाड़ी, मृच्छकटिक नाम रक्खा गया।

प्रकरणम्—मृच्छकटिक एक 'प्रकरण' है। प्रकरण का इतिवृत्त कल्पित तथा लोकसंश्रय होता है। इसका नायक मंत्री, ब्राह्मण या बनिये में से कोई एक हो सकता है। इसका नायक धीरप्रशान्त कोटि का होता है तथा विघ्नों से युक्त होता है। नायक धर्म, अर्थ तथा काम में तत्पर होता है—

'अथ प्रकरणे वृत्तमुत्पाद्यं लोकसंश्रयम् ।
अमात्य-विप्रवणिजामेकं कुर्याच्च नायकम् ॥

एतत्कविः किल—

द्विरदेन्द्रगतिश्चकोरनेत्रः परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहश्च ।
द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यगाधसत्त्वः ॥ ३ ॥

एतस्य=रूपकविशेषस्य, कविः=रचयिता ।

अन्वयः—द्विरदेन्द्रगतिः, चकोरनेत्रः, परिपूर्णेन्दुमुखः सुविग्रहः च, द्विजमुख्यतमः, अगाधसत्त्वः, शूद्रकः, प्रथितः, कविः, बभूव ॥ ३ ॥

द्विरदेन्द्रेति । द्वौ=उभौ, रदौ=दन्तौ यस्य सः द्विरदः=गजः, द्विरदेषु=गजेषु इन्द्रः=अधिपतिः, द्विरदेन्द्रस्य=गजपतेः, इव गतिः=गमनं यस्य सः मत्तगजराज इव मन्दगमनमिति भावः। चकोरः=प्रसिद्धपक्षिविशेषस्तस्य, नेत्रे=नयने इव, नेत्रे यस्य, अर्थात् चकोरसदृशसुखदनयन इत्यर्थः, परिपूर्णः=सकलकलासम्पन्नः, इन्दुः =सुधाकरस्तस्य मुखमिव मुखं यस्य सः सुधाकरसदृशसुन्दरवदनः । सु=सुष्ठु, विग्रहः =शरीरम् यस्य सः सुष्ठुकायः । द्विजमुख्यतमः—द्विजेषु=क्षत्रियेषु, मुख्यतमः=श्रेष्ठतमः, अगाधम्=विपुलम्, सत्त्वम्=बलं यस्यासौ, शूद्रकः=सूदते शत्रूनिति व्युत्पत्त्या शत्रुसूदनः इत्यन्वितार्थनामकः, प्रथितः=प्रसिद्धः, कविः=काव्यकलाकुशलः, बभूव= अभवत् ॥ ३ ॥

धीरप्रशान्तं सापायं धर्मकामार्थतत्परम् ।
शेषं नाटकवत् सन्धि-प्रवेशक-रसादिकम् ॥ दशरूपकम्, ३।३९-४० ।

मृच्छकटिक प्रकरण की कथा कल्पित है तथा लोकसंश्रय भी । इसका नायक चारुदत्त धीरप्रशान्त ब्राह्मण है । रस श्रृंगार है । इसमें शकार की दुष्टता के कारण कार्यसिद्धि विपदन्तर्हित है । इसकी नायिका गणिका वसन्तसेना है । इसका लक्षण—

'नायिका तु द्विधा नेतुः कुलस्त्री गणिका तथा ।'—दशरूपकम्, ३।४१.

निश्चय ही इसके रचयिता कवि—

गजराज की तरह मदमस्त गतिवाले, चकोर की तरह आकर्षक आँखों वाले, राकाचन्द्र की तरह मनोहर मुखवाले, सुगठित शरीरवाले, विपुलबलशाली क्षत्रियों में श्रेष्ठ शूद्रक नामक एक विख्यात कवि हुए ॥ ३ ॥

विमर्श—प्ररोचना—यहाँ से भारती वृत्ति का प्रथम अङ्ग प्ररोचना प्रारंभ होती है । कविप्रशस्ति द्वारा सामाजिकों को उसकी ओर उन्मुख करना, उनके मन को आकृष्ट करना प्ररोचना है । दशरूपककार के शब्दों में—

"उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना"

"प्रस्तुतार्थप्रशंसनेन श्रोतॄणां प्रवृत्युन्मुखीकरणं प्ररोचना ।" दशरू० ३।६

भरतमुनि ने प्ररोचना का लक्षण एवं प्रयोजन इस प्रकार बतलाया है—

"अथाभ्युदयिनी चैव मङ्गल्याविजयावहा ।
सर्वपापप्रशमनी पूर्वरङ्गे प्ररोचना ॥
उपक्षेपेण काव्यस्य हेतुयुक्तिसमाश्रया ।
सिद्धेनामन्त्रणा या तु विज्ञेया सा प्ररोचना ॥' (नाटचशास्त्र २०।२८-२९)

अपि च—

ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादात् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य ।

अपि च=अन्यच्च

अन्वयः—ऋग्वेदम्, सामवेदम्, गणितम्, अथ, कलाम्, वैशिकीम्, हस्तिशिक्षाम्, ज्ञात्वा, शर्वप्रसादात्, व्यपगततिमिरे, चक्षुषी, च, उपलभ्य, पुत्रम्, राजानाम्, वीक्ष्य, परमसमुदयेन, अश्वमेधेन, च, ईष्ट्वा, दशदिनसहितम्, शताब्दम्, आयुः, च, लब्ध्वा शूद्रकः, अग्निम्, प्रविष्टः ॥ ४ ॥

ऋग्वेदमिति । ऋग्वेदम्=ऋक्संहिताम्, सामवेदम्=चतुर्षु वेदेषु स्तुतिमंत्र-परकप्रधानवेदम्, गणितम्=गणना-विज्ञानम्, अथ=च, कलाम्=चतुःषष्ठिसंख्यकां

प्ररोचना की यह व्युत्पत्ति—'प्रकर्षेण रोच्यते उपादेयतया ध्रियते प्रकृतोऽर्थोऽनयेति प्ररोचना' ही प्ररोचना की प्रक्रिया का रहस्य स्पष्ट कर देती है और प्ररोचना का जो प्रकृत अर्थ है वह यह है—

''पूर्वरङ्गे गुणस्त्युत्या प्रस्तुतप्रबन्धार्थस्य प्रीत्यादिहेतुत्वप्रशंसनेन सामाजिकानां श्रवणावलोकनोत्साहोत्पादनम्' । (नाटचदर्पण)

द्विजमुख्यतमः—द्वाभ्यां जन्मसंस्काराभ्यां जायते इति द्विजः । अर्थात् हिन्दुओं के प्रथम तीन वर्णों में जिस पर पवित्रीकारक कृत्य या संस्कारों का अनुष्ठान किया जाता है, उसे द्विज कहा जाता है । 'जन्मना जायते शूद्रः, संकाराद्द्विज उच्यते ।' एतदतिरिक्त—'त्रयोवर्णाः द्विजातयः' के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य तीनों ही जातियाँ द्विजपदेन बोध्य हैं तो फिर यहाँ द्विजपदेन शूद्रक के लिए क्षत्रिय ही क्यों समझा जाय ? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया जा सकता है—इसी नाटक में आगे शूद्रक के लिए 'समरव्यसनी' 'क्षितिपाल' प्रभृति प्रयुक्त विशेषणों के आधार पर इन्हें क्षत्रिय मानना ही उचित होगा । एतदतिरिक्त दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरी कथा' के निम्नलिखित श्लोक से भी शूद्रक का क्षत्रियत्व प्रमाणित होता है—

शूद्रकेनासकृज्जित्वा स्वेच्छया खड्गधारया ।
जगद्भूयोभ्यवष्टब्धं वाचा स्वचरितार्थया ॥

इसकी प्रामाणिकता राजशेखर की उक्ति से भी सिद्ध होती है । यथा—

''तौ शूद्रककथाकारौ रम्यौ रामिलसोमिलौ ।' अतः शूद्रक क्षत्रिय थे । इस श्लोक में 'द्विरन्देन्द्रगतिः' 'चकोरनेत्र' 'परिपूर्णेन्दुमुखः' इन स्थलों में परस्पर निरपेक्षतया लुप्तोपमा अलंकार रहने के कारण संसृष्टि अलंकार है । इसमें मालभारिणी छन्द है । इसका लक्षण है—

''विषमे स-स-जा यदा गुरू चेत् स-भ-रा येन तु मालभारणीयम् ।''

ऋग्वेद, सामवेद, गणित, नृत्यगीतादिक चौंसठ कलाओं, व्यापार नियम एवं गजपालनादि विद्याओं में राजाशूद्रक पारङ्गत थे । भगवान् शङ्कर की परम कृपा से

राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः ।। ४ ।।

नृत्यगीतादिरूपां विद्याम्, वैशिकीम्=वेशः नेपथ्यग्रहणम् तत्सम्बन्धिनीम् नाटच-कलाम्, यद्वा—'वेशो वेश्याजनाश्रय' इति कोषात् वारवनिताविषयकविद्याम्, अथवा वैशो-वैशस्येयमितिव्युत्पत्त्या वैश्यजनसम्बन्धिनीम् कृषिवाणिज्यविद्याम्, यद्वा—वेशोऽग्निवेशो नामकश्चिन्नृपतिः तेन प्रणीतं कलाप्रतिपादकप्रबन्धरूपं कामशास्त्रम्, हस्तिशिक्षाम्=द्विरदचालनपालनकलाम्, ज्ञात्वा=गुरुमुखात्सम्यगधिगत्य, शर्वस्य=धूर्जटेः प्रसादात्=अनुग्रहात्, व्यपगतम्=दूरीभूतम्, तिमिरम्=अज्ञानान्धकारः ययोस्ते चक्षुषी=नयने, चं=पुनः, उपलभ्य=सम्प्राप्य, पुत्रम्=स्वतनयम्, राजानम्=राजसिंहासनासीनम्, वीक्ष्य=अवलोक्य, परमः=सर्वाधिकः, समुदयः=सम्यक् प्रकारेण उन्नतिः यस्मात् सः, यद्वा—परमः=परमोत्कृष्टः, समुदयः=ऐश्वर्यः यत्र तेन अश्वमेधेन=एतदाख्ययागविशेषेण, इष्ट्वा=यागं सम्पाद्य, दशदिनसहितम्=दश-दिनाधिकम्, शताब्दम्=शतवर्षपरिमितम्, आयुः=जीवनम्, च=पुनः, लब्ध्वा=प्राप्य, शूद्रकः=एतदाख्यनृपः, अग्निम्=वह्निम्, प्रविष्टः=स्वेच्छया निविष्टः ।।४।।

इन्हें दिव्यदृष्टि प्राप्त थीं । इन्होंने अश्वमेध यज्ञ भी किया था । अन्त में अपने पुत्र को राज्य देकर, दश दिनाधिक पूरी सौ साल की लम्बी आयु का उपभोगकर, इन्होंने अग्नि में प्रवेश किया था ।। ४ ।।

विमर्श—ऋग्वेद—चारों वेदों में ऋग्वेद सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अपौरुषेय ग्रन्थ है । वैदिक साहित्य में यह एक अनुपम धार्मिक ग्रन्थ माना जाता है ।

सामवेद—यह मन्त्रस्तुति परक एक वेद है। इसका सङ्कलन उद्गाता ऋत्विक् के निमित्त किया गया है । यज्ञ के अवसर पर जिस देवता के लिए होम किया जाता था, उसे बुलाने के लिए उद्गाता स्तुति मंत्र गाता था । अतः सामवेद ऋग्वेद पर ही आधारित है ।

वैशिकीम्—वेशेन जीवति, वेश+ठक्, वेश्याओं द्वारा अभ्यस्त । वेश, विश्+घञ्, वेश शब्द अनेकार्थक हैं । इसका एक अर्थ वेश्यालय (चकला) होता है, दूसरा अर्थ अग्निवेश द्वारा लिखित कामशास्त्र है । वेश का एक अर्थ नेपथ्य भी होता है ।

इष्ट्वा—यज्+क्त्वा अर्थात् यज्ञ समाप्त करके ।

लब्ध्वा चायुः शताब्दम्—यह उल्लेख विचित्र है। यहाँ प्रश्न उठता है किसी कवि को अपनी आयु की निश्चित अवधि कैसे मालूम हो सकती है कि उसकी मृत्यु कैसे और कब होगी ? इस उल्लेख से यह स्वतःसिद्ध होता है कि मृच्छकटिक के रचयिता शूद्रक नहीं थे । इस संदिग्ध स्थल पर, प्रो० कोनो, डॉ० पिशेल, डॉ० सिलवाँलेवी, डॉ० कीथ, डॉ० देवस्थली, प० चन्द्रवली पाण्डेय, श्रद्धेय कान्तानाथ शास्त्री तैलङ्ग प्रभृति अनेक विद्वानों ने विविध विचारधाराएँ अभिव्यक्त की हैं और अपने पक्ष में अनेक युक्ति प्रतियुक्तियाँ दी हैं । विशेष अध्ययन के लिए सन्दर्भ ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में स्रग्धरा वृत्त है ।

अपि च—

समरव्यसनी प्रमादशून्यः ककुदो वेदविदां तपोधनश्च ।
परवारणबाहुयुद्धलुब्धः क्षितिपालः किल शूद्रको बभूव ॥ ५ ॥

अस्याञ्च तत्कृतौ—

अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारुदत्तः ।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥ ६ ॥

अपि च=अन्यच्च—

अन्वयः—शूद्रकः, समरव्यसनी, प्रमादशून्यः, वेदविदाम्, ककुदः, तपोधनश्च, परवारणबाहुयुद्धलुब्धः, क्षितिपालः, किल, बभूव ॥ ५ ॥

समरेति । शूद्रकः=मृच्छकटिकाख्य-प्रकरणकर्त्ता कविः, समरव्यसनी=सततसमरोन्मादी, प्रमादशून्यः=अनवधानतारहितः, वेदविदाम्=श्रुत्यभिज्ञानाम्, ककुदः=प्रधानः, तपोधनः=तपस्या एव धनं यस्यासौ, तपोनिधिः, च=पुनः, पारवारणबाहुयुद्धलुब्धः—परवारणैः—परेषाम्=अरीणाम्, वारणैः=गजैः सह बाहुयुद्धैः=मल्लयुद्धे, लुब्धः=अभिलापयुक्तः, किल=इति प्रसिद्धौ, बभूव=अभवत् । मालिनीवृत्तम् ॥ ५ ॥

अस्याम्=एतस्याम्, तत्कृतौ=कविकृतप्रकरणे—

अन्वयः—अवन्तिपुर्याम्, द्विजसार्थवाहः, दरिद्रः, युवा, चारुदत्तः, किल, यस्य, गुणानुरक्ता, वसन्तशोभा, इव वसन्तसेना, गणिका च ॥ ६ ॥

अवन्तीति । अवन्तिपुर्याम्=उज्जयिन्याम्, सार्थम्=वणिक्समूहम्, वहति=नयतीति सार्थवाहः 'वणिक्' 'सार्थो वणिक्समूहे स्यादपि सङ्घातमात्रके' इति मेदिनी । द्विजश्चासौ सार्थवाहश्चेति द्विजसार्थवाहो व्यापारसंलग्नविप्रः (पूर्वम्) किं वा द्विजानां=विप्रादीनाम्, सार्थम्=संघातम्, वहति=अन्नादिना पालयति इति द्विजसार्थवाहः (सम्प्रति) अथवा द्विजसार्थान् दानप्रियत्वात् सर्वथा चालयति स चासौ द्विजसार्थवाह इति, दरिद्रः=धनहीनः, युवा=तारुण्यमुपगतः, चारुदत्तः=एतदाख्यः प्रकरणनायकः, किल=निश्चयः, यस्य=युवाचारुदत्तस्य, गुणैः=सौन्दर्यादिभिः, अनुरक्ता=वशङ्गता, वसन्तस्य=कामसहचरस्य, शोभा=प्रभा इव वसन्तसेना=एतदाख्या

और भी—

युद्धकुशल, सदा सतर्क, वेदविदों के बीच अग्रगण्य, तपःपूत युद्धोन्मादी शत्रुहस्तियों से मल्लयुद्ध के लिए सतत अभिलाषी, शूद्रक नाम के राजा हुए ॥ ५ ॥

और उनकी इस रचना में—

उज्जयिनी में एक व्यापारी ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणों का पालक निर्धन युवक चारुदत्त रहता था । वसन्तश्री की तरह उसी नगरी की वसन्तसेना नामक अत्यन्त छविमयी गणिका इसके गुणों से आकर्षित थी ॥ ६ ॥

तयोरिदं सत्सुरतोत्सवाश्रयं, नयप्रचारं, व्यवहारदुष्टताम्।
खलस्वभावं भवितव्यतां तथा चकार सर्वं किल शूद्रको नृपः ॥७॥

(परिक्रम्यावलोक्य च) अये ! शून्येयमस्मत्सङ्गीतशाला, क्व नु गताः कुशीलवा भविष्यन्ति ? (विचिन्त्य) आं, ज्ञातम्।

शून्यमपुत्रस्य गृहं, चिरशून्यं नास्ति यस्य सन्मित्रम्।
मूर्खस्य दिशः शून्याः, सर्वं शून्यं दरिद्रस्य ॥ ८ ॥

काचित्, गणिका=वाराङ्गना, च=पुनः, आसीदिति शेषः। अस्मिन् श्लोके श्रौती-उपमालङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—'श्रौती यथेव वा शब्दाः।' अत्रोपेन्द्रवज्रावृत्तम्, तद्यथा—'उपेन्द्रवज्रा प्रथमे लघौ सा।' ॥ ६ ॥

अन्वयः—इदम्, तयोः, सत्सुरतोत्सवाश्रयम्, शूद्रकः, नृपः, नयप्रचारम्, व्यवहार-दुष्टताम्, खलस्वभावम्, तथा भवितव्यताम्, सर्वम्, किल, चकार ॥ ७ ॥

तयोरिति। इदम्=प्रकरणम्, तयोः=चारुदत्तवसन्तसेनयोः, सत्=उत्तम., यत् सुरतम्=कामकेलिस्तदेवोत्सवः=प्रमोदः स आश्रयः=अवलम्बनम् यस्य तत्। शूद्रकः=एतदाख्यः, नृपः=राजा, नयस्य=नीतेः, प्रचारम्=ख्यातिः, व्यवहार-दुष्टताम्—व्यवहारस्य=दुष्टाचारस्य, दुष्टताम्=दोषपूर्णताम्, अथवा—व्यवहारस्य =विवादनिर्णयस्य, दुष्टताम्=सदोषताम्, खलानाम्=शकारादीनाम् दुष्टानाम्, स्वभावम्=प्रकृतिम्, तथा=तेन प्रकारेण भवितव्यताम्=नियतिम्, सर्वम्=सकलम् किल=निश्चयः, चकार=प्रणिनाय। 'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ' इति लक्षणात् अस्मिन् श्लोके वंशस्थविलं वृत्तम्, स्वभावोक्ति अलङ्कारश्चेति ॥ ७ ॥

(परिक्रम्य=नटान्वेषणार्थं कियन्तं पादविन्यासं कृत्वा, अवलोक्य=परितः विलोक्य) अये=इदम् विषादसूचकमव्ययपदम् 'अये क्रोधे विषादे च' इति मेदिनी। इयम्=एषा पुरोदृश्यमाना, अस्मत् संगीतशाला=अस्माकम् अभिनयसभा, शून्या= दर्शकविहीनाः, कुशीलवाः=नटाः, 'नटाश्चारणाश्च कुशीलवाः' इत्यमरः। क्व= कुत्र, नु=इति वितर्के, गताः=भविष्यन्ति, आम्=इति स्वीकृतौ स्मरणे वा, 'आं स्मृतौ चावधारणे' इति विश्वकोषः। ज्ञातम्=स्मृतम्, पूर्वम् विस्मृतमधुना स्मर्यते।

अन्वयः—अपुत्रस्य, गृहम्, शून्यम्, यस्य, सन्मित्रम्, न, अस्ति, चिरशून्यम्, मूर्खस्य दिशः, शून्याः, दरिद्रस्य, सर्वम्, शून्यम् ॥ ८ ॥

राजा शूद्रक ने इस प्रकरण में चारुदत्त एवं वसन्तसेना के श्रेष्ठविलास पर आधारित नीति के आचरण, दुष्टों के व्यवहार, दुर्जनों के आचार एवं होनहार— इन सबों का समावेश किया है ॥ ७ ॥

(घूमकर और चारों ओर देखकर) अरे, हमारी संगीतशाला तो बिल्कुल खाली है। पता नहीं, अभिनेतागण कहाँ चले गये। **(कुछ सोचकर)** हाँ, समझ में बात आ गई।

पुत्रहीन व्यक्ति का घर सूना होता है। सच्चे मित्र के अभाव में सारा जीवन

कृतश्च सङ्गीतकं मया। अनेन चिरसङ्गीतोपासनेन ग्रीष्मसमये प्रचण्डदिनकरकिरणोच्छुष्कपुष्करबीजमिव प्रचलिततारके क्षुधा ममाक्षिणी खटखटायेते। तद् तावद् गृहिणीमाहूय पृच्छामि, अस्ति किञ्चित् प्रातराशो न वेति। एषोऽस्मि भोः ! कार्य्यवशात् प्रयोगवशाच्च प्राकृतभाषी संवृत्तः।

शून्यमिति। अपुत्रस्य=पुत्रविहीनस्य, गृहम्=सदनम्, शून्यम्=रिक्तम् (इव प्रतिभाति)। यस्य=पुरुषविशेषस्य, सन्मित्रम्=साधुसखा, न=नहि, अस्ति=वर्त्तते, तस्य निकेतनम् सत्यपि सर्वपदार्थे मित्राभावे, चिरशून्यम्=यावज्जीवनम् दुःखकरं भवति। मूर्खस्य=अज्ञस्य, दिशः=सर्वा आशाः, 'दिशस्तु ककुभः काष्ठाः आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः। सर्वविधज्ञानविरहेण निष्फलमनोरथत्वात् दुःखदा एवेति भावः। दरिद्रस्य=अकिञ्चनस्य तु, सर्वम्=अखिलञ्जगत्, शून्यम्=दुःखकरमिति भावः। अस्मिन् श्लोके प्रस्तुतस्य दरिद्रस्याप्रस्तुतस्यापुत्रादेः शून्यतारूपैकगुणनिर्देशाव् दीपकालङ्कारः। क्रमशः अपुत्रापेक्षया सन्मित्रे तदपेक्षया मूर्खे, तदपेक्षया च दरिद्रे शून्यताव्याप्तेराधिक्य-वर्णनात् उपमानापेक्षया उपमेयस्याधिक्ये व्यतिरेकालङ्कारः। दरिद्रस्य मदीया संगीतशाला शून्या इवेति अप्रस्तुतात् प्रस्तुतकार्यवर्णनात्, अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः। केचित्तु अपुत्रादेः गृहादिशून्यमिव दरिद्रस्य सर्वशून्यमिति बिम्बप्रतिबिम्बभावकल्पनायां निदर्शनाऽपि संभाव्यत इति। आर्यावृत्तम्, तल्लक्षणन्तु—

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या॥

कृतम्=विहितम्, च=पुनः, सङ्गीतकम्=नृत्यगीतादिकम्, 'नृत्यं गीतञ्च वाद्यञ्च त्रयं संगीतमुच्यते'—इति संगीतरत्नाकरः। मया=सूत्रधारेण। अनेन=पूर्वोक्तेन, चिरम्=बहुकालम्, संगीतस्य=गानादिकस्य, उपासनेन=आराधनेन तज्जन्याऽऽसेन, प्रचण्डस्य=प्रखरस्य, दिनकरस्य=दिवाकरस्य, किरणैः=रश्मिभिः तैः, उच्छुष्कम्=समुपजातशोषम्, पुष्करस्य=पद्मस्य, बीजम्, तदिव प्रचलिते=चाञ्चल्यमुपगते, तारके=कनीनिके, 'तारकाक्षः कनीनिका' इत्यमरः। तथाभूता क्षुधा=बुभुक्षा, मम=सूत्रधारस्य, अक्षिणी=नयने, खटखटायते=खटखटेत्यव्यक्तशब्दं कुरुतः। तद्यावत् गृहिणीम्=भार्याम्, आहूय=सम्बोध्य, पृच्छामि=जिज्ञासे, अस्ति किञ्चित्=किमपि, प्रातराशः=प्रातः अश्यते इति प्रातःकालीनभोजनम्, न वेति। एषोऽस्मि

शूना होता है। मूर्खों की सारी दिशाएँ शूनी होती हैं और दरिद्रों के लिए सारा संसार शूना होता है॥ ८॥

मैंने संगीत तो समाप्त कर लिया है। पर, भूख के कारण मेरा बुरा हाल है। ग्रीष्मकालीन सूर्य की प्रखर ज्वाला में झुलस कर खड़खड़ाते कमलगट्टे की तरह भूख के मारे मेरी आँखों की चंचल पुतलियाँ खटखटा रही हैं। चलूँ, घरवाली को बुलाकर ही पूछूं—कुछ नाश्ता वगैरह है कि नहीं। प्रयोग सरलता की दृष्टि से कारणवश मैं भी अब प्राकृत बोली ही बोलता है।

अविद अविद भोः.! चिरसंगीदोवासणेण सुक्खपोक्खरणालाइं विअ मे बुभुक्खाए मिलाणाइं अंगाइं। ता जाव गेहं गदुअ जाणामि, अत्थि किं पि कटुंबिणीए उबबादिदं ण वेत्ति। (परिक्रम्यावलोक्य च) एदं तं अम्हाणं गेहं, ता पविसामि। (प्रविश्यावलोक्य च) हीमाणहे! किं णु क्खु अम्हाणं गेहे अवरं विअ संबिहाणअं वट्टदि!! आआमितंडुलोदअप्पवाहा रच्छा, लोहकड़ाहपरिवत्तणकसणसारा किदिविसेसआ विअ जुअदो अहिचदरं सोहदि भूमी, सिणिद्धेण गंधेण उद्दीवती विअ अहिअं बाधेदि मं बुभुक्खा; ता किं पुव्वाज्जिदं णिहाणं उबबण्णं[1] भवे? आदु अहं ज्जेव बुभुक्खादो ओदणमअं जीअलोअं पेक्खामि!! णत्थि किल पादरासो अम्हाणं गेहे, पाणाच्चअं[2] बाधेदि मं बुभुक्खा, इध सव्वं णवं विअ संविहाणअं वट्ठदि, एक्का वण्णअं पीसेदि, अबरा सुमणाइं गुंफेदि। (विचिन्त्य) किं ण्णेदं? भोदु, कडुंबिणीं सद्दाविअ परमत्थं जाणिस्सं। (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अज्जे! इदो दाव।

[अविद अविद भोः! चिरसङ्गीतोपासनेन शुष्कपुष्करनालानीव मे बुभुक्षया म्लनानि अङ्गानि, तद् यावद् गृहं गत्वा जानामि, अस्ति किमपि कुटुम्बिन्या उपपादितं न वेति। इदं तदस्माकं गृहं, तत प्रविशामि। आश्चर्यम्! किं नु खलु अस्माकं गृहे अपरमिव

=एषाऽहमस्मीति। भोः=इति सामाजिकानाम् सम्बोधनम्। कार्यवशात्=नटचाः सह सम्भाषणरूपप्रयोजनपारतन्त्र्यात्, 'स्त्रीषु नाप्राकृतं वदेत्' इति नियमात् प्रयोगवशाच्च=नाटचप्रयोगस्य नियमाद्वा, प्राकृतभाषी=प्राकृतभाषावक्ता, संवृत्तः=संजातः।

अविद अविद=कष्टं कष्टं, भोः=इति सम्बोधने, चिरसंगीतोपासनेन=बहुकालपर्यन्तगीतनृत्यादिकरणप्रयासेन, शुष्कम्=विरसम्, यत् पुष्करम्=कमलम्, तस्य नालानि=दण्डानि, इव=यथा, मे=मम, बुभुक्षया=क्षुधया, अङ्गानि=शरीरावयवानि, म्लानानि=मलिनानि, तत् यावत्=यस्मात्, गृहम्=सदनम्, गत्वा=प्रविश्य, जानामि=पृच्छामि, कुटुम्बिन्या=भार्यया "भार्या जाया पुंभूम्नि दाराः स्यात्तु कुटुम्बिनी" इत्यमरः। उपपादितम्=सम्पादितम् किमपि भक्ष्यमस्ति न वेति भावः। (परिक्रम्य=कियन्ति पदानि गत्वा अवलोक्य च=दृष्ट्वा च) इदम्=पुरोवर्त्तिनम्, तावदस्माकम्=मदीयम्, गेहम्=सदनम्, तत्=तस्मात्, प्रविशामि=

हाय, हाय, बहुत देर तक नाचगान में लगे रहने के कारण भूख से तो मेरी हालत बिगड़ गई हैं। सूखी कमलडंडी की तरह अंग अंग ऐंठ कर मलिन हो गये हैं। तो चलूं घरवाली से ही पूछकर पता करूँ, कि उसने खाने के लिए कुछ बनाया भी है कि नहीं (**घूमकर और देखकर**) तो यही तो हमारा घर है। तो भींतर चलूं (**भीतर जाकर और देखकर**) हाय, घर में तो कुछ दूसरा ही आयोजन चल रहा

---

१. 'उब्बण्णं' इति पाठान्तरम्। उत्पन्नम् इति छाया।

२. 'पाणाधिअं' इति पाठान्तरम्। प्राणाधिकम् इति छाया।

संविधानकं वर्त्तते !! आयामितण्डुलोदकप्रवाहा रथ्या, लोहकटाहपरिवर्तनकृष्णसारा कृतविशेषका इव युवती अधिकतरं शोभते भूमिः, स्निग्धेन गन्धेन उद्दीप्यमानमेव अधिकं बाधते मां बुभुक्षा; तत् किं पूर्ववर्जितं निधानम् उपपन्नं भवेत् ? अथवा, अहमेव बुभुक्षात ओदनमयं जीवलोकं प्रेक्षे !! नास्ति किल प्रातराशोऽस्माकं गृहे, प्राणात्ययं बाधते मां बुभुक्षा; इह सर्वं नवमिव संविधानकं वर्त्तते; एका वर्णकं पिनष्टि, अपरा सुमनसो गुम्फति। किं नु इदम् ? भवतु, कुटुम्बिनीं शब्दाप्य परमार्थं ज्ञास्यामि। आर्ये ! इतस्तावत्।]

प्रवेशं करोमि (प्रविश्यावलोक्य च=प्रवेशङ्कृत्वा दृष्ट्वा च) आश्चर्यं=इत्याश्चर्य-सूचकम्, किं नु खलु अस्माकम्=मदीयम्, गेहे=सदने, अपरमिव=किञ्चिदन्यत् नवीनमिव, संविधानकम्=आयोजनम्, वर्त्तते=विधीयते। आयामितः=प्रतिदीर्घाः तण्डुलोदकानाम्=तण्डुलप्रक्षालनजलानाम्, प्रवाहाः=धाराः यस्यां तथाभूता रथ्या= प्रतोली, लौहस्य कटाहः=अयस्कनिर्मितकटाहः, तस्य परिवर्त्तनेन=इतस्ततः सञ्चालनेन, कृष्णसाराः=चित्रिताः अतएव कृतः=सम्पादितः, विशेषकः=तिलकः यया सा युवतिः=तरुणी, इव=यथा, अधिकतरं=विशेषतरम्, भूमिः=पृथ्वी, शोभते=विभाति, स्निग्धेन=रुचिकरेण, गन्धेन=सुगन्धिना, उदीप्यमाना=वृद्धि-ङ्गताः, इव=यथा, अधिकम्=विपुलम्, बाधते=पीडयति, माम् बुभुक्षा=भोजनेच्छा। पूर्वैः=पूर्वजैः, अर्जितम्=उपार्जितम्, निधानम्=संस्थापितम् धनम्, उपपन्नम्= प्राप्तम् भवेदिति। अथवा=वा, अहमेव=सूत्रधार एव, बुभुक्षातः जीवलोकम्= संसारम्, ओदनमयम्=सिद्धान्नमयम्, प्रेक्षे=अवलोकयामि। प्रातराशः=प्रभात-कालीनाल्पाहारम्, प्राणात्ययम्=प्राणघातकम्, क्रियाविशेषणम्, क्षुधा मां बाधते= दुःखाकरोति। इह=अत्र, सर्वम्=सकलम्, नवमिव=नूतनमिव, संविधानकम्= आयोजनम्, वर्त्तते=अस्ति। एका=काचित् स्त्री, वर्णकम्=कस्तूर्यादिकम् द्रव्यम्, पिनष्टि=चूर्णयति, अपरा=अन्या, सुमनसः=पुष्पाणि, गुम्फति=ग्रथ्नाति, किन्वि-दम्=आश्चर्यद्योतकमव्ययम्, इदम्=एतत्, (विचिन्त्य=चिन्तयित्वा) भवतु= यातु, कुटुम्बिनीम्=भार्याम्, शब्दाप्य=सम्बोध्य, परमार्थम्=याथार्थ्यम्, ज्ञास्यामि= वेत्स्यामि, आर्ये=सम्बोधनमिदम्, इतस्तावत्=इहागम्यतामिति।

है। चावल की धुलाई से निकले पानी से गली पट गई है। लोहे की कड़ाही की रगड़ से चितकबरी धरती बिन्दी लगाये युवती की तरह शोभ रही है। सोंधी सुगन्ध ने तो मेरी भूख और भड़का दी है। तो क्या बाप-दादे का गड़ा खजाना तो नहीं निकल आया है ? या कि भूख के मारे सारी दुनियाँ ही मुझे भात की तरह दीख रही है। हमारे घर में तो नाश्ता भी नहीं है और भूख के मारे मेरी जान निकली जा रही है और इधर नयी तैयारी चल रही है। कोई औरत मसाला पीस रही है तो कोई माला गूंथ रही है (**कुछ सोचकर**) तो यह कैसा आयोजन चल रहा है ? अच्छा तो घरवाली को बुलाकर ही क्यों न असलियत का पता कर लूं (**पर्दे की ओर देखकर**) अरी ओ आर्ये, जरा इधर तो आना।

नटी—(प्रविश्य) अज्ज ! इअं म्हि. [**आर्य ! इयमस्मि ।**]

सूत्रधारः—अज्जे ! साअदं दे । [**आर्ये ! स्वागतं ते ।**]

नटी—आणवेदु अज्जो, को णिओओ अणुचिट्ठीअदु त्ति ? [**आज्ञापयतु आर्यः, को नियोगोऽनुष्ठीयतामिति ?**]

सूत्रधारः—अज्जे ! चिरसंगीदोबासणेण—(इत्यादि पाठत्वा) अत्थि किं पि अम्हाणं गेहे असिदव्वं ण वेत्ति ? [**आर्ये । चिरसङ्गीतोपासनेन..., अस्ति किमपि अस्माकं गेहे अशितव्यं न वेति ?**]

नटी—अज्ज । सव्वं अस्थि । [**आर्य ! सर्वमस्ति ।**]

सूत्रधारः—किं किं अत्थि ? [**किं किमस्ति ?**]

नटी—तं जधा—गुडोदणं, घिअं, दहीं, तंडुलाइं, अज्जेण अत्तव्वं रसाअणं सव्वं अस्थि त्ति; एव्वं दे देवा आसासेदु । [**तद् यथा—गुडौदनं, घृतं, दधि, तण्डुलाः, आर्येण अत्तव्यं रसायनं सर्वमस्तीति; एवं ते देवा आशंसन्ताम् ।**]

नटी—(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा) आर्य=हे मान्य, इयम्=एषा, अस्मि=उपस्थिताऽस्मि ।

सूत्रधारः—आर्ये=भद्रे, स्वागतम्=शोभनमागमनम्, ते=तव ।

नटी—आज्ञापयतु=आदिशतु, आर्यः=श्रीमान्, कः=का, नियोगः=आज्ञा, मयाऽनुष्ठीयताम्=परिपाल्यताम्, इत्यार्यं निर्दिशतु ।

सूत्रधारः—आर्ये=भद्रे, अस्माकम्=सूत्रधारस्य, गृहे=सदने, अशितव्यम्=खाद्यम्, किमपि=भक्ष्यभोज्यादिपदार्थेषु एकमपि अस्ति न वेति प्रश्नाशयः ।

नटी—आर्य=प्रिय, सर्वम्=सकलखाद्यपदार्थम्, अस्ति=वर्त्तते ।

सूत्रधारः—किं किमस्ति=खाद्य-लेह्य-चोष्यान्यतमेषु किं किं वर्त्तते ।

नटी—तद्यथा—गुडौदनम्=गुडमिश्रितमोदनम्, घृतम्=सर्पिः, दधिस्तण्डुलाः=सिद्धान्नानि, आर्येण=भवता, अत्तव्यम्=भोक्तव्यम्, रसायनम्=सरसम्, पूर्वोक्तम् सकलभोज्यपदार्थं वर्त्तत इति भावः । एवम्=इत्थम्, ते=तव, देवाः=देवताः

नटी—(**मंच पर आकर**) आर्यपुत्र यह रही ।

सूत्रधार—आर्ये, तुम्हारा स्वागत है ।

नटी—प्रिय, आदेश तो दें, क्या सेवा करूँ ?

सूत्रधार—मान्ये, अधिक देर तक संगीत में—(**इत्यादि पूर्वोक्त कथन को दुहराते हुए**) हमारे घर में खाने के लिए कुछ है या नहीं ?

नटी—है क्या नहीं ? आर्य सब कुछ तो है ।

सूत्रधार—क्या क्या है ? बतलाओ न ?

नटी—शक्कर मिली खीर, घी, दही, भात क्या नहीं, आपके खाने योग्य सारी सरस चीजें, इनके सम्बन्ध में आपके देवगण बतलाते हैं ।

सूत्रधारः—किं अम्हाणं गेहे सव्वं अस्थि ? आदु परिहससि ? [**किम् ! अस्माकं गेहे सर्वमस्ति ? अथवा परिहससि ?**]

नटी—(स्वगतम्) परिहसिस्सं दाव । (प्रकाशम्) अज्ज अस्थि आवणे । [**परिहसिष्यामि तावत् । आर्य ! अस्ति आपणे ।**]

सूत्रधारः—(सक्रोधम्) आः, अणज्जे । एव्वं ते आसा छिज्जिस्सदि, अभावं अ गमिस्ससि, जं दाणिं अहं बरंडलंबुओ विअ दूरं उक्खिविअ पाडिदो । [**आः, अनार्ये ! एवं ते आशा छेत्स्यति, अभावञ्च गमिष्यसि, यदिदानीमहं वरण्डलम्बुक इव दूरमुत्क्षिप्य पातितः ।**]

आशासन्ताम्=प्रसादविषयीकुर्वन्तु । सन्देहोपपादिका व्यङ्ग्योक्तिरियम् । सन्देहप्रयोजकं तद्वाक्यं श्रुत्वा सूत्रधारः पृच्छति—

सूत्रधारः—किमित्याशङ्कायाम्, अस्माकं गेहे=मम गृहे, सर्वम्=पूर्वोक्तं सकलं पदार्थम्, अस्ति=वर्त्तते, अथवा=वा, परिहससि=परिहासं करोषि ?

नटी—(स्वगतम्=आत्मगतम्) परिहसिष्यामि=परिहासं करिष्यामि, तावदित्यवधारणे (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) अस्ति=वर्त्तते, आपणे=पण्यवीथ्यामिति ।

सूत्रधारः—(सक्रोधम्=सकोपम्) आः=इति कोपसूचकमव्ययपदम्, अनार्ये =दुष्टे, एवम्=अनेन प्रकारेण, ते=तव, आशा=अभिलाषा, छेत्स्यति=भग्ना भविष्यति, अभावञ्च गमिष्यसि=वाञ्छितवस्तूनां क्षयं प्राप्स्यसि, यत्=यस्मात् कारणात्, इदानीम्=अधुना, अहम्=सूत्रधारः, वरण्डलम्बुकः—वरण्डः=दीर्घकाष्ठं तस्य लम्बुकः=तत्प्रान्तनिबद्धः प्रस्तरः वा मृत्तिकाखण्डः (स्थूणः) स हि द्रोण्यां जलोद्धारार्थं दूरमुत्थाप्याधः पात्यते, अथवा गुटिकाविशेषः, दूरम्=अति उपरि, उत्क्षिप्य =उत्थाप्य, आशां दत्वेति भावः, पातितः=निपातितः, निराशः कृतः इति भावः ।

सूत्रधार—क्या ? ये सारी चीजें हमारे घर में मौजूद हैं या कि तुम मेरे साथ मजाक कर रही हो ?

नटी—(**अपने मन में**) तो मजाक ही करूँगी (**प्रकट**) आर्य, ये चीजें तो बाजार में हैं ।

विमर्श—अशितव्यम्—अश् धातु के परस्मैंपदी रूप अश्नातिपरक अश्+तव्यत् । 'ते देवाः आशसन्ताम्'—कहने का तात्पर्य यह है कि इस समय तो घर में ये पदार्थ नहीं हैं पर देवताओं की कृपा से भविष्य में हो सकते हैं । कहीं 'आशंसन्तु' यह पाठभेद है । इस पाठ के अनुसार आङ् उपसर्गक शंसु स्तुतौ धातु से लोट् लकार प्रथमपुरुष बहुवचन का यह रूप है । इसका अर्थ होगा आ समन्तात् शंसन्तु, अर्थात् इन वस्तुओं के लिए आप स्तुति करें ।

सूत्रधार—अरी अनार्ये, तुमने तो ढेंकली में बंधे लोदें की तरह मुझे काफी ऊपर उठाकर नीचे पटक दिया है । जा तेरी आशा भी इसी तरह भंग होगी और तुम्हारा नाश भी होगा ।

नटी—मरिसेदु मरिसेदु अज्जो; परिहासो क्खु मए किदो । [मृष्यतु मृष्यत्वार्यः, परिहासः खलु मया कृतः ।]

सूत्रधारः—ता किं उण इदं णवं विअ संविहाणअं वट्टदि ? एक्का वणअं पीसेदि, अवरा सुमणाओ गुंफेदि, इअं अ पंचवण्णकुसुमोवहारसोहिदा भूमी । [तत् किं पुनरिदं नवमिव संविधानकं वर्तते ? एका वर्णकं पिनष्टि, अपरा सुमनसो गुम्फति, इयञ्च पञ्चवर्णकुसुमोपहारशोभिता भूमिः ।]

नटी—अज्ज ! उववासो गाहिदो । [आर्य उपवासो गृहीतः]

सूत्रधारः—किं-णामहेओ अअं उववासो ? [किं नामधेयोऽयमुपवासः]

नटी—अहिरूअवदी णाम । [अभिरूपपतिर्नाम ।]

सूत्रधारः—अज्जे ! इहलोइओ, आदु पारलोइओ ? [आर्ये ! इहलौकिकः, अथवा पारलौकिकः ?]

नटी—अज्ज ! पारलोइओ । [आर्य ! पारलौकिकः ।]

नटी—मृष्यतु-मृष्यतु=क्षम्यताम्, परिहासः=उपहासः, खलु, मया=सूत्रधार-पत्न्या, कृतः ।

सूत्रधारः—तत्=तर्हि, किम्=किमर्थम्, संविधानकम्=आयोजनम्, वर्त्तते=अस्ति ? एका=नारीविशेषः, वर्णकम्=हरिद्रादिरञ्जकं द्रव्यम्, पिनष्टि=चूर्णयति, अन्या=काचिदपरा नारी, सुमनसः=पुष्पाणि, गुम्फति=ग्रथ्नाति, इयञ्च=अपरा च, पञ्चवर्णानाम्=नीलपीतरक्त-कृष्णश्वेतानाम्, कुसुमानाम्=पुष्पाणाम्, उपहारेण=समर्पणेन, शोभिता=अलंकृता ।

नटी—अभिरूपः=सुन्दरः अनुकूलो वा पतिः भर्त्ता यस्मात् तन्नामकं उपवासात्मकं व्रतमिति ।

सूत्रधारः—आर्ये=भद्रे, इहलौकिकः=इहलोके भव इति विग्रहे वर्त्तमानपतावेव सुन्दरताप्रयोजकः, वा=अथवा, पर लोके भव इत्यर्थे जन्मान्तरीयपत्यन्तरे सुन्दरता-सम्पादक इति तात्पर्यम् ।

नटी—आर्य=हे मान्य, पारलौकिकः=जन्मान्तरीयपतौ सुन्दरतासम्पादक इति ।

नटी—आर्य, आप प्रसन्न हों, मैंने तो केवल मजाक किया है ।

सूत्रधार—तो फिर यह तैयारी कैसी है ? एक मसाला पीस रही है तो दूसरी माला गूँथ रही है और यह धरती रंग विरंगे फूलों से सुशोभित हो रही है ?

नटी—स्वामिन्, मैंने उपवास किया है ।

सूत्रधार—कैसा उपवास ?

नटी—यह अनुरूप पति देने वाला व्रत है ।

सूत्रधार—भद्रे, इस लोक के लिए कि परलोक के लिए ?

नटी—आर्य, परलोक के लिए ही ।

सूत्रधारः—(सरोषम्) पेक्खंतु पेक्खंतु अज्जमिस्सा ! मइएण भच्चपरिव्वएण पारलोइओ भत्ता अण्णेसीअदि । [**प्रेक्षन्तां प्रेक्षन्ताम् आर्यमिश्राः ! मदीयेन भक्तपरिव्ययेन पारलौकिको भर्ता अन्विष्यते ।**]

नटी—अज्ज ! पसीद पसीद; तुमं ज्जेव मम जम्मंतरेवि भत्ता भविस्ससि त्ति उववसिदम्हि । [**आर्य ! प्रसीद प्रसीद । त्वमेव मम जन्मान्तरेऽपि भर्त्ता भविष्यसि इत्युपोषिताऽस्मि**]

सूत्रधारः—अअं उववासो केण दे उवदिट्ठो ? [**अयमुपवासः केन ते उपदिष्टः ?**]

नटी—अज्जस्स ज्जेव पिअवअस्सेण जूण्णबुड्ढेण । [**आर्यस्यैव प्रियवयस्येन चूर्णवृद्धेन ।**]

सूत्रधारः—(सकोपम्) आः दासीए पुत्रा जूण्णबुड्ढा ! कदा णु खु तुमं कुविदेण रण्णा पालएण णवबहूकेसकलावं विअ ससुअंधं कपिज्जन्तं पेक्खि-

---

सूत्रधारः—(सरोषम्=सक्रोधम्) प्रेक्षन्ताम्, आर्यमिश्राः=सभ्याः, मदीयेन भक्तपरिव्ययेन=सिद्धान्नवितरणेन, पारलौकिकः=जन्मान्तरीयः, भर्त्ता=पतिः, अन्विष्यते=मृग्यते ।

नटी—प्रसीद-प्रसीद=प्रसन्नो भव, अत्र आदरे द्विरुक्तिः । त्वमेव=भवानेव, मम=नटयाः, जन्मान्तरेऽपि=लोकान्तरेऽपि, भर्त्ता=स्वामी, भविष्यसि, इत्यभिलाषयोपवासः मया क्रियते ।

सूत्रधारः—अयम्=एषः, उपवासः=व्रतम्, केन=पुरुषविशेषेण, ते=तव, उपदिष्टः=प्रेरितः ।

नटी—आर्यस्यैव=श्रीमतः एव, न पुनर्मम, प्रियवयस्येन=अनन्यसुहृदा, चूर्णवृद्धेन=एतदाख्येन ।

सूत्रधारः—(सकोपम्=सक्रोधम्) आः=इत्याक्षेपद्योतकमव्ययम्, दास्याः पुत्र

सूत्रधार—(**क्रोधित होकर**) हे सभासदों, जरा देखिये तो, मेरे घर का आटा ढीलाकर परलोक के लिए पति खोजा जा रहा है ।

नटी—आर्य, आप तो नाहक रंज होते जा रहे हैं—मैं तो इसलिए व्रत कर रही हूँ कि अगले जन्म में भी आप ही मुझे पति रूप में मिलें ।

विमर्श—वरण्डलम्बुक—वरण्डलम्बुक शब्द का अर्थ सन्दिग्ध है । इसका अर्थ प्रतीत होता है ऊपर लटकती हुई या उभरी हुई दीवार जो यदि और ऊपर उठाई गई तो उसका लुढक जाना निश्चित है, यही बात सूत्रधार के विषय में है जिसकी आशाएँ अत्यन्त ऊची उठी किन्तु केवल निराशा में परिणत होने के लिए । जीवानन्द ने इसका अर्थ 'लोष्ठ' लिखा है ।

सूत्रधार—अच्छा, तो यह उपवास तुमको किसने बतलाया है ?

नटी—आपके ही प्रिय मित्र चूर्णवृद्ध ने ।

स्सम्। [**आः दास्याः पुत्र ! चूर्णवृद्ध ! कदा नु खलु त्वां कुपितेन राज्ञा पालकेन नववधूकेशकलापमिव ससुगन्धं छेद्यमानं प्रेक्षिष्ये !**]

नटी—पसीददु अज्जो ! अज्जस्स ज्जेव पारलोइओ अअं उववासो। (इति पादयोः पतति।) [**प्रसीदतु आर्यः। आर्यस्यैव पारलौकिकः अयमुपवासः।**]

सूत्रधारः—अज्जे ! उट्ठेहि, कधेहि एत्थ उववासे केण कज्जं ? [**आर्ये ! उत्तिष्ठ, कथय अत्र उपवासे केन कार्यम् ?**]

नटी—अम्हारिसजणजोग्गेण बम्हणेण उवणिमंतिदेण। [**अस्मादृशजनयोग्येन ब्राह्मणेन उपनिमन्त्रितेन।**]

सूत्रधारः—तेण हि गच्छदु अज्जा। अहं पि अम्हारिसजणजोग्गं बम्हणं उपणिमन्तेमि। [**तेन हि गच्छतु आर्या। अहमपि अस्मादृशजनयोग्यं ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयामि।**]

नटी—जं अज्जो आणवेदि। (इति निष्क्रान्ता)। [**यदार्य आज्ञापयति।**]

=सेविकायामुत्पन्नसुत ! चूर्णवृद्ध ! कुपितेन=क्रोधितेन, राज्ञा=सम्राजा, पालकेन=एतदाख्येन, नववध्वाः=नवयुवत्याः, केशकलापमिव=कुन्तलसमूहमिव, ससुगन्धम्=शोभनो गन्धो यस्य तम्, छेद्यमानम्=विदीर्यमानम्, प्रक्षिष्ये=अवलोकयिष्ये।

नटी—प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु, आर्यः=भद्रः। आर्यस्यैव=तवैव, पारलौकिकः=जन्मान्तरसौन्दर्यसम्पादकः, अयमुपवासः=एष व्रतः। (इति=इत्थम् उक्त्वा पादयोः=चरणयोः पतति)

सूत्रधारः—आर्ये=भद्रे, उत्तिष्ठ। कथय=वद, अत्र=अस्मिन्, उपवासे=व्रते, केन=कीदृशेन जनेन, कार्यम्=प्रयोजनम् ?

नटी—अस्मादृशंस्य=अकिञ्चनस्य, जनस्य=लोकस्य, योग्येन=अनुरूपेण, ब्राह्मणेन=द्विजेन, उपनिमन्त्रितेन=भोजनार्थमाहूतेन, कार्यं वर्त्तत इति शेषः।

सूत्रधारः—तेन=भोजनसामग्रयाः सज्जीकरणाय, आर्या गच्छतु=यातु, अहमपि=सूत्रधारोऽपि, अस्मादृशजनयोग्यम्=अकिञ्चनम्, ब्राह्मणम्=द्विजम्, उपनिमन्त्रयामि=भोजनार्थमानयामि।

सूत्रधार—(**गुस्साकर**) हाय रे दासीपुत्र, चूर्णवृद्ध, वह दिन कब आयेगा, जब राजा पालक गुस्साकर नववधू के सुगन्धपूरित केशपाश की तरह तुम्हें चीर डालेगा ?

नटी—आर्य, आप पहले प्रसन्न तो हों, यह व्रत तो आपके लिए ही किया जा रहा है (**पैरों पर गिरती है**)

सूत्रधार—उठो, उठो, आर्ये ! पहले तो यह बतलाओ, इस उपवास में करना क्या चाहिए ?

नटी—हमें अपने ही अनुरूप ब्राह्मण को सबसे पहले आमन्त्रित करना चाहिए।

सूत्रधार—अच्छा तो आर्ये, अब तुम अपना काम करो, मैं भी अपने ही अनुरूप ब्राह्मण को निमंत्रण दे आऊँ।

सूत्रधारः—(परिक्रम्य ।) हीमाणहे ! ता कधं मए एवं सुसमिद्धाए उज्जइणीए अम्हारिसजणजोग्गो बम्हणो अण्णेसिदव्वो । (विलोक्य) । एसो चारुदत्तस्स मित्तं मित्तेओ इदो ज्जेव आअच्छति भोदु, पुच्छिस्सं दाव । अज्ज मित्तेअ ! अम्हाणं गेहे असिदुं अग्गणी भोदु अज्जो ! [**आश्चर्यम्, तत् कथं मया एवं सुसमृद्धायामुज्जयिन्याम् अस्मादृशजनयोग्यो ब्राह्मणः अन्वेष्टव्यः । एष चारुदत्तस्य मित्रं मैत्रेय इत एव आगच्छति । भवतु, प्रक्ष्यामि तावत् । आर्य मैत्रेय ! अस्माकं गेहे अशितुमग्रणीर्भवतु आर्यः !**]

(नेपथ्ये) भोः ! अण्णं बम्हणं उवणिमंतेदु भवं । वावुदो दाणिं अहं । [**भोः ! अन्यं ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयतु भवान् ! व्यापृत इदानीमहम् ।**]

सूत्रधारः—अज्ज ! सम्पण्णं भोअणं णीसवत्तं अ । अवि अ दक्खिणा

नटी—यत्, आर्य=मान्य, आज्ञापयति=आदिशति । (इति निष्क्रान्ता=बहिर्गता)

सूत्रधारः—(परिक्रम्य=कियति पदं गत्वा) आश्चर्यम्=अद्भुतम्, तत्=तस्मात्, कथम्=केन प्रकारेण, मया=सूत्रधारेण, एवम्=इत्थम्, समृद्धायाम्=सम्पन्नायाम्, उज्जयिन्याम्=उज्जयिनीनगर्याम्, अस्मादृशस्य=अस्मद्योग्यस्य, जनस्य=लोकस्य, योग्येन=सदृशेन, उपनिमन्त्रितेन=भोजनार्थम् आहूतेन, ब्राह्मणेन=विप्रेण, अशितुम् अन्वेष्टव्यम् । (विलोक्य=दृष्ट्वा) एष, चारुदत्तस्य मित्रम्=सुहृत्, मैत्रेय, इत एव=अस्यामेव दिशि, आगच्छति=समायाति । भवतु=यातु, प्रक्षामि तावत्, अस्माकं गेहे=मम गृहे, अशितुम्=भोजनं कर्त्तुम्, अग्रणीः=अग्रगन्ता, भवतु ।

(नेपथ्ये=वेशरचनागृहे, 'अन्तर्जवनिकामाहुर्नेपथ्यम्' । केचित्तु—मेदिनीकारानुरोधेन नेपथ्यं रङ्गमित्यर्थमाहुः । अत्राश्चर्यशब्दस्यायमर्थः—अतिसमृद्धनगर्यामुज्जयिन्यां दरिद्रब्राह्मणोऽनुपलब्ध इति ।)

भोः=इति सम्बोधने, अन्यम्=अपरम्, ब्राह्मणम्=विप्रम्, उपनिमन्त्रयतु=भोजनार्थमामन्त्रयतु, भवान्=त्वम्, इदानीम्=अधुना, अहम्=मैत्रेयः, व्यापृतः=अतिव्यस्तः । तेनाहमत्र विलम्बितुं न समर्थोऽस्मि ।

सूत्रधारः—आर्य=हे मान्य, सम्पन्नम्=मृष्टपक्वादिसमृद्धभोजनम् प्रस्तुतम्,

---

नटी—जैसा आप कहें । (**कहकर चली जाती है ।**)

सूत्रधार—(**घूमकर**) यह तो बड़ा ही कठिन काम है, यह उज्जयिनी नगरी काफी समृद्ध है । इसमें अपने अनुरूप ब्राह्मण कैसे खोजूं ? (**देखकर**) अरे, यह चारुदत्त का मित्र मैत्रेय तो इधर ही आ रहा है । अच्छा तो इसी से क्यों न पूछूं । आर्य मैत्रेय आज आप मेरे ही घर पर, भोजन करने चलें ।

(**नेपथ्य में**) अरे आप अपनी जेवनार के लिए किसी और को न्योता दीजिए । मैं किसी दूसरे काम में उलझा हूँ ।

कावि दे भविस्सदि । [**आर्य ! सम्पन्नं भोजनं निःसपत्नञ्च । अपि च दक्षिणा कापि ते भविष्यति ।**]

(पुनर्नेपथ्ये) भोः यं दाणिं पढमं ज्जेव पच्चादिट्ठोसि, ता को दाणिं दे णिब्बंधो पदे पदे मं अणुबंधेदुम् । [**भोः ! यदिदानीं प्रथममेव प्रत्यादिष्टोऽसि, तत् क इदानीं ते निर्बन्धः पदे पदे मामनुबन्धुम् ।**]

सूत्रधारः—पच्चादिट्ठो ह्मि एदिणा । भोदु, अण्णं बम्हणं उवणिमंतेमि । (इति निष्क्रान्तः ।) [**प्रत्यादिष्टोऽस्मि एतेन । भवतु अन्यं ब्राह्मणमुपनिमन्त्रयामि ।**]

इति आमुखम् ।

नात्र विलम्बेन कार्यातिपातसम्भावनेति भावः । भोजनम्=भोज्यपदार्थम्, निःसपत्नम् निर्गताः सपत्नाः यस्य तत् निःसपत्नम्=भोजकान्तरविरहितम् । च=पुनः । अन्य-विप्रजनैः सह भोजनेऽतिकालसम्भावना मदीयसदने त्वां विना न कोप्यन्यः भोज-कोऽस्ति । तेन विलम्बसम्भावनाप्यलमेवेति भावः । निमन्त्रणस्वीकरणेऽभिलाषवर्द्धनार्थं वक्ति अपिच, दक्षिणा=भोजनान्तरं विप्रेभ्यो देयम् द्रव्यम्, कापि, ते=तव, भविष्यति ।

(पुनर्नेपथ्ये=पुनः वेशपरिग्रहस्थाने) भोः=इति सम्बोधने, यत्, इदानीम्=सम्प्रति, प्रथमम्=पूर्वम्, एव इति निश्चयार्थम्, प्रत्यादिष्टः=निराकृतः, 'प्रत्यादेशो निराकृतिः' इत्यमरः । असि । तत्=तस्मात् कारणात्, क=इति जिज्ञासायाम्, इदानीं=अधुना, ते=तव, निर्बन्धः=आग्रहः, पदे पदे=पौनःपुन्येन, माम्=मैत्रेयम्, अनुबन्धुम्=निमन्त्रयितुम् ।

सूत्रधारः—एतेन=मैत्रेयेण, प्रत्यादिष्टोऽस्मि=निराकृतोऽस्मि । भवतु=यातु, अन्यम्=इतरम्, ब्राह्मणम्=विप्रम्, उपनिमन्त्रयामि ।

इति आमुखम्=आ समन्तात् भावेन मुखम् आमुखम् । अत्रोच्यते—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा ।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा ॥—साहित्यदर्पण ६।३१,३२.

तथा च, विदूषकनटीमार्षैः व्यस्तैस्समस्तैर्वा सह सूत्रधारस्य रङ्गसूत्रणाकर्त्तुः

सूत्रधार—मान्यवर, हमारे यहाँ भोजन तैयार है; और किसी अन्य की प्रतीक्षा भी नहीं है । और आपको भोजन दक्षिणा भी तो मिलेगी ।

(**फिर नेपथ्य में**) अरे, जब एक बार आपका न्योता मैंने लौटा दिया तो फिर बार-बार, मुझे निमंत्रित करने का आप व्यर्थ प्रयास क्यों कर रहे हो ?

सूत्रधार—अच्छा, तो इन्होंने मेरा निमंत्रण स्वीकार नहीं किया तो चलूं, दूसरे ही ब्राह्मण को निमंत्रित करूँ । (**ऐसा कहकर बाहर चला जाता है**)

(**आमुख समाप्त**)

(प्रविश्य प्रावारहस्तो मैत्रेयः । 'अण्णं बम्हणम्' इति पूर्वोक्तं पठित्वा ।)

विदूषकः—अधवा मए वि मित्तेएण परस्स आमंतणआइं भक्खिदब्बाइं । हा अवत्थे ! तुलीअसि । जो णाम अहं तत्तभवदो चारुदत्तस्स रिद्धीए अहोरत्तं पअतणसिद्धेहिं उग्गारसुरहिगन्धेहि मोदकेहिं ज्जेव असिदो अब्भन्तरचदुस्सालदुआए उववट्ठो मल्लकसदपरिवुदो चित्तअरो विअ अङ्गुलीहिं छिविअ छिविअ अवणेमि णअरचत्तरवुसहो विअ रोमन्थाअमाणो चिट्ठामि, सो दाणिं अहं तस्स दलिद्दाए जहिं तहिं चरिअ गेहपारावदो विअ आवासणिमित्तं इध आअच्छामि । [**अथवा मयापि मैत्रेयेण परस्य आमन्त्रणकानि भक्षितव्यानि । हा अवस्थे ! तूलयसि । यो नामाहं तत्रभवतः चारुदत्तस्य ऋद्धया अहोरात्रं प्रयत्नसिद्धैः उद्‌गारसुरभिगन्धैः मोदकैरेव अशितः अभ्यन्तचतुःशालद्वारे उपविष्टः मल्लक-**

सूत्रधारगुणानुकारस्य वा नाटचार्थस्य स्थापना कर्त्तुः स्थापकस्य प्रस्तुतस्य काव्यार्थस्याक्षेपि उपस्थापकं भाषणं वक्रोक्तैः साक्षाद्विवक्षितार्थस्याऽप्रतिपादकैः स्पष्टोक्तैः साक्षाद्विवक्षितार्थप्रतिपादकैश्च यत् स्वस्याभिप्रायोत्कीर्तनं तदामुखम् ।"

—नाट्यदर्पण ३ विवेकः

अस्मिन्नाटके प्रयोगातिशयो नाम आमुखः वेदितव्यम् । तथाहि—

यदि प्रयोग एकस्मिन् प्रयोगोऽन्यः प्रयुज्यते ।
तेन पात्रप्रवेशश्चेत् प्रयोगातिशयस्तदा ॥ —सा० द० ६।३६.

तदानुकूल्येनात्र व्रतविषयकविचाररूपे प्रयोगे प्रस्तुते—एष चारुदत्तस्य मित्र मैत्रेयेत्यादि प्रयोगान्तरेण मैत्रेयरूपस्य पात्रस्य प्रवेशः । केचित्तु कथोद्घातस्य लक्षणमनुसृत्य कथोद्घातरूपा प्रस्तावना इत्याकलयन्ति ।

(प्रविश्य—प्रवेशङ्कृत्वा, प्रावारहस्तः=करधृतोत्तरीयः 'अण्णं बह्मणं' इति पठित्वा)

विदूषकः—प्रकारान्तरेण पक्षान्तरमाह—अथवेत्यादि—मयापि=चारुदत्तमित्रेणाऽपि, मैत्रेयेण=विदूषकेन, परस्य=चारुदत्तभिन्नस्य, आमन्त्रणकानि=निमन्त्रणे प्रस्तुतानि वस्तूनि, अत्र कुत्सितानि आमन्त्रणानीति विग्रहे 'कुत्सिते' इति कप्रत्यये कृते सति आमन्त्रणकम् । इति शब्दस्य सिद्धिः । भक्षितव्यानि=खादितव्यानि । 'हा' इति खेदे आक्रोशे वा, अवस्थे=दारिद्र्यदशे, तूलयसि=तूलङ्करोषि अर्थात् लघूकरोषि इत्यर्थः, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति तूलशब्दात् णिच् । यो नामाहम्, तत्रभवतः=श्रीमतः, चारुदत्तस्य=एतदाख्यनायकस्य, ऋद्धया=समृद्धया, अहोरात्रम्=

(हाथ में दुपट्टा लिए मैत्रेय (विदूषक) का प्रवेश 'किसी और को न्योता दो'—**इत्यादि पहले कहे गये वाक्य को दुहराता हुआ ।)**

विदूषक—अथवा, मुझ मैत्रेय को भी जिस किसी से न्योते पाने की उम्मीद रखनी चाहिए । हाय रे समय, तुमने मुझे रूई की तरह धुन के रख दिया है । जब श्रद्धेय चारुदत्त की सम्पन्नता थी, उसके घर चतुःशाला के दरवाजे पर रंगभरे अनेक सिकोड़ों से घिरे किसी चित्रकार की तरह अनेक भोज्य पदार्थों से भरे सैकड़ों

शतपरिवृतश्चित्रकर इव अङ्गुलीभिः स्पृष्ट्वा अपनयामि, नगरचत्वरवृषभ इव रोमन्थायमानस्तिष्ठामि। स इदानीमहं तस्य दरिद्रतया यस्मिन् तस्मिन् चरित्वा गेहपारावत इव आवासनिमित्तमत्र आगच्छामि।]

एसो अ अज्जचारुदत्तस्स पिअवअस्सेण चूणबुड्ढेण जादीकुसुमवासिदो पावारओ अणुप्पेसिदो सिद्धीकिददेवकज्जस्स अज्जचारुदत्तस्स उवणेदव्वो

दिवारात्रिम्, प्रयत्नसिद्धैः—प्रयत्नेन=परिश्रमेण, सिद्धैः=निष्पन्नैः, उद्गारसुरभिगन्धैः—उद्गारेषु=भुक्तपदार्थस्य ऊर्ध्वगामिवायुवशादुद्गमनेषु सुरभिः=सौरभसंयुक्तः गन्धः येषाम् तैः, मोदकैः=लड्डूकैः, अशितः=अशनेन तृप्तः, अभ्यन्तरचतुःशालद्वारे—अभ्यन्तरे=गृहान्तरे, यत् चतुःशालकम् तस्य द्वारे=सन्निहिते बहिर्भागे, उपविष्टः, मल्लकानाम्=पात्रविशेषाणाम् (विदूषकपक्षे—व्यञ्जनादिपूरितपात्राणाम्, चित्रकारपक्षे—वर्णिकापात्राणाम्) शतपरिवृतश्चित्रकरः—शतेन=शतसमूहेन, परिवृत्तः=परिव्याप्तः चित्रकरः=रङ्गाजीवः 'रङ्गाजीवश्चित्रकरः' इत्यमरः। इव=यथा अङ्गुलीभिः=कराग्रभागैः, स्पष्ट्वा स्पष्ट्वा=पौनःपुन्येन स्पर्शं विधाय, अपनयामि=त्यजामि अतितृप्तत्वात्, नगरचत्त्वरवृषभ इव—नगरस्य=पत्तनस्य यत् चत्वरम्=अङ्गनम्, 'अङ्गनम् चत्वराजिरे' इत्यमरः, तस्य वृषभ इव=वलीवर्दसदृशः। रोमन्थायमानः=उद्गीर्यचर्वणं कुर्वाणः तिष्ठामि। सः=असौ, इदानीम्=सम्प्रति, अहम्=मैत्रेयः, तस्य=चारुदत्तस्य, दरिद्रतया=अकिञ्चनतायां सत्याम्, यस्मिन् तस्मिन्=यत्र कुत्र, चरित्वा=भोजनं प्राप्य, गेहपारावत इव=गृहपालितकपोतवत्, आवासनिमित्तम्=शयनार्थम्, अत्र=तस्य गृहे, आगच्छामि=समागतोऽस्मि। अत्रायम्भावः—चित्रकारो यथा रङ्गपात्रेभ्यो अनेकविधान् रङ्गान् नीत्वा मिश्रितवर्णञ्च कृत्वा तानि तानि पात्राणि त्यजति तद्वदहमपि तस्य चारुदत्तस्य गृहे पुरा भोजनबाहुल्येनातितृप्तत्वात् व्यञ्जनानामाधिक्यात् केवलं स्पृष्ट्वा अर्थात् किञ्चिदास्वादं गृहीत्वा त्यजामिति। सोऽहमिदानीं तस्य दरिद्रतायां सत्यां यत्र कुत्राऽपि भोजनं गृहीत्वा निवासहेतुकमेव चारुदत्तगृहे समागच्छामि।

पत्रपुटों को केवल अंगुलियों से छू-छू कर ही मैं छोड़ देता था। नगरप्राङ्गण के अतिसंतुष्ट साँढ की तरह चुपचाप बैठा जुगाली करता रहता था। सुस्वादु एवं सुगन्धित यथेच्छ भोजन के बाद जब मैं डकारता था तो भीतर से निकली सुगन्ध से मनमस्त हो जाया करता था। वही मैं आज उसकी दरिद्रता के कारण गृहपालित कपोत की तरह जहाँ तहाँ दोनों जून जूठन गिराने की जुगुत बैठाकर उसके द्वार पर केवल रहने के लिए ही जाता हूँ।

विमर्श—मल्लक—मल्ल+कन्, मल्ल्+ण्वुल् वा। दीवट या प्याला। जिस प्रकार कोई रंगसाज अपने चित्रफलक पर बूँद गिरने के भय से ब्रश को रंग में जरा सा छूआता है उसी प्रकार मैत्रेय व्यंजन पुटों को अंगुलियों से चखचख कर छोड़ देता था।

त्ति । ता जाव अज्जचारुदत्तं पेक्खामि । (परिक्रम्य अवलोक्य च) एसो चारुदत्तो सिद्धीकिददेवकज्जो गिहदेवताणं बलिं हरेन्तो इदो ज्जेव आअच्छदि ।
[**एष च आर्यचारुदत्तस्य प्रियवयस्येन चूर्णवृद्धेन जातीकुसुमवासितः प्रावारकः अनुप्रेषितः सिद्धीकृतदेवकार्यस्य आर्यचारुदत्तस्य उपनेतव्य इति । तद् यावदार्यचारुदत्तं प्रेक्षे । एष चारुदत्तः सिद्धीकृतदेवकार्यो गृहदेवतानां बलिं हरन् इत एवागच्छति ।**]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टश्चारुदत्तो रदनिका च ।)

चारुदत्तः—(ऊर्ध्वमवलोक्य सनिर्वेदं निःश्वस्य)

यासां बलिः सपदि मद्गृहदेहलीनां
हंसैश्च सारसगणैश्च विलुप्तपूर्वः ।
तास्वेव सम्प्रति विरूढतृणाङ्कुरासु
बीजाञ्जलिः पतति कीटमुखावलीढः ॥ ९ ॥

एष च=अयं पुनः, आर्यचारुदत्तस्य, प्रियवयस्येन=प्रियमित्रेण, चूर्णवृद्धेन=एतन्नाम्ना, जातीकुसुमवासितः—जातीकुसुमैः=मालतीसुमनैः, वासितः=सुरभिकृतः, प्रावारकः=उत्तरीयवस्त्रम्, अनुप्रेषितः=प्रस्थापितः । सिद्धीकृतदेवकार्यस्य—सिद्धीकृतम्=सम्पादितम्, देवकार्यं=देवार्चनं येन, तस्य आर्यचारुदत्तस्य, उपनेतव्यः=दातव्यः, इति तद् यावत्=तर्हि, आर्यचारुदत्तम्, प्रेक्षे=अवलोकयामि । (परिक्रम्य, अवलोक्य=दृष्ट्वा च) एषः=अयम्, चारुदत्तः, सिद्धीकृतदेवकार्यः=सम्पादितदेवार्चनादिकम्, गृहदेवतानाम्, बलिम्=पूजाम्, 'बलिः पूजोपहारयोः' इत्यमरः । हरन्=ददत्, इत एव आगच्छति=अत्रैवागच्छति ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति, यथानिर्दिष्टः=गृहदेवताभ्यो बलिमुपहरन्, चारुदत्तः, रदनिका=तस्य दासी च)

चारुदत्तः—(ऊर्ध्वम्=उपरि, अवलोक्य=दृष्ट्वा, सनिर्वेदम्=दारिद्र्यजनितदुःखेन सहितम्, निःश्वस्य)

अन्वयः—यासाम्, मद्गृहदेहलीनाम्, बलिः, सपदि, हंसैः, च, सारसगणैः, च, विलुप्तपूर्वः, सम्प्रति, विरुढतृणाङ्कुरासु, तासु, एव, कीटमुखावलीढः, बीजाञ्जलिः, पतति ।

आर्य चारुदत्त के प्रियमित्र चूर्णवृद्ध ने चमेली के फूलों से सुवासित इस दुपट्टे को मेरे पास भेजा है । उसने कहा है कि देवकार्य सम्पादित करने वाले आर्य चारुदत्त को इसे मैं दे दूँ । अतः मैं उन्हें खोजूं । (**घूमकर और देखकर**) अरे श्रद्धेय चारुदत्त तो इधर ही आ रहे हैं, वे देवकार्य सम्पादित कर, गृहदेवों की पूजा करते हुए आगे बढ़ रहे हैं ।

(**इसके बाद यथानिर्दिष्ट स्थान पर रदनिका के साथ चारुदत्त का प्रवेश**)

चारुदत्त—(**दुःखी मन से निःश्वास छोड़ते हुए ऊपर की ओर देखकर**) मेरे घर की जिन देहलियों पर रक्खे गए पूजा अक्षत पहले हंस और सारसों के आहार बनते

(इति मन्दं मन्दं परिक्रम्योपविशति)

विदूषकः—एसो अज्जचारुदत्तो । ता जाव संपदं उवसप्पामि (उपसृत्य ।) सोत्थि भवदे । वड्ढदु भवं । [**एष आर्यचारुदत्तः । तद्यावत् साम्प्रतमुपसर्पामि । स्वस्ति भवते । वर्द्धतां भवान् ।**]

चारुदत्तः—अये ! सर्वकालिमित्रं मैत्रेयः प्राप्तः । सखे ! स्वागतम्, आस्यताम् ।

यासामिति—यासाम्=येषाम्, मद्गृहदेहलीनाम्—मम=चारुदत्तस्य गृहाणि=भवनानि इति मद्गृहाणि तेषाम् या देहल्यः=द्वारपीठिकाः, बहिर्द्वारस्य काष्ठखण्ड विशेषाः, 'गृहावग्रहणी देहली' इत्यमरः । तासामिति, बलिः=पूजाप्रयुक्त-अक्षतादि-द्रव्यम्, सपदि=झटिति, हंसैः=मरालैः, च=पुनः, सारसानाम्=पक्षिविशेषाणाम्, गणैः=समूहैः, पूर्वम् विलुप्तः=भक्षितः इति विलुप्तपूर्वः, सम्प्रति=इदानीम्, मम दारिद्र्यकाले इत्यर्थः, विरूढाः=संस्काराभावात् वृद्धिङ्गताः तृणाङ्कुराः=शष्पाङ्कुराः यासु तासु=गृहदेहलीसु, एव कीटमुखैः=कीटाननैः, अवलीढ़ खण्डितः आस्वादितो वा, बीजानाम्=तण्डुलादीनाम्, अञ्जलिः=समूहः, पतति=निपतितो भवति । पर्यायोक्तिरलङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ।। ९ ।।

विदूषकः—एषः=असौ, आर्यचारुदत्तः, तत्=तस्मात्, यावत्=इत्यवधारणे, साम्प्रतम्=इदानीम्, उपसर्पामि=समीपमागच्छामि (उपसृत्य=समीपं गत्वा) स्वस्ति=कल्याणम्, भवते=श्रीमते । वर्द्धताम्=समृद्धि प्राप्नोतु, भवान्=त्वमिति ।

थे, वही आज मेरी इस हीनावस्था में उगी हुई घासों से भरी देहलियों पर कीड़ों से कुतरे गए बीजों की मुट्ठी गिरती है ।। ९ ।।

(ऐसा कहकर धीरे धीरे घूम कर बैठ जाता है)

विमर्श—यहाँ वसन्तसेना और चारुदत्त का आगे होने वाले समागम रूप फल हेतुभूतपरस्परानुराग रूप बीज नामक अर्थप्रकृति है । जैसे—

बीजं विन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधिः ।।
अल्पमात्रं समुद्दिष्टं बहुधा यत्प्रसर्पति
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ।।

इस तरह भविष्य में समागम रूप प्रधानफल की सिद्धि के लिए वसन्तसेना का चारुदत्त के हाथ में अपने आभूषणों को रखने की उत्सुकता 'आरंभ' नामक अवस्था है ।

लक्षण यथा—यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवाः ।
प्रारंभेण समायुक्ता तन्मुखं परिकीर्त्तितम् ।।"

विदूषक—ये रहे श्रीमान् चारुदत्त ! तो फिर, उन्हीं के पास चलूं । **(पास जाकर)** श्रीमान् का कल्याण हो । दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (उपविश्य ।) भो वअस्स ! एसो दे वअस्सेण चूणबुड्ढेण जादीकुसुमवासिदो पावारओ अणुप्पेसिदो सिद्धीकिद-देवकज्जस्स अज्जचारुदत्तस्स तुए उवणेदव्वो त्ति । (समर्पयति ।) [**यद्भवान् आज्ञापयति । भो वयस्य ! एष ते वयस्येन चूर्णवृद्धेन जातीकुसुमवासितः प्रावारकः अनुप्रेषितः सिद्धीकृतदेवकार्यस्य आर्यचारुदत्तस्य त्वया उपनेतव्य इति ।**]

चारुदत्तः—(गृहीत्वा सचिन्तः स्थितः ।)

विदूषकः—भो ! इदं किं चिन्तीअदि ? [**भोः इदं किं चिन्त्यते ?**]

चारुदत्तः—वयस्य !

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।
सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां धृतः शरीरेण मृतः स जीवति ।।१०।।

चारुदत्तः—अये=इति हर्षे, आश्चर्ये वा, सर्वकालिमित्रम्=अत्यन्ताप्तसुहृद्, मैत्रेयः, प्राप्तः=समागतः, सखे=हे मित्र, स्वागतम्=अभिनन्दनम्, आस्यताम्=स्थीयताम् ।

विदूषकः—यद्भवान्=यच्छ्रीमान्, आज्ञापयति=आदिशति, भो वयस्य=हे मित्र, एषः, ते=तव, वयस्येन=मित्रेण, चूर्णवृद्धेन=एतदाख्येन, जातीकुसुमवासितः=मालतीपुष्पेण सुरभिकृतः प्रावारकः=उत्तरीयवस्त्रम्, अनुप्रेषितः=प्रेषितः, सिद्धिकृतदेवकार्यस्य=सम्पादितं देवार्चनं येन तस्य, अज्जचारुदत्तस्य=आर्यचारुदत्तस्य, त्वया, उपनेतव्यः=दातव्यः, इति आदिश्यानुप्रेषितः । (समर्पयति=समर्पणङ्करोति) ।

चारुदत्तः—(गृहीत्वा=नीत्वा, सचिन्तः=चिन्तायुक्तम्, स्थितः) ।

विदूषकः—भोः=इति सम्बोधने, इदम्=एतत्, किम्=किम्प्रकारकम्, चिन्त्यते=चिन्तनं करोसि ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र !

अन्वयः—घनान्धकारेषु, दीपदर्शनम्, इव, दुःखानि, अनुभूय, सुखम्, हि, शोभते यः, नरः, सुखात्, दरिद्रताम्, याति, सः, शरीरेण, धृतः, अपि, मृतः, जीवति ।।१०।।

चारुदत्त—अरे ! यह तो मेरे सुख-दुःख का साथी मैत्रेय है । आओ भाई आओ, तुम्हारा स्वागत करता हूँ । बैठो ।

विदूषक—आपका हुक्म सर आँखों पर । (**बैठकर**) सखे, आपके मित्र चूर्णवृद्ध ने चमेली फूल से महमहाती एक चादर भेजी है और कहा है कि आप की पूजा समाप्त होते ही यह मैं दे दूं (**यह कहकर चादर देता है**) ।

चारुदत्त—(**चादर लेकर कुछ सोचने लगता है**)

विदूषक—मित्र, क्या सोचते हो ।

चारुदत्त—सखे,

घोर अन्धेरे में दीये के उजाले का जो आनन्द है, वही मजा तो दुःख झेलने के

विदूषकः—भो वअस्स ! मरणादो दालिद्दादो वा कदरं दे रोअदि। [भो वयस्य ! मरणात् दारिद्र्याद्वा कतरत् ते रोचते ?]

चारुदत्तः—वयस्य !

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम् ॥ ११ ॥

सुखमिति। घनान्धकारेषु—घनाः=निविडाः, अन्धकाराः=तिमिराणि, तेषु, दीपदर्शनम्—दीपस्य=दीपकस्य, दर्शनम्=प्रकाशः, इव=यथा, दुःखानि=कष्टानि, अनुभूय=अनुभवङ्कृत्वा, सुखम्=आनन्दः, हीति निश्चये, शोभते=विराजते, तु=किन्तु, यः=व्यक्तिविशेषः, नरः=पुरुषः, सुखात्=आनन्दात्, दरिद्रताम्=अकिञ्चनताम्, याति=प्राप्नोति, सः=जनः, शरीरेण=देहेन, धृतः=गृहीतः सन् अपि=चेत्, मृतः=निष्प्राणः, इव=यथा, जीवति=जीवनम् धारयति ॥ १० ॥

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, मरणात्=जीवनान्तात्, दारिद्र्यात्=अकिञ्चनत्वात्, कतरत्=दारिद्र्यमरणयोः किमधिकम्, ते=तव, रोचते=प्रीणाति।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र !

अन्वयः—दारिद्र्यात्, मरणात्, वा, मम, मरणम्, रोचते, दारिद्र्यम्, न, (यतः) मरणम्, अल्पक्लेशम्, दारिद्र्यम्, अनन्तकम्, दुःखम्, (अस्ति)।

दारिद्र्यादिति। दारिद्र्यात्=निर्धनत्वात्, मरणात्=जीवनत्यागात्, वा=अथवा, दारिद्र्यमरणयोर्मध्ये इत्यर्थः, मम=चारुदत्तस्य, मरणम्=जीवनत्यागम्, रोचते=प्रीणाति। सम्बन्धविवक्षयाऽत्र षष्ठी, न तु चतुर्थी। दारिद्र्यम्=दैन्यम् न रोचते। यतो हि, मरणम्=प्राणपातम्, अल्पक्लेशम्=क्षणिकदुःखदम्, दारिद्र्यम्=दैन्यं तु, अनन्तकम्=न विद्यते अन्तः समाप्तिर्यस्य तादृशम्, सततकष्टकरम्, दुःखम्=क्लेशम्,

---

बाद सुख पाने का है। मगर, मित्र अमीरी की कब्र पर जन्मी गरीबी की घास तो बड़ी जहरीली होती है। ऐसा आदमी तो जिन्दा रहकर भी मरा ही होता है।

विमर्श—अप्रस्तुत नरसामान्य के कथन से प्रस्तुत चारुदत्त रूप व्यक्तिविशेष का प्रतिपादन होने से यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है। पूर्वार्द्ध में 'इव' पद के संयोजन के कारण श्रौती उपमा अलङ्कार है उत्तरार्द्ध में 'मृतो जीवति' कथन से विरोधाभास अलंकार है। इन सभी अलंकारों के अङ्गाङ्गिभाव से 'सङ्कर' अलंकार है तथा वंशस्थ नामक वृत्त है ॥ १० ॥

विदूषक—मित्र, मृत्यु और गरीबी दोनों में से कौन तुम्हें अधिक जँचती है ?

चारुदत्त—दोस्त—

मृत्यु और गरीबी दोनों में से गरीबी की अपेक्षा मृत्यु ही मुझे अधिक अच्छी लगती है। क्योंकि मृत्यु तो मनुष्य को एक बार ही मरने का कष्ट देती है किन्तु, यह दरिद्रता तो आजीवन दुःख भोगने को विवश कर देती है ॥ ११ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! अलं सन्तावेण । पणइजणसंकामिदविहवस्स सुरलोअपीदसेसस्स विअ पडिवच्चंदस्स परिक्खओ वि दे अहिअदरं रमणीओ [**भो वयस्य ! अलं सन्तापेन । प्रणयिजनसंक्रमितविभवस्य सुरलोकपीतशेषस्येव प्रतिपच्चन्द्रस्य परिक्षयोऽपि ते अधिकतरं रमणीयः ।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! न ममार्थान् प्रति दैन्यम् । पश्य—

एतत्तु मां दहति यत् गृहमस्मदीयं
क्षीणार्थमित्यतिथयः परिवर्जयन्ति ।
संशुष्कसान्द्रमदलेखमिव भ्रमन्तः
कालात्यये मधुकराः करिणः कपोलम् ॥ १२ ॥

अस्तीति भावः । अत्रोत्तरार्द्धो हेतुरूपेणोपन्यस्तत्वात् काव्यलिङ्गम्, सामान्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तरन्यासो वा अलङ्कारः, आर्या वृत्तम् ॥ ११ ॥

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, अलम्=व्यर्थम्, सन्तापेन=मनस्तापेन, प्रणयिजनसंक्रमितविभवस्य—प्रणयिजनेषु=आप्तलोकेषु, संक्रामिताः=दयाधर्मादिना प्रदत्ताः, विभवाः=ऐश्वर्याणि येन तस्य, सुरजनपीतशेषस्य—सुरजनैः=देवैः, पीतशेषस्य=भुक्तावशिष्टस्य, प्रतिपच्चन्द्रस्य—प्रतिपदः=शुक्लप्रतिपदायाः, वस्तुतः शुक्लप्रतिपदि चन्द्रदर्शनस्य अभावात् एतत् कृष्णचतुर्दश्याः उपलक्षकम्, चन्द्रस्य=शशिनः, इव=यथा, परिक्षयोऽपि=क्षीणं गतोऽपि, ते=तव, अधिकतरम्=भृशम्, रमणीयः=आकर्षकः । पूर्णेन्दुमुपेक्ष्य यथा जनाः सुरैः क्रमेण पीतं कृष्णपक्षीयं क्षीणेन्दुं सतृष्णं पश्यन्ति तथैव याचकाधीनीकृताशेषधनमत एव निर्धनं त्वां जनः प्रियतरं संमनुते इत्याशयः । अत्रोपमालङ्कारः ।

चारुदत्तः—वयस्य=सखे, न=नहि, मम=चारुदत्तस्य, अर्थान्=धनानि, प्रति दैन्यम्=दीनता, कष्टं वा । पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—भ्रमन्तः, मधुकराः, कालात्यये, संशुष्कसान्द्रमदलेखम्, करिणः, कपोलम्, इव, अतिशयः, क्षीणार्थम्, इति, यत्, अस्मदीयम्, गृहम्, परिवर्जयन्ति, एतत्, तु, माम्, दहति ॥ १२ ॥

एतत्विवृति । भ्रमन्तः=इतस्ततः चरन्तः, मधुकराः=भ्रमराः, कालस्य=

विदूषक—हे मित्र, इस गरीबी के लिए तुम्हें दुःखी होना ठीक नहीं लगता है क्योंकि, तुमने स्वेच्छा से अपनी सारी सम्पत्ति अपने प्रियजनों को दे दी है। अतः तुम्हारी यह गरीवी देवताओं के द्वारा पीने से बचे हुए क्षीण प्रतिपच्चन्द्र की तरह और अधिक लोकप्रिय बन गई है।

चारुदत्त—मित्र, मुझे धन नष्ट होने का गम नहीं है। पर देखो न—

ये अतिथिगण मुझे गरीब समझकर मेरा घर ठीक उसी तरह आना बन्द कर दिये हैं जैसे अनवरत मदजलस्रावी हाथी के गण्डस्थल को समय बीत जाने पर, उसे सूखा जानकर भौंरे छोड़ देते हैं ॥ १२ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! एदे क्खु दासीए पुत्ता अत्थकल्लवत्ता वरडा-भीदा विअ गोबालदारआ अरण्णे जहिं जहिं ण खज्जन्ति तहिं तहिं गच्छन्ति । **भो वयस्य ! एते खलु दास्याः पुत्रा अर्थकल्यवर्त्ताः, वरटाभीता इव गोपालदारका अरण्ये यत्र-यत्र न खाद्यन्ते तत्र-तत्र गच्छन्ति ।]**

चारुदत्तः—वयस्य !

सत्यं न मे विभवनाशकृताऽस्ति चिन्ता
भाग्यक्रमेण हि धनानि भवन्ति यान्ति ।
एतत्तु मां दहति, नष्टधनाश्रयस्य
यत् सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ॥ १३ ॥

मदजलक्षरणसमयस्य, अत्यये=अपगमे, संशुष्काः=शोषङ्गताः, सान्द्राः=निविडाः मदलेखाः=दानवारिप्रवाहरेखाः यस्य यस्मिन् वा तम् करिणः=गजस्य, 'कपोलम्=गण्डस्थलम्, इव=यथा, न विद्यते तिथिः द्वितीया अथवा न विद्यते तिथिः=निर्धारितः कालः येषां ते अतिथयः=अकस्मादागताः अभ्यागताः इत्यर्थः । क्षीणार्थम्=धनहीनम्, इति=इत्थम् मत्वा, यत् अस्मदीयम्=मामकीनम्, गृहम्=सदनम्, परिवर्जयन्ति=विहाय अन्यत्र व्रजन्ति, एतत्=अतिथिपरिवर्जनम्, तु=एव, माम्=चारुदत्तम्, दहति=सन्तापयति । उपमाऽलङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा— उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः ॥ १२ ॥

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, एते=अमी, खलु=इति निश्चये, दास्याः पुत्राः=सेविकायाः सुताः, निन्दामात्रे—अतिनीचाः, अर्थकल्यवर्त्ताः—कल्ये=प्रातः-काले वर्त्तते एभिः इति कल्यवर्त्ताः=प्रातराशाः, अर्थाः=धनानि, एव कल्यवर्त्ता अर्थकल्यवर्त्ताः, वरटाभीताः—वरटा=दंशनकारिकीटविशेषाः ताभि भीताः=त्रस्ताः, गोपालदारकाः=गोपबालकाः, अरण्ये=वने, यत्र यत्र=यस्मिन् स्थाने, न=नहि, खाद्यन्ते=भुज्यन्ते, तत्र तत्र=तस्मिन् स्थाने, गच्छन्ति=यान्ति ।

चारुदत्तः—वयस्य=मित्र !

अन्वयः—सत्यम्, मे, चिन्ता, विभवनाशकृता, न, अस्ति । हि, धनानि, भाग्य-क्रमेण, भवन्ति (तथा) यान्ति । तु, एतत्, माम्, दहति, यत्, जनाः, नष्टधनाश्र-यस्य, सौहृदात्, अपि, शिथिलीभवन्ति ॥ १३ ॥

सत्यमिति । सत्यम्=ऋतम्, मे=मम, चिन्ता=परितापः, विभवनाशेन=

विदूषक—हे मित्र ये धन तो अतितुच्छ एवं अधम हैं । जंगल में ततैये के डर से भागे हुए गायों के चरवाहों की तरह ये उसी जगह दीख पड़ते हैं जहाँ इन्हें भोगने वाला कोई नहीं होता है ।

चारुदत्त—मित्र, मुझे धन चुकने की चिन्ता नहीं है । क्योंकि भाग्यानुसार धन तो आते-जाते ही रहते हैं । चिन्ता तो इस बात की है कि धनहीनों से मिलने में उनके मित्र भी कतराने लगते हैं ॥ १३ ॥

अपि च—

दारिद्र्याद्धियमेति ह्रीपरिगतः प्रभ्रश्यते तेजसो
निस्तेजाः परिभूयते, परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।
निर्विण्णः शुचमेति शोकपिहितो बुद्धया परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता सर्वापदामास्पदम् ।। १४ ।।

विदूषकः—भो वअस्स ! तं ज्जेव अत्थकल्लवत्तं सुमरिअ अलं सन्तप्पिदेण । [**भो वयस्य ! तमेव अर्थकल्यवर्त्तं स्मृत्वा अलं सन्तापितेन ।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! दारिद्र्यं हि पुरुषस्य—

अर्थक्षयेण, कृताः=सम्पादिताः, न=नहि, अस्ति=वर्तते । हि=यतः, धनानि=विभवाः, भाग्यक्रमेण=अदृष्टानुसारेण, भवन्ति=आयान्ति वा, यान्ति=गच्छन्ति । तु=किन्तु, एतत्, माम्=चारुदत्तम्, दहति=सन्तापयति, यत् जनाः=लोकाः, नष्टधनाश्रयस्य=क्षीणवित्तस्य, सौहृदात्=बन्धुभावात्, अपि=चेत्, शिथिलीभवन्ति=मित्रताम्, परित्यजन्ति । सङ्करालङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तम् ।। १३ ।।

अन्वयः—दारिद्र्यात्, ह्रियम्, एति, ह्रीपरिगतः, तेजसः, प्रभ्रश्यते, निस्तेजाः, परिभूयते, परिभवात्, निर्वेदम्, आपद्यते, निर्विण्णः शुचम्, एति, शोकपिहितः बुद्धया परित्यज्यते, निर्बुद्धिः, क्षयम्, एति, अहो, निधनता, सर्वापदाम्, आस्पदम् ।। १४ ।।

दारिद्र्यादिति । मनुष्यः, दारिद्र्यात्=निर्धनत्वात्, ह्रियम्=लज्जाम्, एति=याति, ह्रिया=लज्जया, परिगतः=सम्प्राप्तः, तेजसः=प्रतापात्, प्रभ्रश्यते=प्रच्युतो भवति, निस्तेजाः=तेजविहीनाः, परिभूयते=जनैस्तिरस्क्रियन्ते, परिभवात्=तिरस्कारात्, निर्वेदम्=ग्लानिम्, आपद्यते=प्राप्नोति, निर्विण्णः=ग्लानियुक्तः, शुचम्=शोकम्, एति=प्राप्नोति, शोकेन=वेदनया, पिहितः=आविष्टः, बुद्धया=विवेकेन, परित्यज्यते=विहीयते, निर्बुद्धिः=बुद्धिविहीनः, क्षयम्=नाशम्, एति=गच्छति, अहो=इत्याश्चर्यम्, निधनता=अकिञ्चनता, सर्वापदाम्=सकलविपदाम्, आस्पदम्=स्थानम् । कारणमालाऽलङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। १४ ।।

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, तमेव=पूर्वोक्तमेव, अर्थकल्यवर्त्तम्=प्रातराशाः, स्मृत्वा=ध्यात्वा, सन्तापितेन=शोकाकुलत्वेन, अलं=व्यर्थम् ।

चारुदत्तः—वयस्य=मित्र, दारिद्र्यम्=निर्धनत्वम्, हीति निश्चये, पुरुषस्य=लोकविशेषस्य ।

और भी—गरीबी के कारण समाज में सिर ऊँचा करने में सङ्कोच होता है, सङ्कोच से सामर्थ्य घटता है, असमर्थ व्यक्ति तिरस्कृत होता है, तिरस्कार से विरक्ति आती है, विरक्ति से विवेक जाता है, अविवेकी ज्ञानशून्य होता है और फिर बुद्धिहीनता विनाश की कारण बन जाती है—हाय, सारी विपत्तियों की जड़ यही दरिद्रता है ।। १४ ।।

विदूषक—मित्र इसी क्षुद्र दरिद्रता का स्मरण कर अपने को दुःखी बनाना बेकार है ।

निवासश्चिन्तायाः परपरिभवो वैरमपरं
जुगुप्सा मित्राणां स्वजनजनविद्वेषकरणम् ।
वनं गन्तुं बुद्धिर्भवति च कलत्रात् परिभवो
हृदिस्थः शोकाग्निर्न च दहति सन्तापयति च ॥ १५ ॥

तद्वयस्य ! कृतो मया गृहदेवताभ्यो बलिः । गच्छ, त्वमपि चतुष्पथे मातृभ्यो बलिमुपहर ।

विदूषकः—ण गमिस्सं । [**न गमिष्यामि ।**]

चारुदत्तः—किमर्थम् ?

अन्वयः—चिन्तायाः, निवासः, परपरिभवः, अपरम् वैरम्, मित्राणाम्, जुगुप्सा, स्वजनजनविद्वेषकरणम्, च, कलत्रात्, परिभवः, वनम्, गन्तुम्, बुद्धिः, भवति, च, हृदिस्थः, शोकाग्निः, न दहति, सन्तापयति च ॥ १५ ॥

निवास इति । चिन्तायाः=उद्विग्नतायाः, निवासः=आश्रयः, परेषाम्=अन्येषाम्, परिभवः=तिरस्कारस्थानम्, अपरम्=अन्यत्, वैरम्=विरोधम्, मित्राणाम्=सुहृदाम्, जुगुप्सा=घृणा, स्वजनजनविद्वेषकरणम्—स्वजनानाम्=आत्मीयजनानाम्, विद्वेषस्य=शत्रुभावस्य, करणम्=हेतुः, च भवति । कलत्रात्=भार्यायाः, परिभवः=अनादरः भवति । अतः तस्य वनम्=अरण्यम्, गन्तुम्=चलितुम्, बुद्धिः=मतिः, भवति=जायते । हृदिस्थः=चित्ते स्थितः, शोकाग्निः=शोकरूपवह्निः, न=नहि, दहति=भस्मीकरोति, किन्तु सन्तापयति=सन्तापं जनयत्येवेति भावः । विशेषोक्त्युल्लेखयोः साङ्कर्यात्संकरालङ्कारः शिखरिणी वृत्तम् ॥ १५ ॥

तत्=तस्मात्, वयस्य=हे मित्र, कृतः=सम्पादितः, मया=चारुदत्तेन गृहदेवताभ्यः=गृहाधिष्ठातृभ्यः देवेभ्यः, बलिः=पूजा । गच्छ=चल, त्वमपि=मैत्रेयोऽपि, चतुष्पथे=शृंगाटके 'शृंगाटक चतुष्पथे' इत्यमरः । मातृभ्यः=ब्राह्मीप्रभृतिभ्यः, ताश्च—"ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा । कौमारी चैव चामुण्डा चर्चिकेत्यष्टमातरः ॥" बलिम्=पूजाम्, उपहर=प्रदेहि ।

विदूषकः—न=नहिं, गमिष्यामि=चलिष्यामि ।

चारुदत्त—मित्र, यह गरीबी ही मनुष्यों की चिन्ता का आधार है । दूसरों से अपमानित होने का कारण है, दूसरी शत्रु है, मित्रों की घृणा, बन्धुओं की उपेक्षा एवं आत्मीय जनों के द्वेष का कारण है । इसी के कारण पत्नी तिरस्कार करती है । घर छोड़कर जंगल में भाग जाने की इच्छा होती है । कहाँ तक कहूँ, दिल में जलने वाली शोकाग्नि एक बार ही नहीं जलाती है, घुला-घुलाकर मारती है ॥ १५ ॥

तो हे मित्र, मैंने तो देवताओं को बलि दे दी है, तुम भी चौराहे पर जाकर मातृ देवियों को बलि चढा आओ ।

विदूषक—मैं नहीं जाता ।

चारुदत्त—क्यों भला ?

विदूषकः—जदो व्वं पूईज्जन्ता वि देवदा ण दे पसीदन्ति ता को गुणो देवेसुं अच्चिदेसुं । [**यत एवं पूज्यमाना अपि देवता न ते प्रसीदन्ति । तत् को गुणो देवेषु अर्चितेषु ।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! मा मैवम् । गृहस्थस्य नित्योऽयं विधिः ।

तपसा मनसा वाग्भिः पूजिता बलिकर्मभिः ।
तुष्यन्ति शमिनां नित्यं देवताः किं विचारितैः ॥ १६ ॥

तद् गच्छ, मातृभ्यो बलिमुपहर ।

विदूषकः—भो ! ण गमिस्सं ! अण्णो को वि पउञ्जीअदु । मम उण वम्हणस्स सव्वं ज्जेव विपरीदं परिणमदि, आदंसगदा विअ छाआ, वामादो दक्खिणा दक्खिणादो वामा । अण्णं अ, एदाये पदोसवेलाए इध राअमग्गे

चारुदत्तः—किमर्थम्=केन कारणेन ?

विदूषकः—यतः=यस्मात्, एवम्=अनेन रूपेण, पूज्यमानाः=समर्च्यमानाः, अपि=चेत्, देवता=सुराः, न=नहि, प्रसीदन्ति=प्रसन्नाः भवन्ति, तत्=तस्मात्, को गुणः=किं फलम्, देवेषु=देवतासु, अर्चितेषु=पूजां कृतेषु ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, मा मैवम्=इत्थं मा वद, गृहस्थस्य=गृहवासिनः, नित्यः=आवश्यककर्त्तव्यः, "सायं प्रातः वैश्वदेवः कर्त्तव्यो बलिकर्म च । अनश्नतापि सततमन्यथा किल्विषी भवेत् ।" इति धर्मशास्त्रोक्तदृष्टयाऽवश्यानुष्ठेयोऽयम् कर्म । अयम् विधिः=इयम् रीतिः ।

अन्वयः—तपसा, मनसा, वाग्भिः, बलिकर्मभिः, पूजिताः, देवताः, शमिनाम्, नित्यम्, तुष्यन्ति, विचारितैः, किम् ॥ १६ ॥

तपसेति । तपसा=व्रतनियमादितपस्यया, मनसा=चेतसा ध्यानेन वा, वाग्भिः=स्तुतिपाठादिरूपैः, बलिकर्मभिः=पूजाकार्यैः, पूजिताः=अर्चिताः, देवताः=सुराः, शमिनाम्=शान्तचित्तानाम्, नित्यम्=सततम्, तुष्यन्ति=सन्तुष्टाः भवन्ति, विचारितैः=विचारणैः तर्कवितर्कैः वा, किम् फलम्, देवकार्ये वितर्कोऽनुचितः ॥ १६ ॥

तत्=तस्मात्, गच्छ=चल, मातृभ्यः=वाराहीप्रभृतिभ्यः, बलिम्=पूजाम्, उपहर=कुरु ।

विदूषकः—भोः=हे, न=नहि, गमिष्यामि=चलिष्यामि, अन्यः=अपरः,

विदूषक—इतनी निष्ठा से पूजा करने पर भी यदि ये देवता तुम पर खुश नहीं होते तो फिर, इनकी पूजा से क्या लाभ ?

चारुदत्त—मित्र ऐसा मत कहो ? गृहवासियों के लिए तो यह नित्य कर्म ही है ।

तपस्या से, मन, वचन और बलिकर्म से पूजित देवगण शान्तचित्त व्यक्ति पर सदा सन्तुष्ट रहते हैं । इसमें तर्क वितर्क की कतई गुंजाईश नहीं है ।

इसलिए जाओ मातृदेव को बलि चढा आओ ।

विदूषक—अजी, मैं नहीं जाऊँगा, किसी दूसरे को भेज दो । जैसे दर्पण में पड़ने

गणिआ विडा चेडा राअवल्लहा अ, पुरिसा संचरन्ति ! ता मण्डुअलुद्धस्स कालसप्पस्स मूसिओ विअ अहिमुहावदिदो वज्झो दाणिं भविस्सं । तुमं इध उववट्ठिो किं करिस्ससि ? [**भोः ! न गमिष्यामि । अन्यः कोऽपि प्रयुज्यताम्, मम पुनर्ब्राह्मणस्य सर्वमेव विपरीतं परिणमति, आदर्शगता इव छाया, वामतो दक्षिणा, दक्षिणतो वामा । अन्यच्च, एतस्यां प्रदोषवेलायाम् इह राजमार्गे गणिका विटाश्चेटा राजवल्लाभाश्च पुरुषाः सञ्चरन्ति । तत् मण्डूकलुब्धस्य कालसर्पस्य मूषिक इव अभिमुखापतितो वध्य इदानीं भविष्यामि । त्वमिह उपविष्टः किं करिष्यसि ?**]

चारुदत्तः—भवतु । तिष्ठ तावत् । अहं समाधिं निर्वर्त्तयामि ।

(नेपथ्ये) तिष्ठ, वसन्तसेने ! तिष्ठ ।

(ततः प्रविशति विट-शकार-चेटैरनुगम्यमाना वसन्तसेना ।)

कोऽपि = कश्चिदपि, प्रयुज्यताम् = नियुक्तः क्रियताम्, मम = मैत्रेयस्य, पुनः = भृशम्, ब्राह्मणस्य = विप्रस्य, सर्वम् = सकलम्, एव = इति निश्चये, विपरीतम् = विपरीतककुभि, परिणमति = गच्छति, आदर्शगता = दर्पणे प्रतिबिम्बिताः, छाया इव = प्रतिबिम्बमिव, वामतः = दक्षिणेतरभागतः, दक्षिणा = वामेतराः, दक्षिणतः वामा = दक्षिणेतरा । अन्यच्च = अपरञ्च, एतस्याम् = तस्याम्, प्रदोषवेलायाम् = सन्ध्याकाल इति यावत्, इह = अस्मिन्, राजमार्गे, गणिका = वेश्या, विटाश्चेटाः = महाजनकिङ्कराः, राजबल्लभाः = नृपप्रियाः, पुरुषाः = जनाः, मण्डूकलुब्धस्य = मण्डूकभक्षणाभिलाषिणः, कालसर्पस्य = विषधरस्य, मूषिकः = आखुः, अभिमुखापतितः = सामुख्यं भजमानः, वध्य इदानीम् = हन्तुं योग्य अधुना, भविष्यामि, त्वम् = भवान्, इह = अत्र, उपविष्टः, किं करिष्यसि ?

चारुदत्तः—भवतु = यातु, तिष्ठ तावत् = क्षणं स्थीयताम्, अहम् = चारुदत्तः, समाधिम् = सन्ध्यादिनित्यकर्मनियमम्, निर्वर्तयामि = साधयामि ।

(नेपथ्ये = वेशरचनागृहे) तिष्ठ = स्थीयताम्, वसन्तसेने तिष्ठ ।

(ततः = तत्पश्चात्, प्रविशति = प्रवेशङ्करोति, विटशकारचेटैरनुगम्यमाना)

वाली परछाई सदा विपरीत होती है, वैसे ही मेरे सभी कर्म उल्टे फलदायक होते हैं । दूसरी बात यह भी कि इस संध्या वेला में इस सड़क पर, वेश्या, विट, चेट और सिपाही भी घूम रहे हैं । मैं तो मेढक लोभी काले साँप के आगे चूहे की तरह अपने आप वध्य हो जाऊँगा ।

चारुदत्त—अच्छा तो कुछ देर आप रुकें, जब तक सांध्यवेला के नित्यकर्म से मैं निपट लूं ।

(**नेपथ्य में**) रुक जा, वसन्तसेने, रुक जा ।

(इसके बाद भागती हुई वसन्तसेना का प्रवेश, विट, शकार तथा चेट उसका पीछा करते हैं)

विटः—वसन्तसेने ! तिष्ठ तिष्ठ ।

किं त्वं भयेन परिवर्त्तितसौकुमार्या
नृत्यप्रयोगविशदौ चरणौ क्षिपन्ती ।
उद्विग्न-चञ्चल-कटाक्ष-विसृष्टदृष्टि-
र्व्याधानुसारचकिता हरिणीव यासि ? ॥ १७ ॥

शकारः—चिट्ठ, वसन्तशेणिए ! चिट्ठ । [तिष्ठ, वसन्तसेनिके ! तिष्ठ ।]

किं याशि, धावशि, पलाअशि, पक्खलन्ती
वाशू ! पशीद ण मलिश्शशि, चिट्ठ दाव ।
कामेण दज्झदि हु मे हलके तवश्शी
अंगाललाशिपडिदे विअ मंशखण्डे ॥ १८ ॥

विटः—वसन्तसेने तिष्ठ तिष्ठ=विह्वलतया शीघ्रगामिनी मा भव ।

अन्वयः–भयेन, परिवर्तितसौकुमार्या, नृत्यप्रयोगविशदौ, चरणौ, क्षिपन्ती, उद्विग्न-चञ्चलकटाक्षविसृष्टदृष्टिः, त्वम्, व्याधानुसारचकिता हरिणी, इव, किम्, यासि ?

किं त्वमिति । भयेन=भीत्या, परिवर्तितम्=शीघ्रगमनाय परित्यक्तम्, सौकुमार्यम् =गतिलालित्यम्, मन्दमन्दगमनमिति यावत्, यया सा, नृत्यप्रयोगे=नर्त्तनकलायाम्, विशदौ=भूरिदक्षौ, अथवा नृत्यप्रयोगेन=नर्त्तनकलाभ्यासेन, विशदौ=झटिति-प्रसरणशीलौ इति यावत्, चरणौ=पादौ, क्षिपन्तीम्=शीघ्रम् इतस्ततः पातयन्ती, तया उद्विग्नाः=सन्त्रस्ता, अतएव चञ्चलाः=चपलाः, कटाक्षाः=अपाङ्गदृष्टयः, यस्मिन् तद्यथास्यात्तथा 'कटाक्षोपाङ्गदर्शने' इत्यमरः । विसृष्टाः=प्रेरिता, दृष्टिः=नयनम् यया सा, किं वा उद्विग्ना चासौ चञ्चला कटाक्षविसृष्टा च दृष्टिः यस्याः सा, त्वम्= वसन्तसेना, व्याधस्य=लुब्धकस्य, अनुसारेण=पश्चाद्धावनेन, चकिता=भयेन चञ्चला, हरिणी=मृगी, इव=यथा, किम्=कथम्, यासि=पलायसे । इवशब्दश्रवणात् श्रौती उपमालङ्कारः, वसन्ततिलकम् वृत्तम् ॥ १७ ॥

शकारः—तिष्ठ=स्थीयताम्, वसन्तसेने=बाले, तिष्ठ ।

अन्वयः—(तिष्ठ वसन्तसेने तिष्ठ इति गद्यस्थेन अन्वयः) प्रस्खलन्ती, किम् यासि, धावसि, पलायसे, हे वासु, प्रसीद, न मरिष्यसि, तावत्, तिष्ठ । तपस्वि ! अङ्गारराशि-पतितम्, मांसखण्डम्, इव, मे, हृदयम्, कामेन, खलु, दह्यते ॥ १८ ॥

किं यासीत्यादि । प्रस्खलन्ती=स्खलितचरणा, किम्=कस्मात्, यासि=

विट—अरी, वसन्तसेने ठहरो न ।

पीछा करते हुए बहेलिए से डरी हुई हिरनी की तरह क्यों भाग रही हो ? नाचने में निपुण अपने चंचल चरणों के सहारे जो तुम इस तरह दौड़ लगा रही हो– इससे तो तुम्हारी मंद मंद चलने वाली सुकुमार चाल ही चौपट हो रही है ॥ १७ ॥

शकार—रुक जा, अरी वसन्तसेने, रुक जा । (फिकरे कसते हुए)

गिरती-पड़ती क्यों भाग रही हो ? दौड़ लगा रही हो, खुश हो जाओ । क्यों डरती

[किं यासि, धावसि, पलायसे, प्रस्खलन्ती वासु ! प्रसीद, न मरिष्यसि, तिष्ठ तावत् ।
कामेन दह्यते खलु मे हृदयं तपस्वि अङ्गारराशिपतितमिव मांसखण्डम् ॥]

चेटः—अज्जुके ! चिट्ठ चिट्ठ । [आर्ये ! तिष्ठ तिष्ठ ।]

उत्तासिता गच्छशि अन्तिका मे शंपुण्णपुच्छा विअ गिम्हमोरी ।
ओवग्गदी शामिअभट्टके से वण्णे गडे कुक्कुडशावके व्व ॥ १९ ॥

गच्छसि, धावसि पलायसे—इत्येषामेकार्थत्वेन शकारवचनत्वात् पौनरुक्त्यं न दोषाधायकम्, तदुक्तम्—

अपार्थमक्रमं व्यर्थं पुनरुक्तं हतोपमम्,
लोकन्यायविरुद्धञ्च शकारवचनं विदुः ।

अन्यच्च—आगमलिङ्गविहीनं देशकालन्याय समयविपरीतम् ।
व्यर्थैकार्थमपार्थं भवति हि वचनं शकारस्य ॥

हे वासु=हे बाले, प्रसीद=प्रसन्ना भव, न मरिष्यसि=मृत्युमुखं न गमिष्यसि, तावदिति पदं वाक्यालङ्कारे, तिष्ठ=स्थिरा भव, अङ्गारराशौ=वह्निसमूहे, पतितम्=भ्रष्टम्, मांसखण्डम्=पललपिण्डम्, इव=यथा, तपस्वि=वराकम्, मे=मम, हृदयम्=चित्तम्, कामेन=कामाग्निना, खलु=निश्चयेन, दह्यते=सन्तप्यते । उपमालङ्कारः, वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ १८ ॥

चेटः—आर्ये=गणिके, तिष्ठ=क्षणं स्थीयताम्, तदुक्तं—'नाट्योक्तौ गणिकाऽज्जुके'त्यमरः ।

अन्वयः—मम, अन्तिकात्, सम्पूर्णपक्षा, ग्रीष्ममयूरी, इव, उत्त्रासिता, गच्छसि, मम, स्वामी भट्टारकः, वने, गतः, कुक्कुटशावकः, इव, अववल्गति ॥ १९ ॥

हो ? मरोगी नहीं, जरा तो ठहरो, देखो न, दहकती हुई, आग पर सेंके गये कबाव की तरह मेरा यह छोटा दिल काम से जल रहा है ॥ १८ ॥

विमर्श—विट—यह नाटक का वह लम्पट पात्र है जो राजा या किसी दुश्चरित्र युवक का साथी होता है। अथवा किसी ऐसी वेश्या का साथी जो नृत्य एवं संगीतकला में निपुण हो । **चेट**—नायक या प्रतिनायक के शृंगार में सहायक व्यक्ति को नाटक में चेट कहा जाता है । यह विनोदी व्यक्ति होता है तथा कामुक एवं वेश्या के बीच सन्देशवाहक का काम भी करता है । **शकार**—राजा की रखैल का भाई, राजा की अवैध पत्नी अनूढा भार्या का भाई । यश, हल्कापन तथा ओछापन इसके चरित्र की विशेषता है । कहा गया है—

मदमूर्खताभिमानी दुष्कुलतैश्वर्यसंयुक्तः ।
सोऽयमनूढाभ्राता राज्ञः श्यालः शकार इत्युक्तः ॥

चेट—अरी ओ गणिके, रुको न,

रंग-विरंगी बूटी वाली साड़ी पहनने के कारण सुन्दर पूंछवाली ग्रीष्मकालीन

[उत्त्रासिता गच्छसि अन्तिका मे सम्पूर्णपक्षेव ग्रीष्ममयूरी ।
अववलगति स्वामी भट्टारको मे वने गतः कुक्कुटशावक इव ॥]

विटः—वसन्तसेने ! तिष्ठ तिष्ठ ।

किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना
रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती ।
रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलमुत्सृजन्ती
टङ्कैर्मनःशिलगुहेव विदार्यमाणा ॥ २० ॥

उत्त्रासितेति । मम=चेटस्य, अन्तिकात्=समीपात्, सम्पूर्णपक्षा=नानावर्णखचितशाटीसंवृतशरीरत्वात्परिपूर्णपुच्छेव शोभिता, ग्रीष्ममयूरीव=ग्रीष्मकालिकशिखिनीव, उत्त्रासिता=भयविह्वला, गच्छसि=यासि, मम=मे, स्वामिभट्टारकः—भट्टारकः=नृपः, 'भट्टारको नृपे नाट्ये वाचा देवो तपोधने' इति मेदिनी । नृपेव प्रभावसम्पन्न इत्यर्थः । स्वामी=प्रभुः शकार इत्यर्थः, स्वामी चासौ भट्टारकश्च स्वामिभट्टारकः, वने=अरण्ये, गतः=प्राप्तः, कुक्कुटशावकः—कुक्कुटस्य=पक्षिविशेषस्य, शावकः=शिशुः, इव=यथा, अववलगति=ससम्भ्रमं त्वदन्तिकमागच्छति । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः, इन्द्रवज्रा छन्दश्चास्ति । तल्लक्षणञ्च—स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः ॥ १९ ॥

विटः—वसन्तसेने ! तिष्ठ तिष्ठ=स्थीयताम् ।

अन्वयः—हे वसन्तसेने, बालकदली, इव विकम्पमाना, पवनलोलदशम् रक्तांशुकम्, वहन्ती, टङ्कैः, विदार्यमाणा, मनःशिलगुहा, इव, रक्तोत्पलप्रकरकुड्मलम्, उत्सृजन्ती, किम्, यासि ॥ २० ॥

किं यासीति । हे वसन्तसेने=एतदाख्ये बाले, बालकदली=नूतनकदलीवृक्षः, इव=यथा, विकम्पमाना=विधूयमाना, पवनलोलदशम्—पवनेन=वातेन, तीव्रसञ्चरणवेगोत्थवायुना वा, लोला=चञ्चला, दशा=अञ्चलभागः यस्य तत्, रक्तांशुकम्=लोहितवसनम्, वहन्ती=धारयन्ती, टङ्कैः=पाषाणदारणैः 'टङ्कः पाषाणदारणः' इत्यमरः । विदार्यमाणा=भिद्यमाना, विदारणक्षणे रत्नानां निर्मला दीप्तिः प्रादुर्भवतीति

मयूरी की तरह क्यों भाग रही हो ? याद रक्खो, मेरे मालिक, शकार वनमुर्गे के बच्चे की तरह तुम्हारे पीछे लगे हैं ॥ १९ ॥

विट—वसन्तसेने, ठहर जा ।

अरे ओ डरकर भागने वाली, तुम्हारा हाल तो बड़ा ही बुरा है, देह केले के थंभ की तरह काँप रही है, हवा के झोंके से चंचल बने लाल-लाल रेशमी साड़ी के अंचल नये केले के पत्ते की तरह थरथरा रहे हैं; उसपर भी कहर ढहा रहे हैं, तुम्हारे जूड़े से टूट-टूटकर बिखरने वाले लाल-लाल कमल के फूल, लगता है जैसे मैंनसिल की कन्दरा को कोई छेनी से काट रहा हो और उससे आग की चिनगारियाँ फुलझड़ियों की तरह झड़ रही हो ॥ २० ॥

शकारः—चिट्ठ; वसन्तशेणिए ! चिट्ठ । [तिष्ठ, वसन्तसेनिके ! तिष्ठ ।]

मम मअणमणंगं मम्महं वड्ढअन्ती
णिशि अ शअणके मे णिद्दअं आक्खिवन्ती ।
पशलशि भअभीदा पक्खलन्ती खलन्ती
मम वशमणुजादा लावणशेव कुन्ती ॥ २१ ॥

[मम मदनमनङ्गं मन्मथं वर्द्धयन्तो, निशि च शयनके मे निद्रामाक्षिपन्ती । प्रसरति भयभीता प्रस्खलन्ती, स्खलन्ती, मम वशमनुयाता रावणस्येव कुन्ती ॥]

भावः । मनःशिलगुहा—मनःशिलानाम्=रक्तवर्णधातुविशेषाणाम्, गुहा=खनिः, इव=यथा, मनःशिला अस्या अस्तीति विग्रहे अर्शादित्वादचि स्त्रीत्वविवक्षायां टापि मनःशिलेति सिद्धयति, सा चासौ गुहा चेति कर्मधारये पुंवद्भावात् मनःशिलगुहा । अत्र मनःशिलाशब्दः स्त्रीलिङ्गे भाव्यः, किन्तु महाभारते 'मनःशिल' शब्दोऽपि प्रयुक्त दृश्यते इति तथा प्रयुक्तः—इति पृथ्वीधरः । रक्तोत्पलानाम्=रक्तकमलानाम्, प्रकराः=समूहाः, तेषां कुड्मलम्=मुकुलसमूहम्, उत्सृजन्ती=गमनवेगेन क्षिपन्ती, किम्=कथम्, यासि=पलायसे इत्यर्थः । अत्रोत्प्रेक्षानुप्राणित उपमालङ्कारः । श्रौत्योरुपमयोर्मिथो निरपेक्षतया संसृष्टिरिति केचित्, वसन्ततिलकं वृत्तम् ॥ २० ॥

शकारः—तिष्ठ, वसन्तसेने तिष्ठ=वेगात् पलायमानां तां विलोक्य शकारो वदति—स्थीयतां वसन्तसेने मा त्वर ।

अन्वयः—मम, मदनम्, अनङ्गम्, मन्मथम्, वर्धयन्ती, निशि, शयनके, च, मम, निद्राम्, आक्षिपन्ती, भयभीता, प्रस्खलन्ती, स्खलन्ती, प्रसरसि, रावणस्य, कुन्ती, इव, मम, वशम्, अनुयाता ॥ २१ ॥

मम मदनेति । मम=शकारस्य, मदनम्, अनङ्गम्, मन्मथम्=कामाग्निमिति भावः, वर्धयन्ती=दीपयन्ती, निशि=रात्रौ, शयनके=पर्यङ्के, च=पुनः, मम=शकारस्य, निद्राम्=शयनम्, आक्षिपन्ती=निजचिन्तनेनापसारयन्ती, भयभीता=भयसन्त्रस्ता, प्रस्खलन्ती स्खलन्ती=जवेन पतन्ती, प्रसरसि=पलायसे, तथापि, रावणस्य=दशाननस्य, कुन्ती=पाण्डुपत्नी, इव=यथा, मम=शकारस्य, वशम्=अधिकारम्, अनुयाता=प्राप्ता, नात्र सन्देहः । अस्मिन्श्लोके यथार्थतः सादृश्याभावान्नोपमालङ्कारः, 'प्रस्खलन्ती, स्खलन्ती' इत्यत्र पृथगर्थाभावाच्च न यमकम्, यद्यपि 'रावणस्येव कुन्ती' इत्यादौ शास्त्रविरुद्धत्वेन हतोपमता प्रतीयते तथापि शकारवचनस्य तादृशमेवालङ्कारिकनियमनिबद्धत्वान्नात्र दोषशङ्का क्वापीति भावः । मालिनी वृत्तम्, तल्लक्षणन्तु—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगलोकैः ॥ २१ ॥

शकार—रुक जा, वसन्तसेने रुक, जा ।

रात-रात भर मैं तुम्हारी याद में सो नहीं पाता, मेरी कामाग्नि को धधका कर इस तरह गिरती-पड़ती क्यों भाग खड़ी हुई हो ? याद रक्खो, इस समय तुम मेरी वश में उसी तरह आ गई हो जैसे रावण के वश में कुन्ती हो गई थी ॥ २१ ॥

विटः—वसन्तसेने !

किं त्वं पदैर्मम पदानि विशेषयन्ती
व्यालीव यासि पतगेन्द्रभयाभिभूता ।
वेगादहं प्रविसृतः पवनं निरुन्ध्यां
त्वन्निग्रहे तु वरगात्रि ! न मे प्रयत्नः ॥ २२ ॥

शकारः—भावे ! भावे ! [भाव ! भाव !]

एशा णाणक-मूशि-काम-काशिका, मच्छाशिका लाशिका, णिण्णाशा, कुलणाशिका, अवशिका, कामश्श मञ्जूशिका ।

विटः—वसन्तसेने=पलायमानां वसन्तसेनां विलोक्य विटः पुनरपि वदति—

अन्वयः—हे वसन्तसेने, पतगेन्द्रभयाभिभूता, व्याली, इव, पदैः, मम, पदानि, विशेषयन्ती, त्वम् किम्, यासि ? वेगात्, प्रविसृतः, अहम्, पवनम्, न, रुन्ध्याम्, हे वरगात्रि, तु, त्वन्निग्रहे, मे, प्रयत्नः, न ॥ २२ ॥

किं त्वमिति । हे वसन्तसेने, पतगेन्द्रभयाभिभूता—पतगेन्द्रात्=गरुड़ात्, भयेन=भीत्या, अभिभूता=आक्रान्ता, व्याली=सर्पिणी, इव=यथा, पदैः=निजपदविक्षेपैः, मम=विटस्य, पदानि=पादविक्षेपान्, विशेषयन्ती=अतिक्रामन्ती, त्वम्=वसन्तसेना, किम्=केन कारणेन, यासि=गच्छसि ? वेगात्=जवात्, प्रविसृतः=प्रस्थितः, अहम्=विटः, पवनम्=वायुम्, न=नहि, रुन्ध्याम्=रोद्धुम् शक्नुयामित्यर्थः, हे वरगात्रि—वरम्=श्रेष्ठं, गात्रम्=शरीरम् यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ=कोमलकलेवरे इत्यर्थः, तु=किन्तु, त्वन्निग्रहे=बलपूर्वकं तवातिक्रमणे, मे=मम विटस्य, प्रयत्नः=प्रयासः, न=नास्ति । अतिकान्तकलेवरायां शक्यातिक्रमणं समुचितं नास्ति, दयया स्वयमेव मम मनोरथं पूरयेति भावः । अस्मिन् श्लोके व्यालीवेत्यत्र श्रौती उपमा, पवननिरोधासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धाभिधानात् अतिशयोक्तिः, अनयोः परस्परनिरपेक्षत्वेनावस्थानात् संसृष्टिः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २२ ॥

शकारः—भाव भाव=भावयति चिन्तयति गूढतत्त्वमिति भावो विद्वान् तत्सम्बोधने हे भाव=हे विद्वन्, 'भावो विद्वान्' इत्यमरः ।

अन्वयः—एषा, नाणकमोषिकामकशिका, मत्स्याशिका, लासिका, निर्नासा, कुलनासिका, अवशिका, कामस्य, मञ्जूषिका, एषा, वेशवधू, सुवेशनिलया, वेशाङ्गना,

---

विट—गरुड़ से डरी साँपिनी की तरह लम्बे-लम्बे डग भरती मुझसे भी आगे-आगे तुम क्यों भाग रही हो ? तुम्हें पता नहीं, दौड़ की होड़ में कुछ देर के लिए पवन की गति को भी थाम लेने की मैं ताकत रखता हूँ पर, नहीं री सुवदने, मैं तुम्हें जबर्दस्ती रोकना नहीं चाहता ॥ २२ ॥

शकार—भाव, अरे ओ महानुभाव,

मैंने इस औरत के दस नाम रक्खे हैं, चोरों की काम पिपासा मिटाने वाली, मछली खाने वाली, नाचने वाली, अप्रतिष्ठिता, कुलनाशिनी, किसी के वश में नहीं

एशा वेशबहू, शुवेशणिअला वेशङ्गणा वेशिआ,
एशे शे दशणामके मइ कले, अज्जावि मं णेच्छदि ॥ २३ ॥

[एषा नाणक-मोषि-काम-कशिका, मत्स्याशिका, लासिका,
निर्नासा, कुलनाशिका, अवशिका, कामस्य मञ्जूषिका ।
एषा वेशवधूः, सुवेशनिलया, वेशाङ्गना, वेशिका,
एतान्यस्या दश नामकानि मया कृतानि, अद्यापि मां नेच्छति ॥]

विटः—

प्रसरसि भयविक्लवा किमर्थं प्रचलितकुण्डलघृष्टगण्डपार्श्वा ।
विटजननखघट्टितेव वीणा जलधर-गर्जित-भीत-सारसीव ॥ २४ ॥

वेशिका, एतानि, अस्याः, दश, नामकानि, मया, कृतानि, अद्य अपि, माम्, न, इच्छति ॥ २३ ॥

एषेति । एषा = वसन्तसेना, नाणकमोषिकामकशिका—नाणकं = बहुमूल्यरत्नादिकं मुष्णातीति नाणकमोषी = तस्करः, तस्य कामं = कामवेदनां, कशति = हिनस्ति रत्या दूरीकरोति या सा नाणकमोषिकामकशिका = तस्कराणां मदनोद्दीपिकेति भावः, मत्स्याशिका = मीनभोजिनी, लासिका = नृत्याङ्गना, निर्नासा = निम्ननासा प्रतिष्ठारहितेति भावः, केचित्तु निर्नाशा इति पाठं स्वीकृत्य निश्चयेन नाशो नरकगतिर्यस्याः सा निर्नाशा नरकगमनार्हेति भावः । अवशिका = प्रचुरधनप्रदानेनापि कस्यापि नाधीना, कुलनासिका = वंशनाशिनी, कामस्य = अनङ्गस्य, मञ्जूषिका = पेटिका, एषा = वसन्तसेना वेशवधू, वेशस्य = वेश्याजनाश्रयस्य 'वेशो वेश्याजनाश्रयः' इत्यमरः । वधूः = स्नुषा, 'स्त्री वधूर्जाया स्नुषेति' कोषः । सुवेशानां = सुन्दराभूषणपरिधानानां, निलया = आश्रयीभूता, किं वा सुष्ठुवेश्यालयः एव निलयः = निवासभूमिः यस्या सा, वेशस्य = वेश्यालयस्य, अङ्गना = स्त्री, वेशिका = वेशशालिनी, एतानि = पूर्वकथितानि, अस्याः = वसन्तसेनायाः, दश = दशसंख्याकानि, नामकानि = नामानि, मया = शकारेण, कृतानि = पठितानि, अद्य = अधुना, अपि, माम् = शकारम्, न = नहि, इच्छति = अभिलषति । दशनामादिपाठे देवाङ्गनापि तुष्यति, इयन्तु न तथेति भावः । शार्दूलविक्रीडितं छन्दम् ॥ २३ ॥

विटः—विटस्तामनधिगच्छन् पुनरप्याह—

अन्वयः—विटजननखघट्टिता, वीणा, इव, प्रचलितकुण्डलघृष्ट-गण्डपार्श्वा, जलधरगर्जितभीतसारसी, इव, भयविक्लवा, किमर्थम्, प्रसरसि ॥ २४ ॥

प्रसरसीति । विटजनस्य = विलासप्रियलोकस्य, नखैः = अङ्गुल्यग्रभागैः, घट्टिता

रहने वाली, काम की पिटारी, वेश्यागामियों की प्रिया, चकले में रहनेवाली, चकला चलानेवाली, वेश्या—इतनी प्रशंसा के बावजूद वह मुझे नहीं चाहती है ॥ २३ ॥

विट—जल्दी-जल्दी भागने के कारण हिलते कुण्डलों की रगड़ से तुम्हारे लाल-लाल गालों पर वैसी ही खरोंच उग आई है जैसे कामियों के नाखूनों से वीणा खुरच

शकारः—झाणज्झणन्तबहुभूषणशद्दमिश्शं
किं दोवदी विअ पलाअशि लामभीदा ।
एशे हलामि शहशत्ति जधा हणूमे
विश्शाबशुश्श बहिणिं विअ तं शुभद्दं ॥ २५ ॥

[झणज्झणमिति बहुभूषणशब्दमिश्रं किं द्रौपदीव पलायसे रामभीता ।
एष हरामि सहसेति यथा हनूमान् विश्वावसोर्भगिनीमिव तां सुभद्राम् ॥]

चेटः—लामेहि अ लाअवल्लहं तो क्खाहिशि मच्छमंशकं ।
एदे हिं मच्छमंशकेहिं शुणआ मलअं ण शेवन्ति ॥ २६ ॥

=घर्षितेति यावत् वीणा=वल्लकी, इव=यथा, प्रचलिताभ्यां=चञ्चलाभ्याम्, कुण्डलाभ्याम्=कर्णाभूषणाभ्याम्, घृष्टौ=लब्धघर्षणौ, गण्डयोः=कपोलयोः, पार्श्वौ यस्याः तादृशी तथा, जलधरस्य=मेघस्य, गर्जितेन=गर्जनेन, भीता=भयविह्वला, सारसीव=हंसिनीवत्, भयेन=भीत्या, विक्लवा=विह्वला, किमर्थम्=केन हेतुना, प्रसरसि=शीघ्रतया गच्छसि । अस्मिन् श्लोके मालोपमालङ्कारः, पुष्पिताग्रा वृत्तञ्चेति, तल्लक्षणन्तु 'अयुजि न युगरेफतो यकारो युजि तु नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा' ॥ २४ ॥

अन्वयः—रामभीता, द्रौपदी, इव, बहुभूषणशब्दमिश्रम्, झणज्झणम्, इति (शब्दं कुर्वती) किम्, पलायसे, यथा, हनुमान्, विश्वावसोः, ताम्, भगिनीम्, सुभद्राम्, इव एषः, इति, सहसा, हरामि ॥ २५ ॥

झणज्झणमिति । एवावत् प्रयत्नेनापि वसन्तसेनां, स्ववशगां कर्त्तुमसमर्थः शकारः पुनरुक्तवान्—रामभीता—रामात्=दशरथसुतात्, भीता=सन्त्रस्ता, द्रौपदी=पाञ्चाली, इव=यथा, बहुभूषणानाम्=अनेकविधालङ्काराणाम्, शब्देन=ध्वनिना मिश्रम्=मिलितम्, झणज्झणमिति=झणझणेत्यव्यक्तशब्दम्, कुर्वतीति शेषः, किम्=कथम्, पलायसे=शीघ्रमन्यत्रापसरसि ? यथा=येन प्रकारेण, हनूमान्=पवनात्मज इव, विश्वावसोः=एतदाख्यसिद्धजातीयराजविशेषस्य, ताम्=विख्याताम्, भगिनीम्=सोदराम्, सुभद्राम्=श्रीकृष्णस्य भगिनीम्, इव, एषः=उपस्थितः अहम्, इति=इत्थम्, सहसा=हठात्, त्वाम्=वसन्तसेनाम्, हरामि=अपनयामि । वाक्यद्वयेऽपि हतोपमालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तञ्च ॥ २५ ॥

जाती है, मेघ के गर्जन से डरी हुई हंसी की तरह डरकर थर-थर काँपती हुई आखिर तुम क्यों भाग रही हो ॥ २४ ॥

शकार—राम से डरी हुई द्रौपदी की तरह क्यों भाग रही हो ? तेज-तेज दौड़ने के कारण तुम्हारी देह के सारे जेवर एक साथ झनझना रहे हैं । ठहरो, जैसे विश्वावसु की बहन सुभद्रा का हनूमान ने अपहरण किया था उसी तरह मैं अभी तुम्हें अपहृत करता हूँ ॥ २५ ॥

चेट—अरी वसन्तसेने, राजा के प्रिय पात्र शकार के साथ मौज करो । मांस

[रमय च राजवल्लभं ततः खादिष्यसि मत्स्यमांसकम् ।
एताभ्यां मत्स्यमांसाभ्यां श्वानो मृतकं न सेवन्ते ।।]

विटः—भवति । वसन्तसेने ।

किं त्वं कटीतटनिवेशितमुद्वहन्ती
ताराविचित्ररुचिरं रशनाकलापम् ।
वक्त्रेण निर्मथितचूर्णमनःशिलेन
त्रस्ताऽद्भुतं नगरदैवतवत् प्रयासि ।। २७ ।।

अन्वयः—(हे वसन्तसेने) राजवल्लभम्, रमय, ततः, मत्स्यमांसकम्, खादिष्यसि । एताभ्याम्, मत्स्यमांसकाभ्याम् (तृप्ताः), श्वानः, मृतकम्, न, सेवन्ते ।। २६ ।।

रमयेति । एवं चेटोप्यनुसरन् तामलभमानः पुनरुवाच—हे वसन्तसेने, राज्ञः= नृपस्य, बल्लभम्=प्रियम्, शकारम्, रमय=रतिदानेनानन्दय, ततः=तत्सम्पर्कात्, मत्स्याश्च, मांसञ्च मत्स्यमांसम् तदेव मत्स्यमांसकम्=सुस्वादुभोजनञ्च, खादिष्यसि =भक्षयिष्यसि, एताभ्याम्=मत्स्यमांसाभ्याम्, तृप्ताः=सन्तुष्टाः, श्वानः=कुक्कुराः, मृतकम्=शवशरीरम्, न सेवन्ते=न खादन्ति । अस्मिन् श्लोके काव्यलिङ्गमलङ्कारः, आर्यावृत्तम्, पृथिवीधरमते तु मात्रासमकं छन्दस्तल्लक्षणन्तु—मात्रासमकं नवमोऽगान्त्यः ।। २६ ।।

विटः—भवति वसन्तसेने=मान्ये वसन्तसेने,

अन्वयः—त्वम्, कटीतटनिवेशितम्, ताराविचित्ररुचिरम्, रशनाकलापम्, उद्वहन्ती, निर्मथितचूर्णमनःशिलेन, वक्त्रेण, नगरदैवतवत्, त्रस्तादद्भुतम्, किम्, प्रयासि ।। २७ ।।

किं त्वमिति । त्वम्=भवती, कटीतटे=श्रोणिप्रान्ते, निवेशितम्=संस्थापितम्, ताराभिः=मुक्ताभिः, विचित्रश्चासौ रुचिरश्च विचित्ररुचिरः=अद्भुतमनोहरः तम्, रशनाकलापम्=मेखलाभूषणम्, उद्वहन्ती=धारयन्ती, निर्मथिता=तिरस्कृता, चूर्णाः =चूर्णीकृता, मनःशिला=रक्तवर्णोपधातुविशेषो यत्र तथाभूतेन, वक्त्रेण=आननेन, उपलक्षिता सति, त्वं नगरदैवतवत्=नगराधिष्ठितदेवीवत्, किम्=हेतुना, प्रयासि= प्रकर्षेण गच्छसि । श्रौती उपमा, उत्प्रेक्षालङ्कारो वा, वसन्ततिलकं वृत्तम् ।। २७ ।।

और मछली यथेच्छ खाओ । इनके घर इनकी मात्रा इतनी अधिक है कि कुत्ते भी इन्हें छोड़कर किसी मृतक पर नहीं टूटते ।। २६ ।।

विट—अरी ओ वसन्तसेने, कमर में मनमोहक करधनी पहनकर तथा मनःशिला के सुगन्धित चूर्ण का मुखपर लेप चढ़ाकर तो तुम साक्षात् नगरदेवी की तरह प्रतीत होती हो । फिर इस तरह भयाक्रान्त होकर क्यों भाग रही हो ? ।। २७ ।।

विमर्श--शकार के कथन में काल एवं सम्बन्ध की असम्बद्धता स्वाभाविक है । इसी तरह चेट के कथन में वक्ता के अनुरूप ही उसकी निम्न कोटि की उपमा एवं उक्ति भी संयोजित है ।

शकारः—

अह्मेहि चण्डं अहिशलिअन्ती वण्णे शिआली विअकुक्कुलेहि ।
पलाशि शिग्घं तुलिदं शवेगं शवेण्टणं मे हलअं हलन्ती ॥ २८ ॥

[अस्माभिश्चण्डमभिसार्यमाणा वने शृगालीव कुक्कुरैः ।
पलायसे शीघ्रं त्वरितं सवेगं सवृन्तं मम हृदयं हरन्ती ॥]

वसन्तसेना—पल्लवअ ! पल्लवअ ! परहुदिए ! परहुदिए ! । **[पल्लवक ! पल्लवक ! परिभृतिके ! परिभृतिके !]**

शकारः—(सभयम् !) भावे ! भावे ! मणुश्शे, मणुश्शे ! । **[भाव ! भाव ! मनुष्यो, मनुष्यः ।]**

विटः—न भेतव्यं न भेतव्यम् ।

अन्वयः—वने, कुक्कुरैः, शृगाली, इव, अस्माभिः, चण्डम्, अभिसार्यमाणा मम, हृदयम्, सवृन्तम्, हरन्ती, शीघ्रम्, त्वरितम्, संवेगेन, पलायसे ॥ २८ ॥

विपुलतरप्रयासेनाऽपि वशीकर्त्तुमक्षमः शकारो वसन्तसेनामुद्दिश्य पुनरप्याह—**अस्माभिरिति** । वने=अरण्ये, कुक्कुरैः=श्वभिः, अभिसार्यमाणा इति, शृगाली=शिवा, इव=यथा, अस्माभिः=शकारादिभिः, चण्डम्=द्रुतम्, यथा स्यात्तथा, अभिसार्यमाणा=अनुगम्यमाना, मम=शकारस्य, हृदयम्=चित्तम्, सवृन्तम्=समूलबन्धम्, हरन्ती=स्वाधीनीकुर्वन्ती, शीघ्रम्=द्रुतम्, त्वरितम्=अतिशीघ्रम्, सवेगम्=झटिति यथा स्यात्तथा, पलायसे=गच्छसि । शीघ्रम्, त्वरितं सवेगमित्यादीनामेकार्थपरतया पुनरुक्त्यादिदोषः सम्भाव्यते, तथापि शकारस्य मूर्खत्वात् तदीयोक्तौ दोषः सोढव्यः । अत्रोपमालङ्कारः, उपजातिनाम वृत्तञ्च ॥ २८ ॥

वसन्तसेना—पल्लव एव पल्लवकस्तत्सम्बुद्धौ हे पल्लवक ! नवीनकिसलयतुल्यरक्तवर्णशरीरत्वात् पल्लवकनामधेयो वसन्तसेनाभृत्यः । एवञ्च परभृतिकानाम वसन्तसेनायाः दासी तस्या सुमधुरकण्ठरवशालित्वात् अन्वर्थकतया परभृतिका इति नाम तत्सम्बुद्धौ परभृतके इति संज्ञायां कन्प्रत्ययः ।

शकारः—(सभयम्=सत्रासम्) भाव इति पण्डितापरपर्यायः, मनुष्य इति सम्बोधनं मानवान्तरं वसन्तसेनायाः रक्षकं मत्वा अन्यमानवकृतमाक्रमणं स्वस्मिन् सम्भाव्य शकारस्येयमुक्तिः ।

विटः—न भेतव्यम्=मा भैः, भयस्यात्र नावकाशः ।

शकार—जंगल में कुत्तों से खदेड़े जाने पर जैसे कोई सियारिन जान लेकर भागती है, उसी तरह हम तुम्हारा पीछा कर रहे हैं और तुम हमारा दिल चुराकर गिरती-पड़ती भाग रही हो ॥ २८ ॥

वसन्तसेना—अरे ओ पल्लवक, अरी परभृतिके !

शकार—(**डरते हुए**) मान्यवर ! आदमी है आदमी ।

विट—मत डरो, डरो नहीं ।

वसन्तसेना—माहविए ! माहविए ! । [**माधविके ! माधविके !**]

विटः—(सहासम् !) मूर्ख ! परिजनोऽन्विष्यते ।

शकारः—भावे ! भावे ! इत्थिआं अण्णेशदि ? । [**भाव ! भाव ! स्त्रियमन्विष्यति ?**]

विटः—अथ किम् ।

शकारः—इत्थिआणं शदं मालेमि, शूले हगे ? [**स्त्रीणां शतं मारयामि, शूरोऽहम् ।**]

वसन्तसेना—(शून्यमवलोक्य !) हद्धी ! हद्धी ! कथं परिजणो वि परिब्भट्ठो । एत्थ मए अप्पा सअं ज्जेव रक्खिदव्वो । [**हा धिक् हा धिक् ! कथं परिजनोऽपि परिभ्रष्टः । अत्र मया आत्मा स्वयमेव रक्षितव्यः ।**]

वसन्तसेना—माधविके, माधविके=इयमपि वसन्तसेनायाः परिचारिकेति। वसन्तसेनायाः पल्लवकः सेवकः, परभृतिका सेविका, माधविका च अपरा परिचारिकेति । अत्रायम्भाव--वसन्तकाले यथा नवपल्लवस्य दर्शनात् कोकिलस्योत्कर्षदर्शनात् माधविकायाः साक्षात् वसन्तसेनामयत्वाच्च कवेरुक्तिवैचित्र्यादर्थान्तरध्वनिः ।

विटः—(सहासम्=परिहासं कृत्वा) मूर्ख=हे अज्ञ, इयम् परिजनः=सेवकः, अन्विष्यते ।

शकारः—भाव, भाव=हे श्रीमान्, किमियं काऽपि स्त्रियम्=परिचारिकाम्, अन्विष्यति ।

विटः—अथ किम्=अस्त्येवमेव ।

शकारः—स्त्रीणाम्=नारीजातिविशेषाणाम्, शतम्=शतसंख्यकम्, मारयामि=हन्तुं शक्नोमि, यतोऽहम्=शकारः, शूरः=वीरः अस्मि ।

वसन्तसेना—(शून्यम्=आकाशम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा) हा धिक्, कथमित्याशङ्कायाम्, परिजनोऽपि=ममाङ्गरक्षकोऽपि, परिभ्रष्टः=दूर एव स्थितः । अत्र=अस्मिन् कार्ये, मया=वसन्तसेनया, आत्मा स्वयमेव रक्षितव्यः, अर्थात् स्वकीयां रक्षामहं स्वयमेव कुर्याम् ।

वसन्तसेना—अरी ओ माधविके !

विट—(**हँसते हुए**) मूर्ख, यह तो अपने सेवक और सेविकाओं को खोज रही है ।

शकार—क्या कहा श्रीमान् ? यह किसी नारी को खोज रही है ?

विट—तो और क्या ।

शकार—तब तो सैकड़ों औरतों को मारने के लिए मैं बहादुर ही हूँ ।

वसन्तसेना—(**आकाश की ओर देखकर**) हाय, हाय, सभी पीछे छूट गए, अब तो अपनी रक्षा हमें आप ही करनी है ।

विटः—अन्विष्यताम्, अन्विष्यताम् ।

शकारः—वशन्तशेणिए ? बिलव बिलव, परहुदिअं वा पल्लवअं वा शव्वं वा वशन्तमाशं । एम अहिशालिअन्तीं तुमं को पलित्ताइश्शदि ? । **[वसन्तसेनिके ! विलप विलप परभृतिकां वा, पल्लवकं वा, सर्वं वा वसन्तमासम् । मया अभिसार्यमाणां त्वां कः परित्रास्यते ? ।]**

किं भीमशेणे जमदग्गिपुत्ते कुन्तीशुदे वा दशकन्धले वा ।
एशे हगे गेण्हिअ केशहत्थे दुश्शाशणश्शाणुकिदिं कलेमि ।। २९ ।।
[किं भीमसेनो जमदग्निपुत्रः कुन्तीसुतो वा दशकन्धरो वा ।
एषोऽहं गृहीत्वा केशहस्ते दुःशासनस्यानुकृतिं करोमि ।।]

णं पेक्ख, णं पेक्ख । **[ननु प्रेक्षस्व ननु प्रेक्षस्व ।]**

विटः—अन्विष्यताम्=अन्वेषणं कुरु ।

शकारः—वसन्तसेनिके ! विलप-विलप=यथेच्छं विलापं कुरु । परभृतिकाम्=स्वपरिचारिकाम्, कोकिलां वा, पल्लवकम्=निजसेवकम्, नवनिर्गतपत्रम् वा, सर्वम्=सकलं वा, वसन्तमासं=वसन्तर्त्तुम् । अत्र खिन्नाया वसन्तसेनया समाहूतानां स्वपरिजनानां कोकिलपल्लवापरपर्यायिकं परभृतिकापल्लवकनामाकर्ण्य शकारः परभृतिकाशब्दं पल्लवकशब्दञ्च कोकिलापरपर्यायितया नूतनपत्रापरपर्यायितया च योजितवान् इति वक्रोक्तिरलङ्कारः । मया=शकारेण, अभिसार्यमाणां=अनुगम्यमानाम्, परित्रास्यते=रक्षयिष्यति ।

अन्वयः—किम्, जमदग्निपुत्रः, भीमसेनः, वा, कुन्तीसुतः, वा, दशकन्धरः, एषः, अहम्, केशहस्ते, गृहीत्वा, दुःशासनस्य, अनुकृतिं, करोमि ।। २९ ।।

शकारः प्रसिद्धवीराणामपि रक्षणासामर्थ्यं प्रदर्शयति—**किमिति** । जमदग्निपुत्रः=परशुरामः, भीमसेनः=वृकोदरः, वा=अथवा, कुन्तीसुतः=कर्णोऽर्जुनो वा, दशकन्धरः=रावणः, त्वां रक्षिष्यतीति भावः, एषः=त्वत्पृष्टे संलग्नः, अहम्=शकारः, केशहस्ते=केशकलापे 'पाशः पक्षश्च कलापार्थाः कचात्परे' इत्यमरः । त्वाम्=वसन्तसेनाम्, गृहीत्वा=धृत्वा, दुःशासनस्य=दुर्योधनानुजस्य, अनुकृतिम्=अनुकरणम्, दुःशासनः यथा द्रौपद्याः केशाकर्षणं चकार तथैव सम्प्रति अहमपि तव केशकलापं आकृष्य त्वां पीडयितुमारभे । अस्मिन् श्लोके उपमालङ्कारः, इन्द्रवज्रावृत्तञ्च ।।२९।।

ननु=निश्चयेन, प्रेक्षस्व=मनसा विचारं कुरु ।

विट—खोजो, खूब खोज लो ।

शकार—रो, जी भर कर रो ले, पल्लव, परभृतिका या पूरे बसन्त के लिए, पर जब मैं तुम्हारा पीछा कर रहा हूँ तो तुम्हें बचायेगा कौन ?

तुम्हारी रक्षा अब न तो भीम कर सकता है, न अर्जुन, न परशुराम तुम्हें बचा सकते हैं न रावण ही । तुम्हारा जूड़ा मेरे हाथ में है । अब तो मैं दुःशासन का अनुकरण करता हूँ ।। २९ ।।

देखो, इधर देखो—

अशी शुतिक्खे, बलिदे अ मत्थके, कप्पेम शीशं उद मालएम वा।
अलं तवेदेण पलाइडेण मुमुक्खु जे होदि, ण शे क्खु जीअदि ।। ३० ।।
[असिः सुतीक्ष्णो बलितश्च मस्तकं कृन्तामः शीर्षम्, उत मारयामो वा।
अलं तवैतेन पलायितेन मुमूर्षुर्यो भवति, न स खलु जीवति ।।]

वसन्तसेना—अज्ज ! अबला क्खु अहं। [आर्य अबला खलु अहम्।]

विटः—अत एव ध्रियसे।

शकारः—अदो ज्जेव न मालीअशि। [अत एव न मार्यसे।]

वसन्तसेना—(स्वगतम्।) कधं अणुणओ वि शे भअं उप्पादेदि। भोदु,

अन्वयः—सुतीक्ष्णः, असिः, तव, मस्तकम्, च, वलितम्, शीर्षम्, कृन्तामः, उत, मारयामि, वा, तव, एतेन, पलायितेन, अलम्, यः, मुमुर्षुः, भवति, सः, खलु, न, जीवति ।। ३० ।।

एतवता प्रयत्नेन वसन्तसेनां केशेषु गृहीत्वा प्रसन्नः शकारो भीषयन्नाह—**असिरिति**। सुतीक्ष्णः=निशितः, असिः=करवालः, मम करे विद्यते इति शेषः। तव=वसन्तसेनायाः, मस्तकम्=शिरः, च=पुनः, वलितम्=सुन्दरम् वेति, एवञ्च तव शीर्षम्=मस्तकम्, कृन्तामः=छिन्द्मः, उत=अथवा, मारयामि=ते प्राणविनाशं कुर्मः, तव एतेन=कारणेन, पलायितेन=अपसरणेन, अलम्=व्यर्थमिति भावः। यः=कश्चित्, मुमूर्षुः=उपस्थितमरणः, भवति=अस्ति, सः=असौ, खलु=निश्चयेन न=नहि, जीवति=प्राणान् धारयति, आसन्नमृत्युः कुत्रापि जीवितुं न शक्नोतीति भावः। वलितमित्यस्य रक्षितमिति पर्याय इति श्रीहरिदासभट्टाचार्यः, जीवानन्द-महाशयैस्तु धृतमिति पर्यायः लिखितम्। अस्मिन् श्लोके वंशस्थविलोपेन्द्रवज्रा-वृत्ताभ्यां विजातीयोपजातीयवृत्तम् ।। ३० ।।

वसन्तसेना—आर्य=मान्य, अहम्=वसन्तसेना, खलु=निश्चयेन, अबला=नारी इति अर्थात् स्त्रियं सदैवावध्यभावेन भावयेदिति स्मृतिवचनात्त्वया न गृहीतव्येति।

विटः—अत एव=अबलात्वादेव, ध्रियसे=जीवसीति भावः।

शकारः—अत एव=अस्मात् कारणादेव, न=नहि, मार्यसे।

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कथमित्याशङ्कायाम्, अस्य=दुष्ट-

मेरी तलवार बड़ी तेज है और तुम्हारी गर्दन बड़ी सुन्दर है। मैं तुम्हारी गर्दन काट डालूं या तुम्हें मार डालूं—तुम्हारा भागना बेकार है क्योंकि जो मरनेवाला है वह निश्चित रूप से जीवित नहीं रह सकता ।। ३० ।।

विमर्श—आसन्नमृत्यु वाले व्यक्ति को मुमूर्षु कहा जाता है।

शङ्के मरिष्यतीति मुमूर्षति—मृ + सन्=मुमूर्ष + उ=मुमूर्षुः।

वसन्तसेना—आर्य, मैं अबला हूँ।

विट—इसीलिए अब तक जीवित हो।

शकार—इसीलिए अब तक तुम्हारी हत्या नहीं की गई है।

एव्वं दाव । (प्रकाशम् ।) अज्ज ! इमादो किं पि अलंकरणं तक्कीअदि ? । [**कथमनुनयोऽप्यस्य भयमुत्पादयति । भवतु एवं, तावत् । आर्य ! अस्मात् किमप्यलङ्करणं तर्क्यते ?**]

विटः—शान्तं भवति ! वसन्तसेने ! न पुष्पमोषमर्हति उद्यानलता । तत् कृतमलङ्करणैः ।

वसन्तसेना—ता किं क्खु दाणिं ? [**तत् किं खलु इदानीम् ? ।**]

शकारः—हगे देवपुलिशे मणुश्शे वासुदेवके कामइदव्वे । [**अहं देवपुरुषो मनुष्यो वासुदेवः कामयितव्यः ।**]

वसन्तसेना—(सक्रोधम्) शन्तं शन्तं । अवेहि, अणज्जं मन्तेशि । [**शान्तं शान्तम् । अपेहि, अनार्य्यं मन्त्रयसि !**]

जनस्य, अनुनयोऽपि=अनुकूलताऽपि, भयम्=त्रासम्, उत्पादयति=जनयति, भवत्वेवं तावत्=युक्त्यैव कार्यं साधनीयमिति भावः । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) आर्य=मान्य, अस्मात्=मत्तः सकाशात्, अलङ्करणम्=आभूषणम् तर्क्यते=ग्रहीतुमिष्यते इति भावः ।

विटः—शान्तम्=विरतं भवतु, न वाच्यमिति भावः । भवति=श्रीमति वसन्तसेने, उद्यानलता=संरक्षितवाटिका-बल्लरी, पुष्पमोषम्=कुसुमत्रोटनम्, नार्हति=न शक्नोतीति, अनेन विशेषणेन तस्याः सयत्नसम्पोषितसौन्दर्यमङ्गलालित्यञ्च कथितम्, कृतमलमित्यर्थः । अयम्भावः—यथा कुसुमसमृद्धा वल्ली कुसुमचयनेनाशोभना सम्पद्यते तथैव तव गात्रात् आभूषणहरणेन सौन्दर्यहानिर्भविष्यति, अत्र प्रस्तुतवसन्तसेनावर्णनप्रस्तावेऽप्रस्तुत-लतावर्णनेऽप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः ।

वसन्तसेना—तत्=तर्हि, किमिति प्रश्ने, खलु प्रयोजनम्, निग्रहेण, मारणेन वा युवयोरिति ।

शकारः—त्वया मानवशरीरधारी साक्षात्, श्रीकृष्णः कामयितव्योऽहमिति तात्पर्यः ।

वसन्तसेना—(सक्रोधम्=सकोपम्) शान्तम् शान्तम्=विरतं भवतु, इदृग्वाक्यं त्वया न वक्तव्यम्, अपेहि=दूरमपसर, अनौचित्येयमुक्तिरतः अवाच्या, अनार्यं=आर्यजनविरुद्धम्, मन्त्रयसि=कथयसि ।

वसन्तसेना—(**अपने आप**) हाय, इनकी विनम्रता भी कितनी भयावह है (**प्रकाश में**) आर्य, आप मुझसे कौन-सा आभूषण लेना चाहते हैं ?

विट—वसन्तसेने, तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए क्योंकि उद्यान की लता के फूल तोड़े नहीं जाते । इसलिए अपने आभूषणों को रहने दो ।

वसन्तसेना—तो आप इस समय मुझसे क्या चाहते हैं ?

शकार—मुझे इस समय मनुष्य रूप में साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही समझ लो ।

वसन्तसेना—(**अत्यन्त गुस्से में**) मैं बिलकुल सुनना नहीं चाहती, चुप रहो । दूर रहो, बिलकुल ही अशिष्ट बातें कर रहे हो ।

शकारः—(सहस्ततालं विहस्य) भावे ! भावे ! पेक्ख दाव । अन्तलेण शुशिणिद्धा एशा गणिआदालिआ णं । जेण मं भणादि, एहि शन्तेशि किलिन्तेशि त्ति । हगे ण गामन्तलं ण णगलन्तलं वा गडे । अज्जुके ! शवामि भावश्श शीशं अत्तणकेहिं पादेहिं । तव ज्जेव्व पश्चाणुपश्चिआए आहडन्ते शन्ते किलिते ह्मि संवुत्ते । [**भाव ! भाव ! प्रेक्षस्व तावत् । अन्तरेण सुस्निग्धा एषा गणिकादारिका ननु । येन मां भणति एहि, श्रान्तोऽसि, क्लान्तोऽसीति । अहं न ग्रामान्तरं न नगरान्तरं वा गतः । आर्यिके ! शपे भावस्य शीर्षम्, आत्मीयाभ्याम् पादाभ्याम् । तवैव पृष्ठानुपृष्ठिकया आहिण्डमानः, श्रान्तः क्लान्तोऽस्मि संवृत्तः ।**]

विटः—(स्वगतम् ।) अये ! कथं शान्तमित्यभिहिते श्रान्त इत्यवगच्छति मूर्खः । (प्रकाशम् ।) वसन्तसेने ! वेशवासविरुद्धमभिहितं भवत्या ।

शकारः—(सहस्ततालम्=करतालिकां दत्त्वा, विहस्य=ईषद्हासङ्कृत्वा) भाव इत्यादरे द्विरुक्तिः, प्रेक्षस्व तावत्=तावदवलोकय, अन्तरेण=हृदयेण, सुस्निग्धा= अत्यनुरक्ता मयेति भावः । एषा=इयम्, गणिकादारिका=वेश्यापुत्री ननु । येन= कारणेन, माम्=शकारम्, भणति=कथयति, एहि=समागच्छ, श्रान्तोऽसि= थकितोऽसि, क्लान्तोऽसि=विवर्णोऽसि । अहम्=शकारः, न=नहि, ग्रामान्तरम्= अन्यग्रामम्, वा=अथवा, न=नहि, नगरान्तरम्=स्वनगरभिन्नम्, गतः=प्राप्तः, आर्यिके=मान्ये, शपे=शपथं गृह्णामि, भावस्य=विदुषः विटस्येत्यर्थः, शीर्षम्= मस्तकम्, आत्मीयाभ्यां पदाभ्याम्—'अत्र स्वकीयाभ्यां हस्ताभ्याम् विटस्योत्तमाङ्गम् स्पृष्ट्वा शपथं गृह्णामि' इति हस्ताभ्यामिति वक्तव्ये पादाभ्यामिति यदुक्तं तत्सामाजिकानां परिहासाय शकार वचनत्वाल्लोकन्यायविरुद्धमिति सोढव्यम् । तवैव पृष्टानुपृष्टिकया=पश्चात् पश्चात्, आहिण्डमानः=इतस्ततः गतिं कुर्वन्, श्रान्तः=थकितः, क्लान्तः=विवर्णः, संवृत्तोऽस्मि=जातोऽस्मि ।

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अये=इत्याश्चर्ये, कथमिति प्रश्ने, शान्तम्= घृणासूचकशब्दम्, अभिहिते=उच्चारिते, श्रान्तम्=क्लान्तम्, इत्यवगच्छति= अवबुध्यति, मूर्ख=अज्ञः अस्तीति भावः । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) वसन्तसेने, वेशे=वेश्यालये, वासः=निवासः, तस्य विरुद्धम्=विपरीतम्, भवत्या=श्रीमत्या, अभिहितम्=कथितम् । अयम्भावः—यदि त्वं पतिव्रतासि तर्हि सर्वजनसुलभवेश्यालये कथं निवससि ।

शकार—(**ताली पीटकर, हँसते हुए**) मान्यवर, जरा देखो, तो, यह वेश्या हमें पाकर भीतर से कितना अधिक प्रसन्न है, क्योंकि मुझसे कह रही है—'आओ, थक गये हो', पर मैं तो कहीं दूसरे गाँव या शहर में नहीं गया हूँ । अरी ओ गणिके, मैं अपने पैरों से मान्य विट का माथा छू कर कसम खाता हूँ, तुम्हारे पीछे-पीछे दौड़ने से ही थका हूँ ।

विट—(**अपने आप**) अरे, यह कितना मूर्ख है—वह घृणासूचक शब्द 'शान्तम्'

पश्य—

तरुणजनसहायश्चिन्त्यतां वेशवासो,
विगणय गणिका त्वं मार्गजाता लतेव।
वहसि हि धनहार्यं पण्यभूतं शरीरं,
सममुपचर भद्रे! सुप्रियं वाप्रियं वा ॥ ३१ ॥

अपि च—

वाप्यां स्नाति विचक्षणो द्विजवरो मूर्खोऽपि वर्णाधमः,
फुल्लां नाम्यति वायसोऽपि हि लतां या नामिता बर्हिणा।

अन्वयः—वेशवासः, तरुणजनसहायः, चिन्त्यताम्, त्वम्, मार्गजाता, लता, इव, गणिका, विगणय, हि, पण्यभूतम्, धनहार्यम्, शरीरम्, वहसि, हे भद्रे, सुप्रियम्, वा, अप्रियम्, वा, समम्, उपचर ॥ ३१ ॥

तरुणजनेति। वेशे=गणिकागृहे वासः=निवासः 'वेशो वेश्याजनाश्रयः' इत्यमरः। तरुणजनः=युवजनः, सहायः=आश्रयः यस्य सः, चिन्त्यताम्=विचार्यताम्, त्वम्=गणिकागृहे जाता वसन्तसेना, मार्गे=पथि, जाता=समुत्पन्ना, लता=वल्ली, इव=यथा, गणिका=वेश्या असि, विगणय=विचारय, हि=यतः, पण्यभूतम्=विक्रेयस्वरूपम्, अत एव धनहार्यम्=धनेन ग्राह्यम्, शरीरम्=देहम्, वहसि=धारयसि। अतः हे भद्रे=हे साधुशीले, कार्यं साधयितुं प्रशंसति, सुप्रियम्=अभीप्सितम्, वा=अथवा, अप्रियम्=अनभीष्टम् जनमिति शेषः। वा समम्=तुल्यम्, उपचर=सेवस्व। यतः—

निर्गुणानपि न द्वेष्टि न रज्यति गुणिष्वपि।
वित्तमात्रं समालोक्य सा रागं दर्शयेद् बहिः॥

इति वेश्यालक्षणप्रस्तावे। अत्र वयमप्रिया अपि त्वया सेव्या इति प्रस्तुतार्थः, अप्रस्तुतेन गणिकात्वादिख्यापनेनावगम्यते इत्यप्रस्तुतप्रशंसा, द्वितीये पादे उपमा शेषार्द्धे तु प्रियाप्रिययोर्तुल्यरूपेण सेवायां धनहार्यत्वरूपपदार्थस्य हेतुत्वोपन्यासात् काव्यलिङ्गमिति एषामलङ्काराणां संसृष्टिः। मालिनीवृत्तम् तल्लक्षणन्तु—'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' ॥ ३१ ॥

अन्वयः—विचक्षणः, द्विजवरः, वर्णाधमः, मूर्खः, अपि, वाप्याम्, स्नाति, या, बर्हिणा, नामिता, फुल्लाम्, लताम्, वायसः, अपि, नाम्यति, हि, यथा, नावा, ब्रह्म-

---

कहती है और यह उसे श्रान्त अर्थात् थका हुआ मानता है। (**प्रकट**) वसन्तसेने, तुमने वेश्यालय के विरुद्ध बातें कही हैं। देखो—

वेश्यालय का जीवन युवकों की सहायता पर टिकी समझो। राह में पैदा हुई लता की तरह तुम अपने को समझो। बाजार में खरीदी जानी वाली वस्तु की तरह तुम्हारी यह देह है। तुम्हें प्रिय अप्रिय के साथ समान व्यवहार करना चाहिए।

और भी—जिस सरोवर में विद्वान् ब्राह्मण नहाते हैं, उसी में नीच मूर्ख भी स्नान करते हैं। जिस विकसित लता पर बैठकर मयूर उसे झुकाता है, उसी पर

ब्रह्मक्षत्रविशस्तरन्ति च यया नावा तयैवेतरे,
त्वं वापीव लतेव नौरिव जनं वेश्यासि सर्वं भज ॥ ३२ ॥

वसन्तसेना—गुणो क्खु अणुराअस्स कालणं, ण उण बलाक्कारो । [गुणः खलु अनुरागस्य कारणम्, न पुनर्बलात्कारः ।]

क्षत्रविशः, तरन्ति, तथा, एव, इतरे च । त्वम्, वेश्या, असि, वापी, इव, लता, इव, नौ, इव, सर्वम्, जनम्, भज ॥ ३२ ॥

वाप्यामिति । विचक्षणः=विद्वान्, द्विजवरः=श्रेष्ठब्राह्मणः, वर्णाधमः=वर्णेषु हीनः चाण्डालो वा, मूर्खः=अज्ञः, अपि=चेत्, वाप्याम्=एकस्मिन्नेव सरोवरे, स्नाति=यथा स्नानम् करोति, या=लता, बर्हिणा=मयूरेण, नामिता=अधरीकृता उपवेशनेन इति शेषः, फुल्लाम्=विकसिताम्, तां लताम्=वल्लीम्, वायसः=काकः, अपि=चेत्, नाम्यति=नमयति नमनं, भावः 'भावे घञ्' नामं करोतीत्यर्थे 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिच्, ततः क्विप् 'णेरनिटि' इति णिचो लोपेऽल्लोपे 'कण्ड्वादिभ्यो यक्' इति यकि नाम्यतीति रूपम्, इति प्रबोधिनीकारः केचित्तु पूर्वोक्तविग्रहे 'संज्ञापूर्वकोविधिरनित्यः' इति नियमात् शपि गुणमकृत्वा, इकारस्य यकारे नाम्यतीति वदन्ति । नाम्यतीति कण्वादिपाठात् 'नामम् करोति' इत्यर्थे यकारलोपे च रूपमिति पृथ्वीधरः । हि=विदितमिदम्, यया नावा=तरण्याः, ब्रह्मक्षत्रविशः=ब्राह्मणक्षत्रियवैश्याः, तरन्ति=पारं व्रजन्ति, तयैव नावा, इतरे=शूद्राः अन्त्यजाश्च तरन्तीति शेषः । त्वम्=वसन्तसेना, वेश्या=गणिका, असि=वर्त्तसे, अतः वापीव=दीर्घिकेव, नौः इव=नौकेव, सर्वम्=सकलम्, जनम्=लोकम्, प्रार्थयितारं वा, भज=सेवस्व । अत्राप्रस्तुतयोर्द्विजवरवर्णाधमयोः स्नातीत्येकक्रियया कर्त्तृत्वेनान्वयात् एवमप्रस्तुतानां ब्रह्मक्षत्रविशां तदितरेषामिति तरन्तीत्येकक्रिययाऽन्वयाच्च तुल्योगिताद्वयम् । एकस्योपमेयस्य वेश्यारूपस्य वाप्यादीनि बहूनि उपमानानि सन्ति तेन मालोपमा । सर्वं भज इत्यर्थं प्रति वेश्या असि, इत्यस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गम् । परस्परमेषामङ्गाङ्गिभावेन सङ्करालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

वसन्तसेना—गुणः=निपुणता एव, खलु=निश्चयेन, अनुरागस्य=प्रेम्णः, कारणम्=हेतुः, न खलु बलात्कारः=हठावेशेन प्रवृत्तिरिति, युवयोः सद्गुणाभावान्न मयानुरक्तिरिति भावः ।

बैठकर कौए भी उसे झुका देते हैं जिस नौका से ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य जैसे श्रेष्ठ जाति के लोग पार उतरते हैं, उसी नौका से एक शूद्र या अन्त्यज भी पार उतर जाते हैं। तुम उसी सरोवर लता और नौका की तरह सर्वजनसुलभ वेश्या हो, तुम्हें सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए ॥ ३२ ॥

वसन्तसेना—प्रेम तो गुण से होता है न कि बलात्कार से ।

शकारः—भावे ! भावे ! एशा गब्भदासी कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि ताह दलिद्दचालुदत्ताह अणुलत्ता ण मं कामेदि । वामदो तश्श घलं । जधा तव मम अ हत्थादो एशा ण पलिब्भंशदि, तधा कलेदु भावे । [**भाव ! भाव ! एषा गर्भदासी कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य अनुरक्ता, न मां कामयते । वामतस्तस्य गृहम्, यथा तव मम च हस्तात् एषा न परिभ्रश्यति, तथा करोतु भावः ।**]

विटः—(स्वगतम् ।) यदेव परिहर्त्तव्यं तदेवोदाहरति मूर्खः । कथं वसन्तसेना आर्यचारुदत्तमनुरक्ता । सुष्ठु खल्विदमुच्यते—'रत्नं रत्नेन सङ्गच्छते' इति । तद्गच्छतु, किमनेन मूर्खेण । (प्रकाशम्) काणेलीमातः ! वामतस्तस्य सार्थवाहस्य गृहम् ? ।

शकारः—भाव भाव=हे मान्य, एषा=समुपस्थिता वसन्तसेना, गर्भदासी=जन्मप्रभृतिचेटीत्यर्थः, कामदेवस्य=मदनस्य, आयतनम्=भवनम्, तस्योद्यानम्=पुष्पवाटिका तस्मात्, ततः प्रभृति तत्र प्रविश्य तस्य दारिद्रचारुदत्तस्य=अकिञ्चनब्राह्मणस्य, अनुरक्ता=आसक्तेयमिति भावः, न=नहि, माम् कामयते=वाञ्छति । वामतः=वामभागे, एव तस्य=चारुदत्तस्य, गृहम्=सदनम्, अस्ति । अर्थात् वसन्तसेनायाः मित्रस्य चारुदत्तस्य गृहं समीपे एव वर्त्तते इति कथनं कथमपि नोचितम्, तथापि मूर्खः शकारस्तदेव वदति । यथा=येन प्रकारेण, तव=भवतः, मम=शकारस्य च, हस्तात्=करात्, न=नहि, एषा=वसन्तसेना, परिभ्रश्यति=परिच्युता भवति, तथा=तेन प्रकारेण, कार्यं करोतु भाव=भवान्निति ।

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) यदेव परिहर्त्तव्यम्=परित्यक्तव्यम्, चारुदत्तस्य गृहमतिसमीपे वर्त्तते इति वसन्तसेनायै वक्तुं नोचित्तम्, तदेव मूर्खः, उदाहरति=कथयति । तेन कार्यहानिः स्यादिति भावः । सुष्ठु=साधु, खल्विदमुच्यते—रत्नम्=मणिः, रत्नेन=मणिना, सङ्गच्छते=सम्मिलति, वसन्तसेनाचारुदत्तौ रत्नतुल्यौ । अतः एतयोः सम्मिलनं सख्यं वा शोभते, (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) काणेलीमातः=अविवाहिता स्त्री असती वा माता यस्य तत्सम्बुद्धौ, वामतः=वामभागे तस्य सार्थवाहस्य=चारुदत्तस्य गृहमस्तीति पृच्छति ।

शकार—मान्यवर, जन्म से ही नीचभोग्या यह वेश्या कामदेवायतनवाटिका से ही उस अकिंचन चारुदत्त पर आसक्त है—यह मुझे तो बिलकुल नहीं चाहती है । वायीं ओर उस चारुदत्त का घर है । कुछ ऐसा उपाय करें कि यह हमारे हाथ से निकल न जाय ।

विट—(अपने आप) यह मूर्ख वही बात कहता है जो इसे नहीं कहना चाहिये । क्या वसन्तसेना चारुदत्त से प्रेम करती है । ठीक ही कहा है—रत्न का संयोग रत्न से ही होता है । तो फिर वही हो । मुझे इस मूर्ख से क्या लेना देना । **(प्रकट)** **क्यों रे व्यभिचारिणी का बेटा, बगल में ही चारुदत्त का घर है क्या ?**

शकारः—अध किं, वामदो तश्श घलं। [**अथ किम्, वामतस्तस्य गृहम्।**]

वसन्तसेना—(स्वगतम्।) अम्हहे ! वामदो तस्स गेहं त्ति जं सच्चं, अंवरज्झन्तेण बि दुज्जणेण उवकिदं। जेण पिअसङ्गमं पाविदं। [**आश्चर्यम् ! वामतस्तस्य गृहमिति यत्सत्यम्, अपराध्यतापि दुर्जनेन उपकृतम्। येन प्रियसङ्गमः प्रापितः।**]

शकारः—भावे ! भावे ! बलिए क्खु अन्धआले माशलाशिपविट्टा विअ मशिगुडिआ दीशन्दो ज्जेव पणट्टा वशन्तशेणिआ। [**भाव ! भाव ! बलीयसि खल्वन्धकारे माषराशिप्रविष्टेव मसीगुटिका दृश्यमानैव प्रनष्टा वसन्तसेना।**]

विटः—अहो ! बलवानन्धकारः। तथाहि—

आलोकविशाला मे सहसा तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना।
उन्मीलितापि दृष्टिर्निमीलितेवान्धकारेण ॥ ३३ ॥

शकारः—अथ किम्=अस्त्येवम्, वामभागे एव चारुदत्तस्य गृहमस्ति।

वसंन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) आश्चर्यम्=अत्रानन्दाभिव्यक्तिः, यदि वामः=वामभागे, तस्य=प्रियचारुदत्तस्य, गृहम्=सदनम्, अस्ति, इति कथनं सत्यमस्ति, तदा अपराध्यतापि=अपराधं कुर्वतापि, दुर्जनेन=दुष्टेन, उपकृतम्, येन=कारणेन, प्रियसङ्गमः=चारुदत्तमिलनं प्रापितः।

शकारः—भाव=हे मान्यवर, बलीयसि=प्रगाढे, खलु अन्धकारे=तमाच्छन्ने, माषस्य=कृष्णवर्ण-अन्नविशेषस्य, राशौ=समूहे, पविष्टा=मिलिता, मसिगुटिका= मसीवटिका, इव=यथा, वसन्तसेना दृश्यमानैव, प्रनष्टा=तिरोहितेति भावः।

विटः—अहो=इत्याश्चर्ये, बलवान्=निविडः, अन्धकारः=तमः, तथाहि—

अन्वयः—आलोकविशाला, मे, दृष्टिः, सहसा, तिमिरप्रवेशविच्छिन्ना, उन्मी-लिताऽपि, अन्धकारेण, निमीलिता, इव ॥ ३३ ॥

किमप्यवलोकितुमसमर्थः विटः निजदशां वर्णयन् प्राह—**आलोकेति**। आलोके= प्रकाशे, दर्शने वा, विशाला=विशिष्टावलोकनशक्तियुक्ता, मे=मम विटस्य, दृष्टिः

शकार—तो और क्या ? बायीं ओर तो उसी का घर है।

बसन्तसेना—(**मन ही मन**) आह ! अगर यह सच है तो अपकार करते हुए भी इसने मेरा उपकार ही किया है। इससे प्रिय चारुदत्त का मिलन तो संभव हो ही गया।

शकार—घोर अन्धकार में उड़द की ढेर पर गिरी स्याही की टिकिया की तरह यह वसन्तसेना कहाँ गायब हो गई ?

विट—अरे, कितना घोर अंधेरा है ?

प्रकाश में दूर दूर तक देखने वाली मेरी इन आँखों ने अन्धकार में आते ही मानो अपनी दर्शनशक्ति ही खो दी है। इस अन्धकार में आँखें फाड़कर देखने पर भी कुछ नहीं दीखता ॥ ३३ ॥

अपि च—

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ।। ३४ ।।

शकारः—भावे ! भावे ! अण्णेशामि वशन्तशेणिअं ? । [**भाव ! भाव ! अन्विष्यामि वसन्तसेनिकाम् ।**]

विटः—काणेलीमातः ! अस्ति किश्चिच्चिह्नम् ? यदुपलक्षयसि ।

शकारः—भावे ! भावे ! किं विअ ? (भाव ! भाव ! किमिव ?)

विटः—भूषणशब्दं सौरभ्यानुविद्धं माल्यगन्धं वा ।

नयनम्, सहसा=हठात्, तिमिरे=अन्धकारे, प्रवेशेन=आगमनेन, विच्छिन्ना=अवरुद्धा जाता इति, उन्मीलिता=दर्शनाय व्यापारिताऽपि, अन्धकारेण=तिमिरेण, निमीलिता=मुद्रिता, इव भवतीति शेषः । अत्रोत्प्रेक्षालङ्कारः, आर्यानाम वृत्तञ्च ।।३३।।

अन्वयः—तमः, अङ्गानि, लिम्पति, इव, नभः, अञ्जनम्, वर्षति, इव, दृष्टिः, असत्पुरुषसेवा, इव, विफलताम्, गता ।। ३४ ।।

लिम्पतीति । तमः=अन्धकारः, अङ्गानि=शरीरावयवान्, लिम्पति=म्रक्षति, इव=यथा । नभः=आकाशः, अञ्जनम्=कज्जलम्, वर्षति=पातयति, इव=यथा । दृष्टिः=नयनम्, असत्पुरुषस्य=दुष्टजनस्य, सेवा=परिचर्या, इव=यथा, विफलताम्=निष्फलताम्, गता=जाता, इति । अत्र पूर्वार्द्धे उत्प्रेक्षा, उत्तरार्द्धे उपमा, इत्यनयोः संसृष्टिः, अनुष्टुब्वृत्तञ्च ।। ३४ ।।

शकारः—भाव ! भाव !=हे मान्य, अन्विष्यामि=अन्वेषणं करिष्यामि, वसन्तसेनिकाम् ।

विटः—काणेलीमातः=असतीसुतः, अस्ति=वर्त्तते, किञ्चित्=किमपि, चिह्नम्=संकेतविशेषम्, यत्=यस्मात्, उपलक्षयसि=अन्वेषणं करोसि ?

शकारः—भाव ! भाव !=हे विद्वन्, किमिव=कीदृक् चिह्नविशेषं कथयसि भवान् ।

विटः—भूषणशब्दम्=अलङ्कारविशेषाणां झङ्कृतिः, सुरभिः=घ्राणतर्पणम्, तेन अनुविद्धम्=मिश्रितम्, वा=अथवा, माल्यगन्धम्=पुष्पहारसुगन्धं वेति ।

और भी—शरीर के रन्ध्र-रन्ध्र में अन्धकार भर गया है, आकाश मानो काजल बरसा रहा है । जैसे दुष्टों की सेवा निरर्थक होती है, उसी तरह मेरी दृष्टि ही निष्फल हो गई है ।

शकार—महाशय, मैं तो उसी दुष्टा वसन्तसेना को खोज रहा हूँ ।

विट—अरे वेश्या के बेटे, कोई चिह्न है, जिसके सहारे तुम उसकी खोज कर रहे हो ?

शकार—चिह्न कैसा महाशय ?

विट—जेवरों की झंकार से या सुगन्धित फूलों के बहार से ।

शकारः—शुणामि मल्लगन्धं अन्धआलपूलिदाए उण णाशिआए शुव्वतं, उण ण पेक्खामि भूषणशद्दं ! [**श्रृणोमि माल्यगन्धम्, अन्धकारपूरितया पुनर्नासिकया सुव्यक्तं पुनर्न प्रेक्षे भूषणशब्दम् ।**]

विटः—(जनान्तिकम् ।) वसन्तसेने !

कामं प्रदोषतिमिरेण न दृश्यसे त्वं
सौदामिनीव जलदोदरसन्धिलीना ।
त्वां सूचयिष्यति तु माल्यसमुद्भवोऽयं
गन्धश्च भीरु ! मुखराणि च नूपुराणि ।। ३५ ।।

शकारः—श्रृणोमीत्यत्र जिघ्रामीत्यभिप्रायेणैवोक्तशब्दस्य प्रयोगः शकारवचनत्वात् अनौचित्यदोषमपि क्षम्यमेवेति भावः । अन्धकारेण=तिमिरेण, पूरितया=व्याप्तया, सुव्यक्तम्=स्पष्टम्, ।

विटः—जनान्तिकम्=अयं नाट्योक्तिप्रकारः । एतस्य लक्षणं साहित्यदर्पणे यथा—

"त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तराकथाम् ।
अन्योन्यामन्त्रणं यत् स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम् ।।"

अन्वयः—(हे वसन्तसेने!) जलदोदरसन्धिलीना, सौदामिनी, इव, कामम्, त्वम्, प्रदोषतिमिरेण, न दृश्यते, तु, हे भीरु, माल्यसमुद्भवः, अयम्, गन्धः त्वाम्, सूचयिष्यति, च, मुखराणि, नूपुराणि, च ।। ३५ ।।

काममिति । हे वसन्तसेने=गणिके, जलदानाम्=मेघानाम्, उदरसन्धौ=आभ्यन्तरे, लीना=अन्तर्हिता, सौदामिनी=विद्युत्, इव=यथा, कामम्=पर्याप्तम्, त्वम्=वसन्तसेना, प्रदोषतिमिरेण—प्रदोषस्य=रजनीमुखस्य, तिमिरेण=अन्धकारेण, न=नहि, दृश्यते=अवलोक्यसे, तु=किन्तु, हे भीरु=भयशीले, माल्यात्=पुष्पदाम्नः, समुद्भवः=उत्पत्तिः यस्य, सः=अयम्, अनुभूयमानः, गन्धः=सौरभः, त्वाम्=वसन्तसेनाम्, सूचयिष्यति=ज्ञापयिष्यति, च=पुनः, मुखराणि=शब्दायमानानि, नूपुराणि=पादभूषणानि, च=अपि, सूचयिष्यन्ति, इति विभक्तिविपरिणामेनान्वयः । अत्रोपमालङ्कारः, वसन्ततिलकं वृतञ्च ।। ३५ ।।

शकार—महाशय, हार की सुगन्ध तो सुन रहा हूँ किन्तु अंधेरे के कारण नाक भर जाने से आभूषणों की खनखनाहट को साफ-साफ देख नहीं पा रहा हूँ ।

विट—(**ओट में**) वसन्तसेने,

ओ डरने वाली, मेघ के पेट में छिपी बिजली जैसे दिखाई नहीं पड़ती उसी प्रकार अन्धकार में छिपी तुम मुझे नहीं दिखलाई पड़ती हो । पर याद रक्खो, तुम्हारी माला से निकली सुगन्ध तथा तुम्हारे पायलों की झंकार तो तुम्हारा पता बतला ही देगी ।। ३५ ।।

श्रुतं वसन्तसेने ?

वसन्तसेना—(स्वगतम् ।) सुदं गहिदं अ । (नाटचेन भूषणान्युत्सार्यं, माल्यानि चापनीय, किञ्चित् परिक्रम्य, हस्तेन परामृश्य ।) अम्हो ! भित्तिपरामरिससूईदं पक्खदुआरअं क्खु एदं । जाणामि अ संजोएण गेहस्स सुवुदं पक्खदुआरअं । [श्रुतं गृहीतञ्च । अहो ! भित्तिपरामर्शसूचितं पक्षद्वारकं खल्वेतत् । जानामि च संयोगेन गेहस्य संवृतं पक्षद्वारकम् ।]

चारुदत्तः—वयस्य ! समाप्तजपोऽस्मि । तत् साम्प्रतं गच्छ, मातृभ्यो बलिमुपहर ।

विदूषकः—भो ! ण गमिस्सं । [भो ! न गमिष्यामि ।]

चारुदत्तः—धिक् कष्टम् ।

श्रुतम् वसन्तसेने !=श्रावयितुमेवैतत् कथयामि श्रुतन्न वेति भावः ।

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) श्रुतम्=श्रवणविषयीकृतम्, ग्रहीतम्=अवधारितम्, त्वद्वाक्यमिति शेषः । (नाटचेन=अभिनयेन, भूषणानि=अलङ्काराणि, उत्सार्य=उपरि उत्थाप्य, माल्यानि=सुगन्धितपुष्पमाल्यानि, अपनीय=अपसार्य, किञ्चित्=कियत् पदानि, परिक्रम्य=परिक्रमणङ्कृत्वा, हस्तेन=करेण, परामृश्य=स्पर्शङ्कृत्वा) अहो=इत्याश्चर्यम्, भित्तेः=कुडचस्य, परामर्शेन=स्पर्शेन, सूचितम्=ज्ञातम्, पक्षद्वारकम्=मुख्यद्वारसमीपद्वारम्, खलु=निश्चयेन, एतत्=सन्मुखे वर्त्तमानः, जानामि=अवगतोऽस्मि, संयोगेन=करसंयोगजनितानुभवेन, गेहस्य=गृहस्य, संवृत्तम्=कपाटावृत्तम्, पक्षद्वारकम् ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, समाप्तजपोऽस्मि—समाप्तः=समाप्तिम् गमितः, जपः=जपविधिः, तत्=तस्मात्, साम्प्रतम्=अधुना, गच्छ=चल, मातृभ्यः=षोडशमातृभ्यः, बलिमुपहरेति ।

विदूषकः—भो न गमिष्यामि=गन्तुं न समुत्सहे । आज्ञाभङ्गं नाटयति ।

चारुदत्तः—धिक् कष्टम्=हन्त खेदम्—

सुन लिया वसन्तसेने ?

वसन्तसेना—(अपने आपसे) सुन भी लिया और समझ भी गई (अभिनय के साथ जेवरों को ऊपर की ओर उठाकर, सुगन्धित फूलमालाओं को दूर फेंककर, कुछ घूमकर तथा हाथों से छूकर) अहो, दीवाल छूने से पता चलता है, यह निश्चय ही खिड़की है और छूने से ही यह भी पता चलता है कि यह खिड़की बन्द है ।

चारुदत्त—मित्र, मेरा जप समाप्त हो गया है, अब जाओ मातृदेवियों को बलि चढ़ा आओ ।

विदूषक—नहीं जी, मैं नहीं जा सकता ।

चारुदत्त—हाय, बड़ा कष्ट है—

दारिद्र्यात् पुरुषस्य बान्धवजनो वाक्ये न सन्तिष्ठते;
सुस्निग्धा विमुखीभवन्ति सुहृदः, स्फारीभवन्त्यापदः ।
सत्त्वं ह्रासमुपैति, शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते,
पापं कर्म च यत् परैरपि कृतं तत्तस्य सम्भाव्यते ।। ३६ ।।

अपि च—

सङ्गं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते, सम्भाषते नादरात्,
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते ।

अन्वयः—दारिद्र्यात्, बान्धवजनः, पुरुषस्य, वाक्ये, न सन्तिष्ठते । सुस्निग्धाः, सुहृदः, विमुखीभवन्ति, आपदः, स्फारीभवन्ति, सत्त्वम्, ह्रासम्, उपैति, शीलशशिनः, कान्तिः, परिम्लायते, च, यत्, पापम्, कर्म, परैः, अपि, कृतम्, तत्, तस्य, सम्भाव्यते ।। ३६ ।।

दारिद्र्यादिति । दारिद्र्यात्=निर्धनत्वात्, बान्धवजनः=आत्मीयजनः, पुरुषस्य=लोकस्य, वाक्ये=कथने, न=नहि, सन्तिष्ठते=न चलति, वचनं न प्रतिपालयति, सुस्निग्धाः=अतिस्नेहपूरिताः, सुहृदः=आप्तजनाः, विमुखीभवन्ति=उदासीनाः जायन्ते, आपदः=विपत्तयः, स्फारीभवन्ति=अभिवृद्धिमापद्यन्ते, सत्त्वम्=बलम्, ह्रासम्=अवनतिम्, उपैति=प्राप्नोति, शीलशशिनः=चारित्र्यचन्द्रस्य, कान्तिः=दीप्तिः, परिम्लायते=मलिनतां याति, च=पुनः, यत्=किञ्चित्, पापम्=अपकर्म, कर्म=कार्यम्, परैः=अन्यजनैः, अपि=चेत्, कृतम्=सम्पादितम् तत्=अन्यजनकृतपापम्, तस्य=दरिद्रजनस्य, सम्भाव्यते=अनुमीयते । दरिद्रतया इदमनेनैव कृतमिति लोकैः निश्चीयत इति भावः । अस्मिन् श्लोकेऽप्रस्तुतजनसामान्यात् प्रस्तुतस्य चारुदत्तस्य प्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसा । हा धिक् कष्टमित्युपक्रम्यैतस्य पद्यस्याभिधानात् कष्टरूपैककार्यं प्रति अनेककारणानां कथनात् समुच्चयालङ्कारः, शीले शशित्वारोपाद् रूपकम्, सादृश्ये च उपमा इति शीलशशिन इति रूपकोपमयोः सन्देहसङ्करः शार्दूलविक्रीडितमिति वृत्तञ्च ।। ३६ ।।

अन्वयः—हि, कश्चित्, अस्य, सङ्गम्, न, एव, कुरुते, आदरात्, न सम्भाषते, उत्सवेषु, धनिनाम्, गृहम्, सम्प्राप्तः, सावज्ञम्, आलोक्यते, अल्पच्छदः, लज्जया,

---

गरीबी के कारण सगे-सम्बन्धी भी बात नहीं सुनते, अपने पराये बन जाते हैं, विपत्तियां बढ़ जाती हैं, बल विनष्ट हो जाता है, चरित्ररूपी चाँद की चाँदनी फीकी पड़ जाती है, गरीबी के ही कारण किसी दूसरे द्वारा किये गये कसूर को भी लोग किसी गरीब के ही माथे मढ़ देते हैं ।। ३६ ।।

और भी—

गरीबों की परछाई से भी लोग बचना चाहते हैं, ससम्मान व्यवहार करने की बात तो दूर रही । किसी उत्सव के अवसर पर भी यदि कोई गरीब किसी अमीर के

दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया,
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् ॥ ३७ ॥

अपि च—

दारिद्र्य ! शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा ।
विपन्नदेहे मयि मन्दभाग्ये, ममेति चिन्ता क्व गमिष्यसि त्वम् ॥ ३८ ॥

महाजनस्य, दूरात्, एव, विहरति, मन्ये, निर्धनता, अपरम्, प्रकामम्, षष्ठम्, महापातकम् ॥ ३७ ॥

सङ्गमिति । हि=यतः, कश्चित्=कोऽपि, जनः इति शेषः, अस्य=निर्धनस्य, सङ्गम्=सम्पर्कम्, न=नहि, एव कुरुते=विदधाति, आदरात्=सम्मानात्, न=नहि, सम्भाषते=वदति, उत्सवेषु=शुभावसरेषु, धनिनाम्=विभवशालिनाम्, गृहम्=सदनम्, सम्प्राप्तः=समागतः, सावज्ञम्=तिरस्कारभावनया, आलोक्यते=दृश्यते, अल्पच्छदः=पर्याप्तवस्त्रविहीनः जनः, लज्जया=ह्रिया, महाजनस्य=धनिकस्य, दूरादेव=सुदूरादेव, विहरति=गच्छति, इत्यहं मंन्ये=स्वीकरोमि, यत् निर्धनता=अकिञ्चनता, अपरम्=अंन्यत्, प्रकामम्=प्रकृष्टम्, षष्ठम्=पञ्चमहापातकातिरिक्तम्, महापातकम्=वृहत्पातकम्, अस्ति । मनुना महापातकानां पञ्चप्रकारत्वमङ्गीकृतम्, तद्यथा—

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥"

अस्मिन्श्लोकेऽपि अप्रस्तुतात् सामान्यात् प्रस्तुतस्य विशेषस्य चारुदत्तस्य प्रतीतेरप्रस्तुतप्रशंसा कष्टरूपमेकं प्रत्यनेककारणोपन्यासात् समुच्चयः पूर्वपादत्रयगतवाक्यार्थस्य चतुर्थवाक्यार्थम्प्रति हेतुत्वात् काव्यलिङ्गम्, निरपेक्षतया एतेषामवस्थानात् संसृष्टिः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्च ॥ ३७ ॥

अन्वयः—हे दारिद्र्य, भवन्तम्, एवम्, शोचामि, (यत्) अस्मच्छरीरे, सुहृद, इति, उषित्वा, मयि, मन्दभाग्ये, विपन्नदेहे, सति, त्वम्, क्व, गमिष्यसि, इति, मम, चिन्ता ।

दारिद्र्येति । हे दारिद्र्य=हे दीनते, भवन्तम्=त्वाम्, एवम्=इत्थम्, शोचामि=चिन्त्ययामि, अर्थात् तव भविष्यद्दशामनुभावयन् दुःखी भवामीति । अत्र 'दारिद्र्यम्'

घर चला जाय तो वहाँ भी उसे उपेक्षा ही मिलती है। आत्मग्लानि के कारण विवस्त्र बना कोई गरीब स्वयं भी किसी अमीर के पास फटक भी नहीं पाते; जहाँ तक मैं समझता हूँ, गरीबी मनु के बताये पांच महापातकों के अलावा निश्चय ही कोई छठा महापातक है ॥ ३७ ॥

और भी—भाई दारिद्र्य, मुझे तेरा ही सोच खाए डालता है। कि तू इतने दिनों तक एक सच्चे दोस्त की तरह मेरे साथ रहा, कभी क्षण भर के लिए भी मुझे अकेला न छोड़ा, पर तब जब मैं न रहूँगा, तू कहाँ जायगा ? मुझे इसकी बड़ी चिन्ता है।

विदूषकः—(सवैलक्ष्यम् ।) भो वअस्स ! जइ मए गन्तव्वं, ता एसा वि मे सहाइणी रदणिआ भोदु । [**भो वयस्य ! यदि मया गन्तव्यम्, तदेषापि मम सहायिनी रदनिका भवतु ।**]

चारुदत्तः—रदनिके ! मैत्रेयमनुगच्छ !

चेटी—जं अज्जो आणवेदि । [**यदार्य आज्ञापयति ।**]

विदूषकः—भोदि ! रदणिए । गेण्ह बलिं पदीवं अ । अहं अवावुदं पक्खदुआरअं करेमि । (तथा करोति ।) [**भवति ! रदनिके ! गृहाण बलिं प्रदीपञ्च । अहमपावृतं पक्षद्वारकं करोमि ।**]

इति नपुंसकलिङ्गम्, अतः भवन्तमिति पुल्लिङ्गनिर्देशः प्रामादिकः इति चिन्त्यः, अथवा अर्थपरत्वात्पुल्लिङ्गमिति पृथ्वीधरः । यदस्मच्छरीरे=मम देहे, सुहृद्=मित्रमिति बुद्धया, उषित्वा=वासं विधाय, मयि=चारुदत्ते, मन्दभाग्ये=हतभागे, विपन्नदेहे—विपन्नः=त्यक्तः, देहः=शरीरं यस्य तस्मिन् मृते सति, इत्यर्थः, त्वम्=भवान्, क्व=कुत्र, गमिष्यसि=यास्यसि, इति=एतादृशी, मम=चारुदत्तस्य, चिन्ता=मार्मिकी भावनेति भावः । इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः सम्मेलनात् उपजातिर्नाम वृत्तम् ॥ ३८ ॥

विदूषकः—(सवैलक्ष्यम्=लज्जापूर्वकम्) भो वयस्य=हे मित्र, यदि=चेत्, मया=विदूषकेन, गन्तव्यम्=गन्तुम् योग्यम्, तत्=तर्हि, एषापि=पुरोवर्त्तमानाऽपि, रदनिका=एतदाख्या, सहायिनी=सहायिका, भवतु=यातु ।

चारुदत्तः—रदनिके, मैत्रेयम्=विदूषकम्, अनुगच्छ=अनुसरणं कुरु ।

चेटी—यत्=यथा, आर्यः=भवान्, आज्ञापयति=आदिशतीत्यर्थः ।

विदूषकः—भवति=श्रीमति, रदनिके=दासि, गृहाण=ग्रहणं कुरु, बलिम्=

विमर्श—प्रस्तुत श्लोक में चारुदत्त की दारिद्रच पीडित बुद्धि का आक्रोश अद्भुत है । आरम्भ की प्रथम पंक्ती का कटु उपालंभ क्रमशः घुलता हुआ उत्तरार्द्ध में द्रवित व्यङ्गच बन गया है । सम्पूर्ण दारिद्रच के अस्तित्व की समीक्षा में करुण विनोद अत्यन्त मार्मिक बन गया है । वेदना फूट कर निर्वेद बन गयी है । पर, यह गहन व्यंग्य तब प्राणों में बैठ जाता है, जब दुःख से कठोरता पिघलकर मुसकरा देती है । हृदय की पीड़ा बढ़कर आँखों की बाढ़ बनकर उमड़ पड़ती है, ऐसी कि व्याकुलता भी व्याकुल हो उठती है, यह मुसकान उस घड़ी की नहीं है । यह तो होठों से हलाहल का प्याला लगाये, नियति की ज्वाला से जलते हुए जीवन की मुसकान है । समाधि दीप की बुझती हुई लौ-सा रिसता हुआ व्यंग्य है । व्यंग्य साहित्य का यह एक अनूठा उदाहरण है ।

विदूषक—(**दुःखी होकर**) दोस्त, यदि मुझे जाना ही पड़ेगा तो फिर इस रदनिका को भी मेरे साथ कर दो न ।

चारुदत्त—अरी ओ रदनिके मैत्रेय के साथ जाओ ।

चेटी—श्रीमान् की जैसी आज्ञा ।

वसन्तसेना—मम अब्भुववत्तिणिमित्तं विअ अवावुदं पक्खदुआरअं, ता जाव पविसामि । (दृष्ट्वा) हद्धी हद्धी । कधं पदीवो । (पटान्तेन निर्वाप्य प्रविष्टा ।) [**मम अभ्युपपत्तिनिमित्तमिव अपावृतं पक्षद्वारकम्, तद्यावत् प्रविशामि । हा धिक् ! हा धिक् ! कथं प्रदीपः ?**]

चारुदत्तः—मैत्रेय ! किमेतत् ? ।

विदूषकः—अवावुदपक्खदुआरएण पिण्डीकिदेण वादेण णिव्वाविदो पदीवो । भोदि ! रदणिए ! णिक्कम तुमं पक्खदुआरएण । अहंपि अब्भन्तरचदुस्सालादो पदीवं पज्जालिअ आअच्चामि । (इति निष्कान्तः ।) [**अपावृतपक्षद्वारेण पिण्डीकृतेन वातेन निर्वापितः प्रदीपः । भवति ! रदनिके ! निष्क्रम त्वं पक्षद्वारकेण । अहमपि अभ्यन्तरचतुःशालातः प्रदीपं प्रज्वाल्य आगच्छामि ।**]

उपहारम्, प्रदीपञ्च=दीपञ्चेति, अहम्=मैत्रेयः, पक्षद्वारकम्=कपाटम्, अपावृत्तम् उद्घाटितम्, करोमि=विदधामि ।

वसन्तसेना—मम=वसन्तसेनायाः, अभ्युपपत्तिनिमित्तम्=अनुग्रहार्थम्, 'अभ्युपपत्तिरनुग्रहः' इत्यमरः । इव=यथा, अपावृत्तम्=उद्घाटितम्, पक्षद्वारकम्=कपाटम्, तत्=तस्मात्, यावदित्यवधारणे प्रविशामि=गृहे प्रवेशङ्करोमि । हा धिगिति खिन्नताद्योतकमव्ययम् । कथं प्रदीपः=अर्थात् प्रदीपेन सह समागच्छति । (पटान्तेन= अञ्चलेन, दीपं निर्वाप्य गृहे प्रविष्टा ।)

चारुदत्तः—मैत्रेय=हे मित्र, किमेतत्=किस्तीत्याशङ्कायाम् ।

विदूषकः—अपावृत्तम्=उद्घाटितम्, च तत् पक्षद्वारम्=कपाटम् तेन कारणेन, पिण्डीभूतेन=राशीभूतेन, वातेन=वायुना, निर्वापितः=निर्वाणम् प्रापितः, प्रदीपः= दीपः, भवति=श्रीमति, रदनिके=एतदाख्ये दासि, निष्क्रम=बहिर्गच्छ, त्वं पक्षद्वारकेण, अहमपि=मैत्रेयोऽपि, अभ्यन्तरचतुःशालातः=अन्तःपुरात्, प्रदीपं प्रज्ज्वाल्य, आगच्छामि=पुनरागतोऽस्मि ।

विदूषक—ओ रदनिके, ले बलिदीप पकड़ । मैं पहले किवाड़ खोलता हूँ (**उसी तरह करता है**) ।

वसन्तसेना—क्या खूब, मेरे घुसने के लिए ही तो यह दरवाजा खुला है । तो फिर चलूं (**देखकर**) अरे राम, यहाँ तो दिया जल रहा है (**आँचल से दीप बुझाकर आगे बढ़ जाती है**) ।

चारुदत्त—मित्र, क्या बात है ?

विदूषक—मित्र क्या कहूँ ? दरवाजा खुलते ही हवा के झोंके से दिया बुझ गया । अरी ओ रदनिके, तू बाहर निकल, मैं भीतर से दिया जलाकर आता हूँ (**चला जाता है**) ।

शकारः—भावे ! भावे ! अण्णेशामि वशंतशेणिअं ? [**भाव ! भाव ! अन्विष्यामि वसन्तसेनिकाम् ? ।**]

विटः——अन्विष्यताम्, अन्विष्यताम् ।

शकारः—(विटं धृत्वा ।) भावे ! भावे ! गहिदा गहिदा । [**भाव ! भाव ! गृहीता गृहीता ।**]

विटः—मूर्ख ! नन्वहम् ।

शकारः—इदो दाव पच्छन्नो भविअ एअन्ते भावे चिट्ठदु । (पुनरन्विष्य चेटं गृहीत्वा ।) भावे ! भावे ! गहिदा गहिदा । [**इतस्तावत् प्रच्छन्नो भूत्वा एकान्ते भावस्तिष्ठतु । भाव ! भाव । गृहीता गृहीता ।**]

चेटः—भट्टके ! चेडे हगे । [**भट्टारक ! चेटोऽहम् ।**]

शकारः—इदो भावे, इदो चेडे, भावे चेडे, चेडे भावे । तुम्हे दाव एअन्ते चिट्ठ । (पुनरन्विष्य रदनिकां केशेषु गृहीत्वा) भावे ! भावे ! शंपदं गहिदा

शकारः—भाव=हे मान्य, वसन्तसेनिकाम्=एतदाख्यगणिकाम्, अन्वेषयामि=गवेषणा करोमि ।

विटः—अन्विष्यताम्=वसन्तसेनायाः अन्वेषणमवश्यमेव क्रियतामिति भावः ।

शकारः—(विटं धृत्वा=तमसाच्छन्ने हस्तस्पर्शमात्रेणान्वेष्यन् विटमेव धृत्वेति भावः) भाव, गृहीता=वशीकृतेति भावः ।

विटः—मूर्ख=हे अज्ञ, नन्वहम्=मामेव गृहीत्वा वसन्तसेनाग्रहणमवगच्छसि ।

शकारः—इतः=अस्याम् दिशि, तावदित्यवधारणे, प्रच्छन्नो भूत्वा=अदृष्टो भूय, एकान्ते=एकस्मिन् स्थाने, भावः=श्रीमान्, तिष्ठतु=वर्त्तताम् । (पुनः=भूयः, अन्विष्य=अन्वेषणङ्कृत्वा, चेटं, गृहीत्वा=धृत्वा, शकारः निविडान्धकारे चेटं गृहीत्वा विटं प्रतिख्यापयति ।) भाव, गृहीता=धृता वसन्तसेनेति भावः ।

चेटः—भट्टारक=हे वीर, चेटः=दासः, अहम् ।

शकारः—इतः=अस्यां दिशि, भावः=मान्यविटः, इतः=अस्मिन् स्थाने, चेटः=सेवकः, भावश्चेटः=स्वामी सेवकः, चेटो भावः=सेवकः स्वामी, युवाम्=भावचेटौ,

---

शकार—मान्यवर, मैं वसन्तसेना को ढूंढ़ रहा हूँ ।

विट—खोजो, जरूर खोजो ।

शकार—(**खोज ढूँढ़कर**) महाशय, मैंने पकड़ लिया है ।

विट—रे मूर्ख, यह तो मैं हूँ ।

शकार—तो आप इधर एक ओर खड़े रहें । (**फिर इधर-उधर घूम कर चेट को पकड़ कर**) महाशय, पकड़ लिया, मैंने इसे पकड़ लिया ।

चेट—मालिक, वसन्तसेना नहीं, यह तो मैं आपका सेवक हूँ ।

शकार—इधर चेट, उधर विट, विट-चेट, चेट-विट, अच्छा तो आप दोनों इधर

गहिदा वसंतशेणिआ। [इतो भावः, इतश्चेटः, भावश्चेटः, चेटो भावः। युवां तावत् एकान्ते तिष्ठतम्। भाव ! भाव ! साम्प्रतं गृहीता गृहीता वसन्तसेनिका।]

अन्धआले पलाअन्ती मल्लगन्धेण शूइदा।
केशविन्दे पलामिट्टा चाणक्केणेव्व दोवदी ॥ ३९ ॥

[अन्धकारे पलायमाना माल्यगन्धेन सूचिता।
केशवृन्दे परामृष्टा चाणक्येनेव द्रौपदी ॥]

विटः—

एषाऽसि वयसो दर्पात् कुलपुत्रानुसारिणी।
केशेषु कुसुमाढ्येषु सेवितव्येषु कर्षिता ॥ ४० ॥

तावदित्यवधारणे, एकान्ते=एकस्मिन् स्थाने, तिष्ठतम्=वर्त्तेताम्, (पुनः=भूयः, अन्विष्य=अन्वेषणङ्कृत्वा, रदनिकाम्=चारुदत्तस्य दासीम्, केशेषु=कचेषु, गृहीत्वा =धृत्वा) भाव=हे मान्य, साम्प्रतम्=अधुना, ग्रहीता=हस्तगता वसन्तसेनिका।

अन्वयः—अन्धकारे, पलायमाना, माल्यगन्धेन, सूचिता, चाणक्येन द्रौपदी, इव, केशवृन्दे, परामृष्टा ॥ ३९ ॥

अन्धकार इति। अन्धकारे=तमसाच्छन्ने, पलायमाना=प्रधावन्ती, अपि माल्यगन्धेन=कण्ठेस्थितपुष्पस्रक्सौरभेण, सूचिता=संकेतिता, चाणक्येन=कौटिल्येन, द्रौपदी=द्रुपदसुता, इव=यथा, केशवृन्दे=कचकलापे, परामृष्टा=धृता, मयेति शेषः। शकारवचनत्वात् उपमाव्याहतिः सोढव्यः। अनुष्टुप् वृत्तम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—वयसः, दर्पात्, कुलपुंत्रानुसारिणी, एषा, कुसुमाढ्येषु, सेवितव्येषु, केशेषु, कर्षिता, असि ॥ ४० ॥

एषासीति। वयसः=तरुणावस्थायाः, दर्पात्=अहङ्कारात्, कुलस्य=प्रख्यातवंशस्य, पुत्रम्=तनयम्, चारुदत्तमिति यावत्, अनुसारिणी=अनुगमनशीला, एषा= वसन्तसेना, कुसुमाढ्येषु=पुष्पयुक्तेषु, सेवितव्येषु=सेवनीयेषु, अलङ्कारेषु वा, केशेषु= कचेषु, कर्षिता=निर्दयभावेनाकृष्टा, असि=भवसि, अस्मान् अनादृत्य यदि चारुदत्तं नेच्छसि तदा तवेयं दुर्दशा न भविष्यतीति भावः। अनुष्टुप् छन्दः ॥ ४० ॥

एक ओर चुपचाप खड़े हो जाय। (**इधर-उधर खोजते हुए रदनिका के बाल पकड़ कर**) महाशय, देखिए इस बार वसन्तसेनिका पकड़ में आ गई है।

अब तुम कहाँ जाओगी ? अन्धेरे का लाभ उठाकर तुम इधर-उधर भागती रही। पर, तुम्हारी कबरी में गूँथे सुगन्धित फूलों की माला ही तुम्हारी सूचना दे रही है। मैंने तुम्हारा केशपास उसी तरह पकड़ लिया है, जैसे चाणक्य ने द्रौपदी को पकड़ा था ॥ ३९ ॥

विट—जवानी के नशे में तुम कुलीन चारुदत्त की खोज में भटकती हुई पकड़ी गई हो। अन्यथा सेवा करने योग्य तुम्हारे ये केशपास, इस तरह पकड़ कर खींचे नहीं जाते ॥ ४० ॥

शकारः—

एशाशि वाशू ! शिलशि ग्गहीदा केशेशु बालेशु शिलोलुहेशु ।
अक्कोश विक्कोश लवाहिचण्डं शम्भुं शिवं शंकलमीशशलं वा ।। ४१ ।।
[एषाऽसि वासु ! शिरसि गृहीता केशेषु बालेषु शिरोरुहेषु ।
आक्रोश विक्रोश लपाधिचण्डं शम्भुं शिवं शंकरमीश्वरं वा ।।]

रदनिका—(सभयम्) किं अज्जमिस्सेहिं ववसिदं ? [**किमार्य्यमिश्रैर्व्यवसितम् ?**]

विटः—काणेलीमातः ! अन्य एवैष स्वरसंयोगः ।

शकारः—भावे ! भावे ! जधा दहिच्छलिल-पलिलुद्धाए मज्जलीआ शलपलिवत्ते होदि, तथा दाशीए धीए शलपलिवत्ते कडे । [**भाव ! भाव ! यथा दधिशरपरिलुब्धाया मार्जार्याः स्वरपरिवर्त्तो भवति, तथा दास्याः पुत्र्या स्वरपरिवर्त्तः कृतः ।**]

अन्वयः—हे वासु, एषा, शिरसि, केशेषु, बालेषु, शिरोरुहेषु, गृहीता, असि, आक्रोश, विक्रोश, वा, शम्भुम्, शिवम्, शङ्करम्, ईश्वरम्, अधिचण्डम्, लप ।

एषाऽसीति । हे वासु=हे बाले 'बाला स्याद् वासुः' इत्यमरः । एषा=पलायमाना त्वम्, शिरसि=उत्तमाङ्गे, केशेषु, बालेषु, शिरोरुहेषु=कचेषु, "चिकुरः, कुन्तलः बालः, कचः, केशः, शिरोरुहः" इत्यमरः । गृहीता=धृता, असि=वर्त्तसे, सम्प्रति त्वम् त्वम्, आक्रोशम्=शापं गालिं वा देहि, वा=अथवा, विक्रोशम्=आह्वय कमपि, शम्भुम्, शिवम्, शङ्करम्, ईश्वरम्=महेश्वरम्, अधिचण्डम्=तारस्वरेण, लप=विलापं कुरु । तेनास्माकं न किमपि भयमस्तीति भावः । अस्मिन् श्लोके इन्द्रवज्रा-वृत्तम् ।। ४१ ।।

रदनिका—(सभयम्=सत्रासम्) किमिति जिज्ञासायाम्, आर्यमिश्रैः=सभ्यजनैः व्यसवसितम्=प्रारब्धमिदं कार्यमस्ति किम् ?

विटः—काणेलीमातः=हे वेश्यापुत्र, अन्यः=अन्यदीयः, एषः=श्रूयमाणः, स्वरसंयोगः=शब्दध्वनिः न तु वसन्तसेनायाः स्वरसंयोगोऽयमिति भावः ।

शकारः—भाव=हे विद्वन्, यथा=येन प्रकारेण, दधिशरपरिलुब्धायाः=दध्नः-शरः, 'दधिशरो दध्युपरिभागे शरो दध्न उपरि भाग' इति पृथ्वीधरः, दन्त्यपाठे तु दध्नः सरे नवनीताख्ये सारपदार्थे परिलुब्धायाः सञ्जातलालसायाः, मार्जार्याः=मार्जारि-

---

शकार—हे बाले, तुम्हारी चोटी अब मेरे हाथ में है, अब तुम मुझे गाली दो, चिल्लाओ या अपने इष्ट का ही स्मरण करो, तो भी मुक्ति नहीं है ।। ४१ ।।

रदनिका—(**डरकर**) क्या यही सभ्यजनों का आचरण है ?

विट—रे गणिकासुत, यह तो किसी दूसरी औरत की आवाज है ।

शकार—मान्यवर, दही चाटने के लोभ से जैसे बिल्ली अपनी आवाज बदल लेती हैं, उसी तरह इस दुष्ट वसन्तसेना ने अपनी आवाज बदल ली है ।

विटः—कथं स्वरपरिवर्त्तः कृतः । अहो चित्रम् । अथवा किमत्र चित्रम् ?

इयं रङ्गप्रवेशेन कलानां चोपशिक्षया ।
वञ्चनापण्डिततत्वेन स्वरनैपुण्यमाश्रिता ॥ ४२ ॥

विदूषकः—(प्रविश्य) ही ही भो ! पदोसमन्दमारुदेण पसुबन्धोवणीदस्स विअ छाअलस्स हिअअं, फुरफुराअदि पदीवो । (उपसृत्य रदनिकां दृष्ट्वा) भो ! रदणिए । [**आश्चर्य्यम् ! भोः ! प्रदोषमन्दमारुतेन पशुबन्धोपनीतस्येव छागलस्य हृदयं फुरफुरायते प्रदीपः । भो रदनिके !**]

शकारः—भावे ! भावे ! मणुश्शे मणुश्शे । [**भाव ! भाव ! मनुष्यो मनुष्यः ।**]

कायाः, स्वरपरिवर्त्तः=भिन्नकण्ठध्वनिः, भवति=याति, यथा दधिभक्तलुब्धायाः विडाल्याः स्वरे परिवर्त्तनं भवति, तथैतया वेश्यया स्वरपरिवर्त्तनं विहितम् ।

विटः—कथम्=केन प्रकारेण, स्वरपरिवर्त्तः=भिन्नकण्ठध्वनिः, कृतः ? अहो चित्रम्=आश्चर्यम्, अथवा=वा, किमत्र चित्रम्=किमाश्चर्यमिति न किमपीत्यर्थः ।

अन्वयः—इयम्, रङ्गप्रवेशेन, कलानाम्, उपशिक्षया, वञ्चनापण्डिततत्वेन, च, स्वरनैपुण्यम्, आश्रिता ॥ ४२ ॥

इयमिति । इयम्=एषा वसन्तसेना, रङ्गप्रवेशेन=नाटचशालागमनेन, कलानाम्=नृत्यगीतादीनाम्, उपशिक्षया=सतताभ्यासेन, वञ्चनापण्डिततत्वेन=कपटविद्यानैपुण्येन, स्वरनैपुण्यम्=कण्ठध्वनिपरिवर्त्तनपटुत्वम्, आश्रिता=प्राप्तवती ॥ ४२ ॥

विदूषकः—(प्रविश्य=रङ्गे समागत्य) आश्चर्यम् भो, प्रदोपमन्दमारुतेन=सान्ध्यसौम्यसमीरेण, पशुबन्धोपनीतस्य=पशुर्बध्यतेऽस्मिन् इति पशुबन्धः यूपकाष्ठं यज्ञादौ पशुबन्धनार्थं दारुनिर्मितो यूपो भवति तत्र उपनीतस्य बलिदानाय बद्धस्य छागलस्य=अजस्य, हृदयम्=चित्तम्, फुरफुरायते=अव्यक्तशब्दवत्कम्पत इति भावः । प्रदीपः=दीपः ।

शकारः—भाव भाव=हे विद्वन्, मनुष्यो मनुष्यः=कोऽपि मानवोऽस्तीति भावः ।

विट—आवाज कैसे बदलेगी ? आश्चर्य है, अथवा इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

रङ्गशाला में प्रवेश करने से तथा संगीत नृत्यकला की शिक्षा पाने के कारण धूर्तता में तो इसने निपुणता प्राप्त कर ही ली है तो आवाज बदलना कौन-सा कठिन काम है ॥ ४२ ॥

विदूषक—(**प्रवेश कर**) अरे आश्चर्य है, संध्यावेला में, यूपकाष्ठ में बांधने के लिए लाये गये बलिदानी बकरे के दिल की तरह यह दीपक भी काँप रहा है ? (**और पास आकर और रदनिका को देखकर**) अरी रदनिके ।

शकार—मालिक, आदमी मालूम पड़ता है, आदमी ।

विदूषकः—जुत्तं णेदं, सरिसं णेदं, जं अज्जचारुदत्तस्स दलिद्ददाए सम्पदं परपुरिसा गेहं पविसन्ति । [**युक्तं नेदम्, सदृशं नेदम्, यदार्यचारुदत्तस्य दरिद्रतया साम्प्रतं परपुरुषा गेहं प्रविशन्ति ।**]

रदनिका—अज्ज मित्तेअ ! पेक्ख मे परिभवं । [**आर्य ! मैत्रेय ! प्रेक्षस्व मे परिभवम् ?**]

विदूषकः—किं तव परिहवो ? आदु अम्हाणं ? [**किं तव परिभवः ? अथवा अस्माकम् ?**]

रदनिका—णं तुम्हाणं ज्जेव । [**ननु युष्माकमेव ।**]

विदूषकः—किं एसो बलक्कारो ? [**किमेष बलात्कारः ?**]

रदनिका—अध इं । [**अथ किम् ?**]

विदूषकः—सच्चं ? [**सत्यम् ?**]

रदनिका—सच्चं । [**सत्यम् ।**]

विदूषकः—(**सक्रोधं दण्डकाष्ठमुद्यम्य ।**) मा दाव । भो ! सके गेहे कुक्कु-

---

विदूषकः—युक्तं नेदम्=अनुचितमिदमिति, सदृशं नेदम्=योग्यम् नैतत्, यत्=यथा, आर्यचारुदत्तस्य दरिद्रतया=धनहीनतया, साम्प्रतम्=अधुना, परपुरुषाः=अनात्मीयजनाः, गेहं=सदनं ।

रदनिका—आर्य मैत्रेय=हे मान्य, प्रेक्षस्व=अवलोकय, मे=मम, परिभवम्=तिरस्कारः ।

विदूषकः—किमिति प्रश्ने, तव=रदनिकायाः, परिभवम्=तिरस्कारम्, अथवा अस्माकम् तिरस्कारम् ।

रदनिका—ननु युष्माकमेव=अर्थात् इदं तिरस्कारं न केवलं मम, अपितु सर्वेषां कृतेऽस्ति ।

विदूषकः—किमेष बलात्कारः=हठात् कृतापमानः ।

विदूषकः—(सक्रोधम्=सकोपम्, दण्डकाष्ठम्=लगुडम्, उद्यम्य=उत्थाप्य)

विदूषक—क्या यही उचित है ? आज आर्य चारुदत्त गरीब हो गये हैं, इसीलिए जिसकी इच्छा हो उनके घर में घुस जायेगा ?

रदनिका—आर्य मैत्रेय, मेरी दुर्गति तो जरा देखिए ।

विदूषक—क्या तुम्हारी ही दुर्गति या हम सबों की दुर्गति ?

रदनिका—हाँ, आप सबों की फजीहत ।

विदूषक—क्या ? ऐसा बलात्कार ?

रदनिका—और क्या ?

विदूषक—सच ?

रदनिका—बिलकुल सच ।

विदूषक—(**क्रुद्ध होकर हाथ में डंडा लेकर**) ऐसा नहीं होगा । अपने घर में

रोऽवि दाव चण्डो भोदि, किं उण अहं बम्हणो ! त एदिणा अम्हारिस-जण-भाअधेअ-कुडिलेण दण्डकट्ठेण दुट्टस्स विअ सुक्खाणवेणुअस्स मत्थअं दे पहारेहिं कुट्टइस्सं [**मा तावत् । भोः ! स्वके गेहे कुक्कुरोऽपि तावत् चण्डो भवति, किं पुनरहं ब्राह्मणः । तदेतेन अस्मादृश-जन-भागधेय-कुटिलेन दण्डकाष्ठेन दुष्टस्येव शुष्कवेणुकस्य मस्तकं ते प्रहारैः कुट्टयिष्यामि ।**]

विटः—महाब्राह्मण ! मर्षय मर्षय ।

विदूषकः—(विटं दृष्ट्वा) ण एत्थ एसो अवरज्झदि । (शकारं दृष्ट्वा ।) एसो क्खु एत्थ अवरज्झदि । अरे रे राअसालअ ! संट्ठाणअ ! दुज्जण ! दुम्मणुस्स ! जुत्तं णेदं । जहवि णाम तत्तभवं अज्जचारुदत्तो दलिद्दो संवुत्तो, ता किं तस्स गुणेहिं ण अलंकिदा उज्जइणी ? जेण तस्स गेहं पविसिअ परिअणस्स ईरिसो उवमद्दो करीअदि । [**नात्र एषोऽपराध्यति । एष खल्वत्र अपराध्यति ! अरे रे राजश्यालक ! संस्थानक ! दुर्जन ! दुर्मनुष्य ! युक्तं नेदम् । यद्यपि नाम तत्रभवान् आर्यचारुदत्तो दरिद्रः संवृत्तः, तत् किं तस्य गुणैर्नालङ्कृता उज्जयिनी ? येन तस्य गृहं प्रविश्य परिजनस्य ईदृश उपमर्दः क्रियते ।**]

मा तावत्=इत्थं त्वम् मा विधेहीति भावः, भो=इति सम्बोधने, स्वके=स्वकीये, गेहे=सदने, कुक्कुरोऽपि=शुनकोऽपि, तावदित्यवधारणे, चण्डः=शक्तिसम्पन्नः, भवति=याति, किम्पुनरहं, ब्राह्मणः=ब्राह्मणत्वेन श्रेष्ठत्वात् । तदेतेनास्मादृशजनानाम्=मम सदृशपुरुषाणाम्, भागधेयवत्=दैववत्, दण्डकाष्ठेन=काण्ठमयेन दण्डेनेति यावत्, दुष्टस्य=नीचपुरुषस्य, मस्तकम्=शिरः, कुट्टयिष्यामि=भञ्जयिष्यामि ।

विटः—महाब्राह्मण=ब्राह्मणाधम, गर्हितकर्मानुविधायित्वात् महाब्राह्मणत्वेन सम्बोधनम्, परोपजीवित्वात् इति हरिदासभट्टाचार्याः, महाब्राह्मणशब्दस्यात्र नीचार्थप्रत्यायकत्वमिति, मर्षय मर्षय=क्षमां कुरु ।

विदूषकः—(विटम्=वैशिकम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य) अत्र=अस्मिन् विषये, एषः=विटः, न=नहि, अपराध्यति=दोषम् आचरति । एषः=पुरोवर्त्ती जनः शकारः,

---

तो कुत्ते भी बलवान् होते हैं और मैं तो भला ब्राह्मण हूँ । ठहर, अपनी टेढ़ी बदनसीबी की तरह इस टेढ़े डंडे से फटहे बाँस की तरह तुम सबों के माथे को चूरकर रख देता हूँ ।

विट—महाब्राह्मण, माफ कर दो, माफ कर दो ।

विदूषक—(**विट को देखकर**) इसका कसूर नहीं है (**शकार को देखकर**) असली अपराधी तो यही है । अरे ओ राजा के साले, संस्थानक, रे दुष्ट, नीच ! क्या यही उचित है ? माना, आज आर्य चारुदत्त निर्धन हो गये हैं, फिर भी क्या यह नगरी उज्जयिनी उनके अनेक गुणों से विभूषित नहीं है ? फिर उनके घर में घुसकर ही उनके परिचरों की इस तरह क्यों फजीहत कर रहे हो ?

मा दुग्गदोत्ति परिहवो णत्थि कअन्तस्स दुग्गदो णाम ।
चारित्तेण विहीणो अड्ढो विअ दुग्गदो होइ ।। ४३ ।।
[मा दुर्गत इति परिभवो नास्ति कृतान्तस्य दुर्गतो नाम ।
चारित्र्येण विहीन आढ्योऽपि च दुर्गतो भवति ।।]

विटः—(सवैलक्ष्यम् ।) महाब्राह्मण ! मर्षय मर्षय । अन्यजनशङ्कया खल्विदमनुष्ठितम्, न दर्पात् । पश्य—

सकामाऽन्विष्यतेऽस्माभिः................

खलु=निश्चयेन, अपराध्यति । अरे रे=इति नीचसम्बोधनम्, राजश्यालक=नृपपत्नीभ्राता, संस्थानक=इदम् शकारस्य नाम, दुर्जन=कुजन, दुर्मनुष्य=दुष्टमानव, इदम्=एतत्, न युक्तम्=अनुचितमिति । तत्रभवान्=मान्यः, दरिद्रः संवृत्तः=धनहीनः सञ्जातः, तत्=तथापि, अलङ्कृता=विभूषिता । परिजनस्य=सेवकस्य, रदनिकायाः इत्यर्थः, इदृशः=एवंविधः, बलात्काररूप इत्यर्थः, उपमर्दः=अपमानम्, चारुदत्तस्य निर्धनत्वात् शकारकृतमिदमत्याचारं मत्वा पीडितो विदूषकः सदुःखमाह—

अन्वयः—(अयम्) दुर्गतः, इति, परिभवः, मा (कर्त्तव्यः) कृतान्तस्य, (समीपे) दुर्गतः, न, अस्ति, नाम, च, चारित्र्येण, विहीनः, आढ्यः, अपि, दुर्गतः, भवति ।। ४३ ।।

मा दुर्गति इति । 'अयम् चारुदत्तः' इति अध्याहार्यम्, दुर्गतः=दरिद्रः, इति=अनेन कारणेन, परिभवः=तिरस्कारः, मा=न, विधातब्य इति शेषः, यतः कृतान्तस्य=यमस्य, 'कृतान्तयमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इति मेदिनी । समीपे इति अध्याहार्यः, दुर्गतः=निर्धनः, नास्ति नाम इति सम्भावनायाम्, च=पुनः, चारित्र्येण=सद्वृत्तेन, विहीनः=रहितः, आढ्यः=धनिकोऽपि, दुर्गतः=दुःखितो, भवति=याति । अत्र काव्यलिङ्गाप्रस्तुतप्रशंसयोर्निरपेक्षेणावस्थानात् संसृष्टिः, गाथाछन्दः ।

विटः—(सवैलक्ष्यम्—विलक्षस्य भावः वैलक्ष्यम्, तेन सहितं सवैलक्ष्यम्=सलज्जं यथा स्यात्तथा) महाब्राह्मण, मर्षय=क्षमां कुरु, अन्यजनशङ्कया=भिन्नजनसन्देहेन, इदम्=एतत्, अनुष्ठितम्=कृतम्, न=नहि, दर्पात्=अहम्भावात् । पश्य=अवलोकय ।

'यह गरीब है' इसलिए इनका अपमान मत करो भैया । यमराज किसी को नहीं छोड़ता, गरीब हो या अमीर । अगर वह चरित्रहीन है तो उनकी दुर्गति होती ही है ।। ४३ ।।

विट—(खेद प्रकट करते हुए) महाब्राह्मण, माफ करें । यह गलती अनजान में हुई है, जान कर नहीं । किसी अन्य के सन्देह में ऐसा अनुचित काम हो गया है; अहंकारवश नहीं । देखिये—

विदूषकः—किं इअं ? । [**किमियम् ?**]

विटः—शान्तं पापम् ।

..........................काचित् स्वाधीनयौवना ।

सा नष्टा शङ्कया तस्याः प्राप्तेयं शीलवञ्चना ।। ४४ ।।

सर्वथा इदमनुनयसर्वस्वं गृह्यताम् । (इति खड्गमुत्सृज्य कृताञ्जलिः पादयोः पतति ।)

विदूषकः—सप्पुरिस ! उट्ठेहि, उट्ठेहि । अआणन्तेण मए तुमं उवालद्धे, संपदं उण जाणन्तो अणुणेमि । [**सत्पुरुष ! उत्तिष्ठ, उत्तिष्ठ । अजानता मया त्वमुपालब्धः, साम्प्रतं पुनर्जानन् अनुनयामि ।**]

अन्वयः—अस्माभिः, सकामा, स्वाधीनयौवना, काचित्, अन्विष्यते, सा, नष्टा, तस्याः, शङ्कया, इयम्, शीलवञ्चना, प्राप्ता ।। ४४ ।।

सकामेति । अस्माभिः=शकारप्रभृतिजनैः, सकामा=सुरतोत्सुका, स्वाधीनयौवना—स्वाधीनम्=स्वायत्तम्, पत्यधीनविरहितम्, यौवनम्=तारुण्यव्यवहारः यस्याः सा स्वेच्छाचारिणी गणिकेति भावः, काचित्=रमणी, अन्विष्यते=अनुसन्धीयते, रन्तुमिति भावः, अत्र 'सकामा' 'स्वाधीनयौवना' इति विशेषणद्वयेन सा गणिकेति निश्चीयते, अतस्तस्याः साधारण्यात् धारणं न दोषावहमिति भावः। किन्तु सा=अनुसन्धीयमाना रमणी, नष्टा=अदर्शनं गताः, तस्याः=रमण्याः एव, शङ्कया=सन्देहेन, भ्रमेण वा, इयम्=रदनिकया सह घटिता, शीलस्य=शिष्टाचारस्य, वञ्चना=प्रतारणा, अर्थात् सदाचारनष्टसम्भावना, प्राप्ता=सञ्जाता, अस्माभिरिति शेषः, भ्रमादेवेयं सम्भावना न तु ज्ञानपूर्वकं कृतापराधमिति भावः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। ४४ ।।

सर्वथा=सर्वप्रकारेण, इदम्=एतत्, अनुनयस्य=विनयस्य, सर्वस्वम्=परमप्रधानमित्युक्त्वा (खड्गम्=असिः, उत्सृज्य, कृताञ्जलिः=अञ्जलिबद्धो, भूत्वा पादयोः पतति) ।

विदूषकः—सत्पुरुष=हे सज्जन, उत्तिष्ठ=उत्थितो भव, अजानता=भ्रान्त्या,

---

हम लोग एक गणिका को खोज रहे थे···

विदूषक—तो क्या यह वही गणिका है ?

विट—नहीं-नहीं, ऐसा न कहें ।

वह तो स्वाधीन यौवना है, वेश्या है, पर, वह भी तो भाग गई और उसी के सन्देह में आचार का ऐसा उल्लंघन हो गया ।। ४४ ।।

कृपया, अब आप मेरी विनती कबूल करें । (**तलवार फेंककर हाथ जोड़े पैरों पर गिरता है ।**)

विदूषक—हे मान्यवर, उठो, उठो । अनजाने ही मैंने तुम्हारी निन्दा की है । जानकर तो तुम्हारी विनय ही कर रहा हूँ ।

विटः—ननु भवानेवात्रानुनेयः। तदुत्तिष्ठामि समयतः।

विदूषकः—भणादु भवं। [भणतु भवान्।]

विटः—यदीमं वृत्तान्तमार्य्यचारुदत्तस्य नाख्यास्यसि।

विदूषकः—ण कधइस्सं। [न कथयिष्यामि।]

विटः—एष ते प्रणयो विप्र ! शिरसा धार्यते मया।

गुणशस्त्रैर्वयं येन शस्त्रवन्तोऽपि निर्जिताः ॥ ४५ ॥

शकारः—(सासूयम्।) किं णिमित्तं उण भावे ! एदश्श दुट्टवडुअश्श विणअञ्जलि कदुअ पाएशु णिवडिदे ?। [**किं निमित्तं पुनर्भाव ! एतस्य दुष्टबटुकस्य विनयाञ्जलिं कृत्वा पादयोर्निपतितः ?**]

मया=विदूषकेन, त्वम्=भवान्, उपालब्धः=निन्दितः। साम्प्रतम्=अधुना, पुनः=भूयः, जानन्, अनुनयामि=विनयं करोमि।

विटः—ननु=निश्चयेन, भवान्=त्वम्, एव अत्र=अस्मिन् विषये, अनुनेयः=अनुनययोग्यः। समयतः=सत्पथाचारात्, केचित्तु शपथतः इति व्याख्यां कुर्वन्ति। 'समयः सत्पथाचारः कालसिद्धान्तसम्पदः' इति विश्वकोषः।

विदूषकः—भणतु=कथयतु, भवान्=श्रीमान्।

विटः—यदि=चेत्, इमम्=इदम्, वृत्तान्तम्=विवरणम्, न=नहि, आख्यास्यसि=निवेदयिष्यसि।

विदूषकः—न=नहि, कथयिष्यामि=आख्यास्यामि।

अन्वयः—हे विप्र, एषः, ते, प्रणयः, मया, शिरसा, धार्यते, येन, शस्त्रवन्तः, अपि, वयम्, गुणशस्त्रैः, निर्जिताः ॥ ४५ ॥

विटेनानुरुद्धे विदूषकः शकारकृतापराधं चारुदत्ताय न निवेदयिष्यति, इत्याकर्ण्य तमेवाभिनन्दयति—**एष इति**। हे विप्र=हे द्विज, एषः=त्वयाऽधुना एव प्रदर्शितः, ते=तव, प्रणयः=स्नेहः, मया=विटेन, शिरसा=मस्तकेन, धार्यते=स्वीक्रियते। येन=कारणेन, शस्त्रवन्तः=आयुधधारिणः, अपि वयम्=विटादयः, गुणाः=औदार्यादिगुणाः, एव शस्त्राणि=आयुधानि, तैः कारणभूतानि, निर्जिताः=पराजिताः। अस्मिन् श्लोके पथ्यावक्त्रं छन्दम्, रूपकालङ्कारश्चेति ॥ ४५ ॥

शकारः—(सासूयम्=ईर्ष्यया सह) किं निमित्तम्=केन कारणेन, पुनः=भूयः,

---

विट—इस विषय में तो सर्वथा आप ही विनय के पात्र हैं। आपके कहने पर मैं उठता तो हूँ, किन्तु आप से मेरी एक शर्त्त है।

विदूषक—बताइए।

विट—वह यह कि इस घटना की चर्चा आप आर्य चारुदत्त से न करें।

विदूषक—नहीं कहूँगा।

विट—हे विप्र ! तुम्हारी इस कृपा को मैं शिरोधार्य करता हूँ। यही कारण है कि हम लोग हथियार बन्द होते हुए भी तुम्हारे गुणरूपी आयुधों से हारे हैं ॥ ४५ ॥

विटः—भीतोऽस्मि ।

शकारः—कश्श तुमं भीदे ? [कस्मात् त्वं भीतः ?]

विटः—तस्य चारुदत्तस्य गुणेभ्यः ।

शकारः—के तश्श गुणा ? जश्श गेहं पविशिअ अशिदव्वं वि णत्थि । [के तस्य गुणाः ! यस्य गेहं प्रविश्य अशितव्यमपि नास्ति ।]

विटः—मा मैवम् ।

सोऽस्मद्विधानां प्रणयैः कृशीकृतो
न तेन कश्चिद्विभवैर्विमानितः ।
निदाघकालेष्विव सोदको ह्रदो
नृणां स तृष्णामपनीयशुष्कवान् ।। ४६ ।।

भावः=श्रीमान्, एतस्य=सम्मुखोपस्थितस्य, दुष्टवटुकस्य=नीचविदूषकस्य, विनयाञ्जलिम्=दीनाञ्जलिम्, कृत्वा=विधाय, पादयोः=चरणयोः, निपतितः ।

विटः—भीतोऽस्मि=भयाक्रान्तोऽस्मि ।

शकारः—कस्मात्=कारणात्, त्वम्=भवान्, भीतः=त्रस्तः, असि ?

विटः—तस्य=गुणविशेषणयुक्तस्य, चारुदत्तस्य गुणेभ्यः=औदार्यादिगुणेभ्यः।

शकारः—तस्य=चारुदत्तस्य, के गुणाः=नैपुण्याः, यस्य गेहम्=सदनम्, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, अशितव्यमपि=भक्षयितव्यमपि, नास्ति=न विद्यते । चारुदत्तस्य निर्धनताविषयकोपहासवचनं श्रुत्वाऽतिखिन्नस्तस्य दारिद्रचमपि श्लाघते ।

विटः—मा मैवम्=इत्थम् न वक्तव्यम् ।

अन्वयः—सः, अस्मद्विधानां, प्रणयैः, कृशीकृतः, तेन, कश्चित्, विभवैः, न विमानितः, नृणाम्, तृष्णाम्, अपनीय, सः, निदाघकालेषु, सोदकः, ह्रदः, इव, शुष्कवान् ।।

स इति । सः=चारुदत्तः, अस्मद्विधानाम्=अस्मादृशानाम्, प्रणयैः=प्रार्थनाभिः कृशीकृतः=निर्धनीकृतः, तेन=चारुत्तेन, कश्चित्=पुरुषविशेषः, विभवैः=महदैश्वर्यैः, न=नहि, विमानितः=अपमानितः, नृणाम्=याचकजनानाम्, पक्षे—पिपासु-

---

शकार—(**ईर्ष्या के साथ**) श्रीमान्, आप विनत भाव से हाथ जोड़कर इस दुष्ट ब्राह्मण के पैरों पर क्यों गिरे ?

विट—डर कर ।

शकार—किससे आप डरे हैं ।

विट—आर्य चारुदत्त के गुणों से ।

शकार—भला उसमें क्या गुण हैं ? जिसके घर में घुसने पर किसी को खाने के लिए एक दाना भी नसीब न हो, उसमें गुण कैसा ?

विट—ऐसा मत कहो—

हमारे जैसे याचकों के कारण ही तो वे आज ऐसे निर्धन बन गए हैं । जिसने उनसे जो कुछ माँगा उसे उन्होंने वही दिया । अपने धन मद से उन्होंने कभी किसी

शकारः—(सामर्षम् ।) के शे गब्भदासीए पुत्ते ? [**कः स गर्भदास्याः पुत्रः ?**]

शूले विक्किन्ते पण्डवे ? शेदकेदू पुत्ते लाधाए ? लावणे इन्द्रपुत्ते ? ।
आहो कुन्तीए तेण लामेण जादे अश्शत्थामे ? धम्मपुत्ते जडाउ ॥ ४७ ॥
[**शूरो विक्रान्तः पाण्डवः ? श्वेतकेतुः पुत्रो राधायाः ? रावण इन्द्रपुत्रः ? ।**
आहो कुन्त्या तेन रामेण जातः अश्वत्थामा ? धर्मपुत्रो जटायुः ? ॥]

नाम्, तृष्णाम्=धनाभिलाषाम्, पक्षे—पिपासाम्, अपनीय=दूरीकृत्य, सः=असौ, निदाघकालेषु=ग्रीष्मर्तौ, सोदकः=सजलः, ह्रदः=जलाशयः, इव=यथा, शुष्कवान्=शुष्कतां प्राप्तः । अत्र पूर्णोपमालङ्कारः, उपजातिः वृत्तम् ॥ ४६ ॥

शकारः—(सामर्षम्=सक्रोधम्) कः=पुरुषविशेषः, गर्भदास्याः पुत्रः=प्रादुर्भावावधिदास्याः पुत्रः, एतेन जन्मतः एव निर्धनत्वं सूचितम् । यद्गुणवशीभूतस्त्वमिति भावः—

अन्वयः—शूरः, विक्रान्तः, पाण्डवः, राधायाः पुत्रः, श्वेतकेतुः, इन्द्रपुत्रः, रावणः आहो, तेन, रामेण, जातः, कुन्त्याः, अश्वत्थामा, धर्मपुत्रः, जटायुः ॥ ४७ ॥

शूर इति । शूरः=वीरः, अथवा शूरनामा कश्चित् पराक्रमशीलः नृपः विक्रान्तः =पराक्रमी, किमिति शेषः । पाण्डवः=पाण्डुनन्दनः, भीमः, अर्जुनो वा । श्वेतकेतुः —श्वेतः=शुक्लवर्णः केतुः=चिह्नम्, वाहनरूपं यस्य सः पाण्डुपुत्रोऽर्जुनः यतो हि—अर्जुनघोटकस्य श्वेतत्वात्प्रसिद्धेः, अथवा एतन्नाम्ना प्रसिद्धः पौराणिक कोऽपि नृपः । यद्वा—श्वेतकेतुः=औद्दालकिः दुर्वाससो मातुलः, अस्मिन् पक्षे वीर-वर्णनप्रसङ्गत्वात् ऋषिनामोच्चारणं प्रकरणविरुद्धमिति न वाच्यम्, शकारवचनत्वात्, अथवा—श्वेतकेतुः, =राधेयः कर्णः—पौराणिकगाथायां यद्यपि कर्णस्य न कुत्राऽपि संज्ञा प्रसिद्धा तथापि शकारवचनत्वात् पुराणविरोधोऽपि सोढव्यः । इन्द्रपुत्रः=जयन्तः, अथवा वानरपतिबालिः, रावणः=दशग्रीवः, आहो=अथवा, तेन=विख्यातेन, रामेण=दशरथपुत्रेण, जातः=समुत्पन्नः, कुन्त्याः=अर्जुनमातुः, अश्वत्थामा=द्रोणसुतः, धर्मपुत्रः =युधिष्ठिरः, जटायुः=महापराक्रमी प्रसिद्धपक्षिविशेषः, केचित्तु धर्मपुत्र इति जटायुविशेषणं तन्मते युधिष्ठिरस्य धर्मपुत्रत्वेन प्रसिद्धेः अपार्थकता किन्तु शकारवचनत्वात् न दोषावहः । वैश्वदेवी वृत्तम् । तल्लक्षणन्तु—'बाणाश्वैश्छिन्ना वैश्वदेवी ममौ यौ ॥४७॥

को अपमानित नहीं किया । ग्रीष्मकालीन सरोवर की तरह दूसरों की प्यास बुझाकर स्वयं सूख गए हैं ॥ ४६ ॥

शकार—(क्रुद्ध होकर) वह कौन है जन्म दासी का बेटा ?

क्या परमपराक्रमी पाण्डुपुत्र भीम या अर्जुन है ? या राधा का बेटा श्वेतकेतु है? अथवा इन्द्र का बेटा रावण है ? या राम एवं कुन्ती के संयोग से उत्पन्न अश्वत्थामा है ? अथवा धर्म का पुत्र जटायु है ॥ ४७ ॥

विटः—मूर्ख ! आर्यचारुदत्तः खल्वसौ ।

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः ।
सत्कर्त्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्तीव चान्ये ॥ ४८ ॥

तदितो गच्छामः ।

विटः—मूर्ख=हे अज्ञ ! खलु=निश्चयेन, असौ=आचारनिष्ठः, आर्यचारुदत्तः ।

अन्वयः—दीनानाम्, स्वगुणफलनतः, कल्पवृक्षः, सज्जनानाम्, कुटुम्बी, शिक्षितानाम्, आदर्शः, सुचरितनिकषः, शीलवेलासमुद्रः, सत्कर्त्ता, न, अवमन्ता पुरुषगुणनिधिः, दक्षिणोदारसत्त्वः, हि, अधिकगुणतया, श्लाघ्यः, एकः, सः, जीवति, अन्ये उच्छ्वसन्ति, इव, च ॥ ४८ ॥

शकारवचनं तिरस्कृत्य चारुदत्तस्य गुणसमूहं वर्णयति—**दीनानामिति** । दीनानाम्=दुर्गतजनानाम्, स्वगुणानाम्=दयादाक्षिण्यादीनाम्, फलैः=परिणामैः नतः=नम्रीभूतः, विनयावनत इति भावः, कल्पवृक्षः=वाञ्छितदः कल्पद्रुम इवेति भावः । सज्जनानाम्=सत्पुरुषाणाम्, कुटुम्बीः=बन्धुः, शिक्षितानाम्=विदुषाम्, आदर्शः=दृष्टान्तभूतः, सुचरितानाम्=सदाचारवताम्, निकषः=परीक्षापाषाणः, शीलवेलासमुद्रः—शीलम्=स्वभावः 'शीलं स्वभावे सद्वृत्तेः' इति विश्वः, तदेव बेला=मर्यादा, तस्य समुद्रः=सागरः, यथा सागरः कदापि बेलाभूमिं नातिक्रामति तथैवाऽयं जनः सदाचारं न लङ्घयति इति । सत्कर्त्ता=समादरकर्त्ता, नावमन्ता=न कस्यचिदपि अपमानकर्त्ता, पुरुषगुणानाम्=पुरुषाणां गुणाः दयादाक्षिण्यादयस्तेषां निधिः=सागरः, दक्षिणोदारसत्त्वः—दक्षिणम्=अनुकूलम्, उदारम्=महत् च, सत्त्वम्=स्वभावः यस्य सः, हि=निश्चितम्, अधिकगुणतया=विविधगुणाश्रयत्वेन, श्लाघ्यः=प्रशंसनीयः, एकः=केवलः, सः=चारुदत्तः. जीवति=सफलं प्राणान् धारयति, अन्ये=इतरे जनाः, उच्छ्वसन्ति=उच्छ्वासं कुर्वन्ति, इव=यथा । अस्मिन् श्लोके एकस्यैव चारुदत्तस्य विविधरूपेणोल्लेखनात् उल्लेखालङ्कारः, स्रग्धरा वृत्तञ्चेति ॥ ४८ ॥

तत्=तस्मात्, इतः=अस्मात् स्थानात्, गच्छामः ।

विट—रे मूर्ख ये तो आर्यचारुदत्त हैं ।

जो दरिद्रों की अभिलाषा की पूर्त्ति के लिए कल्पवृक्ष की तरह हैं । अपने ही विशिष्टगुणों से विनम्र, साधुसन्तों के पालक, विनीतों के आदर्श, चरित्रों की कसौटी सदाचाररूपी मर्यादा के सागर, लोकोपकारी, किसी का भी अपमान न करनेवाले, मानवीय गुणों की चोटी, सरल हृदय, उदार चरित, अनेक गुणों से युक्त, अकेले चारुदत्त का जीवन ही प्रशंसनीय है, इनके सामने औरों की जिन्दगी तो व्यर्थ ही है ।

इसीलिए अब यहाँ से जाता हूँ ।

शकारः—अगेण्हिअ वशन्तशेणिअं ? [**अगृहीत्वा वसन्तसेनिकाम् ?**]

विटः—नष्टा वसन्तसेना ।

शकारः—कधं विअ ? [**कथमिव ?** ।]

विटः—

अन्धस्य दृष्टिरिव पुष्टिरिवातुरस्य
मूर्खस्य बुद्धिरिव सिद्धिरिवालसस्य ।
स्वल्पस्मृतेर्व्यसनिनः परमेव विद्या
त्वां प्राप्य सा रतिरिवारिजने प्रनष्टा ।। ४९ ।।

शकारः—अगेण्हिअ वशन्तशेणिअं ण गमिश्शं । [**अगृहीत्वा वसन्तसेनिकां न गमिष्यामि ।**]

शकारः—अगृहीत्वा=वसन्तसेनिकां परित्यज्यैव किमिति भावः ?

विटः—नष्टा=पलायिता वसन्तसेना ।

शकारः—कथमिवेति प्रश्ने ।

अन्वयः—सा, त्वाम्, प्राप्य, अन्धस्य, दृष्टिः, इव, आतुरस्य, पुष्टिः, इव, मूर्खस्य, बुद्धिः, इव, अलसस्य, सिद्धिः, इव, अल्पस्मृतेः, व्यसनिनः, परमा, विद्या, इव, अरिजने, रतिः इव प्रणष्टा ।। ४९ ।।

वसन्तसेनाया अदर्शनकारणपृष्टो विटः शकारस्यानुचितव्यवहारमेव कारणत्वेन प्रतिपादयति—**अन्धस्येति** । सा=वसन्तसेना, त्वाम्=शकारम्, प्राप्य=लब्ध्वा, अन्धस्य=दर्शनशक्तिरहितस्य, दृष्टिः=दर्शनशक्तिः, इव=यथा, आतुरस्य=रोगग्रस्तस्य, पुष्टिः=दैहिकशक्तिरिव, मूर्खस्य=अज्ञस्य, बुद्धिः=विवेकसामर्थ्यम् इव, अलसस्य=मन्दस्य, सिद्धिः=सफलता इव, अल्पस्मृतेः=दुर्मेधसः, व्यसनिनः=दुर्गुणासक्तस्य, परमा=श्रेष्ठा, विद्या=ज्ञानमिव, अरिजने=शत्रुजने, रतिः=अनुराग इव, त्वां दुष्टं प्राप्य प्रणष्टा=अदर्शनंगता । मालोपमालङ्कारः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।। ४९ ।।

शकारः—अगृहीत्वा=अप्राप्य, वसन्तसेनिकाम्, न=नहि, गमिष्यामि=यास्यामि ।

शकार—वसन्तसेना को छोड़कर ही क्या ?

विट—वसन्तसेना तो पहले ही गायब हो चुकी है ।

शकार—कैसे ?

विट—अन्धों की आँखों की तरह, रोगपीड़ितों की ताकत की तरह, मूर्खों की बुद्धि की तरह, आलसियों की सिद्धि की तरह, अल्पबुद्धि कामुकों के उत्कृष्ट ज्ञान की तरह तथा शत्रुओं के अनुराग की तरह, तुम्हें पाकर वह अदृश्य हो गई ।। ४९ ।।

शकार—वसन्तसेना को विना साथ लिये नहीं जाऊँगा ।

विटः—एतदपि न श्रुतं त्वया ?

आलाने गृह्यते हस्ती बाजी वल्गासु गृह्यते ।
हृदये गृह्यते नारी यदिदं नास्ति गम्यताम् ॥ ५० ॥

शकारः—जइ गच्छशि, गच्छ तुमं, हगे ण गमिश्शं । [**यदि गच्छसि, गच्छ त्वम्, अहं न गमिष्यामि ।**]

विटः—एवं गच्छामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

शकारः—गडे क्खु भावे अभावं । (विदूषकमुद्दिश्य ।) अले काकपदशीशमत्थका दुट्टवडुका ! उवविश उवविश । [**गतः खलु भावः अभावम् । अरे काकपदशीर्षकमस्तक ! दुष्टबटुक ! उपविश उपविश ।**]

विटः—एतदपि=एतावदपि, त्वया=भवता, न=नहि, श्रुतम्=ज्ञातम् ?

अन्वयः—हस्ती, आलाने, गृह्यते, बाजी, बल्गासु, गृह्यते, नारी, हृदये, गृह्यते, यदि, इदम्, नास्ति (तदा) गम्यताम् ॥ ५० ॥

आलाने इति । हस्ती=गजः, आलाने=बन्धनस्तम्भे 'आलाने बान्धनस्तम्भः' इत्यमरः । गृह्यते=वशीक्रियते । बाजी=घोटकः, बल्गासु=मुखरश्मिसु, गृह्यते=निरुध्यते । नारी=स्त्री, हृदये=हृदयप्रेम्णा एव, गृह्यते=वशीक्रियते । यदि=चेत्, नास्ति=न वर्त्तते, तर्हि गम्यताम्=निवर्त्यताम्, अस्माद् व्यापारादिति भावः । अत्राप्रस्तुतयोः हस्तिवाजिनोः प्रस्तुतायाश्च कामिन्या एक्यग्रहणक्रियाभिः सम्बन्धाद्दीपकालङ्कारः । अन्यच्चालानादौ हस्त्यादिग्रहणमिव हृदये नारीग्रहणमिति बिम्बानुबिम्ब भावे पर्यवसानात् निदर्शनालङ्कारश्चेति । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५० ॥

शकारः—यदि=चेत्, गच्छसि=यासि, गच्छ=यातु, त्वम्=भवान्, अहम्=शकारः, न=नहि, गमिष्यामि ।

विटः—एवम्=अनेन प्रकारेण, गच्छामि=चलामि । (इति निष्क्रान्तः=एवमुक्त्वा बहिर्गतः) ।

शकारः—गतः=प्रत्यावर्त्तितः, खलु=निश्चयेन, भावः=पण्डितः, अभावम्=वर्त्तमानताभावम् । अरे, इति सम्बोधने, काकपदशीर्षकमस्तक=काकस्य पदवत् कुटिलं कृशश्च शीर्षम्=मस्तकं यस्याथवा=काकस्य पदवत् अनेकधा विभक्तं शीर्षकं यस्य तत्सम्बुद्धौ तादिति भावः । दुष्टवटुकः=हे नीच बालक, उपविश=उपविश्यताम् ।

विट—क्या तुमने यह भी नहीं सुना है ? कि—

हाथी खम्भे में बाँधकर वश में लाया जाता है, घोड़े को लगाम लगाकर लोग उसे अपने काबू में लाते हैं और कोई स्त्री हृदय से अनुरक्त होने पर ही वश में आती है अगर ऐसी बात नहीं है तो सीधे अपनी राह नापिये ॥ ५० ॥

शकार—यदि तुम जाना ही चाहते हो तो जाओ, मैं तो जाने को नहीं ।

विट—तो मैं जाता हूँ । (**कहकर निकल जाता है**)

शकार—लो, अब तो भाव का ही अभाव हो गया । (**विदूषक की ओर देखकर**) अरे कौए के पैर की तरह चिंचड़े माथे वाले दुष्ट बटुक, बैठ तू बैठ जा ।

विदूषकः—उववेसिदा ज्जेव अम्हे। (**उपवेशिता एव वयम्।**)

शकारः—केण ? [**केन ?**]

विदूषकः—कअन्तेण। [**कृतान्तेन।**]

शकारः—उट्ठेहि उट्ठेहि। [**उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ।**]

विदूषकः—उट्ठिस्सामो। [**उत्थास्यामः।**]

शकारः—कदा ? [**कदा ?**]

विदूषकः—जदा पुणो वि देव्वं अणुऊलं भविस्सदि। [**यदा पुनरपि दैवमनुकूलं भविष्यति।**]

शकारः—अले ! लोद लोद। [**अरे ! रुदिहि रुदिहि।**]

विदूषकः—रोदाविदा ज्जेव अम्हे। [**रोदिता एव वयम्।**]

शकारः—केण ? [**केन ?**]

विदूषकः—दुग्गदीए। [**दुर्गत्या।**]

विदूषकः—उपवेशिता=स्थापिता एव, वयम्=विदूषकादयः।

शकारः—केन=पुरुषविशेषेण ?

विदूषकः—कृतान्तेन=यमेन दैवेन वा।

शकारः–उत्तिष्ठ=उत्थितो भव।

विदूषकः—उत्थास्यामः=उत्थिता भविष्यामः।

शकारः—कदा=कस्मिन् समये।

विदूषकः—यदा=यस्मिन् समये, पुनरपि=भूयोऽपि, दैवम्=भाग्यम्, अनुकूलम्=अभिमुखम्, भविष्यति।

शकारः—अरे ! रुदिहि, रुदिहि=रोदनं कुरु।

विदूषकः—रोदिता=क्रन्दिता, एव, वयम्=विदूषकादयः।

शकारः—केन=पुरुषविशेषेण।

विदूषकः—दुर्गत्या=दुर्दशया।

विदूषक—हमलोग तो बैठा ही दिये गये हैं।

शकार—किसने बैठाया ?

विदूषक—भाग्य ने।

शकार—उठो उठो।

विदूषक—उठेंगे ही।

शकार—कब ?

विदूषक—जब भाग्य चाहेगा।

शकार—अरे तो रोओ ही।

विदूषक—बहुत पहले ही रुलाये जा चुके हैं।

शकार—किससे ?

शकारः—अले ! हश हश । [अरे ! हस हस ।]

विदूषकः—हसिस्सामो । [हसिष्यामः ।]

शकारः—कदा ? [कदा ?]

विदूषकः—पुणो वि ऋद्धीए अज्जचारुदत्तस्स । [पुनरपि ऋद्धचा आर्यचारुदत्तस्य ।]

शकारः—अले ले दुट्ठवडुका ! भणेशि मम वअणेण तं दलिद्दचालुदत्तकं एशा शशुवण्णा शहिलण्णा णव-णाडअदंशणुट्ठिदा शुत्तधालि व्व वशन्तशेणा णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि तुमं अणुलत्ता, अम्हेहिं बलक्कालाणुणीअमाणा, तुह गेहं पविट्ठा । ता जइ मम हत्थे शअं ज्जेव पट्टाविअ एणं शमप्पेशि, तदो अधिअलणे ववहालं विणा लहु णिज्जादमाणाह तव मए अणुबद्धा पीदी हुविश्शदि । आदु अणिज्जादमाणाह आमलणान्तिके वेले हुविश्शदि । अवि अ पेक्ख—[अरे रे दुष्टवटुक ! भणिष्यसि मम वचनेन तं दरिद्रचारुदत्तकम् । एषा ससुवर्णा सहिरण्या नव-नाटक-दर्शनोत्थिता सूत्रधारीव वसन्तसेना नाम्नी गणिकादारिका, कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति त्वामनुरक्ता अस्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गेहं प्रविष्टा । तद्यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्य एनां

शकारः—अरे हस हस = हसनं कुरु ।

विदूषकः—हसिष्यामः = सुखमपि अनुभविष्यामः ।

शकारः—कदा = कस्मिन् समये ।

विदूषकः—पुनरपि = भूयोऽपि, आर्यचारुदत्तस्य = मान्यसुहृदः, ऋद्धचा = समृद्धचा वैभवेन वा ।

शकारः—अरे रे दुष्टवटुक = दुष्टब्राह्मण, भणिष्यसि = गदिष्यसि, मम = शकारस्य, वचनेन = कथनेन, तम् = प्रसङ्गोच्चारितम्, चारुदत्तकम् । एषा = वर्त्तमाना, ससुवर्णा = सुष्ठुवर्णैः सह विद्यमाना वाक्चातुरीयुक्तेति भावः, किं वा सुवर्णैः = हिरण्यमयैः भूषणैः वर्त्तमाना अथवा सुष्ठु श्रेष्ठवर्णैः द्विजैः सहिता ससुवर्णा, नवनाटकस्य = नूतनाभिनयस्य, दर्शनाय = अवलोकनाय, उत्थिता = उत्कण्ठिता, सूत्रधारीव = सूत्रधारपत्नीव, बलात्कारेण = बलेन विनयभङ्गेन वा, अनुनीयमाना = प्रार्थ्यमाना, अधि-

---

विदूषक—दुर्गति से ।

शकार—अरे, हँसो, खूब हँसो ।

विदूषक—निश्चय ही हँसेंगे ।

शकार—कब हँसोगे ?

विदूषक—जब आर्य चारुदत्त की समृद्धि फिर लौट आयेगी ।

शकार—रे दुष्ट बटुक, जाकर मेरी ओर से जरा उस दरिद्र चारुदत्त से तो कह दो—सोने के गहनों से लदी हुई, नूतन अभिनय के लिए मंच पर आई हुई नटी की तरह अत्याकर्षक वेश्यापुत्री यह वसन्तसेना, 'कामदेवायतन' नामक उद्यान में प्रथम दर्शन

समर्पयसि, ततोऽधिकरणे व्यवहारं विना लघु निर्यातयतस्तव मयानुबद्धा प्रीतिर्भविष्यति। अथवा अनिर्यातयत आमरणान्तकं वैरं भविष्यति। अपि च प्रेक्षस्व—]

कक्कालुका गोच्छड-लित्तवेण्टा, शाके अ शुक्खेतलिदे हु मांशे।
भत्ते अ हेमन्तिअ-लत्तिशिद्धे लीणे अ वेले ण हु होदि पूदी ॥ ५१ ॥

[कर्कारुको गोमयलिप्तवृन्तः शाकञ्च शुष्कं तलितं खलु मांसम्।
भक्तञ्च हैमन्तिकरात्रिसिद्धं लीनायाञ्च वेलायां न खलु भवति पूति ॥]

करणे—न्यायालये, व्यवहारं विना=अभियोगं विना वा विवादं विना 'विवादो व्यवहारः स्यात्' इत्यमरः। अत्र पृथ्वीधरटीकायाम्—अनेन व्यवहारनाम्नः नवमाङ्कस्य सूचनम्। निर्यातयतः=अर्पयतः वसन्तसेनामिति शेषः, 'निर्यातनं वैरशुद्धौ दाने न्यासार्पणेऽपि च' इति हेमचन्द्रः। मया=शकारेण सह, अनुबद्धा=दृढ़ीकृता, प्रीतिः=अनुरागः, भविष्यति, अथवा=वा, अनिर्यातयतः=वसन्तसेनामर्पणं विना, आमरणान्तकं=मरणपर्यन्तम्, वैरम्=विरोधम्, भविष्यति। अपि च=अन्यच्च, प्रेक्षस्व=अवलोकय।

अन्वयः—गोमयलिप्तवृन्तः, कर्कारुकः, शुष्कम्, शाकम्, च, तलितम्, मांसम्, खलु, हैमन्तिकरात्रिसिद्धम्, भक्तम्, च, वेलायाम्, लीनायाम्, च, न, खलु, पूति, भवति ॥ ५१ ॥

कर्कारुक इति। गोमयेन=गोपुरीषेण, लिप्तम्=वेष्टितम्, वृन्तम्=बन्धनम्, यस्य एवंभूतः कर्कारुकः=कूष्माण्डः 'कूष्माण्डकस्तु कर्कारुकः' इत्यमरः। शुष्कम्=रसरहितम्, शाकम्=हरितकम्, च=पुनः, तलितम्=घृतादिना सम्मृष्टम्, मांसम्=आमिषम्, खलु=निश्चयेन, हैमन्तिकायाम्=हेमन्तऋतुभवायाम्, रात्रौ=निशायाम्, सिद्धम्=पक्वम्, भक्तम्=सिद्धान्नम्, च=पुनः, वेलायाम्=समये, लीनायाम्=अतिक्रान्तायाम्, च=अपि, न खलु=नैव, पूति=दुर्गन्धयुक्तम्, विकृतमित्यर्थः, भवति=जायते। शकारवचनस्यायमभिप्रायः—विकारि एतत् वस्तुजातं कृते यत्ने कालातिपातं कर्त्तुम् प्रभवति, किञ्च वसन्तसेनामनिर्यातयता त्वया सह मम मरणपर्यन्तं वैरं भविष्यति। अत्र तुल्ययोगिता नामालङ्कारः। गोमयलिप्तकूष्माण्डादीनां कालातिपातेऽपि पूतिगन्धत्वाभावरूपाप्रस्तुतेभ्यो वसन्तसेनायाः शीघ्रतया असमर्पणे वैररूपदोषः प्रस्तुतः वैधर्म्येण प्रतीयत इत्यप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारश्चेति। इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ५१ ॥

से ही तुम पर आसक्त है। हमने उसे मनाने की लाख चेष्टा की, बलपूर्वक अधिकार में लाने का प्रयास किया, फिर भी वह तुम्हारे घर में घुसकर लापता हो गई है। यदि तुम स्वेच्छा से उसे मेरे हाथों में सौंप देते हो,तो न्यायालय में लगने वाले अभियोग से ही न केवल मुक्त होते हो, प्रत्युत् हमसे तुम्हारी मैत्री प्रगाढ़ हो जायेगी। अन्यथा आजीवन हमसे तुम्हारी दुश्मनी बनी रहेगी। और भी देखो—

गोबर पोते डंठल वाले कुम्हड़े, सूखे सागपात, तला हुआ मांस, जाड़े की रात में पकाये गये भात—ये सारी चीजें बहुत समय बीत जाने पर भी खराब नहीं होती।

शोट्टिकं भणेशि, लहुकं भणेशि। तधा भणेशि, जधा हगे अत्तणकेलिकाए पासाद-बालग्ग-कवोद-वालिआए उववि‍ट्ठे शुणामि। अण्णधा, जदि ण भणेशि, तधा कवाल-तल-पविट्ठ-कवित्थगुडिअं विअ मत्थअं दे मडमडाइश्शं। [स्वस्तिकं भणिष्यसि, लघुकं भणिष्यसि। तथा भणिष्यसि यथाऽहम् आत्मीयायां प्रासाद-बालाग्र-कपोतपालिकायामुपविष्टः श्रृणोमि, अन्यथा, यदि न भणिष्यसि, तदा कपाट-तल-प्रविष्टं कपित्थगुलिकमिव मस्तकं ते मडमडायिष्यामि।]

विदूषकः—भणिस्सं। [भणिष्यामि।]

शकारः—(अपवार्य।) चेडे ! गडे शच्चकं ज्जेव भावे ? [चेट ! गतः सत्यमेव भावः ?]

चेटः—अध इं ? [अथ किम् ?]

स्वस्तिकम् = शोभनम्, यथास्यात्तथा भणिष्यसि = कथयिष्यसि, लघुकम् = क्षिप्रम्, भणिष्यसि = कथयिष्यसि, तथा = तेन प्रकारेण भणिष्यसि, यथा = येन प्रकारेण, अहम् = शकारः, आत्मीयायाम् = स्वकीयायाम्, प्रासादस्य = राजभवनस्य, बालम् = नूतनम्, यत् पालाग्रम् = मत्तवारण्डम्, तत्र विद्यमाना कपोतपालिका = विटङ्कम्, 'कपोत-पालिकायान्तु विटङ्कं पुंनपुसकम्' इत्यमरः। तस्यामुपविष्टः। अन्यथा यदि न भणिष्यसि। अत्र 'भणिष्यति' शब्दस्य प्रयोगमनुचितमस्ति। यतो ह्यन्यथाशब्दप्रयोगेनैव गतार्थत्वात्। तदा = तर्हि, कपाटयोः = अररयोः, तले = मध्ये, प्रविष्टम् = स्थापितम्, कपित्थस्य = दधित्थस्य, गुलिकमिव = करिभोजनावशिष्टत्वात्, अन्तःसारशून्यत्वात् गोलकमात्रावशिष्टं फलविशेषमिवेति तात्पर्यं। ते = तव विदूषकस्य, मस्तकम् = शीर्षम्, मड़मड़ायिष्यामि = मड़मड़शब्द इवाचरिष्यामीति विग्रहे 'उपमानादाचारे' इति क्यच्, चूर्णयिष्यामीति भावः।

विदूषकः—भणिष्यामि = कथमिष्यामि।

शकारः—(अपवार्यं = एतल्लक्षणन्तु साहित्यदर्पणे—'रहस्यन्तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते तद्भवेदपवारितम्') चेट = हे भंड ! सत्यमेव = यथार्थतः, भावः = विद्वान्, गतः = प्रयातः ?

चेटः—अथ किम् = अस्त्वेवम्।

जाओ, जल्दी करो—जैसा मैंने कहा है, उसी तरह उससे कहो। इस तरह ऊँची आवाज में कहो कि राजभवन की ऊपरी मंजिल में नवनिर्मित कपोतपालिका पर बैठा मैं सब कुछ सुन सकूं। अगर तुम ऐसा नहीं करते हो, तो दो पाटों के बीच पड़े कत्थे की तरह तुम्हारे माथे का मड़ामड़ाकर कचूमर निकाल दूंगा।

विदूषक—कह दूंगा।

शकार—(**थोड़ा हटकर**) चेट, क्या सचमुच भाव (विट) चले गये।

चेट—तो और क्या ?

शकारः—ता शिग्घं अवक्कमम्ह । [तत् शीघ्रमपक्रमावः ।]

चेटः—ता गेण्हदु भट्टके अशिं । [तत् गृह्णातु भट्टारकः असिम् ।]

शकारः—तव ज्जेव हत्थे चिट्ठदु । [तवैव हस्ते तिष्ठतु ।]

चेटः—एशे भट्टालके । गेण्हदु णं भट्टके अशिं । [एषः भट्टारकः । गृह्णातु एनं भट्टारकः असिम् ।]

शकारः—(विपरीतं गृहीत्वा ।)

णिव्वक्कलं मूलकपेशिवण्णं खन्धेण घेत्तूण अ कोशशुत्तं ।
कुक्केहि कुक्कीहि अ बुक्कअन्ते जधा शिआले शलणं पलामि ॥ ५२ ॥

[**निर्वल्कलं मूलकपेशिवर्णं स्कन्धेन गृहीत्वा च कोषसुप्तम् ।**
कुक्कुरैः कुक्कुरीभिश्च बुक्कचमानो यथा शृगालः शरणं पलाये ॥]

शकारः—तत्=तस्मात्, शीघ्रम्=त्वरितमेव, अपक्रमावः=बहिर्गच्छावः ।

चेटः—तत्=तस्मात्, गृह्णातु=ग्रहणं करोतु, भट्टारकः=स्वामी, असिम्=करवालम् ।

शकारः—तव=भवतः, एव, हस्ते=करे, तिष्ठतु ।

चेटः—एषः=इदम्, भट्टारकस्य=प्रभोः, असिम्=करवालम् ।

शकारः—(विपरीतम्=प्रतीपम्, गृहीत्वा=धृत्वा ।)

अन्वयः–निर्वल्कलम्, मूलकपेशिवर्णम्, कोषसुप्तम्, स्कन्धेन, गृहीत्वा, च कुक्कुरैः, कुक्कुरीभिश्च, बुक्यमानः, शृंगालः, यथा, शरणम्, पलाये ॥ ५२ ॥

निर्वल्कलमिति । बल्कलम्=तरुत्वक्, निर्गतम्=निःसृतम् यस्मात्तं निर्वल्कलम् =वृक्षत्वग्रहितम् यद्वा—बल्कलात्=वृक्षत्वचः लक्षणया तन्निर्मितात् कोषात् निर्गतम् =कोषबहिर्भूतमित्यर्थः । मूलकस्य पेशिस्त्वक् तद्वर्ण इव वर्णो यस्य शुक्लोज्ज्वलमित्यर्थः । कोषसुप्तम्=कोष स्थितम्, असिमिति शेषः, स्कन्धेन=अंशप्रदेशेन, गृहीत्वा=धृत्वा, च, कुक्कुरैः=श्वभिः, कुक्कुरीभिः=शुनीभिश्च, बुक्यमानः=शब्दायमानः, शृगालः =जम्बुकः, यथा=इव, शरणम्=गृहम् 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः । पलाये= असहायः सन् जवेन निज सदनं प्रयामि । जम्बुक इवाहमपि कुक्कुरतुल्येन विदूषकेण

शकार—तो हम दोनों भी शीघ्र ही यहाँ से चल दें ।

चेट—तो फिर अपनी तलवार सँभालिये मालिक !

शकार—रहने दो, इसे अपने हाथ में ही ।

चेट—यह मालिक की तलवार है और इस समय उनकी जगह आप ही हैं; अतः इसे आप स्वयं ग्रहण करें ।

शकार—उल्टी तलवार लेकर—

जैसे कुत्ते और कुत्तियों के भौंकने पर सियार अपनी शरण के लिए भागता है, उसी प्रकार कंधे पर रक्खी तरकश में तेज तरार तलवार के बावजूद, विदूषक रूपी कुत्ते और रदनिकारूपी कुत्ती के भूंकने पर मैं भी अपनी घर भाग रहा हूँ ॥ ५२ ॥

(परिक्रम्य निष्क्रान्तौ)

विदूषकः—भोदि ! रदणिए ! ण क्खु दे अअं अवमाणो तत्तभवदो चारुदत्तस्स णिवेदइदव्वो । दोग्गच्चपीडिअस्स मण्णे दिउणदरा पीडा हुविस्सदि । **[भवति ! रदनिके ! न खलु ते अयमपमानस्तत्रभवतश्चारुदत्तस्य निवेदयितव्यः । दौर्गत्यपीडितस्य मन्ये द्विगुणतरा पीडा भविष्यति ।]**

रदनिकाः—अज्ज मित्तेअ ! रदणिआ क्खु अहं संजदमुही । **[आर्य ! मैत्रेय ! रदनिका खल्वहं संयतमुखी ।]**

विदूषकः—एव्वं णेदं । **[एवमिदम् ।]**

चारुदत्तः—(वसन्तसेनामुद्दिश्य) रदनिके ! मारुताभिलाषी प्रदोषसमयशीतार्त्तो रोहसेनः । ततः प्रवेश्यतामभ्यन्तरमयम् । अनेन प्रावारकेण छादयैनम् । (इति प्रावारकं प्रयच्छति ।)

कुक्कुरीतुल्यया रदनिकया च शब्दायमानः स्वगृहं गच्छामि । अत्र श्रौतोपमालुप्तोपमयोः संसृष्टिः । उपजातिः वृत्तम् ॥ ५२ ॥

(परिक्रम्य=कियत् पदं चलित्वा, निष्क्रान्तौ=बहिर्गतौ)

विदूषकः—भवति=श्रीमति, रदनिके, न=नहि, खलु=निश्चयेन, ते=तव, अयम्=एषः, अपमानः=अनादरः, तत्रभवतः=श्रीमतः, चारुदत्तस्य निवेदयितव्यः =कथितव्यः, दौर्गत्यपीडितस्य=दारिद्रचदुःखितस्य, द्विगुणतरा=द्विगुणिता, पीडा= कष्टम्, भविष्यति, इति मन्ये ।

रदनिका—आर्य=मान्य, मैत्रेय, अहम्=एषा वर्तमाना, खलु=निश्चयेन, संयतमुखी=मितवादिनी, रदनिका=तव दासी, अस्मीति शेषः ।

विदूषकः—एवमिदम्=सत्यमेवेदमिति ।

चारुदत्तः—(वसन्तसेनामुद्दिश्य=वसन्तसेनां प्रति रदनिकाबुद्धयेति भावः) रदनिके—रदनानि=दशनानि सन्ति अस्या=इति रदनिका तत्सम्बुद्धौ, मारुताभिलाषी—मारुतस्य=वायोः सेवनस्य, अभिलाषी=इच्छुकः, प्रदोषसमयशीतार्त्तः

(घूमकर भाग गये)

विदूषक—अरो वो रदनिके, अपने अपमान की यह बात परम श्रद्धेय आर्य चारुदत्त से मत कहना, क्योंकि अपनी गरीबी के कारण ये विचारे एक तो यों ही परेशान हैं फिर, यह सुनकर उनको यह वेदना और दूनी हो जायेगी ।

रदनिका—आर्य मैत्रेय, संयतमुखी रदनिका मैं हूँ, इसे मत भूलिए ।

विदूषक—हाँ सो तो है ।

चारुदत्त—**(वसन्तसेना की ओर देखकर)** रदनिके, शाम में घूमने का शौकीन रोहसेन आज सायंकालीन शीतवायु से पीड़ित हो गया है । इसे भीतर ले जाओ और इस चादर से इसे ढँक दो । **(चादर देता है ।)**

वसन्तसेना—(स्वगतम्) कधं परिअणो त्ति मं अवगच्छदि ! (प्रावारकं गृहीत्वा समाघ्राय च, स्वगतं सस्पृहम्) अम्महे ! जादीकुसुमवासिदो पावारओ। अणुदासीणं स्से जोव्वणं पडिभासेदि। (अपवारितकेन प्रावृणोति।) **कथं परिजन इति मामवगच्छति। आश्चर्यम् ! जातीकुसुमवासितः प्रावारकः, अनुदासीनमस्य यौवनं प्रतिभासते।]**

चारुदत्तः—ननु रदनिके ! रोहसेनं गृहीत्वाऽभ्यन्तरं प्रविश।

वसन्तसेना—(स्वगतम्) अभाइणी क्खु अहं तुम्हे अब्भन्तरस्स। [**अभागिनी खल्वहं तव अभ्यन्तरस्य।]**

चारुदत्तः—ननु रदनिके ! प्रतिवचनमपि नास्ति ! कष्टम् !

=प्रदोषकालीनशीतेन पीडितः। रोहसेनः=मम चारुदत्तस्य पुत्रः। अयम्=रोहसेनः, अभ्यन्तरम्=अन्तःकक्षे, प्रवेश्यताम्=नीयताम्। प्रवारकेण=उत्तरीयवस्त्रेण (इति =एवमुक्त्वा, प्रवारकम्=उत्तरीयवस्त्रम्, प्रयच्छति=ददाति)

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कथमित्याशङ्कायाम्, माम्=वसन्तसेनाम्, परिजनः=आत्मीयजनः, अवगच्छति=जानाति (प्रवारकं गृहीत्वा= उत्तरीयवस्त्रं नीत्वा, समाघ्राय=घ्रात्वा, स्वगतम्=आत्मगतम्, सस्पृहम्=सोत्कण्ठम्) अहो=इत्याश्चर्यम्, जातीकुसुमवासितः=सुगन्धितः, प्रवारकः, अनुदासीनम्=आसक्तम्, उपभोगे सतृष्णमिति यौवनम्=तारुण्यम्, अस्य=चारुदत्तस्य, प्रतिभासते= विभाति। (अपवारितकेन=स्वाच्छादनवस्त्रेण, प्रावृणोति)

चारुदत्तः—ननु=सम्बोधनसूचकमव्ययम्, रदनिके=परिचारिके, रोहसेनम्= मम सुतम्, गृहीत्वा=नीत्वा, अभ्यन्तरम्=प्रकोष्ठे, प्रविश=प्रवेशं कुरु।

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अभागिनी=हतभागिनी, खलु= निश्चयेन, अहम्=वसन्तसेना, तव=भवतः, अभ्यन्तरस्य=प्रकोष्ठस्य, प्रवेशनाय कदा मम भाग्योदयो भवतीति भावः।

चारुदत्तः—ननु रदनिके=हे परिचारिके, प्रतिवचनमपि=प्रत्युत्तरमपि,नास्ति= दातुं न समर्थाऽसि ? कष्टम्=खेदम्—

वसन्तसेना—(**मन ही मन**) तो क्या ये अपनी सेविका रदनिका ही मुझे समझ रहे हैं ? (**चादर लेकर और सूँघकर, मन ही मन खुश होकर**) हाय, हाय, यह चादर तो चमेली के फूल की सुगन्ध से महमहा रही है। इनका यौवन तो अभी भी रमणीय है। (**थोड़ा हटकर अपने आपको छिपाती है।**)

चारुदत्त—अरी रदनिके, रोहसेन को लेकर भीतर जाओ न।

वसन्तसेना—(**अपने आप से**) क्या मैं तुम्हारे घर के भीतर जाने लायक हूँ ?

चारुदत्त—अरी, ओ रदनिके, क्या मुँह खोल कर जबाब भी नहीं दे सकती ? खेद है—

यदा तु भाग्यक्षयपीडितां दशां नरः कृतान्तोपहितां प्रपद्यते ।
तदाऽस्य मित्राण्यपि यान्त्यमित्रतां चिरानुरक्तोऽपि विरज्यते जनः ।।५३।।

विदूषकः—(रदनिकामुपसृत्य ।) भो ! इअं सा रदणिआ । [**भोः ! इयं सा रदनिका ।**]

चारुदत्तः—इयं सा रदनिका ! इयमपरा का ?

अविज्ञातावसक्तेन दूषिता मम वाससा ।

वसन्तसेना—(स्वगतम् ।) णं भूसिदा । [ननु भूषिता ।]

चारुदत्तः—छादिता शरदभ्रेण चन्द्रलेखेव दृश्यते ।। ५४ ।।

अन्वयः—यदा, तु, नरः, कृतान्तोपहिताम्, भाग्यक्षयपीडिताम्, दशाम् प्रपद्यते, तदा, अस्य, मित्राणि, अपि, अमित्रताम्, यान्ति, चिरानुररक्तः, जनः, अपि, विरज्यते ।

यदेति । यदा=यस्मिन् काले, नरः=मनुष्यः, कृतान्तोपहिताम्=क्रुद्धदैवेन उपहिताम्=उपस्थापिताम्, भाग्यस्य=सुन्दरादृष्टस्य, क्षयेन=विनाशेन, पीडिताम्—पीड़ा संज्ञाता अस्याः ताम्=दलिताम्, दशाम्=अवस्थाम्, प्रपद्यते=प्राप्नोति, तदा=तस्मिन् दुर्दशापूरिते काले, अस्य=जनस्य, मित्राणि=सुहृदः, अपि=चेत्, अमित्रताम्=रिपुताम्, तटस्थताम् वा, यान्ति=गच्छन्ति, चिरात्=चिरकालात्, अनुरक्तः=प्रीतः, जनः=लोकः, अपि, विरज्यते=विरक्तो भवति । अप्रस्तुतालङ्कारः, वंशस्थविलं वृत्तम् ।। ५३ ।।

विदूषकः—(रदनिकाम्=सेविकाम्, उपसृत्य=समीपं गत्वा) भोः=इति सम्बोधने, इयम्=मम पुरोवर्त्तमाना, सा=यामन्विष्यसि भवान् सा रदनिकेति भावः ।

चारुदत्तः—इयम्=पुरोवर्त्तमाना, सा=असौ, रदनिका तर्हि इयमपरा का=केयमपरिचिता नारी ?

अन्वयः–अविज्ञातावसक्तेन, मम, वाससा, दूषिता, शरदभ्रेण, छादिता, चन्द्रलेखा, इव, दृश्यते ।। ५४ ।।

अविज्ञातेति । या नारी अविज्ञातायाम्=अज्ञातायाम् मयेति शेषः, अवसक्तेन

जब किसी का भाग्य साथ नहीं देता तो फिर उसकी गरीबी में दोस्त भी दुश्मन बन जाता है । अपने भी पराये बन जाते हैं । अनुरक्त भी विरक्त हो जाता है ।। ५३ ।।

विदूषक—(**रदनिका के पास जाकर**) हमारी रदनिका तो यहाँ है ।

चारुदत्त—वाह, अगर वह रदनिका है तो फिर यह दूसरी औरत कौन है ?—अनजाने ही मेरी चादर को छूने से तो यह दूषित हो गई है ।

बसन्तसेना—(**मन ही मन**) अजी, दूषित नहीं भूषित हो गई ।

चारुदत्त—शरदृतु के मेघ से ढकी चाँदनी की तरह यह कितनी सुन्दर दीख रही है ।। ५४ ।।

अथवा, न युक्तं परकलत्रदर्शनम् ।

विदूषकः—भो ! अलं परकलत्तदंसणसंकाए। एसा वसन्तसेणा कामदेवा-अदणुज्जाणादो पहुदि भवन्तमणुरत्ता । [भोः ! अलं परकलत्रदर्शनशङ्कया । एषा वसन्तसेना कामदेवायतनोद्यानात् प्रभृति भवन्तमनुरक्ता ।]

चारुदत्तः—अये इयं वसन्तसेना ! (स्वगतम् ।)

यया मे जनितः कामः क्षीणे विभवविस्तरे ।
क्रोधः कुपुरुषस्येव स्वगात्रेष्वेव सीदति ॥ ५५ ॥

=योजितेन, अथवा, अविज्ञातम्=अविदितम्, अवसक्तम्=संसर्गः यस्य तेन, मम =चारुदत्तस्य, वाससा=वस्त्रेण, दूषिता=कलुषीकृता, परपुरुषवस्त्रस्पर्शादपवित्रीकृतेति भावः । मध्ये वसन्तसेना वदति—

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) ननु=इति सम्बोधने, भूषिता=अलङ्कृता, न तु दूषितेति भावः ।

चारुदत्तः—शरदभ्रेण=शरत्कालीनमेघेन, छादिता=आवृता, चन्द्रस्य=शशिनः, लेखा=कला, इव=यथा, दृश्यते=अवलोक्यते । उपमालङ्कारः पथ्यावक्त्रम् वृत्तम् ।

अथवा=किं वा, न युक्तम्=नोचितम् परकलत्रदर्शनम्=अन्यजनस्य स्त्रियाः अवलोकनम् ।

विदूषकः—भोः=हे आर्य, अलम्=व्यर्थम्, परकलत्रदर्शनशङ्कया=परस्त्री-अवलोकनजन्यदोषसन्देहेन । यतः, एषा=उपस्थिता नारी, वसन्तसेना=गणिकापुत्री अस्ति, या कामदेवायतनोद्यानात्=एतदाख्यवाटिकायाः, प्रभृति=तदारभ्य, त्वाम् अनुरक्ता=आसक्तचित्ता अस्ति ।

चारुदत्तः—अये=इत्याश्चर्यसूचकमव्ययम्, इयम्=एषा पुरोवर्त्तमाना, वसन्तसेनेति (स्वगतम्=आत्मगतम्)

अन्वयः—विभवविस्तरे, क्षीणे, यया, जनितः, मे, कामः, कुपुरुषस्य, क्रोधः, इव, स्वगात्रेषु, एव, सीदति ॥ ५५ ॥

ययेति । विभवविस्तरे=प्रचुरधनसमूहे, क्षीणे=विनष्टे सति, यया=वसन्तसेनया, जनितः=उत्पादितः, मे=मम, कामः=सम्भोगाभिलाषः, कुपुरुषस्य=असमर्थस्य कुत्सितजनस्य, क्रोधः=रोषः, इव=यथा, स्वगात्रेषु=निजदेहेषु, सीदति=विनश्यति ।

अथवा—किसी दूसरे की स्त्री को देखना उचित नहीं है ॥ ५४ ॥

विदूषक—आप तो बेकार ही इसे परस्त्री समझकर सन्दिग्ध हो रहे हैं । यह वसन्तसेना है, कामदेवायतन उद्यान में प्रथमदर्शन के बाद ही यह आप पर आसक्त है ।

चारुदत्त—क्या यह वसन्तसेना है ? (**अपने आप**)

हाय इसने प्यार भी प्रकट किया तो अवसर खोकर, जब मेरा सारा विभव नष्ट हो गया है तब मुझ पर इसका यह अनुराग उसी तरह बेकार है जैसे कुछ करने में असमर्थ किसी अबल पुरुष का क्रोध उसकी अपनी देह को ही जलाता है ॥ ५५ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! एसो क्खु राअसालो भणादि । [भो ! वयस्य ! एष खलु राजश्यालो भणति]

चारुदत्तः—किम् ?

विदूषकः—एसा ससुवण्णा सहिलण्णा णवणाडअदंसणुट्ठिदा सूत्तधालि व्व वसन्तसेणा णाम गणिआदालिआ कामदेवाअदणुज्जाणादो पहुदि तुमं अणुलत्ता, अम्हेहिं बलक्कालाणुणीअमाणा तुह गेहं पविट्ठा ? [एषा ससुवर्णा सहिरण्या नवनाटकदर्शनोत्थिता सूत्रधारीव वसन्तसेनानाम्नी गणिकादारिका कामदेवायतनोद्यानात्प्रभृति त्वामनुरक्ताऽस्माभिर्बलात्कारानुनीयमाना तव गेहं प्रविष्टा ।]

वसन्तसेना—(स्वगतम्) बलाक्कालाणुणीअमाणेति जं सच्चं अलङ्किदम्हि एदेहिं अक्खरेहिं । [बलात्कारानुनीयमानेति यत्सत्यम् । अलङ्कृताऽस्मि एतैरक्षरैः ।]

विदूषकः—ता जइ मम हत्थे सअं ज्जेव पट्टाविअ एणं समप्पेसि, तदो अधिअलणे ववहालं विणा लहुं णिज्जादमाणाह तव मए अणुवद्धा पीदी

शक्तेरभावादसक्तस्य क्रोधः यथा रिपूणां किमप्यपकारं कर्तुं न शक्नोति अपितु क्रोधकर्त्तुरेव हानिर्भवति तथैव दरिद्राणां मनोरथाः उत्थाय उत्थाय तेषां शरीरे एव लीयन्ते । अत्रोपमालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, एषः=असौ, खलु=निश्चयेन, राजश्यालः=नृपपत्नीभ्राता, भणति=वदति ।

चारुदत्तः—किम्=किं वदति ?

विदूषकः—एषा, बलात्कारेण=हठेन, विनयभङ्गेन इत्यर्थः, अनुनीयमाना=आराध्यमाना, अधिकरणे=न्यायालये, व्यवहारं विना=विना विवादम्, लघु=शीघ्रम्, निर्यातयतः=अर्पयतः वसन्तसेनाम्, अनुबद्धा=सुदृढा, शेषं पूर्वमेवानूदितम् ।

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) बलात्कारेण=हठेन, अनुनीयमाना=आराध्यमाना, यत्सत्यम्=एतत्कथनं सत्यं, तर्हि एतैरक्षरैः=शब्दविन्यासैः, अलङ्कृताऽस्मि ।

विदूषक—हे मित्र, राजा के साले ने कहा है—

चारुदत्त—क्या कहा है ?

विदूषक—कि सोने के गहनों से लदी वसन्तसेना नामक वेश्या तुम्हारे घर में घुसी है । वह नये अभिनय के लिए मंच पर प्रस्तुत नटी की तरह खूबसूरत है । कामदेवायतन की वाटिका से ही वह तुम्हारे पीछे लगी है । हमने बलपूर्वक उसकी विनती करने की भी चेष्टा की है ।

वसन्तसेना—(मन ही मन) 'बलपूर्वक विनती करने की चेष्टा'—यदि यह सच है तो मैं निहाल हो गई ।

हुविस्सदि । अण्णधा, आमलणन्तिके वेले हुविस्सदि । [तद् यदि मम हस्ते स्वयमेव प्रस्थाप्यैनां समर्पयसि, ततोऽधिकरणे व्यवहारं बिना लघु निर्यातयतस्तव मयानुबद्धा प्रीतिर्भविष्यति । अन्यथा आमरणान्तिकं वैरं भविष्यति ।]

चारुदत्तः—(सावज्ञम्) अज्ञोऽसौ । (स्वगतम्) अये ! कथं देवतोपस्थानयोग्या युवतिरियम् । तेन खलु तस्यां बेलायाम् ।

प्रविश गृहमिति प्रतोद्यमाना न चलति भाग्यकृतां दशामवेक्ष्य ।
पुरुषपरिचयेन च प्रगल्भं न वदति यद्यपि भाषते बहूनि ॥ ५६ ॥

(प्रकाशम् ।) भवति ! वसन्तसेने ! अनेनाविज्ञानादपरिज्ञातपरिजनोपचारेण अपराद्धोऽस्मि । शिरसा भवतीमनुनयामि ।

विदूषकः—तद् यदि कमपि इत्यादि प्रागनूदितम् ।

चारुदत्तः—(सावज्ञम्=अवहेलनापूर्वकम्) अज्ञः=मूर्खः, असौ=राजश्यालः, (स्वगतम्=आत्मगतम्) अये=इत्याश्चर्यम्, कथम्=इति प्रश्ने, देवतोपस्थानपूज्या =साक्षात् देवतेव परमश्लाघ्येति भावः, युवतिः=तरुणीः, इयम्=एषा, तेन=कारणेन, तस्यां वेलायाम्—

अन्वयः—गृहम्, प्रविश, इति, प्रतोद्यमाना, भाग्यकृताम्, दशाम्, अवेक्ष्य, न चलति, यद्यपि (इयम्) बहूनि, भाषते, तथापि, पुरुषपरिचयेन, प्रगल्भम्, न वदति ।

प्रविशेति । गृहम्=सदनाभ्यन्तरम्, प्रविश=रोहसेनम् गृहीत्वा प्रकोष्ठे समागच्छ, इति=इत्थम्, प्रतोद्यमाना=मया चारुदत्तेन प्रेर्यमानाऽपि, भाग्येन=भागधेयेन, कृताम् =सम्पादिताम्, दशाम्=दुरवस्थाम्, अवेक्ष्य=अवलोक्य, न चलति=गृहाभ्यन्तरं न गतवतीति भावः, यद्यपीयं=वसन्तसेना, बहूनि=अत्यधिकानि, भाषते=वदति, तथापि, पुरुषस्य=मादृशस्य जनस्य, परिचयेन=संसर्गेण, पुंसः समक्षमित्यर्थः, प्रगल्भं =धृष्टं यथा स्यात्तथा, न वदति=नैव वक्ति । कुलकामिनीवदस्याः संकोचशीलव्यवहारः । यद्यपीयं वाला स्वभावात् प्रगल्भा सम्भाषणकुशला चास्ति, तथापि संकोचेन मया सह संयम्यात्मानं वदति न तु धृष्टतयेति भावः । पुष्पिताग्रा वृत्तम् ॥ ५६ ॥

विदूषक—यदि तुमने अपनी इच्छा से उसे मेरे हाथों में सौंप दिया तो सबसे पहले तो न्यायालय के अभियोग से मुक्त हो जाओगे फिर, मेरे साथ तुम्हारी मैत्री चिरस्थायिनी वन जायेगी । नहीं तो फिर, आजीवन शत्रुता बनी रहेगी ।

चारुदत्त—(**अवज्ञापूर्वक**) वह मूर्ख है । (**मन ही मन**) हाय, हाय यह युवती तो देवी की तरह उपास्य है । कुछ ही देर पहले (हमने इससे कहा था)—

'घर के भीतर जाओ' ऐसी कटु वात कहे जाने पर भी इसने मेरी दयनीय स्थिति देखकर घर के भीतर पैर नहीं रक्खा है । यद्यपि यह वाचाल है फिर भी मेरे जैसे पुरुष के सामने मुँह तक नहीं खोला है ॥ ५६ ॥

(**प्रकट में**) माननीये, वसन्तसेने, अनजाने मैंने तुम्हारे साथ दासी की तरह व्यवहार किया है । अतः विनम्र भाव से तुमसे प्रार्थना करता हूँ ।

वसन्तसेना—एदिणा अणुचिदभूमिआरोहणेण अवरज्झा अज्जं सीसेण पणमिअ पसादेमि। [**एतेनानुचितभूमिकारोहणेन अपराद्धा आर्यं शीर्षेण प्रणम्य प्रसादयामि।**]

विदूषकः—भो ! दुवेवि तुम्हे सुखं पणमिअ कलमकेदारा अण्णोण्णं सीसेण सीसं समाअदा। अहं पि इमिणा करहजाणुसरिसेण सीसेण दुवेवि तुम्हे पसादेमि। (इत्युत्तिष्ठति।) [**भोः ! द्वावपि युवां सुखं प्रणम्य कलमकेदारौ अन्योन्यं शीर्षेण शीर्षं समागतौ। अहमपि अमुना करभजानुसदृशेन शीर्षेण द्वावपि युवां प्रसादयामि।**]

चारुदत्तः—भवतु, तिष्ठतु प्रणयः।

(प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) भवति वसन्तसेने=हे श्रीमति वसन्तसेने, अनेन=पूर्वोक्तेन, अविज्ञानात्=अज्ञानात्, अपरिज्ञाते=अपरिचिते जने, परिजनवत्=परिचारिकावत्, उपचारेण=व्यवहारेण, अपराद्धोऽस्मि=कृतापराधः अस्मि। तेन शिरसा=मस्तकेन, भवतीम्=श्रीमतीम्, अनुनयामि=प्रार्थयामि।

वसन्तसेना—एतेन=अमुना, अनुचितभूमिकारोहणेन=पक्षद्वारेणावासप्रवेशादिना, इति पृथ्वीधरः, किञ्चात्रानुचितायाम्=मादृशवेश्याजनप्रवेशायोग्यायाम्, भूमिकायाम्=भूमौ, भवद्गृहे इति भावः, आरोहणेन=समागमनेन, अत्र ब्राह्मणस्य पवित्रगृहे मादृशीवेश्याजनागमनमनुचितमिति वसन्तसेनायाः तात्पर्यं न त्वागमनप्रकारे। अपराद्धा=कृतापराधाऽस्मि। आर्यम्=भवन्तम्, शीर्षेण=मस्तकेन, प्रणम्य=प्रणामं कृत्वा, प्रसादयामि=प्रसन्नं करोमीति।

विदूषकः—भो=इति सम्बोधने, द्वावपि=उभावपि, युवाम्=चारुदत्त-वसन्तसेने, सुखम्=सानन्दम्, प्रणम्य=नत्वा, कलमानाम्=शालीनाम्, 'शालयः कलमाद्यश्च' इत्यमरः। केदारौ=क्षेत्रे 'वप्रः केदारः क्षेत्रम्' इत्यमरः। इवेति पदम् अध्याहार्यम्, अन्योन्यम्=परस्परम्, शीर्षेण=शिरसा, शीर्षम्=मस्तकम्, समागतौ=सम्मिलितौ, अहमपि=विदूषकोऽपि, अमुना=अनेन, करभस्य=उष्ट्रशिशोः, जानु=उरुजङ्घयोः सन्धिभागः, तत्सदृशेन=तत्तुल्येन, शीर्षेण=शिरसा, द्वावपि=युवामपि, प्रसादयामि=प्रसन्नं करोमि।

वसन्तसेना—अपराधिनी तो मैं हूँ, बिना आदेश के ही चुपके से मैं आपके घर में घुस आई हूँ। इसलिए विनतभाव से प्रार्थना कर मैं आपको प्रसन्न करना चाहती हूँ।

विदूषक—आह, आप दोनों तो परस्पर, विनत-प्रणत होकर एक दूसरे से उसी तरह माथे टकरा रहे हैं जैसे फसलों से लदी धान की दो क्यारियाँ मिलकर एक हो जाती हैं। तो लीजिए मैं भी ऊँट के बच्चे के घुटने की तरह अपने टेढ़े-मेढ़े माथे को टेककर आप दोनों को खुश करता हूँ। (**यह कहकर उठता है।**)

चारुदत्त—रहने दो मित्र, इस औपचारिकता को रहने दो।

वसन्तसेना—(स्वगतम्) चदुरो मधुरो अ अअं उवण्णाशो। ण जुत्तं अज्ज एरिसेण इध आअदाए मए पडिवसिदुं। भोदु, एव्वं दाव भणिस्सं। (प्रकाशम्) अज्ज ! जइ एव्वं अहं अज्जस्स अणुग्गेज्झा, ता इच्छे अहं इमं अलंकारअं अज्जस्स गेहे णिक्खिविदुं। अलंकारस्स णिमित्तं एदे पावा अणुसरन्ति। [**चतुरो मधुरश्चायमुपन्यासः। न युक्तमद्य ईदृशेन इह आगतया मया प्रतिवस्तुम्। भवतु, एवं तावत् भणिष्यामि। आर्य ! यद्येवम् अहमार्यस्य अनुग्राह्या, तदिच्छाम्यहमिमलङ्कारकमार्यस्य गेहे निक्षेप्तुम्। अलङ्कारस्य निमित्तमेते पापा अनुसरन्ति।**]

चारुदत्तः—अयोग्यमिदं न्यासस्य गृहम्।

वसन्तसेना—अज्ज ! अलीअं। पुरुसेसु णासा णिक्खिविअन्ति, ण उण गेहेसु ! [**आर्य ! अलीकम्। पुरुषेषु न्यासा निक्षिप्यन्ते, न पुनर्गेहेषु।**]

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) चतुरः=प्रवीणः, अन्तर्हितभावेनोपभोगाभिप्रायप्रकाशकः, मधुरः=मनोज्ञः, अयम्=एषः, उपन्यासः=प्रस्तावः। यद्येवं तर्हि कथन्नात्रस्थित्वोपभोगतृष्णामुपशामयतीत्याह—न युक्तम्=नोचितम्, अद्य=अधुना, ईदृशेन=अनेन प्रकारेणागतसम्भोगोपकरणादिना, इह=अत्र, आगतया मया=वसन्तसेनया, प्रतिवस्तुम्=अवस्थातुम्, यतो हि प्रेमपरीक्षणार्थमेवोक्तिः न तु रन्तुमिति। भवतु=यातु, एवम्=इत्थम्, तावदित्यवधारणे, भणिस्यामि=कथयिष्यामि, (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) आर्य=मान्य, यद्येवमहम्=वसन्तसेना, आर्यस्य=भवतः, अनुग्राह्या=कृपाभाजनीविधेयाः, तत्=तर्हि, इच्छाम्यहम्=अहमभिलषामि, इमम्=पुरोवर्त्तिनम्, अलङ्कारम्=आभूषणम्, आर्यस्य=भवतः, गेहे=सदने, निक्षेप्तुम्=न्यासीकर्त्तुम्, अलङ्कारस्य=आभूषणस्य, निमित्ते=कृते, एते=शकारादयः, पापाः=पापचारिणः, अनुसरन्ति=मत्पश्चादनुधावन्ति।

चारुदत्तः—इदम् गृहम्=मम सदनम्, न्यासस्य=निक्षेपस्य, अयोग्यम्=अनुपयुक्तम्।

वसन्तसेना—आर्य=हे मान्य, अलीकम्=अनृतम्, पुरुषेषु=सुयोग्यजनेषु, न्यासाः=निक्षेपाः, निक्षिप्यन्ते=स्थाप्यन्ते, न पुनः=भूयः, गेहेषु=सदनेषु। पूर्वन्तु चारुदत्तः

वसन्तसेना—(**मन ही मन**) ये बातें कितनी दिलकश और मीठी हैं। आज इस तरह जबर्दस्ती घर में घुस कर इनके साथ टिक जाना उचित नहीं है। अच्छा तो यह कहती हूँ (**प्रकट**) मान्यवर, आपकी कृपा पाकर मैं अनुगृहीत हुई। मेरी एक प्रार्थना है मैं इन आभूषणों को आपके घर में रखना चाहती हूँ। क्योंकि, इन्हीं जेवरों के कारण ये पापी लोग मेरा पीछा कर रहे हैं।

चारुदत्त—ये घर धरोहर रखने लायक नहीं है।

वसन्तसेना—आर्य, यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि, धरोहर तो किसी योग्य पुरुष के हाथ में रक्खी जाती है, न कि योग्य घर में।

चारुदत्तः—मैत्रेय ! गृह्यतामयमलङ्कारः ।

वसन्तसेना—अणुग्गहिदह्मि । (इत्यलङ्कारमर्पयति ।) [**अनुगृहीताऽस्मि** ।]

विदूषकः—(गृहीत्वा) सोत्थि भोदिए । [**स्वस्ति भवत्यै** ।]

चारुदत्तः—धिङ्मूर्ख ! न्यासः खल्वयम् ।

विदूषकः—(अपवार्य) जइ एव्वं, ता चोरेहिं अवहरीअदु । [**यद्येवम्, तद् चौरैरपह्रियताम्** ।]

चारुदत्तः—अचिरेणैव कालेन ।

विदूषकः—एसो से अम्हाणं विण्णासो । [**एषः अस्या अस्माकं विन्यासः**]

चारुदत्तः—निर्यातयिष्ये ।

दृढतरकपाटाद्यभावात् परितः प्राकारपरिभ्रंशनेन रक्षपुरुषाभावाच्च न्यासस्यायोग्यं स्वगृहं कथितम्, तस्येदमिदमुत्तरमस्ति ।

चारुदत्तः—मैत्रेय, गृह्यताम्=स्वीक्रियताम्, अयमलङ्कारः=अयमाभूषणः ।

वसन्तसेना—अनुगृहीताऽस्मि=कृतज्ञाऽस्मि, (इति=एवमुक्त्वा, अलङ्कारम्=आभूषणम्, अर्पयति=ददाति)

विदूषकः—(गृहीत्वा=नीत्वा) स्वस्ति=मङ्गलमस्तु, भवत्यै=वसन्तसेनायै, न्यासं ज्ञात्वाऽपि विदूषकस्य प्रतिग्रहसूचकस्वस्तिशब्दोक्ति केवलमत्र परिहासार्थमेव युज्यते ।

चारुदत्तः—हे मूर्ख=हे अज्ञ, त्वां धिक्=निन्दार्होऽसि त्वम्, नायं प्रतिग्रहः, न्यासः=निक्षिप्तः अस्ति ।

विदूषकः—(अपवार्य=व्यवधानङ्कृत्वा) यदि एवम् न्यासः चेत् न तु दानमिति तदा चौरैः=तस्करैः, अपह्रियताम्=चोरयतु इति भावः ।

चारुदत्तः—अचिरेणैव कालेनेति चारुदत्तोक्तिमाक्षिप्यास्माकं भविष्यतीति विदूषकोक्तिः । अस्मिन् वाक्ये निर्यातयिष्ये, इत्यग्रिमवाक्येन सम्बन्धः । अमुष्यै पुनर्दास्यामीति तस्यार्थः ।

विदूषकः—एषः=अलङ्कारविशेषः, अस्याः=वसन्तसेनायाः अस्माकम्=नः, विन्यासः=निक्षेपः ।

चारुदत्तः—निर्यातयिष्ये=पुनर्दास्यामीति ।

चारुदत्त—मैत्रेय, इन जेवरों को रख लो ।

वसन्तसेना—कृतार्थ हो गई । (**जेवर निकाल कर देती है ।**)

विदूषक—(**लेकर**) श्रीमती का कल्याण हो ।

चारुदत्त—मूर्ख, तुम्हें धिक्कार है । यह तो धरोहर है (दान नहीं) ।

विदूषक—(**ओट में**) यदि यही बात है तो इसे चोर चुरा लें ।

चारुदत्त—बहुत शीघ्र ही ।

विदूषक—वसन्तसेना का यह जेवर हम लोगों के पास विशेष रूप से धरोहर है ।

चारुदत्त—अरे, इसे शीघ्र लौटा देना है ।

वसन्तसेना—अज्ज ! इच्छे अहं इमिणा अज्जेण अणुगच्छिज्जन्ती सकं गेहं गन्तुं । [**आर्य ! इच्छाम्यहम् अनेनार्येण अनुगम्यमाना स्वकं गेहं गन्तुम् ।**]

चारुदत्तः—मैत्रेय । अनुगच्छ तत्रभवतीम् ।

विदूषकः—तुमं ज्जेव एदं कलहंसगामिणीं अणुगच्छन्तो राअहंसो विअ सोहसि । अहं उण बह्मणो जहिं तहिं जणेहिं चउप्पहोवणीदो उवहारो कुक्कुरेहिं विअ खज्जमाणो विवज्जिस्सं । [**त्वमेव एतां कलहंसगामिनीम् अनुगच्छन् राजहंस इव शोभसे । अहं पुनर्ब्राह्मणः यस्मिन् तस्मिन् जनैः चतुष्पथोपनीतः उपहारः कुक्कुरैरिव खाद्यमानो विपत्स्ये ।**]

चारुदत्तः——एवं भवतु, स्वयमेवानुगच्छामि तत्रभवतीम् । तद्राजमार्गविश्वासयोग्याः प्रज्वाल्यन्तां प्रदीपिकाः ।

विदूषकः—वड्ढमाणअ ! पज्जालेहि पदीविआओ । [**वर्द्धमानक ! प्रज्वालय प्रदीपिकाः ।**]

वसन्तसेना—आर्य=मान्य, अहम्=वसन्तसेना, अनेन=एतेन, आर्येण=मैत्रेयेण, अनुस्रयमाना=अनुस्त्रियमाणा, स्वकम्=स्वकीयम्, गेहम्=गृहम्, गन्तुम्=चलितुम्, इच्छामि=अभिलषामि ।

चारुदत्तः—मैत्रेय, तत्रभवतीम्=श्रीमतीम्, अनुगच्छ=अनुसरणङ्कुरु ।

विदूषकः—त्वमेव=भवान् स्वयमेव, एनाम्=इमाम्, कलहंसगामिनीम्=मन्थरगमनशीलाम्, वसन्तसेनाम्, अनुगच्छन्=पश्चाच्चलन्, राजहंसः=कलहंसः, इव=यथा, शोभसे=अनुरूपमसि । अहम्=मैत्रेयः, पुनः=भूयः, ब्राह्मणः=विप्रः, यस्मिन् तस्मिन्=यत्र तत्र स्थाने, जनैः=लोकैः चतुस्पथे=चतुर्णां मार्गाणां सन्धिस्थले, उपनीतः=प्रदत्तः, उपहारः=बलिः, कुक्कुरैरिव=श्वभिरिव, खाद्यमानः=भक्ष्यमाणः ।

चारुदत्तः—एवं भवतु=यदुक्तं तदेव भवतु, स्वयमेव=अहमेव, तत्र भवतीम्=श्रीमतीम्, अनुगच्छामि=अनुसरणं करोमि, तत्=तस्मात्, राजमार्गविश्वासयोग्याः=राजपथानुकूलम्, प्रज्वाल्यन्ताम्=प्रज्वलितं क्रियताम्, प्रदीपकाः ।

वसन्तसेना—आर्य, अब मैं मैत्रेय के साथ अपने घर लौट जाना चाहती हूँ ।

चारुदत्त—मैत्रेय, इनके साथ जाओ ।

विदूषक—इन कलहंसगामिनी के पीछे-पीछे चलते हुए आप ही राजहंस की तरह सुशोभित होंगे । जहाँ तक मेरी बात है—मैं ठहरा एक निरीह ब्राह्मण, इनके साथ चलते हुए रास्ते में ही कहीं न कहीं उसी तरह पिट जाऊँगा, जैसे जहाँ तहाँ चौराहे पर लोगों द्वारा दी गयी बलि को कुत्ते चट कर जाते हैं ।

चारुदत्त—तो ठीक है, इनके साथ मैं ही जाता हूँ । पर, राजपथ पर जलने लायक दीप तो जला दो ।

विदूषक—वर्द्धमान, दीप जलाओ ।

चेटः—(जनान्तिकम्) अले ! तेल्लेण विणा पदीविआओ पज्जालीअन्ति ? । [**अरे ! तैलेन विना प्रदीपिकाः, प्रज्वाल्यन्ते ? ।**]

विदूषकः—(जनान्तिकम्) भो ! ताओ क्खु अम्हाणं पदीविआओ अवमाणिद-णिद्धण-कामुआ विअ गणिआ णिस्सिणेहाओ दाणिं संवुता। [**भोः ! ताः खल्वस्माकं प्रदीपिकाः, अपमानित-निर्धन-कामुका इव गणिकाः, निःस्नेहा इदानीं संवृत्ताः ।**]

चारुदत्तः—मैत्रेय ! भवतु ! कृतं प्रदीपिकाभिः । पश्य—

उदयति हि शशाङ्कः कामिनीगण्डपाण्डु-
ग्रहगणपरिवारो राजमार्गप्रदीपः ।
तिमिरनिकरमध्ये रश्मयो यस्य गौराः
स्नुतजल इव पङ्के क्षीरधाराः पतन्ति ।। ५७ ।।

चेटः—(जनान्तिकम्=अपवार्य, रङ्गमञ्चे अभिनेतुं अन्यस्य कर्णे कथितम्) अरे, तैलेन=स्नेहेन, विना प्रदीपिका कथं प्रज्ज्वाल्यन्ते ।

विदूषकः—(जनान्तिकम्=अपवार्य) भो=इत्याश्चर्यम्, ताः खलु=निश्चयेन, अस्माकम्=नः, प्रदीपिकाः=लघुदीपकाः,. अपमानितः=तिरस्कृतः, निर्धनः=दरिद्रः, कामुकः=कामीजनः, याभिस्ताः गणिकाः=वेश्या इव, निःस्नेहाः=प्रेमशून्याः, प्रदीपपक्षे, तैलविरहिताः, प्रदीपिकाभिः=क्षुद्रप्रदीपैः, इदानीम्=अधुना, संवृत्ताः=संजातेति भावः ।

चारुदत्तः—मैत्रेय=हे मित्र, भवतु=यातु, कृतम्=व्यर्थम्, पर्याप्तमिति यावत्, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—हि, कामिनीगण्डपाण्डुः, ग्रहगणपरिवारः, राजमार्गप्रदीपः, शशाङ्कः उदयति । यस्य, गौराः, रश्मयः, स्नुतजले, पङ्के, क्षीरधारा, इव, तिमिरनिकरमध्ये, पतन्ति ।। ५७ ।।

उदयतीति । हि=यतः, कामः अस्याः अस्तीति कामिनी तस्या कामिन्या=कामबहुलास्त्रियाः, गण्डः=कपोलः, इव=यथा, पाण्डुः=गौरवर्णः, ग्रहगणाः=नक्षत्रसमूहाः, एव परिवारः=सहचरवर्गः यस्यासौ, राजमार्गस्य=राजपथस्य, प्रदीपः=दीपकः, प्रकाशको वा, शशाङ्कः=चन्द्रः, उदयति=उदेति । यस्य=चन्द्रस्य, गौराः=शुक्लवर्णाः, रश्मयः=किरणाः, स्नुतम्=शुष्कम्, जलम्=सलिलम्, यस्मात्तस्मिन्, पङ्के=कर्दमे, क्षीरस्य=

चेट—(**धीरे से**) अरे, तेल के विना कहीं दीप जलाये जाते हैं ।

विदूषक—(**धीरे से**) हाय, हाय, हमारी प्रदीपिकाएँ भी तो उन वेश्याओं की तरह स्नेहहीन बन गई हैं जो धनहीन कामुक युवाओं को अपमानित कर स्नेहरहित बन जाती हैं ।

चारुदत्त—मैत्रेय, रहने दो, दीप जलाने की कोई जरूरत नहीं है । देखो—सुन्दर युवती के गोरे गाल की तरह गौरवर्ण तारों से घिरे राजमार्ग को प्रकाशित

(सानुरागम्) भवति ! वसन्तसेने ! इदं भवत्या गृहम्, प्रविशतु भवती ।

(वसन्तसेना सानुरागमवलोकयन्ती निष्क्रान्ता)

चारुदत्तः—वयस्य ! गता वसन्तसेना । तदेहि, गृहमेव गच्छावः ।

राजमार्गो हि शून्योऽयं रक्षिणः सञ्चरन्ति च ।
वञ्चना परिहर्त्तव्या बहुदोषा हि शर्वरी ॥ ५८ ॥

दुग्धस्य, धाराः=प्रवाहाः, इव=यथा, तिमिरनिकरस्य=अन्धकारसमूहस्य, मध्ये=अभ्यन्तरे, पतन्ति=पतित्वा, अन्धकारम् विनाशयन्ति । अत्र कामिनीगण्डपाण्डुरिति लुप्तोपमा द्वितीयेपादे रूपकम्, उत्तरार्द्धे श्रौती उपमा, एषां परस्पर निरपेक्षेणावस्थानात् संसृष्टिः । मालिनीवृत्तम् ॥ ५७ ॥

(सानुरागम्=सप्रीतिः) भवति=श्रीमति, वसन्तसेने, भवत्या=श्रीमत्या, इदम्=एतत्, गृहम्=सदनमस्ति, भवती=श्रीमती, अस्मिन् गृहे प्रविशतु=प्रवेशङ्कुरु ।

(वसन्तसेना सानुरागम्=सस्नेहम्, अवलोकयन्ती=पश्यन्ती, निष्क्रान्ता=बहिर्गता ।)

चारुदत्तः—वयस्य=मित्र, गता=प्रविष्टा, वसन्तसेना, तत्=तस्मात्, एहि=समागच्छ, गृहमेव=सदनमेव, गच्छावः=व्रजावः ।

अन्वयः—हि, अयम्, राजमार्गः, शून्यः, च, रक्षिणः, सञ्चरन्ति, वञ्चना, परिहर्त्तव्या, हि, शर्वरी, बहुदोषा (भवति) ॥ ५८ ॥

राजमार्ग इति । हिः=यतः, अयम्=एषः, राजमार्गः=राजपथः, शून्यः=जनसञ्चरणहीनः, च=पुनः, रक्षिणः=संरक्षकाः, सञ्चरन्ति=इतस्ततः भ्रमन्ति, वञ्चना=प्रतारणा, परिहर्त्तव्या=रक्षणेन निवारणीया, हि=यतः, शर्वरी=रात्रिः, बहुदोषाः=चौरादिभिः कृतोपद्रवाः भवन्ति । अत्र वञ्चनापरिहर्त्तव्येति वाक्यं प्रति शून्यादेर्हेतुत्वात् काव्यलिङ्गमलङ्कारः, सामान्येन बहुदोषेत्यादिवाक्येन विशेषसमर्थनादर्थान्तरन्यासः । उभयोरङ्गाङ्गित्वेन सङ्करः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५८ ॥

करने वाला चन्द्रमा उग रहा है । जिनकी श्वेतकिरणें इस गहन अन्धकार में ज़लहीन कीचड़ में दूध की सफेद धारा की तरह गिर रही है ॥ ५७ ॥

(**प्रेम के साथ**) वसन्तसेने, यह रहा तुम्हारा घर, अब भीतर जाओ ।

(आसक्त आँखों से देखती हुई वसन्तसेना भीतर चली गई ।)

चारुदत्त—मित्र, वसन्तसेना तो अब चली गई, हम लोग भी अब अपने घर पर चलें ।

(अधिक रात बीत जाने के कारण) अब सड़क पर निर्जनता छा गई है, राजमार्ग पर केवल पहरा देने वाले सिपाही ही इधर-उधर घूम रहे हैं । चोरी से बचना चाहिए क्योंकि रात में ही अनेक तरह के अनर्थ हुआ करते हैं ॥ ५८ ॥

(परिक्रम्य) इदञ्च सुवर्णभाण्डं रक्षितव्यं त्वया रात्रौ, वर्द्धमानकेनापि दिवा ।

विदूषकः—जधा भवं आणवेदि । [यथा भवानाज्ञापयति ।]

(इति निष्क्रान्तौ)

इति मृच्छकटिके अलङ्कारन्यासो नाम प्रथमोऽङ्कः ।

(परिक्रम्य=परिभ्रमणङ्कृत्वा) इदम्=एतत्, च सुवर्णभाण्डम्=आभूषणपात्रम्, त्वया=विदूषकेण, रक्षितव्यम्=रक्षाकर्त्तव्यम्, रात्रौ=निशायाम्, दिवा=दिने, वर्द्धमानकेन रक्षितव्यम् ।

विदूषकः—यथा=येन प्रकारेण, भवान्=श्रीमान्, आज्ञापयति=आदिशति ।

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तौ=बहिर्गतौ)

मृच्छकटिकेऽलङ्काराणां=भूषणानां, न्यासः=निक्षेपो यस्मिन्
अङ्के वर्णितः स प्रथमोऽङ्कः समाप्त इति ।

(इति प्रथमोऽङ्कः)

(घूमकर) मैत्रेय, सोने के इन जेवरों की रक्षा रात में तुम करोगे और दिन में इसकी रक्षा बर्द्धमानक करेगा ।

विदूषक—आप की जैसी आज्ञा ।

(दोनों चले जाते हैं ।)

प्रथम अङ्क समाप्त

अथ द्वितीयोऽङ्कः

चेटी—(प्रविश्य) अत्ताए अज्जआसआसं संदेसेण पेसिदम्हि । ता जाव पविसिअ अज्जआसआसं गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) एसा अज्जआ हिअएण किंपि आलिहन्ती चिट्ठदि । ता जाव उपसप्पामि । [**मात्रा आर्य्यासकाशं सन्देशेन प्रेषितास्मि । तद्यावत् प्रविश्य आर्यासकाशं गच्छामि । एषा आर्य्या हृदयेन किमप्यालिखन्ती तिष्ठति । तद्यावत् उपसर्पामि ।**]

(ततः प्रविशति आसनस्था सोत्कण्ठा वसन्तसेना मदनिका च ।)

वसन्तसेना—हञ्जे ! तदो तदो ? । [**हञ्जे ! ततस्ततः ?**]

चेटी—अज्जए ! ण किंपि मन्तेसि । किं तदो तदो ? । [**आर्ये ! न किमपि मन्त्रयसि । किं ततस्ततः ?**]

वसन्तसेना—किं मए भणिदं ? [**किं मया भणितम् ?**]

चेटी—(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा) मात्रा=वसन्तसेनायाः मात्रा, आर्यायाः=मान्यायाः, सकाशम्=समीपम्, सन्देशेन=वाचिकेन, प्रेषिताऽस्मि । तद्यावत्=तस्माद्धेतोः, प्रविश्य=अन्तःप्रकोष्ठे गत्वा, आर्यासकाशम्=वसन्तसेनापार्श्वे, गच्छामि=यामि, (परिक्रम्य=परिभ्रमणं कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा, च=पुनः) एषा आर्या=वसन्तसेना, हृदयेन=चित्तेन, किमपि=किञ्चित्, आलिखन्ती=अनन्यमनसा चिन्तयन्ती, तिष्ठति, तद्यावत् उपसर्पामि=समीपं गच्छामि ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=दर्शकसमक्षमात्मानमाविर्भावयति, आसनस्था=आसने उपविष्टा, सोत्कण्ठा=उत्कण्ठया सहिता, वसन्तसेना मदनिका च=एतदाख्ये युवत्यौ ।)

वसन्तसेना—हञ्जे=हे चेटि, ततस्ततः=तत्पश्चात् ।

चेटी—आर्ये=मान्ये, न=नहि, किमपि=किञ्चित्, मन्त्रयसि=कथयसि, किम्=कथम्, पृच्छसि ।

वसन्तसेना—किमिति प्रश्ने, मया=वसन्तसेनया, भणितम्=उक्तम् ।

चेटी—(**मंच पर प्रविष्ट होकर**) आर्या वसन्तसेना की माँ ने मुझे उनके पास कुछ सन्देश देने के लिए भेजा है । तो फिर चलूं, मान्या वसन्तसेना के ही पास । (**घूमकर, देखकर**) यह तो यहाँ बैठकर एकान्तभाव से कुछ सोच रही हैं । क्यों न उनके पास चलकर ही पता करूँ ।

(प्रिय मिलनोत्सुक नायिका की तरह मदनिका के साथ मंच पर बैठी वसन्तसेना दृष्टिगोचर होती है ।)

वसन्तसेना—अरी ओ सेविके, फिर आगे की कुछ बता ।

चेटी—आर्ये, आप कुछ बतलाती तो हैं ही नहीं, केवल 'इसके बाद' पूछती हैं ।

वसन्तसेना—मैंने तुमसे क्या कहा ?

चेटी—तदो तदो। [**ततस्ततः।**]

वसन्तसेना—(सभ्रूक्षेपम्।) आं एव्वम्? [**आम्, एवम्?**]

प्रथमा चेटी—(उपसृत्य) अज्जए! अत्ता आदिसदि—ण्हादा भविअ देवदाणं पूअं णिव्वत्तेहि त्ति। [**आर्ये! माता आदिशति—स्नाता भूत्वा देवतानां पूजां निर्वर्त्तयेति।**]

वसन्तसेना—हञ्जे! विण्णवेहि अत्तं, अज्ज ण ण्हाइस्सं। ता बम्हणो ज्जेव पूअं णिव्वत्तेदु त्ति। [**हञ्जे! विज्ञापय मातरम्, अद्य न स्नास्यामि! तद् ब्राह्मण एव पूजां निर्वर्तयतु इति।**]

चेटी—जं अज्जआ आणवेदि। (इति निष्क्रान्ता।) [**यदार्य्या आज्ञापयति।**]

मदनिका—अज्जए! सिणेहो पुच्छदि, ण पुरोभाइदा, ता किं णेदं? [**आर्ये! स्नेहः पृच्छति, न पुरोभागिता, तत् किं न्विदम्?**]

चेटी—ततस्ततः=तत्पश्चात्।

वसन्तसेना—(सभ्रूक्षेपम्=भृकुटीवक्रं कृत्वा) आम्=स्मरणार्थकमव्ययम्, एवम्='तदो तदो' इति मया कथितम्?

प्रथमा चेटी—(उपसृत्य=समीपमागत्य) आर्ये=मान्ये, माता=जननी, आदिशति=आज्ञापयति, स्नाता भूत्वा=स्नानं कृत्वा, देवतानाम्=सुराणाम्, पूजाम्=अर्चाम्, निर्वर्तयेति=विधेहीति।

वसन्तसेना—हञ्जे=हे चेटि, विज्ञापय=निवेदय, मातरम्=जननीम्, अद्य=अस्मिन् दिने, न=नहि, स्नास्यामि=स्नानम् करिष्यामि। तत्=तस्माद्धेतोः, ब्राह्मण एव=कोऽपि विप्रः, पूजाम्=अर्चनम्, निवर्तयतु=सम्पादयतु।

चेटी—यत्=यथा, आर्या=मान्या, आज्ञापयति=आदिशति। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ता=बहिर्गता)

मदनिका—आर्ये=मान्ये, स्नेहः=प्रीतिः, पृच्छति=जिज्ञासां करोति, न=

चेटी—इसके बाद।

वसन्तसेना—(**त्यौरी चढ़ाकर**) अच्छा, तो ऐसी बात है।

पहली चेटी—(**पास जाकर**) आर्ये, माताजी की आज्ञा है, आप नहा धोकर पहले देवता की पूजा कर लें।

वसन्तसेना—प्रिय सेविके, माँ से जाकर कह दो न, आज मैं स्नान करूँगी ही नहीं। अच्छा हो, किन्हीं देवार्चक ब्राह्मण से ही आज देवताओं की पूजा करवा लें।

चेटी—आप जैसा कहें। (**निकल जाती है।**)

मदनिका—आर्ये, छिद्रान्वेषण की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत् प्रेम के कारण मैं आपसे यह जानना चाहती हूँ कि आपकी इतनी उद्विग्नता का कारण क्या है?

वसन्तसेना—मदणिए ! केरिसिं मं पेक्खसि ? [मदनिके ! कीदृशीं मां प्रेक्षसे ?]

मदनिका—अज्जआए सुण्णहिअअत्तणेण जाणामि—हिअअगदं कंपि अज्जआ अहिलसदि त्ति । [आर्य्यायाः शून्यहृदयत्वेन जानामि, हृदयगतं कमपि आर्य्या अभिलषतीति ।]

वसन्तसेना—सुट्ठु, तुए जाणिदं । परहिअअग्गहणपण्डिआ मदणिआ क्खु तुमं । [सुष्ठु त्वया ज्ञातम् । परहृदयग्रहणपण्डिता मदनिका खलु त्वम् ।]

मदनिका—पिअं मे पिअं । को क्खु णाम अज्ज अत्तभोदिए अणुग्गहिदो महूसवे तरुणजणो ? ता कधेदु अज्जआ, किं राआ राअवल्लहो वा सेवीअदि ? [प्रियं मे प्रियम् । कः खलु नाम अद्य अत्रभवत्या अनुगृहीतो महोत्सवे तरुणजनः ? तत् कथयतु आर्य्या, किं राजा राजवल्लभो वा सेव्यते ?]

नहि, पुरोभागिता=दोषैकदर्शिता 'दोषैकदृक् पुरोभागी' इत्यमरः । प्रीत्या पृच्छामि न तु दोषदृष्टचेति भावः ।

वसन्तसेना—मदनिके=सेविके, कीदृशीम्=कस्मिन् रूपे, माम्=वसन्तसेनिकाम् प्रेक्षसे=अवलोकयसि ।

मदनिका—आर्यायाः=मान्यायाः, शून्यहृदयत्वेन=अत्यधिकौदासीन्येन, जानामि=अवगच्छामि, हृदयगतं=चित्ते स्थितम्, कमपि=अज्ञातजनम्, आर्या=मान्या वसन्तसेना, अभिलषति=वाञ्छति ।

वसन्तसेना—सुष्ठु=सम्यग्रूपेण, त्वया=मदनिकया, ज्ञातम्=बुद्धम्, परस्य अन्यस्य, हृदयग्रहणे=अवस्थापरिज्ञाने, पण्डिता=कुशला, त्वम्=भवती, खलु=निश्चितमेव, मदनिका=मदनमस्या अस्तीति मदनिका=कामयुक्ता, अन्वर्थकनामवतीति भावः, यथा कामदेवः परहृदयग्रहणे प्रभवति तथा त्वमपि परहृदयस्थं भावं ज्ञातुं समर्थाऽसीति भावः ।

मदनिका—प्रियम्=अनुरूपम्, मे=मम । कः=तरुणविशेषः, खल्वित्यवधारणे, नाम=संज्ञा, अद्य=अस्मिन्नेव दिने, अत्रभवत्या=श्रीमत्या, अनुगृहीतः=अनुकम्पितः, महोत्सवे=हर्षोल्लासोत्सवे, तरुणजनः=युवजनः । तत्=तस्मात्, कथयतु=भणतु,

---

वसन्तसेना—मदनिके, मैं तुम्हें कैसी लगती हूँ ?

मदनिका—आपको इस तरह खोयी-खोयी सी देखकर लगता है आपने किसी को दिल दे दिया है ।

वसन्तसेना—तुमने ठीक ही समझा है, किसी के दिल की थाह लेने में पूरी पण्डिता हो । शब्द के सही अर्थ में तुम 'मदनिका' हो ।

मदनिका—यह तो बड़ी खुशी की बात है पर, आप यह तो बतलाएँ—आपका चित्तचोर कोई राजा है या राजबल्लभ ?

वसन्तसेना—हञ्जे ! रमिदुमिच्छामि, ण सेविदुं । [**हञ्जे ! रन्तुमिच्छामि, न सेवितुम् ।**]

मदनिका—विज्जाविसेसालंकिदो किं कोवि बम्हणजुआ कामीअदि ? [**विद्याविशेषालङ्कृतः किं कोऽपि ब्राह्मणयुवा काम्यते ?**]

वसन्तसेना—पूअणीओ मे वम्हणजणो । [**पूजनीयो मे ब्राह्मणजनः ।**]

मदनिका—किं अणेअ-णअराहिगमण-जणित-विहव-वित्थारो वणिअजुआ वा कामीअदि । [**किम् अनेक-नगराभिगमन-जनित-विभवविस्तारो वाणिजयुवा वा काम्यते ?**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! उवारूडसिणेहं पि पणइजणं परिच्चइअ देसंतरगमणेण वाणिअजणो महन्तं विओअजं दुक्खं उप्पादेदि । [**हञ्जे ! उपारूढस्नेहमपि प्रणयिजनं परित्यज्य देशान्तरगमनेन वाणिग्जनो महद्वियोगजं दुःखमुत्पादयति ।**]

आर्या=मान्या, किमिति प्रश्ने, राजा=नृपः, वा=अथवा, राजवल्लभः=नृपप्रियः, सेव्यते ?

वसन्तसेना—हञ्जे=सेविके, रन्तुमिच्छामि=रमणं कर्तुमिच्छामि, न सेवितुम्=न तु द्रव्यलाभेन शुश्रूषितुम्, इच्छामि । एतेन दारिद्र्यत्वेनापि चारुदत्तस्यालौकिकगुणवत्वेन मनोनुकूलतया कामये, न तु धनलाभदृष्ट्याऽन्यपुरुषमिति भावः ।

मदनिका—विद्याविशेषालङ्कृतः=ज्ञानविशेषविभूषितः, ब्राह्मणयुवा=विप्रतरुणः, काम्यते=अभिलष्यन्ते ।

वसन्तसेना—मे=मम, ब्राह्मणजनः=विप्रजनः, पूजनीयः=दानसम्मानाभ्यामर्च्यः, न तु कामोपभोग्यः ।

मदनिका—किमिति प्रश्ने जिज्ञासायां वा, अनेकेषु=बहुषु, नगरेषु=पत्तनेषु, अभिगमनेन=व्यापारार्थं यात्राकरणेन, जनितः=सम्पादितः, विभवः=सम्पत्तिः, तस्य विस्तारः=बाहुल्यं, येनासौ, वाणिजः=वणिक्, स चासौ युवा=तरुणः, सार्थवाह-तरुण इति भावः, वा=अथवा, काम्यते=अभिलष्यते ?

वसन्तसेना—उपारूढः=परिवर्द्धितः, स्नेहः=अनुरागः यस्य तमपि, प्रणयिजनम्=स्नेहभाजनम्, परित्यज्य=त्यक्त्वा, देशान्तरगमनेन=विदेशयात्राकरणेन, वणिग-

---

वसन्तसेना—नहीं री, मैं तो रमण करना चाहती हूँ, सेवा नहीं ।

मदनिका—तो क्या विद्याविभूषित किसी ब्राह्मणयुवा की कामना करती हो ?

वसन्तसेना—हाय री, ब्राह्मण तो हमारे लिए पूजनीय हैं ।

मदनिका—तो फिर, किसी वैभवशाली व्यापारी युवक की कामना करती हो ।

वसन्तसेना—नहीं री, व्यापारी लोग तो अत्यधिक प्रेम के बावजूद अपनी विरहिणी को वियोग की आग में जलने के लिए छोड़कर व्यापार के क्रम में विदेश की यात्रा करते ही रहते हैं ।

मदनिका—अज्जए ! ण राआ, ण राअवल्लहो, ण बम्हाणो, ण वणिअजणो ! ता को दाणिं सो भट्टिदारिआए कामीअदि ? [**आर्ये ! न राजा, न राजबल्लभः न ब्राह्मणः, न वाणिग्जनः। तत् क इदानीं सः, भर्तृदारिकया काम्यते ?**]

वसन्तसेना—हज्जे ! तुमं मए सह कामदेवाअदणुज्जाणं गदा आसि। [**हज्जे ! त्वं मया सह कामदेवायतनोद्यानं गता आसीः।**]

मदनिका—अज्जए ! गदह्मि। [**आर्ये ! गतास्मि**]

वसन्तसेना—तहवि मं उदासीणा विअ पुच्छसि ? [**तथापि मामुदासीनेव पृच्छसि ?**]

मदनिका—जाणिदं। किं सो ज्जेव ? जेण अज्जआ सरणाअदा अब्भुववण्णा। [**ज्ञातम्। किं स एव ? येनार्य्या शरणागता अभ्युपपन्ना।**]

वसन्तसेना—किं णामहेओ क्खु सो ? [**किंनामधेयः खलु सः ?**]

जनः=वणिक्पुत्रः, महद्वियोगजं दुःखम्=विरहजन्यकष्टम्, उत्पादयति=जनयतीति भावः।

मदनिका—आर्ये=मान्ये, भर्तृदारिकया=राजकुमार्या, काम्यते=इप्स्यते, तत् क इदानीं यः भर्तृदारिकया काम्यते स इति यत्तच्छब्दयोर्नित्यसाकाङ्क्षत्वादवगम्यते।

वसन्तसेना—हज्जे=सेविके, त्वम्=भवती, मया सह=वसन्तसेनया सह, कामदेवस्य=मदनस्य, आयतनोद्यानम्=आयतनवाटिकाम्, गतां=चलितां, आसीः।

मदनिका—आर्ये=मान्ये, गतास्मि=तत्र स्थिताऽस्मि।

वसन्तसेना—तथापि=तत्र गत्वाऽपि, उदासीनेव=अनभिज्ञेव, पृच्छति=जिज्ञासां करोषि।

मदनिका—ज्ञातम्=बुद्धम्, किं स एव=असावेव, येन=पुरुषविशेषेण, आर्या=भवती, शरणागता-शरणम्=रक्षणम्, आगता=प्राप्ता, अभ्युपपन्ना=अमुकम्पितेति भावः।

वसन्तसेना—किम् नामधेयः=किमाख्यः, सः=असाविति, 'आख्याते अभिधानं च नामधेयं च नाम चे'त्यमरः।

मदनिका—आर्ये, तो फिर तुम्हारा प्रियतम न राजा है, न राजवल्लभ है, न ब्राह्मण है, न व्यापारी तो आखिर वह है कौन ?

वसन्तसेना—अरी, तो तुम हमारे साथ कामदेवायतन उद्यान भी तो गई थी न।

मदनिका—हाँ, श्रीमती जी, मैं साथ तो थी।

वसन्तसेना—तो फिर, अनजान बनकर मुझसे पूछ क्यों रही हो ?

मदनिका—अच्छा तो अब जान गई। क्या वही युवक, जिसने आपको संरक्षण दिया था।

वसन्तसेना—उसका नाम क्या है ?

मदनिका—सो क्खु सेट्ठिचत्तरे पडिवसदि । **[स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति ।]**

वसन्तसेना—अइ ! णामं पुच्छिदासि । **[अयि ! नाम पृष्टासि]**

मदनिका—सो क्खु अज्जए ! सुगहीदणामहेओ अज्जचारुदत्तो णाम । **[स खलु आर्ये ! सुगृहीनामधेय आर्यं चारुदत्तो नाम ।]**

वसन्तसेना—(सहर्षम् ।) साहु ! मदणिए ! साहु । सुट्ठु तुए जाणिदं । **[साधु मदनिके ! साधु, सुष्ठु त्वया ज्ञातम्]**

मदनिका—(स्वगतम्) एव्वं दाव । (प्रकाशम्) अज्जए ! दलिद्दो क्खु सो सुणीअदि । **[एवं तावत् । आर्ये ! दरिद्रः खलु स श्रूयते]**

वसन्तसेना—अदो ज्जेव कामीअदि । दलिद्दपुरिससङ्कन्तमणा क्खु गणिआ लोए अवअणीआ भोदि । **[अत एव काम्यते । दरिद्रपुरुषसङ्क्रान्तमना खलु गणिका लोके अवचनीया भवति ।]**

मदनिका—सः=असौ, खलु=निश्चयेन, श्रेष्ठिचत्वरे=वणिक्वासस्थले, प्रतिवसति=निवसति ।

वसन्तसेना—आर्ये=इति सम्बोधने, नाम=अभिधानम्, पृच्छामि ।

मदनिका—आर्ये=हे मान्ये, सः=असौ, खलु=निश्चयेन, सुगृहीतम्=औदार्यत्वेन सभ्यजनैरपि स्मरणीयम्, नामधेयम्=नाम, यस्य सः आर्य=मान्य, चारुदत्तः नामेति प्रसिद्धः ।

वसन्तसेना—(सहर्षम्=सानन्दम्) सुष्ठु=साधुरूपेण, त्वया=भवत्या, ज्ञातम्=बुद्धम् ।

मदनिका—(स्वगतम्=आत्मगतम्) एवं तावत्=सुष्ठुभणितम् (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) आर्ये=मान्ये, सः=असौ पुरुषः, दरिद्रः=अकिञ्चनः, खलु=निश्चयेन, श्रूयते=ज्ञायते, इति ।

वसन्तसेना—अत एव=अनेनैव कारणेन, काम्यते=इप्स्यते, दरिद्रपुरुषे=अकिञ्चनजने, सङ्क्रान्तम्=अत्यनुरक्तम्, मनः=चित्तम्, यस्याः सा, अवचनीया=अदूषणीयेति, भवति=याति ।

मदनिका—वे तो बनियों के मुहल्ले में रहते हैं ।

वसन्तसेना—अरी, मैं तो तुमसे उसका नाम पूछ रही हूँ ।

मदनिका—हाँ श्रीमती जी, उसका नाम तो आर्य चारुदत्त है ।

वसन्तसेना—(खुश होकर) वाह, मदनिके, वाह, तुमने ठीक समझा है ।

मदनिका—(अपने आप) ठीक तो है ही (सुनाकर) आर्ये, मैंने सुना है—वह तो परम दरिद्र है ।

वसन्तसेना—इसीलिए तो मैं उन्हें प्यार करती हूँ । क्योंकि गरीब से प्यार करने वाली वेश्या बदनाम नहीं होती ।

मदनिका—अज्जए ! किं हीणकुसुमं सहआरपादवं महुअरीओ उण सेवन्ति ? [**आर्ये ! किं हीनकुसुमं सहकारपादपं मधुकर्य्यः पुनः सेवन्ते ?**]

वसन्तसेना—अदो ज्जेव ताओ महुअरीओ वुच्चन्ति । [**अत एव ता मधुकर्य्यं उच्यन्ते**]

मदनिका—अज्जए ! जइ सो मणीसिदो, ता कीसदाणिं सहसा ण अहिसारीअदि ? [**आर्ये ! यदि स मनीषितः, तत् केनेदानीं सहसा नाभिसार्य्यते ?**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! सहसा अहिसारीअन्तो पच्चुअआरदुव्वलदाए मा दाव सो जणो दुल्लहदंसणो पुणो भविस्ससस्सदि । [**हञ्जे ! सहसा अभिसार्यमाणः प्रत्युपकारदुर्बलतया मा तावत्, स जनो दुर्लभदर्शनः पुनर्भविष्यति**]

मदनिका—आर्ये=मान्ये, किमिति प्रश्ने, सहकारपादपम्=आम्रवृक्षम्, 'आम्रश्चूतो रसालोऽसौ सहकारोऽतिसौरभः' इत्यमरः । मधुकर्यः=भ्रमर्यः, हीनानि=अपगतानि, कुसुमानि=पुष्पाणि यस्य तम्, पुष्परहितं पादपम्, सेवन्ते=आश्रयन्ति, नाश्रयन्तीति भावः तथैव धनहीनं पुरुषं वेश्याऽपि नाङ्गीकुर्वन्ति, तर्हि त्वमपि कथमकिञ्चनं चारुदत्तं कामयसइती भावः । अप्रस्तुतप्रशंसानामालङ्कारः ।

वसन्तसेना—अत एव=अमञ्जरीकाम्रवृक्षासेवनादेव, मधु क्षौद्रं कुर्वन्तीति मधुकर्यः 'मधुक्षौद्रं मक्षिकादी'त्यमरः । ताः=भ्रमर्यः, मधु=पुष्परसम्, कुर्वन्ति=सर्वत्र एकीकृत्यनिष्पादयन्ति, इति मधुकर्यः=पुष्परसाभिलाषिण्यः, पुष्पाभावे रसाप्राप्त्या कथं तेषां प्रवृत्तिः इति भावः, अथवा—मधु=पुष्परसं कुर्वन्ति=सेवन्ते, मत्ता इति पृथ्वीधरः । अत्र अक्षरसङ्घातो नाम नाटचलक्षणमिति भट्टाचार्यः । उच्यन्ते=कथ्यन्ते जनैरितिभावः ।

मदनिका—आर्ये=मान्ये, यदि=चेत्, सः=दरिद्रचारुदत्तः, मनीषितः=वाञ्छितः, तत्=तर्हि, केन=हेतुना, इदानीम्=सम्प्रति, सहसा=हठादेव, न=नहि, अभिसार्यते=दूतीद्वारासङ्केतस्थानं प्राप्यते ।

वसन्तसेना—हञ्जे=हे सेविके, सहसा=अकस्मात्, अभिसार्यमाणः=अभिसारं क्रियमाणः, प्रत्युपकारे=ममाभिरमणरूपोपकारस्य प्रतिदाने, दुर्बलतया=धनाभावादशक्ततया, दुर्लभम्=दुष्प्राप्यम्, दर्शनम्=साक्षात्कारः यस्य सः, पुनः=भूयः, भविष्यति =गमिष्यति ।

मदनिका—आर्ये, मंजरीहीन आम पर कभी मधुकरी बैठती है क्या ?

वसन्तसेना—इसीलिए न उसका नाम मधुकरी है ।

मदनिका—मान्ये, यदि उनमें आपका मन इस तरह रम गया है तो फिर क्यों नहीं संकेत स्थल पर उनसे मिल लेती हो ।

वसन्तसेना—सखि, यही तो विडम्बना है—अगर कहीं बदले में कुछ देने में अपने आपको उन्होंने असमर्थ पाया, तो फिर उनके दर्शन भी दुर्लभ हो जायेंगे ।

मदनिका—किं अदो ज्जेव सो अलंकारो तस्स हत्थे णिक्खित्तो ? [किम् अत एव सोऽलङ्कारस्तस्य हस्ते निक्षिप्तः ?]

वसन्तसेना—सुट्ठु दे जाणिदं । [सुष्ठु ते ज्ञातम् ।]

(नेपथ्ये)

अले भट्टा ! दश-सुवण्णस्स लुद्धु जूदअरु पपलीणु पपलीणु । ता गेण्ह, गेण्ह । चिट्ठ चिट्ठ । दूलात् पदिट्ठोसि ? । [अरे भट्टारक ! दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकरः प्रपलायितः प्रपलायितः । तद् गृहाण गृहाण । तिष्ठ तिष्ठ । दूरात् प्रदृष्टोऽसि ।]

(प्रविश्य अपटीक्षेपेण सम्भ्रान्तः)

संवाहकः—कट्टे एशे जूदिअलभावे । हीमाणहे ! [कष्टम् एष द्यूतकरभावः । आश्चर्यम् !]

णव-बन्धण-मुक्काए विअ गद्दहीए हा ! ताडिदोम्हि गद्दहीए ।
अङ्गलाअमुक्काए विअ शत्तीए घडुक्को विअ घादिदोम्हि शत्तीए ।। १ ।।

[नव-बन्धन-मुक्तयेव गर्द्दभ्या हा ताडितोऽस्मि गर्द्दभ्या ।
अङ्गराज-मुक्तयेव शक्त्या घटोत्कच इव घातितोऽस्मि शक्त्या ।।]

मदनिका—अत एव=विश्वासमुत्पादयितुमेव, अलङ्कारः=भूषणभाण्डः, तस्य=चारुदत्तस्य, हस्ते=करे, निक्षिप्तः=न्यासीकृतः ।

वसन्तसेना—सुष्ठु=साधु, ते=तव, अत्र क्तप्रत्यययोगे शेषत्वविवक्षायां षष्ठी । त्वया, ज्ञातम्=बुद्धम् ।

(नेपथ्ये) नाटके असूचितपात्रप्रवेशनिषेधात् संवाहकस्य प्रवेशं सूचयन् नेपथ्याव माथुरो वदति —अरे भट्टारक !=हे स्वामि ! दशसुवर्णस्य=पणीकृतसुवर्णमुद्रादशकस्य, रुद्धः=गृहीतः, द्यूतकरः=अक्षक्रीडाकारकः, प्रपलायितः=अदत्त्वैव इतोऽपसृतः, तद् =तस्मात्, गृहाण=निरुद्धं कुरु, तिष्ठ=विरम, दूरात्=असमीपात्, प्रदृष्टोऽसि । (प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, अपटीक्षेपेण=यवनिकाक्षेपं विनैव, सम्भ्रान्तः=उद्विग्नः ।)

संवाहकः—आश्चर्यम्, एष द्यूतकरभावः=द्यूतक्रीडा, कष्टः=पीडादायक एव—

मदनिका—अच्छा, तो अब बात समझ में आई, इसीलिए आपने अपना आभूषण उनके हाथों में सौंपा है ।

वसन्तसेना—हाँ, तुमने ठीक समझा है ।

(नेपथ्य में)

अरे मालिक, दश रत्ती सोने के लिए बाँधा हुआ जुआड़ी भाग गया, भाग गया । उसे पकड़ो, पकड़ो उसे । ठहरो, रुको । मैंने दूर से ही तुम्हें पहचान लिया है ।

(बिना पर्दा गिराये ही घबड़ाये हुए मंच पर संवाहक का प्रवेश)

संवाहक—हाय, जूआ खेलना भी कितना बुरा है—

अभी ही पगहे तोड़कर भागी गदही की तरह पाशे से मैं पिट गया, ठीक उसी तरह जैसे कर्ण की शक्ति से घटोत्कच मारा गया ।। १ ।।

लेखअ-वावड़-हिअअं शहिअं दट्ठुण झत्ति पब्भट्टे ।
एण्हि मग्ग-णिबडिदे कं णु क्खु शलणं पपज्जे ।। २ ।।
[लेखक-व्यापृत-हृदयं सभिकं दृष्ट्वा झटिति प्रभ्रष्टः ।
इदानीं मार्गनिपतितः कं नु खलु शरणं प्रपद्ये ।।]

ता जाव एदे शहिअ-जूदिअला अण्णदो मं अण्णेशंति, ताव इदो विप्प-डीवेहि पादेहि एदं शुण्णदेउलं पविशिअ देदीभविश्शं । (बहुविधं नाटचं कृत्वा तथा स्थितः ।) [**तद्यावत् एतौ सभिक-द्यूतकरौ अन्यतो मामन्विष्यतः, तावत् इतो विप्रतीपाभ्यां पादाभ्यामेतत् शून्यदेवकुलं प्रविश्य देवीभविष्यामि ।**]

अन्वयः—नवबन्धनमुक्तया, गर्दभ्या, इव, गर्दभ्या, ताडितोऽस्मि, हा, अङ्गराजमुक्तया, शक्त्या, घटोत्कच, इव, शक्त्या, ताडितोऽस्मि ।

नवेति । नवम्=सद्यः, बन्धनात्=पाशात्, मुक्तया=स्वतन्त्रया, गर्दभ्या=वैशाखनन्दनस्त्रिया, इव=यथा, गर्दभ्या=वराटिकया, ताडितोऽस्मि=दण्डितोऽस्मि, हा=इति खेदे, अङ्गराजेन=कर्णेन, मुक्तया=प्रक्षिप्तया, शक्त्या=अस्त्रविशेषेण, घटोत्कचः=भीमपुत्रः, इव=यथा, शक्त्या=यष्टिविशेषेण, घातितोऽस्मि=मारितोऽस्मि । द्वे चात्र श्रौत्यौ उपमे इवशब्दघटितत्वात् यमके च द्वे एषां संसृष्टिः ।। १ ।।

अन्वयः—लेखकव्यापृतहृदयम्, सभिकम्, दृष्ट्वा, झटिति, प्रभ्रष्टः, इदानीम्, मार्गनिपतितः, नु, कम्, खलु, शरणम्, प्रपद्ये ।

लेखकेति । लेख एव लेखकः=लेखनम्, तस्मिन् व्यापृतम्=संलग्नम्, हृदयम्=चेतः, यस्य तम्, सभिकम्=द्यूताध्यक्षम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, झटिति=शीघ्रम्, प्रभ्रष्टः=पलायितः, इदानीम्=सम्प्रति, मार्गे=राजपथे, निपतितः=समागतः, कं नु खलु, जनम्=लोकम्, शरणम्=आश्रयम्, प्रपद्ये=प्राप्नोमि । गाथा इति पृथ्वीधरः वृत्तस्य नामैतत् ।

तत्=तस्मात्, यावत्=इत्यवधारणे, एतौ=तौ, सभिक-द्यूतकरौ=द्यूताध्यक्षाक्षक्रीडाकारकौ, अन्यतः=अन्यस्यां दिशि, माम् अन्विष्यतः=अन्वेषणं करिष्यतः, तावत्=तस्मिन्नेव काले, इतः=अस्मात् स्थानात्, विप्रतीपाभ्याम्=विपरीताभ्याम्, पादाभ्याम्=चरणाभ्याम्, शून्यम्=देवप्रतिमारहितम्, देवकुलम्=देवायतनम्, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, देवी भविष्यामि=देवमूर्ति धृत्वा स्थितो भविष्यामि । (बहुविधम्=अनेकप्रकारकम्, नाटचम्=अभिनयम्, कृत्वा=विधाय, तथा=पूर्वोक्तप्रकारेण स्थितः ।)

जुआरियों के अगुए को कुछ लिखने में उलझा देखकर, उसकी आँख बचाकर तो मैं भाग निकला । सड़क तक तो पहुँच गया । पर, अब मैं किसके संरक्षण में जाऊँ ?

जब तक अन्य जुआड़ियों के साथ यह सभिक मुझे दूसरी ओर ढूंढ रहा है, तब तक मैं उल्टे पाँव अर्थात् पीठ की ओर से चलकर इस सूने देवमन्दिर में घुसकर देवता की मूर्ति बन जाऊँ । (अनेक अभिनय करते हुए देवता की मूर्ति बनकर मन्दिर में बैठ जाता है ।)

(ततः प्रविशति माथुरो द्यूतकरश्च)

माथुरः—अले भट्टा ! दशसुवण्णाह लुद्धु जूदअरु पपलीणु पपलीणु । ता गेण्ह गेण्ह । चिट्ठ चिट्ठ । दूलात् पदिट्टोऽसि । [अरे भट्टारक ! दशसुवर्णस्य रुद्धो द्यूतकरः प्रपलायितः प्रपलायितः । तद्गृहाण, गृहाण । तिष्ठ तिष्ठ । दूरात्प्रदृष्टोऽसि ।]

द्यूतकरः—जइ वज्जसि पादालं इन्दं शलणं जासि ।
सहिअं वज्जिअ एक्कं रुद्दो वि ण रक्खिदुं तरइ ॥ ३ ॥

[यदि व्रजसि पातालमिन्द्रं शरणं यासि ।
सभिकं वर्जयित्वा एकं रुद्रोऽपि न रक्षितुं तरति ॥]

माथुरः—कहिं कहिं सुसहिअ-विप्पलम्भआ !
पलामि ले ! भअपलिवेविदङ्गआ ।
पदे पदे सम-विसमं खलन्तआ
कुलं जसं अदिकसणं कलेन्तआ ॥ ४ ॥

(ततः=तत्पश्चात्, माथुरः=एतदाख्यः सभाध्यक्षः, द्यूतकरः=कश्चिदन्यः, इमौ द्वौ प्रविशतः)

माथुरः—अरे भट्टारक ! दशसुवर्णस्येत्यादि पूर्वमेव व्यास्यातम् ।

अन्वयः—यदि, पातालम्, व्रजसि, इन्द्रम्, शरणम्, च, यासि, एकम्, सभिकम्, वर्जयित्वा, रुद्रः, अपि, रक्षितुम्, न तरति ।

यदीति । यदि=चेत्, पातालम्=पृथिव्याः अधस्तलम्, व्रजसि=गच्छसि, वा इन्द्रम्=सुरेन्द्रम्, शरणम्=रक्षकम्, यासि=गच्छसि, एकम्=केवलम्, सभिकम्=द्यूतकराध्यक्षं माथुरम्, वर्जयित्वा=परित्यज्य, रुद्रः=शिवोऽपि, रक्षितुम्=रक्षा कर्त्तुम्, न=नहि, तरति=समर्थो भवतीति भावः ॥ ३ ॥

यदीति पाठपरामर्शः—'इन्दं शलणं च संपदं जासि' इति द्वितीयचरणस्य रूपम्, निर्णयसागरमुद्रणालय-पुस्तकगतपाठस्तत्रस्थपृथ्वीधरकृतव्याख्याप्रतिपादितार्यावृत्तनिर्देशाभ्यामेतन्निर्णीयते । भट्टाचार्यटीकाविभूषितेषु 'इन्दं शलणं जासि' इति न्यूनं दृश्यते । पं० रमाशङ्करकृत व्याख्यायाम् अपि' 'साम्प्रतं' शब्दस्योल्लेखः अस्ति ।

अन्वयः—रे सुसभिकविप्रलम्भक ! भयपरिवेपिताङ्गक ! पदे-पदे समविषमं, स्खलन्, कुलम्, यशः, अतिकृष्णम्, कुर्वन्. कस्मिन्, कस्मिन्, पलायसे ।

(इसके बाद अन्य जुआड़ी के साथ माथुर का प्रवेश)

माथुर—अरे मालिक ! सोने के दस सिक्के वसूलने के लिए पकड़ कर बांधा गया, जुआड़ी तो भाग गया । उसे पकड़ो, पकड़ो । ओ भागा जा रहा है । मैंने दूर से ही उसे पहचान लिया है ।

द्यूतकर—अपने बचाव के लिए तुम चाहे पाताल में जाकर छिपो या देवराज इन्द्र के संरक्षण में । एकमात्र सभिक को छोड़कर भगवान् शंकर भी तुम्हें बचा नहीं सकते ॥ ३ ॥

[कस्मिन् कस्मिन् सुसभिकविप्रलम्भक ! पलायसे रे भयपरिवेपिताङ्गक !
पदे पदे समविषमं स्खलन् कुलं यशः अतिकृष्णं कुर्वन् ॥]

द्यूतकरः—(पदं वीक्ष्य) एसो वज्जदि, इअं पणट्टा पदवी । [एष व्रजति, इयं प्रनष्टा पदवी ।]

माथुरः—(अवलोक्य सवितर्कम्) अले ! विप्पदीवु पादु । पाडिमाशुण्णु देउलु । (विचिन्त्य) धुत्तु जूदअरु विप्पदीवेहिं पादेहिं देउलं पविट्ठो । [अरे ! विप्रतीपौ पादौ, प्रतिमाशून्यं देवकुलम्, धूर्तो द्यूतकरो विप्रतीपाभ्यां पादाभ्यां देवकुलं प्रविष्टः]

द्यूतकरः—ता अणुसरेम्ह । [तदनुसरावः ।]

कस्मिन्निति । रे सुसभिकम्=सरलव्यवहारकारिणं मां सभिकम्, विप्रलम्भयति=प्रतारयति इति सुसभिकविप्रलम्भकः, तत्सम्बुद्धौ, भयेन=भीत्या, परिवेपितानि=प्रकम्पितानि, अङ्गानि=शरीरावयवानि, यस्य तत्सम्बुद्धौ, कुलम्=वंशम्, यशः=कीर्तिश्च, अतिकृष्णम्=अत्यन्तमलिनम्, कुर्वन्=विदधत्, पदे-पदे=प्रतिपदक्षेपे, समविषमम्=उच्चावचम्, स्खलन्=गमने भ्रश्यन्, कस्मिन्-कस्मिन्=कुत्र-कुत्र, पलायसे=पलाय्य गच्छसि । रुचिरावृत्तम् ॥ ४ ॥

द्यूतकरः—(पदम्=चिह्नम्, वीक्ष्य=अवलोक्य) एष व्रजति=गच्छति, इयम्=एषा, प्रनष्टा=विनष्टा, पदवी=मार्गः, 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः' इत्यमरः । (पदचिह्नाभावात् इतः परं मार्गो नास्तीति) ।

माथुरः—(अवलोक्य=दृष्ट्वा, सवितर्कम्=सानुमानम्, वदति) अरे=त्वं प्रत्येव वितर्कमुद्रया सम्बोधनपदमिदम्, विप्रतीपौ=विपरीतौ, पादौ=चरणौ, समागच्छतः जनस्य चरणचिह्नानि अवलोक्यन्ते, न तु गच्छतः इति भावः, देवकुलम्=देवालयम्, प्रतिमाशून्यम्=मूर्त्तिरहितम्, धूर्त्तः=प्रतारकः, द्यूतकरः=संवाहकः, विप्रतीपाभ्याम्=विपरीतचरणाभ्याम्, देवकुलम्=देवमन्दिरम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतवान् ।

द्यूतकरः—तदनुसरावः=देवालयमावां व्रजावः ।

माथुर—मेरे मालिक को धोखा देकर तुम अब कहाँ भाग कर जाओगे ? डर के मारे तो तुम्हारी देह थरथर काँप रही है । ऊँची-नीची धरती पर भागते हुए तुम्हारे पैर तो लड़खड़ा रहे हैं । तुमने अपने कुकर्म से अपने कुल को भी कलंकित कर दिया है ॥ ४ ॥

द्यूतकर—(पदचिह्नों का देखकर) यहाँ तक तो पैरों की छाप साफ-साफ दीख रही है, इससे आगे तो यह छाप भी गुम हो गई है ।

माथुर—(देखकर कुछ सोचते हुए) अरे, यहाँ पैरों की छाप तो उलटी पड़ी है । मन्दिर सूना है (सोचकर) जुआड़ी बड़ा वंचक है । हमें धोखा देने के लिए ही उलटे चलकर मन्दिर में घुसा है ।

द्यूतकर—अच्छा, तो हम लोग इनके पदचिह्नों का ही अनुसरण करें ।

माथुरः—एव्वं भोदु। [एवं भवतु।]

(उभौ देवकुलप्रवेशं निरूपयतः। दृष्ट्वाऽन्योन्यं संज्ञाप्य)

द्यूतकरः—कधं कट्ठमई पडिमा। [कथं काष्ठमयी प्रतिमा।]

माथुरः—अले ! णहु णहु ! शैलपडिमा। (इति बहुविधं चालयति। संज्ञाप्य च) एव्वं भोदु। एहि जूदं किलेम्ह। (इति बहुविधं द्यूतं क्रीडति।) [अरे ! न खलु न खलु। शैलप्रतिमा। एवं भवतु। एहि, द्यूतं क्रीडावः।]

संवाहकः—(द्यूतेच्छाविकारसंवरणं बहुविधं कृत्वा, स्वगतम्) अले ! [अरे !]

कत्ताशद्दे णिण्णाणअश्श हलइ हडक्कं मणुश्शश्श।
ढक्काशद्दे व्व णडाधिवश्श पब्भट्टलज्जश्श॥ ५॥

[कत्ताशब्दो निर्णाणकस्य हरति हृदयं मनुष्यस्य।
ढक्काशब्द इव नराधिपस्य प्रभ्रष्टराज्यस्य॥]

माथुरः—एवम्=एतादृशमेव, भवतु=यातु।

(उभौ=द्वौ, देवकुलप्रवेशं निरूपयतः=विदधतः। दृष्ट्वा=अवलोक्य, अन्योऽन्यम्=परस्परम्, संज्ञाप्य=सङ्केतं दत्वा।)

द्यूतकरः—कथम्=किम्, इयम् प्रतिमा=मूर्त्तिः, काष्ठमयी=दारुमयी, इति वितर्कः।

माथुरः—अरे !=इति सम्बोधने, नं खलु शैलप्रतिमा=पाषाणमूर्त्तिः (इति=इत्थम्, वहुविधम्=अनेकरूपेण, चालयति=सञ्चालनं करोति) एहि=संमागच्छ, द्यूतं क्रीडावः=अक्षक्रीडां कुर्वः। (बहुविधम्=अनेकरूपेण, द्यूतं क्रीडति।)

संवाहकः—(द्यूतेच्छायाः=द्यूतक्रीडाभिलाषायाः, विकारस्य=चाञ्चल्यस्य, संवरणम्=गोपनम्, बहुविधं कृत्वा=अनेकरूपेण विधाय, स्वगतम्=आत्मगतम्।) अरे !=इति सम्बोधने।

अन्वयः—कत्ताशब्दः, निर्णाणकस्य, मनुष्यस्य, हृदयम्, प्रभ्रष्टराज्यस्य, नराधिपस्य, हृदयम्, ढक्काशब्दः, इव, हरति।

कत्तेति। कत्ता=कपर्दिका, तस्याः शब्दः=ध्वनिविशेषः, नास्ति नाणकम्=धनम्, यस्य निर्णाणकस्य=अकिञ्चनस्य, मनुष्यस्य=नरस्य, हृदयम्=चित्तम्, प्रभ्रष्टम्=

माथुर—ठीक है, हम वैसा ही करें।

(दोनों मन्दिर में घुसकर और देखकर, आपस में सोच-समझकर)

द्यूतकर—क्या यह काठ की मूर्ति है ?

माथुर—अरे, नहीं-नहीं, यह तो पाषाण की प्रतिमा है। (इसे बहुत प्रकार से हिलाकर और समझकर) जो हो, आओ जूआ खेलें। (बहुत प्रकार से जूआ खेलता है।)

संवाहक—(जूआ खेलने की इच्छा से वैसा ही मुंह बनाकर, मन ही मन) अरे—

किसी हारे हुए गरीब जुआड़ी को चौसर में खनकते पासे की आवाज उसी तरह खींचती है, जैसे हाथ से राज्य निकल जाने पर किसी पराजित राजे को जुझारू बाजे की आवाज॥ ५॥

जाणामि ण कीलिश्शं शुमेलु-शिहल-पडण-शण्णिहं जदम्।
तह वि हु कोइलमहुले कत्ताशद्दे मणं हलेदि॥ ६॥

[जानामि न क्रीडिष्यामि सुमेरु-शिखर-पतन-सन्निभं द्यूतम्।
तथापि खलु कोकिलमधुरः कत्ताशब्दो मनो हरति॥]

द्यूतकरः—मम पाठे, मम पाठे। [मम पाठे, मम पाठे।]

माथुरः—ण हु ! मम पाठे, मम पाठे। [न खलु ! मम पाठे, मम पाठे।]

संवाहकः—(अन्यतः सहसोपसृत्य।) णं मम पाठे। [ननु मम पाठे।]

द्यूतकरः—लद्धे गोहे। [लब्धः पुरुषः।]

शत्रुभिः स्वायत्तीकृतम्, राज्यम्=राज्यश्रियः, यस्य, तस्य राज्यच्युतस्य, नराधिपस्य=राज्ञः, ढक्काशब्दः=भेरीध्वनिः, इव=यथा, हृदयम्=चित्तम्, हरति=आकर्षति। द्यूतव्यसनी द्यूतक्रीडामवलोक्य स्वमवरोद्धुं न शक्नोतीति भावः। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा श्रौती-उपमयोः संसृष्टिः, विपुलाच्छन्दश्चेति॥ ५॥

अन्वयः—सुमेरुशिखरपतनसन्निभम्, द्यूतम्, जानामि, न, क्रीडिष्यामि, तथापि, कोकिलमधुरः कत्ताशब्दः, खलु, मनः, हरति।

जानामीति। सुमेरोः=हेमाद्रेः, शिखरात्=शृङ्गात्, पतनम्=भ्रंशनम्, तेन सन्निभम्=तुल्यम्, सुमेरुपतनवद्विनाशकः, द्यूतम्=अक्षक्रीडाम्, जानामि=अवबोधयामि, अतः न क्रीडिष्यामीति भावः। तथापि=पुनरपि, कोकिलमधुरः=परभृतकूजनमिव श्रवणसुखदः, कत्ताशब्दः=कपर्दिकाध्वनिः, खलु=अवश्यम्, मे मनः=चित्तः, हरति=आकर्षति। मया बहुशः चिन्त्यते हानिकरः द्यूतपरिणामः, प्रतिज्ञायते च न पुनः द्यूतं क्रीडिष्यामि, तथापि सुमधुरः कत्ताशब्दो मानसं द्यूतं प्रति बलात् कर्षतीति भावः। अत्र समासलुप्तोपमा, आर्या जातिश्च॥ ६॥

द्यूतकरः—मम=मा, पाठे=पर्य्यायार्थे तदानीं द्यूतकरैः शब्दोऽयं प्रयुज्यते। मम पाठे इति।

माथुरः—न खलु=नैतत् सत्यम्, मम=मामकीनमिदं पर्यायमिति।

संवाहकः—(सहसा=अकस्मात्, अन्यतः=अन्यस्मात् दिशः, उपसृत्य=समीपमागत्य) ननु=निश्चयेन, मम पाठोऽस्ति।

द्यूतकरः—लब्धः=प्राप्तः, पुरुषः=जनः, इति।

मैं जानता हूँ, जुआ खेलना सुमेरु पहाड़ की चोटी से गिरने की तरह है। इसलिए 'मैं कभी नहीं खेलूंगा' ऐसी प्रतिज्ञा अनेक बार करने के बावजूद कोयल की मीठी काकली की तरह पासे की खनक बरबस मेरे मन को खींच ही लेती है॥ ६॥

द्यूतकर—दांव मेरा है मेरा।

माथुर—नहीं, यह दांव मेरा है।

संवाहक—(अचानक दूसरी ओर से आकर) नहीं जी, दांव तो यह मेरा है।

द्यूतकर—वह भागा हुआ अपराधी पकड़ा गया।

माथुरः—(गृहीत्वा) अले लुत्तदण्डा ! गहीदोसि । पअच्छ तं दशसुवण्णं ! [अरे लुप्तदण्डक ! गृहीतोऽसि । प्रयच्छ तत् दशसुवर्णम् ।]

संवाहकः—अज्ज दइश्शं । [अद्य दास्यामि ।]

माथुरः—अहुणा पअच्छ । [अधुना प्रयच्छ ।]

संवाहकः—दइश्शं पशादं कलेहि । [दास्यामि प्रसादं कुरु ।]

माथुरः—अले ! णं संपदं पअच्छ । [अरे ! ननु साम्प्रतं प्रयच्छ ।]

संवाहकः—शिलु पड़दि । (इति भूमौ पतति ।) [शिरः पतति ।]

(उभौ बहुविधं ताडयतः)

माथुरः—एसु तुमं हु जूदिअर-मण्डलीए बद्धोसि । [एष त्वं खलु द्यूतकर-मण्डल्या बद्धोऽसि ।]

माथुरः—(गृहीत्वा=धृत्वा) अरे लुप्तदण्डक !—लुप्तः=अपहृतः, न दत्तः, दण्डः=पणीकृतः धनराशिः, येन तत्सम्बुद्धौ, गृहीतोऽसि=स्वाधिकारे समानीतोऽसि, तत्=तस्मात्, प्रयच्छ=दीयताम्, दशसुवर्णम् ।

संवाहकः—अद्य=अस्मिन्नेव दिने, दास्यामि=प्रयच्छामीति ।

माथुरः—अधुना=इदानीमेव, प्रयच्छ=दीयताम् ।

संवाहकः—दास्यामि=समर्पयिष्यामि, प्रसादं कुरु=कृपां विधेहि । अवसरदान-रूपमनुग्रहं कुरु ।

माथुरः—अरे=इति सम्बोधने, ननु=निश्चयेन, साम्प्रतम्=इदानीमेव, प्रयच्छ=देहि ।

संवाहकः—शिरः=उत्तमाङ्गः, पतति=चक्रवद् भ्रमति, (इति=एवमुक्त्वा, भूमौ=पृथिव्याम्, पतति ।)

(उभौ=द्वौ, बहुविधम्=अनेकरूपेण, ताडयतः=ताडनं कुरुतः ।)

माथुरः—एषः त्वम्=भवान्, खलु=निश्चयेन, द्यूतकराणाम्=आक्षिकाणाम्, मण्डल्या=गोष्ठ्या, बद्धोऽसि=दशसुवर्णदानाय गृहीतोऽसि । सामाजिकोऽयं दण्डः, न मम वैयक्तिक इति भावः ।

माथुर—(पकड़कर) अरे, हारा हुआ धन बिना दिये भागने वाले चोर, अब तो पकड़े गये, लाओ मेरा दस रत्ती सोना ।

संवाहक—आज दे दूँगा ।

माथुर—अभी दो, अभी ।

संवाहक—आज ही दे दूँगा, कुछ समय दो, दया करो ।

माथुर—अरे, नहीं, नहीं । अभी दो अभी ।

संवाहक—सर चकरा रहा है । (धरती पर गिर पड़ता है ।)

(दोनों जुआड़ी मिलकर उसे बुरी तरह पीटते हैं ।)

माथुर—लो, अब तुम जुआड़ियों की टोली द्वारा पकड़े गये हो ।

संवाहकः—(उत्थाय सविषादम्) कधं जूदिअल-मण्डलीए बद्धोम्हि । ही ! एशे अम्हाणं जूदिअलाणं अलङ्घणाए शमए । ता कुदो दइश्शं । [कथं द्यूतकरमण्डल्या बद्धोऽस्मि । कष्टम् ! एषोऽस्माकं द्यूतकराणामलङ्घनीयः समयः । तस्मात् कुतो दास्यामि ?]

माथुरः—अले ! गण्डे कुलु कुलु । [अरे ! गण्डं कुरु कुरु ।]

संवाहकः—एव्वं कलेमि । (द्यूतकरमुपस्पृश्य) अद्धं पे देमि, अद्धं मे मुञ्चदु । [एवं करोमि । अर्द्धं ते ददामि, अर्द्धं मे मुञ्चतु ।]

द्यूतकरः—एव्वं भोदु । [एवं भवतु ।]

संवाहकः—(सभिकमुपगम्य) अद्धश्श गण्डे कलेमि, अद्धं पि मे अज्जो मुञ्चदु । [अर्द्धस्य गण्डं करोमि, अर्द्धमपि मे आर्यो मुञ्चतु ।]

संवाहकः—(उत्थाय=उत्थितो भूत्वा, सविषादम्=सखेदम्) कथमित्याशङ्कायाम्, द्यूतकराणाम्=आक्षिकाणाम्, मण्डल्या=गोष्ठ्या, बद्धः=गृहीतोऽस्मि, कष्टम्=खेदम्, एषः=असौ, अस्माकम्=नः, द्यूतकराणाम्=आक्षिकाणाम्, अलङ्घनीयः=लङ्घितुमयोग्यः, अवश्यपालनीय इत्यर्थः, समयः=नियमः, आचारो वेति—'समयः सपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः । तस्मात्=तेन हेतुना, कुतः=कस्मात्, दास्यामि=समर्पयामि ?

माथुरः—अरे=इति सम्बोधने, गण्डम्=समयनिर्धारणम्, कुरु=विधेहि; 'गण्डः प्रवीरे चिह्ने स्यात्' इति विश्वः ।

संवाहकः—एवम्=भवतः आदेशानुसारम्, करोमि=विदधामि । (द्यूतकरम्=आक्षिकम्, उपस्पृश्य=स्पर्शङ्कृत्वा) अर्द्धम्=दातव्यस्यार्द्धभागम्, ते=तव, ददामि=प्रयच्छामि, अर्द्धम्=शेषार्द्धम्, मे=मम, मुञ्चतु ।

द्यूतकरः—एवम्=इत्थम्, भवतु=विदधतु ।

संवाहकः—(सभिकम्=द्यूताध्यक्षम्, उपगम्य=समीपं गत्वा) अर्द्धस्य=अर्द्धदातव्यस्य, गण्डम्=दण्डदानायावसरनिश्चयम्, करोमि, अर्द्धमपि=शेषार्द्धमपि, मे=मम, आर्यः=मान्यः, मुञ्चतु=परित्यजतु ।

संवाहक—(उठकर, दुःख के साथ) क्या मैं जुआड़ियों की टोली में फँस गया हूँ । अफसोस ! बिना चुकाये अब इनसे बच निकलना आसान नहीं है । तब मैं इन्हें कहाँ से दूँ ?

माथुर—अरे, बस शर्त मान लो ।

संवाहक—तो फिर ऐसा करता हूँ । (जुआड़ियों के पास जाकर) मुझसे आधी रकम ले लो, महाराज और शेष आधी राशि मुझे छोड़ दो ।

द्यूतकर—अच्छा, तो फिर ऐसा ही कर ।

संवाहक—(द्यूताध्यक्ष के पास जाकर) आधे की शर्त्त मैं मानता हूँ और आधा आप भी मेरे लिए छोड़ दें ।

माथुरः—को दोसु, एव्वं भोदु । [को दोषः, एवं भवतु ।]

संवाहकः—(प्रकाशम्) अज्ज ! अद्धे तुए मुक्के ? [आर्य ! अर्द्धं त्वया मुक्तम् ?]

माथुरः—मुक्के । [मुक्तम् ।]

संवाहकः—(द्यूतकरं प्रति) अद्धे तुए वि मुक्के ? । [अर्द्धं त्वयापि मुक्तम् ?]

द्यूतकरः—मुक्के । [मुक्तम् ।]

संवाहकः—संपदं गमिश्शं । [साम्प्रतं गमिष्यामि ।]

माथुरः—पअच्छ तं दशसुवण्णं कहि गच्छसि ? [प्रयच्छ तत्, दशसुवर्णम्, कस्मिन् गच्छसि ?]

संवाहकः—पेक्खध पेक्खध भट्टालआ ! हा, संपदं ज्जेव एक्काह अद्धे गण्डे कडे, अवलाह अद्धे मुक्के; तह वि मं अवलं संपदं ज्जेव मग्गदि । [प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वं भट्टारकाः ! हा, साम्प्रतमेव एकस्य अर्द्धं गण्डं कृतम्, अपरस्य अर्द्धं मुक्तम्; तथापि मामबलं साम्प्रतमेव मार्गयति ।]

माथुरः—को दोषः=का हानिः, न किमपीत्यर्थः, एवं भवतु=यथैवेच्छसि तथैवास्तु ।

संवाहकः—(प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्, प्रश्नमुखेन जिज्ञासते) आर्य !=मान्यवर ! अर्द्धम्=अर्द्धभागम्, त्वया=भवता, मुक्तम्=सन्त्यक्तम् ।

माथुरः—मुक्तम्=परित्यक्तम् ।

संवाहकः—(द्यूतकरम्=आक्षिकम्, प्रति) अर्द्धम्=शेषार्द्धम्, त्वयापि=भवताऽपि, मुक्तम्=सन्त्यक्तम् ।

द्यूतकरः—मुक्तम्=दातव्यदण्डात् मुक्तम् ।

संवाहकः—साम्प्रतम्=इदानीम्, गमिष्यामि=अर्द्धक्रमेण युवाभ्यां निखिलः धनराशि एव मुक्तः, अतः देयविमुक्तोऽहं निर्भयं गमिष्यामीति भावः । उभाभ्यां राशिरेव मुक्त इति मुक्तदेयत्वात् यामि इति ब्रूते पृथ्वीधरः ।

माथुरः—प्रयच्छ=देहि, तत्=पूर्वनिर्धारितम्, दशसुदर्णम्=स्वर्णरोप्यकम्, कस्मिन् गच्छसि=कुत्र यासि ।

संवाहकः—भट्टारकाः=राजानः, प्रेक्षध्वम्=विचारं कुरुध्वम्, हा=इति खेदे,

---

माथुर—इसमें क्या हर्ज है ? ऐसा ही करो ।

संवाहक—(प्रकट) आर्य, आपने आधा तो छोड़ दिया न ?

माथुर—हाँ, छोड़ दिया ।

संवाहक (द्यूतकर से) आधा तुमने भी छोड़ दिया ?

द्यूतकर—हाँ, छोड़ दिया ।

संवाहक—अच्छा, तो अब जाता हूँ ।

माथुर—कहाँ जाते हो ? पहले सोने के दस सिक्के तो दो ।

संवाहक—महाशयो, आप लोग देखें तो सही । अभी-अभी एक ने आधे की शर्त्त

माथुरः—(गृहीत्वा) धुत्तं ! माथुरु अहं णिउणु । एत्थ तुए ण अहं धुत्तिज्जामि । ता पअच्छ तं लुत्तदण्डआ ! सव्वं सुवण्णं संपदं । [**धूर्त्त ! माथुरोऽहं निपुणः । अत्र त्वया नाहं धूर्त्तयामि, तत् प्रयच्छ तं लुप्तदण्डक ! सर्वं सुवर्णं साम्प्रतम् ।**]

संवाहकः—कुदो दइश्शं ? [**कुतो दास्यामि ?**]

माथुरः—पिदरं विक्किणिअ पअच्छ । [**पितरं विक्रीय प्रयच्छ ।**]

संवाहकः—कुदो मे पिदा ? [**कुतो मे पिता ?**]

माथुरः—मादरं विक्किणिअ पअच्छ । [**मातरं विक्रीय प्रयच्छ ।**]

संवाहकः—कुदो मे मादा ? [**कुतो मे माता ?**]

माथुरः—अप्पाणं विक्किणिअ पअच्छ । [**आत्मानं विक्रीय प्रयच्छ ।**]

साम्प्रतमेव=अधुनैव, एकस्य=सभाध्यक्षस्य, अर्द्धे=अर्द्धांशे, गण्डम्=वाचनियमः कृतम्, अपरस्य=अन्याक्षिकस्य, अर्द्धम्=अवशिष्टोऽर्द्धभागः, मुक्तम्=तेनैव परित्यक्तम्, तथापि अबलम्=अशक्तम्. माम्=संवाहकम्. साम्प्रतमेव=इदानीमेव, मार्गयति=तद्दानायान्विष्यतीति ।

माथुरः—(गृहीत्वा=धृत्वा) धूर्त्त !=रे वञ्चक ! माथुरोऽहम्=मम नाम माथुर इति, निपुणः=चतुरोऽस्मि, अत्र=अस्मिन्समये, त्वया=भवता सह, नाहं धूर्त्तयामि=धूर्त्तकर्मं करोमि, तत्=तस्मात्, प्रयच्छ=देहि, तं लुप्तदण्डकम् । सर्वम्=सकलम्, सुवर्णम्=कनकम्, साम्प्रतम्=इदानीमेव ।

संवाहकः—कुतः=कस्मात्स्थानात्, दास्यामि ।

माथुरः—पितरम्=जनकम्, विक्रीय, प्रयच्छ=देहि मे धनमिति ।

संवाहकः—कुतो मे पिता=नास्ति मम पितेति भावः ।

माथुरः—यदि नास्ति पिता तर्हि मातरम्=जननीम्, विक्रीय देहि ।

संवाहकः—कुतो मे माता=मम माताऽपि नास्तीति भावः ।

माथुरः—तर्हि आत्मानम्=स्वकम्, विक्रीय प्रयच्छ=देहि ।

की है और दूसरे ने भी आधी शेष रकम छोड़ दी है । फिर मुझे कमजोर जानकर राह रोके हैं ।

माथुर—(पकड़कर) रे वंचक, मेरा नाम माथुर है । मुझसे तुम्हारी चालाकी नहीं चलने को है । मैं सीधी बात कहता हूँ । तू अपराधी है । बिना मेरा सोना चुकाए तुम्हें मुक्ति नहीं है ।

संवाहक—कहाँ से दूँ ?

माथुर—अपने बाप को बेचकर दो ।

संवाहक—मेरे पिता नहीं हैं ।

माथुर—तो फिर, अपनी माँ को बेचकर दो ।

संवाहक—माँ भी नहीं है ।

माथुर—तो फिर अपने आपको बेचकर चुकाओ ।

संवाहकः—कलेध पशादं, णेध मं लाजमग्गं। [कुरुत प्रसादम्। नयत मां राजमार्गम्।]

माथुरः—पसरु। [प्रसर।]

संवाहकः—एव्वं भोदु। (परिक्रामति) अज्जा। क्किणिध मं इमश्श शहिअश्श हत्थादो दशेहिं सुवण्णकेहि। (दृष्ट्वा आकाशे) कि भणाध! 'कि कलइश्शशि' त्ति। गेहे दे कम्मकले हुविश्शं। कधं, अदइअ पडिवअणं गदे। भोदु, एव्वं। इमं अण्णं भणइश्शं। (पुनस्तदेव पठति) कधं, एशे वि मं अवधीलिअ गदे। हा! अज्जचालुदत्तश्श विहवे विहडिदे एशे वड्ढामि मंदभाए। [एवं भवतु। आर्य्याः! क्रीणीध्वं माम् अस्य सभिकस्य हस्ताद् दशभिः सुवर्णैः। किं भणत? 'किं करिष्यसि' इति। गेहे ते कर्म्मकरो भविष्यामि। कथमदत्त्वा प्रतिवचनं गतः? भवत्वेवम्, इममन्यं भणिष्यामि। कथमेषोऽपि मामवधीर्य गतः?। हा! आर्यचारुदत्तस्य विभवे विघटिते एषोऽहं वर्त्ते मन्दभाग्यः।]

संवाहकः—प्रसादम्=कृपां कुरुत, नयत=नीयताम्, माम्=संवाहकम्, राजमार्गम्=राजपथम्।

माथुरः—प्रसर=प्रचल।

संवाहकः—(परिक्रामति=परिभ्रमति) आर्याः=मान्याः, माम्=संवाहकम्, अस्य=एतस्य, सभिकस्य=द्यूताध्यक्षस्य, हस्तात्=करात्, दशभिः सुवर्णैः=कनकैः, (दृष्ट्वा=अवलोक्य, आकाशे=गगने) पात्राभावे आकाशं विलोक्य यदुच्यते, तदाकाशभाषितं नाम नाट्योक्तिः। तस्याः लक्षणं कथितं दर्पणकारेण—

"किं ब्रवीषीति यन्नाटचे विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत् स्यादाकाशभाषितम्।"

किं भणत=किं वदत, किं करिष्यसि=किं कार्यं करिष्यसि, गेहे=गृहे, ते=तव, कर्मकरः=सेवकः, भविष्यामि, कथमिति प्रश्ने, प्रतिवचनम्=विपरीतवचनम्, अदत्त्वैव=कथनं विनैव गतः, इमम्=अमुम्, अन्यम्=अपरजनम्, भणिष्यामि=कथयिष्यामि। (पुनः=भूयः, तदेव=पूर्वोक्तमेव, पठति=कथयति) एषोऽपि=अयमपि

संवाहक—तो फिर आप लोग मुझ पर इतनी कृपा करें कि बेचने के लिए मुझे सड़क तक ले चलें।

माथुर—चल आगे बढ़।

संवाहक—चलो! (घूमता है) अरे ओ सज्जनो, सोने के दस सिक्के देकर कोई मुझे इस सभिक से खरीद लो, (आकाश की ओर देखकर) क्या कहा? क्या करोगे? तुम्हारा घरेलू नौकर बनूंगा। अरे, बिना कुछ जबाव दिये चल दिये। अच्छा, जाने दो। अब दूसरे से कहूँगा। (फिर वैसे ही पुकार कर) अरे! क्या यह भी मेरी उपेक्षा कर चलते बना। हाय! आर्य चारुदत्त के गरीब हो जाने के कारण मैं ऐसा अभागा हो गया।

माथुरः—णं देहि । [ननु देहि ।]

संवाहकः—कुदो दइश्शं ? । (इति पतति ।) [कुतो दास्यामि ?]

(माथुरः कर्षति ।)

संवाहकः—अज्जा ! पलित्ताअध, पलित्ताअध । [आर्य्याः परित्रायध्वं परित्रायध्वम् ।]

(ततः प्रविशति दर्दुरकः ।)

दर्दुरकः—भोः ! द्यूतं हि नाम पुरुषस्य असिंहासनं राज्यम् ।

न गणयति पराभवं कुतश्चिद् हरति ददाति च नित्यमर्थजातम् ।
नृपतिरिव निकाममायदर्शी विभववता समुपास्यते जनेन ।। ७ ।।

जनः, माम्=संवाहकम्, अवधीर्य=तिरस्कृत्य, गतः, हा=इति खेदे, विभवे=धने, विघटिते=विनष्टे, एषोऽहम्=संवाहकः, मन्दभाग्यः=भाग्यहीनः सन्, वर्त्ते=प्राणान् धारयामि ।

माथुरः—ननु देहि=प्रयच्छ मे दण्डम् ।

संवाहकः—कुतः=कुत्रतः, दास्यामि=प्रयच्छामि (इति=एवमुक्त्वा, पतति ।)

(माथुरः कर्षति=आकर्षति)

संवाहकः—आर्याः=श्लाघ्याः, परित्रायध्वम्=रक्षां कुरुध्वम् ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति दर्दुरकः)

दर्दुरकः—द्यूतं हि नाम असिंहासनं राज्यम्=नास्ति सिंहासनं यस्मिन् एवम्भूतं राज्यम्=राज्यस्वरूपं द्यूतमित्याशयः ।

अन्वयः—कुतश्चित्, पराभवम्, न, गणयति, नित्यम्, अर्थजातम्, हरति, ददाति, च, निकामम्, आयदर्शी, राजा, इव, विभववता, जनेन, समुपास्यते ।

नेति । द्यूतं नाम, कुतश्चित्=कस्मादपि, पराभवम्=तिरस्कारम्, न=नहि, गणयति=आशङ्कते, नित्यम्=प्रतिक्षणम्, अर्थजातम्=समृद्धिसमूहम्, हरति=उपार्जयति, ददाति=विजयशालिने अर्पयति, च=पुनः, निकामम्=पर्याप्तम्, आयदर्शी—आयम्=धनप्राप्तिम्, दर्शयति=उपस्थापयति, राजा=नृपतिः, इव=यथा, विभावता

माथुर—अरे दो भी तो ।

संवाहक— कहाँ से दूँ ? (गिर पड़ता है ।)

(माथुर उसे घसीटता है ।)

संवाहक—सज्जनो, मुझे बचाओ, बचाओ ।

(इसके बाद मंच पर दर्दुरक का प्रवेश)

दर्दुरक—अरे भाई, जुआ तो मनुष्यों का बिना सिंहासन का ही राज्य है ।

अरे, जुआ किसी के अपमान या अवहेलना की चिन्ता नहीं करता । प्रतिदिन यह धन कमाता है और गँवाता भी है । सम्पत्तिशाली राजा की तरह ही सम्पन्न व्यक्ति भी जुआ खेलते हैं ।। ७ ।।

अपि च—द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव दारा मित्रं द्यूतेनैव।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव॥ ८॥

अपि च- त्रेता हृतसर्वस्वः पावर-पतनाच्च शोषितशरीरः।
नर्दित-दर्शितमार्गः कटेन विनिपातितो यामि॥ ९॥

(अग्रतोऽवलोक्य) अयमस्माकं पूर्वसभिको माथुर इत एवाभिवर्त्तते। भवतु, अपक्रमितुं न शक्यते। तदवगुण्ठयाम्यात्मानम्। (बहुविधं नाटचं कृत्वा स्थितः। उत्तरीयं निरीक्ष्य।)

=ऐश्वर्यशालिना, जनेन=लोकेन, समुपास्यते=सेव्यते। अत्रानेकक्रियाणामेकत्रान्वयात् दीपकालङ्कारः पूर्णोपमाश्च, तयोः संकरः॥ ७॥

अन्वयः—द्यूतेनैव, द्रव्यम्, लब्धम्, द्यूतेन, एव, दारा, मित्रम्, द्यूतेनैव, दत्तम्, भुक्तम्, द्यूतेनैव, सर्वम्, नष्टम्।

द्रव्यमिति। द्यूतेनैव=अक्षक्रीडयैव, द्रव्यम्=धनम्, लब्धम्=उपार्जितम्, द्यूतेनैव =तेनैव क्रीडया, दारा=पत्नी, लब्धा भवतीत्याशयः, विभक्तिविपरिणामेनान्वयो बोध्यः, मित्रम्=सुहृत्, लब्धम्, द्यूतेनैव दत्तम्=समर्पितम्, भुक्तम्=उपभुक्तम्, द्यूतेनैव सर्वम् =सकलम्, वस्तु नष्टम्=विनष्टम्भवति। अत्रायव्यययोर्विरूपयोर्लाभनाशयोश्चैकत्रसंघटनाद्विषमालङ्कारः। विद्युन्मालावृत्तञ्च—'मो मो गो गो विद्युन्माले'ति॥ ८॥

अन्वयः—त्रेताहृतसर्वस्वः, पावरपतनात्, शोषितशरीरः, नर्दितदर्शितमार्गः, कटेन, विनिपातितः, यामि।

त्रेतेति। त्रेतया=त्रेता निपातेन, हृतम्=अपहृतम्, सर्वस्वम्=सम्पूर्णधनम्, यस्यासौ, पावरस्य='दूआ' एतदाख्यप्रसिद्धस्य, पतनात्=पातात्, शोषितम्=शुष्कीकृतम्, शरीरम्=देहम्, यस्यासौ, नर्दितेन='नक्का' इति विख्यातेन, दर्शितः=प्रदर्शितः, मार्गः=पन्थाः, यस्यासौ, कटेन=एतदाख्येन, विनिपातितः, विध्वंसितोऽहम्, यामि= गच्छामि। अत्रेदं बोध्यम्—त्रेतापावरनर्दितकटशब्दाः द्यूतक्रीडकानां साङ्केतिकशब्दविशेषा सन्ति एवञ्च त्रेतया हृतसर्वस्वः, पावरशब्दात् शोषितगात्रः, नर्दितेन दर्शितपथः कटशब्देन च नाशितः गच्छामि॥ ९॥

(अग्रतः=सम्मुखतः, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अयम्=एषः, अस्माकम्=नः,

और भी—जुआ से ही मैंने धन कमाया। स्त्री और मित्र भी मुझे जुए ने ही दिए। जुए से ही मैंने किसी को कुछ दिया या खुद खाया और फिर जुए में ही मैंने अपना सर्वस्व गँवा दिया॥ ८॥

और भी—तीया की चाल ने सब कुछ हर लिया। कौड़ी की चाल ने देह सुखा दी। विजय की लालसा ने घर की राह दिखा दी और हारा हुआ धन न देने के कारण घिसटा कर चला जा रहा हूँ॥ ९॥

(**सामने की ओर देखकर**) यह हमारा पूर्वपरिचित सभिक माथुर इधर ही आ रहा है। अच्छा, तो अब इससे बच निकलना तो मुश्किल है। इसलिए अपनी देह ही

अयं पटः सूत्रदरिद्रतां गतो ह्ययं पटश्छिद्रशतैरलङ्कृतः ।
अयं पटः प्रावरितुं न शक्यते ह्ययं पटः संवृत एव शोभते ।। १० ।।

अथवा किमयं तपस्वी करिष्यति । यो हि—

पादेनैकेन गगने द्वितीयेन च भूतले ।
तिष्ठाम्युल्लम्बितस्तावद् यावत्तिष्ठति भास्करः ।। ११ ।।

पूर्वसभिकः=पूर्वसभापतिः, इत एव=अस्यामेव दिशि, अभिवर्त्तते=आगच्छति। अपक्रमितुम्=पलायितुम्, न शक्यते । तत्=तस्मात्, आत्मानम्=स्वकम्, अवगुण्ठयामि=दूकूलेनावृणोमि । (बहुविधम्=अनेकरूपेण, नाटयम्=अभिनयम्, कृत्वा=विधाय स्थितः, उत्तरीयम्=वस्त्रम्, निरीक्ष्य=अवलोक्य ।)

अन्वयः—अयम्, पटः, सूत्रदरिद्रताम्, गतः, हि, अयम्. पटः, छिद्रशतैः, अलङ्कृतः, अयम्, पटः, प्रावरितुम्, न, शक्यते, अयम्, पटः, हि, संवृत्तः, एव शोभते ।

अयमिति । अयम्=एषः, पटः=वस्त्रम्, सूत्राणाम्=तन्तूनाम्, दरिद्रताम्=जीर्णशीर्णताम्, गतः=प्राप्तः, हि=यतः, छिद्रशतैः=विवरशतसंख्यकैः, अलङ्कृतः=सुशोभितः, अयम्=एष उत्तरीयः, प्रावरितुम्=आच्छादयितुम्, न शक्यते=न समर्थ्यते, अयं पटः=एष उत्तरीयः, हि=निश्चितम्, संवृत्तः=वेष्टितः, एव शोभते=भाति । 'अयं पटः' इत्यंशस्यानेकवारपाठे शकारादिवत्तुच्छभाषितत्वात् नात्र दोषायेति भावः । वंशस्थविलं वृत्तम् ।। १० ।।

अथवा=अनवगुण्ठनेऽपि, तपस्वी=वराकः, अयम्=माथुरः, किं करिष्यति=न किमपीत्यर्थः ।

अन्वयः—एकेन, पादेन, गगने, द्वितीयेन, च, भूतले, उल्लम्बितः, तावत्, तिष्ठामि, यावत्, भास्करः, तिष्ठति ।

पादेनेति । एकेन=वामेन, पादेन=चरणेन, गगने=आकाशे, द्वितीयेन=दक्षिणेन, च=पादेन, भूतले=भूमौ, उलम्बितः=उपरिलम्बमानः सन्, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, तिष्ठामि=स्थितः भवितुं शक्नोमि, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, भास्करः=दिवाकरः, तिष्ठति=अस्तं न गमिष्यति । मम माथुरसकाशात् न किमपि भयमस्तीति भावः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। ११ ।।

कपड़े से ढंक लेता हूँ । (कई तरह से शरीर को ढंकने का नाटक कर खड़ा हो जाता है, अपनी चादर देखकर)

इस कपड़े का तो सूत-सूत अलग हो गया है । यह फटकर चिथड़ा हो गया है । इससे तो अब शरीर ढंकना सम्भव नहीं है । इसे लपेटे रहने में ही अच्छा लगता है ।

अथवा—यह बेचारा माथुर हमारा कर ही क्या सकता है ? जो कि—

एक पैर आकाश में, दूसरा धरती पर जमा कर सारा दिन लटके हुए जब मैं टिक सकता हूँ । (तो फिर माथुर से डरने की क्या बात है ?) ।। ११ ।।

माथुरः—देहि देहि। [देहि देहि।]

संवाहकः—कुदो दइश्शं। [कुतो दास्यामि ?]

(माथुरः कर्षति।)

दर्दुरकः—अये ! किमेतदग्रतः। (आकाशे) किं भवानाह ? 'अयं द्यूतकरः सभिकेन खलीक्रियते, न कश्चिन्मोचयति' इति। नन्वयं दर्दुरो मोचयति। (उपसृत्य) अन्तरमन्तरम्। (दृष्ट्वा) अये ! कथं माथुरो धूर्त्तः, अयमपि तपस्वी संवाहकः।

य: स्तब्धं दिवसान्तमानतशिरा नास्ते समुल्लम्बितो
यस्योद्घर्षणलोष्ठकैरपि सदा पृष्ठे न जातः किणः।
यस्यैतच्च न कुक्कुरैरहरहर्जङ्घान्तरं चर्व्यते
तस्यात्यायतकोमलस्य सततं द्यूतप्रसङ्गेन किम्। १२॥

माथुरः—देहि देहि=अर्पय अर्पय, मम धनम्।

संवाहकः—कुतो दास्यामि=मम पार्श्वे न किमप्यस्तीति भावः।

(माथुरः कर्षति=हस्तेन धृत्वाऽऽकर्षति।)

दर्दुरकः—अये !=इत्याश्चर्यम्, अग्रतः=सन्मुखे, एतत्। किमिति (आकाशे=गगने) भवान्=त्वम्, किमाह ? अयम्=एषः, द्यूतकरः=कितवः, सभिकेन=सभाध्यक्षेण, खलीक्रियते=भर्त्स्यंते, न=नहि, कश्चित्=कोऽपि, मोचयति=रक्षति। ननु=निश्चयेन, अयम्=एषः, दर्दुरः मोचयति=रक्षति (उपसृत्य=समीपं गत्वा) अन्तरमन्तरम्=अपसरत अपसरत, वीप्सायां द्विरुक्तिः, 'अन्तरमन्तरमि'ति जनसम्मर्दे प्रवेशायावकाशप्रार्थना इति पृथ्वीधरः। (दृष्ट्वा=अवलोक्य) अये, कथमिति प्रश्ने, धूर्त्तः=वञ्चकः, माथुरः, अयमपि=द्वितीयोऽपि, तपस्वी=निःसहायः, संवाहकः अस्ति।

अन्वयः—यः दिवसान्तम्, आनतशिराः, स्तब्धम्, समुल्लम्बितः, न, आस्ते, यस्य पृष्ठे, उद्घर्षणलोष्ठकैः, अपि, सदा, किणः, न, जातः, यस्य, च, एतत्, जङ्घान्तरम्, कुक्कुरैः, अहः, अहः, न, चर्व्यंते, अत्यायतकोमलस्य, तस्य, सततम्, द्यूतप्रसङ्गेन, किम् ?।

य इति। यः=कितवः, दिवसान्तम्=दिनान्तपर्यन्तम्, आनतशिराः=नताननः

माथुर—ला, दे।

संवाहक—दूँ तो कहाँ से ?

(माथुर फिर उसे घसीटता है।)

दर्दुरक—अरे, यह सामने क्या हो रहा है ? (आकाश की ओर) आपने क्या कहा ? यह सभाध्यक्ष इस जुआड़ी को पीट रहा है और कोई उसे बचा नहीं रहा है ? अच्छा, तो यह दर्दुरक ही इसे बचाता है (पास जाकर) हटो, हटो। (देखकर) अरे, इनमें एक तो धूर्त्त माथुर है और दूसरा बेचारा संवाहक।

जो व्यक्ति मेरी तरह पैर ऊपर, सर नीचे लटका कर दिन भर नहीं रह सकता

भवतु, माथुरं तावत् सान्त्वयामि । (उपगम्य) माथुर ! अभिवादये ।

(माथुरः प्रत्यभिवादयते ।)

दर्दुरकः--किमेतत् ?

माथुरः—अअं दशसुवण्णं धालेदि । [अयं दशसुवर्णं धारयति ।]

दर्दुरकः—ननु कल्यवर्त्तमेतत् ।

माथुरः—(दर्दुरकस्य कक्षतल-लुण्ठीकृतं पटमाकृष्य) भट्टा ! पश्शत पश्शत-

---

सन्, स्तब्धम् = जडीभूतम्, समुल्लम्बितः = ऊर्ध्वं लम्बमानः, न=नहि, आस्ते = तिष्ठति, यस्य = लोकस्य, पृष्ठे=पश्चिमाङ्गे, उद्घर्षणलोष्ठकैः–उद्घृष्यते एभिरिति उद्घर्षणानि, तानि च लोष्ठकाः = प्रस्तरखण्डानि, अपि = चेत्, सदा = सर्वदा, किणः=व्रणचिह्नम्, न = नहि, जातः = उत्पन्नोऽभूत्, यस्य = पुरुषस्य, च, एतत् = पुरोवर्त्तमानम्, जङ्घान्तरम् = जङ्घान्तरकालीनं मांसम्, कुक्कुरैः = श्वभिः, अहरहः=प्रतिदिनम्, न = नहि, चर्व्यते = खाद्यते, अत्यायतकोमलस्य = अत्यधिकसुकुमारस्य, तस्य = द्यूतकरस्य, सततम्=सर्वदा, द्यूतप्रसङ्गेन=अक्षक्रीडनेन, किम् = किं प्रयोजनमिति । अत्राप्रस्तुतालङ्कारः; व्यतिरेकालङ्कारस्यापि ध्वनिः ॥ १२ ॥

भवतु = यातु, माथुरम् = द्यूताध्यक्षम्, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, सान्त्वयामि= शान्तं करोमि, (उपगम्य = समीपं गत्वा) माथुर != हे माथुर ! अभिवादये=अभिवादनं करोमि ।

(माथुरः प्रत्यभिवादयते = प्रतिप्रणमति ।)

दर्दुरकः—किमेतत् = एतत् किमस्ति मित्र ?

माथुरः—अयम् = एषः संवाहकः, दशसुवर्णम् = दशसंख्यकसुवर्णरौप्यकम्, धारयति = अवधारयति ।

दर्दुरकः—ननु = निश्चयेन, एतत् दशसुवर्णम्, कल्यवर्त्तम् = क्षणस्थायिनम् । अत एतादृशतुच्छवस्त्वर्थं विशेषयत्नो न कर्त्तव्यमिति ।

माथुरः—(दर्दुरकस्य=समागतजनस्य, कक्षतले = बाहुमूले, लुण्ठीकृतम्=गोपितम्, पटम् = वस्त्रम्, आकृष्य = छित्वा) भर्त्तारः = स्वामिनः, पश्यत = अवलोकयत, अयम्

है । जिसकी पीठ पर प्रतिदिन घसीटने के कारण घट्ठा न पड़ गया हो, जिसकी जाँघ के भीतरी हिस्से का मांस कुत्ते ने नहीं काटा हो—ऐसे कोमल कलेवर वाले व्यक्ति को जुआ खेलने से भला क्या लाभ ? ॥ १२ ॥

अच्छा, तो फिर माथुर को ही समझाता हूँ (पास जाकर) अरे ओ माथुर, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ।

(माथुर भी प्रणाम करता है ।)

दर्दुरक—यह क्या कर रहे हो ?

माथुर—इससे सोने के दस सिक्के वसूल रहा हूँ ।

दर्दुरक—अरे भाई, ये धन तो अत्यन्त तुच्छ हैं ।

जज्जरपडप्पावुदो अअं पुलिसो दशसुवण्णं कल्लवत्तं भणादि । [**भर्त्तारः ! पश्यत पश्यत, जर्जरपटप्रावृतोऽयं पुरुषो दशसुवर्णं कल्यवर्त्तं भणति ।**]

दर्दुरकः—अरे मूर्ख ! नन्वहं दशसुवर्णान् कटकरणेन प्रयच्छामि । तत् किं यस्यास्ति धनम्, स क्रोडे कृत्वा दर्शयति ? अरे—

दुर्वर्णोऽसि विनष्टोऽसि दशस्वर्णस्य कारणात् ।
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तो नरो व्यापाद्यते त्वया ॥ १३ ॥

माथुरः—भट्टा ! तुए दशसुवण्णु कल्लवत्तु, मए एसु विहवु । [**भर्त्तः ! तव दशसुवर्णं कल्यवर्त्तं, मम एष विभवः ।**]

=एषः, पुरुषः=मनुष्यः, जर्जरपटेन=जीर्ण-शीर्णवस्त्रेण, प्रावृत्तः=आच्छादितः, अयम्=एषः, दशसुवर्णम्, कल्यवर्त्तम्=क्षणस्थायिनम्, भणति=वदति । अकिञ्चनोऽयं पुरुषः दशसुवर्णमपि तुच्छं गणयति । किमाश्चर्यमतः परमिति भावः ।

दर्दुरकः—अरे मूर्ख=रे अज्ञ ! ननु=निश्चयेन, अहम्=दर्दुरकः, दशसुवर्णान्, कटकरणेन=अनायासेन, प्रयच्छामि=समर्पयामि । तत्=तस्मात्, किमिति प्रश्ने, यस्य=पुरुषस्य, पार्श्वे धनम्=सम्पदाम्, अस्ति=भवति, सः=धनी पुरुषः, क्रोडे=पार्श्वे अङ्के वा, कृत्वा=नीत्वा, दर्शयति=सर्वत्र प्रदर्शनं करोतीति भावः ।

अन्वयः—दुर्वर्णः, असि, विनष्टः, असि, त्वया, दशस्वर्णस्य, कारणात्, पञ्चेन्द्रिय-समायुक्तः, नरः, व्यापाद्यते ॥ १३ ॥

दुर्वर्ण इति । दुर्वर्णः=दुष्टः वर्णो यस्यासौ अधमः, असि=वर्त्तसे, विनष्टः=पतितः असि=वर्त्तसे, यत्त्वया=माथुरेण, दशस्वर्णस्य=दशानां स्वर्णानां समाहारः तस्य, कारणात्=हेतोः, निमित्ताद्वा, पञ्चभिः=पञ्चसंख्यकैः, इन्द्रियैः=नेत्रादिभिः करणैः, समायुक्तः=संयुक्तः, नरः=पुरुषः, व्यापाद्यते=हन्यते । तुच्छधनार्थमेव प्राणिपीडनं गर्हणीयमिति । काव्यलिङ्गमलङ्कारः, अनुष्टुप्छन्दश्च ॥ १३ ॥

माथुरः—भर्त्तः=हे स्वामिन्, तव=भवतः, दशसुवर्णम्, कल्यवर्त्तम्=अति-तुच्छम्, वर्त्तते किन्तु, मम=माथुरस्य, तु एषः=दशसुवर्णम्, विभवः=सम्पदा एव । अतो नाहं त्यक्ष्ये इति भावः ।

माथुर—(**दर्दुरक की काँख से फटे वस्त्र को छीनकर**) भाईयो, देखो देखो, यह चिथड़े से ढका हुआ दरिद्र व्यक्ति सोने की दस मुहरों को यह तुच्छ बतला रहा है ।

दर्दुरक—रे मूर्ख, मेरे फटे वस्त्र को देखकर मत घबड़ा । मैं दश सोने के सिक्कों को एक बार में दे सकता हूँ । और फिर, जिसके पास पैसे होते हैं, वह क्या उन्हें साथ-साथ रखकर सबको दिखलाते चलता है? अरे (मैंने कहा तो—दे दूँगा । और तुम माथुर)—

इतने नीच और पतित हो, कि मात्र कुछ सोने के लिए पाँचों इन्द्रियों से युक्त आदमी की हत्या कर रहे हो ॥ १३ ॥

माथुर—अरे मालिक, तुम्हारे लिए ये सोने के दस सिक्के कुछ भी नहीं हैं, पर मेरे लिए तो यह एक बहुत बड़ी रकम है ।

दर्दुरकः—यद्येवम्, श्रूयतां तर्हि। अन्यान् तावत् दशसुवर्णानस्यैव प्रयच्छ। अयमपि द्यूतं शीलयतु।

माथुरः—ता किं भोदु ?। [तत् किं भवतु ?]

दर्दुरकः—यदि जेष्यति तदा दास्यति।

माथुरः—अह ण जिणादि ? [अथ न जयति ?]

दर्दुरकः—तदा न दास्यति।

माथुरः—अह ण जुत्तं जप्पिदुं। एव्वं अक्खन्तो तुमं पअच्छ। धूत्तआ ! अहं पि णाम माथुरु धुत्तु जूदं मित्था आदंसआमि। अण्णस्स वि अहं ण बिभेमि। धुत्ता ! खण्डिअवुत्तोसि तुमं। [अथ न युक्तं जल्पितुम्। एवमाचक्षाणस्त्वं प्रयच्छ। धूर्तक ! अहमपि नाम माथुरो धूर्त्तः, द्यूतं मिथ्या आदर्शयामि। अन्यस्मादपि अहं न विभेमि। धूर्त्त ! खण्डितवृत्तोऽसि त्वम्।]

दर्दुरकः—यदि=चेत्, एवम्=दशस्वर्णान् ग्रहीतुमिच्छसि, तर्हि=तदा, तावत्=किञ्चित्कालपर्यन्तम्, अस्यैव=संवाहकस्यैव, अन्यान्=अपरान् दशस्वर्णान्, प्रयच्छ=देहि, अयमपि=संवाहकोऽपि, द्यूतम्, शीलयतु=खेलयतु।

माथुरः—तत्=तस्मात्, किं भवतु=ऋणरूपेण स्वर्णदानेन किं स्यात् ?

दर्दुरकः—यदि=चेत्, जेष्यति=विजयी भविष्यति, तदा=तर्हि, दास्यति।

माथुरः—अथ=किंच, न=नहि, जयति=विजयति तदा ?

दर्दुरकः—तदा=तर्हि, न=नहि, दास्यति=प्रत्यर्पणं करिष्यति।

माथुरः—अथ=अनन्तरम्, न युक्तम्=नोचितम्, जल्पितुम्=असत्यभाषितुमिति। एवम्=इत्थम्, दशसुवर्णं कल्यवर्तम्, आचक्षाणः=कथयन्, त्वम्=भवान् स्वयमेव प्रयच्छ=देहि हे वञ्चक ! अहमपि नाम माथुरः=मथुराया अयम् माथुरः, धूर्त्तः=चतुरः, द्यूतम्=पणनम्, मिथ्या=उपरिभावेन, आदर्शयामि=आदर्शङ्करोमि, अन्यस्मादपि =अन्यपुरुषादपि, अहम्=माथुरः, न=नहि, बिभेमि=भयम् करोमि। को मे किं करिष्यतीति न मे भीतिः। त्वञ्च=भवान्, धूर्त्तः=वञ्चकः, खण्डितवृत्तः=दुश्चरित्रः, असि=वर्त्तसे।

दर्दुरक—अच्छा तो सुनो, अगर ऐसी बात है तो इसे अपनी ओर से दस सिक्के और दो। यह एक बार तुम्हारे साथ जुआ खेलेगा।

माथुर—इससे भला क्या होगा ?

दर्दुरक—यदि जीतेगा तो तुम्हारी रकम तुम्हें लौटा देगा।

माथुर—और, अगर नहीं जीतेगा तब ?

दर्दुरक—तब नहीं देगा।

माथुर—बकवाद बन्द करो। तुम ठग हो, नहीं तो अपनी ओर से इतनी रकम दे क्यों नहीं देते। याद रक्खो, तुम अगर धूर्त्त हो तो मैं भी माथुर हूँ। जुआड़ियों का प्रधान क्या मैं यों ही बने फिरता हूँ ? मैं किसी से डरता नहीं हूँ। तुम चरित्र हीन हो।

दर्दुरकः—अरे कः खण्डितवृत्तः ?

माथुरः—तुमं हु खण्डिअवृत्तो । [त्वं खलु खण्डितवृत्तः ।]

दर्दुरकः—पिता ते खण्डितवृत्तः । (संवाहकस्य अपक्रमितुं संज्ञा ददाति ।)

माथुरः—गोसाविआपुता ! एव्वं ज्जेव जूदं तुए सेविदं ? । [वेश्यापुत्र ! एवमेव द्यूतं त्वया सेवितम् ?]

दर्दुरकः—मया एवं द्यूतमासेवितम् ।

माथुरः—अले संवाहआ ! पअच्छ तं दससुवण्णं । [अरे संवाहक ! प्रयच्छ तत् दशसुवर्णम् ।]

संवाहकः—अज्ज दइश्शं, दाव दइश्शं । [अद्य दास्यामि, तावत् दास्यामि ।]

(माथुरः कर्षति)

दर्दुरकः—अरे=इति सम्बोधने, कः=जनः, खण्डितवृत्तः—खण्डितम्=दूषितम्, वृत्तम्=चरित्रम् यस्य सः, चरित्रहीनः, इति ।

माथुरः—त्वम्=भवान्, खलु=निश्चयेन, खण्डितवृत्तः=नष्टचरित्रः असि ।

दर्दुरकः—ते=तव, पिता=जनकः, खण्डितवृत्तः=दुश्चरित्रः अस्ति (एवमुक्त्वा संवाहकस्य=द्यूतकरस्य, अपक्रमितुम्=अत्रतोऽन्यत्र गन्तुम्, संज्ञा=संकेतम्, ददाति =प्रयच्छति)

माथुरः—वेश्यापुत्र=हे गणिकासुत, एवमेव=अनेनैव प्रकारकेण, द्यूतम्=अक्ष-क्रीडाम्, त्वया=भवता, सेवितम्=प्रशिक्षितम् ।

दर्दुरकः—मया=दर्दुरकेण, एवम्=अनेन रूपेण, द्यूतम्=अक्षक्रीडाम्, आसे-वितम्=प्रशिक्षितम्, अर्थात् अनेनैव प्रकारेणान्यान् प्रताडयित्वा सदैव क्रीडामीति गर्वोक्तिरियम् ।

माथुरः—अरे संवाहक=रे आक्षिक, प्रयच्छ=देहि, तत्=पूर्वनिर्धारितम्, दशसुवर्णम् ।

संवाहकः—अद्य=अस्मिन्नेव दिने, दास्यामि=समर्पयिष्यामि, तावत्=दशस्वर्णान् ।

(माथुरः कर्षति=लुण्ठति ।)

दर्दुरक—अरे ! कौन चरित्रहीन है ?

माथुर—तुम हो तुम और कौन ?

दर्दुरक—अरे, मैं नहीं, तुम्हारा बाप चरित्रहीन है । (**इसी बीच संवाहक को भाग जाने का इशारा करता है ।**)

माथुर—रण्डी के बच्चे, क्या तुमने इसी तरह जुआ खेलना सीखा है ?

दर्दुरक—हाँ रे, मैंने तो ऐसे ही खेलना सीखा है ।

माथुर—रे जुआरी, ला मेरे दस सोने के सिक्के ।

संवाहक—आज दूँगा । अभी ही दे दूँगा ।

(**माथुर फिर उसे घसीटता है**)

दर्दुरकः—मूर्ख ! परोक्षे खलीकर्त्तुं शक्यते, न ममाग्रतः खलीकर्त्तुम् ।

(माथुरः संवाहकमाकृष्य घोणायां मुष्टिप्रहारं ददाति । संवाहकः सशोणितं मूर्च्छां नाटयन् भूमौ पतति । दर्दुरक उपसृत्य अन्तरयति । माथुरो दर्दुरकं ताडयति । दर्दुरो विप्रतीपं ताडयति ।)

माथुरः—अले अले दुट्ट ! छिण्णालिआपुत्तअ ! फलं पि पाविहिसि । [अरे, अरे दुष्ट ! पुंश्चलीपुत्रक ! फलमपि प्राप्स्यसि ।]

दर्दुरकः—अरे मूर्ख ! अहं त्वया मार्गगत एव ताडितः; श्वो यदि राजकुले ताडयिष्यसि, तदा द्रक्ष्यसि ।

दर्दुरकः—मूर्ख=रे अज्ञ, परोक्षे=अक्ष्णः परमिति परोक्षं तस्मिन्=असम्मुखे, खलीकर्त्तुम्=पीडयितुम्, शक्यते, न=नहि, मम=दर्दुरकस्य, अग्रे=समक्षे । अवशीकर्त्तुं शक्यते ।

(संवाहकम्=द्यूतकारम्, आकृष्य=कर्षयित्वा, घोणायाम्=नासिकायाम्, 'घोणा नासा च नासिका' इत्यमरः । मुष्टिप्रहारं ददाति=मुष्टिकया प्रहरति, संवाहकः सशोणितम्=रक्तस्रावसहितम्, मूर्च्छाम्=चैतन्यहीनताम्, नाटयन्=अभिनयन्, भूमौ=पृथिव्याम् पतति । उपसृत्य=समीपं गत्वा, अन्तरयति=द्वयो मध्ये स्थित्वा निवारयति, विप्रतीपम्=विपरीतम्, ताडयति=माथुरमपि ताड़नां करोतीति भावः)

माथुरः—अरे दुष्ट=नीच, पुंश्चलीपुत्रक=कुलटापुत्र, फलमपि=परिणामोऽपि, प्राप्स्यसि ।

दर्दुरकः—मार्गगत एव=मार्गं गच्छन् एव, न तु अपराधी कृत्वा ताडितः, श्वो=प्रभाते, यदि=चेत्, राजकुले=न्यायालये, ताडयिष्यसि=ताडनं प्राप्स्यसि, तदा=तस्मिन् काले, द्रक्षसि=तत्फलं प्राप्स्यति ।

दर्दुरक—बेवकूफ, मेरे नहीं रहने पर ही तुम इसे इस तरह सता सकते हो, मेरे सामने नहीं ।

(माथुर संवाहक को घसीटकर उसकी नाक पर घूंसा मारता है और वह खून से लतपथ होकर मूर्च्छित होने का नाटक करते हुए धरती पर गिर पड़ता है। दर्दुरक बीच-बचाव करता है। इस पर क्रुद्ध माथुर दर्दुरक को भी पीटता है। दर्दुरक भी उसे पीटता है।)

माथुर—रे दुष्ट, छिनार के बच्चे, इसका मजा तुम्हें मिलेगा ।

दर्दुरक—रे मूर्ख, तुमने राह चलते आज मुझे पीटा है, कल राजदरबार में पीटोगे तो देखना ।

माथुरः—एसु पेक्खिस्सं । [**एष प्रेक्षिष्ये ।**]

दर्दुरकः—कथं द्रक्ष्यसि ?

माथुरः—(चक्षुषी प्रसार्य्यं) एव्वं पेक्खिस्सं । [**एवं प्रेक्षिष्ये ।**]

(दर्दुरको माथुरस्य पांशुना चक्षुषी पूरयित्वा संवाहकस्य अपक्रमितुं संज्ञां ददाति । माथुरोऽक्षिणी निगृह्य भूमौ पतति । संवाहकोऽपि अपक्रामति ।)

दर्दुरकः—(स्वगतम्) प्रधानसभिको माथुरो मया विरोधितः तन्नात्र युज्यते स्थातुम् । कथितश्च मम प्रियवस्येन शर्विलकेन, यथा किल, 'आर्य्यकनामा गोपालदारकः सिद्धादेशेन समादिष्टो राजा भविष्यति' इति सर्वश्च अस्मद्विधो जनस्तमनुसरति' । तदहमपि तत्समीपमेव गच्छामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

माथुरः—एष प्रेक्षिष्ये=अस्तु, श्वोऽपि प्रक्षिष्ये ।

दर्दुरकः—कथम्=केन प्रकारेण, द्रक्ष्यसि=अवलोकनं करोषि ।

माथुरः—(चक्षुषी=नेत्रे, प्रसार्य=विस्फारयित्वा,) एवं=अनेनप्रकारेण, प्रेक्षिष्ये ।

(दर्दुरकः, माथुरस्य=प्रधानसभिकस्य, पांशुना=धूलिसमूहेन, चक्षुषी=नेत्रे, पूरयित्वा=परिपूर्य, संवाहकस्य=द्यूतकरस्य, अपक्रमितुम्=पलायितुम्, संज्ञाम्=संकेतम्, ददाति । अक्षिणी=नेत्रे, निगृह्य=नितराम् गृहीत्वा, भूमौ=पृथिव्याम् पतति, संवाहकोऽपि अपक्रामति=पलायते)

दर्दुरकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) प्रधानसभिकः=माथुरः, मया=दर्दुरकेन, विरोधितः=कलहेन क्रुद्धः कृतः, तत्=तस्मात्, न=नहि, अत्र=अस्मिन् स्थाने, स्थातुम्, युज्यते=उचितमस्ति, कथितम्=भाषितम्, मम=दर्दुरकस्य, प्रियवयस्येन=मित्रेण, शर्विलकेन=प्रसिद्धपुरुषेण, गोपालदारकः=आभीरपुत्रः, सिद्धस्य=सिद्धपुरुषस्य, आदेशेन=निर्देशेन, समादिष्टः=आज्ञापितः, राजा=भूपतिः, भविष्यति । सर्वश्च=सकलश्च, अस्मद्विधः=नृपानुकूलजनप्रतिकूलः, तम्=सम्भावितराजानम्,

---

माथुर—देख लूंगा ।

दर्दुरक—कैसे देखोगे ?

माथुर—(**आँख फैलाकर**) ऐसे देखूंगा ।

(दर्दुरक मुट्ठीभर धूल उसकी आखों में झोंक देता है, और जुआरी को भागने का इशारा करता है । माथुर आँखें थामकर धरती पर बैठ जाता है । संवाहक भाग निकलता है ।)

दर्दुरक—(**मन ही मन**) मैंने जुआरियों के मुखिया माथुर से विरोध किया है । अतः यहाँ अब और अधिक ठहरना उचित नहीं । हमारे मित्र, शर्विलक ने कहा है—"सिद्धों का कहना है कि गोपबालक आर्यक राजा होगा ।" इसलिए हमारे जैसे सभी लोग उसका अनुसरण करते हैं । मैं भी अब उसी के पास चलूं । (**यह कहकर बाहर निकल जाता है**) ।

संवाहकः—(सत्रासं परिक्रम्य दृष्ट्वा) एशे कश्शवि अणपावुदपक्खदुआलके गुहे । ता एत्थ पविशिश्शं । (प्रवेशं रूपयित्वा वसन्तसेनामालोक्य) अज्जे ! शलणागदेम्हि । [**एतत् कस्यापि अनपावृतपक्षद्वारकं गेहम् । तदत्र प्रविशामि । आर्ये ! शरणागतोऽस्मि ।**]

वसन्तसेना—अभअं सरणागदस्स । हज्जे ! ढक्केहि पक्खदुआरअं । [**अभयं शरणागतस्य । हञ्जे ! पिधेहि पक्षद्वारकम् ।**]

(चेटी तथा करोति ।)

वसन्तसेना—कुदो दे भअं ? [**कुतस्ते भयम् ?**]

संवाहकः—अज्जे धणिकादो । [**आर्ये ! धनिकात् ।**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! संपदं अवावुणु पक्खदुआरअं । [हञ्जे ! **साम्प्रतमपावृणु पक्षद्वारकम् ।**]

अनुसरति=अनुसरणं करोति । तत्=तस्मात्, अहमपि=दर्दुरकोऽपि, तत्समीपमेव=तत्सन्निधावेव, गच्छामि=यामि । (इति=एवं विचिन्त्य, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।)

संवाहकः—(सत्रासम्=सभीतम्, परिक्रम्य=कियति पदं गत्वा, दृष्ट्वा=अवलोक्य) एतत्=पुरोवर्त्तिनम्, कस्यापि=अज्ञातजनस्यापि, अनपावृत्तम्=उद्घाटितकपाटकम्, पक्षद्वारं यस्य तत्, गेहम्=सदनम् । तत्=तस्मात्, अत्र=अस्मिन् गृहे, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि । (प्रवेशम्=अन्तःप्रवेशनम् रूपयित्वा=अभिनयं कृत्वा, वसन्तसेनामालोक्य=दृष्ट्वा,) आर्ये=मान्ये, शरणागतोऽस्मि=तवाश्रितोऽस्मि ।

वसन्तसेना—अभयम्=निर्भयम्, शरणागतस्य=आश्रितजनस्य, हञ्जे=सेविके, पिधेहि=अवरुणाद्धि ।

(चेटी तथा=आदेशानुसारेण करोति=विदधति)

वसन्तसेना—कुतः=कस्मात्, ते=तव, भयम्=त्रासम् ।

संवाहकः—आर्ये=मान्ये, धनिकात्=ऋणदात् ।

वसन्तसेना—साम्प्रतम्=अधुना, अपावृणु=अर्गलादिना द्वारं दृढंकुरु, पक्षद्वारम्=कपांटद्वयमिति ।

संवाहक—(**डरते हुए घूमकर, देखकर**) निश्चय ही खुली खिड़की वाला यह घर किसी का आवास है । तो फिर इसी में घुसूं । (**भीतर घुसने का अभिनय करते हुए वसन्तसेना को देखकर**) मान्ये, मैं आपका शरणार्थी हूँ ।

वसन्तसेना—आगन्तुक अब तुम मेरी शरण में हो तुम्हें अब किसी से डरने की जरूरत नहीं । दासी दरवाजा बन्द कर दो ।

(**चेटी वैसा ही करती है**)

वसन्तसेना—पर, तुम डर किससे रहे हो ?

संवाहक—आर्ये, जिसका धारता हूँ ।

वसन्तसेना—सेविके, किवाड़ में भीतर से किल्ली लगा दो ।

संवाहकः—(आत्मगतम्) कधं धणिकादो तुलिदं शे भअकालणं। शुट्ठु क्खु एवं वुच्चदि। [**कथं धनिकात् तुलितमस्या भयकारणम्। सुष्ठु खल्वेवमुच्यते।**]

जे अत्तबलं जाणिअ भालं तुलिदं वहेइ माणुस्से।
ताह खलणं ण जाअदि ण अ कन्तालगदो विवज्जदि ॥ १४ ॥
[**य आत्मबलं ज्ञात्वा भारं तुलितं वहति मनुष्यः।**
तस्य स्खलनं न जायते न च कान्तारगतो विपद्यते ॥]

एत्थ लक्खिदो म्हि। [**अत्र लक्षितोऽस्मि।**]

माथुरः—(अक्षिणी प्रमृज्य द्यूतकरं प्रति) अले ! देहि देहि। [**अरे ! देहि देहि।**]

द्यूतकरः—भट्टा ! जावदेव अम्हे दद्दुरेण कलहाइदा, तावदेव सो गोहो अवक्कन्तो। [**भर्त्तः ! यावदेव वयं दर्दुरेण कलहायिताः, तावदेव स पुरुषोऽपक्रान्तः।**]

संवाहकः—(आत्मगतम्=स्वगतम्) कथमिति प्रश्ने, धनिकात्=ऋणदात्, तुलितम्=मम सदृशम्, अस्याः=वसन्तसेनायाः, अपि भयकारणम्=संत्रासहेतुः। सुष्ठु=उचितमेव, खलु, एवम्=इत्थम्, उच्यते=कथ्यते।

अन्वयः—यः, मनुष्यः, आत्मबलम्, ज्ञात्वा, तुलितम्, भारम्, वहति, तस्य, स्खलनम्, न, जायते, कान्तारगतः, च, न, विपद्यते ॥ १४ ॥

य इति। यः मनुष्यः=पुरुषविशेषः, आत्मबलम्=स्वसामर्थ्यम्, ज्ञात्वा=विचार्य, तुलितम्=स्वशक्त्यनुरूपम्, भारम्=गुरुद्रव्यम्, वहति=धारयति, तस्य=पुरुषविशेषस्य, स्खलनम्=पतनम्, न=नहि, जायते=भवति, कान्तारगतः=दुर्गममार्गे, गहने वने वा प्राप्तः, 'कान्तारं वर्त्म दुर्गमम्' इत्यमरः। न विपद्यते=विपद्ग्रस्तो भवति। आर्यावृत्तम् ॥ १४ ॥

अत्र=अस्मिन् स्थाने, लक्षितोऽस्मि=ज्ञापितोऽस्मि।

माथुरः—(अक्षिणी=नेत्रे, प्रमृज्य=प्रमार्जनङ्कृत्वा, द्यूतकरम्=आक्षिकम् प्रति) अरे देहि=प्रयच्छ।

द्यूतकरः—भर्त्तः=हे स्वामिन्, यावदेव=यावत्कालपर्यन्तम्, वयम्=द्यूतकर-

---

संवाहक—(**अपने मन ही मन**) क्या इसे भी मेरी तरह ऋणदाताओं से भय है ? ठीक ही कहा गया है—

जो आदमी अपनी ताकत का अन्दाज करके बोझ उठाता है, वह कभी भी गड्ढे में नहीं गिरता है। वह दुर्गम रास्ते पर चलकर भी विनष्ट नहीं होता है ॥ १४ ॥

मैं इस कथन का कायल हूँ।

माथुर—(**आखें मलकर जुआरी से**) अरे, लाओ, दो।

द्यूतकर—मालिक इधर हम लोग दर्दुरक से झगड़ते रहे और उधर वह मौका देखकर चम्पत हो गया।

माथुरः—तस्स जूतकलस्स मुट्टिप्पहालेण णासिका भग्गा आसि। ता एहि, रुहिरपहं अणुसरेम्ह। [**तस्य द्यूतकरस्य मुष्टिप्रहारेण नासिका भग्ना आसीत्। तदेहि, रुधिरपथमनुसरावः।**]

द्यूतकरः—(अनुसृत्य) भट्टा। वसन्तसेणागेहं पविट्टो सो। [**भर्त्तः! वसन्तसेनागेहं प्रविष्टः सः।**]

माथुरः—भूदाइं सुवण्णाइं। [**भूतानि सुवर्णानि।**]

द्यूतकरः—लाअउलं गदुअ णिवेदेम्ह ?। [**राजकुलं गत्वा निवेदयामः ?**]

माथुरः—एस धूत्तो इदो णिक्कमिअ अण्णत्त गमिस्सदि; ता उअरोधेणेव्व गेण्हेम्ह। [**एष धूर्त्त इतो निष्क्रम्य अन्यत्र गमिष्यति; तदुपरोधेनैव गृह्णीवः।**]

प्रभृतयः, दर्दुरेण कलहायिता=कलहायमानाः, तावदेव=तदभ्यन्तरे एव, सः=असौ, पुरुषः=संवाहकः, अपक्रान्तः=निर्गतः।

माथुरः—तस्य=पूर्वोक्तस्य, द्यूतकरस्य=आक्षिकस्य, मुष्टिप्रहारेण=मुष्टचाघातेन, नासिका भग्ना=त्रुटिता, तत्=तस्मात्, एहि=समागच्छ, रुधिरपथम्=शोणितबिन्दुपतनमार्गम्, अनुसरावः=अनुसरणं कुर्वः।

द्यूतकरः—(अनुसृत्य=अनुसरणङ्कृत्वा) भर्त्तः=हे स्वामिन्, वसन्तसेनागेहम्=गृहम्, प्रविष्टः=प्रवेशं कृतः।

माथुरः—सुवर्णानि=पूर्वोक्तदशस्वर्णानि, भूतानि=गतानि, अर्थात् संवाहकेन वसन्तसेनागृहे प्रवेशेन विफलीभूताऽस्माकं धनप्राप्त्याशा। महाप्रभुलालगोस्वामी-महोदयेन तु भूतानि=प्राप्तानि, इति व्याख्याकृतम्। तन्मते तु शरणागतवत्सलतया वसन्तसेना दास्यत्यैवेति भावः।

द्यूतकरः—राजकुलम्=न्यायालयम्, गत्वा=उपस्थितो भूत्वा, निवेदयामः=प्रार्थयामः।

माथुरः—एषः=पूर्वोक्तसंवाहकः, धूर्त्तः=वञ्चकः, इतः=वसन्तसेनागृहात्, निष्क्रम्य=निर्गत्य, अन्यत्र=अन्यस्मिन् स्थाने, गमिष्यसि=यास्यति, तत्=तस्मात्, अपरोधेनैव=वसन्तसेनां प्रति अनुरोधेनैव, गृह्णीवः=संवाहकं ग्रहीतुं समर्थौ भविष्यावः।

माथुर—अरे, घूंसे की चोट से तो उस जुआड़ी की नाक टूट गई थी। नाक से खून चूं रहा था। तो फिर लहू की बूँदों का हमलोग अनुसरण करें।

द्यूतकर—(**कुछ दूर पीछा करने के बाद**) मालिक, वह तो वसन्तसेना के घर में घुस गया है।

माथुर—तब तो सोने गये।

द्यूतकर—तो फिर कोतवाली में चलकर रपट लिखा दें।

माथुर—कहीं वह दगाबाज यहाँ से भी खिसक न जाय, इसलिए उसे यहीं घेर कर पकड़ लो।

(वसन्तसेना मदनिकायाः संज्ञां ददाति)

मदनिका—कुदो अज्जो ? को वा अज्जो ? कस्स वा अज्जो ? किं वा विंत्ति अज्जो उवजीअदि ? कुदो वा भअं ? [**कुत आर्यः ? को वा आर्यः ? कस्य वा आर्यः ? किं वा वृत्तिम् आर्य उपजीवति ? कुतो वा भयम् ?**]

संवाहकः—शुणादु अज्जआ । अज्जे ! पाडलिउत्ते मे जन्मभूमी, गहवइ-दालके हगे, संवाहअश्श विंत्ति उवजीआमि । [**श्रृणोतु आर्या । आर्ये ! पाटलिपुत्रं मे जन्मभूमिः, संवाहकस्य वृत्तिमुपजीवामि ।**]

वसन्तसेना—सुउमारा क्खु कला सिक्खिदा अज्जेण । [**सुकुमारा खलु कला शिक्षिता आर्येण ।**]

संवाहकः—अज्जए ! कलेत्ति सिक्खिदा, आजीविआ दाणिं संवुत्ता । [**आर्ये ! कलेति शिक्षिता, आजीविका इदानीं संवृत्ता ।**]

(वसन्तसेना मदनिकायाः संज्ञा=संकेतम् ददाति)

मदनिका—आर्यः=श्रेष्ठः, कुतः=किन्नाम्नो नगरात् समागतोऽसि, को वा आर्यः=किं नामवर्णः, कस्य तनयोऽसि, वा=एवम्, कां वृत्तिमाश्रित्य उपजीवति=आजीविकाग्रहणं करोसि, वा कुतो भयम्=कस्मात् हेतोः भयमस्तीति भावः ।

संवाहकः—आर्या=मान्या, श्रृणोतु=श्रवणं कुरु, मे=मम संवाहकस्य, जन्मभूमिः=जन्मस्थानम्, पाटलिपुत्रम्=आधुनिकविहारस्य राजधानी 'पटना' अस्ति । गृहपतिः गृहस्थस्य, दारकः=पुत्रः, अस्मि । संवाहकस्य—संवाहयति=शरीरं मर्दयतीति संवाहकस्य=शरीरमर्दकस्य, वृत्तिम्=जीविकाम्, उपजीवामि=आश्रयामि ।

वसन्तसेना—आर्येण=भवता, सुकुमारा=अत्यन्तकोमला, खलु=निश्चयेन, कला=विशिष्टा विद्या, शिक्षिता=अभ्यस्ता ।

संवाहकः—आर्य्ये=मान्ये, कलेति शिक्षिता=कलाख्या विद्येति मत्वा इयं कला पूर्वमभ्यस्ताऽऽसीदिति, इदानीम्=अधुना, इयं कला, आजीविका=भरणपोषणोपायः, संवृत्ता=संजाता ।

(इधर वसन्तसेना मदनिका को इशारा करती है ।)

मदनिका—आप कहाँ से आ रहे हैं ? आप कौन हैं ? आप किसके पुत्र हैं ? आपकी आजीविका क्या है ? डर किससे है ?

संवाहक—आर्ये, तो सुनिए । मेरी जन्मभूमि पटना है । मैं एक सद्गृहस्थ का बेटा हूँ । दूसरों की देह दबा-दबाकर अपना खर्च चलाता हूँ ।

वसन्तसेना—वस्तुतः आपने बड़ी कोमल कला सीखी है ।

संवाहक—मान्ये, पहले तो मैंने इसे कला समझकर ही सीखा था किन्तु, अब तो यही खाने कमाने का सहारा बन गई है ।

चेटी—अदिणिव्विण्णं अज्जेण पडिवअणं दिण्णं । तदो तदो ? । [**अतिनिर्विण्णमार्येण प्रतिवचनं दत्तम् । ततस्ततः ?**]

संवाहकः—तदो अज्जए ! एशे णिजगेहे आहिण्डकाणां मुहादो शुणिअ, अपुव्व-देश-दंशण-कुदुहलेण इह आगदे । इह वि मए पविशिअ उज्जइणिं एक्के अज्जे शुश्शूशिदे । जे तालिशे पिअदंशणे, पिअवादी, दइअ ण कित्तेदि, अवकिदं विशुमलेदि । किं बहुणा उत्तेण, दक्खिणदाए पलकेलअं विअ अत्ताणअं अवगच्छदि, शलणागतवच्छले अ । [**तत आर्य्ये ! एष निजगृहे आहिण्डकानां मुखात् श्रुत्वा अपूर्वदेश-दर्शन-कुतूहलेन इहागतः । इहापि मया प्रविश्य उज्जयिनीम्, एक आर्यः शुश्रूषितः । यस्तादृशः प्रियदर्शनः, प्रियवादी, दत्वा न कीर्त्तयति, अपकृतं विस्मरति । किं बहुना उक्तेन, दक्षिणतया परकीयमिव आत्मानमवगच्छति, शरणागतवत्सलश्च ।**]

चेटी—को दाणिं अज्जआए मणोरहन्तरस्स गुणाइं चोरिअ उज्जइणिं अलंकरेदि ? [**क इदानीमार्याया मनोरथान्तरस्य गुणान् चोरयित्वा उज्जयिनीमलङ्करोति ?**]

चेटी—अतिनिर्विण्णम्=अतिनिर्वेदसंवलितम्, आर्येण=भवता, प्रतिवचनम्=उत्तरम्, दत्तम्=कथितमिति भावः ।

संवाहकः—ततः=तदनन्तरम्, आहिण्डकानाम्=पर्यटनशीलानाम्, मुखात्=आननात्, श्रुत्वा=ज्ञात्वा, अपूर्वाः=अदृष्टपूर्वाश्च ते देशाः=प्रदेशास्तेषां दर्शनस्य=अवलोकनस्य, कुतूहलेन=उत्कण्ठया, इहागतः=अत्र समागतः, इहापि=अत्रापि, मया=संवाहकेन, एकः आर्यः=श्रेष्ठजनः, सुश्रूषितः=सेवितः, प्रियदर्शनः=सर्वेषां स्नेहभागिनः, प्रियवादी=मधुरभाषी, दत्त्वा=याचकेभ्यः धनं प्रदाय, न कीर्त्तयति=न प्रकाशयति, अपकृतम्=अपकारम्, विस्मरति=न प्रकाशयति, दक्षिणतया=औदार्येण, आत्मानम्=स्वम्, परकीयमिव=अन्यदीयमिव, अवगच्छति=जानाति ।

चेटी—कः=पुरुषविशेषः, आर्यायाः=वसन्तसेनायाः, मनोरथान्तरस्य=अभिलाषायाः, गुणान्=विशिष्टसामर्थ्यानि, चोरयित्वा=निजविषयकाणि विधाय, उज्जयिनीम्=अवन्तिदेशस्य राजधानीम्, इदानीम्=अधुना, अलङ्करोति=विभूषयति ।

चेटी—आपने बड़ा मनहूस जबाब दिया है । खैर, इसके बाद ।

संवाहक—आर्ये ! इसके बाद अपने घर पर आये पर्यटकों से यहाँ की प्रशंसा सुनकर इस विचित्र देश को देखने की इच्छा से यहाँ चला आया । इस उज्जैनी में आते ही मैंने एक श्रेष्ठ व्यक्ति की सुश्रूषा में अपने को लगा दिया । वे एक सुदर्शन, मृदुभाषी, गुप्तदानी एवं दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को भी शीघ्र भूलने वाले हैं । इनके सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाय—अत्यधिक उदारता के कारण वे अपने आपको भी दूसरों की वस्तु मानते हैं । शरणागतों के तो वे मानो प्राण ही हैं ।

चेटी—ऐसे कौन महानुभाव हैं जो आर्या के प्रिय के गुणों को चुराकर उज्जयिनी को सुशोभित किये हैं ?

वसन्तसेना—साहु, हञ्जे ! साहु । मए वि एव्वं ज्जेव हिअएण मन्तिदं । [**साधु हञ्जे ! साधु । मयापि एवमेव हृदयेन मन्त्रितम् ।**]

चेटी—अज्ज तदो तदो ? । [**आर्य ! ततस्ततः ?**]

संवाहकः—अज्जए ! शे दाणिं अणुक्कोशकिदेहिं पदाणेहिं······। [**आर्ये ! स इदानीमनुक्रोशकृतैः प्रदानैः······।**]

वसन्तसेना—किं उवरतविहवो संवुत्तो ? [**किमुपरतविभवः संवृतः ।**]

संवाहकः—अणाचक्खिदे ज्जेव कधं अज्जआए विण्णादं ? [**अनाख्यातमेव कथमार्यया विज्ञातम् ?**]

वसन्तसेना—किं एत्थ जाणीअदि । दुल्लहा गुणा विहवा अ । अपेएसु तडाएसु बहुदरं उदअं भोदि । [**किमत्र ज्ञायते । दुर्लभा गुणा विभवाश्च । अपेयेषु तडागेषु बहुतरमुदकं भवति ।**]

चेटी—अज्ज ! किंणामधेओ क्खु सो ? [**आर्य ! किंनामधेयः खलु सः ?**]

वसन्तसेना—साधु=सुष्ठु, हञ्जे=सेविके, मयापि=वसन्तसेनयापि, एवमेव=अनेन प्रकारेणैव, हृदयेन=मनसा, मन्त्रितम्=चिन्तितम् ।

चेटी—आर्य=मान्य, ततस्ततः=तत्पश्चात् ।

संवाहकः—आर्ये=मान्ये, सः=पुरुषः, इदानीम्=अधुना, अनुक्रोशः=दया, तेन कृतानि=विहितानि, प्रदानानि=दानानि, तैः ।

वसन्तसेना—किमिति प्रश्ने, उपरतः=विनष्टः, विभवः=धनं, यस्यासौ निर्धनः संवृत्तः=संजातः ।

संवाहकः—अनाख्यातमेव=अकथितमेव, कथम्=केन प्रकारेण, आर्यया=मान्यया वसन्तसेनया, विज्ञातम्=अवगतम् ।

वसन्तसेना—किमिति प्रश्ने, अत्र=अस्मिन् विषये, ज्ञायते=अवगम्यते । दुर्लभाः=एकत्र दुष्प्राप्याः, गुणाः=औदार्यादयः, विभवाः=धनानि च । संसारे दृश्यते धनिनः गुणविरहिताः, गुणिनश्च धनहीनाः भवन्ति । इदमेव द्रढयति-अपेयेषु=पातुमयोग्येषु, तडागेषु=सरोवरेषु, बहुतरम्=अधिकम्, उदकम्=जलम्, भवति=वर्तते । अप्रस्तुत-प्रशंसालङ्कारः ।

चेटी—आर्य=श्रेष्ठ, सः=पुरुषविशेषः, किं नामधेयः=तस्य नाम किमस्तीति भावः ।

वसन्तसेना—वाह री दासी, तुमने तो मेरे मन की बात कह दी ।

चेटी—फिर उसके बाद ?

संवाहक—आर्ये, दान देते देते वे इस समय······ ।

वसन्तसेना—क्या गरीब हो गये ?

संवाहक—बिना बतलाये आप जान कैसे गई ?

वसन्तसेना—इसमें जानना क्या है ? धन और गुण एक साथ नहीं रहते । जिन तालाबों का पानी पीने लायक नहीं होता, उसमें पानी अधिक होता है ।

चेटी—आर्य ! भला उनका नाम क्या है ?

संवाहकः—अज्जे ! के दाणिं तश्श भूदल-मिअंकस्स णामं ण जाणादि। शो क्खु शेट्ठिचत्तले पडिवशदि, शलाहणिज्जणामधेए अज्जचालुदत्ते णाम। [**आर्ये ! क इदानीं तस्य भूतलमृगाङ्कस्य नाम न जानाति। स खलु श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति; श्लाघनीयनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम।**]

वसन्तसेना—(सहर्षमासनादवतीर्य) अज्जस्स अत्तणकेरकं एदं गेहं। हञ्जे ! देहि अस्स आसणं, तालवेण्टअं गेण्ह। परिस्समो अज्जस्स वाधेदि। [**आर्यस्य आत्मीयमेतद् गेहम्। हञ्जे ! देहि अस्य आसनम्, तालवृन्तकं गृहाण। परिश्रम आर्यस्य बाधते।**]

(चेटी तथा करोति)

संवाहकः—(स्वगतम्) कधं, अज्ज चालुदत्तस्स णामशंकीत्तणेण ईदिशे मे आदले। शाहु, अज्जचालुदत्त ! शाहु। पहुवीए तुमं एक्के जीवशि। शेषे उण जणे शशदि। (इति पादयोर्निपत्य) भोदु, अज्जए ! भोदु। आशणे णिशीददु अज्जआ। [**कथम् आर्यचारुदत्तस्य नामसङ्कीर्त्तनेन ईदृशो मे आदरः।**

संवाहकः—भूतलस्य=पृथिव्याः, मृगाङ्कः—मृगः अङ्के यस्य सः चन्द्रस्तस्य चन्द्रवल्लोकानन्दकरस्य, नाम=परिचयः इदानीम्=अधुना, कः न जानाति, अर्थात् सर्वे जानन्त्येव। सः=असौ, श्रेष्ठिचत्वरे=महाजनप्रतोल्याम्, श्लाघनीयनामधेयः=प्रशंसार्हं नाम यस्य सः, आर्य=मान्य चारुदत्त एवेति।

वसन्तसेना—(सहर्षम्=सानन्दम्, आसनात्=पीठात्, अवतीर्य=अवरोहणङ्कृत्वा) आर्यस्य=भवतः, आत्मीयम्=स्वकीयम्, एतत्=इदम्, गेहम्=सदनम्। हञ्जे=सेविके, अस्य=नवागतस्य, आसनम्=उपवेशनाधारम्, देहि=प्रयच्छ। तालवृन्तकम्=व्यजनम्, गृहाण=करे धारय। परिश्रमम्=आयासम्, बाधते=पीडयति।

(चेटी तथा=पूर्वोक्तप्रकारेणैव, करोति=विदधति।)

संवाहकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कथमित्यव्ययम्, आर्यचारुदत्तस्य नामसङ्कीर्त्तनेन=नामोच्चारणेन, ईदृशः=अनेन प्रकारेण, मे=मम, आदरः=सम्मानः, साधु=सुष्ठु, आर्य=मान्य, चारुदत्त, साधु=धन्यवादार्हः। पृथिव्याम्=धरिण्याम्, त्वम्=भवान्, एकः=अद्वितीयमेव, जीवसि=सत्कर्मकरणात् जीवनधारणं करोषि।

संवाहक—आर्ये, धरती के उस चाँद का नाम कौन नहीं जानता है। वे महाजनों के मुहल्ले में रहते हैं। उनका नाम पूजनीय आर्य चारुदत्त है।

वसन्तसेना—(**बड़ी खुशी के साथ आसन से उठकर**) आर्य, आपका यह अपना घर है। अरी चेटी, इन्हें आसन दो, पंखा झलो। थकावट इन्हें परेशान कर रही है।

(चेटी वसन्तसेना के आदेशानुसार ही काम करती है।)

संवाहक—(**अपने मन में**) क्या माननीय चारुदत्त के नाम लेने भर से मेरा इतना अधिक आदर सम्मान हो रहा है? धन्य हो आर्य चारुदत्त ! इस धरती पर

साधु, आर्यं चारुदत्त ! साधु, पृथिव्यां त्वमेको जीवसि, शेषः पुनर्जनः श्वसिति । भवतु, आर्ये ! आसने निषीदतु आर्या ।]

वसन्तसेना—(आसने समुपविश्य) अज्ज ! कुदो सो धणिओ ? [**आर्य ! कुतः स धनिकः ?**]

संवाहकः—

शक्कालधणे क्खु शज्जणे काह ण होइ चलाचले धणे ? ।
जे पूइदुं पि जाणादि शे पूआविशेशं पि जाणादि ।। १५ ।।

[**सत्कारधनः खलु सज्जनः कस्य न भवति चलाचलं धनम् ।**
यः पूजयितुमपि जानाति स पूजाविशेषमपि जानाति ।।]

वसन्तसेना—तदो तदो ? । [**ततस्ततः ?**]

शेषः=त्वदतिरिक्तः जनः=लोकः, श्वसिति=भस्त्रावत्केवलं श्वासं त्यजति वृथा जीवतीति भावः । (इति=एवं चिन्तयित्वा, पादयोः=चरणयोः, पतति=निपतनङ्करोति) भवतु=यातु, आर्ये=मान्ये, आसने=पीठे, निषीदतु=उपविशतु ।

वसन्तसेना—(आसने=पीठे, समुपविश्य=उपवेशनं कृत्वा) आर्य=मान्य, कुतः=कस्मात्, स धनिकः=धनिको भवितुमर्हतीति । 'गोस्वामी'महोदयेन लिखितम्, सधनिकः यस्य त्वं दशसुवर्णं धारयसि । कुतः=क्व वर्त्तते ?

अन्वयः—सत्कारधनः, सज्जनः, खलु, कस्य, धनम्, चलाचलम्, न भवति ? यः, पूजयितुम्, अपि, न, जानाति, अपि, सः, पूजाविशेषम्, जानाति ? ।। १५ ।।

सत्कारेति । अन्येषां समादरम् एव धनम्=वित्तं यस्य सः, सज्जनः=समादरणीयपुरुषः, खलु=निश्चयेन, कस्य=पुरुषविशेषस्य, धनम्=सम्पत्तिः, चलाचलम्=विनाशशीलम्, न भवति=नास्ति, यः=पुरुषविशेषः, पूजयितुम्=समागतस्य सत्कर्त्तुमपि न=नहि, जानाति=अवगच्छति, अपि=किम्, प्रश्नार्थेऽपिशब्दस्यात्र प्रयोगः, सः=असौ, पूजाविशेषम्=सत्कारस्य प्रकारभेदम्, जानाति=अवबोधयति । अप्रस्तुतप्रशंसानामालङ्कारः । वैतालीयं छन्दः । पृथ्वीधरस्तु मात्रासमकं नाम्र वृत्तम् ।। १५ ।।

वसन्तसेना—ततस्ततः=तत्पश्चात् ।

अकेले तुम्हीं जीते हो, बाँकी लोग तो केवल साँस भर लेते हैं (**वसन्तसेना के पैरों पर गिरकर**) बस करो आर्ये, बस, बहुत हुआ। पहले आप आसन पर तो विराजिए ।

वसन्तसेना—(**आसन पर बैठकर**) मान्यवर, वे धनी कैसे हों ? या—आपका धनिक कहाँ है ?

संवाहक—सत्कार ही सज्जनों का एकमात्र अविनाशी धन हैं। अन्यथा सम्पदा किसके घर खूंटे में बँधकर रही है। जो दूसरों का सम्मान करना जानता है, वही सत्कार के अन्य उपकरणों से भी परिचित होता है ।। १५ ।।

वसन्तसेना—फिर इसके बाद ।

संवाहकः—तदो, तेण अज्जेण शवित्ती पलिचालके किदो म्हि चालित्ताव-शेशे अ तस्सिं जूदोवजीवि म्हि शंवुत्ते। तदो, भाअधेअविशमदाए दशशुवण्णअं जूदे हालिदं। [**ततः तेन आर्येण सवृत्तिः परिचारकः कृतोऽस्मि। चारित्र्यावशेषे च तस्मिन् द्यूतोपजीवी अस्मि संवृत्तः। ततो भागधेयविषमतया दशसुवर्णं द्यूते हारितम्।**]

माथुरः—उच्छादिदो म्हि, मुसिदो म्हि। [**उत्सादितोऽस्मि, मुषितोऽस्मि।**]

संवाहकः—एदे दे शहिअ-जूदिअला मं अणुशंधअन्ति। शंपदं शुणिअ अज्जआ पमाणं। [**एतौ तौ सभिकद्यूतकरौ मामनुसन्धत्तः। साम्प्रतं श्रुत्वा आर्या प्रमाणम्।**]

वसन्तसेना—मदणिए! वास-पादव-विशण्ठुलदाए पक्खिणो इदो तदो वि आहिण्डन्ति। हञ्जे! ता गच्छ, एदाणं सहिअजूदिअराणं 'अअं अज्जो ज्जेव पडिवादेदि' त्ति इमं हत्थाभरणं तुमं देहि। (इति हस्तात् कटकमाकृष्य चेटयाः प्रयच्छति।) [**मदनिके! वास-पादप-विसंष्ठुलतया पक्षिण इतस्ततोऽपि आहिण्डन्ते। हञ्जे! तद् गच्छ, एतयोः सभिकद्यूतकरयोः 'अयमार्य एव प्रतिपादयति' इति, इदं हस्ताभरणं त्वं देहि।**]

संवाहकः—ततः=तदनु, तेन=उक्तेन, आर्येण=मान्येन, सवृत्तिः=सवर्त्तनः, परिचारकः=सेवकः, कृतोऽस्मि=विहितोऽस्मि। चारित्रावशेषे=आचारमात्रावशिष्टे, द्यूतोपजीवी=अक्षक्रीडया आजीविकासञ्चालकः, अस्मि=भवामि, ततः=तत्पश्चात्, भागधेयविषमतया=दैवप्रतिकूलेन, द्यूते=अक्षक्रीडायाम्।

माथुरः—धूर्त्तसंवाहकेन मया आशाभङ्गात्, उत्सादितः=विनष्टः कृतः, मुषितः=चोरितः प्रतारितो वाऽस्मि।

संवाहकः—एतौ=इमौ, तौ=उभौ, सभिकद्यूतकरौ=माथुरद्यूतकरौ, माम्=संवाहकम्, अनुसन्धत्तः=अन्वेषणं कुरुतः। साम्प्रतम्=अधुना, श्रुत्वा=सकलतथ्यं-विज्ञाय, आर्या=वसन्तसेना एव, प्रमाणम्=निर्णयिका अस्तीति भावः।

वसन्तसेना—मदनिके=हे सेविके, वासपादपस्य=आवासतरोः, विसंष्ठुलतया=झंझावातादिना विश्रृंखलतया, पक्षिणः=खगाः, इतस्ततः=यत्र तत्र, आहिण्डन्ते=

संवाहक—फिर, समुचित वेतन देकर उन्होंने मुझे अपने यहाँ नौकर रख लिया। उनके गरीब हो जाने पर मैं एक जुआड़ी बन गया। जुए में भाग्य ने साथ नहीं दिया और मैं उसमें सोने के दस सिक्के हार गया।

माथुर—हाय, मेरा तो नाश हो ही गया, मैं लुट गया।

संवाहक—वे दोनों जुआड़ी मेरी टोह लेते हुए यहाँ तक आये हैं। अब आप जो उचित समझें करें।

वसन्तसेना—मदनिके, बसेरा वाले पेड़ के हिल जाने पर, उस पर रहने वाले पक्षी अपने आश्रय के लिए इधर उधर भटक जाते हैं। तो फिर जाओ और उन दोनों को

चेटी—(गृहीत्वा) जं अज्जआ आणवेदि । [**यदार्या आज्ञापयति ।**]

(इति निष्क्रान्ता ।)

माथुरः—उच्छादिदो म्हि, मुसिदो म्हि । [**उत्सादितोऽस्मि, मुषितोऽस्मि ।**]

चेटी—जधा एदे उद्धं पेक्खन्ति, दीहं णीससन्ति, अहिलहन्ति अ दुआर-णिहिद-लोअणा; तधा तक्केमि—एदे दे सहिअजूदिअरा हुविस्सन्ति । (उपगम्य) अज्ज ! वन्दामि । [**यथा एतौ ऊर्ध्वं प्रेक्षेते, दीर्घं निश्वसतः, अभिलपतश्च द्वारनिहितलोचनौ, तथा तर्कयामि–एतौ तौ सभिकद्यूतकरौ भविष्यतः । आर्य ! वन्दे ।**]

माथुरः—सुहं तुए होदु । [**सुखं तव भवतु ।**]

चेटी—अज्ज ! कदरो तुह्माणं सहिओ ? [**आर्य ! कतरो युवयोः सभिकः ?**]

आश्रयान्वेष्टुमुड्डीयन्ते । तत्=तस्मात्, गच्छ=याहि, एतयोः=अनयोः, सभिक-द्यूतकरयोः=माथुराक्षिकयोः, अयम्=एष, आर्य एव=मान्य संवाहक एव, प्रतिपाद-यति=समर्पयति । अत्र साहय्यं नाम नाटचालङ्कारः । इदम्=एतत्, हस्ताभरणम्=कङ्कणम्, त्वम्=भवती, देहि=प्रयच्छ ।

चेटी—(गृहीत्वा=नीत्वा) यत्=यथा, आर्या=वसन्तसेना, आज्ञापयति=आदिशति ।

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ता=रङ्गभूमितः प्रस्थिता ।)

माथुरः—उत्सादितोऽस्मि=प्रतारितोऽस्मि, मुषितोऽस्मि=लुण्ठितोऽस्मि ।

चेटी—यथा=येन प्रकारेण, एतौ=उभौ, ऊर्ध्वम्=उपरि प्रासादप्रकोष्ठे, प्रेक्षेते=पश्यतः, दीर्घम्=गंभीरम्, निःश्वसतः=श्वासं मुञ्चतः, अभिलपितः=पर-स्परं वार्त्तालापं कुरुतः, द्वारनिहितलोचनौ=प्रवेशमार्गे प्रदत्तनेत्रौ, तथा=तेन प्रकारेण, तौ दृष्ट्वा, तर्कयामि=अनुमिनोमि, एतौ=इमौ, तौ=उभौ, सभिकद्यूतकरौ=माथुराक्षिकौ, भविष्यतः=स्तः । (उपगम्य=समीपं गत्वा) आर्य=हे मान्य, वन्दे=नौमि ।

माथुरः—सुखम्=कल्याणम्, तव=ते, भवतु=अस्तु ।

चेटी—आर्य=हे मान्यवर, युवयोः=वाम् मध्ये, कतरः=कः, सभिकः=द्यूता-ध्यक्षः ? इति मदनिकायाः प्रश्नं श्रुत्वा माथुरः पृच्छति कस्स इति—

मेरे हाथ का कंकण देकर कहो कि आर्य संवाहक ने आपको ये दिये हैं । (**हाथ से कंगन उतार कर चेटी को देती है ।**)

चेटी—(**कंगना लेकर**) जैसी आपकी आज्ञा ।

(**मंच से बाहर चली जाती है**)

माथुर—हाय, मैं तो मर गया, लुट गया ।

चेटी—जिस तरह ये दोनों ऊपर की ओर देख रहे हैं, लम्बी लम्बी आहें भर रहे हैं, घर के दरवाजे पर आँखें टिकाये आपस में कुछ बातें कर रहे हैं, इससे अंदाज करती हूँ कि ये ही सभिक और जुआड़ी हैं (**पास जाकर**) आर्य नमस्ते ।

माथुर—तुम्हारा कल्याण हो ।

चेटी—आर्य, आप दोनों में जुआड़ियों के मुखिया कौन हैं ?

माथुरः—

कस्स तुमं तुणमज्झे ! अहरेण रद-दट्ठ-दुव्विणीदेण ।
जप्पसि मणोहल-वअणं आलोअन्ती कडक्खेण ।। १६ ।।
[कस्य त्वं तनुमध्ये ! अधरेण रत-दष्टदुर्विनीतेन ।
जल्पसि मनोहरवचनमालोकयन्ती कटाक्षेण ।।]

णत्थि मम विहवो, अण्णत्त व्वज । [नास्ति मम विभवः, अन्यत्र व्रज ।]

चेटी—जइ ईदिसाइं णं मन्तसि, ता णु होसि जूदिअरो । अत्थि कोवि तुम्हाणं धारओ ? [यदि ईदृशानि ननु मन्त्रयसि, तदा न भवसि द्यूतकरः । अस्ति कोऽपि युष्माकं धारकः ?]

माथुरः—अत्थि दशसुवण्णं धालेदि । किं तस्स ? [अस्ति, दशसुवर्णं धारयति । किं तस्य ?]

चेटी—तस्स कारणादो अज्जआ इमं हत्थाभरणं पडिवादेदि । णहि णहि,

अन्वयः—हे तनुमध्ये, कटाक्षेण, आलोकयन्ती, त्वम्, रतदष्टदुर्विनीतेन, अधरेण, मनोहरवचनम्, कस्य, जल्पसि ।। १६ ।।

कस्येति । हे तनुमध्ये = हे कृशोदरि, कटाक्षेण = वक्रावलोकनेन, आलोकयन्ती = विलोकयन्ती, त्वम् = भवती, रते = सुरते, दष्टः = कृतदन्तक्षतः, अत एव दुर्विनीतः = उद्धतः तेन रतिसूचकत्वात् धृष्टः सन् अधरेण = अवरोष्ठेन, मनोहरवचनम् = चित्ताकर्षकवचः, कस्य = पुरुषविशेषस्य, सेविका नायिका वा जल्पसि = वदसि । आर्या जातिः ।

नास्ति = न विद्यते, मम = माथुरस्य, पार्श्वे, विभवः = सम्पत्तयः । तेन अन्यत्र = अन्यस्मिन् स्थाने, व्रज = गच्छ ।

चेटी—यदि = चेत्, ईदृशानि = एतादृशानि, ननु = निश्चयेन, मन्त्रयसि = कथयसि, तदा = तर्हि त्वम्, द्यूतकरः = अक्षदेविन् । कोऽपि = पुरुषविशेषः, युष्माकम् = नः, धारकः = ऋणी, अस्ति = विद्यते ?

माथुरः—अस्ति = विद्यते, दशसुवर्णं धारयति । तस्य = धारकस्य, किम् = किम्प्रयोजनमस्तीति भावः ।

चेटी—तस्य = धारकस्य, कारणात् = हेतोः, आर्या = मान्या वसन्तसेना, इदम् =

माथुर—अरी ओ पतली कमर वाली, पहले यह बता तू है कौन ? बड़ी टेढ़ी चितवन से हमारी ओर देखती हुई, सुरत केलि में किसी नायक से काटे गये अपने इन ढीठ ओठों से ऐसी मीठी मीठी बातें कर रही हो ।। १६ ।।

पर, मेरे पास पैसे कहाँ है ? कोई दूसरी जगह तलाशो ।

चेटी—अगर तुम ऐसी बातें करते हो, तो तुम वह जुआड़ी नहीं हो । अच्छा, तो एक बात वतलाओ । तुम्हारा कोई कुछ धारता भी है ?

माथुर—हाँ, एक के पास मेरे सोने के दस सिक्के बकाये हैं । तो उसे क्या हुआ ?

चेटी—उसी के लिए तो आर्या ने अपने हाथ का यह कंगन दिया है, नहीं नहीं, उसी तुम्हारे ऋणी मे तुम्हें दिया है ।

सो ज्जेव पडिवादेदि । [तस्य कारणात् आर्यां इदं हस्ताभरणं प्रतिपादयति । नहि नहि, स एव प्रतिपादयति ।]

माथुरः—(सहर्षं गृहीत्वा) अले ! भणेशि तं कुलपुत्तं—'भूदं तुए गण्डे । आअच्छ, पुणो जूदं रमअ ।' (इति निष्क्रान्तौ ।) [अरे ! भणिष्यसि तं कुलपुत्रम्—'भूतस्तव गण्डः, आगच्छ पुनर्द्यूतं रमय' ।]

चेटी—(वसन्तसेनामुपसृत्य) अज्जए ! पडितुट्टा गदा सहिअजूदिअरा । [आर्ये ! परितुष्टौ गतौ सभिक-द्यूतकरौ ।]

वसन्तसेना—मा गच्छदु, अज्ज बन्धुअणो समस्ससदु । [तद् गच्छतु, अद्य बन्धुजनः समाश्वसितु ।]

संवाहकः—अज्जए ! जइ एव्वं, ता इअं कला परिजणहत्थगदा कलीअदु । [आर्ये ! यद्येवम्, तदियं कला परिजनहस्तगता क्रियताम् ।]

वसन्तसेना—अज्ज ! जस्स कारणादो इअं अला सिक्खीअदि, सो ज्जेव

एतत्, हस्ताभरणम्=स्वर्णकङ्कणम्, प्रतिपादयति=समर्पयति, नहि नहि स एव=तवाधमर्णः संवाहकः एव ददति, न तु आर्येति ।

माथुरः—(सहर्षम्=सप्रसन्नम्, गृहीत्वा=नीत्वा) अरे=इति सम्बोधने, तम्=संवाहकम्, कुलपुत्रम्=सद्वंशोत्पन्नं सुतम्, भणिष्यसि=निवेदयिष्यसि, तव=भवतः, गण्डः=ऋणदानाय कृतः निश्चयः, भूतः=सम्पन्नोऽभवत्, आगच्छ=समागम्यताम्, पुनः=भूयोऽपि, द्यूतम्=अक्षक्रीडाम्, रमय=खेलय ।

चेटी—(वसन्तसेनामुपसृत्य=समीपमागत्य) आर्ये !=मान्ये ! सभिकद्यूतकरौ=उभौ तौ, परितुष्टौ=प्रसन्नौ भूत्वा, गतौ=ययौ ।

वसन्तसेना—तत्=तस्मात्, गच्छतु=यातु, अद्य=अधुना, बन्धुजनः=सम्बन्धिसमूहः, समाश्वसितुम्=निरुद्वेगं भवितुम् ।

संवाहकः—आर्ये !=मान्ये ! यदि=चेत्, एवम्=इत्थम्, तर्हि, इयम्=संवाहनरूपा, कला=विशिष्टविद्या, परिजनस्य=सेवकस्य वा सेविकाजनस्य, हस्तगता=अधीना, क्रियताम्=विधीयताम्, अर्थात् मां सेवकेन प्रतिनियोजनं कुरु ।

वसन्तसेना—आर्य !=हे मान्य ! यस्य=चारुदत्तस्य, कारणात्=हेतोः, इयम्=

माथुर—(बड़ी खुशी के साथ लेकर) अरे, उस कुलीन से कह देना 'तुम्हारी शर्त पूरी हो गई' आओ फिर हम लोग जुआ खेलें । (दोनों चले जाते हैं ।)

चेटी—(वसन्तसेना के पास जाकर) आर्ये, वे दोनों खुश होकर चले गए ।

वसन्तसेना—अच्छा हुआ वे चले गये । अब आप भी जाकर अपने आत्मीयों को आश्वस्त करें ।

संवाहक—आर्ये, अगर ऐसी बात है तो यह कला अपनी सेविका को हस्तगत करा दें ।

अज्जेण सुस्सूसिद-पुरुव्वो सुस्सूसिदव्वो। [आर्य ! यस्य कारणादियं कला शिक्ष्यते, स एव आर्येण शुश्रूषितपूर्वः शुश्रूषितव्यः।]

संवाहकः—(स्वगतम्) अज्जआए णिउणं पच्छादिट्ठो म्हि। कधं पच्चुवकलिश्शं ? (प्रकाशम्) अज्जए ! अहं एदिणा जूदिअलावमाणेण शक्कशमणके हुविश्शं। ता शंवाहके जूदिअले शक्कशमणके शंवुत्तेति शुमलिदव्वा अज्जआए एदे अक्खलु [आर्यया निपुणं प्रत्यादिष्टोऽस्मि। कथं प्रत्युपकरिष्ये ? आर्ये ! अहमेतेन द्यूतकरापमानेन शाक्यश्रमणको भविष्यामि। तत् संवाहको द्यूतकरः शाक्यश्रमणकः संवृत इति स्मर्त्तव्यानि आर्यया एतानि अक्षराणि।]

वसन्तसेना—अज्ज ! अलं साहसेण। [आर्य ! अलं साहसेन।]

संवाहकः—अज्जए ! कले णिच्चए। (इति परिक्रम्य।) [आर्ये ! कृतो निश्चयः।]

जूदेण तं कदं मे जं वीहत्थं जणश्श सव्वश्श।
एण्हिं पाअडशीशे णलिन्दमग्गेण विहलिश्शं॥ १७॥

एषा शरीरसेवानुरूपा, कला=विद्या, शिक्ष्यते=शिक्षिता, स एव=चारुदत्त एव, आर्येण=त्वया, शुश्रूषितपूर्वः=सेवितपूर्वः, शुश्रूषितव्यः=सेवितव्यः।

संवाहकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्।) आर्यया=मान्यया, निपुणम्=सकौशलम्, प्रत्यादिष्टः=प्रत्याख्यातः, अस्वीकृत इत्यर्थः, अस्मि=भवामि। कथम्=केन प्रकारेण, प्रत्युपकरिष्ये=प्रतिदानं करिष्ये। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्।) आर्ये !=मान्ये ! अहम्=संवाहकः, एतेन=अनेन, द्यूतकरापमानेन=कितवावमानेन, शाक्यश्रमणकः=बौद्धभिक्षुः, भविष्यामि, तत्=तस्मात्, आर्यया=मान्यया वसन्तसेनया, एतानि=इमानि, अक्षराणि=वर्णानि, स्मर्त्तव्यानि=ध्यातव्यानि यत्, संवाहकः=एतदाख्यः पुरुषः, द्यूतकरः=अक्षदेविन्, शाक्यश्रमणकः=बौद्धभिक्षुकः, संवृत्तः=सञ्जात इति।

वसन्तसेना—आर्य !=हे श्लाघ्य ! अलम्=व्यर्थम्, साहसेन=हठात् संन्यासग्रहणेन।

संवाहकः—आर्ये !=समादरणीये ! कृतः=विहितः, निश्चयः=दृढसङ्कल्पः।

अन्वयः—द्यूतेन, मे, तत्कृतम्, यत्, सर्वस्य, जनस्य, विहस्तम्, इदानीम्, प्रकटशीर्षः, नरेन्द्रमार्गेण, विहरिष्यामि।

वसन्तसेना—आर्य, आपने यह विद्या जिसके कारण सीखी है और इस कला से आपने जिसकी सेवा की है, उन्हीं की सेवा आपको फिर करनी चाहिए।

संवाहक—(अपने आप) आर्या ने बड़ी चतुराई से मेरा प्रस्ताव ठुकरा दिया, तो फिर मैं इनका प्रत्युपकार कैसे करूँ ? (प्रकट) आर्ये, मैं निश्चय ही इन जुआड़ियों के अपमान से बौद्ध भिक्षु बन जाऊँगा। आप केवल इन बातों को याद रखेंगी—"जुआड़ी संवाहक बौद्ध-भिक्षु बन गया।"

वसन्तसेना—आर्य, भला इस दुःसाहस से क्या लाभ ?

संवाहक—आर्ये, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। (घूमकर)

[द्यूतेन तत् कृतं मे यद्विहस्तं जनस्य सर्वस्य ।
इदानीं प्रकटशीर्षो नरेन्द्रमार्गेण विहरिष्यामि ॥]

(नेपथ्ये कलकलः ।)

संवाहकः—(आकर्ण्य) अले ! किं ण्णेदं ? (आकाशे) किं भणाध ? 'एशे क्खु वसन्तशेणआए खुंटमोडके णाम दुट्टहत्थी विअलेदि'त्ति । अहो, अज्जआए गंधगअं पेक्खिश्शं गदुअ । अहवा किं मम एदिणा । जधावविशिदं अणुचिट्ठिश्शं । (इति निष्क्रान्तः ।) [अरे ! किं न्विदम् ? किं भणत ? एष खलु वसन्तसेनायाः खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती विकलयतीति । अहो ! आर्याया गन्धगजं प्रेक्षिष्ये गत्वा । अथवा, किं मम एतेन, यथाव्यवसितमनुष्ठास्यामि ।]

(ततः प्रविशति अपटीक्षेपेण विकटोज्ज्वलवेषः कर्णपूरकः ।)

द्यूतेनेति । द्यूतेन=पणेन, मे=मम, तत्=पूर्वोक्तदुर्गतिम्, कृतम्=विहितम्, तत्=पूर्वोक्तव्याकुलत्वम्, सर्वस्य=निखिलस्य, जनस्य=लोकस्य, सम्मुखे इति शेषः, विहस्तम्=पराभूतम्, इदानीम्=दातव्यप्रदत्ते सति, प्रकटम्=उन्नमितम्, परिव्राजकत्वेनाकुतोभयत्वात्, शीर्षम्=शिरः यस्यासौ, नरेन्द्रमार्गेण=राजकीयपथा, विहरिष्यामि=भ्रमिष्यामि, ऋणदेयाभावे राजमार्गेऽपि निर्भयः सन् विचरिष्यामीति भावः ।

(नेपथ्ये=परिधानकक्षे, कलकलः=कोलाहलः)

संवाहकः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा) इदम्=एतत्, किन्नु=इति प्रश्ने जिज्ञासायाम्, (आकाशे=निरालम्बे) रङ्गभूमौ द्वितीयपात्राभावेऽपि—

'किं ब्रवीष्येवमित्यादि विनापात्रं ब्रवीति यत् ।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥'

किं भणत=किं भणसि, खलु=निश्चयेन, वसन्तसेनायाः=आर्यायाः, खुण्टमोडकः=बन्धनस्तम्भभञ्जकः, दुष्टहस्ती=मत्तगजः, विकलयति=व्यथयतीति । अहो=इत्याश्चर्ये, आर्यायाः=वसन्तसेनायाः, गन्धगजम्=मदस्राविहस्तिनम्, प्रेक्षिष्ये=अवलोकयिष्यामि, अथवा=वा, एतेन=अवलोकनेन, मया=संवाहकेन, किम्=न किमपीत्यर्थः, यथाव्यवसितम्=पूर्वनिश्चयानुसारम्, अनुष्ठाष्यामि=करिष्यामीति । (इति निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।)

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति अपटीक्षेपेण=जवनिकापातं विनैव,
विकटोज्ज्वलवेषः कर्णपूरकः ।)

जुआ के कारण ही मैं लोगों के सामने अपमानित हुआ । अब ऋणमुक्त होकर माथा मुँडाकर, निर्भीक भाव से राजपथ पर घूमूँगा ॥ १७ ॥

(नेपथ्य में कोलाहल)

संवाहक—(सुनकर) अरे यह क्या है ? (आकाश की ओर देखकर) क्या कहा ? वसन्तसेना का मदमत्त हाथी खूँटातोड़ लोगों को रौंद रहा है । अरे, जरा चलकर मान्या वसन्तसेना के इस मतवाले हाथी को देख लूँ । अथवा इससे मुझे क्या प्रयोजन ? मैं तो अपने संकल्प को पूरा करूँगा । (चला जाता है ।)

(इसके बाद बिना पर्दा हटाये भयंकर दुष्ट कर्णपूरक का प्रवेश)

कर्णपूरकः—कहिं कहिं ? अज्जआ । [कस्मिन् ? कस्मिन् आर्या ?]

चेटी—दुम्मणुस्स ! किं ते उव्वेअकालणं ? जं अग्गदो वट्टिदं अज्जअं ण पेक्खसि । [दुर्मनुष्य ! किं ते उद्वेगकारणम् ? यदग्रतोऽवस्थितामार्यां न प्रेक्षसे ।]

कर्णपूरकः—(दृष्ट्वा) अज्जए ! वन्दामि । [आर्ये ! वन्दे ।]

वसन्तसेना—कण्णऊरअ ! परितुट्ठमुहो लक्खीअदि । ता किं ण्णेदं ? [कर्णपूरक ! परितुष्टमुखो लक्ष्यसे । तत् किं न्विदम् ?]

कर्णपूरकः—(सविस्मयम्) अज्जए ! वञ्चिदासि, जाए अज्ज कण्णऊरअस्स परिक्कमो ण दिट्ठो । [आर्ये ! वञ्चितासि, यया अद्य कर्णपूरकस्य पराक्रमो न दृष्टः ।]

वसन्तसेना—कण्णऊरअ ! किं किं ? [कर्णपूरक ! किं किम् ?]

कर्णपूरकः—सुणादु अज्जआ । जो सो अज्जआए खुण्टमोडओ णाम दुट्ठ-

कर्णपूरकः—आर्या=मान्या वसन्तसेना, कस्मिन् कस्मिन्=कुत्राऽस्तीति भावः ।

चेटी—दुर्मनुष्य !=हे दुष्टमानव ! ते=तव, उद्वेगकारणम्=क्षोभस्य हेतुः, यत्=यस्मात्, अग्रतः=सम्मुखे, अवस्थिताम्=उपस्थिताम्, आर्याम्=वसन्तसेनाम्, न=नहि, प्रेक्षसे=अवलोकयसि ।

कर्णपूरकः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) आर्ये !=समादरणीये ! वन्दे=त्वामभिवादये ।

वसन्तसेना—कर्णपूरक=! मधुराकर्षकशब्देन श्रोतुः कर्णौ पूरयतीति कर्णपूरकः तत् सम्बुद्धौ, परितुष्टमुखः=प्रसन्नवदनः, लक्ष्यसे=दृष्यसे, तत्तु=तस्मात्, किमिदम्=किं कारणमस्तीति भावः ।

कर्णपूरकः—आर्ये !=मान्ये ! वञ्चितासि=प्रतारितासि, यया=येन कारणेन, अद्य=अधुना, कर्णपूरकस्य=निजसेवकस्य, पराक्रमः=विक्रमः, शौर्यम् वा, न दृष्टः=नावलोकितः ।

वसन्तसेना—कर्णपूरक ! =हे सेवक ! किं किम्=किमस्ति तद्विक्रमः ?

कर्णपूरकः—श्रृणोतु=आकर्णयतु, आर्या=मान्या वसन्तसेना, यः=यत्, सः=

कर्णपूरक—कहाँ गईं आर्या वसन्तसेना, कहाँ गईं ?

चेटी—अरे दुष्ट मानव, इस तरह तुम्हारी घबड़ाहट का क्या कारण है ? सामने ही आर्या बैठी हैं, पर तुम्हें दीखतीं क्यों नहीं हैं ?

कर्णपूरक—(सामने देखकर) समादरणीये, आपको प्रणाम करता हूँ ।

वसन्तसेना—अरे, कर्णपूरक, तुम तो आज बड़े प्रसन्न नजर आ रहे हो, क्या बात है ।

कर्णपूरक—(आश्चर्य प्रकट करते हुए) आर्या, वंचित रह गईं । आपने मेरा पराक्रम आज देखा ही नहीं ।

वसन्तसेना—कर्णपूरक, साफ-साफ बतलाते क्यों नहीं, क्या बात है ?

कर्णपूरक—तो सुनें आर्या. वह जो आपका खुण्डमोडक नाम का बदमाश हाथी

हत्थी अलाणत्थम्भं भंजिअ, महमेत्थं वावादिअ महंतं संक्खोहं करंतो राअमग्गं ओदिण्णो। तदो एत्थंतरे उग्घुट्टं जणेण—[शृणोतु आर्या ! यः स आर्यायाः खुण्टमोडको नाम दुष्टहस्ती, स आलानस्तम्भं भङ्क्त्वा, महामात्रं व्यापाद्य महान्तं सङ्क्षोभं कुर्वन्, राजमार्गमवतीर्णः। ततः अत्रान्तरे उद्घुष्टं जनेन—]

अवणेध बालअजणं तुरिदं आरुहध वुक्ख-पासादं।
किं ण हु पेक्खध पुरदो दुट्टो हत्थी इदो एदि॥ २८॥
[अपनयत बालकजनं त्वरितमारोहत वृक्षप्रासादम्।
किं नु खलु प्रेक्षध्वं पुरतो दुष्टो हस्ती इत एति॥]

अवि अ। [अपि च।]

विचलइ णेउरजुअलं छिज्जंति अ मेहला मणिक्खइआ।
वलआ अ सुंदरदरा रअणंकुरजाल-पडिबद्धा॥ १९॥
[विचलति नूपुरयुगलं छिद्यन्ते च मेखला मणिखचिताः।
वलयाश्च सुन्दरतरा रत्नाङ्कुरजालप्रतिबद्धाः॥]

असौ, आर्यायाः=मान्या वसन्तसेनायाः, खुण्टमोडकः=एतदाख्यः दुष्टहस्ती=उच्छृङ्खलगजः, आलानस्तम्भम्=बन्धनस्तम्भम् 'आलानं बन्धनस्तम्भोऽथ शृङ्खलः' इत्यमरः। भङ्क्त्वा=उत्पाटय, महामात्रम्=प्रधानहस्तिपकम् 'महामात्रः समृद्धे चामात्ये हस्तिपकाधिपे' इति मेदिनी। महान्तम्=अत्युग्रं सङ्क्षोभम्=उपद्रवम्, कुर्वन्=विदधन्, राजमार्गमवतीर्णः=नरेन्द्रमार्गे समागतः, ततः=तत्पश्चात्, अत्रान्तरे=राजमार्गमवतीर्णान्तरे, जनेन=जनसमूहेन, उद्घुष्टम्=तारस्वरेण कोलाहलं कृतम्।

अन्वयः—बालजनम्, अपनयत, वृक्षप्रासादम्, त्वरितम्, आरोहत, किम्, न, खलु, प्रेक्षध्वम्, पुरतः, दुष्टः, हस्ती, इतः, एति।

अपनयतेति। बालकजनम्=शिशुसमूहम्, अपनयत=दूरमपसारयत, वृक्षश्च प्रासादश्च वृक्षप्रासादम्=तरुशाखां गृहाग्रञ्च, त्वरितम्=यथाशीघ्रम्, आरोहत=अवरोहणं कुरुत, किम् न खलु प्रेक्षध्वम्=पश्यथ यूयमिति भावः। पुरतः=अग्रे, दुष्टः=दुर्वृत्तः, हस्ती=गजः, इतः=अस्यामेव दिशि धावतः, एति=समागच्छति।

अन्वयः—नूपुरयुगलम्, विचलति, मणिखचिताः, मेखलाः, रत्नाङ्कुरजालप्रतिबद्धाः, सुन्दरतराः, वलयाः, च, छिद्यन्ते।

विचलतीति। उन्मत्तगजभयात् पलायमानानां नारीणां गमनवेगं वर्णयति—नूपुरयुगलम्=चरणमञ्जीरद्वयम्, विचलति=चरणेभ्यः भ्रंशते, मणिखचिताः=

है न, आज उसने कमाल कर दिया। खूंटे तोड़कर, महावत को मारकर, घनघोर उपद्रव मचाते हुए राजपथ पर उतर आया। उसे देखकर लोग चिल्लाने लगे—

बच्चों को रास्ते से हटा लो, जल्दी ही पेड़ों पर चढ़ जाओ, मकान की छत पर भागो। क्या देख नहीं रहे हो कि बदमाश हाथी सामने से गुजर रहा है?॥ १८॥

और भी—(फिर तो उस हाथी के डर से भागती हुई औरतों के) पावजे के

तदो तेण दुट्ठहत्थिणा कल-चलण-रदणेहिं फुल्ल-णलिणिं विअ णअरिं उज्जइणिं अवगाहमाणेण समासादिदो परिव्वाजओ। तं अ परिभट्ट-दण्ड-कुण्डिआ-भाअणं सीअरेहिं सिंचिअ दंतंतरे क्खित्तं पेक्खिअ पुणोवि उग्घुट्टं जणेण–'हा परिव्वाजओ वावादीअदि'त्ति। [ततस्तेनदुष्टहस्तिना करचरणरदनैः फुल्लनलिनीमिव नगरीमुज्जयिनीमवगाहमानेन समासादितः परिव्राजकः। तच्च परिभ्रष्टदण्ड-कुण्डिकाभाजनं शीकरैः सिक्त्वा दन्तान्तरे क्षिप्तं प्रेक्ष्य, पुनरपि उद्घुष्टं जनेन—'हा परिव्राजको व्यापाद्यते' इति।]

वसन्तसेना—(ससम्भ्रमम्) अहो पमादो ! अहो पमादो ! [अहो प्रमादः ! अहो प्रमादः।]

कर्णपूरकः—अलं संभमेण। सुणादु दाव अज्जआ। तदो विच्छिण्णविसं-

रत्नजटिताः, मेखलाः=रशनाः, रत्नाङ्कुराणाम्=लघुरत्नानाम्, जालैः=समूहैः, प्रतिबद्धाः=अनुबद्धाः, सुन्दरतराः=अतिशयरमणीयाः, वलयाः=कटकाः, च, छिद्यन्ते =विशीर्यन्ते मदोन्मत्तगजभयात् पलायनपराणां नारीणामङ्गेभ्योऽलङ्काराः विशीर्यन्ते इति भावः ॥ १९ ॥

ततः=तत्पश्चात्, तेन=मदोन्मत्तेन, दुष्टहस्तिना=दुर्विनीतगजेन, करचरणरदनैः=शुण्डादण्डपादाग्रदन्तैः, फुल्लनलिनीमिव=विकसितकमलयुत्सरसीमिव, नगरीमुज्जयिनीम्=अवन्तिकाराजधानीम्, अवगाहमानेन=विलोडयता, समासादितः= सम्यक्रूपेण गृहीतः, परिव्राजकः=बौद्धभिक्षुः, तच्च=सोऽपि, परिभ्रष्टे=गजभयात् हस्तात्परिच्युते, दण्ड-कुण्डिकाभाजनम्=पलाशदण्डकमण्डलुञ्च, शीकरैः=जलकणैः, सिक्ताः=सिञ्चिताः, दन्तान्तरे=उभयोर्दन्तयोर्मध्ये, क्षिप्तम्=प्राप्तम्, पुनरपि=भूयोऽपि जनेन=जनसमूहेन, उद्घुष्टम्=तारस्वरेण कथितम्, हा=इति खेदे, परिव्राजकः= अचिरबौद्धभिक्षुकः, व्यापाद्यते=मार्यते।

वसन्तसेना—(ससम्भ्रमम्=सोद्वेगम्) अहो=इति विस्मये, प्रमादः=अनवधानता।

कर्णपूरकः—अलम्=व्यर्थम्, ससम्भ्रमेण=उद्वेगेन, शृणोतु=आकर्णयतु, ताव-

---

जोड़े खिसकने लगे, मणिजटित करधनियाँ टूटकर बिखरने लगीं, पारस्परिक रेलमपेल में छोटे-छोटे रत्नजटित हाथ के कंगन टूट-टूटकर गिरने लगे ॥ १९ ॥

इसके बाद सूँड, पैर और दाँतों से विकसित कमल वाली सरसी की तरह इस उज्जयिनी को रौंदते हुए, एक संन्यासी को उसने पकड़ लिया। नवसंन्यासग्रहीत उस भिखारी के हाथ से डण्डे और कमण्डलु जमीन पर गिर गये। जलबूँदों से उस संन्यासी को सींचकर उसने उसे अपने दाँतों के बीच दबा लिया। संन्यासी को हाथी के मुँह में फँसा देखकर फिर लोगों ने चिल्लाना शुरू किया—"हाय बेचारा संन्यासी मारा जा रहा है।"

वसन्तसेना—(घबड़ाकर) हाय ! अनर्थ हुआ।

कर्णपूरक—आप तो बेकार ही घबड़ाती हैं। पहले सुन तो लें। तब टूटी-फूटी

ठुल-सिङ्खला-कलावअं उव्वहंतं दंतंतरपग्गहिदं परिव्वाजअं उव्वहंतं तं पेक्खिअ, कण्णऊरएण मए णहि णहि अज्जआए अण्ण-पिंडोवपुट्टेण दासेण वामचलणेण जूदखेलअं लग्घुसिअ, उग्घुसिअ, तुरिदं आवणादो लोहदण्डं गेण्हिअ आआरिदो सो दुट्टहत्थी। [अलं सम्भ्रमेण। शृणोतु तावदार्या। ततो विच्छिन्नविसंष्ठुल-शृङ्खलाकलापम् उद्वहन्तं दन्तान्तरपरिगृहीतं परिव्राजकमुद्वहन्तं तं प्रेक्ष्य, कर्णपूरकेण मया, नहि नहि, आर्याया अन्नपिण्डोपपुष्टेन दासेन, वामचरणेन द्यूत-खेलकम् उद्घुष्योद्घुष्य त्वरितमापणात् लौहदण्डं गृहीत्वा, आकारितः स दुष्टहस्ती।]

वसन्तसेना—तदो तदो ? [ततस्ततः ?]

कर्णपूरकः—

आहणिऊण सरोसं तं हत्थिं विंज-सैल-सिहराभं।
मोआविओ मए सो दंतंतरसंठिओ परिव्वाजओ॥ २०॥

[आहत्य सरोषं तं हस्तिनं विन्ध्यशैल-शिखराभम्।
मोचितो मया स दन्तान्तरसंस्थितः परिव्राजकः॥]

दित्यवधारणे, ततः=तत्पश्चात्, विच्छिन्नः=त्रुटितः अतएव विसंष्ठुलः=इतस्ततः स्खलितः, शृङ्खलानाम्=लोहसूत्राणाम्, कलापः=समूहः, तम् उद्वहन्तम्=धारयन्तम्, दन्तान्तरम्=उभयोर्दन्तयोर्मध्ये, परिगृहीतम्=धृतम्, परिव्राजकम्=बौद्धभिक्षुम्, उद्वहन्तम्=धारयन्तम्, तम्=गजम्, प्रेक्ष्य=विलोक्य, मया=कर्णपूरकेन, आर्यायाः=वसन्तसेनायाः, अन्नपिण्डेन=ओदनकवलेन, उपपुष्टेन=परिपालितेन, दासेन=सेवकेन, वामचरणेन=वामभागगमनेन द्यूतखेलकम्=भूतपूर्वमाक्षिकम्, उद्घुष्य=तारस्वरेण सम्बोध्य, त्वरितम्=यथाशीघ्रम्, आपणात्=निगमात्, लौहदण्डम्=लौहलगुडम्, गृहीत्वा=नीत्वा, सः=असौ, दुष्टहस्ती=दुर्विनीतगजः; आकारितः=युद्धार्थमाहूतः।

वसन्तसेना—ततस्ततः=तत्पश्चात् किमभवत्।

अन्वयः–विन्ध्यशैलशिखराभम्, तम्, हस्तिनम्, सरोषम्, आहत्य, मया, दन्तान्तर-संस्थितः, स, परिव्राजकः, मोचितः।

आहत्येति। विन्ध्यशैलस्य=विन्ध्याचलस्य, शिखरस्य=शृङ्गस्य, आभा=कान्ति-

---

अस्तव्यस्त लोहे की जंजीरों को अपने में लपेटे हुए तथा उस गरीब संन्यासी को अपने दांतों के बीच उठाये हुए उस मदोन्मत्त हाथी को देखा। देखते ही इस कर्णपूरक ने, नहीं नहीं, आपके टुकड़े पर पले इस दास ने उस संन्यासी को बार-बार ढाढ़स बँधाया। फिर दौड़ कर बाजार से एक लोहे का डंडा उठा लाया। बायीं ओर पैंतरा बदल कर फिर इस सेवक ने उस दुष्ट हाथी को ललकार दिया।

वसन्तसेना—उससे बाद, फिर उसके बाद ?

कर्णपूरक—फिर क्या ? विन्ध्यपर्वत की तरह उस विशालकाय हाथी को क्रुद्ध होकर, डंडे से पीटकर उसके दांतों के बीच फँसे उस संन्यासी को छुड़ा लिया॥२०॥

वसन्तसेना—सुट्‌ठु दे किदं । तदो तदो ? [सुष्ठु त्वया कृतम् । ततस्ततः ?]

कर्णपूरकः—तदो अज्जए ! 'साहु रे कण्णऊरअ ! साहु' त्ति एत्तिअमेत्तं भणंती, विसम-भरक्कंता विअ णावा एक्कदो पल्हत्था सअला उज्जइणी आसि । तदो अज्जए ! एक्केण सुण्णाइं आहरणट्ठाणाइं परामुसिअ, उद्धं पेक्खिअ, दीहं णीससिअ, अअं पावारओ मम उवरि क्खित्तो । [तत आर्ये ! 'साधु रे कर्णपूरक ! साधु' इत्येतावन्मात्रं भणन्ती विषमभाराक्रान्ता इव नौः एकतः सकला उज्जयिनी आसीत् । तत आर्ये ! एकेन शून्यानि आभरणस्थानानि परामृश्य, ऊर्द्ध्वं प्रेक्ष्य, दीर्घं निःश्वस्य, अयं प्रावारकः ममोपरि क्षिप्तः ।]

वसन्तसेना—कण्णऊरअ ! जाणीहि दाव, किं एसो जादीकुसुमवासिदो पावारओ ण वेत्ति । [कर्णपूरक ! जानीहि तावत्, किमेष जातीकुसुमवासितः प्रावारको न वेति ।]

रिव कान्तिः यस्य तम्=मदोन्मत्तम्, हस्तिनम्=गजम्, सरोषम्=सक्रोधम्, आहत्य=लौहदण्डेन प्रहारं कृत्वा, मया=कर्णपूरकेण, दन्तान्तरे=उभयोर्दन्तयोर्मध्ये, संस्थितः=गृहीतः, सः=पूर्वनिर्दिष्टः, परिव्राजकः=संन्यासी, मोचितः=मुक्तः कृतः ॥ २० ॥

वसन्तसेना—सुष्ठु=साधु, त्वया=कर्णपूरकेण, कृतम्=विहितम् । ततः=तत्पश्चात् ?

कर्णपूरकः—विषमभरेण=असन्तुलितभारेण, एकतः=एकस्यां दिशि, पर्यस्ता=आनता । एकेन=केनचिदज्ञातजनेन, चारुदत्तेनेति भावः । शून्यानि=रिक्तानि, आभरणस्थानानि=अलङ्कारस्थानानि, परामृश्य=स्पृष्ट्वा, पारितोषिकरूपेणालङ्करणं दातुमभ्यासवशात् स्पर्शङ्कृत्वा, ऊर्ध्वम्=आकाशे, प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा, ईश्वरं प्रति निजाकिञ्चनताबोधयितुं दृष्ट्वा, दीर्घम्=गम्भीरम्, निःश्वस्य=उच्छ्वासं नीत्वा, निजदारिद्र्यात् पारितोषिकरूपेण किमपि दातुम् असामर्थ्यात्, अयम्=मम हस्ते विद्यमानः, प्रावारकः=उत्तरीयवस्त्रम्, क्षिप्तः=मामुद्दिश्य प्रक्षिप्तः ।

वसन्तसेना—जातीकुसुमवासितः=चम्पकपुष्पसुवासितः, प्रावारकः=उत्तरीयः, चारुदत्तः सर्वदैव धारयति, अयं प्रावारकस्तस्यास्ति न वेति ज्ञानार्थमियमुक्तिः वसन्तसेनायाः ।

वसन्तसेना—तुमने बड़ा अच्छा किया । उसके बाद ?

कर्णपूरक—आर्ये, इसके बाद—'वाह कर्णपूरक तुमने कमाल किया, खूब' केवल यही कहती हुई—भारी बोझ से लदी नाव की तरह सारी उज्जयिनी की जनता मुझे घेरकर एक ओर इकट्ठी हो गई । उन्हीं में से किसी एक अपरिचित ने जेवर से खाली अपने अंगों को छूकर, क्षणभर के लिए आकाश की ओर देखकर, एक लम्बी उसाँसें ली । पता नहीं उसने कुछ सोचकर यह दुपट्टा मेरी ओर उछाल दिया ।

वसन्तसेना—कर्णपूरक, देख तो, इस दुपट्टे से चमेली फूल की सुगन्ध आती है या नहीं ?

कर्णपूरकः—अज्जए ! मदगन्धेण सुट्ठु तं गंधं ण जाणामि । [आर्ये ! मदगन्धेन सुष्ठु तं गन्धं न जानामि ।]

वसन्तसेना—णामं पि दाव पेक्ख । [नामापि तावत् प्रेक्षस्व ।]

कर्णपूरकः—इमं णामं, अज्जआ एव्व वाएदु । (इति प्रावारकमुपनयति ।) [इदं नाम, आर्येव वाचयतु ।]

वसन्तसेना—अज्जचारुदत्तस्स । (इति वाचयित्वा सस्पृहं गृहीत्वा प्रावृणोति ।) [आर्यचारुदत्तस्य ।]

चेटी—कण्णऊरअ ! सोहइ अज्जआए पावारओ । [कर्णपूरक ! शोभते आर्यायाः प्रावारकः ।]

कर्णपूरकः—आं सोहइ, अज्जआए पावारओ । [आम्, शोभते आर्यायाः प्रावारकः ।]

वसन्तसेना—कण्णऊरअ ! इदं दे पारितोसिअं । (इत्याभरणं प्रयच्छति ।) [कर्णपूरक ! इदं ते पारितोषिकम् ।]

कर्णपूरकः—आर्ये !=मान्ये ! मदस्य=मदवारिणः, गन्धेन=सुगन्धेन, सुष्ठु=साधुतया, तं गन्धम्=जातीपुष्पसुगन्धम्, ज्ञातुमसमर्थोऽस्मि ।

वसन्तसेना—नामापि=अस्योपरि लिखितं नाम अपि, प्रेक्षस्व=अवलोकय ।

कर्णपूरकः—इदम्=एतत्, नाम=अभिधानम्, आर्येव=स्वयमेव, वाचयतु=वाचनं कुरु। (इति=एवम् उक्त्वा, प्रावारकम्=उत्तरीयम्, उपनयति=समीपमानयति ।)

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्तस्य=अयं प्रावारक आर्यचारुदत्तस्यैवास्ति । (इति वाचयित्वा=पठित्वा, सस्पृहम्=तद्गतचित्ततया साभिलाषम्, गृहीत्वा=नीत्वा, प्रावृणोति=देहोपरि स्थापयति ।)

चेटी—कर्णपूरक !=हे सेवक ! शोभते=राजते, आर्यायाः=वसन्तसेनायाः, प्रावारकः=उत्तरीयवस्त्रमिदम् ।

कर्णपूरकः—आम्=आमिति अङ्गीकरोति, पूर्वकथनमिति ।

कर्णपूरक—मान्ये, मेरी देह में तो मदजल लगे रहने के कारण चमेली की महक ठीक से समझ नहीं पा रहा हूँ ।

वसन्तसेना—अच्छा तो इस पर लिखा नाम ही पढ़ो ।

कर्णपूरक—इसे आप ही पढ़िए न । (यह कहकर दुपट्टा दे देता है ।)

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त का ही तो नाम है (यह पढ़कर उत्साहपूर्वक ओढ़ लेती है ।)

चेटी—कर्णपूरक, आर्या की देह पर दुपट्टा बड़ा फबता है ।

कर्णपूरक—हाँ, ठीक कहती हो, आर्या की देह पर यह दुपट्टा बड़ा अच्छा लग रहा है ।

वसन्तसेना-कर्णपूरक, तो यह रहा तुम्हारा ईनाम (ऐसा कहकर जेवर दे देती है ।)

कर्णपूरकः—(शिरसा गृहीत्वा, प्रणम्य च) संपदं सुट्ठु सोहइ अज्जआए पावारओ। [**साम्प्रतं सुष्ठु शोभते आर्यायाः प्रावारकः।**]

वसन्तसेना—कण्णऊरअ ! एदाए वेलाए कहिं अज्जचारुदत्तो ? [**कर्णपूरक ! एतस्यां वेलायां कस्मिन्नार्यचारुदत्तः।**]

कर्णपूरकः—एदेण ज्जेव मग्गेण पवुत्तो गंतुं गेहं। [**एतेनैव मार्गेण प्रवृत्तो गन्तुं गेहम्।**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! उवरिदणं अलिंदअं आरुहिअ अज्जचारुदत्तं पेक्खेम्ह। [**हञ्जे ! उपरितनमलिन्दकमारुह्य आर्यचारुदत्तं प्रेक्षामहे।**]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

इति द्यूतकरसंवाहको नाम द्वितीयोऽङ्कः।

वसन्तसेना—इदम्=एतत्, ते=तव, पारितोषिकम्=पुरस्कारम्। (इति=एवमुक्त्वा, आभरणम्=आभूषणं, प्रयच्छति।)

कर्णपूरकः—(शिरसा गृहीत्वा=मस्तकमारोप्य, श्रेष्ठोपहृतवस्तुनस्तथा धारणस्य शिष्टाचारादिति।) साम्प्रतम्=अधुना, सुष्ठु=अधिकतरम्, शोभते।

वसन्तसेना—एतस्यां वेलायाम्=अस्मिन् काले, कस्मिन्=कुत्र, आर्यचारुदत्तः गतः?

कर्णपूरकः—एतेनैव=अनेनैव, मार्गेण=पथा, गेहम्=सदनम्, गन्तुम्=यातुम्, प्रवृत्तः=उद्यतः, आसीत्।

वसन्तसेना—हञ्जे !=सेविके ! उपरितनम्=उपरिभागम्, अलिन्दकम्=प्रघाणम्, 'प्रघाणप्रघणालिन्दाबहिर्द्वारप्रकोष्ठके' इत्यमरः। आरुह्य=आरोहणं कृत्वा, वयम् आर्यचारुदत्तम्, प्रेक्षामहे=अवलोकयामः।

(इति=एवमुक्तौ सत्याम्. सर्वे=भरताः, निष्क्रान्ताः=रङ्गभूमितः प्रस्थिताः।)

द्यूतकरस्य संवाहकस्य चरित्रस्य प्रधानतया कथनात् 'द्यूतकरसंवाहक'

इतिं नामधेयः द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः।

(इति द्वितीयोऽङ्कः)

कर्णपूरक—(**उसे माथे से लगाकर एवं वसन्तसेना को प्रणाम कर**) अब आपको यह दुपट्टा बड़ा अच्छा लग रहा है।

वसन्तसेना—कर्णपूरक, यह बतलाओ, इस समय आर्य चारुदत्त कहाँ होंगे ?

कर्णपूरक—मालकिन, वे तो इसी राह से घर की ओर जा रहे थे।

वसन्तसेना—चेटी आओ, अटारी पर चढ़कर हमलोग आर्य चारुदत्त को देखें।

(**सब निकल जाते हैं।**)

द्वितीय अंक समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटः)

चेटः—

शुजणे क्खु भिच्चाणुकम्पके शामिए णिद्धके वि शोहदे ।
पिशुणे उण दव्वगव्विदे दुक्कले क्खु पलिणामदालुणे ॥ १ ॥

[सुजनः खलु भृत्यानुकम्पकः स्वामी निर्द्धनकोऽपि शोभते ।
पिशुनः पुनर्द्रव्यगर्वितो दुष्करः खलु परिणामदारुणः ॥]

अवि अ [अपि च]—

शश-पलक्क-वलद्दे ण शक्कि वालिदुं
अण्ण-कलत्त-पशत्ते ण शक्कि वालिदुं
जूद-पशत्त-मणूशे ण शक्कि वालिदुं
जे वि शहाविअदोशे ण शक्कि वालिदुं ॥ २ ॥

(अथ पूर्वोत्तरवस्तुवृत्तसङ्घटनाय प्रतिमुखसन्धिरचनामुखेन चेटस्य प्रवेशमाह–तत इति।)

अन्वयः—भृत्यानुकम्पकः, सुजनः, स्वामी, निर्धनकः, अपि, खलु, शोभते। पुनः, द्रव्यगर्वितः, पिशुनः, दुष्करः, परिणामदारुणः, खलु।

सुजन इति । भृत्यानाम्=परिचारकानाम्, अनुकम्पकः=दयावान्, सुजनः=सत्पुरुषः, स्वामी=प्रभुः, निर्धनकः=अकिञ्चनः सन् अपि, खलु=निश्चितम्, शोभते= राजते। पुनः=भूयः, द्रव्येण=धनाधिक्येन, गर्वितः=मदोन्मत्तः, पिशुनः=दुर्जनः, 'पिशुनः दुर्जनः खलः' इत्यमरः। दुष्करः=कष्टेन सेवायोग्यः, परिणामे=अन्तकाले, दारुणः=भयङ्करः, खलु=अवश्यम्भवतीति भावः। अस्मिन् श्लोके पूर्वार्द्धेन निर्धनोऽपि भृत्यानुकम्पकः चारुदत्तः निर्दिष्टः, उत्तरार्द्धेन मदोन्मत्तः शकारः कटाक्षितस्तेनाप्रस्तुतालङ्कारः। विषमालङ्कारश्चैकत्र विरुद्धयोः सन्धानात् परस्पराङ्गित्वेन सङ्करः। वैतालीयं वृत्तम्। तल्लक्षणन्तु—

'षड्विषमेऽष्टौ समे कलास्ताश्च समे स्युर्नो निरन्तराः।
न समात्र पराश्रिता कला वैतालीयेऽन्ते रलौ गुरुः ॥'

अस्मिन् अङ्के प्रतिमुखसन्धिः, तद्यथा—

फलप्रधानोपायस्य मुखं सन्धि निवेशिनः।
लक्ष्यालक्ष्य इवोद्भेदो यत्र प्रतिमुखं च तत् ॥

(इसके बाद चेट (वर्द्धमानक) का प्रवेश)

चेट—नौकरों पर दया दृष्टि रखनेवाला निर्धन किन्तु सज्जन मालिक अधिक सुखद होता है, अपेक्षाकृत धनमद में चूर दुष्ट मालिक के। क्योंकि ऐसे दुष्टों की सेवा का परिणाम बड़ा दुःखद होता है ॥ १ ॥

[सस्य-लम्पट-बलीवर्दो न शक्यो वारयितु-
मन्य-कलत्र-प्रसक्तो न शक्यो वारयितुम् ।
द्यूत-प्रसक्तो मनुष्यो न शक्यो वारयितुं
योऽपि स्वाभाविकदोषो न शक्यो वारयितुम् ॥]

कावि वेला अज्जचारुदत्तश्श गंधव्वं शुणिदुं गदश्शं। अदिक्कमदि अद्धलअणी, अज्ज वि ण आअच्छदि। ता जाव वाहिल दुआलशालाए गदुअ शुविश्शं। (इति तथा करोति)। [कापि वेला आर्यं चारुदत्तस्य गान्धर्वं श्रोतुं गतस्य। अतिक्रामति अर्द्धरजनी, अद्यापि नागच्छति। तद्यावत् बहिर्द्वारशालायां गत्वा स्वप्स्यामि।]

(ततः प्रविशति चारुदत्तो विदूषकश्च।)

अन्वयः—सस्यलम्पटबलीवर्दः, वारयितुम्, न शक्यः, अन्यकलत्रप्रसक्तः, वारयितुम् न शक्यः, द्यूतप्रसक्तमनुष्यः, वारयितुम्, न, शक्यः, यः, अपि, स्वाभाविकदोषः, वारयितुम्, न शक्यः।

सस्येति। सस्यलम्पटबलीवर्दः=सस्यभक्षणे लोलुपवृषभः, वारयितुम्=अवरोद्धुम्, न=नहि, शक्यः=सम्भवोऽस्ति। अन्यकलत्रप्रसक्तः=परदारानुरक्तः जनः, वारयितुम्= सर्वथा निवारयितुम्, न शक्यः=अशक्य एव। अनेनैव प्रकारेण द्यूतप्रसक्तमनुष्यः= द्यूतक्रीडासंलग्नजनः, वारयितुम्=प्रतिरोद्धुम्, न शक्यः=असम्भवः, यः=पुरुषः, अपि= चेत्, स्वाभाविकदोषः=प्रकृत्या दूषितः, सोऽपि वारयितुम्=निवारयितुम्, न शक्यः= सर्वथाऽवरोद्धुमसमर्थो भवतीति भावः। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा नामालङ्कारः। शक्वरी-जातिः इति पृथ्वीधरः।

गान्धर्वम्=गन्धर्वाणामिदं गीतम्, श्रोतुम्=आकर्णयितुम्, गतस्य=प्रस्थितस्य, आर्यचारुदत्तस्य कापि=अतिदीर्घतरा, वेला=कालः व्यतीतेति शेषः, अर्द्धरजनी= अर्द्धरात्रिः, अतिक्रामति=व्यतीता भवति, अद्याऽपि=सम्प्रत्यपि, नागच्छति=न समायाति, तत्=तस्मात्, यावदित्यवधारणे, बहिर्द्वारशालायाम्=गोपुरसमीपसदने, गत्वा=चलित्वा, स्वप्स्यामि=शयनं करिष्यामि।

(अथानुरागिणः प्रियतमासक्तस्य चारुदत्तस्य विदूषकेण सह प्रवेशं कविरवतारयति—तत इति।)

और भी—हरी-हरी फसलों में मुँह मारने का लोभी साँड़, दूसरों की औरत से प्रेम करने वाला पुरुष तथा द्यूतक्रीड़ा में आसक्त किसी जुआड़ी को रोकना जैसे असंभव है, उसी प्रकार जिनमें स्वभावगत दोष हैं, उन्हें दुर्व्यसनों से रोकना बिल्कुल ही असम्भव है ॥ २ ॥

गीत सुनने के लिए आर्य चारुदत्त गये हैं। उन्हें कितनी देर हो रही है, आधी रात बीत गई, फिर भी अब तक वे लौटकर नहीं आये। तो फिर, मैं चलूँ और बाहरी बैठक वाली कोठरी में ही सो जाऊँ। (वैसा करता है।)

(इसके बाद विदूषक के साथ चारुदत्त का प्रवेश)

चारुदत्तः—अहो, अहो ! साधु, साधु रेभिलेन गीतम् । वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम् । कुतः—

उत्कण्ठितस्य हृदयानुगुणा वयस्या
सङ्केतके चिरयति प्रवरो विनोदः ।
संस्थापना प्रियतमा विरहातुराणां
रक्तस्य रागपरिवृद्धिकरः प्रमोदः ।। ३ ।।

विदूषकः—भो ! एहि, गेहं गच्छेम्ह । [भोः ! एहि, गेहं गच्छावः ।]

चारुदत्तः—अहो ! सुष्ठु भावरेभिलेन गीतम ।

चारुदत्तः—विस्मयाविष्टरुचिकरार्थमहो इत्यव्ययस्य प्रयोगः, आश्चर्यातिशयेऽत्र द्विरुक्तिः । रेभिलेन = तन्नामकेन गायकेन, साधु = सुष्ठुरूपेण, गीतम् = स्वरालापनं कृतम् । वीणा = वल्लकी, हि = यतः, समुद्रात् = पारावारात्, उत्थितम् = बहिर्भूतम्, न समुद्रोत्थितम् असमुद्रोत्थितम् = पारावारादनिर्गतम्, रत्नम् = माणिक्यम् । कुतः = कस्मात्—

अन्वयः—उत्कण्ठितस्य, हृदयानुगुणा, वयस्या, सङ्केतके, चिरयति, प्रवरः, विनोदः, विरहातुराणाम्, प्रियतमा, संस्थापना, रक्तस्य, रागपरिवृद्धिकरः, प्रमोदः (अस्ति) ।

उत्कण्ठितस्येति । उत्कण्ठितस्य = विरहाकुलजनस्य, हृदयानुगुणा = मनोनुरूपा, वयस्या = प्रियसखीस्वरूपा, सङ्केतके=प्रणयिनि जने दत्तसङ्केते, चिरयति = विलम्बं कुर्वाणे सति, प्रवरः = श्रेष्ठः, विनोदः = मनोरञ्जकव्यापारः, विरहातुराणाम् = विरह-व्याकुलानाम्, प्रियतमा = प्राणप्रिया, रक्तस्य = कामुकजनस्य, रागपरिवृद्धिकरः = प्रीतिसंवर्धकः, प्रमोदः=मनोरञ्जनमस्तीति भावः । अत्रोल्लेखहेतुरलङ्कारयोः संसृष्टिः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।। ३ ।।

विदूषकः—भो ! = हे मित्र ! एहि=समागच्छ, गेहम्=सदनम्, गच्छावः=चलावः ।

चारुदत्तः—अहो = विस्मयसूचकमव्ययम्, सुष्ठु = सम्यक् रूपेण, भावः = विद्वान्, स चासौ रेभिलेन = एतन्नामकेन सङ्गीतकलाविशेषज्ञेन, गीतम् = गानं कृतम् । 'भावो विद्वान्' इत्यमरः ।

चारुदत्त—क्या खूब ! रेभिल ने कितना अच्छा गीत गाया । सचमुच वीणा तो सागर से बिना निकले ही रत्न है । क्योंकि—

विरहाकुल व्यक्ति के लिए तो यह एक मनचाहा मित्र है । संकेतित स्थान पर प्रेमी के पहुँचने पर देर होने में मन-बहलाव का एक अच्छा साधन है । विरह-व्यथातुर विरही को ढाढ़स बँधाने वाली मानो यह एक प्रेयसी है । कामीजनों के अनुराग को बढ़ाने वाली यह एक मनोरञ्जक साधन है ।। ३ ।।

विदूषक—अजी, चलो अब घर चलें ।

चारुदत्त—आह, संगीतकला में निपुण रेभिल ने तो आज कमाल कर दिखलाया ।

विदूषकः—मम दाव दुवेहिं ज्जेव हस्सं जाअदि, इत्थिआए सक्कदं पठंतीए मणुस्सेण अ काअली गाअंतेण। इत्थिआ दाव सक्कदं पठंती, दिण्णणवणस्सा विअ गिट्टी, अहिअं सुसुआअदि। मणुस्सो वि काअलीं गाअन्तो सुक्खसुमणो-दाम-वेट्टिदो वुड्ढपुरोहिदो विअ मंतं जवंतो, दिढं मे ण रोअदि। [मम तावत् द्वाभ्यामेव हास्यं जायते; स्त्रिया संस्कृतं पठन्त्या, मनुष्येण च काकलीं गायता। स्त्री तावत् संस्कृतं पठन्ती, दत्तनवनास्या इव गृष्टिः, अधिकं सुसूयसे। मनुष्योऽपि काकलीं गायन् शुष्कसुमनोदामवेष्टितो वृद्धपुरोहित इव मन्त्रं जपन्, दृढं मे न रोचते।]

चारुदत्तः—वयस्य! सुष्ठु खल्वद्य गीतं भाव-रेभिलेन। न च भवान् परितुष्टः।

रक्तञ्च नाम मधुरञ्च समं स्फुटञ्च
भावान्वितञ्च ललितञ्च मनोहरञ्च।

विदूषकः—तावदित्यवधारणे, मम=विदूषकस्य, द्वाभ्यामेव=उभाभ्यामेव, हास्यम्=परिहासम्, जायते=उत्पद्यते, स्त्रिया=नार्या, संस्कृतम्=देवगिराम्, पठन्त्या=वाचयन्त्या, मनुष्येण=पुरुषेण, च=पुनः, काकलीम्=सूक्ष्ममधुरध्वनिम्—'काकली तु कले सूक्ष्मे, ध्वनौ' इत्यमरः। गायता=गायनङ्कुर्वता। स्त्री=नारी, संस्कृतम्=सुरवाणीम्, पठन्ती=उच्चारयन्ती, दत्ता=प्रदत्ता, नवा=नूतना, नास्या=नासिकाछिद्ररज्जुः, यस्यै सा गृष्टिः=नवप्रसूता गौः, इव=यथा, अधिकम्=बहुशः, सुसूयते='सु सु' इति शब्दं करोति। मनुष्योऽपि=पुरुषोऽपि, काकलीं गायन्=मधुरमालापयन्, शुष्कम्=म्लानम्, यत् सुमनसाम्=पुष्पाणाम्, दाम=माला, तेन वेष्टितः=परिवेष्टितगलः, वृद्धपुरोहितः=पलितपुरोधा, इव=यथा, मन्त्रं जपन्, दृढम्=निश्चितरूपेण, मे=मह्यम्, न=नहि, रोचते।

चारुदत्तः—वयस्य!=हे प्रिय! अद्य=अस्मिन् रात्रौ, भावरेभिलेन सुष्ठुगीतम्, तथापि भवान् न परितुष्टः=सन्तुष्टः किमिति?

अन्वयः—नाम, रक्तम्, च, मधुरम्, च, समम्, स्फुटम् च, भावान्वितम्, च,

---

विदूषक—भई, सच पूछो तो मुझे इन दोनों पर हँसी आती है। संस्कृत पढ़ने वाली औरत और दर्दीली आवाज में गाने वाले मर्द पर। नई बिआई बछिया की नाक में जब पहले-पहल नथनी डाली जाती है, तब जैसे वह हमेशा सूसियाती रहती है, उसी तरह सू-सू कर संस्कृत पढ़ने वाली औरत तथा गले में मुरझाये फूलों की माला डालकर अपने पोपले मुँह से मंत्र जपते बूढ़े पुरोहित की तरह मधुर राग अलापने वाले मर्द से मुझे बेहद नफरत है।

चारुदत्त—मित्र, कलाकार रेभिल ने तो आज कमाल का गीत गाया है, फिर भी पता नहीं तुम क्यों नहीं सन्तुष्ट हो?

उसका गाना कितना रागवर्द्धक, मधुर, सुसंगत, भावमय, स्पष्ट, कोमल और

किं वा प्रशस्तवचनैर्बहुभिर्मदुक्तैः
अन्तर्हिता यदि भवेद्वनितेति मन्ये ॥ ४ ॥

अपि च—

तं तस्य स्वरसङ्क्रमं मृदुगिरः श्लिष्टञ्च तन्त्रीस्वनं
वर्णानामपि मूर्च्छनान्तरगतं तारं विरामे मृदुम्।
हेलासंयमितं पुनश्च ललितं रागाद् द्विरुच्चारितं
यत्सत्यं विरतेऽपि गीतसमये गच्छामि शृण्वन्निव ॥ ५ ॥

ललितम्, च, मनोहरम्, च, वा, मदुक्तैः, बहुभिः, प्रशस्तवचनैः, किम् ? यदि, अन्तर्हिता, भवेत्, वनिता, इति मन्ये ।

रक्तञ्चेति । गीतमिति गद्यमुपक्रम्यमाह— नाम = निश्चयेन, (गीतम्) रक्तम् = आसक्तिजनकम्, मधुरम् = श्रवणसुखदम्, समम् = स्वराणां सामञ्जस्यसंवलितम्, स्फुटम् = स्पष्टरूपेण सुश्राव्यम्, भावान्वितम् = सदभिप्रायसमन्वितम्, पृथ्वीधरस्तु रत्यास्पदमिति, ललितम्=मनोहरम्, (रेभिलेन सर्वतोभावेन गीतं मनोहारि चासीत्।) वा = अथवा, मदुक्तैः = मया कथितैः, बहुभिः = अनेकैः, प्रशस्तवचनैः = प्रशंसावाक्यैः, किम् ? = किम्प्रयोजनम् ? यदि = चेत्, अन्तर्हिता = नेपथ्ये संस्थिता, भवेत् = स्यात्, वनिता = नारी, इति = इत्थम्, मन्ये = तर्कयामि । अर्थात् रेभिलरूपेण काचित् वनिता गायतीति मे भासते । जात्युत्प्रेक्षा-समुच्चयालङ्कारयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । वसन्ततिलकावृत्तञ्च ॥ ४ ॥

अन्वयः—सत्यम्, यत्, गीतसमये, विरते, अपि, वर्णानाम्, मूर्च्छनान्तरगतम्, अपि, तारम्, विरामे, मृदुम्, पुनः, च, हेलासंयमितम्, रागाद् द्विरुच्चारितम्, तस्य, मधुरगिरः, तम्, स्वरसङ्क्रमम्, श्लिष्टम्, तन्त्रीस्वनम्, च, शृण्वन्, इव, अहम्, गच्छामि ।

तं तस्येति । सत्यम् = यथार्थतः, यत् गीतसमये = गायनकाले, विरते = व्यतीते सति, अपि, वर्णानाम् = उच्चारिताक्षराणाम्, मूर्च्छनान्तरगतम्—मूर्च्छना = सप्तानाम् स्वराणां क्रमादारोहावरोहक्रमः, अत्र च, कमात् स्वराणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम् । सा मूर्च्छेत्युच्यते ग्रामस्था एताः सप्त सप्त च ।' इति सङ्गीतदामोदरम् । अन्यच्च— 'यथा कुटुम्बिनः सर्वे एकीभूताः भवन्ति च, तथा स्वराणां सन्दोहो मूर्च्छनेत्यभिधीयते ।' इति पृथ्वीधरः । अन्तर्गतम् = मध्यवर्त्तिनम्, अपि = चेत्, तारम् = उच्चैः, विरामे = अवसाने, मृदुम् = मन्द्रम्, पुनः च = तथा च, हेलया=लीलया, संयमितम्=नियमितम्, रागात् = रसात्, द्विरुच्चारितम् = द्विरुक्तम्, तस्य = गायकस्य रेभिलस्य, मधुरगिरः=

मनमोहक था । हमारे अधिक प्रशंसा करने से भला क्या लाभ ? निश्चय ही आँखों से ओझल होकर यदि रेभिल गाता तो, हम यही अनुमान करते कि कोई और ही गा रही है ॥ ४ ॥

और भी—यद्यपि उसके गीत बहुत पहले समाप्त हो चुके हैं फिर भी उसकी मधुर स्वरलहरी, आवाज का चढ़ाव-उतराव, उसकी कोमलता, वीणा की ध्वनि के साथ स्वरसंगम, आलापों का दुहरा उच्चारण, अभी भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं ।

विदूषकः—भो वअस्स ! आवणन्तर-रच्छा-विभाऐसु सुहं कुक्कुरा वि सुत्ता। ता गेहं गच्छेम्ह। (अग्रतोऽवलोक्य) वअस्स। पेक्ख पेक्ख। एसो वि अंधआरस्स विअ सेवआसं देंतो, अंतरिक्ख-पासादादो ओदरदि भअवं चंदो। [भो वयस्य ! आपणान्तररथ्याविभागेषु सुखं कुक्कुरा अपि सुप्ताः। तद्गृहं गच्छावः। वयस्य ! पश्य, पश्य एषोऽपि अन्धकारस्येव अवकाशं ददद् अन्तरिक्ष-प्रासादाद् अवतरति भगवान् चन्द्रः।]

चारुदत्तः—सम्यगाह भवान्।

असौ हि दत्त्वा तिमिरावकाशमस्तं व्रजत्युन्नतकोटिरिन्दुः।
जलावगाढस्य वनद्विपस्य तीक्ष्णं विषाणाग्रमिवावशिष्टम् ॥ ६ ॥

मञ्जुलवाण्याः, तम्=श्रुतपूर्वम्, स्वराणाम्=निषदादीनाम्, सङ्क्रमम्=सञ्चारम्, श्लिष्टम्=गानाक्षरसम्मिलितम्, तन्त्रीस्वनम्=वीणाध्वनिम्, शृण्वन्=आकर्णयन्, इवाहम्=चारुदत्तः, गच्छामि=व्रजामि। समुच्चयालङ्कारः। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्।

विदूषकः—भो वयस्य !=हे मित्र ! आपणस्य=हट्टस्य, अन्तरे=मध्ये, रथ्यानाम्=प्रतोलीनाम्, विभागेषु=तत्तच्छाखासु, कुक्कुराः=श्वानः, अपि=किमुतान्ये, सुखम्=सानन्दम्, सुप्ताः=प्रसुप्ताः। तत्=तस्मात्, गृहम्=निजसदनम्, गच्छावः=व्रजावः, वयस्य !=मित्र ! पश्य=अवलोकय, अवकाशम्=स्थानम्, अन्तरिक्षम्=द्यावापृथिव्योर्मध्ये, तदेव प्रासादः=अट्टालिका, तस्मात् अवतरति=अधोगच्छतीति।

चारुदत्तः—सम्यक्=उचितमेव, आह=ब्रवीति, भवान्=श्रीमान्।

अन्वयः—जलावगाढस्य, वनद्विपस्य, अवशिष्टम्, तीक्ष्णम्, विषाणाग्रम्, इव, हि, उन्नतकोटिः, असौ, इन्दुः, तिमिरावकाशम्, दत्त्वा, अस्तं, व्रजति।

असाविति। जलावगाढस्य=सलिले निमग्नस्य, वनद्विपस्य=वनगजस्य, अवशिष्टम्=शेषीभूतम्, तीक्ष्णम्=तीव्रम्, विषाणाग्रम्=दन्ताग्रभागम्, इव=यथा, हि=यतः, उन्नतकोटिः=समुन्नताग्रभागः, असौ=आकाशे दृश्यमानः, इन्दुः=चन्द्रः, तिमिरावकाशम्=अन्धकारप्रसरणावसरम्, दत्वा=प्रदाय, अस्तम्=अन्तर्हितम्, व्रजति=गच्छति। श्रौती उपमालङ्कारः, उपजातिः वृतञ्च ॥ ६ ॥

विदूषक—मित्र, बाजार की गलियारे में कुत्ते भी आनन्द से सो रहे हैं, तो अब हम लोग भी घर की ओर ही चलें तो अच्छा (आगे की ओर देखकर) मित्र, जरा देखो तो, अन्धकार को भी अवकाश देते हुए भगवान् चन्द्रमा भी अपने आकाशरूपी महल से नीचे की ओर ढल रहे हैं।

चारुदत्त—मित्र, आपने ठीक ही कहा—

पानी में डूबे हुए बनैले हाथी के पानी से बाहर निकले तीखे श्वेत चमकीले दाँत की तरह उन्नतिशील यह चन्द्रमा भी अन्धकार को अवकाश देकर अस्ताचल की ओट में छिपता जा रहा है ॥

विदूषकः—भो ! एदं अम्हाणं गेहं। वड्ढमाणअ ! वड्ढमाणअ ! उग्घाटेहि दुआरअं। [भोः ! इदमस्माकं गृहम्। वर्द्धमानक ! वर्द्धमानक ! उद्घाटय द्वारकम्।]

चेटः—अज्जमित्तेअस्स शल-शंजोए शुणीअदि। आगदे अज्जचालुदत्ते। ता जाव दुआलअं शे उग्घाटेमि। (तथा कृत्वा) अज्ज ! वन्दामि। मित्तेअ ! तुमंपि वंदामि। एत्थ वित्थिण्णे आशणे णिशीदंदु अज्जा। [आर्यमैत्रेयस्य स्वरसंयोगः श्रूयते। आगत आर्यचारुदत्तः। तद्यावत् द्वारमस्य उद्घाटयामि। आर्य ! वन्दे। आर्यमैत्रेय ! त्वामपि वन्दे। अत्र विस्तीर्णे आसने निषीदतमार्यौ।]

(उभौ नाटचेन प्रविश्य उपविशतः।)

विदूषकः—वड्ढमाणअ ! रअणिअं सद्दावेहि पादाइं धोइदुं। [वर्द्धमानक ! रदनिकां शब्दापय पादौ धावितुम्।]

चारुदत्तः—(सानुकम्पम्) अलं सुप्तजनं प्रबोधयितुम्।

चेटः—अज्जमित्तेअ ! अहं पाणिअं गेण्हे, तुमं पादाइं धोवेहि। [आर्यं मैत्रेय ! अहं पानीयं गृह्णामि। त्वं पादौ धाव।]

विदूषकः—भो = इति सम्बोधनसूचकमव्ययम्, इदम् = एतत्, अस्माकम् = नः, गृहम् = सदनम्, उद्घाटय = उन्मीलय, द्वारकम् = कपाटमिति भावः।

चेटः—आर्य मैत्रेयस्य = मान्यविदूषकस्य, स्वरसंयोगः = कण्ठध्वनिसम्बन्धः, श्रूयते = श्रवणं क्रियते, आगतः = प्रत्यागतः, आर्यचारुदत्तः। तत् = तेन हि, द्वारम् = कपाटम्, अस्य = मैत्रेयस्य, उद्घाटयामि = निरर्गलं करोमि (तथाकृत्वा = कपाटमुद्घाट्य) आर्यं = मान्य, वन्दे = नौमि, अत्र = अस्मिन् स्थाने, विस्तीर्णे = विस्तार्यमाणे, आसने = उपवेशनाधारे, निषीदतम् = उपविशताम्, आर्यौ = मैत्रेयचारुदत्तौ।

(उभौ = चारुदत्त-विदूषकौ, नाट्येन = क्रिययाऽभिनयेन, उपविशतः।)

विदूषकः—शब्दापय = आह्वय, पादौ = चरणौ, धावितुम् = प्रक्षालयितुम्।

चारुदत्तः—(सानुकम्पम् = कृपापूर्वकम्) अलम् = व्यर्थम्, सुप्तजनम् = शयितमानुषम्, प्रबोधयितुम् = उत्थापयितुम्।

विदूषक—महाशय, हम लोगों का घर तो यही है। अरे ओ वर्द्धमानक ! दरवाजा खोलो।

चेट—आर्य मैत्रेय की आवाज सुनाई पड़ती है। तो मान्य चारुदत्त आ गये ! चलूं किवाड़ खोल दूं। (खोलकर) आर्य, प्रणाम करता हूं। मैत्रेय ! तुम्हें भी नमस्कार करता हूं। सामने बिछे बिछावन पर तब तक आप विराजें।

(दोनों घूमकर बैठ जाते हैं।)

विदूषक—पैर धुलवाने के लिए रदनिका को बुलाओ, वर्द्धमानक !

चारुदत्त—(दया दिखाते हुए) सोए हुए को मत जगाओ।

चेट—आर्य मैत्रेय, मैं पानी डालता हूं और तुम इनके पैर धो डालो।

विदूषकः—(सक्रोधम्) भो वअस्स ! एसो दाणिं दासीए पुत्तो भविअ पाणिअं गेण्हेदि, मं उण बम्हणं पादाइं धोवावेदि । [भोः वयस्य ! एष इदानीं दास्याः पुत्रो भूत्वा पानीयं गृह्णाति, मां पुनर्ब्राह्मणं पादौ धावयति ।]

चारुदत्तः—वयस्य, मैत्रेय ! त्वमुदकं गृहाण, वर्द्धमानकः पादौ प्रक्षालयतु ।

चेटः—अज्जमित्तेअ ! देहि उदअं । [आर्य मैत्रेय ! देहि उदकम् ।]

(विदूषकस्तथा करोति । चेटश्चारुदत्तस्य पादौ प्रक्षाल्यापसरति ।)

चारुदत्तः—दीयतां ब्राह्मणस्य पादोदकम् ।

विदूषकः—किं मम पादोदएहिं ? भूमीए ज्जेव मए ताडिदगद्दहेण विअ पुणोवि लोट्ठिदव्वं । [किं मम पादोदकैः ? भूम्यामेव मया ताडितगर्दभेनेव पुनरपि लोठितव्यम् ।]

चेटः—अज्जमित्तेअ ! बम्हणे क्खु तुमं । [आर्य मैत्रेय ! ब्राह्मणः खलु त्वम् ।]

चेटः—आर्य मैत्रेय, अहम्=चेटः, पानीयम्=जलम्, गृह्णामि=धारयामि, त्वम्=भवान्, पादौ=चरणौ, धाव=मार्जय ।

विदूषकः—(सक्रोधम्=सकोपम्) भोः वयस्य=हे मित्र, एषः=अयम्, दास्याः पुत्रः=अधमः, भूत्वा, पानीयम्=सलिलम्, गृह्णाति=ग्रहणं करोति, पुनः=भूयः, माम्=मैत्रेयम्, ब्राह्मणम्=द्विजम्, पादौ=चरणौ, धावयति=प्रक्षालयति ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, त्वम्=भवान्, उदकम्=सलिलम्, गृहाण=धारणं कुरु, वर्द्धमानकः=चेटः, पादौ, धावयति ।

चेटः—आर्य मैत्रेय, उदकम्=जलम्, देहि=प्रदानं कुरु ।

(तथा करोति=तथैवाचरति । अपसरति=प्रक्षालनात् निवृत्तः दूरे तिष्ठति ।)

चारुदत्तः—दीयताम्=प्रदानं कुरु, ब्राह्मणस्य=विप्रस्य, पादोदकम्=चरणोदकम् ।

विदूषकः—किं मम पादोदकैः=पादप्रक्षालनजलैः किम् । न किमपीत्यर्थः, भूम्यामेव=पृथिव्यामेव, मया=विदूषकेण, ताडितगर्दभेन=प्रहरितरासभेन, इव=यथा, पुनरपि=भूयोऽपि, लोठितव्यम्=लोठनं विधातव्यम् ।

विदूषक—(गुस्सा से भरकर) मित्र, यह हराम का बच्चा खुद तो पानी ढालेगा और मुझ ब्राह्मण से पैर धुलवायेगा ।

चारुदत्त—नहीं मित्र मैत्रेय, तुम पानी लो, पैर तो बर्द्धमानक ही धोयेगा ।

चेट—आर्य मैत्रेय, पानी डालिए ।

(विदूषक पानी देता है, बर्द्धमानक चारुदत्त का पैर धोकर हट जाता है ।)

चारुदत्त—वर्द्धमानक, ब्राह्मण देवता को भी तो पैर धोने के लिए पानी दो ।

विदूषक—मुझे पैर धोने के लिए पानी से क्या मतलब ? पीटे गये गधे की तरह मुझे तो फिर जमीन पर ही लेटना पड़ेगा ।

चेट—समादरणीय मैत्रेय जी, आप तो ब्राह्मण देवता है न ।

विदूषकः—जधा सव्वणागाणं मज्झे डुंडुहो, तधा सव्वबम्हणाणं मज्झे अहं बम्हणो। [यथा सर्वनागानां मध्ये डुण्डुभः, तथा सर्वब्राह्मणानां मध्येऽहं ब्राह्मणः।]

चेटः—अज्जमित्तेअ! तधावि धोइश्शं। (तथा कृत्वा) अज्जमित्तेअ! एदं तं शुवण्णभण्डअं मम दिवा, तुह लत्ति च। ता गेह्ण। (इति दत्त्वा निष्क्रान्तः।) [आर्य मैत्रेय! तथापि धाविष्यामि। आर्य मैत्रेय! एतत् तत् सुवर्णभाण्डं मम दिवा, तव रात्रौ च। तद् गृहाण।]

विदूषकः—(गृहीत्वा) अज्ज वि एदं चिट्ठदि। किं एत्थ उज्जइणीए चोरो वि णत्थि, जो एदं दासीए पुत्तं णिद्दाचोरं ण अवहरदि। भो वअस्स। अब्भंतरचतुस्सालअं पवेसआमि णं। [अद्यापि एतत् तिष्ठति? किमत्र उज्जयिन्यां चौरोऽपि नास्ति? य एतं दास्याः पुत्रं निद्राचौरं नापहरति। भो वयस्य! अभ्यन्तरचतुःशालकं प्रवेशयामि एनम्।]

चेटः—आर्य मैत्रेय, त्वम्=भवान्, खलु=निश्चयेन, ब्राह्मणः=पूजनीयः विप्रः असि।

विदूषकः—यथा=येन प्रकारेण, सर्वनागानाम्=निखिलसर्पाणां मध्ये डुण्डुभः= जलसर्पः 'अलगर्दो जलव्यालः समौ राजिलडुण्डुभौ' इत्यमरः। तथा=तेन प्रकारेण, ब्राह्मणानां मध्ये=विप्रानां मध्ये, अहम्=मैत्रेयः, ब्राह्मणः अस्मि। सर्वेषु विषधरेषु यथा जलसर्पः निर्विषत्वात् महत्त्वहीनो भवति, तथैवाहं सर्वब्राह्मणानां मध्ये ब्रह्म-तेजोविहीनत्वात् नाम्नैव ब्राह्मण अस्मि।

चेटः—तथापि=पुनरपि, धाविष्यामि=प्रक्षालनं कारयिष्यामि, एतत्=इदम्, तत्=वसन्तसेनायाः, सुवर्णभाण्डम्=सुवर्णपात्रम्, मम=चेटस्य, दिवा, तव=विदूषकस्य, रात्रौ=निशायाम्, अर्थात् तद्रक्षणस्य तवोपरि महान् भारः अस्तीति भावः।

विदूषकः—(गृहीत्वा=नीत्वा) अद्यापि=अधुनाऽपि, एतत्=सुवर्णभाण्डम्, तिष्ठति=स्थित अस्त्येव। किमिति प्रश्ने, अत्र=अस्याम्, उज्जयिन्याम्=अवन्ति-राजधान्याम्, चौरोऽपि=तस्करोऽपि, नास्ति=न विद्यते, यः=चौरः, एतम्=अमुम्, दास्याः पुत्रम्=अधमम्, निद्राचौरम्=निद्रापहारकम्, नापहरति=नापहरणं करोति।

विदूषक—हाँ रे, ब्राह्मण तो हूँ ही; ठीक उसी तरह जैसे जहरीले साँपों के बीच निर्विष ढोंढ़वा साँप होता है, उसी तरह तपःपूत ब्राह्मणों के बीच नाममात्र का ही ब्राह्मण हूँ।

चेट—फिर भी मैं तो आपको पैर धुलवा कर ही रहूँगा। (**पैर धुलवाकर, हाथ में सोने के जेवर से भरे बक्से को थमाते हुए**) मैत्रेय, दिन में इसके बचाव का भार मुझ पर था और रात में इसे तुम बचाओ। (**बक्सा थमाकर चला जाता है।**)

विदूषक—(**लेकर**) यह आज तक रक्खा ही है। क्या इस उज्जयिनी में ऐसा एक भी चोर नहीं है जो मेरी नींद में बाधा डालने वाले इन आभूषणों के इस नीच बक्से को चुरा लें। मित्र, इन्हें मैं भीतर के चौपाल में भेज देता हूँ।

चारुदत्तः—

अलं चतुःशालमिमं प्रवेश्य प्रकाशनारीधृत एष यस्मात् ।
तस्मात् स्वयं धारय विप्र ! तावत्, यावन्न तस्याः खलु भोः समर्प्यते॥७॥

(निद्रां नाटयन् 'तं तस्य स्वरसं क्रमम्' इति पुनः पठति ।)

विदूषकः—अवि णिद्दाअदि भवं । [अपि निद्राति भवान् ?]

चारुदत्तः—अथ किम् ?

इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी ललाटदेशादुपसर्पतीव माम् ।
अदृश्यरूपा चपला जरेव या मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्द्धते ॥ ८ ॥

भो वयस्य=हे मित्र, एनम्=आभूषणभाण्डम्, अभ्यन्तरस्य=गृहान्तरस्य, चतुःशालकम्=चतुष्कक्षसमन्वितं भवनम्, प्रवेशयामि=स्थापयामि ।

अन्वयः—इमम्, चतुःशालम्, प्रवेश्य, अलम् । यस्मात्, एषः, प्रकाशनारीधृतः । तस्मात्, भो विप्र, तावत्, स्वयम्, धारय, यावत्, खलु, तस्याः, न, समर्प्यते ॥ ७ ॥

अलमिति । इमम्=अलङ्कारम्, चतुःशालम्=गृहविशेषम्, प्रवेश्य=प्रापय्य, अलम्=निरर्थकम्, यस्मात्=यस्मात् कारणात्, एषः=आभूषणसमूहः, प्रकाशनार्या=गणिकया, धृतः=न्यासरूपेण स्थापितः, तस्मात्=ततः, भो विप्र=हे ब्राह्मण, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, स्वयम्=आत्मनैव, धारय=स्थापय, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, खलु=अवश्यम्, तस्याः=वसन्तसेनायाः हस्ते, न=नहि, समर्प्यते=दीयते । अत्रेन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोरेकत्रसम्मेलनादुपजातिर्वृत्तम् ।। ७ ॥

विदूषकः—अपि निद्राति भवान्=किमुत शयितुमिच्छसि श्रीमान् ?

चारुदत्तः—अथ किम् ?=अस्त्वेवं शयितुमेवेच्छामि ।

अन्वयः—हि, ललाटदेशात्, नयनावलम्बिनी, इयम्, निद्रा, माम्, उपसर्पति, इव अदृश्यरूपा, चपला, जरा, इव, या, मनुष्यसत्त्वम्, परिभूय, वर्धते ॥ ८ ॥

इयमिति । हि=यतः, ललाटदेशात्=भालप्रदेशात्, नयनावलम्बिनी=लोचनाश्रयिणी, इयम्=अनुभूयमाना, निद्रा=स्वापः, माम्=चारुदत्तम्, उपसर्पति=समा-

---

चारुदत्त—अरे, इनकी सुरक्षा के लिए इन्हें चौपाल में भेजना उचित नहीं है । क्योंकि, यह एक वेश्या की धरोहर है । अतः हे ब्राह्मण देवता जब तक यह उन्हें लौटा नहीं दिए जाते, तब तक इनकी रखवाली तुम खुद करो ॥ ७ ॥

(नींद का अभिनय करते हुए, 'उनके उस स्वर का वह चढ़ाव-उतार है' यह फिर पढ़ता है ।)

विदूषक—क्या आप सो रहे हैं ?

चारुदत्त—हाँ भई ।

क्योंकि माथे से आँखों में झांकती हुई यह नींद मेरी ओर सरकती जा रही है । पता भी नहीं चलने देने वाली चंचल बुढ़ौती की तरह यह नींद भी मनुष्य के बल को जीतकर उसे अपने अधीन कर लेती है ॥ ८ ॥

विदूषकः—ता सुवेह्म। (नाट्येन स्वपिति।) [तद् स्वपिवः।]

(ततः प्रविशति शर्विलकः)

शर्विलकः—

कृत्वा शरीर-परिणाह-सुखप्रवेशं
शिक्षाबलेन च बलेन च कर्ममार्गम्।
गच्छामि भूमिपरिसर्पणधृष्टपार्श्वो
निर्मुच्यमान इव जीर्णतनुर्भुजङ्गः ॥ ९ ॥

(नभोऽवलोक्य सहर्षम्।)

अये ! कथमस्तमुपगच्छति स भगवान् मृगाङ्कः। तथा हि—

गच्छति, इव=यथा, अदृश्यरूपा=अप्रत्यक्षस्वरूपा, चपला=चञ्चला, जरा=वृद्धावस्था, इव=यथा, या=निद्रा, मनुष्यसत्त्वम्=मानवबलम्. परिभूय=अभिभूय, वर्द्धते=वृद्धि गच्छति। अस्मिन् श्लोके 'जरा इव' इति पूर्णोपमालङ्कारः, वंशस्थविलञ्च वृत्तम् ॥ ८ ॥

विदूषकः—तत्=तस्मात्, स्वपिवः=शयनम् कुर्वः। (नाट्येन=अभिनयेन, स्वपिति।)

(ततः=तदनन्तरम्, शर्विलकः=चौरः, प्रविशति।)

अन्वयः—शिक्षाबलेन, च बलेन, च, शरीरपरिणाहसुखप्रवेशम्, कर्ममार्गम्, कृत्वा, भूमिपरिसर्पणधृष्टपार्श्वः, निर्मुच्यमानः, जीर्णतनुः, भुजङ्ग, इव, गच्छामि।

कृत्वेति। शिक्षाबलेन=चोरविद्यासामर्थ्येन, च=तथा, बलेन=दैहिकशक्त्या, च=पुनः, शरीरस्य=देहस्य, परिणाहः=विशालता 'परिणाहो विशालते'त्यमरः। तस्य सुखेन=अनायासेन, प्रवेशम्=गमनं यत्र तम्. कर्ममार्गम्=सन्धिच्छेदं, कृत्वा=विधाय, भूमौ=पृथिव्याम्, परिसर्पणम्=सर्पणरीत्या गमनं तेन, धृष्टौ=सञ्जातघर्षणौ, पार्श्वौ=देहस्य वामदक्षिणभागौ, यस्य तथाभूतः सन् अहम्, निर्मुच्यमानः=कञ्चुकेन हीयमानः, जीर्णा=जर्जरा, तनुः=वपुः यस्य सः, भुजङ्गः=नागः, इव=यथा, गच्छामि=अन्तःप्रकोष्ठे प्रविशामि। पूर्णोपमालङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तञ्चेति ॥ ९ ॥

(नभः=आकाशम्, विलोक्य=दृष्ट्वा, सहर्षम्=सानन्दम्।)

अये=इति सम्भ्रमे, 'अये क्रोधे विषादे च सम्भ्रमे स्मरणेऽपि च' इति विश्वकोषः।

विदूषक—तो हम सोते हैं। (सोने का अभिनय करता है।)

(उसके बाद शर्विलक का मंच पर प्रवेश होता है।)

अपनी चोर विद्या के जोर से तथा अपनी ताकत से, अपनी देह की लम्बाई चौड़ाई के अनुपात में सेंध लगाकर, जमीन पर बराबर सरकने के कारण देह के छिले होने वाले मैं केंचुल छोड़े बूढे साँप की तरह सेंध में घुसता हूँ ॥ ९ ॥

(आकाश की ओर देखकर खुशी के साथ।)

अरे, क्या भगवान् चन्द्रमा अस्त होने जा रहे हैं ? उसी प्रकार—

नृपति-पुरुष-शङ्कित-प्रचारं परगृह-दूषण-निश्चितैकवीरम् ।
घन-तिमिर-निरुद्ध-सर्वभावा रजनिरियं जननीव संवृणोति ॥ १० ॥

वृक्षवाटिकापरिसरे सन्धि कृत्वा प्रविष्टोऽस्मि मध्यमकम् । तद्यावदिदानीं चतुःशालकमपि दूषयामि । भोः !

कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्द्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत् ।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः
मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना ॥ ११ ॥

कथम्=हर्षे, 'कथं हर्षे च गर्हायां प्रकारार्थे च सम्भ्रमे, प्रश्ने सम्भावनायाञ्चे'ति मेदिनी । अस्तम्=अस्ताचलम्, उपगच्छति=समीपमायाति, सः=असौ, भगवान् मृगाङ्कः=चन्द्रः । तथाहि—

अन्वयः—घनतिमिरनिरुद्धसर्वभावा, इयम्, रजनी, जननी, इव, नृपतिपुरुषशङ्कितप्रचारम्, परगृहदूषणनिश्चितैकवीरम्, संवृणोति ॥ १० ॥

नृपतीति । घनतिमिरेण=सघनतमसा, निरुद्धाः=समाच्छन्नाः, सर्वभावाः=सकलपदार्थाः यया यस्यां वा सा, इयम्=एषा, रजनी=निशा, जननी=माता, इव =यथा, नृपतिपुरुषैः=प्राहारिकैः राजपुरुषैः, शङ्कितः=चोरसन्देहेन विचारितः, प्रचारः=सञ्चारः यस्य तम्, परेषाम्=अन्येषाम्, गृहेषु=सदनेषु, दूषणे=कदर्थीकरणे, निश्चितः=मान्यः, एकः=प्रधानवीरः, तं मामिति शेषः, संवृणोति=आच्छादयति । जननीवेत्युपमालङ्कारः ॥ १० ॥

वृक्षैः=पादपैः या वाटिका=आरामस्तस्य परिसरे=सन्निहितस्थाने, सन्धिम्=विवरम्, कृत्वा=निर्माय, मध्यमकम्=प्राकाराभ्यन्तरम्, तत्=तस्मात्, यावदित्यवधारणे, इदानीम्=सम्प्रति, चतुःशालकमपि=चतुष्कसमन्वितं भवनम्, अपि, दूषयामि=छिद्रं कृत्वा प्रवेशयोग्यं करोमि ।

अन्वयः—यत्, स्वप्ने, वर्द्धते, विश्वस्तेषु, वञ्चनापरिभवः, च, हि, तत्, चौर्यम्, शौर्यम्, न । पुरुषाः, इदम्, कामम्, नीचम्, वदन्तु, स्वाधीना, वचनीयता, अपि, हि, वरम्, बद्धः, सेवाञ्जलिः, न, हि । एषः मार्गः, पूर्वम्, द्रौणिना, नरेन्द्रसौप्तिकवधे, कृतः ॥ ११ ॥

काममिति । यत्=तस्करकार्यम्, स्वप्ने=निद्रितावस्थायाम्, वर्द्धते=प्रसरति

राजकीय पहरेदारों की सन्दिग्ध दृष्टि से देखने वाला, तथा दूसरों के घरों में सेंध लगाने वाला शातिर वीर, मुझे, अपनी सघन अन्धकार में सारे संसार को डुबाने वाली यह रात माँ की तरह अपनी अन्धकार रूपी स्नेहाञ्चल से ढँक रही है ।

फुलवाड़ी के पास की चहार दीवारी में सेंध लगाकर मैं आहाते के भीतर तो घुस आया हूँ, अब इस चौपाल में भी सेंध लगा ही लूँ—

लोग चोरी को अधम भले ही कहें, जो लोगों के सो जाने पर ही होती है, तथा

तत् कस्मिन्नुद्देश सन्धिमुत्पादयामि ?

देशः को नु जलावसेकशिथिलो यस्मिन्न शब्दो भवेत्
भित्तीनाञ्च न दर्शनान्तरगतः सन्धिः करालो भवेत् ।
क्षारक्षीणतया च लोष्टककृशं जीर्णं क्व हर्म्यं भवेत्
कस्मिन् स्त्रीजनदर्शनञ्च न भवेत् स्यादर्थसिद्धिश्च मे ॥ १२ ॥

विश्वस्तेषु=विश्वासभाजनेषु, वञ्चनापरिभवः—वञ्चनया=कपटेन, परिभवः=तिरस्कारः, च=पुनः, हि=यतः, तत् चौर्यम्=तस्करकृत्यम्, न=नास्ति, अतः पुरुषाः=लोकाः, इदम्=निन्दितकर्मम्, कामम्=यथेष्टम्, नीचम्=अधमकोटिक-कर्मम्, वदन्तु=कथयन्तु, तथापि स्वाधीना=स्वाश्रया, वचनीयता=परीवादः, अपि, हि=यतः, वरम्=श्रेष्ठम्, बद्धः=सम्पुटितः, सेवाञ्जलिः=दास्याभावेन हस्ताञ्जलिः, न=नहि, वरम् । हि=यतः, एषः=तस्करकर्मः, मार्गः=पन्थाः, पूर्वम्=प्राचीनकाले द्रौणिना=अश्वत्थाम्ना, नरेन्द्राणाम्=युधिष्ठिरपुत्रादीनाम्, सौप्तिकः=सुप्तावस्थायां सम्पन्नः, स चासौ वधः=मारणं तस्मिन्, कृतः=निर्मितः । यद्यप्ययं मार्गः मया नानुष्ठीयते किन्तु ब्राह्मणेनापि द्रोणसुतेन युधिष्ठिरशिविरे प्रविश्य द्रौपदीपुत्राणां वधे पूर्वमेवायं मार्गोऽनुष्ठित इति काव्यलिङ्गमर्थान्तरन्यासयोरङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ११ ॥

तत्=तस्मात्, कस्मिन्नुद्देशे=कस्मिन् स्थाने, सन्धिम्=छेदम्, उत्पादयामि=करोमि ।

अन्वयः—कः, नु, भित्तीनाम्, देशः, जलावसेकशिथिलः, भवेत्, यस्मिन् शब्दः, न, भवेत्, सन्धिः, च, करालः, न, च, दर्शनान्तर्गतः, भवेत् । क्व, च, हर्म्यम्, क्षारक्षीणतया, लोष्ठककृशम्, जीर्णम्, च, भवेत् ? कस्मिन्, स्त्रीजनदर्शनम्, च, न, भवेत् ? मे, अर्थसिद्धिः, च, स्यात् ॥ १२ ॥

देश इति । कः नु इति वितर्के, भित्तीनाम्=प्रकाराणाम्, देशः=स्थानविशेषः, जलावसेकशिथिलः=सलिलसेचनेनाकठिनः, भवेत्=स्यात्, यस्मिन्=भागे, शब्दः=सन्धिछेदस्य ध्वनिः, न=नहि, भवेत्=स्यात्, सन्धिः=भित्तिछेदनम्, च=पुनः, करालः

जिसमें धोखे से विश्वस्त लोगों का धन अपहृत कर उन्हें अपमानित किया जाता है इसीलिये यह चोरी है, वीरता नहीं । पर, मेरी मान्यता कुछ और है—किसी के आगे दास बनकर हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने की अपेक्षा चोरी का यह धन्धा स्वतन्त्र होने के कारण उत्तम है । यह रोजगार यहाँ बहुत पहले से चला आ रहा है । द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने चोरी से ही युधिष्ठिर के बेटों को मारा था । अतः इस काम में कोई दोष नहीं है ॥ ११ ॥

तो फिर सेंध कहाँ काटी जाये—

(सोचना यह है कि) लगातार पानी गिरने से दीवार का कौन भाग कमजोर होगा, जिसमें सेंध लगाते समय आवाज नहीं होगी । सेंध बड़ी हो पर अगल-बगल से

(भित्ति परामृश्य) नित्यादित्य-दर्शनोदकसेचनेन दूषितेयं भूमिः क्षार-क्षीणा; मूषिकोत्करश्चेह। हन्त ! सिद्धोऽयमर्थः। प्रथममेतत् स्कन्दपुत्राणां सिद्धिलक्षणम्। अत्र कर्मप्रारम्भे कीदृशमिदानीं सन्धिमुत्पादयामि। इह खलु भगवता कनकशक्तिना चतुर्विधः सन्ध्युपायो दर्शितः। तद्यथा—पक्वेष्टका-नामाकर्षणम्, आमेष्टकानां छेदनम्, पिण्डमयानां सेचनम्, काष्ठमयानां पाटनमिति। तदत्र पक्वेष्टके इष्टिकाकर्षणम्। तत्र—

=भयङ्करः, न च दर्शनान्तर्गतः=लोकदृष्टिपथगतः च न, भवेत्। क्व च=कुत्र च, हर्म्यम्=सदनम्, क्षारेण=लवणेन, क्षीणतया=शिथिलतया, कृशानि=दुर्बलानि क्षीणानि, लोष्टकानि=इष्टकादिखण्डानि यत्र तत्, जीर्णम्=शीर्णम्, च भवेत्, कस्मिन्=स्थानविशेषे, स्त्रीजनानाम्=स्त्रीणाम्, दर्शनम्=साक्षात्कारः, न भवेत् मे=मम, अर्थस्य=मनोनीतकार्यस्य, सिद्धिः=सफलता च, स्यात्=भवेदिति ॥ १२ ॥

(भित्तिम्=कुडचम्, परामृश्य=स्पृष्ट्वा) नित्यम्=प्रतिदिनम्, आदित्यस्य=सूर्यस्य, दर्शने=उपस्थाने, उदकस्य=जलस्य, सेचनेन=सिञ्चनेन, दूषिता=विकृता, मूषिकैः=आखुभिः, उत्कीर्यते=खन्यते, अर्थात् मूषिकोधृतमृत्तिकाराशिश्च, इह=अत्र, हन्त=इति हर्षे, सिद्धः=निष्पन्नः, अयम्=सन्धिच्छेदनरूपः, अर्थः=प्रयोजन-मिति। प्रथमम्=आदिमम्, एतत्=एषः, स्कन्दपुत्राणाम्=कार्त्तिकेयसुतानाम् चौराचार्याणाम्, सिद्धेः=सफलतायाः, लक्षणम्=चिह्नम्। अत्र=अस्मिन् स्थाने कर्मप्रारम्भे=सन्धिच्छेदनारम्भे, कीदृशम्=किं प्रकारकम्, इदानीम्=अधुना, सन्धिम् =भित्तिच्छेदनम्, उत्पादयामि=करोमि। इह=अस्मिन् विषये, खलु निश्चयेन, भगवता=श्रीमता, कनकशक्तिना=एतदाख्येन चौर्यविद्याविशारदेन, चतुर्विधः=चतुःप्रकारकः, सन्ध्युपायः=भित्तिच्छेदनविधिः, दर्शितः=प्रदर्शितः, तद्यथा—पक्वेष्ट-

---

गुजरने वालों की निगाह से बची हो, साथ ही यह भी देखना होगा कि नोनी लग जाने के कारण दीवार का कौन-सा भाग कमजोर हो गया है और किस जगह सेंध लगाने से औरतों का सामना किये बिना काम में सफलता हासिल होगी ॥ १२ ॥

(**दीवार टटोलकर**) रोज-रोज सूर्य की उपासना के क्रम में पानी गिरने के कारण यहाँ की मिट्टी गीली बनी है, साथ ही चूहों ने भी यहाँ ही धूल का ढेर लगा दिया है। चलो, हमारा काम तो अपने आप बन गया। क्योंकि, आसानी से सेंध काटने की जगह का मिल जाना चोरों की सफलता का पहला लक्षण है। तो फिर इस चोरी के लिए इस दीवार में कैसी सेंध लगाऊँ ? चोरों के गुरु भगवान् कनक-शक्ति ने सेंध लगाने के चार तरीके बतलाये हैं, पक्की ईंटों से बनी दीवार से ईंटों को खींचकर, कच्ची दीवार से ईंटों को काटकर, मिट्टी की भीत को पानी से फुला कर तथा काठ की दीवार को चीर कर सेंध लगाना चाहिए। तो फिर, इस पक्की दीवार से ईंटों को खींचना चाहिए—

पद्मव्याकोशं भास्करं बालचन्द्रं
वापी-विस्तीर्णं स्वस्तिकं पूर्णकुम्भम् ।
तत् कस्मिन् देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पं
दृष्ट्वा श्वो यं यद्विस्मयं यान्ति पौराः ॥ १३ ॥

तदत्र पक्वेष्टके पूर्णकुम्भ एव शोभते; तमुत्पादयामि ।

अन्यासु भित्तिषु मया निशि पाटितासु
क्षारक्षतासु विषमासु च कल्पनासु ।

कानाम्=परिपक्वमृत्पिण्डमयानाम्, आकर्षणम्=अनुकर्षणम्, आमेष्टकानाम्=अपक्वझरुकानाम्, छेदनम्=विदारणम्, पिण्डमयानाम्=मृत्तिकास्थूणानिर्मितानाम्, सेचनम्=जलेन आर्द्रीकरणम् काष्ठमयानाम्=दारुनिर्मितानाम्, पाटनम्=कर्त्तनम्, तत्=तस्मात्, अत्र=अस्मिन् स्थाने, पक्वेष्टके=पक्वेष्टिकानिर्मिते गृहे, इष्टिका=अमृतेष्टका, आकर्षणम्=आवर्जनम् । तत्र—

अन्वयः—पद्मव्याकोशम्, भास्करम्, बालचन्द्रम्, वापी, विस्तीर्णम्, स्वस्तिकम् पूर्णकुम्भम्, तत्, कस्मिन् देशे, आत्मशिल्पम्, दर्शयामि । यत्, यम्, दृष्ट्वा, श्वः, पौराः, विस्मयम्, यान्ति ॥ १३ ॥

पद्मेति । पद्मव्याकोशम्=विकसितकमलतुल्यम्, भास्करम्=रविमण्डलवद् गोलाकारम्, बालचन्द्रम्=चन्द्रखण्डतुल्यवक्राकारम्, वापी=दीर्घिकासदृशचतुष्कोण-समन्वितम्, विस्तीर्णम्=प्रशस्तम्, स्वस्तिकम्=स्वस्तिकाकारम्, त्रिकोणम्, पूर्ण-कुम्भम्=पूर्णघटाकारवत् अधःस्थलोर्ध्वतनुम्, एते सप्त सन्धिप्रकारान्यतमम्, कस्मिन् देशे=कस्मिन् भित्तिस्थाने, तत्=तस्मात्, आत्मशिल्पम्=स्वकलाकारिताम्, दर्श-यामि=प्रदर्शयामि, यत्=यस्मात्, यम्=शिल्पम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, श्वः=प्रभाते, पौराः=नागरिकाः, विस्मयम्=आश्चर्यम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति । वैश्वदेवी-वृत्तम् ॥ १३ ॥

तत्=तस्मात्, अत्र=अस्मिन् गृहे, पक्वेष्टके=परिपक्वझरुके, पूर्णकुम्भः=पूर्णकुम्भाकारं छेदम् एव शोभते=उचितं प्रतीयते, तम्=पूर्वोक्तप्रकारकं सन्धिम्, उत्पादयामि=निर्माणं करोमि ।

अन्वयः—निशि, अन्यासु, क्षारक्षतासु, भित्तिषु, विषमासु, कल्पनासु, मया,

---

खिले कमल की तरह या सूर्य-मण्डल की तरह गोल अथवा दूज के चांद की तरह टेढ़ी, या विशाल सरोवर की तरह चौकोर अथवा स्वस्तिक की तरह तिकोनी या घड़े की तरह फैली सिकुड़ी कैसी सेंध काटूं ? जिसे कल सबेरे देखकर लोग दंग रह जायें ॥ १३ ॥

तो फिर, इस पक्की ईंट की दीवार में घड़े के आकार की सेंध ही ठीक फबती है, तो वैसी ही सेंध क्यों न काटूं—

दृष्ट्वा प्रभातसमये प्रतिवेशिवर्गो
दोषांश्च मे वदति कर्मणि कौशलञ्च ।। १४ ।।

नमो वरदाय कुमारकार्त्तिकेयाय, नमः कनकशक्तये ब्रह्मण्यदेवाय देवव्रताय नमो भास्करनन्दिने, नमो योगाचार्याय, यस्याहं प्रथमः शिष्यः । तेन च परितुष्टेन योगरोचना मे दत्ता ।

अनया हि समालब्धं न मां द्रक्ष्यन्ति रक्षिणः ।
शस्त्रञ्च पतितं गात्रे रुजं नोत्पादयिष्यति ।। १५ ।।

पाटितासु, प्रभातसमये, प्रतिवेशिवर्गः, दृष्ट्वा, मे, दोषान्, कर्मणि, कौशलम्, च, वदति ।। १४ ।।

अन्यास्विति । निशि=रजन्याम्, अन्यासु=अपरासन्धियोग्यासु, क्षारक्षतासु=लवणदूषितासु, भित्तिषु=प्राकारेषु, विषमासु=विलक्षणासु, कल्पनासु=उद्भावनासु, मया=शर्विलकेन, पाटितासु=छिन्नासु, प्रभातसमये=प्रातःकाले, प्रतिवेशिवर्गः=तत्पल्लीस्थजनसमूहः, दृष्ट्वा=अवलोक्य, मे=मम, दोषान्=अपवादान्, कर्मणि=चौर्यकार्ये, कौशलम=चातुर्यम्, च=पुनः वदति=आलोचयिष्यति । अस्मिन् श्लोके तुल्ययोगितालङ्कारः, वसन्ततिलकं वृत्तञ्च ।। १४ ।।

अत्र पृथ्वीधरेण ''चौर्यं प्रारभमाणो प्रणमन्नाह शर्विलकः—नम इति, वरदायादिगुरुवे कुमारकार्त्तिकेयाय नम इति भावः । ततः द्वितीयाय चौर्यशास्त्राचार्याय, कनकशक्तिनाम्ने नमः, ब्रह्मण्यदेवाय तृतीयाचार्याय नमः, ब्रह्मण्यदेवादयोऽपरगुरवः'' इत्युक्तम् । देवव्रतायः=चौर्याचार्यविशेषाय, भास्करनन्दिनाम्ने, योगाचार्यनाम्ने च परमाचार्याय नमः । तस्य=आचार्यस्य, अहम्=शर्विलकः, प्रथमः=आदिः, शिष्यः=छात्रः अस्मि, तेन=आचार्येण, परितुष्टेन=सेवावशीभूतेन, योगः=चौर्यसिद्ध्युपायः, रोचना=गोपितम्, मे=मह्यम्, दत्ता=प्रदत्ता ।

अन्वयः—हि, अनया, समालब्धम्, माम्, रक्षिणः, न, द्रक्ष्यन्ति, गात्रे, पतितम्, शस्त्रम्, च, रुजम्, न, उत्पादयिष्यति ।। १५ ।।

अनयेति । हि=इति निश्चयेन, अनया=योगरोचनया, समालब्धम्=कृतसमालेपनम्, माम्=शर्विलकम्, रक्षिणः=गृहरक्षकाः, न=नहि, द्रक्ष्यन्ति=अवलोक-

---

रात की इस निस्तब्धता में काई लगी इस सीली दीवार में काटी गई भयंकर सेंध को जब कल सवेरे लोग देखेंगे, तो एक ओर जहाँ मेरे चौर्य कर्म की निन्दा करेंगे, वहीं मेरी सेंध काटने की कला की प्रशंसा भी अवश्य करेंगे ।। १४ ।।

मनोवांछित फलदाता कुमार कार्त्तिकेय को मेरा पहला प्रणाम । फिर प्रभावशाली ब्रह्मण्य देव को नमस्कार । पुनः देवपरायण चौराचार्य कनकशक्ति को नमस्कार । भास्करनन्दी को प्रणाम । प्रणाम योगाचार्य को जिनका मैं पहला चेला हूँ । उन्होंने खुश होकर मुझे योगरोचना दी ।

इस योगरोचना का लेप मैंने अपनी देह में कर लिया है । फलतः अब न मुझे

(तथा करोति) धिक् कष्टम्, प्रमाणसूत्रं मे विस्मृतम् । (विचिन्त्य) आं, इदं यज्ञोपवीतं प्रमाणसूत्रं भविष्यति । यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्, विशेषतोऽस्मद्विधस्य । कुतः—

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसम्प्रयोगान् ।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढे कपाटे
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनञ्च ।। १६ ।।

यिष्यन्ति, गात्रे=शरीरे, पतितम्=प्रक्षिप्तम्, शस्त्रम्=आयुधम्, च=अपि, रुजम्=व्यथाम्, न=नहि, उत्पादयिष्यति=जनयिष्यति । अस्मिन् श्लोके समुच्चयोऽलङ्कारः, अनुष्टुप् वृत्तञ्चेति ।। १५ ।।

(तथा=तेन प्रकारेण, करोति=देहे रोचनायाः आलेपं करोति ।) धिगिति भर्त्सनासूचकमव्ययम्, कष्टम्=खेदम्, प्रमाणसूत्रम्=सुरङ्गमापकडोरकम्, मे=मम, विस्मृतम्=नानीतम् । (विचिन्त्य=चिन्तयित्वा) आमिति स्वीकारे, इदम्=एतत्, यज्ञोपवीतम्=उपनयनसूत्रम्, प्रमाणसूत्रम्=मापकडोरकम्, भविष्यति । ब्राह्मणस्य=विप्रस्य, महदुपकरणद्रव्यम्=आवश्यकतापूरकपदार्थः, विशेषतः=मुख्यरूपेण, अस्मद्विधस्य=मादृशस्य चौरजनस्य । कुतः=कस्मात् ।

अन्वयः—एतेन, भित्तिषु, कर्ममार्गम्, मापयति, एतेन, भूषणसंयोगान्, मोचयति, यन्त्रदृढे, कपाटे, उद्घाटकः, भवति, कीटभुजगैः, दष्टस्य, परिवेष्टनम्, च भवति ।

एतेनेति । एतेन=यज्ञोपवीतेन, भित्तिषु=प्राकारेषु, कर्मणः=चौरकार्यस्य, मार्गम्=सुरङ्गरूपपन्थानम्, मापयति=मितं करोति, एतेन=उपवीतसूत्रेण, भूषणसम्प्रयोगान्=परिहितालङ्कारश्लिष्टबन्धान्, मोचयति=अङ्गेभ्यः चोरयति, यन्त्रेण दृढे=अर्गलादिना संयमिते, कपाटे=द्वारे, उद्घाटकः=मोचकः, भवति, कीटभुजगैः=वृश्चिकसर्पादिकैः, दष्टस्य=कृतदंशनस्य, परिवेष्टनम्=परितः बन्धनञ्च, भवति=जायते । समुच्चयतुल्ययोगितालङ्कारयोः अङ्गाङ्गिभावेन सङ्करः । वसन्ततिलका वृत्तम् ।। १६ ।।

कोई पहरेदार ही देख सकता है और न तो शस्त्राघात से कोई घाव ही लग सकते हैं ।। १५ ।।

(**देह में लेप लगाकर**) हाय, हाय, मैं तो नापने वाली रस्सी ही लाना भूल गया । (**कुछ सोचकर**) अच्छा तो यह जनेऊ ही नापने का धागा बन जायेगा । ब्राह्मण के लिए तो जनेऊ बड़े काम की वस्तु है। खास कर, मेरे जैसे ब्राह्मण के लिए तो यह और उपयोगी वस्तु है । क्योंकि—

इससे सेंध काटते समय भीत नापी जाती है । इसकी मदद से देह में पहने हुए जेवरों की हुक खोली जाती है । इसकी सहायता से कसकर लगाई गई किवाड़ों की किल्ली आसानी से खुल जाती है । जहरीले कीड़े या साँपों के काटने पर इससे मजबूत गाँठ लगाई जाती है ।। १६ ।।

मापयित्वा कर्म समारभे। (तथा कृत्वा, अवलोक्य च) एकलोष्ठावशेषोऽयं सन्धिः। धिक् कष्टम्। अहिना दष्टोऽस्मि। (यज्ञोपवीतेनाङ्गुलिं वद्ध्वा- विषवेगं नाटयति। चिकित्सां कृत्वा) स्वस्थोऽस्मि। (पुनः कर्म कृत्वा, दृष्ट्वा च) अये! ज्वलति प्रदीपः। तथाहि—

शिखा प्रदीपस्य सुवर्णपिञ्जरा
महीतले सन्धिमुखेन निर्गता।
विभाति पर्यन्ततमःसमावृता
सुवर्णरेखेव कषे निवेशिता॥ १७॥

(पुनः कर्म कृत्वा) समाप्तोऽयं सन्धिः। भवतुः प्रविशामि। अथवा न

मापयित्वा=परिमिर्ति विधाय, कर्म=भित्तिभेदनरूपकार्यम्, समारभे=प्रारभ्यते (तथा=तेनैव प्रकारेण, कृत्वा=विधाय, अवलोक्य=दृष्ट्वा च) एकः=केवलः लोष्ठः=ईष्टिका, अवशेषः=अवशिष्टः यत्र सः, सन्धिः=सुरङ्गः, अयम्=एषः, धिक् कष्टम्=हा हन्त, अहिना=सर्पेण, दष्टः=दंशितः, अस्मि=भवामि। (यज्ञोपवीतेन=उपनयनसूत्रेण, अङ्गुलिम्=करशाखाम्, बध्वा=ग्रन्थि दत्वा, विषवेगम्=गरलप्रवाहम्, नाटयति=क्रिययाऽभिनयति। चिकित्सां कृत्वा=विषप्रतीकारोपचारम् विधाय।) स्वस्थोऽस्मि=गरलोपशमनेन प्रकृतिस्थोऽस्मि। (पुनः=भूयः, कर्मम्=सिन्धच्छेदनकार्यम्, कृत्वा=विधाय, दृष्ट्वा=अवलोक्य च) अये=इत्याश्चर्यम्, ज्वलति=प्रकाशं करोति, प्रदीपः=दीपकः। तथाहि—

अन्वयः—सुवर्णपिञ्जरा, सन्धिमुखेन, महीतले, निर्गता, पर्यन्ततमः समावृता, प्रदीपस्य, शिखा, कषे, निवेशिता, सुवर्णरेखा, इव, विभाति॥ १७॥

शिखेति। सुवर्णपिञ्जरा=कनकवत्पिङ्गलवर्णा, सन्धिमुखेन=भित्तिछिद्रेण, महीतले=पृथिव्यामुपरि, निर्गताः=बहिरागता, पर्यन्तेषु=चतुर्भागेषु, तमसा=अन्धकारेण, समावृता=निरुद्धा, प्रदीपस्य=दीपकस्य, शिखा=कान्तिः, कषे=शाणे, निवेशिता=स्थापिता, सुवर्णरेखा=कनकलेखा, इव=यथा, विभाति=शोभते। श्रौती उपमालङ्कारः, वंशस्थविलं छन्दश्चेति॥ १७॥

(पुनः=भूयः, कर्मम् कृत्वा=सन्धिच्छेदं विधाय) समाप्तः=पूर्णो जातः, अयम्

तो फिर इसी से नाप कर सेंध काटना शुरू कर दूँ। (उसी तरह करके तथा) देखकर) अब तो इस सेंध से एक ही ईंट निकालना बच गया। हाय राम, मुझे तो साँप ने काट लिया। (जनेऊ से अँगुली बाँधकर देह में जहर छहरने का अनुभव करता है; कुछ उपचार करने के बाद) अब ठीक हो गया। (सेंध लगाने के बचे कामों को पूराकर तथा भीतर झाँककर) अरे भीतर तो दीप जल रहा है। जैसे—

अन्धकार में डूबी काली धरती पर, दीवार से काटी गई सेंध की राह से निकली दीप की पीली लौ काली कसौटी पर खींची गई स्वर्णरेखा की तरह शोभ रही है।

(फिर सेंध काटकर) सेंध तो अब पूरी कट चुकी है। तो फिर अब इसमें

तावत् प्रविशामि, प्रतिपुरुषं निवेशयामि। (तथा कृत्वा) अये! न कश्चित्। नमः कार्त्तिकेयाय। (प्रविश्य, दृष्ट्वा च) अरे! पुरुषद्वयं सुप्तम्। भवतु, आत्मरक्षार्थं द्वारमुद्घाटयामि। कथं जीर्णत्वाद् गृहस्य विरौति कपाटम्। तद् यावत् सलिलमन्वेषयामि। क्व नु खलु सलिलं भविष्यति ?! (इतस्ततो दृष्ट्वा, सलिलं गृहीत्वा क्षिपन्, सशङ्कम्) मा तावत् भूमौ पतत् शब्दमुत्पादयेत्। (पृष्ठेन प्रतीक्ष्य कपाटमुद्घाटच) भवतु, एवं तावदिदानीं परोक्षे। किं लक्ष्यसुप्तम्, उत परमार्थसुप्तमिदं द्वयम्? (त्रासयित्वा, परीक्ष्य च) अये! परमार्थसुप्तेनानेन भवितव्यम्। तथाहि—

=एषः, सन्धिः=खानिकम्। भवतु=यातु, प्रविशामि=प्रकोष्ठे गच्छामि, अथ वा =किं वा, न=नहि, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, प्रविशामि। प्रतिपुरुषम्=दारुनिर्मितां पुरुषप्रतिकृतिम्, निवेशयामि=विवरमुखेन अन्तःप्रकोष्ठे प्रथमं प्रवेशयामि। (तथा=पूर्वोक्तप्रकारेण, कृत्वा=अनुष्ठानं विधाय) अये=इति हर्षे, न कश्चित्=न कोऽपि पुरुषः जागर्त्ति। नमः कार्त्तिकेयाय=चौरगुरुवे नमः। (प्रविश्य= प्रकोष्ठे गत्वा, दृष्ट्वा=सर्वत्रावलोक्य च) अरे, पुरुषद्वयम्=चारुदत्तविदूषकौ, सुप्तम् =शयनं गतम्। भवतु=यातु, आत्मरक्षार्थम्=स्वत्राणार्थम्, द्वारम्=कपाटम्, उद्घाटयामि=निरर्गली करोमि। यदि प्रसुप्तजनस्य निद्राभङ्गः समजनि तदानेन मार्गेणैव पलायनं सन्ध्यपेक्षया सुकरं भवतीति भावः। कथम्=इति प्रश्ने, जीर्णत्वात्= शीर्णत्वात्, गृहस्य=सदनस्य, विरौति=शब्दायते, द्वारस्य जीर्णत्वेन बन्धशैथिल्यात् द्वारमपि विरौति। तत्=तस्मात्, सलिलम्=जलम्, गृहीत्वा=नीत्वा, (क्षिपन्= सिञ्चन्, सशङ्कम्=शङ्कायुतम्।) मातावत्, भूमौ=पृथिव्याम्, पतत् शब्दम्=पटत् पटत् इति शब्दं उत्पादयेत्=उत्पन्नं करोति (पृष्टेन=पृष्टदेशेन, प्रतीक्ष्य= सम्यक् निरीक्ष्य, कपाटम्=द्वारम्, उद्घाटच=उत्पाटच) इदानीम्=अधुना, परोक्षे किमिति प्रश्ने, लक्ष्यसुप्तम्=छलेन शयितम्, उत्=अथ वा, परमार्थसुप्तम्=यथार्थतः शयितम्, इदम् द्वयम्=पुरुषद्वयम् (त्रासयित्वा=भयमुत्पाद्य, परीक्ष्य=परीक्षां कृत्वा) परमार्थसुप्तेन=यथार्थतः शयितेन, अनेन=प्रसुप्तजनेन, भवितव्यम्।

घुस कर देखूं अथवा पहले स्वयं न घुसकर इस कठपुतले को ही घुसाता हूँ (**कठपुतले को घुसाकर**) अरे घर में तो कोई नहीं है। चोरगुरु कार्तिकेय को प्रणाम (**भीतर घुसकर और देखकर**) दो आदमी सोये हैं। अच्छा तो अपने बचाव के लिए किवाड़ तो खोल लूं। पुराना घर होने के कारण खोलते समय किवाड़ें चरमराती हैं। तो पहले इन्हें ठीक करने के लिए पानी खोजता हूं, पर, पानी मिलेगा कहाँ? (**इधर-उधर देखते हुए, पानी लेकर और उसे छींट कर सन्देह के साथ**) पानी गिरने से तो आवाज होगी, अच्छा तो ऐसा करूं। (**पीठ के सहारे किवाड़ी उतार कर**) अब इन्हें भी क्यों न जांच लूं। ये सोने का बहाना किए हैं अथवा सचमुच सोये हैं। (**डरा कर और जांच कर**) अरे, ये दोनों तो सचमुच सोये हैं। क्योंकि—

निःश्वासोऽस्य न शङ्कितः सुविशदः तुल्यान्तरं वर्त्तते
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे चञ्चला।
गात्रं स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शय्याप्रमाणाधिकं
दीपञ्चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि ॥ १८॥

(समन्तादवलोक्य) अये ! कथं मृदङ्गः, अयं दर्दुरः, अयं पणवः, इयमपि वीणा, एते वंशाः, अमी पुस्तकाः। कथं नाट्याचार्यस्य गृहमिदम्। अथवा, भवनप्रत्ययात् प्रविष्टोऽस्मि। तत् किं परमार्थदरिद्रोऽयम्? उत राजभया-

---

अन्वयः—अस्य, निःश्वासः, शङ्कितः, न सुविशदः, तुल्यान्तरम्, वर्त्तते, दृष्टिः, गाढनिमीलिता, न, विकला, अभ्यन्तरे, न, चञ्चला, गात्रम्, स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलम्, शय्याप्रमाणाधिकम्, यदि, लक्ष्यसुप्तम्, स्यात्, अभिमुखम्, दीपम्, च, अपि, न, मर्षयेत् ॥ १८ ॥

निःश्वास इति। अस्य=प्रसुप्तपुरुषद्वयस्य, निःश्वासः=नासिकाविनिर्गतवायुः, शङ्कितः=जागरणजन्यसन्देहोत्पादकः, न=नास्ति, अपि तु सुविशदः=अतिस्पष्टः, तुल्यान्तरम्=समानव्यवधानम्, वर्त्तते=अस्ति, दृष्टिः=नेत्रम्, गाढनिमीलिता= प्रगाढरूपेण सम्पुटिता, अस्तीति भावः। न=नहि, विकला=व्यथिता, अभ्यन्तरे= लोचनाभ्यन्तरे, न=नहि, चञ्चला=चपला, वर्त्तते इति भावः, गात्रम्=देहम्, स्रस्ताः=शिथिलत्वेन पतिताः ये शरीरसन्धयः=शरीरावयवग्रन्थयः, तैः शिथिलम्= स्रस्तम्, शय्यायाः=खट्वायाः, प्रमाणात्=परिमाणात्, अधिकम्=बहिर्भूतम्, यदि= चेत्, लक्ष्यसुप्तम्=छलेन शयितम्, स्यात्=भवेत्, तदा अभिमुखम्=सम्मुखम्, दीपम् =दीपकम्, चापि न मर्षयेत्=न सहेत। एतेन गाढा निद्रा व्यज्यते। अत्र समुच्चया-लङ्कारोऽनुमानमपि। शार्दूलविक्रीडितं छन्दः ॥ १८ ॥

(समन्तात्=चतुर्दिक्, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=आश्चर्यम्, मृदङ्गः=मुरजः, अयम्=एषः, दर्दुरः=वंशीवद् वाद्ययन्त्रः, पणवः=लघुपटहः, इयमपि=एषापि, वीणा=वल्लकी, एते वंशाः=वेणुः, अमी=एते, पुस्तकाः=ग्रन्थाः, नाट्याचार्यस्य= नृत्यगीतादिप्रशिक्षकस्य, गृहमिदम्=सदनमिदमस्ति, अथ वा=किं वा, भवनप्रत्ययात् =विशालगृहविश्वासात्, परमार्थदरिद्रः=परमनिर्धनः, उत=वा, राजभयात्=

ये दोनों निःशंक रूप से सोये हैं। इनकी साँसें स्वाभाविक रूप से चल रही हैं। लगातार इसकी साँसें समान अन्तर पर चल रही हैं। आँखें अच्छी तरह मुँदी है। उनमें न किसी प्रकार की विकृतियाँ हैं और न इनकी पुतलियाँ ही चंचल हैं, शरीर के प्रत्येक अंग शिथिल पड़े हैं। बिछावन से हाथ-पैर बाहर लटके रहे हैं। अगर ये सचमुच सोये नहीं होते तो सामने जलते दीप की रोशनी बर्दाश्त नहीं कर पाते।१८।

(चारों ओर देखकर) अरे यह मृदङ्ग है, यह पखावज है, ये छोटे ढोल हैं, यह वीणा, ये बाँसुरियाँ, ये पुस्तकें। तो क्या मैं किसी संगीतशिक्षक के घर में घुस आया हूँ। या घर की विशालता के धोखें में घुसा हूँ। तो क्या गृहपति निश्चय ही दरिद्र

च्चोरभयाद्वा भूमिष्ठं द्रव्यं धारयति ? तन्ममापि नाम शर्विलकस्य भूमिष्ठं द्रव्यम् । भवतु, बीजं प्रक्षिपामि । (तथा कृत्वा) निक्षिप्तं बीजं न क्वचित् स्फारीभवति । अये ! परमार्थदरिद्रोऽयम् । भवतु, गच्छामि ।

विदूषकः—(उत्स्वप्नायते) भो वअस्स ! संधी विअ दिस्सदि, चोरं विअ पेक्खामि; ता गेण्हदु भवं एदं सुवण्णभण्डअं । [भो वयस्य ! सन्धिरिव दृश्यसे, चौरमिव पश्यामि, तद् गृह्णातु भवानिदं सुवर्णभाण्डम् ।]

शर्विलकः—किं नु खलु अयमिह मां प्रविष्टं ज्ञात्वा दरिद्रोऽस्मीत्युपहसति ? तत् किं व्यापादयामि ? उत लघुत्वादुत्स्वप्नायते । (दृष्ट्वा) अये, जर्जर-स्नानशाटीनिबद्धं दीपप्रभयोद्दीपितं सत्यमेवैतदलङ्करणभाण्डम् । भवतु, गृह्णामि । अथ वा, न युक्तं तुल्यावस्थं कुलपुत्रजनं पीडयितुम् । तद् गच्छामि ।

नृपतित्रासात्=चोरभयात् तस्करसन्त्रासात्, भूमिष्ठम्=भूमौ निखातम्, द्रव्यम्=धनम् । बीजम्=मन्त्रप्रेरितं बीजविशेषम्, सर्षपम् वा, स्फारीभवति=प्रसरति, एतादृशं बीजं धनसहितभूतलपृष्टे क्षिप्तः बहुलीभवति ।

विदूषकः—(उत्स्वप्नायते=स्वप्ने जल्पति) भो वयस्य=हे मित्र, सन्धिरिव=खानिकमिव, दृश्यते=पश्यामि, चौरमिव=तस्करवत्, पश्यामि=किमप्यवलोकयामि, तत्=तस्मात्, गृह्णातु=धारय, भवान्=त्वम्, इदम्=एतत्, सुवर्णभाण्डम्=स्वर्णाभूषणपेटिकाम् ।

शर्विलकः—भाम्=शर्विलकम्, प्रविष्टं ज्ञात्वा=बुद्ध्वा, दरिद्रोऽस्मि=निर्धनोऽस्मि, इति मिथ्यासुवर्णभाण्डकथनेन, उपहसति=उपहासं करोति, तत्=तस्मात्, व्यापादयामि=मारयामि, उत्=किं वा, लघुत्वात्=क्षुद्रत्वात्, उत्स्वप्नायते=मनसः दौर्बल्यात्, स्वप्ने स्वर्णभाण्डं पश्यति (दृष्ट्वा=अवलोक्य ।) अये=आश्चर्यम्, जर्जरस्नानशाटीनिबद्धम्=अतीव शीर्णशाटीबद्धम् दीपप्रभयोद्दीपितम्=दीपकप्रकाशेन, प्रकाशितम्, सत्यमेव=यथार्थत एव, पुरोवर्तमानम्. अलङ्करणभाण्डम्=आभूषण-

---

है ? या राजा और चोर के डर से धन को धरती में गाड़ कर रक्खा है क्या ? तो धरती के नीचे का गड़ा हुआ धन तो शर्विलक का होता ही है । अच्छा तो इसे जांचने के लिए सरसों फेंकता हूँ । (सरसों फेंककर) अरे यह तो बढ़ती ही नहीं है । तो क्या ये सचमुच दरिद्र है ? तो यहाँ से मैं चलता हूँ ।

विदूषक—(सपने में बड़बड़ाता है ।) हे मित्र, मुझे सेंध दिखलाई पड़ रही है, चोर को मैं देख रहा हूँ । लो, इस गहने की पेटी को अपने पास रक्खो ।

शर्विलक—तो क्या मैं यहाँ आया हूँ, यह जानकर मेरी निर्धनता की यह खिल्ली उड़ा रहा है ? तो क्या इसे मार डालूँ या कमजोर दिमाग का होने के कारण सपने में बड़बड़ा रहा है ? (देखकर) फटी पुरानी नहाने की धोती की गाँठ में लपेटा हुआ जेवरों का डिब्बा तो दीप के प्रकाश में सचमुच चमचमा रहा है । अच्छा तो इसे

विदूषकः—भो वअस्स ! साविदोसि गोवम्हणकामाए, जइ एदं सुवण्ण भंडअं ण गेण्हसि । [भो वयस्य ! शापितोऽसि गोब्राह्मणकाम्यया, यदि एतत् सुवर्ण-भाण्डं न गृह्णासि ।]

शर्विलकः—अनतिक्रमणीया भगवती गोकाम्या, ब्राह्मणकाम्या च । तद् गृह्णामि । अथ वा, ज्वलति प्रदीपः । अस्ति च, मया प्रदीपनिर्वापणार्थमाग्नेयः कीटो धार्यते । तं तावत् प्रवेशयामि, तस्यायं देशकालः । एष मुक्तो मया कीटो यात्वेव अस्य दीपस्य उपरि मण्डलैर्विचित्रैर्विचरितुम् । एष पक्षद्वयानिलेन निर्वापितो भद्रपीठेन, धिक् कृतमन्धकारम् । अथ वा, मयापि अस्मद् ब्राह्मणकुले न धिक् कृतमन्धकारम् ? अहं हि चतुर्वेदविदोऽप्रतिग्राहकस्य पुत्रः शर्विलको नाम ब्राह्मणो गणिकामदनिकार्थमकार्यमनुतिष्ठामि । इदानीं करोमि ब्राह्मणस्य प्रणयम् । (इति जिघृक्षति ।)

पेटिकाम् । भवतु=अस्तु, गृह्णामि=ग्रहणं करोमि, अथवा=वा, न युक्तम्=नोचितम्, तुल्यावस्थम्=समानावस्थितिम्, कुलपुत्रजनम्=सत्कुलोत्पन्नं लोकम्, पीडयितुम्=उत्पीडनकर्त्तुम्, तत्=तस्मात्, गच्छामि=व्रजामि ।

विदूषकः—शापितोऽसि=शपथं कारितोऽसि, गोब्राह्मणकाम्यया—गवाम्=धेनूनाम्, ब्राह्मणानाञ्च=विप्रानाञ्च, काम्यया=वाञ्छया, मया इति शेषः, यदि=चेत्, एतत्=इदम्, सुवर्णभाण्डम् न गृह्णासि=ग्रहणं करोसि ।

शर्विलकः—अनतिक्रमणीया=अनुल्लङ्घनीया, भगवती=अतिशयशक्तिसम्पन्ना, गोकाम्या=गवामभिलाषा, ब्राह्मणकाम्या=द्विजाभिलाषा, मया=शर्विलकेन, प्रदीपनिर्वापणार्थम्=दीपकप्रशान्त्यर्थम्, आग्नेयः=दीपशिखासम्बन्धी, कीटः=कृमिः धार्यते=निजपार्श्वे संरक्ष्यते, एष मुक्तः=त्यक्तः, मया=शर्विलकेन, कीटः=शलभः, यातु=गच्छतु, अस्य=पुरोवर्त्तिनः, दीपस्य=प्रज्वलितदीपकस्य, उपरि=ऊर्ध्वम्, मण्डलैः=मण्डलाकारैः, विचित्रैः=कर्वुरितैः, विचरितुम्=भ्रमणं कर्त्तुम्, पक्षद्वयानिलेन=तनूरुहद्वयवायुना, निर्वापितः=शान्ति प्रापितः, भद्रपीठेन=एतदाख्यजन्तुना, धिगिति=आक्रोशे, कृतम्=विहितम्, अन्धकारम्=तमसावृत्तम्, अथ वा

लेता हूँ । अथवा—अपने ही तरह सुवंश में उत्पन्न इस गरीब को सताना क्या उचित होगा ? तो लौट चलूं ।

विदूषक—हे मित्र, तुम्हें गाय और ब्राह्मण की कसम है; यदि इस डिब्बे को तुम न लो ।

शर्विलक—गो-ब्राह्मण की कसम तो उपेक्षणीय नहीं है । इसीलिए लेता हूँ । पर, दीपक जो जल रहा है । तो फिर इसे बुझाने वाले फतिंगे तो मेरे पास हैं ही । लो इसे छोड़ दिया । देखो कैसे विचित्र ढंग से यह दीप शिखा पर घूमा रहा है । बस, अपनी पांख की हवा से बुता दिया । घुप अन्धेरा छा गया । मैंने भी तो इस ब्राह्मण के कुल को अन्धकाराच्छन्न कर दिया । मैं भी तो वेदज्ञ अप्रतिग्राही ब्राह्मण का

विदूषकः—भो वअस्स ! सीदलो दे अग्गहत्थो । [**भो वयस्य ! शीतलस्ते अग्रहस्तः ।**]

शर्विलकः—धिक् प्रमादः । सलिलसम्पर्कात् शीतलो मे अग्रहस्तः । भवतु, कक्षयोर्हस्तं प्रक्षिपामि । (नाटचेन सव्यहस्तमुष्णीकृत्य गृह्णाति ।)

विदूषकः—गहिदं ? [**गृहीतम् ?**]

शर्विलकः—अनतिक्रमणीयोऽयं ब्राह्मणप्रणयः । तद् गृहीतम् ।

मयापि =शर्विलकेनापि, अस्मद्ब्राह्मणकुले =अस्मिन्नकिंश्चन विप्रवंशे, मयापि कीटवत् अन्धकारं न कृतम् ? कृतमेवेति निश्चितम्, हि =यतः, अहम् =शर्विलकः, चतुर्वेदविदः चतुर्वेदज्ञस्य, अप्रतिग्राहकस्य =परं दानादिकमग्राहिणः, पुत्रः =सुतः, गणिकामदनिकार्थम् =मदनिकानामकवेश्यानिमित्तकम्, अकार्यम् =परधनापहरणरूपगर्हितकर्मम्, अनुतिष्ठामि =करोमि । इदानीम् =अधुना, ब्राह्मणस्य =विप्रस्य, प्रणयम् =प्रीतिः करोमि =विदधामि ।

(इति =एवं विचिन्त्य, जिघृक्षति =ग्रहीतुमिच्छति)

विदूषकः—भो वयस्य =हे मित्र, शीतलः =अनुष्णः, ते =तव, अग्रहस्तः = कराग्रभागः ।

शर्विलकः—धिक् प्रमादः =अनवधानताम् धिक्, सलिलसम्पर्कात् =जलसंसर्गात्, शीतलः =अनुष्णः, मे =मम, अग्रहस्तः =कराग्रभागः, भवतु =अस्तु, कक्षयोः = भुजकोटरयोः, हस्तम् =करम्, प्रक्षिपामि =स्थापयामि (नाट्येन =अभिनयेन, सव्यहस्तम्=वामहस्तम्, 'वामं शरीरं सव्यं स्यादपसव्यन्तु दक्षिणमि'त्यमरः । सिद्धान्तवागीशस्तु सव्यहस्तम् =दक्षिणहस्तम्, 'सव्यं तु दक्षिणे' इति विश्वः । उष्णीकृत्य =उष्णम् कृत्वा, गृह्णाति =ग्रहणं करोति ।)

विदूषकः—गृहीतम् =नीतम् ।

शर्विलकः—अनतिक्रमणीयः =अनुल्लङ्घनीयः, अयम् =एषः, ब्राह्मणप्रयणः = विप्रस्याग्रहः, तत् =तस्मात्, गृहीतम् ।

बेटा शर्विलक हूँ । फिर भी एक मदनिका नामक वेश्या के लिए मुझे ये अनुचित काम करना पड़ रहा है । तो फिर मैं अब ब्राह्मण देवता से प्रेम करूँ । (**जेवरात लेना चाहता है ।**)

विदूषक—मित्र तुम्हारी अँगुलियाँ तो बड़ी ठंडी हो रही है ।

शर्विलक—हाय, हाय, यह तो मेरी असावधानी के कारण ही हुआ है । पानी छूने से मेरी अंगुलियाँ ठंडी हो गई हैं । (**अंगुलियों को कांख के नीचे दबाकर गरमाता है । फिर अभिनय पूर्वक जेवर ले लेता है ।**)

विदूषक—ले लिया ?

शर्विलक—इस ब्राह्मण की कसम टाली नहीं जा सकती, इसलिए ले लिया ।

विदूषकः—दाणीं विक्किणिद-पण्णा विअ वाणिओ, अहं सुहं सुविस्सं।
[**इदानीं विक्रीतपण्य इव वाणिजः अहं सुखं स्वप्स्यामि।**]

शर्विलकः—महाब्राह्मण! स्वपिहि वर्षशतम्। कष्टम्, एवं मदनिकागणिकार्थे ब्राह्मणकुलं तमसि पातितम्। अथवा, आत्मा पातितः!

धिगस्तु खलु दारिद्र्यमनिवेदितपौरुषम्।
यदेतद्गर्हितं कर्म निन्दामि च करोमि च॥ १९॥

तद्यावत् मदनिकाया निष्क्रयणार्थं वसन्तसेनागृहं गच्छामि।

विदूषकः—इदानीम्=अधुना, विक्रीतपण्यः—विक्रीतम्=मूल्येन दत्तम्, पण्यम्=विक्रेयवस्तु येन सः, वणिक् इव, अहम्=मैत्रेयः, सुखं=आनन्देन सह, स्वप्स्यामि=शयिष्ये।

शर्विलकः—महाब्राह्मण=परिहाससूचकं सम्बोधनम्, स्वपिहि=शयनं कुरु, वर्षशतम्=शतवर्षपर्यन्तम्, कष्टम्=खेदम्, एवम्=अनेन रूपेण, मदनिकागणिकार्थे=वेश्यानिमित्तके, ब्राह्मणकुलम्=विप्रवंशम्, तमसि=अन्धकारे, पातितम्=प्रक्षिप्तम्, अथवा—आत्मा=स्वयं, पातितः=नरके निपातितः।

अन्वयः—अनिवेदितपौरुषम्, दारिद्र्यम्, धिक्, अस्तु, खलु, यत्, एतत्, गर्हितम्, कर्म, निन्दामि, च, करोमि च॥ १९॥

धिगिति। अनिवेदितपौरुषम्=अप्रदर्शितपुरुषार्थम्, दारिद्र्यम्=निर्धनत्वम्, धिक्=धिक्कारः, अस्तु=वर्त्ततास्, खलु=निश्चयेन, यत्=यस्मात्, एतत्=आरभ्यमाणम्, गर्हितम्=निन्दितम्, कर्म=कार्यम्, निन्दामि=निर्भर्त्सयामि, च करोमि च=विवशतया सम्पादयामि च। अत्र काव्यलिङ्गदीपकालङ्कारयोः परस्परनिरपेक्षतया च संसृष्टिः। अनुष्टुप् वृत्तम्॥ १९॥

तत् तावत्, मदनिकायाः=एतदाख्यगणिकायाः, निष्क्रयणार्थम्=दासीभावात् मोचनार्थम्, वसन्तसेनागृहम्, गच्छामि=यामि।

विदूषक—अपना समान बेचकर निश्चिन्त होकर सोने वाले बनिए की तरह सुख की नींद सोऊँगा।

शर्विलक—महाब्राह्मण, सौ साल तक अब सोते रहो। मुझे अफसोस केवल यही है कि एक सामान्य वेश्या मदनिका के लिए मैंने अपने एक सगोत्रीय ब्राह्मण को सदा के लिए अन्धकार में डाल दिया, या अपनी आत्मा का पतन कर डाला।

अप्रदर्शित पुरुषार्थ वाली इस गरीबी को धिक्कार है। जिस काम की मैं स्वयं निन्दा करता हूँ उसे ही करने के लिए इस गरीबी के कारण विवश भी होता हूँ॥ १९॥

तो फिर, अब वसन्तसेना के घर चलूँ और जेवर देकर मदनिका को उससे मुक्त करा लूँ।

(परिक्रम्य अवलोक्य च) अये ! पदशब्द इव । मा नाम रक्षिणः । भवतु, स्तम्भीभूत्वा तिष्ठामि । अथवा ममापि नाम शर्विलकस्य रक्षिणः ? योऽहम् ।

मार्जारः क्रमणे, मृगः प्रसरणे, श्येनो ग्रहालुञ्चने
सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने श्वा, सर्पणे पन्नगः ।
माया रूप-शरीर-वेश-रचने, वाग् देशभाषान्तरे,
दीपो रात्रिषु, सङ्कटेषु डुडुभो, वाजी स्थले, नौर्जले ।। २० ।।

अपि च—**भुजग इव गतौ, गिरिः स्थिरत्वे,**
पतगपतेः परिसर्पणे च तुल्यः ।
शश इव भुवनावलोकनेऽहं
वृक इव च ग्रहणे बले च सिंहः ।। २१ ।।

(परिक्रम्य=तत्र कियत्पदं सञ्चर्य, अवलोक्य=दृष्ट्वा च) अये=इति, पदशब्देन रदनिकायाः प्रवेशः सूच्यते । पदयोः=चरणयोः, शब्दः=ध्वनिः, इव श्रूयते । नाम=सम्भावनायाम्, रक्षिणः=प्रहरिणः, स्तम्भीभूत्वा=तूष्णींभूत्वा, तिष्ठामि= अवस्थानं करोमि । ममापि नाम शर्विलकस्य रक्षिणः=अर्थात् प्रहरिणः शर्विलकस्य किमपि कर्त्तुं न शक्नुवन्तीति गर्वोक्तिरियमिति । योऽहम्—

अन्वयः—क्रमणे, मार्जारः, प्रसरणे, मृगः, ग्रहालुञ्चने, श्येनः, सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने, श्वाः, सर्पणे, पन्नगः, रूपशरीरवेशरचने, माया, देशभाषान्तरे, वाक्, रात्रिषु, दीपकः, सङ्कटेषु, डुडुभः, स्थले, वाजी, जले, नौ ।। २० ।।

मार्जार इति । क्रमणे=कूर्दने, मार्जारः=बिडालः, प्रसरणे=तीव्रतरगमने, मृगः =हरिणः, ग्रहालुञ्चने=आच्छिद्याहरणे, श्येनः=कपोतारिः सुप्तासुप्तमनुष्यवीर्यतुलने= शयित-जागरितनरसामर्थ्यपरिज्ञाने, श्वाः=कुक्कुरः; सर्पणे=उरसा संसरणे, पन्नगः= नागः, रूपशरीरवेशरचने—रूपस्य=विभिन्नवर्णाकारस्य, शरीरस्य=जीवानां देहस्य, वेशस्य=वेशभूषादेः, रचने=निर्माणे, माया=इन्द्रजालम्, देशभाषान्तरे=सर्वदेशीय-वाग्व्यवहारभेदे, वाक्=साक्षात् वाणी, रात्रिषु=रजनीषु, दीपः=दीपकः, सङ्कटेषु =विपत्कालेषु, डुडुभः=वृकः, स्थले=भूमौ, वाजी=अश्वः, जले=सलिले, नौः= तरणिः, अहमस्मि, इति शेषः । उल्लेखालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दश्च ।। २० ।।

(**घूमकर और देखकर**) अरे किसी के चलने की आवाज सुनाई पड़ती है। क्या कोई चौकीदार तो नहीं आ गया । तो कुछ देर रुक जाऊँ । या मुझ शर्विलक को इन चौकीदारों से क्या डर ? जो मैं—

कूद कर भागने में विलाव, तेज दौड़ने में हिरण, झपट्टा मारकर छीनने में बाज सोते-जगते आदमी की ताकत मापने में कुत्ता, सरककर चलने में साँप, रूप परिवर्तन में माया, भाषा परिवर्तन में वाणी, रात के लिए दीप, संकट के समय सियार, धरती पर घोड़े और पानी में नाव की तरह की तरह हूँ ।। २० ।।

और भी—मैं सरकने में साँप, धीरज में पहाड़, तेज भागने में गरुड़, संसार को नाण लेने शशक, पकड़ में भेड़िये और पराक्रम में वनराज की तरह हूँ ।। २१ ।।

रदनिका—(प्रविश्य) हद्धी ! हद्धी ! वाहिर-दुआर-सालाए पसुत्तो वड्ढमाणओ, सोवि एत्थ ण दीसइ। भोदु, अज्जमित्तेअं सद्दावेमि। (इति परिक्रामति।) [**हा धिक्, हा धिक् ! बहिर्द्वारशालायां प्रसुप्तो वर्द्धमानकः, सोऽप्यत्र न दृश्यते। भवतु, आर्यमैत्रेयं शब्दापयामि।**]

शर्विलकः—(रदनिकां हन्तुमिच्छति। निरूप्य) कथं स्त्री ! भवतु, गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः।)

रदनिका—(गत्वा सत्रासम्) हद्धी ! हद्धी ! अम्हाणं गेहे सन्धि कप्पिअ चोरो णिक्कमदि। भोदु, मित्तेअं गदुअ पबोधेमि। (विदूषकमुपगम्य।) अज्जमित्तेअ ! उट्ठेहि उट्ठेहि; अम्हाणं गेहे सन्धि कप्पिअ चोरो णिक्कन्तो। [**हा धिक्, हा धिक् ! अस्माकं गेहे सन्धि कल्पयित्वा चौरो निष्क्रामति। भवतु, मैत्रेयं गत्वा प्रबोधयामि, आर्यमैत्रेय ! उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ, अस्माकं गेहे सन्धि कल्पयित्वा चौरो निष्क्रान्तः।**]

अन्वयः—अहम्, गतौ, भुजग इव, स्थिरत्वे, गिरिः, परिसर्पणे, च, पतगपतेः, तुल्यः, भुवनालोकने, शशः, इव, ग्रहणे, च, वृक, इव, वले च, सिंहः ॥ २१ ॥

भुजग इति। अहम्=शर्विलकः, गतौ=गमने, भुजगः=सर्पः, इव=यथा, स्थिरत्वे=दृढतायाम्, गिरिः=नग इव, परिसर्पणे=द्रुततरगमने, पतगपतेः=गरुडस्य, तुल्यः=सदृशः, भुवनालोकने=संसारदर्शने शशः=शशकः, इव=यथा, ग्रहणे=अभीष्टवस्तुधरणे, वृकः=शृगालः, बले=सत्त्वे, सिंहः=मृगपतिरिव अस्मि। पुष्पिताग्रा वृत्तम्—

रदनिका—(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा) हा धिक्=इति खेदे, शब्दापयामि=आह्वयामि।

शर्विलकः—(रदनिकाम्=चारुदत्तदासीम्, हन्तुम्=घातितुम्, इच्छति=अभिलषति) कथमिति प्रश्ने, स्त्री=नारी, भवतु=अस्तु, गच्छामि=व्रजामि (इति=इत्थं विचार्य, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

रदनिका—(गत्वा=समीपमुपगम्य, सत्रासम्=सभयम्) अस्माकम्=नः, गेहे=सदने, सन्धिम्=खनिकम्, कल्पयित्वा=विधाय, चौरः=तस्करः, निष्क्रामति=बहिर्गच्छति। आर्यमैत्रेय, उत्तिष्ठ=जाग्रत।

रदनिका—(**प्रवेश कर**) हाय रे हाय, बैठके में वर्द्धमान सोया था, वह भी कहीं गायब है ? अच्छा, आर्य मैत्रेय को ही पुकारती हूँ। (**घूमती है।**)

शर्विलक—(**रदनिका को मारना चाहता है। देखकर**) अरे, यह तो औरत है, तो चलूं। (**चला जाता है।**)

रदनिका—(**जाकर डरते हुए**) हाय, हमारे घर में तो सेंध लगाकर चोर भाग रहा है अच्छा, मैत्रेय को जगाती हूँ। (**विदूषक के पास जाकर**) आर्य मैत्रेय, उठो, घर में चोर सेंध लगाकर भाग गया।

विदूषकः—(उत्थाय ।) आः दासीए धीए ! किं भणासि 'चोरं कप्पिअ सन्धी णिक्कन्तो ?' । [**आः दास्याः पुत्रि ! किं भणसि 'चौरं कल्पयित्वा सन्धि-निष्क्रान्तः ?'**]

रदनिका—हदास ! अलं परिहासेण । किं ण पेक्खसि एणं ? । [**हताश ! अलं परिहासेन । किं न प्रेक्षसे एनम् ?**]

विदूषकः—आः दासीए धीए ! किं भणासि ? दुदिअं विअ दुआरअं उग्-घाणिदं त्ति । वअस्स ! चारुदत्त ! उट्ठेहि, उट्ठेहि ! अम्हाणं गेहे सन्धि दइअ चोरो णिक्कन्तो । [**आः दास्याः पुत्रि ! किं भणसि ? द्वितीयमिव द्वारकम् उद्घाटितमिति । भो वयस्य ! चारुदत्तः ! उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ । अस्माकं गेहे सन्धि दत्त्वा चौरो निष्क्रान्तः ।**]

चारुदत्तः—भवतु । भोः ! अलं परिहासेन ।

विदूषकः—भो ! ण परिहासो । पेक्खदु भवं । [**भोः ! न परिहासः प्रेक्षतां भवान् ।**]

चारुदत्तः—कस्मिन्नुद्देशे ? ।

विदूषकः—(उत्थाय=उत्थितो भूत्वा) दास्याः पुत्रि=साक्षेपम् सम्बोधन-पदम्, किं भणसि=किं कथयसि ? अस्माकं गेहे=भवने, चौरम्=तस्करम्, कल्प-यित्वा=विधाय, सन्धिम्=खनिकम्, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः, एवं विपरीतवक्तव्ये विदूषकस्य हास्यकरस्य कथनं युक्तमेवेति बोध्यम् ।

रदनिका—हताश=हे निरपेक्ष, अलम्=व्यर्थम्, परिहासेन, उपहासेन, किं न= नहि, प्रेक्षसे=पश्यसि, एनम्=सन्धिम् ।

विदूषकः—आः दास्याः पुत्रि=हा अधमे, किं भणसि=किं कथयसि, द्वितीय-मिव=अपरमिव, द्वारकम्=द्वारम्, अर्थात् अज्ञातं द्वारम्, उदघाटितम्=कृतम्, इति । भो वयस्य=हे मित्र, उत्तिष्ठ=जाग्रत, अस्माकम्, गेहे=भवने, सन्धिम्= खनिकम्, दत्त्वा=विधाय, चौरः=तस्करः, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।

चारुदत्तः—भवतु=अस्तु, अलम्=व्यर्थम्, परिहासेन=विनोदेन ।

विदूषकः—भोः=हे मित्र, न परिहासः=नास्ति विनोदः, प्रेक्षताम्=पश्यताम्, भवान्=त्वम् ।

चारुदत्तः—कस्मिन् उद्देशे=कस्मिन् स्थाने ।

विदूषक—(उठकर) क्या कहा रे दासी पुत्री, चोर काटकर सेंध निकल गई ।

रदनिका—अरे शरारती, तुम्हें मजाक सूझता है । इसे देखते नहीं क्या ?

विदूषक—अरी छोकरी, क्या बोलती हो—'दूसरा दरवाजा ही खोल दिया है ।' मित्र चारुदत्त, उठों-उठो, हमारे घर में सेंध लगाकर चोर भाग गया है ।

चारुदत्त—अच्छा, मजाक क्यों करते हो ?

विदूषक—मजाक नहीं करता दोस्त, जरा इधर देखो तो सही ।

चारुदत्त—तो फिर कहाँ सेंध लगाया है ?

विदूषकः—भो । एसो । [भोः एषः ।]

चारुदत्तः—(विलोक्य) अहो ! दर्शनीयोऽयं सन्धिः ।

उपरितलनिपातितेष्टकोऽयं
शिरसि तनुर्विपुलश्च मध्यदेशे ।
असदृश जन-सम्प्रयोगभीरो-
र्हृदयमिव स्फुटितं महागृहस्य ॥ २२ ॥

कथमस्मिन्नपि कर्मणि कुशलता ।

विदूषकः—भो वअस्स ! अअं सन्धी दुवेहिं ज्जेव दिण्णो भवे । आदु, आगन्तुएण सिक्खिदुकामेण वा । अण्णधा इध उज्जइणीए को अम्हाणं घर-विहवं ण जाणादि ? । [भो वयस्य ! एष सन्धिर्द्वाभ्यामेव दत्तो भवेत् । अथवा आगन्तुकेन शिक्षितुकामेन वा । अन्यथा इह उज्जयिन्यां कः अस्माकं गृहविभवं न जानाति ?]

विदूषकः—भोः एष=अत्र पश्य ।

चारुदत्तः—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अहो=आश्चर्यम्, दर्शनीयः=अवलोकनीयः, सन्धिः=सुरङ्गः ।

अन्वयः—उपरितलनिपातितेष्टकः, शिरसि, तनुः, मध्यदेशे, विपुलः, च, अयम् असदृशजनसम्प्रयोगभीरोः, महागृहस्य, स्फुटितम्, हृदयम्, इव ॥ २२ ॥

उपरीति । उपरितलनिपातितेष्टकाः=ऊर्ध्वभागाकृष्टेष्टकाः, शिरसि=मुखभागे, तनुः=क्षीणः, मध्यदेशे=मध्यभागे, विपुलः=विस्तीर्णः, अयम्=खानिकः, असदृश-जनस्य=अयोग्यचौरस्य, सम्प्रयोगात्=प्रवेशात्, भीरोः=भीतस्य, महागृहस्य=भवनस्य, स्फुटितम्=विदीर्णं, हृदयम्=चित्तम्, इव=यथा । उत्प्रेक्षालङ्कारः, पुष्पिताग्रा वृत्तञ्च ॥ २२ ॥

कथम्=इति जिज्ञासायाम्, अस्मिन्=एतस्मिन्, अपि=चेत्, कर्मणि=कार्ये, कुशलता=चतुरतेति ।

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, एषः=पुरोवर्त्तिनः, सन्धिः=सुरंगः, द्वाभ्यामेव दत्तः=कृतो भवेत्, आगन्तुकेन=अत्र नवागतेन, शिक्षितुकामेन=सुरंगभेदन-

---

विदूषक—ये क्या है ?

चारुदत्त—(**देखकर**) अहा, यह सेंध तो देखने लायक है ।

ऊपर की ईटें खिसकाकर संकरे मुँह और बड़े पेट वाली सेंध काटी गई है । लगता है घर में नीच चोर के घुसने से इस विशाल भवन की छाती ही फट गई हो ।

तो क्या सेंध काटने में भी चतुराई होती है क्या ?

विदूषक—निश्चय ही सेंध काटने वाला चोर कोई बाहर का होगा या नौसिखुआ । अन्यथा इस उज्जयिनी में कौन ऐसा आदमी है जो इस घर की गरीबी को नहीं जानता ?

चारुदत्तः—

> **वैदेश्येन कृतो भवेन्मम गृहे व्यापारमभ्यस्यता**
> **नासौ वेदितवान् धनैर्विरहितं विस्रब्धसुप्तं जनम् ।**
> **दृष्ट्वा प्राङ्महतीं निवासरचनामस्माकमाशान्वितः,**
> **सन्धिच्छेदनखिन्न एव सुचिरं पश्चान्निराशो गतः ।। २३ ।।**

ततः सुहृद्भ्यः किमसौ कथयिष्यति तपस्वी, 'सार्थवाहसुतस्य गृहं प्रविश्य न किञ्चिन्मया समासादितम्' इति ।

विदूषकः—भो ! कधं तं ज्जेव चोरहदअं अणुशोचसि । तेण चिन्तिदं

प्रकारः प्रशिक्षितुः कामेन, अन्यथा=इतरथा, इह=अस्मिन्, उज्जयिन्याम्=नगर्याम्, कः=व्यक्तिविशेषः, अस्माकम्=नः, गृहविभवम्=गृहे स्थितं धनसम्पदाम्, न=नहि, जानाति=ज्ञायते । अर्थात् सर्वविदितदरिद्रस्त्वमिति ।

अन्वयः—वैदेश्येन, व्यापारम्, अभ्यस्यता, मम, गृहे, कृतः, भवेत्, असौ, धनैः, विरहितम्, विश्रब्धसुप्तम्, जनम्, न, वेदितवान्, प्राक्, महतीम्, अस्माकम्, निवासरचनाम्, दृष्ट्वा, आशान्वितः, सुचिरम्, सन्धिच्छेदखिन्नः, पश्चात्, निराशः, एव, गतः ।। २३ ।।

वैदेश्येनेति । वैदेश्येन=विदेशवासिनां, व्यापारम्=सन्धिकार्यम्, अभ्यस्यता=अभ्यासङ्कुर्वता, मम=चारुदत्तस्य, गृहे=भवने, सन्धिः कृतः=कल्पितः, भवेत्=स्यात् असौ=चोरः, धनैः=विभवैः, विरहितम्=रहितम्, विश्रब्धसुप्तम्=निःशङ्कशयानम्, जनम्=लोकम्, न=नहि, वेदितवान्=ज्ञातवान्, प्राक्=पूर्वम्, महतीम्=विशालाम्, अस्माकम्=चारुदत्तस्य, निवासरचनाम्=गृहनिर्मितिम्, दृष्ट्वा=आलोक्य आशान्वितः=आशायुक्तः सन्, सुचिरम्=बहुकालपर्यन्तम्, सन्धिच्छेदखिन्नम्=सन्धिकर्मकुर्वता परिश्रान्तः, पश्चात्=अन्ते, निराशः=हताशः, एव गतः=प्रयातः । अनुमानालङ्कारः ।। २३ ।।

ततः=तर्हि, असौ=तस्करः, तपस्वी=वराकः 'तपस्वी तापसे चानुकम्पे त्रिष्वथ योषिति' इति मेदिनी । सुहृदभ्यः=मित्रेभ्यः, किं कथयिष्यति=निवेदयिष्यति, सार्थवाहसुतस्य=वणिक्पुत्रस्य, गृहम्=भवनम्, प्रविश्य=सन्धि विधाय, मया=चौरेण, न किञ्चित्=किमपि न, समासादितम्=प्राप्तम् इति ।

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, कथमिति कुत्सायाम्, तमेव=पूर्वोक्तमेव, चोर-

---

चारुदत्त—अनजाने ही किसी विदेशी ने अथवा नौसिखुए चोर ने यह सेंध लगाई होगी । गरीबी के कारण निश्चिन्त सोने वाले मुझे वह जान ही नहीं सका । घर की विशालता के भ्रम में इतनी मेहनत से उसने सेंध लगाई और भीतर कुछ हाथ नहीं लगने पर निराश होकर लौट जाना पड़ा होगा ।। २३ ।।

हाय, यह अभागा अपने दोस्तों से क्या कहेगा ? सेठ के घर में सेंध लगाकर भी मैंने कुछ नहीं पाया ।

विदूषक—हाय, तुम तो उस नीच चोर के बारे में सोचने लगे, जिसने सोचा

महन्तं एदं गेहं, इदो रअणभण्डअं सुवण्णभण्डअं वा णिक्कामइस्सामि। (स्मृत्वा, सविषादमात्मगतम्) कहिं तं सुवण्णभण्डअं ? (पुनरनुस्मृत्य, प्रकाशम्) भो वअस्स ! तुमं सव्वकालं भणसि 'मुक्खो मित्तेअओ, अपण्डिदो मित्तेअओ' त्ति। सुट्ठु मए किदं तं सुवण्णभण्डअं भवदो हत्थे समप्पअन्तेण। अण्णधा दासीए पुत्तेण अवहिदं भवे। [**भोः ! कथं तमेव चौरहतकमनुशोचसि। तेन चिन्तितम्—महदेतद्गेहम्, इतो रत्नभाण्डं सुवर्णभाण्डं वा निष्क्रामयिष्यामि। कुत्र तत् सुवर्णभाण्डकम् ? भो वयस्य ! त्वं सर्वकालं भणसि—'मूर्खो मैत्रेयः अपण्डितो मैत्रेयः' इति। सुष्ठु मया कृतं तत् सुवर्णभाण्डं भवतो हस्ते समर्पयता। अन्यथा दास्याः पुत्रेण अपहृतं भवेत्।**]

चारुदत्तः—अलं परिहासेन।

विदूषकः—भो ! जह णाम अहं मुक्खो, ता किं परिहासस्स वि देशआलं

हतकम्=चौरश्चासौ हतकश्च चौरहतकः=दुष्टचौरः, अनुशोचसि=चिन्तां करोसि। तेन=तस्करेण, चिन्तितम्=विचारितम्, एतत्=पुरोवर्त्तिनः, महत्=विशालः, गेहम्=भवनम्, इतः=अस्मद्गृहात्, रत्नभाण्डम्=मणिमञ्जूषा, वा=अथवा, सुवर्णभाण्डम्=कनकभाण्डम्, निष्क्रामयिष्यामि=निष्कासयिष्यामि, (स्मृत्वा=स्मरणं कृत्वा, सविषादम्=दुःखेन सहितम्, आत्मगतम्=स्वगतम्) कुत्र=कस्मिन् स्थाने, तत्=न्यासरूपः, सुवर्णभाण्डकम्=स्वर्णाभूषणपेटिकाम् (पुनः=भूयः, अनुस्मृत्य=स्मरणं कृत्वा, प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) भो वयस्य=हे मित्र, त्वम्=भवान्, सर्वकालम्=सर्वदैव, भणसि=कथयसि—'मूर्खः=अज्ञः, मैत्रेयः=विदूषकः, अपण्डितः=निर्बुद्धिः, मैत्रेयः' इति। सुष्ठु=साधु, मया=मैत्रेयेन, कृतम्=विहितम्, तत्=पूर्वोक्तम्, सुवर्णभाण्डम्=वसन्तसेनया निक्षिप्तं सुवर्णभाण्डम्, भवतः=श्रीमतः, हस्ते करे, समर्पयता=प्रददता, अन्यथा=इतरथा, दास्याः पुत्रेण=अधमचौरेण, अपहृतम्=चोरितम्, भवेत्=स्यादिति।

चारुदत्तः—अलम्=व्यर्थम्, परिहासेन=उपहासेन, मैत्रेयकरात् रात्रौ निद्रावस्थायामेवापगतं स्वर्णभाण्डमजानन् चारुदत्तस्येयमुक्तिः।

विदूषकः—भोः=हे मित्र, यथा नाम=यया रीत्या, अहम्=मैत्रेयः, मूर्खः=

होगा कि यह तो विशाल भवन है, निश्चय ही इस घर में मणिमञ्जूषा या सोने के जेवरात निकाल लूंगा। (**कुछ यादकर, दुःखी होते हुए, अपने आप**) अच्छा तो वह जेवर वाला बक्सा कहाँ है ? (**फिर कुछ याद कर, सुनाकर**) मित्र, तुम तो हर समय मैत्रेय को मूर्ख और बुद्धू ही कहते हो, पर सोचो वसन्तसेना के जेवरों के उस डिब्बे को तुम्हारे हाथों में देकर मैंने कितना अच्छा काम किया, अन्यथा यह अधम चोर तो हमसे चुरा ही लिये होता।

चारुदत्त—मजाक मत करो, मित्र।

ण जाणामि ? [भोः ! यथा नाम अहं मूर्खः, तत् किं परिहासस्यापि देशकालं न जानामि ?]

चारुदत्तः—कस्यां वेलायाम् ?

विदूषकः—भो ! जदा तुमं मए भणिदोसि—सीदलो दे अग्गहत्थो । [भोः यदा त्वं मया भणितोऽसि—शीतलस्ते अग्रहस्तः ।]

चारुदत्तः—कदाचिदेवमपि स्यात् ? । (सर्वतो निरूप्य, सहर्षम् ।) वयस्य ! दिष्टचा ते प्रियं निवेदयामि ।

विदूषकः—किं ण अवहिदं ? [किं न अपहृतम् ?]

चारुदत्तः—हृतम् ।

विदूषकः—तथा वि किं पिअं ? । [तथापि किं प्रियम् ?]

चारुदत्तः—यदसौ कृतार्थो गतः ।

विदूषकः—णासो क्खु सो । [न्यासः खलु सः ।]

निर्बुद्धिः, तत्=तर्हि, परिहासस्यापि=उपहासस्यापि, देशकालम्—देशेन=स्थान-विशेषेण युक्तः कालः=समयस्तमपि, न जानामि=नावगतोऽस्मि अपितु जानाम्येव ।

चारुदत्तः—कस्याम्=कस्मिन्, वेलायाम्=समये, प्रदत्तः ।

विदूषकः—भोः=हे मित्र, यदा=यस्मिन् काले, त्वम्=भवान्, मया=मैत्रेयेण, भणितः=कथितः, असि=वर्त्तसे, शीतलः=अनुष्णः, ते=तव, अग्रहस्तः=कराङ्गुलयः ।

चारुदत्तः—कदाचित्=संभवतः, एवमपि=यथा कथयसि तथैवमपि, स्यात्=भवेत् । (सर्वतः=चतुर्दिशः निरूप्य=अवलोक्य, सहर्षम्=सानन्दम् ।) वयस्य=हे मित्र, दिष्टचा=भाग्येन, ते=तव, प्रियम्=रुचिकरम्, निवेदयामि=कथयामि ।

विदूषकः—किमिति प्रश्ने, न=नहि, अपहृतम्=चोरितम् ।

चारुदत्तः—हृतम्=अपहृतमेव ।

विदूषकः—तथापि=तर्हि, किम् प्रियम्=रुचिकरम् ?

चारुदत्तः—यत्, असौ=चौरः, कृतार्थः=लब्धधनः, गतः=यातः ।

विदूषकः—न्यासः=वसन्तसेनायाः उपनिधिः, खलु=निश्चयेन, सः=असाविति ।

विदूषक—अरे, मैं मूर्ख तो हूँ, पर क्या हँसी और मजाक करने की जगह और समय भी नहीं जानता क्या ?

चारुदत्त—तुमने कब दिया ?

विदूषक—जिस समय मैंने कहा था—'आपकी अँगुलियाँ तो बड़ी ठंडी हैं ।'

चारुदत्त—शायद तुमने दे ही दिया हो । (चारों ओर देखकर, खुश होकर) भाग्य से मैं तुम्हें एक शुभ समाचार सुनाता हूँ ।

विदूषक—क्या उसने जेवर चुराया नहीं ?

चारुदत्त—चुरा लिया है ।

विदूषक—तो फिर शुभ समाचार क्या है ?

चारुदत्त—यही कि चोर सन्तुष्ट होकर तो लौटा है ।

विदूषक—हाय, वह तो वसन्तसेना की धरोहर थी ।

चारुदत्तः—कथं न्यासः । (मोहमुपगतः ।)

विदूषकः—समस्ससदु भवं । जइ णासो चोरेण अवहिदो, तुमं किं मोहं उवगदो ? [**समाश्वसितु भवान् । यदि न्यासश्चौरेणापहृतः, त्वं किं मोहमुपगतः ?**]

चारुदत्तः—(समाश्वस्य) वयस्य !

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ।। २४ ।।

भोः ! कष्टम् ।

यदि तावत् कृतान्तेन प्रणयोऽर्थेषु मे कृतः ।
किमिदानीं नृशंसेन चारित्रमपि दूषितम् ।। २५ ।।

चारुदत्तः—कथमित्याक्रोशे, न्यासः=निक्षिप्तः आसीदिति शेषः । (मोहम्=मूर्च्छाम्, उपगतः=प्राप्तः), यस्याः इदं निक्षेपमस्ति ताम्प्रति, किमुत्तरं दास्यामि' इति विचिन्त्य मोहमुपगतः ।

विदूषकः—समाश्वसितु=धैर्यधारणं कुरु, भवान्=त्वम् । यदि=चेत्, न्यासः=निक्षेपः, चौरेण=तस्करेण, अपहृतः=बलात् नीतः, तर्हि त्वम्=भवान्, किम्=कथम्, मोहम्=मूर्च्छाम्, उपगतः=प्राप्तोऽसि ?

चारुदत्तः—(समाश्वस्य=धैर्यं धृत्वा) वयस्य=हे मित्र—

अन्वयः—कः, भूतार्थम्, श्रद्धास्यति, सर्वः, माम्, तूलयिष्यति, हि, अस्मिन्, लोके, निष्प्रतापा, दरिद्रता, शङ्कनीया ।। २४ ।।

स इति । कः=जनः, भूतार्थम्=यथार्थघटिततथ्यम्, श्रद्धास्यति=विश्वसिस्यति सर्वः=अखिललोकः, माम्=अकिञ्चनं चारुदत्तम्, तूलयिष्यति=तूलवत् लघूकरिष्यति, हि=यतः, अस्मिन्=इह, लोके=संसारे, निष्प्रतापा=निस्तेजस्का, दरिद्रता=निर्धनता, शङ्कनीया=सन्देहयोग्या भवतीति शेषः । चौरणापहृतम् इति यथार्थवृतान्तम्, न कोऽपि विश्वसिष्यति प्रत्युत दरिद्रचारुदत्तेन स्वगृहे स्वर्णभाण्डं धृतं भवेदिति कथयिष्यतीति भावः । अनुष्टुप् छन्दः ।। २४ ।।

भोः कष्टम्=अतिदुखदं विषयमस्ति—

चारुदत्त—क्या कहा ? धरोहर थी । (**मूर्च्छित हो जाता है ।**)

विदूषक—अरे, आप धीरज तो रक्खें, यदि धरोहर को चोरों ने चुरा लिया तो फिर इसके लिए आप मूर्च्छित क्यों हो रहे हैं ?

चारुदत्त—(**आश्वस्त होकर**) मित्र,

भला सच्ची बात पर कौन विश्वास करेगा ? लोग तो मुझ पर ही उल्टे सन्देह करेंगे । क्योंकि, इस संसार में अपनी प्रभावहीनता के कारण गरीवी ही सारे शक का कारण होती है ।। २४ ।।

हाय कितनी तकलीफ है—

यदि भाग्य ने मेरा विभव छीन ही लिया तो क्या अब इस निष्ठुर ने मेरे चरित्र पर भी धब्बा लगाकर ही छोड़ा ।। २५ ।।

विदूषकः—अहं क्खु अवलविस्सं, केण दिण्ण ? केण गहिदं ? को वा सक्खि ? त्ति । [अहं खलु अपलपिष्यामि, केन दत्तम् ? केन गृहीतम् ? को वा साक्षी ? इति]

चारुदत्तः—अहमिदानीमनृतमभिधास्ये ?

भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यासप्रतिक्रियाम् ।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम् ।। २६ ।।

रदनिका—ता जाव अज्जा धूदाए गदुअ णिवेदेमि । [तद्यावत् आर्याधूतायै गत्वा निवेदयामि ।]

अन्वयः—यदि, तावत्, कृतान्तेन, मे, अर्थेषु, प्रणयः, कृतः, नृशंसेन, इदानीम्, चारित्रम्, अपि, दूषितम् ।। २५ ।।

यदीति । यदि=चेत्, तावदित्यवधारणे, कृतान्तेन=दैवेन 'कृतान्तो यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इत्यमरः । मे=मम चारुदत्तस्य, अर्थेषु=विभवेषु, प्रणयः=प्रीतिः, कृतः=विहितः, किन्तु नृशंसेन=निष्ठुरेण (इदानीम्) किम्=केन कारणेन, चारित्रम्=सच्चरित्रता, अपि दूषितम्=निन्दनीयम् कृतम् । अनुष्टुप् छन्दः ।। २५ ।।

विदूषकः—अहम्=विदूषकः, खलु=निश्चयेन, अपलपिष्यामि=अपलापं करिष्यामि, वसन्तसेनया चारुदत्तस्य भवने स्वर्णभाण्डं नैव स्थापितः, इत्येवं धूर्त्ततां करिष्यामीति भावः । केन=पुरुषेण, दत्तम्=स्थापितम्, केन=व्यक्तिविशेषेण, गृहीतम्=प्राप्तम्, कः=पुरुषः, वा=अथवा, साक्षी=प्रेक्षकः, इति ।

चारुदत्तः—अहम्=चारुदत्तः, इदानीम्=अधुना, अनृतम्=मिथ्या, अभिधास्ये =कथयिष्ये—

अन्वयः—भैक्ष्येन, अपि, न्यासप्रतिक्रियाम्, पुनः, अर्जयिष्यामि, चारित्रभ्रंशकारणम्, अनृतम्, नैव, अभिधाष्यामि ।। २६ ।।

भैक्ष्येणेति । भैक्ष्येन=भिक्षया, अपि=केवलम्, न्यासप्रतिक्रियाम्=निक्षेपपरिशोधम्, पुनः=भूयः, अर्जयिष्यामि=एकत्रीकरिष्यामि, किन्तु, चारित्रभ्रंशकारणम्=सच्चरित्रताविघातकहेतुभूतम्, अनृतम्=असत्यम्, नैव=कदाचिदपि न, अभिधाष्यामि=कथयिष्यामि । न्यासप्रतिशोधाय भिक्षाटनं करिष्यामि किन्त्वानृतभाषणं कदापि न करिष्यामि । अनुष्टुप्छन्दः ।। २६ ।।

रदनिका—तत्=तस्मात्, यावदित्यवधारणे, आर्या=सम्मान्या, धूतायै=

विदूषक—मैं झूठे ही कह दूँगा कि—किसने दिया ? किसने लिया ? और इसका गवाह कौन है ?

चारुदत्त—तो अब क्या मैं झूठ भी बोलूंगा ।

मैं भीख माँगकर भी वसन्तसेना का धरोहर लौटा दूँगा किन्तु, झूठ बोलकर किसी भी स्थिति में चरित्र की हत्या नहीं करूँगा ।। २६ ।।

रदनिका—तो चलकर मान्या धूता को क्यों न सारी बातें बतला दूँ ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

(ततः प्रविशति चेटया सह चारुदत्तवधूः)

वधूः—(ससम्भ्रमम्) अइ ! सच्चं अवरिक्खदसरीरो अज्जउत्तो अज्जमित्तेएण सह ? [**अयि ! सत्यम् अपरिक्षतशरीर आर्यपुत्र आर्यमैत्रेयेण सह ?**]

चेटी—भट्टिणि ! सच्चं ! किं तु जो सो वेस्साजणकेरको अलंकारको, सो अवहिदो । [**भट्टिनि ! सत्यम् । किन्तु यः स वेश्याजनस्य अलङ्कारकः सोऽपहृतः ।**]

(वधूर्मोहं नाटयति)

चेटी—समस्ससदु अज्जा धूदा । [**समाश्वसित्वार्या धूता ।**]

वधूः—(समाश्वस्य) हञ्जे ! किं भणासि ? 'अवरिक्खदसरीरो अज्जउत्तो' त्ति । वरं दाणिं सो सरीरेण परिक्खदो, ण उण चारित्तेण। संपदं उज्जइणीए जणो एव्वं मन्तइस्सदि—'दलिद्द्दाए अज्जउत्तेण ज्जेव ईदिसं अकज्जं अणुचिट्ठिदं'त्ति । (ऊर्ध्वमवलोक्य, निःश्वस्य च) भअवं कअन्त !

चारुदत्तभार्यायै । अत्र धूता=स्वधर्मभ्रंशभयात् कम्पिता तदाख्या चारुदत्तस्य पत्नी इति भट्टाचार्यः । स्वभर्त्तुः वेश्यासंसर्गाशङ्कया तद्धर्मध्वंसं मन्यमाना स्वधर्मं सङ्कटापन्नं ज्ञात्वाऽऽत्मरक्षणाय कम्पिता इत्यन्यः ।

(इति=एवमुक्तौ सत्याम्, सर्वे=भरताः, निष्क्रान्ताः=रङ्गभूमितः प्रस्थिताः)

(**तत इति ।** चेटया सह=रदनिकया सह, चारुदत्तवध्वा=धूतायाः प्रवेशं कथयति ।)

वधूः—(ससभ्रमम्=सोद्वेगम्) अयि=विस्मये, सत्यम्=यथार्थतः, अपरिक्षतम्=अनाहतम्, तस्करादिप्रहारैः, शरीरम्=देहं यस्य तथाभूतः, आर्यपुत्रः=मम स्वामी, आर्यमैत्रेयेण सह ?

चेटी—भट्टिनी=स्वामिनी, सत्यम्=तथ्यम्, किन्तु=किञ्च, यः सः=न्यासः, वेश्याजनस्य=वसन्तसेनायाः, अलङ्कारकः=सुवर्णभाण्डम्, अपहृतः=चोरितः ।

(वधूः मोहम्=मूर्च्छाम्, नाटयति=क्रिययाभिनयति ।)

चेटी—समाश्वसितु=धैर्यं धारयेत्यर्थः ।

वधूः—(समाश्वस्य=आश्वासं सम्यगवाप्य) हञ्जे=सेविके, किं भणसि=किं

(यह कहकर सभी बाहर चले गये ।)

(तदनन्तर दासी के साथ धूता की मंच पर उपस्थिति ।)

वधू—(**घबराहटपूर्वक**) क्या सचमुच, आर्य मैत्रेय के साथ स्वामी सकुशल हैं ?

चेटी—स्वामिनि, मालिक तो ठीक हैं ही, पर उस गणिका के आभूषणों को चोरों ने चुरा लिया ।

(वधू मूर्च्छित होने का अभिनय करती है ।)

चेटी—आर्या धूता, आप धीरज तो धारण करें ।

वधू—(**साँस लेकर**) चेटी क्या कह रही हो कि, उनकी देह में कोई चोट नहीं

पोक्खर-वत्त-पडिद-जलविन्दु-चंचलेहिं कीलसि दलिद्दपुरिसभाअधेएहिं। इअं च मे एक्का मादुघरलद्धा रअणावली चिट्ठदि, एदंपि अदिसोण्डीरदाए अज्जउत्तो ण गेण्हिस्सदि। हञ्जे! अज्जमित्तेअं दाव सद्दावेहि। [हञ्जे ! किं भणसि—'अपरिक्षतशरीरः आर्यपुत्रः' इति। वरमिदानीं स शरीरेण परिक्षतः न पुनश्चारित्रेण। साम्प्रतमुज्जयिन्यां जन एवं मन्त्रयिष्यति—'दरिद्रतया आर्यपुत्रेणैव ईदृशमकार्यमनुष्ठितम्। भगवन्! कृतान्त! पुष्करपत्रपतितजलबिन्दुचञ्चलैः क्रीडसि दरिद्रपुरुषभागधेयैः। इयञ्च मे एका मातृगृहलब्धा रत्नावली तिष्ठति। एतामपि अतिशौण्डीरतया आर्यपुत्रो न ग्रहीष्यति। हञ्जे। आर्यमैत्रेयं तावत् शब्दापय।]

चेटी—जं अज्जा धूदा आणवेदि। (विदूषकमुपगम्य) अज्जमित्तेअ! धूदा दे सद्दावेदि। [यदार्या धूता आज्ञापयति। आर्यमैत्रेय! धूता त्वां शब्दापयति।]

कथयसि, आर्यपुत्रः=मम पतिः, अपरिक्षतशरीरः=अनाहतदेहः, इति। इदानीम्=अधुना, सः=मम स्वामी, शरीरेण=देहेन, परिक्षतः=आहतः, वरम्=ममार्थे किञ्चित्प्रियम्, किन्तु, चारित्रेण=आत्मचरितेन, परिभ्रष्टः न वरम्। साम्प्रतम्=अधुना, उज्जयिन्याम्=अस्यां नगर्याम्, जनः=लोकः, एवम्=अनेन प्रकारेण, मन्त्रयति=समालोचयिष्यति, दरिद्रतया=निर्धनतया, आर्यपुत्रेणैव=चारुदत्तेनात्मनैव, ईदृशम्=न्यासापहरणरूपम्, अकार्यम्=अनुचितं कार्यम्, अनुष्ठितम्=कृतम्, (ऊर्ध्वम्=उपरि, अवलोक्य=दृष्ट्वा, निःश्वस्य=उच्छ्वासं गृहीत्वा) भगवन्=श्रीमन्, कृतान्त=दैव, पुष्करस्य=पद्मस्य, पत्रे=पुटे, पतिताः=निपतिताः, ये जलबिन्दवः=जलकणाः, तद्वत् क्रीडसि=मनोविनोदं कुरुषे, दरिद्रपुरुषाणाम्=निर्धनजनानां, भागधेयैः=भाग्यैः। इयम्=एषा, च=पुनः, मे=मम, एका=एकमात्रा, मातृगृहलब्धा=पितृगृहप्राप्ताः, रत्नावली=हारविशेषः, अतिशौण्डीरतया=अत्यन्तौदार्यवत्तया, आर्यपुत्रः=स्वामी, न ग्रहीष्यति=पत्नीधनत्वान्न स्वीकरिष्यति। हञ्जे=सेविके, आर्यमैत्रेयम्=विदूषकम्, शब्दापय=आह्वय।

चेटी—यत्=यथा, आर्या धूता=मान्या स्वामिनी, आज्ञापयति=आदिशति, आर्य मैत्रेय, धूता=भट्टिनी, त्वाम्=भवन्तम्, शब्दापयति=आह्वयति।

लगी है। धरोहर अपहरण का जो अब उन पर कलंक थोपा जायेगा, इससे अच्छा होता उनकी देह घायल हो जाती, पर चोरी नहीं होती। अब तो उज्जयिनी के लोग यही कहेंगे कि गरीबी के कारण चारुदत्त ने धरोहर पचा लिया है। **(ऊपर की ओर देखते हुए, लम्बी साँस लेकर)** हाय रे दैव, कमल के पत्तों पर पड़ी हुई पानी के बूँदों की तरह गरीबों के भाग्य से खिलवाड़ करते हो। मुझे नैहर में एक रत्नहार मिला है; अगर मैं इसे देना भी चाहूँगी तो अतिउदार होने के कारण स्वामी इसे भी नहीं लेंगे। दासी, आर्य मैत्रेय को तो जरा बुलाओ।

चेटी—जैसी आपकी आज्ञा। **(विदूषक के पास जाकर)** आर्य मैत्रेय, आपको मान्या धूता बुला रही है।

विदूषकः—कहिं सा ? । [कस्मिन् सा ?]

चेटी—एसा चिट्ठदि । उवसप्प । [एषा तिष्ठति । उपसर्प ।]

विदूषकः—(उपसृत्य) सोत्थि भोदीए । [स्वस्ति भवत्यै ।]

वधूः—अज्ज ! वन्दामि । अज्ज ! पुरत्थिआमुहो होहि । [आर्य ! वन्दे । आर्य ! पुरस्तान्मुखो भव ।]

विदूषकः—एसो भोदि ! पुरत्थिआमुहो संवृत्तो ह्मि । [एष भवति ! पुरस्तान्मुखः संवृत्तोऽस्मि ।]

वधूः—अज्ज ! पडिच्छ इमं । [आर्य ! प्रतीच्छ इमाम् ।]

विदूषकः—किं ण्णेदं ? [किं न्वेतत् ?]

वधूः—अहं क्खु रअणसट्ठिं उववसिदा आसि । तहिं जधा विहवाणुसारेण बम्हणो पडिग्गाहिदव्वो । सो अ ण पडिग्गाहिदो । ता तस्स किदे पडिच्छ इमं रअणमालिअं । [अहं खलु रत्नषष्ठीमुपोषिता आसम् । तस्मिन् यथाविभवानुसारेण ब्राह्मणः प्रतिग्राहयितव्यः । स च न प्रतिग्राहितः । तत् तस्य कृते प्रतीच्छ इमां रत्नमालिकाम् ।]

विदूषकः—कस्मिन्=कुत्र, सा=धूतेति ?

चेटी—एषा तिष्ठति=अत्र स्थिताऽस्ति, उपसर्प=समीपमागच्छ ।

विदूषकः—(उपसृत्य=समीपं गत्वा) स्वस्ति=कल्याणम्, भवत्यै=श्रीमत्यै भवतु ।

वधूः—आर्य=मान्य, वन्दे=नौमि, पुरस्तान्मुखो भवः=पूर्वाभिमुखो भव ।

विदूषकः—एष भवति=श्रीमति, पुरस्तान्मुखः=पूर्वाभिमुखः, संवृत्तोऽस्मि=सञ्जातोऽस्मि ।

वधूः—आर्य=हे मान्य, प्रतीच्छ=गृहाण, इमाम्=रत्नमालिकाम् ।

विदूषकः—किन्वेतत्=किमिदमस्ति ।

वधूः—अहम्=धूता, खलु=निश्चयेन, रत्नषष्ठीम्=एतन्नाम्ना प्रसिद्धं व्रतम्, उपोषिता=कृतोपवासा आसम् । तस्मिन्=व्रते, यथाविभवानुसारेण=सम्पत्त्यनुरूपम्,

---

विदूषक—वे कहाँ हैं ?

चेटी—यहाँ हैं, आप चलिए तो ।

विदूषक—(पास जाकर) आपका कल्याण हो ।

वधू—आर्य, प्रणाम करती हूँ, जरा आप पूरब की ओर मुँह तो करें ।

विदूषक—लीजिए श्रीमति, मैं पूर्वाभिमुख हो गया ।

वधू—आर्य इसे स्वीकार करें ।

विदूषक—यह क्या है ?

वधू—आर्य, मैंने रत्नषष्ठी व्रत किया है । इस व्रत में अपने विभव के अनुसार

विदूषकः—(गृहीत्वा) सोत्थि। गमिस्सं, पिअवअस्सस्स णिवेदेमि। [**स्वस्ति। गमिष्यामि। प्रियवयस्यस्य निवेदयामि।**]

वधूः—अज्जमित्तेअ ! मा क्खु मं लज्जावेहि। (इति निष्क्रान्ता।) [**आर्य-मैत्रेय ! मा खलु मां लज्जय।**]

विदूषकः—(सविस्मयम्) अहो ! से महाणुभावदा। [**अहो। अस्या महानुभावता।**]

चारुदत्तः—अये ! चिरयति मैत्रेयः। मा नाम वैक्लव्यादकार्यं कुर्यात्। मैत्रेय, मैत्रेय !

विदूषकः—(उपसृत्य) एसो म्हि। गेण्ह एदं। (रत्नावलीं दर्शयति।) [**एषोऽस्मि गृहाण एताम्।**]

चारुदत्तः—किमेतत् ?

ब्राह्मणः=विप्रः, प्रतिग्राहितव्यः=दातव्यः। तत्=तस्मात् तस्य=व्रतस्य, कृते=विहिते, इमाम्=मम करस्थाम्, रत्नमालिकाम्=रत्नहारम्, प्रतीच्छ=गृह्यताम्।

विदूषकः—(गृहीत्वा=नीत्वा) स्वस्ति=कल्याणमस्तु। गमिष्यामि=चलिष्यामि, प्रियवयस्यस्य=मित्रचारुदत्तस्य, निवेदयामि=वृत्तान्तं कथयामि।

वधूः—आर्य=मान्य, मैत्रेय, माम्=धूताम्, मा लज्जय=लज्जितां मा कुरु। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ता=बहिर्गता)

विदूषकः—(सविस्मयम्=साश्चर्यम्) अहो=प्रशंसासूचकमव्ययम्, अस्याः=धूतायाः, महानुभावता=उदारतेति भावः।

चारुदत्तः—अये=भोः, चिरयति=बिलम्बं करोति, मैत्रेयः=मम मित्रः, वैक्लव्यात्=शोकाकुलत्वात्, मा नाम=कदाचित्, अकार्यम्=आत्महत्यादिकमनुचितं कार्यम्, कुर्यात्=सम्पादयेदिति। रक्षकभ्रमेण तस्करहस्ते वसन्तसेनायाः सुवर्णभाण्डस्यार्पणात् मैत्रेयस्यापि विक्लवादयो बोध्यः।

विदूषकः—(उपसृत्य=समीपमागत्य) एषोऽस्मि=आगतोऽस्मि, एताम्=करस्थां रत्नावलीम्, गृहाण=ग्रहणं कुरु।

चारुदत्तः—किमेतत्=किमस्ति तव देयमिति जिज्ञासा।

ब्राह्मण को दान दिया जाता है। मैंने वह दान नहीं दिया है। अतः आप इस रत्नावली को स्वीकार करें।

विदूषक—(लेकर) कल्याण हो। चलूं मैं मित्र चारुदत्त को इसकी सूचना दे दूँ।

वधू—आर्य मैत्रेय, मुझे अधिक न लजाओ। (**कहकर निकल जाती है।**)

विदूषक—(**अचम्भा के साथ**) इस औरत की उदारता कमाल है।

चारुदत्त—अरे, मैत्रेय तो देर कर रहा है। कहीं अधिक विकलता के कारण आत्महत्या जैसे अनुचित कर्म न कर डाले। मैत्रेय, अरे ओ मैत्रेय।

विदूषक—(**पास आकर**) अभी आया, इसे लो। (**रत्नहार दिखलाता है।**)

चारुदत्त—यह क्या है ?

विदूषकः—भो ! जं दे सरिस-दार-संगहस्य फलं । [**भोः ! यत् ते सदृश-दारसङ्ग्रहस्य फलम् ।**]

चारुदत्तः—कथं ब्राह्मणी मामनुकम्पते ? कष्टम् ! इदानीमस्मि दरिद्रः !

आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः स्त्रीद्रव्येणानुकम्पितः ।
अर्थतः पुरुषो नारी, या नारी सार्थतः पुमान् ॥ २७ ॥

अथवा, नाहं दरिद्रः । यस्य मम—

विभवानुगता भार्या सुखदुःखसुहृद्भवान् ।
सत्यञ्च न परिभ्रष्टं यद्दरिद्रेषु दुर्लभम् ॥ २८ ॥

विदूषकः—भोः=अये मित्र, यत्=यथा, ते=तव, सदृशदारसङ्ग्रहस्य=स्वानुरूपपत्नी ग्रहणस्य, फलम्=परिणामम् । यतो हि—

सेवादासी, रतौ वेश्या, भोजने जननीसमा ।
विपत्काले परं मित्रं सा भार्या भुवि दुर्लभा ॥

चारुदत्तः—कथम्=इति प्रश्ने, ब्राह्मणी=मम पत्नी, माम्=चारुदत्तम्, अनुकम्पते=अनुग्रहं करोति, कष्टम्=खेदम्, इदानीम्=अधुना, अहं दरिद्रः=निर्धनः, अस्मि=भवामि ।

अन्वयः—आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः, स्त्रीद्रव्येण, अनुकम्पितः, पुरुषः, अर्थतः, नारी, या, नारी, सा अर्थतः, पुमान् ॥ २६ ॥

आत्मेति । आत्मभाग्यक्षतद्रव्यः=स्वदैवविनष्टविभवः, स्त्रीद्रव्येण=पत्नीप्रदत्तधनेन, अनुकम्पितः=अनुगृहीतः; पुरुषः=पौरुषगुणाश्रयः पतिः, अर्थतः=वस्तुतः, धनाद्वा, नारी=स्त्री, पोष्यत्वसाम्यादिति, तथा या=साहाय्यविधायिनी, नारी=स्त्री, सा अर्थतः=वस्तुतः, पुमान्=पुरुष इति । धनदानात् धूता पुंस्त्वमाचरति तथा तद्द्रव्येण कृतसाहाय्यः अहं नारी पदवीमधिरोहामि । अत्र परिणामालङ्कारः । केचित्तु काव्यलिङ्गम् । अनुष्टुप्छन्दः ॥ २७ ॥

अथवा=किं वा, न=नहि, अहम्=चारुदत्तः, दरिद्रः=निर्धनः । यस्य मम=चारुदत्तस्य—

अन्वयः—भार्या, विभवानुगता, भवान्, सुखदुःखसुहृत्, दरिद्रेषु, यत्, दुर्लभम्, सत्यम्, च, न, परिभ्रष्टम् ॥ २८ ॥

विदूषक—अपनी सुयोग्य पत्नी पाने का परिणाम ।

चारुदत्त—क्या ब्राह्मणी मुझ पर दया कर रही है । हाय, इस समय मैं कितना दरिद्र हो गया हूँ ।

अपने खराब भाग्य के कारण अब मैं अपनी पत्नी के धन पर पलने वाला बन गया हूँ । अपने काम से ही पुरुष कभी औरत बन जाता है और अपने काम से ही औरत मर्द बन जाती है ॥ २७ ॥

अथवा, मैं दरिद्र नहीं हूँ । क्योंकि मेरे,

विभव के अनुसार निर्वाह करने वाली पत्नी, सुख-दुःख में साथ निभाने वाला

मैत्रेय ! गच्छ रत्नावलीमादाय वसन्तसेनायाः सकाशम्। वक्तव्या च सा मद्वचनात्—यत् खल्वस्माभिः सुवर्णभाण्डमात्मीयमिति कृत्वा विश्रम्भाद् द्यूते हरितम्, तस्य कृते गृह्यतामियं रत्नावली इति।

विदूषकः—मा दाव अक्खाइदस्स अभुत्तस्स अप्पमुल्लस्स चोरेहिं अवहिदस्स कारणादो, चदुस्समुद्दसारभूदा रअणावली दीअदि। [मा तावत् अखादितस्य अभुक्तस्य अल्पमूल्यस्य चौरैरपहृतस्य कारणात् चतुःसमुद्रसारभूता रत्नावली दीयते।]

चारुदत्तः—वयस्य ! मा मैवम्।

विभवेति। भार्या=पत्नी, विभवानुगता=सम्पत्त्यनुरूपकार्यकारिणी, भवान्=त्वम्, सुखदुःखसुहृत्=सम्पत्तिविपत्त्योः सखा अस्तीति भावः। दरिद्रेषु=अस्मादृशेषु निर्धनेषु, यत्=सत्यादिरक्षणम्, दुर्लभम्=दुष्प्राप्यम्, सत्यम्=सत्यवचनम्, च=पुनः, न=नहि, परिभ्रष्टम्=नष्टम्। नानाकारणोपन्यासात् समुच्चयालङ्कारः। अनुष्टुप्छन्दः ॥ २८ ॥

मैत्रेय=हे मित्र, गच्छ=याहि, रत्नावलीम्=रत्नमालिकाम्, आदाय=गृहीत्वा, वसन्तसेनायाः=तदाख्यागणिकायाः, सकाशम्=सन्निधौ, वक्तव्या=कथनीया, सा=वसन्तसेना, मद्वचनात्=मम कथनात्—अस्माभिः=चारुदत्तप्रभृतिभिः, सुवर्णभाण्डम्=तव स्वर्णाभूषणम्, आत्मीयमिति=स्वकीयमिति, कृत्वा=विधाय, विश्रम्भात्=विश्वासात्, द्यूते=द्यूतक्रीडायाम्, हारितम्=पराजितम्, तस्य कृते=तदर्थे, गृह्यताम्=नीयताम्, इयम्=एषा, रत्नावली=रत्नमालिकेति।

विदूषकः—मा तावत्=एवं मा कुरु, अखादितस्य=अभक्षितस्य, अभुक्तस्य=अननुभूतस्य, अल्पमूल्यस्य=रत्नावल्यापेक्षया, हीनमूल्यस्य, चौरैः=तस्करैः, अपहृतस्य=चोरितस्य, कारणात्=हेतोः, चतुःसमुद्रसारभूता=चतुःसागरसम्भूतरत्नानां प्रधानभूता, इयम्=एषा, रत्नावली=रत्नमालिका, दीयते=समर्प्यते। तन्न युक्तमिति भावः।

तुम्हारे जैसे मित्र और सच्चाई का पल्ला थामे रहना भला किस गरीब को नसीब है पर, मेरे पास तो ये सारी चीजें मौजूद हैं ॥ २८ ॥

मित्र, इस रत्नहार को लेकर वसन्तसेना के पास जाओ और मेरी ओर से उसे कहो कि तुम्हारी धरोहर को भूल से अपना समझ कर मैं जूए में हार गया, उसके बदले में इस रतनहार को अपने पास रख लो।

विदूषक—नहीं, नहीं, जिसे तुमने खाया नहीं, अपने किसी काम में लाया नहीं, जो इसकी अपेक्षा कम कीमत की चीज है, जिसे चोरों ने चुरा लिया, उसके बदले इतनी कीमती रत्नावली मत दो।

चारुदत्त—नहीं दोस्त, ऐसी बात नहीं है।

यं समालम्ब्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु तया कृतः ।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्यैव दीयते ।। २९ ।।

तद्वयस्य ! अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया शापितोऽसि, नैनामग्राहयित्वा अत्रागन्तव्यम् । वद्र्धमानक !

एताभिरिष्टिकाभिः सन्धिः क्रियतां सुसंहतः शीघ्रम् ।
परिवाद-बहलदोषान्न यस्य रक्षां परिहरामि ।। ३० ।।

वयस्य ! मैत्रेय ! भवताप्यकृपण-शौण्डीर्यमभिधातव्यम् ।

अन्वयः—तया, यम्, विश्वासम्, समालम्ब्य, अस्मासु, न्यासः, कृतः, तस्य, महतः, प्रत्ययस्य, एव, एतत्, मूल्यम्, दीयते ।। २९ ।।

यमिति । तया=वसन्तसेनया, यम्=यत्, विश्वासम्=प्रत्ययम्, समालम्ब्य=आश्रित्य, अस्मासु=मादृशनिर्धनेषु, न्यासः=निक्षेपः, कृतः=सम्पादितः, तस्य=पूर्वोक्तस्य, महतः=अगाधस्य, प्रत्ययस्य=विश्वासस्य, एव, एतत्=रत्नावली, मूल्यम्=निष्क्रियं, दीयते=समर्प्यते । अतिशयोक्तिरलङ्कारः, अनुष्टुप्छन्दश्चेति ।।

तत्=तस्मात्, वयस्य=हे मित्र, अस्मच्छरीरस्पृष्टिकया=मदीयदेहस्पर्शेन, शापितोऽसि=सपथपूर्वकं सूचितोऽसि, न=नहि, एनाम्=रत्नावलीम्, अग्राहयित्वा=अदत्त्वा, अत्र=अस्मिन् स्थाने, आगन्तव्यम्=प्रत्यावर्त्तितव्यम् ।

अन्वयः—एताभिः, इष्टिकाभिः, सन्धिः, शीघ्रम्, सुसंहतः, क्रियताम् । परिवाद-बहलदोषात्, यस्य, रक्षाम्, न, परिहरामि ।। ३० ।।

एताभिरिति । एताभिः=तस्करेणोत्पाट्य क्षिप्ताभिः, इष्टिकाभिः=पदवमृत्खण्डैः, सन्धिः=खानिकः, शीघ्रम्=त्वरितम्, सुसंहतः=सम्यक्पूर्णः, क्रियताम्=सम्पाद्यताम्, परिवादे=लोकापवादे, अस्मिन् गृहे तस्करः प्रविष्टः आसीदेवं रूपे निन्दायाम्, बहलः=अधिकः, दोषः=दूषणं तस्मात्, यस्य=खानिकस्य, रक्षाम्=स्वरूपेणावस्थितम्, न=नहि, परिहरामि=उपेक्षे । काव्यलिङ्गमलङ्कारः, आर्या जातिः ।। ३० ।।

वयस्य=हे मित्र, मैत्रेय, भवताऽपि=त्वयापि, अकृपणम्=कार्पण्यहीनम्, शौण्डीर्यम्=औदार्यम्, यत्र तद यथा स्यात्तथा, अभिधातव्यम्=कथनीयम् ।

वसन्तसेना ने जिस विश्वास के साथ हमारे पास धरोहर रक्खी है, उसी बड़े विश्वास की यह कीमत दी जा रही है ।। २९ ।।

इसलिए हे मित्र, तुम्हें मेरी सौगन्ध है यदि तुम इसे उसको बिना दिए लौट आये । अरे ओ वर्द्धमानक,

इन बिखरी ईंटों से सेंध को शीघ्र भर दो । लोग जान लेंगे तो बड़ी निन्दा होगी । क्योंकि निन्दा बड़ी तेजी से फैलती है ।। ३० ।।

सखे, मैत्रेय, तुम भी निर्भीक होकर उसे सारी बातें बतला देना ।

विदूषकः—भो ! दलिद्दो किम् अकिवणं मन्तेदि ? । [**भोः ! दरिद्रः किम् अकृपणं मन्त्रयति ?**]

चारुदत्तः—अदरिद्रोऽस्मि सखे ! ('यस्य मम—विभवानुगता भार्या' इत्यादि पुनः पठति ।) तद्गच्छतु भवान् । अहमपि कृतशौचः सन्ध्यामुपासे ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति सन्धिच्छेदो नाम तृतीयोऽङ्कः ।

विदूषकः—भोः=अयि, दरिद्रः=अकिञ्चनः, किमिति प्रश्ने, अकृपणम्=कार्पण्यहीनम्, मन्त्रयति=वदति—इति काकुः ।

चारुदत्तः—अदरिद्रोऽस्मि=नाकिञ्चनोऽस्मि, सखे=हे मित्र ('यस्य मम—विभवानुगता···' इत्यादिकं श्लोकं पुनः=भूयः पठति=वाचयति ।) तत्=तस्मात्, गच्छतु=व्रजतु, भवान्=त्वम् । अहमपि=चारुदत्तोऽपि, कृतशौचः=निवृत्तप्रातःकृत्यम्, सन्ध्याम्=प्रातःसन्ध्याम्, उपासे=करोमि ।

(इति=एवमुक्त्वा, सर्वे=भरताः, निष्क्रान्ताः=रङ्गभूमितः प्रस्थिताः ।)

इति मृच्छकटिके शर्विलककृतसन्धिच्छेदस्य प्रधानतया
वर्ण्यविषयत्वात् सन्धिच्छेदो नाम तृतीयोऽङ्कः ।

(इति तृतीयोऽङ्कः)

विदूषक—हाय, क्या कोई गरीब भी निडर होकर कुछ कह सकता है ?

चारुदत्त—मैं दरिद्र नहीं हूँ दोस्त ! (**जिसके पास विभव के अनुसार चलने वाली पत्नी···२८वाँ श्लोक दुहराता है।**) इसलिए अब जाओ । देर न करो । मैं भी नित्यक्रिया से निवृत्त होकर सन्ध्यावन्दन करता हूँ ।

(**सभी चले जाते हैं।**)

तृतीय अंक समाप्त ।

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी ।)

चेटी—आणत्त म्हि अत्ताए अज्जआए सआसं गन्तुं । एसा अज्जआ चित्त-फलअ-णिसण्ण-दिट्ठी मदणिआए सह किं पि मन्तअन्ती चिट्ठदि । ता जाव उपसप्पामि । (इति परिक्रामति ।) [**आज्ञप्ताऽस्मि मात्रा आर्यायाः सकाशं गन्तुम् । एषा आर्य्या चित्रफलकनिषण्णदृष्टिर्मदनिकया सह किमपि मन्त्रयन्ती तिष्ठति । तद्यावदुपसर्पामि ।**]

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा वसन्तसेना मदनिका च ।)

वसन्तसेना—हञ्जे मदणिए ! अवि सुसदिसी इअं चित्ताकिदी अज्जचारुदत्तस्स ? । [**हञ्जे मदनिके ! अपि सुसदृशी इयं चित्राकृतिः आर्यचारुदत्तस्य ?**]

मदनिका—सुसदिसी । [**सुसदृशी ।**]

वसन्तसेना—कधं तुमं जाणासि ? । [**कथं त्वं जानासि ?**]

अथ पूर्वोक्तकथां सङ्घटयितुं पूर्ववर्णितायाः चेटयाः प्रवेशमाह—**तत इति ।**

चेटी—आज्ञप्ताऽस्मि=आदेशिताऽस्मि, मात्रा=जनन्या, आर्यायाः=वसन्तसेनायाः, सकाशम्=समीपम्, गन्तुम्=चलितुम् । एषा=सा, आर्या=मान्या वसन्तसेना, चित्रफलके=आलेख्यपटे, निषण्णा=संलग्ना, दृष्टिः=नेत्रम् यस्या सेति, मदनिकया=काचनसख्या, सह=साकम्, मन्त्रयन्ती=आलपन्ती, तिष्ठति तत्=तस्मात्, उपसर्पामि=समीपं गच्छामि । (इति=एवं विचार्य, परिक्रामति=तत्र कियत्पदं सञ्चरति)

(पूर्ववर्णितयोः सख्योः प्रवेशमाह—**तत इति**)

वसन्तसेना—हञ्जे=सेविके, अपि=चेत्, सुसदृशी=ममाकृतियोग्या, इयम्=पुरोवर्त्तमाना, चित्राकृतिः=चित्राकाराकृतिः, आर्य=मान्य, चारुदत्तस्य=सार्थवाहसुतस्येति ।

मदनिका—सुसदृशी=तवानुरूपा सौन्दर्यवती ।

वसन्तसेना—कथमिति प्रश्ने, त्वम्=मदनिका, जानासि=ज्ञाताऽसि ।

(इसके बाद चेटी का प्रवेश ।)

चेटी—वसन्तसेना की माँ ने मुझे उनके पास भेजा है । और ये अपनी आँखें चित्र में गड़ाए मदनिका से कुछ बातें कर रही हैं । तो क्यों न उनके पास ही चलूँ । **(घूमती है ।)**

(मंच पर पूर्वनिर्दिष्ट मदनिका और वसन्तसेना का प्रवेश ।)

वसन्तसेना—अरी मदनिके, आर्य चारुदत्त की यह चित्राकृति दर्शनीय एवं अनुरूप है ?

मदनिका—हाँ, अनुरूप आकृति है ।

वसन्तसेना—तुमने कैसे जाना ?

मदनिका—जेण अज्जआए सुसिणिद्धा दिट्टी अणुलग्गा। [**येन आर्यायाः सुस्निग्धा दृष्टिरनुलग्ना।**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! किं वेस-वास-दाक्खिण्णेण मदणिए ! एव्वं भणासि ?। [**हञ्जे ! किं वेशवासदाक्षिण्येन मदनिके ! एवं भणसि ?।**]

मदनिका—अज्जए ! किं जो ज्जेव जणो वेसे पडिवसदि, सो ज्जेव अलीअ-दक्खिणो भोदि ?। [**आर्ये ! किं य एव जनो वेशे प्रतिवसति, स एव अलीक-दक्षिणो भवति ?**]

वसन्तसेना—हञ्जे। णाणा-पुरिससंगेण वेस्साजणो अलीअदक्खिणो भोदि। [**हञ्जे ! नानापुरुषसङ्गेन वेश्याजनः अलीकदक्षिणो भवति।**]

मदनिका—जदो दाव अज्जआए दिट्ठी इध अभिरमदि हिअअं च; तस्स कारणं किं पुच्छीअदि ?। [**यतस्तावद् आर्याया दृष्टिरिह अभिरमते हृदयञ्च, तस्य कारणं किं पृच्छचते ?**]

मदनिका—येन=पुरुषविशेषेण, आर्यायाः=भवत्या, सुस्निग्धा=प्रेमपूर्णाः, दृष्टिः=नेत्रम्, अनुलग्ना=संसक्ता।

वसन्तसेना—हञ्जे=सेविके, वेशे=वेश्यालये 'वेशो वेश्याजनाश्रयः' इत्यमरः। वासः=निवासः तेन यत्, दाक्षिण्यम्=नैपुण्यम्, तेन, एवम्=अनेन प्रकारेण, भणसि=वदसि।

मदनिका—आर्ये=मान्ये, यः जनः, वेशे=वेश्यागृहे, प्रतिवसति=निवासं करोति, स एव अलीके=असत्ये, दक्षिणः=कुशलः, भवति=याति।

वसन्तसेना—हञ्जे, नानापुरुषसङ्गेन=अनेकजनसंसर्गेण, वेश्याजनः=गणिका, अलीकदक्षिणः=असत्यवादने प्रवीणः, भवति=याति।

मदनिका—यतः=यस्मात् कारणात्, आर्यायाः=भवत्याः, दृष्टिः=नेत्रम्, इह=चित्रस्थपुरुषविशेषे, अभिरमते=अनुरक्तो भवति, हृदयम्=चित्तम्, च=पुनः, तस्य=अनुरागातिशयस्य, कारणम्=हेतुः, किं पृच्छचते=कथं प्रश्नः क्रियते। इयमाकृतिः अतिरमणीया तस्मादयं चारुदत्तः तवानुरूपम्, तेन शीघ्रं गच्छ।

मदनिका—क्योंकि, आपकी आँखें उसमें रम-सी गई हैं।

वसन्तसेना—अरी मदनिके, वेश्या के घर में रहने के कारण ही बोलने में तुम इतनी चतुरा हो गई हो क्या ?

मदनिका—मान्ये, क्या जो वेश्या के घर में रहती है झूठ बोलने में वही पटु होती है क्या ?

वसन्तसेना—हाँ रे, अनेक लोगों के सम्पर्क में आने के कारण वह झूठ बोलने में निश्चय ही पटु हो जाती है।

मदनिका—जब आपकी आँखें और आपका हृदय इसमें रमे हैं तो फिर उसका अलग से कारण क्यों पूछ रही हैं ?

वसन्तसेना—हञ्जे ! सहीजणादो उवहसणीअदां रक्खामि । [**हञ्जे ! सखीजनादुपहसनीयतां रक्षामि ।**]

मदनिका—अज्जए ! एव्वं णेदं । सहीजणचित्ताणुवत्ती अबलाजणो भोदि । [**आर्ये ! एवं नेदम् । सखीजनचित्तानुवर्त्ती अबलाजनो भवति ।**]

प्रथमा चेटी—(उपसृत्य) अज्जए ! अत्ता आणवेदि—'गहिदावगुण्ठणं पक्खदुआरए सज्जं पवहणं । ता गच्च' त्ति । [**आर्ये ! माता आज्ञापयति—'गृहीतावगुण्ठनं पक्षद्वारे सज्जं प्रवहणम् । तद्गच्छ' इति ।**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! किं अज्जचारुदत्तो मं णइस्सदि ? । [**हञ्जे ! किम् आर्य-चारुदत्तो मां नेष्यति ?**]

चेटी—अज्जए ! जेण पवहणेण सह सुवण्ण-दससाहस्सिओ अलङ्कारओ अणुप्पेसिदो । [**आर्ये ! येन प्रवहणेन सह सुवर्ण-दशसाहस्त्रिकोऽलङ्कारः अनुप्रेषितः ।**]

वसन्तसेना—को उण सो ? [**कः पुनः सः ?**]

वसन्तसेना—सखीजनात्=परिचारिकायाः, वसन्तसेनयाऽयोग्यः नायकः वृत्तः इत्येवं रूपम् उपहासस्थितिम्, रक्षामि=निवारयामि ।

मदनिका—इदम्=पूर्वोक्तम्, एवम्=सखीजनोपहासरूपम्, न=नास्ति, कारणश्चात्र दर्शयति—अबलाजनः=स्त्रीजनः, सखीजनचित्तानुवर्त्ती=आलीजनभावनानुसारी, भवति=जायते ।

प्रथमा चेटी—(उपसृत्य=समीपमागत्य) आर्ये=मान्ये, माता=तव जननी, आज्ञापयति=आदिशति, गृहीतम्=धृतम्, अवगुण्ठनम्=वस्त्राच्छादनम्, येन तत् प्रवहणम्=स्यन्दनम्, पक्षद्वारे=पार्श्वद्वाराग्रे, सज्जम्=प्रस्तुतम् । तत्=तस्मात्, गच्छ=याहि, इति ।

वसन्तसेना—हञ्जे=सेविके, माम्=वसन्तसेनाम्, नेष्यति=स्वगृहे गमयिष्यति ।

चेटी—येन=पूर्वोक्तेन, प्रवहणेन=शकटेन, सुवर्णदशसाहस्त्रिकः=निकषाणां दशभिः सहस्त्रैः कृतः, अलङ्कारः =आभूषणः, अनुप्रेषितः=अनुप्रस्थापितः ।

वसन्तसेना—कः पुनः सः=बहुमूल्याभूषणप्रदानेन कः मामिच्छतीति प्रश्नः ।

वसन्तसेना—अरी सखियाँ, मजाक उड़ायेंगी, इससे बचना चाहती हूँ ।

मदनिका—आर्ये, ऐसी बात नहीं है; अबलाएँ तो इस क्षेत्र में एक दूसरे के प्रति हमदर्दी ही दिखलाती है ।

पहली चेटी—(**पास आकर**) आर्ये माता जी ने कहा कि बगल वाले दरवाजे पर पर्दा लगी गाड़ी खड़ी है उससे आप जायें ।

वसन्तसेना—अरी, आर्य चारुदत्त मुझे लिवाने आये हैं क्या ?

चेटी—जिसने गाड़ी के साथ दस हजार स्वर्ण मुद्रा की रत्नमाला भेजी है ।

वसन्तसेना—वह कौन है ?

चेटी—एसो ज्जेव राअस्सालो संठाणओ। [एष एव राजश्यालः संस्थानकः।]

वसन्तसेना—(सक्रोधम्) अवेहि। मा पुणो एव्वं भणिस्ससि। [अपेहि। मा पुनरेवं भणिष्यसि।]

चेटी—पसीददु पसीददु अज्जआ। संदेसेण म्हि पेसिदा। [प्रसीदतु, प्रसीदतु आर्या। सन्देशेनास्मि प्रेषिता।]

वसन्तसेना—अहं संदेसस्य ज्जेव कुप्पामि। [अहं सन्देशस्यैव कुप्यामि।]

चेटी—ता किंत्ति अत्तं विण्णविस्सं। [तत् किमिति मातरं विज्ञापयिष्यामि ?]

वसन्तसेना—एव्वं विण्णाविदव्वा—'जइ मं जीअन्तीं इच्छसि ता एव्वं ण पुणो अहं अत्ताए आण्णाविदव्वा।' [एवं विज्ञापयितव्या—यदि मां जीवन्तीमिच्छसि, तदा एवं न पुनरहं मात्रा आज्ञापयितव्या।

चेटी—जधा दे रोअदि। (इति निष्क्रान्ता।) [यथा ते रोचते।]

चेटी—एष एव=पुरोवर्तमान एव, राजश्यालः=नृपश्यालः, संस्थानकः।

वसन्तसेना—(सक्रोधम्=सकोपम्) अपेहि=दूरमपसर, माम्=वसन्तसेनाम्, पुनः=भूयः, एवम्=इत्थम्।

चेटी—प्रसीदतु=प्रसन्ना भवतु, आर्या=मान्या, सन्देशेन=तव मात्रावाचिकेन, प्रेषिता=उपस्थिता, अस्मि=भवामि।

वसन्तसेना—अहम्=वसन्तसेना, सन्देशस्यैव=संस्थानकगृहगमनरूपस्यैव, कुप्यामि =कोपं करोमीति भावः।

चेटी—तत्=तस्मात्, मातरम्=जननीमुपगम्य, किं विज्ञापयिष्यामि= निवेदयिष्यामि।

वसन्तसेना—एवं=इत्थम्, विज्ञापयितव्या=कथितव्या, यदि=चेत्, माम्= वसन्तसेनाम्, जीवन्तीम्=जीवनं धारयन्तीम्, इच्छसि=कामयसि, तदा=तर्हि, एवम्= पूर्वोक्तप्रकारम्, मात्रा=जनन्या, न पुनः आज्ञापयितव्या=आदेशितव्या।

चेटी—यथा=येन रूपेण, ते=तव, रोचते=कामयते। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ता=बहिर्गता)

चेटी—वह राजा का साला 'संस्थानक' है।

वसन्तसेना—(**गुस्सा कर**) यहाँ से भाग जाओ, फिर ऐसी बात मुँह से मत निकालना।

चेटी—आर्ये कृपा करें। मैं तो केवल संदेशवाहिका हूँ। इसमें मेरा क्या कसूर !

वसन्तसेना—मेरा गुस्सा भी तो ऐसे सन्देश पर ही है।

चेटी—तब मैं माता जी से लौटकर क्या कहूँ ?

वसन्तसेना—जाकर यही कह दो—अगर वे मुझे जिन्दा देखना चाहती है तो ऐसा आदेश फिर कभी न दें।

चेटी—जैसी आपकी आज्ञा (**चली जाती है।**)

शर्विलकः—(प्रविश्य)

दत्वा निशाया वचनीयदोषं निद्राञ्च जित्वा नृपतेश्च रक्ष्यान् ।
स एष सूर्योदयमन्दरश्मिः क्षपाक्षयाच्चन्द्र इवास्मि जातः ॥ १ ॥

अपि च—**यः कश्चित्त्वरितगतिर्निरीक्षते मां**
सम्भ्रान्तं द्रुतमुपसर्पति स्थितं वा ।
तं सर्वं तुलयति दूषितोऽन्तरात्मा
स्वैर्दोषैर्भवति हि शङ्कितो मनुष्यः ॥ २ ॥

शर्विलकः—(प्रविश्य=रंगे समागत्य ।)

अन्वयः—निशायाः, वचनीयदोषम्, दत्वा, निद्राम्, नृपतेः, रक्ष्यान्, च, जित्वा, स, एषः, क्षपाक्षयात्, सूर्योदयमन्दरश्मिः, चन्द्रः, इव, जातः, अस्मि ॥ १ ॥

दत्वेति । निशायाः=रात्रेः, वचनीयदोषम्=अपवादरूपदूषणम् 'बहुदोषा हि शर्वरीति' दत्वा=समर्प्य, निद्राम्=स्वापम्, नृपतेः=भूपतेः, रक्ष्यान्=नगररक्षकान्, च=पुनः, जित्वा=तिरस्कृत्य, सः=असौ, एषः=अहं शर्विलकः, क्षपाक्षयात्=रात्रेः अवसानात्, सूर्योदयमन्दरश्मिः=प्रभाकरप्रकाशेन कान्तिहीनकराः, चन्द्रः=निशाकरः, इव=यथा, जातः=संवृत्तः, अस्मि=वर्त्ते । उपमालङ्कारः । उपजाति वृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—यः, कश्चित्, त्वरितगतिः, सम्भ्रान्तम्, माम्, निरीक्षते, वा, स्थितम्, द्रुतम्, उपसर्पति, दूषितः, अन्तरात्मा, तम्, सर्वम्, तुलयति, हि, मनुष्यः, स्वैः, दोषैः, शङ्कितः, भवति ॥ २ ॥

य इति । यः कश्चित्=कोऽपि मनुष्यः, त्वरितगतिः=द्रुतगामी, सम्भ्रान्तम्=चौर्यकर्मानुष्ठानात् चकितम्, माम्=शर्विलकम्, निरीक्षते=पश्यति, वा=अथवा, स्थितम्=गतिनिवृत्तम्, द्रुतम्=शीघ्रम्, उपसर्पति=आगच्छति, दूषितः=कलुषितः, अन्तरात्मा=ममान्तःकरणम्, तम्=पूर्वोक्तम्, सर्वम्=सकलम्, तुलयति=आशङ्कते हि=यतः, मनुष्यः=नरः, स्वैः=स्वकीयैः, दोषैः=अपराधैः, शङ्का=सन्देहः, सञ्जाता=उत्पन्ना अस्य इति शङ्कितः=सन्दिग्धः, भवति=जायते । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ २ ॥

शर्विलक—(**प्रवेश कर**)

रात को दोषवती बताकर नींद तथा सिपाहियों को जीतकर, इस समय रात के बीत जाने पर, सूर्योदय के कारण फीके पड़े चांद की तरह मैं भी असहाय हो गया हूँ ॥ १ ॥

और भी—

तेज चलने वाला कोई आदमी यदि मुझे डरा हुआ देखता है या जब मैं कहीं खड़ा रहता हूँ तो जल्दी में मेरी ओर आता है तो उन्हें देखकर मेरा मन सन्दिग्ध हो उठता है । मनुष्य सचमुच अपने कृत अपराध के कारण ही सन्दिग्ध होता है ॥ २ ॥

मया खलु मदनिकायाः कृते साहसमनुष्ठितम् ।

परिजनकथासक्तः कश्चिन्नरः समुपेक्षितः
क्वचिदपि गृहं नारीनाथं निरीक्ष्य विवर्जितम् ।
नरपतिबले पार्श्वायाते स्थितं गृहदारुवद्
व्यवसितशतैरेवंप्रायैर्निशा दिवसीकृता ॥ ३ ॥

(इति परिक्रामति ।)

वसन्तसेना—हञ्जे ! इमं दाव चित्तफलअं मम सअणीए ठाविअ तालवेण्टअं गेण्हिअ लहु आअच्छ । [**हञ्जे ! इदं तावत् चित्रफलकं मम शयनीये स्थापयित्वा तालवृन्तकं गृहीत्वा लघु आगच्छ ।**]

मया=शर्विलकेन, मदनिकायाः कृते=मदनिकार्थम्, साहसम्=अपकर्मम्, अनुष्ठितम्=कृतमिति ।

अन्वयः—परिजनकथासक्तः, कश्चित्, नरः, समुपेक्षितः, क्वचिदपि, गृहम्, नारीनाथम्, निरीक्ष्य, विवर्जितम्, नरपतिबले, पार्श्वायाते, गृहदारुवत्, स्थितम्, एवम्प्रायैः, व्यवसितशतैः, निशा, दिवसीकृता ॥ ३ ॥

परिजनेति । परिजनकथासक्तः=परिचारकवार्त्तासंलग्नः, कश्चित्=कोऽपि, नरः=लोकः, समुपेक्षितः=परित्यक्तः, क्वचिदपि=कुत्रचिदपि, गृहम्=भवनम्, नारीनाथम्=स्त्रीसहायम्, निरीक्ष्य=अवलोक्य, विवर्जितम्=परित्यक्तम्, नरपतिबले=नृपनियोजितनगररक्षके, पार्श्वायाते=समीपोपस्थिते, गृहदारुवत्=स्तम्भकाष्ठवत्, स्थितम्=अवस्थितम्, एवंप्रायैः=इत्थम्भूतैः, व्यवसितानाम्=व्यापाराणाम्, शतैः=शतसंख्यकैः, निशा=रात्रिः, दिवसीकृता=दिनवत् कृता । स्वभावोक्ति एवं काव्यलिङ्गमलङ्कारौ । हरिणीवृत्तम् ॥ ३ ॥

(इति=एवमुक्त्वा, परिक्रामति=कियत्पदं सञ्चरति ।)

वसन्तसेना—इदम्=एतत्, चित्रफलकम्=चित्रपटम्, शयनीये=शय्यायाम्, स्थापयित्वा=प्रस्थाप्य, तालवृत्तकम्=तालपत्रम्, गृहीत्वा=नीत्वा, लघु=शीघ्रम्, आगच्छ=मत्समीपमागच्छ ।

मैंने मदनिका के कारण ही यह चोरी की है ।

किसी घर में चोरी इसलिए नहीं की कि उस घर के लोग जगे थे । किसी घर की उपेक्षा इसलिए कर दी कि उस घर में औरतें ही औरतें थी । कहीं पहरेदार पास आ गया तो काठ के खंभे की तरह खड़ा रहकर समय काट दिया । इस तरह सैकड़ों काम से मैंने रात को दिन बना दिया ॥ ३ ॥

(घूमता है ।)

वसन्तसेना—अरी इस फोटो को मेरे विछावन पर रखकर शीघ्र पंखा लेकर लौट आओ ।

मदनिका—जं अज्जआ आणवेदि। (इति फलकं गृहीत्वा निष्क्रान्ता।) [यदार्य्या आज्ञापयति।]

शर्विलकः—इदं वसन्तसेनाया गृहम्। तद्यावत् प्रविशामि। (प्रविश्य।) क्व नु मया मदनिका द्रष्टव्या ?

(ततः प्रविशति तालवृन्तहस्ता मदनिका)

शर्विलकः—(दृष्ट्वा) अये इयं मदनिका—

मदनमपि गुणैर्विशेषयन्ती
रतिरिव मूर्त्तिमती विभाति येयम्।
मम हृदयमनङ्गवह्नितप्तं
भृशमिव चन्दनशीतलं करोति ॥ ४ ॥

मदनिके !

मदनिका—यत्=यथा, आर्या=मान्या, आज्ञापयति=आदिशति (इति=एवमुक्त्वा, फलकं=चित्रपटम्, गृहीत्वा=नीत्वा, निष्क्रान्ता=रङ्गभूमितः प्रस्थिताः।)

शर्विलकः—इदम्=पुरोवर्त्तिनम्, वसन्तसेनायाः, गृहम्=भवनम्, क्व नु=कुत्र, मया शर्विलकेन मदनिका, द्रष्टव्या=अन्वेष्टव्येति भावः।

(ततः=तदनन्तरम्, तावृन्तहस्ता=व्यजनकरा, मदनिका प्रविशति।)

शर्विलकः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य।) अये=इत्याश्चर्यम्, इयम्=एषा, मदनिका।

अन्वयः—गुणैः, मदनमपि, विशेषयन्ती, मूर्त्तिमती, रतिः, इव, विभाति। या, इयम्, अनङ्गवह्नितप्तम्, मम, हृदयम्, भृशम्, चन्दनशीतलम्, करोति, इव ॥ ४ ॥

मदनमिति। गुणैः=सौन्दर्यविलासादिभिः, मदनमपि=मन्मथमपि, विशेषयन्ती=जयन्ती, मूर्त्तिमतीम्=देहधारिणीम्, रतिः=कामप्रिया, इव=यथा, विभाति=शोभते, या=पूर्वोक्तगुणविशिष्टा, इयम्=एषा, अनङ्गवह्निसन्तप्तम्=कामानलसन्तप्तम्, मम=शर्विलकस्य, हृदयम्=चित्तम्, भृशम्=अत्यर्थम्, चन्दनशीतलम्=चन्दनानुलेपनेन शैत्ययुक्तं, करोति=विदधति, इव=यथा। पुष्पिताग्रावृत्तम् ॥ ४ ॥

मदनिका—जैसी आपकी आज्ञा (**चित्रपट लेकर चली जाती है।**)

शर्विलक—यही तो वसन्तसेना का भवन है, तो भीतर चलूं। (**भीतर जाकर**) किधर खोजूं ?

(**इसी बीच पंखा लेकर आती हुई मदनिका का प्रवेश।**)

शर्विलक—(**देखकर**) अरे यही तो मदनिका है—

अपने गुणों से कामदेव को मोहित कर यह साक्षात् रति की तरह शोभ रही है। कामाग्नि में जलते हुए मेरे हृदय पर तो मानो यह चन्दन का लेप ही है ॥ ४ ॥

मदनिके !

मदनिका—(दृष्ट्वा) अम्मो ! कथं सव्विलओ । सव्विलअ ! साअदं ते ! कहिं तुमं ? । [**अहो ! कथं शर्विलकः । शर्विलक ! स्वागतं ते । कस्मिन् त्वम् ?**]

शर्विलकः—कथयिष्यामि ।

(इति सानुरागमन्योन्यं पश्यतः ।)

वसन्तसेना—चिरअदि मदणिआ । ता कहिं णु क्खु सा ? (गवाक्षकेण दृष्ट्वा) कधं एसा केणावि पुरिसकेण सह मन्तअन्ती चिट्ठदि । जधा अदिसिणिद्धाए णिच्चलदिट्ठीए आपिबन्ती विअ एदं णिज्झाअदि, तधा तक्केमि, एसो सो जणो एदं इच्छदि अभुजिस्सं कादुं । ता रमदु रमदु । मा कस्सावि पीदिच्छेदो भोदु । ण क्खु सद्दाविस्सं [**चिरयति मदनिका । तत् कस्मिन् नु खलु सा । कथमेषा केनापि पुरुषकेण सह मन्त्रयन्ती तिष्ठति । यथा अतिस्निग्धया निश्चलदृष्ट्या आपिबन्तीव एतं निध्यायति, तथा तर्कयामि—एष स जन एनाभिच्छति अभुजिष्यां कर्तुम् । तत् रमतां रमताम् । मा कस्यापि प्रीतिच्छेदो भवतु । न खलु शब्दापयिष्यामि ।**]

मदनिका—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) अहो=इत्याश्चर्ये, स्वागतम्=शोभनमागतम्, ते=तव, कस्मिन् त्वम्=कुत्र त्वं चलितोऽसि ।

शर्विलकः—कथयिष्यामि=निवेदयिष्यामि ।

(अन्योऽन्यम्=परस्परम्, सानुरागम्=अनुरागसहितम्, पश्यतः=अवलोकयतः ।)

वसन्तसेना—चिरयति=विलम्बं करोति, तत्=तस्मात्, कस्मिन् नु=कुत्र खलु सा=मदनिका, कथम् इति जिज्ञासायाम् (गवाक्षकेन=लघुवातायनेन, दृष्ट्वा=अवलोक्य) एषा=मदनिका, केनाऽपि=अपरिचितेन, पुरुषकेण=नरेण, सह=साकम्, मन्त्रयन्ती=गुप्तमालपन्ती, तिष्ठति=स्थिताऽस्ति, अतिस्निग्धया=रागातिशयेन, निश्चलदृष्ट्या=निर्निमेषनयनेन, आपिबन्तीव=सतृष्णमवलोकयन्तीव, एवम्=अनेन प्रकारेण, निध्यायति=निरीक्षते, तया=रीत्या, तर्कयामि=अनुमानं करोमि, एष सः=दृष्टपूर्वः, जनः=लोकः, अभुजिष्याम्=दासीभावविरहिताम्, शब्दापयिष्यामि=आकारयिष्यामि ।

मदनिका—(**देखकर**) अरे शर्विलक, 'स्वागतम्' । कहाँ से आ रहे हो ?

शर्विलक—बतलाऊँगा । (**एक दूसरे को प्रेमपूर्वक देखते हैं ।**)

वसन्तसेना—मदनिका बड़ी देर कर रही है । तो फिर कहाँ चली गई । (**खिड़की से झाँककर**) अरे यह तो किसी मर्द के साथ बातचीत कर रही है । दोनों ही एक दूसरे को आँखों ही आँखों में पी रहे हैं । इससे अनुमान करती हूँ कि यह वही पुरुष है जो मदनिका को हमारे घर के बन्धन से मुक्त कराने आया है । अच्छा तो जी भर कर रमण करो । इनके प्रेम में हम बाधक नहीं बनेंगे । इन्हें अब पुकारूँगी नहीं ।

मदनिका—सव्विलअ ! कधेहि । [**शर्विलक ! कथय ।**]

(शर्विलकः सशङ्कं दिशोऽवलोकयति ।)

मदनिका—सव्विलअ ! किं ण्णेदं ? ससङ्को विअ लक्खीअसि । [**शर्विलक ! किन्विदम् ? सशङ्क इव लक्ष्यसे ।**]

शर्विलकः—वक्ष्ये त्वां किञ्चित् रहस्यम्, तद्विविक्तमिदम् ?

मदनिका—अध इं ? [**अथ किम् ?**]

वसन्तसेना—कधं परमरहस्सं । ता ण सुणिस्सं । [**कथं परमरहस्यम् । तत् न श्रोष्यामि ।**]

शर्विलकः—मदनिके ! किं वसन्तसेना मोक्ष्यति त्वां निष्क्रयेण ?

वसन्तसेना—कधं मम सम्बन्धिणी कधा । ता सुणिस्सं इमिणा गवक्खेण ओवारिदसरीरा । [**कथं मम सम्बन्धिनी कथा । तत् श्रोष्यामि अनेन गवाक्षेण अपवारितशरीरा ।**]

मदनिका—शर्विलक ! कथय=कुशलं ब्रूहि । समागमनस्य कारणं वद इत्यर्थः ।

(शर्विलकः सशङ्कम्=सन्दिग्धदृष्टया, दिशः=परितः, अवलोकयति=पश्यति ।)

मदनिका—किन्विदम्=किमेतत्, सशङ्कम्=सन्दिग्धम्, इव=यथा, लक्ष्यसे= प्रतीयसे ।

शर्विलकः—वक्ष्ये=कथयिष्यामि, त्वाम्=मदनिकाम्, किञ्चित्=किमपि, रहस्यम्= गोपनीयतथ्यम्, तत्=तस्मात्, इदम्=स्थानविशेषम्, विविक्तम्=जनशून्यम् ।

मदनिका—अथ किम्=अस्त्येवं स्वीकरोमीति ।

वसन्तसेना—परमरहस्यम्=अतिगोप्यम्, तन्न श्रोष्यामि=तन्न मया श्रोतव्यमिति ।

शर्विलकः—त्वाम्=मदनिकाम्, मोक्ष्यति=मुक्तं करिष्यति, निष्क्रयेण=अर्थविनिमयेन ।

वसन्तसेना—कथम्=तत्किम् ? मम=वसन्तसेनायाः, सम्बन्धिनी=सम्पर्किनी, कथा=वार्त्ता, तत्=तर्हि, श्रोष्यामि=श्रवणं करिष्यामि, अनेन=एतेन, गवाक्षेण= पार्श्वद्वारेण, अपवारितशरीरा=गोपितदेहा ।

मदनिका—शर्विलक, कहो कैसे जाना हुआ ?

(**शर्विलक डरते हुए चारों ओर देखता है ।**)

मदनिका—शर्विलक, पता नहीं तुम क्यों भयभीत-से लग रहे हो ।

शर्विलक—तुमसे कुछ गोपनीय बातें कहनी है । क्या यह जगह निरापद है ?

मदनिका—हाँ, है ।

वसन्तसेना—अतिगोपनीय, तो नहीं सुनूंगी ।

शर्विलक—मदनिके, धारक-धन लौटा देने पर क्या वसन्तसेना तुम्हें मुक्त कर देगी ?

वसन्तसेना—यह तो मेरे सम्बन्ध की ही बातें हैं, तब तो छिपकर झरोखे से अवश्य ही सुनूंगी ।

मदनिका—सव्विलअ ! भणिदा मए अज्जआ, तदो भणादि, जइ मम सच्छन्दो, तदा विणा अत्थं सव्वं परिजणं अभुजिस्सं करइस्सं । अध सव्विलअ ! कुदो दे एत्तिओ विहवो ? जेण मं अज्जआसआसादो मोआइस्ससि । [**शर्विलक ! भणिता मया आर्य्या, ततो भणति; यदि मम स्वच्छन्दः तदा बिना अर्थं सर्वं परिजनमभुजिष्यं करिष्यामि । अथ शर्विलक ! कुतस्ते एतावान् विभवः ? येन मामार्य्यासकाशात् मोचयिष्यसि ।**]

शर्विलकः—

दारिद्रयेणाभिभूतेन त्वत्स्नेहानुगतेन च ।
अद्य रात्रौ मया भीरु ! त्वदर्थे साहसं कृतम् ॥ ५ ॥

वसन्तसेना—पसण्णा से आकिदी, साहसकम्मदाए उण उव्वेअणीआ । [**प्रसन्ना अस्य आकृतिः, साहसकर्मतया पुनरुद्वेजनीया ।**]

मदनिका—भणिता=कथिता, मया=मदनिकया, आर्या=वसन्तसेना, ततः=तच्छ्रुत्वा, भणति=वदति, यदि=चेत्, मम स्वच्छन्दः=स्वातन्त्र्यम्, तदा=तर्हि, विना अर्थम्=धनं विहाय, सर्वम्=सकलम्, परिजनम्=सेवकम्, अभुजिष्यम्=अदासम्, करिष्यामि । कुतः=कस्मात्, एतावान्=पर्याप्तम्, विभवः=धनम्, येन=द्रव्येण, माम्=मदनिकाम्, आर्या=मान्या वसन्तसेना, सकाशात्=पार्श्वात्, मोचयिष्यसि=मुक्तं कारयिष्यसि ।

अन्वयः—हे भीरु, दारिद्र्येण, अभिभूतेन, च, त्वत्स्नेहानुगतेन, मया, अद्य, रात्रौ त्वदर्थे, साहसम्, कृतम् ॥ ५ ॥

दारिद्र्येणेति । हे भीरु=भयशीले, दारिद्र्येण=अकिंचनतया, अभिभूतेन=पराजितेन, च=तथा, त्वत्=मदनिकायाः, स्नेहः=अनुरागः, तेन अनुगतः=युक्तस्तेन, मया=शर्विलकेन, अद्य, रात्रौ=निशायाम्, त्वदर्थे=तव कृते, साहसम्=चौर्यम्, कृतम्=सम्पादितम् । 'साहसं तु दमे दुष्करकर्मणि अविमृष्यकृतौ धाष्टर्चे' इति हैमः । अस्मिन् श्लोके पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५ ॥

वसन्तसेना—अस्य=शर्विलकस्य, आकृतिः=मूर्तिः, प्रसन्ना=मुदिता, पुनः=भूयः, साहसकर्मतया=साहसिकचौर्यकार्येण, उद्वेजनीया=उद्वेगोत्पादिकेति ।

मदनिका—शर्विलक, मैंने वसन्तसेना से इस सम्बन्ध में बातें की हैं । उनका कहना है कि इस सन्दर्भ में उनका वश चलता तो वे सारे सेवकों को यों ही मुक्त कर देती । पर, तुम्हारे पास इतने पैसे कहाँ से आये कि तुम मुझे उनसे पैसे देकर छुड़ा लोगे ?

शर्विलक—अरी डरपोक, गरीब होते हुए भी तुम्हारे प्रेम के वशीभूत होकर आज रात मैंने चोरी की है ॥ ५ ॥

वसन्तसेना—इसका चेहरा तो खुश नजर आता है, पर चोरी करने के कारण भीतर से डरा है ।

मदनिका—सव्विलअ ! इत्थीकल्लवत्तस्स कारणेण उहअं पि संसए विणिक्खित्तं। [शर्विलक ! स्त्रीकल्यवर्त्तस्य कारणेन उभयमपि संशये विनिक्षिप्तम् ।]

शर्विलकः—किं किम् ?

मदनिका—सरीरं चारित्तं च । [शरीरं चारित्रञ्च ।]

शर्विलकः—अपण्डिते ! साहसे श्रीः प्रतिवसति ।

मदनिका—सव्विलअ ! अखण्डिदचारित्तोसि । ता ण हु दे मम कारणादो साहसं करन्तेण अच्चन्तविरुद्ध आचरिदं । [शर्विलक ! अखण्डितचारित्रोऽसि, तत् खलु त्वया मम कारणात् साहसं कुर्वता अत्यन्तविरुद्धमाचरितम् ।]

शर्विलकः—

नो मुष्णाम्यबलां विभूषणवतीं फुल्लामिवाहं लतां
विप्रस्वं न हरामि काञ्चनमथो यज्ञार्थमभ्युद्धृतम् ।
धात्र्युत्सङ्गगतं हरामि न तथा बालं धनार्थी क्वचित्
कार्य्याकार्य्यविचारिणी मम मतिश्चौर्य्येऽपि नित्यं स्थिता ।। ६ ।।

मदनिका—स्त्रीकल्यवर्त्तस्य=नारीरूपप्रातर्भोज्यस्य, नगण्यस्येति भावः, कारणेन= हेतुना, उभयमपि=द्वयमपि, संशये=सन्देहे, विनिक्षिप्तम्=निपातितम् ।

शर्विलकः—किम्, किम्=किमुभयम् ? तद्ब्रूहि ।

मदनिका—शरीरम्=देहम्, चारित्र्यम्=चरितम् ।

शर्विलकः—अपण्डिते=मूर्खे, साहसे=साहसिकक्रकृत्ये, श्रीः=लक्ष्मीः, प्रतिवसति =निवासं करोति ।

मदनिका—अखण्डितचारित्रोऽसि=अक्षतचरितोऽसि, तत्=तस्मात्, त्वया= शर्विलकेन, मम कारणात्=मदर्थे, साहसम्=चौर्यम्, कुर्वता=विदधता, अत्यन्त्यविरुद्धम्=लोकशास्त्रविरुद्धम्, आचरितम्=व्यवहृतम् । वक्रोक्तिगर्भितमिदं कथनम् ।

अन्वयः—धनार्थी, अहम्, फुल्लाम्, लताम्, इव, विभूषणवतीम्, अबलाम्, नो, मुष्णामि, विप्रस्वम्, अथो, यज्ञार्थम्, अभ्युद्धृतम्, काञ्चनम्, न, हरामि, तथा, क्वचित्, धात्र्युत्सङ्गगतम्, बालम्, न, हरामि, चौर्ये, अपि, मम, मतिः, नित्यम्, कार्याकार्यविचारिणी, स्थिता ।। ६ ।।

मदनिका—शर्विलक, क्षणिक औरत-सुख के लिए तुमने दोनों गँगाये ।

शर्विलक—कौन दोनों ?

मदनिका—देह और चरित्र को ।

शर्विलक—मूर्खे, साहस में लक्ष्मी का निवास है ।

मदनिका—हाँ शर्विलक, तुम्हारा चरित्र निर्दोष है । पर, मेरे लिए चोरी करके तुमने अपने आचरण के विरुद्ध काम किया ।

शर्विलक—धनलिप्सु होकर भी मैंने कभी फूलों से लदी लता की तरह जेवरों से सजी औरतों को कभी नहीं लूटा है, ब्राह्मणों का धन एवं यज्ञ के लिए संचित सोना

तद्विज्ञाप्यतां वसन्तसेना—

अयं तव शरीरस्य प्रमाणादिव निर्मितः।
अप्रकाश्यं ह्यलङ्कारः मत्स्नेहाद्धार्य्यतामिति ॥ ७ ॥

मदनिका—सव्विलअ ! अप्पकाश्शं अलङ्कारओ त्ति दुवेवि ण जुज्जदि । ता उवणेहि दाव पेक्खामि एदं अलंकारअं । [**शर्विलक ! अप्रकाश्यम् अलङ्कारकः इति द्वयमपि न युज्यते । तदुपनय तावत् प्रेक्षे एतमलङ्कारकम् ।**]

नो इति । धनार्थी=अर्थलिप्सुः, अहम्=शर्विलकः, फुल्लाम्=प्रस्फुटितपुष्पाम्, लताम्=वल्लरीम्, इव=यथा, विभूषणवतीम्=भूषणधारिणीम्, अबलाम्=स्त्रियम्, नो=नहि, मुष्णामि=हरामि, विप्रस्वम्=ब्राह्मणविभवम्, अथो=तथा, यज्ञार्थम्=यज्ञनिष्पादनार्थम्, अभ्युदधृतम्=सञ्चितम्, काञ्चनम्=कनकम्, न=नहि, हरामि=चोरयामि, तथा क्वचित्=अपि कुत्रचित्, धात्र्युत्सङ्गतम्=उपमातुः क्रोडे स्थितम्, बालम्=बालकम्, न हरामि=न चोरयामि, चौर्य्ये=चौरकर्मणि, अपि मम=शर्विलकस्य, मतिः=बुद्धिः, नित्यम्=सर्वदा, कार्यम्=करणीयम्, अकार्यम्=अकरणीयम्, विचारिणी=विवेकधारिणी, स्थिता=वर्त्तते । अत्र श्रौती उपमा, द्वितीयपादे तुल्ययोगिता शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

तत् तस्मात्, विज्ञाप्यताम्=कथ्यताम्, वसन्तसेना—

अन्वयः—अयम्, अलङ्कारः तव, शरीरस्य, प्रमाणात् इव, निर्मितः, अप्रकाशः, हि, मत्स्नेहात्, धार्यताम्, इति ॥ ७ ॥

अयमिति । अयम्=प्रदीयमानः, अलङ्कारः=आभूषणम्, तव=भवत्याः, शरीरस्य=देहस्य, प्रामाणात्=प्रमाणङ्कृत्वा, इव=यथा, निर्मितः=घटितः, अप्रकाशः=अदर्शनीयः, हि=अवश्यम्, मत्स्नेहात्=ममानुरागात्, धार्यताम्=धारणं क्रियताम् । अत्र क्रियोत्प्रेक्षा, पथ्यावक्त्रं वृतञ्चेति ॥ ७ ॥

मदनिका—अप्रकाश्यम्=गोपनीयम्, अलङ्कारकः=आभूषणम्, द्वयमपि=धारणं गोप्यञ्चेति उभयम्, न युज्यते=नोचितं प्रतीयते । तत्=तस्मात्, उपनय=समीपमानय, प्रेक्षे=पश्यामि, एतम्=समानीतम्, अलङ्कारकम्=भूषणम् ।

भी कभी नहीं चुराया है, किसी धाय की गोद से भी कभी किसी बच्चे का अपहरण नहीं किया है, चोरी में भी मेरी बुद्धि उचितानुचित का विचार करती है ॥ ६ ॥

तो जाकर वसन्तसेना से कहो—

ये जेवर आपके ही प्रमाण का बना है, कृपया मेरे स्नेह से इसे आप छिपाकर पहन लें ॥ ७ ॥

मदनिका—खुले आम नहीं पहनने लायक ये जेवर और हम लोगों जैसी पहनने वाली, इन दोनों बातों की संगति ठीक से नहीं बैठती । फिर भी दो, देखूं जेवर कैसे हैं ?

शर्विलकः—इदमलङ्करणम् । (इति साशङ्कं समर्पयति ।)

मदनिका—(निरूप्य) दिट्ठपुरुव्वो विअ अअं अलंकारओ । ता भणेहि कुदो दे एसो ? [**दृष्टपूर्व इवायमलङ्कारः । तद्भण कुतस्ते एषः ?**]

शर्विलकः—मदनिके ! किं तव अनेन ? गृह्यताम् ।

मदनिका—(सरोषम् ।) जइ मे पच्चअं ण गच्छसि, ता किं णिमित्तं मं णिक्किणसि ? । [**यदि मे प्रत्ययं न गच्छसि, तत् किं निमित्तं मां निष्क्रीणासि ?**]

शर्विलकः—अयि ! प्रभाते मया श्रुतं श्रेष्ठिचत्वरे—यथा सार्थवाहस्य चारुदत्तस्य इति ।

(वसन्तसेना मदनिका च मूर्च्छां नाटयतः ।)

शर्विलकः—इदम्=एतत्, अलङ्करणम्=भूषणम् । (साशङ्कम्=सभयम्, समर्पयति=ददाति ।)

मदनिका—(निरूप्य=अवलोक्य ।) दृष्टपूर्वः=पूर्वमवलोकितः, इव=यथा, अयम्=पुरोदृश्यमानम्, अलङ्कारः=आभूषणम् । तत्=तस्मात्, भण=वद, कुतः=कस्मात्, ते=तव, एषः=अलङ्कारः ।

शर्विलकः—अनेन=तर्कवितर्केन, तव=भवत्याः, किम्=किम्प्रयोजनम्, गृह्यताम्=नीयताम् ।

मदनिका—(सरोषम्=सक्रोधम्) यदि=चेत्, मे=मम, प्रत्ययम्=विश्वासम्, न=नहि, गच्छसि=करोषि, तत्=तर्हि, किं निमित्तम्=किंप्रयोजनकम्,, माम्=मदनिकाम्, निष्क्रीणासि=धनदानेन मोचयितुमिच्छसि ।

शर्विलकः—प्रभाते=प्रातःकाले, मया=शर्विलकेन, श्रुतम्=आकर्णितम्, श्रेष्ठिचत्वरे=वणिग्जननिवासस्थाने, सार्थवाहस्य=वणिग्जनस्य, चारुदत्तस्य=एतदाख्यवणिक्पुत्रस्य, इति ।

(मूर्च्छाम्=संज्ञालोपम्, नाटयतः=अभिनयतः ।)

शर्विलक—ये रहे जेवर। (**कुछ डरते हुए देता है ।**)

मदनिका—(**देखकर**) ये जेवर तो पहले के देखे हुए लगते हैं । फिर भी बतलाओ तुम्हें ये कहाँ मिले ?

शर्विलक—मदनिके, तुम्हें इससे क्या मतलब ? इसे तुम रख लो ।

मदनिका—(**गुस्सा कर**) यदि तुम मुझ पर भरोसा नहीं करते हो, तो फिर छुड़ाना ही क्यों चाहते हो ?

शर्विलक—अरी, आज सबेरे मैंने सुना है कि ये जेवर सेठों के मुहल्ले में रहने वाले सार्थवाह चारुदत्त के हैं ।

(वसन्तसेना और मदनिका दोनों बेहोश होने का अभिनय करती हैं ।)

शर्विलकः—मदनिके ! समाश्वसिहि । किमिदानीं त्वम्—

विषादस्रस्तसर्वाङ्गी सम्भ्रमभ्रान्तलोचना ।
नीयमानाऽभुजिष्यात्वं कम्पसे नानुकम्पसे ॥ ८ ॥

मदनिका—(समाश्वस्य) साहसिअ ! ण क्खु तुए मम कारणादो इमं अकज्जं करन्तेण, तस्सिं गेहे कोवि वावादिदो परिक्खदो वा ? [साहसिक ! न खलु त्वया मम कारणादिदमकार्यं कुर्वता तस्मिन् गेहे कोऽपि व्यापादितः परिक्षतो वा ?]

शर्विलकः—मदनिके भीते सुप्ते न शर्विलकः प्रहरति । तन्मया न कश्चिद् व्यापादितो नापि परिक्षतः ।

मदनिका—सच्चं ? [सत्यम् ?]

शर्विलकः—समाश्वसिहि=धैर्यधारणं कुरु, इदानीम्=अधुना, त्वम्=मदनिका—

अन्वयः—अभुजिष्यात्वम्, नीयमाना, विषादस्रस्तसर्वाङ्गी, सम्भ्रमभ्रान्तलोचना, कम्पसे, न, अनुकम्पसे ॥ ८ ॥

विषादेति । अभुजिष्यात्वम्=अदासीत्वम्, नीयमाना=प्राप्यमाना, विषादस्रस्तसर्वाङ्गी=दुःखशिथिलनिखिलावयवानि, सम्भ्रमभ्रान्तलोचना=भयघूर्णितनयना, कम्पसे=वेपसे, न=नहि, अनुकम्पसे=दयसे । अत्र विभावनाविशेषोक्तिरलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ ८ ॥

मदनिका—(समाश्वस्य=धैर्यं गृहीत्वा) मम कारणात्=मदर्थे, इदम्=एतत्, अकार्यम्=चौर्यम्, कुर्वता=विदधता, तस्मिन् गेहे=भवने, कोऽपि जनः, व्यापादितः=मारितः, वा=अथवा, परिक्षतः=क्षतम् प्रापितः ।

शर्विलकः—भीते=भयविह्वले, सुप्ते=निद्रिते, प्रहरति=प्रहारङ्करोति, तत्=तस्मात्, मया=शर्विलकेन, न कश्चित्=न कोऽपि, व्यापादितः=हतः, नापि परिक्षतः=आघातितः ।

मदनिका—सत्यम्=सत्यं वदसि किमिति जिज्ञासा ।

शर्विलक—मदनिके, धीरज धरो । इस समय तुम क्यों—

मुझ पर खुश होने के बदले डर से थर-थर काँप रही हो ? घबड़ाहट के मारे तुम्हारी आँखें चंचल हो रही हैं । मैं तुम्हें बन्धनमुक्त करवा रहा हूँ और तुम नाराज हो रही हो ॥ ८ ॥

मदनिका—(किसी तरह धैर्य धारण करके) अरे ओ दुःसाहसी, मेरे लिए यह कुकर्म करते हुए उस घर में तुमने किसी की जान तो नहीं ली, अथवा किसी को घायल तो नहीं किया ?

शर्विलक—डरे हुए और सोये हुए पर शर्विलक कभी प्रहार नहीं करता । अतः उस घर में न तो कोई मरा है और घायल ही हुआ है ।

मदनिका—क्या सच है ?

शर्विलकः—सत्यम् ।

वसन्तसेना—(संज्ञां लब्ध्वा) अम्महे ! पच्चुवजीविदम्हि । [**अहो, प्रत्युपजीवितास्मि ।**]

मदनिका—पिअम् । [**प्रियम् ।**]

शर्विलकः—(सेर्ष्यम्) मदनिके ! किं नाम प्रियमिति ?

त्वत्स्नेहबद्धहृदयो हि करोम्यकार्यं,
सद्वृत्तपूर्वपुरुषेऽपि कुले प्रसूतः ।
रक्षामि मन्मथविपन्नगुणोऽपि मानं,
मित्रञ्च मां व्यपदिशस्यपरञ्च यासि ।। ९ ।।

(साकूतम्)

शर्विलकः—सत्यम् = सत्यमेवाभिहितं मया ।

वसन्तसेना——(संज्ञाम् = चेतनाम्, लब्ध्वा = प्राप्य) अहो = आह, प्रत्युपजीवितास्मि = पुनः प्राप्तजीवनाऽस्मि ।

मदनिका—प्रियम् = ममानुकूलमेतत् ।

शर्विलकः—(सेर्ष्यम् = ईर्ष्यया सहितम्) शर्विलकः विचारयति यत् मदनिका चारुदत्तमपि स्निह्यति । इत्येतदालोच्य आह—किं नामप्रियमिति ।

अन्वयः—सद्वृत्तपूर्वपुरुपे, कुले, प्रसूतः, अपि, त्वत्, स्नेहबद्धहृदयः, हि, आकार्यं करोमि, मन्मथविपन्नगुणः, अपि, मानम्, रक्षामि, माम्, मित्रम्, व्यपदिशति, च, अपरम्, च, यासि ।। ९ ।।

त्वदिति । सद्वृत्तपूर्वपुरुपे = संदाचारपालनतत्परपूर्वजे, कुले = वंशे, प्रसूतः = जातः, अपि = चेत्, त्वत् = तव, स्नेहबद्धहृदयः = प्रेम्णावशीकृतचित्तम्, हि = यतः, अकार्यम् = चौर्यम्, करोमि = सम्पादयामि, मन्मथविपन्नगुणः = मदनेन विनष्टकर्तव्याकर्तव्यविवेकः, अपि मानम् = आत्मसम्मानम्, रक्षामि = न त्यजामि, माम् = शर्विलकम्, मित्रम् = प्रियम्, व्यपदिशसि = वाचा व्यवहरसि, अपरञ्च = चारुदत्तम्, यासि = मनसा प्रियतम इति स्वीकरोषि । वसन्ततिलकावृत्तम् ।। ९ ।।

(साकूतम् = साभिप्रायम्)

शर्विलक—हाँ, सच कहता हूँ ।

वसन्तसेना—(**होश में आकर**) हाय, जान बची ।

मदनिका—मेरा प्रिय ही हुआ ।

शर्विलक—(**ईर्ष्या के साथ**) मदनिके, क्या प्रिय हुआ ?

ऊँचे खानदान में जन्म लेने के बावजूद तुम्हारे प्रेम में फँसकर मैं बुरा काम करता हूँ । मदन ने मेरी मर्यादा ही नष्ट कर दी है फिर भी मैं अपने मान की रक्षा करता हूँ । और तुम तो सामने मुझे बल्लभ बतलाती हो पर मन से किसी दूसरे से इश्क लड़ाती हो ।। ९ ।।

(कुछ मतलब के साथ उदास होकर ।)

इह सर्बस्वफलिनः कुलपुत्रमहाद्रुमाः ।
निष्फलत्वमलं यान्ति वेश्याविहगभक्षिताः ।। १० ।।
अयञ्च सुरतज्वालः कामाग्निः प्रणयेन्धनः ।
नराणां यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च ।। ११ ।।

वसन्तसेना—(सस्मितम्) अहो ! से अत्थाणे आवेओ ! [अहो ! अस्य अस्थाने आवेगः ।]

शर्विलकः—सर्वथा—

अपण्डितास्ते पुरुषा मता मे ये स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति ।
श्रियो हि कुर्वन्ति तथैव नार्यो भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि ।। १२ ।।

अन्वयः—इह, सर्वस्वफलिनः, कुलपुत्रमहाद्रुमाः, वेश्याविहगभक्षिताः, अलम्, निष्फलत्वं, यान्ति ।। १० ।।

इहेति । इह=संसारे, सर्वस्वफलिनः=अखिलविभवरूपफलयुक्ताः, कुलपुत्रमहाद्रुमाः=सद्वंशोत्पन्नजनरूपमहावृक्षाः, वेश्याविहगभक्षिता=गणिकाविहगखादिताः, अलम्=पर्याप्तम्, निष्फलत्वम्=वैयर्थ्यम्, यान्ति=गच्छन्ति । अत्र साङ्गरूपकमलङ्कारः, अनुष्टुप् वृत्तम् ।। १० ।।

अन्वयः—सुरतज्वालः, प्रणयेन्धनः, अयम्, कामाग्निः, यत्र, नराणाम्, यौवनानि, धनानि, हूयन्ते ।। ११ ।।

अयमिति । सुरतज्वालः=सम्भोगवह्निशिखः, प्रणयेन्धनः=प्रेमकाष्ठम्, अयम्=लोकप्रख्यातः, कामाग्निः=मदनानलः, यत्र=यस्मिन् कामाग्नौ, नराणाम्=लोकानाम्, यौवनानि=तारुण्यानि, धनानि=विभवानि, च=पुनः, हूयन्ते=भस्मीक्रियन्ते । रूपकमलङ्कारः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। ११ ।।

वसन्तसेना—(सस्मितम्=सेषद्धासम्) अहो=आश्चर्यम्, अस्थाने=अनुपयुक्तस्थाने, अस्य=शर्विलकस्य, आवेगः=क्षोभः ।

शर्विलकः—सर्वथा=सर्वप्रकारेण ।

इस संसार में अपना सारा विभव ही जिनका फल होता है, ऐसे कुलीन पुत्र रूपी बड़े पेड़ वेश्यारूपी चिड़ियों के द्वारा खाये जाकर एकदम फलहीन बना दिये जाते हैं ।। १० ।।

संभोग जिनकी ज्वाला है तथा प्रेम जिसका ईधन है वह काम रूपी अग्नि प्रज्ज्वलित हो रही है जिस आग में मनुष्य अपनी जवानी और सम्पत्ति को होम कर देता है ।। ११ ।।

वसन्तसेना—(मुस्कुराकर) अरे, इसका गुस्सा गलत जगह पर है ।

शर्विलक—हर प्रकार से—

मेरी समझ में जो औरत और धन पर भरोसा करते हैं, वे मूर्ख हैं । धन और औरत साँपिन की तरह हमेशा टेढ़ी चाल ही चलती हैं ।। १२ ।।

स्त्रीषु न रागः कार्यो रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति ।
रक्तैव हि रन्तव्या विरक्तभावा तु हातव्या ।। १३ ।।

सुष्ठु खल्विदमुच्यते—

एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ।। १४ ।।

अन्वयः—ये, पुरुषाः, स्त्रीषु, च, श्रीषु, च, विश्वसन्ति, ते, अपण्डिताः, मे. मताः, हि, श्रियः, तथैव, नार्यः, भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि, कुर्वन्ति ।। १२ ।।

अपण्डिता इति । ये=सांसारिकाः, पुरुषाः=लोकाः, स्त्रीषु=नारीषु, च=पुनः, श्रीषु=सम्पत्तिषु च, विश्वसन्ति=विश्वासं कुर्वन्ति, ते=जनाः, अपण्डिताः=अप्रवीणाः, मे=मम शर्विलकस्य, मताः=अभीष्टाः, हि=यतः, श्रियः=विभवाः, तथैव=तेन प्रकारेणैव, नार्यः=स्त्रियः, भुजङ्गकन्यापरिसर्पणानि=सर्पिणीकुटिलगमनानि, कुर्वन्ति= सम्पादयन्ति । अतः तासां विश्वासः न कर्त्तव्यम् । उपजातिवृत्तम् ।। १२ ।।

अन्वयः—स्त्रीषु, रागः, न, कार्यः, स्त्रियः, रक्तम्, पुरुषम्, परिभवन्ति, हि, रक्ताः, एव, रन्तव्या, विरक्तभावा, तु, हातव्या ।। १३ ।।

स्त्रीष्विति । स्त्रीषु=नारीषु, रागः=प्रीतिः, न=नहि, कार्यः=कर्त्तव्यः, स्त्रियः= नार्यः, रक्तम्=अनुरागशालिनम्, पुरुषम्=नरम्, परिभवन्ति=तिरस्कुर्वन्ति, हि= यतः, रक्ताः=अनुरक्ताः, एव, रन्तव्या=रमणार्हा, विरक्तः=अनुरागरहितः भावः यस्याः सा=अननुरागिणीम्, हातव्या=त्याज्या । अत्राप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, आर्याजातिश्च ।। १३ ।।

सुष्ठु=शोभनम्, खलु=निश्चयेन, इदम्=एतत्, उच्यते=कथ्यते—

अन्वयः—एताः, वित्तहेतोः, हसन्ति, च, रुदन्ति च, पुरुषम्, विश्वासयन्ति, तु, न, विश्वसन्ति, तस्मात्, कुलशीलसमन्वितेन, नरेण, श्मशानसुमनाः, इव, वेश्याः, वर्जनीयाः ।। १४ ।।

एता इति । एताः=गणिकाः, वित्तस्य=विभवस्य, हेतोः=कारणात्, हसन्ति=

औरतों को अधिक प्यार नहीं देना चाहिये, औरतें आसक्त पुरुष को सदैव अपमानित करती हैं । अपने पर आसक्त औरतों से ही प्रेम करना चाहिये, उदासीन औरतों की शीघ्र उपेक्षा कर देनी चाहिये ।। १३ ।।

यह ठीक ही कहा गया है कि—

ये औरतें धन के लिए ही हँसती हैं, धन के लिए ही रोती हैं । पुरुष को अपने विश्वास में लाती हैं और स्वयं पुरुष का विश्वास नहीं करती हैं । अतः कुलशील व्यक्ति को श्मशान घाट की माला की तरह इन वेश्याओं का मोह छोड़ देना चाहिए ।। १४ ।।

अपि च—

समुद्रवीचीव चलस्वभावः सन्ध्याभ्रलेखेव मुहूर्त्तरागाः ।
स्त्रियो हृतार्थाः पुरुषं निरर्थं निष्पीडितालक्तकवत् त्यजन्ति ॥ १५ ॥

स्त्रियो नाम चपलाः—

अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा ह्यन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ती ।
अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेकमन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥ १६ ॥

दातु;, मनोरञ्जनार्थं हासं कुर्वन्ति, च=पुनः, रुदन्ति=रोदनं कुर्वन्ति, पुरुषम्=कामुकम्, विश्वासयन्ति=निजविश्वासे आनयन्ति, तु=किन्तु, स्वयम् न विश्वसन्ति=विश्वासं कुर्वन्ति, तस्मात्=हेतोः, कुलशीलसमन्वितेन=कुलशीलवता, नरेण=पुरुषेण, श्मशानसुमनाः—श्मशानस्य=चिताभूमेः, सुमनाः=मालतीपुष्पाणि, इव=यथा, वेश्या=गणिका, वर्जनीयाः=हातव्येति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, वसन्ततिलकं वृत्तञ्चेति ॥ १४ ॥

अन्वयः—समुद्रवीची, इव, चलस्वभावः, सन्ध्याभ्रलेखा, इव, मुहूर्त्तरागाः, स्त्रियः हृतार्थाः, निरर्थम्, पुरुषम्, निष्पीडितालक्तकवत्, त्यजन्ति ॥ १५ ॥

समुद्रेति । समुद्रस्य=जलनिधेः, वीची=तरङ्गः, इव=यथा, चलस्वभावः=चञ्चलप्रकृतिः, सन्ध्याभ्रलेखा=सायंकालिकमेघरेखा, इव=यथा, मुहूर्त्तरागाः=क्षणिकप्रीतिकरा, मेघपक्षे आरक्ताः, स्त्रियः=नार्यः, हृतार्थाः—हृतः=अपहृतः, अर्थः=धनं याभिस्तथाभूताः, निरर्थम्=धनहीनम्, पुरुषम्=जनम्, निष्पीडितालक्तकवत्=निःसारितलाक्षेव, त्यजन्ति=परित्यजन्ति । श्रौती उपमा, उपजातिवृत्तम् ॥ १५ ॥

स्त्रियः=नार्यः, नाम चपला=चञ्चला—

अन्वयः—हृदयेन, अन्यम्, मनुष्यम्, कृत्वा, ततः, अन्यम्, दृष्टिभिः, आह्वयन्ति, अन्यत्र, मदप्रसेकम्, मुञ्चन्ति, शरीरेण, अन्यम्, च, कामयन्ते ॥ १६ ॥

अन्यमिति । हृदयेन=मनसा, अन्यम्=भिन्नम्, मनुष्यम्=जनम्, कृत्वा=निश्चित्य, ततः=तत्पश्चात्, अन्यम्=अपरजनम्, दृष्टिभिः=नेत्रेङ्गितैः, आह्वयन्ति=आकारयन्ति, अन्यत्र=अन्यस्मिन् जने, मदप्रसेकम्=आसवसेचनम्, मुञ्चन्ति=त्यजन्ति, शरीरेण=देहेन, अन्यम्=इतरजनम्, च=पुनः, कामयन्ते=अभिलषन्ति । दीपकालङ्कारः, इन्द्रवज्रा जातिः ॥ १६ ॥

और भी—सागर की लहरों के समान चपल स्वभाव वाली, सायंकालीन मेघ की तरह क्षणिक अनुराग वाली वेश्याएँ केवल धन हरण करना जानती हैं। धन छीन लेने के बाद अपने गरीब प्रेमी को निचोड़े गये महावर की तरह छोड़ देती हैं ॥

औरतें बड़ी चंचल होती हैं—

वे मन से किसी और को चाहती हैं और इशारे से किसी और को बुलाती हैं। अपनी जवानी की रवानी में किसी को फाँसती हैं तो देह से किसी और के साथ उपभोग करती हैं ॥ ॥ १६ ॥

सूक्तं खलु कस्यापि—

न पर्वताग्रे नलिनी प्ररोहति न गर्दभा वाजिधुरं वहन्ति ॥

यवाः प्रकीर्णा न भवन्ति शालयो न वेशजाताः शुचयस्तथाऽङ्गना ॥१७॥

आः, दुरात्मन् चारुदत्तहतक ! अयं न भवसि ? (इति कतिचित् पदानि गच्छति ।)

मदनिका—(अञ्चले गृहीत्वा) अइ असम्बद्धभासअ ! असम्भावणीए कुप्पसि । [**अयि असम्बद्धभाषक ! असम्भावनीये कुप्यसि ।**]

शर्विलकः—कथमसम्भावनीयं नाम !

मदनिका—एसो क्खु अलङ्कारओ अज्जआकेरओ । [**एष खल्वलङ्कारः आर्यासम्बन्धी ।**]

कस्यापि=अज्ञातजनस्य सूक्तं=सम्यक् कथितम् ।

अन्वयः—पर्वताग्रे, नलिनी, न, प्ररोहति, गर्दभाः, वाजिधुरम्, न, वहन्ति, प्रकीर्णाः, यवाः, शालयः, न, भवन्ति, तथा, वेशजाताः, अङ्गना, शुचयः, न ॥ १७ ॥

न पर्वतेति । पर्वताग्रे=गिरिशृङ्गे, नलिनी=पद्मिनी, न=नहि, प्ररोहति=अङ्कुरति, गर्दभाः=रासभाः, वाजिधुरम्=अश्वैः वाह्यभारम्, न=नहि, वहन्ति=वोढुं शक्नुवन्ति, प्रकीर्णाः=क्षेत्रेप्रक्षिप्ताः, यवाः=सितशूकाः, शालयः=धान्यानि, न=नहि, भवन्ति=जायन्ते, तथा=तेनैव प्रकारेण, वेशे=वेश्यालये, जाताः=समुत्पन्नाः, अङ्गनाः=नार्यः, शुचयः=पवित्राः, न भवन्ति । मालोपमालङ्कारः, वंशस्थविलं वृत्तम् ॥ १७ ॥

आः=कोपसूचकमव्ययम्, दुरात्मन्=दुष्टः आत्मा यस्य तत्सम्बुद्धौ, चारुदत्तहतक=नीचचारुदत्त, अयम्=एषः, न भवसि=आचरितुं न पारयसीति भावः । (इति=एवमुक्त्वा, कतिचित्=कियत् पदानि, गच्छति=चलति ।)

मदनिका—(अञ्चले=पटप्रान्तभागे, गृहीत्वा=धृत्वा) अयि=हे, असम्बद्धभाषक=अनर्गलभाषिन्, असम्भावनीये=असम्भवविषये, कुप्यसि=कोपं करोषि ।

शर्विलकः—कथम्=केन प्रकारेण, असम्भावनीयम्=सम्भवनाशून्यमिति ।

किसी ने बड़ा अच्छा कहा है—

पर्वत की चोटी पर पद्मिनी नहीं जमती, गदहे घोड़े की गाड़ी नहीं खींचते, खेत में बोए गये जौ धान नहीं बन जाते, उसी तरह वेश्या के घर में पैदा हुई औरतें पवित्र नहीं होती ॥ १७ ॥

आः दुष्ट चारुदत्त अब तुम नहीं रहोगे । (**यह कहकर कई पग चलता है ।**)

मदनिका—(**कपड़े का छोर पकड़कर**) अरे, ओ उटपटांग बोलने वाले, तुम तो बेकार ही गुस्सा कर रहे हो ।

शर्विलक—यह असंभव कैसे हो सकता है ।

मदनिका—ये जेवर वसन्तसेना के ही हैं ।

शर्विलकः—ततः किम् ?

मदनिका—स च तस्स अज्जस्स हत्थे विणिक्खित्तो। [**स च तस्य आर्यस्य हस्ते विनिक्षिप्तः।]**

शर्विलकः—किमर्थम् ?

मदनिका—(कर्णे) एव्वं विअ। [**एवमिव।**]

शर्विलकः—(सवैलक्ष्यम्) भोः ! कष्टम्।

छायार्थं ग्रीष्मसन्तप्तो यामेवाहं समाश्रितः।
अजानता मया सैव पत्रैः शाखा वियोजिता ॥ १८ ॥

मदनिका—एषः=पुरोवर्त्तिनः, अलङ्कारः=आभूषणम्, आर्या=मान्या, वसन्त-सेनायाः सम्बन्धी।

शर्विलकः—ततः किम्=तेन किं भवति ?

मदनिका—सः=असौ, तस्य आर्यस्य=चारुदत्तस्य, हस्ते=करे, निक्षिप्तः=न्यासीकृतः।

शर्विलकः—किमर्थम्=केन निमित्तेन ?

मदनिका—(कर्णे=श्रोत्रे) एवमिव=परस्परगमनागमनरक्षाव्याजेन निक्षिप्तः।

शर्विलकः—(सवैलक्ष्यम्=लज्जया सहितम्) भोः कष्टम्=खेदम्। विस्मितः तस्य भावः वैलक्ष्यम्, तेन सहितमिति भावः।

अन्वयः—ग्रीष्मसन्तप्तः, अहम्, छायार्थम्, याम्, एव, समाश्रितः, अजानता, मया, सा, एव, शाखा, पत्रैः, वियोजिता ॥ १८ ॥

छायेति। ग्रीष्मसन्तप्तः=निदाघपीडितः, अहम्=शर्विलकः, छायार्थम्=अनातपार्थम् 'छायासूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपाः' इत्यमरः। याम्=शाखाम्, एव समाश्रितः=आश्रितवान्, अजानता=अनभिज्ञेन, मया=शर्विलकेन, सैव=आश्रयभूता एव, शाखा=शाला, 'स्कन्दशाखाशाले' इत्यमरः। पत्रैः=पर्णैः, वियोजिता=शून्या कृता। मदनसन्तप्तेन मया यया वसन्तसेनया मदनिका प्राप्तव्याऽस्ति सैव वसन्तसेना मया भूषणैर्वियोजितेति भावः। अत्राप्रस्तुतप्रशंसा व्यतिरेकश्च, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ १८ ॥

शर्विलक—इससे क्या ?

मदनिका—यह आभूषण उन्होंने चारुदत्त के घर धरोहर के रूप में रक्खा था।

शर्विलक—यह क्यों ?

मदनिका—(**कान में कुछ कहती है**) इसलिए।

शर्विलक—(**लज्जा के साथ**) बड़े दुःख की बात है।

गर्मी से परेशान मैंने जिस डाली का सहारा लिया, उसी को अनजाने ही पीट कर मैंने पत्तों से रहित कर दिया ॥ १८ ॥

वसन्तसेना—कधं एसोवि सन्तप्पदि ज्जेव । ता अजाणन्तेण एदिणा एव्व अणुचिट्ठिदं । [**कथमेषोऽपि सन्तप्यत एव । तदजानता एतेन एवमनुष्ठितम् ।**]

शर्विलकः—मदनिके ! किमिदानीं युक्तम् ?

मदनिका—इत्थ तुमं ज्जेव पण्डिओ । [**अत्र त्वमेव पण्डितः ।**]

शर्विलकः—नैवम् । पश्य—

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः ।
पुरुषाणान्तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते ।। १९ ।।

मदनिका—सव्विलअ ! जइ मम वअणं सुणीअदि, ता तस्स ज्जेव महाणुभावस्स पडिणिज्जादेहि । [**शर्विलक ! यदि मम वचनं श्रूयते, तत् तस्यैव महानुभावस्य प्रतिनिर्यातय ।**]

वसन्तसेना—कथमिति प्रश्ने, एषोऽपि=शर्विलकोऽपि, सन्तप्यते एव=अलङ्कारापहरणेन विषीदत्येव । तत्=तस्मात्, अजानता=अजानेन, एतेन=शर्विलकेन, एवम्=चौर्यम्, अनुष्ठितम्=कृतमिति ।

शर्विलकः—इदानीम्=एवंविधौ परिस्थितौ, किं युक्तम्=कर्त्तव्यार्हम् ।

मदनिका—अत्र=अस्मिन् विषये, त्वमेव=भवान् एव, पण्डितः=निर्णयनिपुणः ।

शर्विलकः—नैवम्=एवं नास्ति । पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—एताः, स्त्रियः, हि, निसर्गात्, एव, पण्डिताः, खलु, नाम, तु, पुरुषाणाम्, पाण्डित्यम्, शास्त्रैः, एव, उपदिश्यते ।। १९ ।।

स्त्रिय इति । एताः=इमाः, स्त्रियः=नार्यः, हि=यतः, निसर्गात्=स्वभावात् एव पण्डिताः=निपुणाः, खलु नाम=सम्भावयामि, तु=किन्तु, पुरुषाणाम्=पुंसाम्, पाण्डित्यम्=प्रवीणत्वम्, शास्त्रैः=ग्रन्थाध्ययनैः, एव उपदिश्यते=शिक्ष्यते । अप्रस्तुतप्रशंसा, व्यतिरेकालङ्कारश्च । पथ्यावक्त्रं छन्दम् ।। १९ ।।

मदनिका—यदि=चेत्, मम वचनम्=मम विचारम्, श्रूयते=ज्ञातुमिच्छसि, तत्=तर्हि, तस्यैव महानुभावस्य=आर्यचारुदत्तस्य, प्रतिनिर्यातय=प्रत्यर्पय ।

वसन्तसेना—क्या यह पछता रहा है ? इसने तो अनजान में ही चोरी की है ।

शर्विलक—मदनिके, तू ही बता, अब क्या करना चाहिए ।

मदनिका—मैं क्या कहूँ ? इस विषय में तो तू ही चालाक है ।

शर्विलक—ऐसी बात नहीं है । देखो—

व्यावहारिक क्षेत्र में पुरुषों की अपेक्षा औरतें अधिक चतुर होती हैं । क्योंकि पुरुषों की चतुराई तो शास्त्रोपदेश से होती है ।। १९ ।।

मदनिका—शर्विलक, अगर मेरी बात सुनो तो मैं कहूँगी कि ये सारे आभूषण आर्य चारुदत्त को ही लौटा दो ।

शर्विलकः—मदनिके ! यद्यसौ राजकुले मां कथयति ?

मदनिका—ण चन्दादो आदवो होदि । [**न चन्द्रादातपो भवति ।**]

वसन्तसेना—साहु, मदणिए ! साहु । [**साधु, मदनिके ! साधु ।**]

शर्विलकः—मदनिके !

न खलु मम विषादः साहसेऽस्मिन् भयं वा
कथयसि हि किमर्थं तस्य साधोर्गुणांस्त्वम् ।
जनयति मम वेदं कुत्सितं कर्म लज्जां
नृपतिरिह शठानां मादृशां किं नु कुर्यात् ? ॥ २० ॥

शर्विलकः—यदि=सम्भावनायाम्, असौ=चारुदत्तः, राजकुले=न्यायालये, माम्=शर्विलकम्, कथयति=तस्करोऽयमिति निवेदयति, तदा किं भवेदिति ।

मदनिका—चन्द्रात्=चन्द्रवत् सर्वानन्ददायिनः, आतपः=आतपवत् विपत्त्यादिकम्, न=नहि, भवति=भविष्यतीति भावः ।

वसन्तसेना—साधु=सुष्ठु भणति मदनिकेति ।

शर्विलकः—मदनिके !

अन्वयः—अस्मिन्, साहसे, मम, विषादः, वा, भयम्, न, खलु, त्वम्, तस्य, साधोः, गुणान्, किमर्थम्, कथयसि ? हि, इदम्, कुत्सितम्, कर्मम्, वा, मम, लज्जाम्, जनयति, इह, नृपतिः, मादृशाम्, शठानाम्, किम्, नु, कुर्यात् ? ॥ २० ॥

नेति । अस्मिन्, गृहीतद्रव्यस्य प्रत्यावर्त्तने, साहसे=दुःसाहसे, मम=शर्विलकस्य, विषादः=खेदः, वा=अथवा, भयम्=त्रासम्, न=नहि, खलु, त्वम्=मदनिका, तस्य=मया चोरितस्य, साधोः=सज्जनस्य, गुणान्=दयादाक्षिणादिगुणान्, किमर्थम्=कस्माद्धेतोः, कथयसि=वदसि, हि=इत्यवधारणे, इदम्=मया कृतम्, कुत्सितम्=निन्दितम्, कर्म=कार्यम्, वा=एव, मम=शर्विलकस्य, लज्जाम्=त्रपाम्, जनयति=उत्पादयति, इह=अस्मिन् कार्ये, नृपतिः=राजा, मादृशाम्=मत्सदृशानाम्, शठानाम्=धूर्त्तानाम्, किं नु=इति प्रश्ने, कुर्यात्=न किमपीति भावः । काव्यलिङ्गमलङ्कारः, मालिनीवृत्तम् ॥ २० ॥

शर्विलक—वाह री मदनिके, और अगर वह कचहरी में नालिश कर दे तब ?

मदनिका—चाँद से कभी गर्मी नहीं होती है ।

वसन्तसेना—वाह, मदनिके, खूब ।

शर्विलक—मदनिके,

मैंने हिम्मत के साथ यह चोरी की है । सच पूछो तो इसके लिए न तो मुझे पछतावा है और न कचहरी से सजा पाने का डर । ऐसी स्थिति में तुम चारुदत्त की भल मनसाहत का बखान क्यों कर रही हो ? मुझे मेरा अपना बुरा काम ही लजा रहा है । मेरे जैसे धूर्त्त का राजा क्या बिगाड़ लेगा ? ॥ २० ॥

तथापि नीतिविरुद्धमेतत् । अन्य उपायश्चिन्त्यताम् ।

मदनिका—सो अअं अवरो उवाओ । [**सोऽयमपर उपायः ।**]

वसन्तसेना—को क्खु अवरो उवाओ हुविस्सदि । [**कः खलु अपर उपायो भविष्यति ।**]

मदनिका—तस्स ज्जेव अज्जस्स केरओ भविअ, एदं अलङ्कारअं अज्जआए उवणेहि । [**तस्यैव आर्यस्य सम्बन्धी भूत्वा, एतमलङ्कारकमार्याया उपनय ।**]

शर्विलकः—एवं कृते किं भवति ?

मदनिका—तुम दाव अचोरो, सो वि अज्जो अरिणो, अज्जआए सकं अलङ्कारअं उवगदं भोदि । [**त्वं तावदचौरः, सोऽपि आर्यः अनृणः, आर्य्यायाः स्वकः अलङ्कारक उपगतो भवति ।**]

शर्विलकः—नन्वतिसाहसमेतत् ।

मदनिका—अइ ! उवणेहि । अण्णधा अदिसाहसं । [**अयि ! उपनय । अन्यथा अतिसाहसम् ।**]

तथापि=कारणान्तराभावेऽपि, नीतिविरुद्धम्=चौरनीतिप्रतिकूलम्, अन्यः= अपरः, उपायः=युक्तिः, चिन्त्यताम् ।

मदनिका—सः=असौ, अयम्=एषः, अपरः=अन्यः, उपायः=साधनम् ।

वसन्तसेना—कः खलु अपरः=अन्यः, उपायः=युक्तिः, भविष्यति ।

मदनिका—तस्यैव=चारुदत्तस्यैव, सम्बन्धी भूत्वा=कुटुम्बीभूत्वा, आर्यायाः= मान्यावसन्तसेनायाः, उपनय=अर्पय ।

शर्विलकः—एवम्=अनेन प्रकारेण, कृते=अनुष्ठिते, किं भवति=जायते ?

मदनिका—त्वम्=शर्विलकः, अचौरः=अतस्करः, अनृणः=ऋणरहितः, उपगतः =प्राप्तः ।

शर्विलकः—ननु=सम्बोधने, एतत्=अलङ्कारप्रत्यर्पणरूपकर्मम्, अतिसाहसम्= कठिनकृत्यम् ।

फिर भी यह चोर नीति के विरुद्ध है । कोई दूसरा तरीका निकालो ।

मदनिका—दूसरा तरीका भी है ।

वसन्तसेना—दूसरा तरीका भला क्या हो सकता है ?

मदनिका—चारुदत्त का सम्बन्धी बनकर आर्या वसन्तसेना को ये जेवरात सौंप दो ।

शर्विलक—ऐसा करने से क्या होगा ?

मदनिका—तुम चोर नहीं समझे जाओगे, चारुदत्त न्यासमुक्त हो जायेगा, वसन्तसेना को उनका आभूषण मिल जायेगा ।

शर्विलक—लेकिन, यह तो बड़ी हिम्मत का काम है ।

मदनिका—चलो, उठाओ जेवर । ऐसा नहीं करना ही दुःसाहस है ।

वसन्तसेना—साहु, मदणिए ! साहु । अभुजिस्सए विअ मन्तिदं । [**साधु, मदनिके ! साधु । अभुजिष्ययेव मन्त्रितम् ।**]

शर्विलकः—

मयाप्ता महती बुद्धिर्भवतीमनुगच्छता ।
निशायां नष्टचन्द्रायां दुर्लभो मार्गदर्शकः ॥ २१ ॥

मदनिका—तेण हि तुमं इमस्सिं कामदेवगेहे मुहुत्तअं चिट्ठ, जाव अज्जआए तुह आगमणं णिवेदेमि । [**तेन हि त्वमस्मिन् कामदेवगेहे मुहूर्तकं तिष्ठ, यावदार्यायै तवागमनं निवेदयामि ।**]

शर्विलकः—एवं भवतु ।

मदनिका—(उपसृत्य) अज्जए ! एसो क्खु चारुदत्तस्स सआसादो बह्मणो आअदो । [**आर्ये ! एष खलु चारुदत्तस्य सकाशाद् ब्राह्मणः आगतः ।**]

मदनिका—अयि=कोमलालापे, उपनय=अलङ्कारकम् प्रत्यर्पय, अन्यथा अतिसाहसम्=दुष्करतमम् ।

वसन्तसेना—अभुजिष्यया इव=स्वामिनी इव, मन्त्रितम्=उपदिष्टम्, साधु=शोभनमिति मदनिकेति ।

अन्वयः—भवतीम्, अनुगच्छता, मया, महती, बुद्धिः, आप्ता, नष्टचन्द्रायाम्, निशायाम्, मार्गदर्शकः, दुर्लभः ॥ २१ ॥

मयेति । भवतीम्=त्वाम्, अनुगच्छता=अनुसरता, मया=शर्विलकेन, महती=विशाला, बुद्धिः=मतिः, आप्ता=प्राप्ता, नष्टचन्द्रायाम्=तमसाच्छन्नायाम्, निशायाम्=रात्रौ, मार्गदर्शकः—मार्गस्य=पथः दर्शकः=निर्देशकः दुर्लभः=दुष्प्राप्यः । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ।

मदनिका—कामदेवगेहे=मदनमन्दिरे, मुहूर्तकम्=क्षणं तिष्ठ, आर्यायै=वसन्तसेनायै, तव=भवतः, आगमनम्=चारुदत्तपार्श्वादागमनम् ।

शर्विलकः—एवम् भवतु=यथानिवेदितं करोतु ।

मदनिका—(उपसृत्य=समीपमागत्य) आर्ये=मान्ये, सकाशात्=समीपात्, ब्राह्मणः=विप्रः, समागतः=आगतः ।

वसन्तसेना—वाह मदनिके, विवाहिता पत्नी की तरह ही तुमने सलाह दी है ।

शर्विलक—तुम्हारे कथनानुसार चलकर मैंने भी बड़ी बुद्धि पा ली है । अमावस के अन्धकार में पथभ्रष्ट पथिक को कठिनाई से मार्गदर्शक मिलता है ॥ २१ ॥

मदनिका—अच्छा तो इस काममन्दिर में तुम कुछ देर रुको, जब तक मान्या वसन्तसेना को मैं तुम्हारे आगमन की सूचना दे दूँ ।

शर्विलक—जाओ, ऐसा ही करो ।

मदनिका—(पास जाकर) आर्ये, मान्य चारुदत्त ने एक ब्राह्मण को भेजा है ।

वसन्तसेना—हञ्जे !. तस्स केरअं त्ति कधं तुमं जाणासि ? [**हञ्जे ! तस्य सम्बन्धीति कथं त्वं जानासि ?**]

मदनिका—अज्जए ! अत्तकेरअं पि ण जानामि ? [**आर्ये ! आत्मसम्बन्धिनमपि न जानामि ?**]

वसन्तसेना—(स्वगतं सशिरःकम्पं विहस्य) जुज्जदि । (प्रकाशम्) पविसदु । [**युज्यते । प्रविशतु ।**]

मदनिका—जं अज्जआ आणवेदि । (उपगम्य) पविसदु सव्विलओ । [**यदार्या आज्ञापयति । प्रविशतु शर्विलकः ।**]

शर्विलकः—(उपसृत्य, सवैलक्ष्यम्) स्वस्ति भवत्यै ।

वसन्तसेना—अज्ज ! वन्दामि । उववि़सदु अज्जो । [**आर्य ! वन्दे । उपविशतु आर्यः ।**]

शर्विलकः—सार्थवाहस्त्वां विज्ञापयति—जर्जरत्वाद् गृहस्य दूरक्ष्यमिदं भाण्डम्, तद् गृह्यताम् । (इति मदनिकायाः समर्प्य प्रस्थितः ।)

वसन्तसेना—तस्य=चारुदत्तस्य, सम्बन्धी=कुटुम्बी, इति कथम्=केन प्रकारेण, जानासि=अवगतासि ।

मदनिका—आर्ये=मान्ये, आत्मसम्बन्धिनमपि=स्वस्वामिन्या सम्बन्धिनमपि, कथं न जानामि ।

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्, सशिरःकम्पम्=शिरसञ्चालनसहितम्) युज्यते=तव कथनम् समीचीनम् ।

मदनिका—आज्ञापयति=आदिशति ।

शर्विलकः—(उपसृत्य=समीपमागत्य, सवैलक्ष्यम्=लज्जाजनितसङ्कोचेन सहितम् ।) भवत्यै=वसन्तसेनायै, स्वस्ति=कल्याणम् ।

वसन्तसेना—आर्य=मान्य, वन्दे=नमामि, उपविशतु=आसनग्रहणं करोतु, आर्यः ।

शर्विलकः—सार्थवाहः=वणिक् चारुदत्तः, विज्ञापयति=निवेदयति, जर्जरत्वात्=अतिशयजीर्णत्वात्, गृहस्य=सदनस्य, दूरक्ष्यम्=रक्षितुं दुःशक्यम्, इदम्=एतत्,

---

वसन्तसेना—अरी तुम कैसे जानती हो कि यह उनका सम्बन्धी है ?

मदनिका—आर्ये, क्या अपने सम्बन्धियों को भी नहीं पहचान सकूंगी ।

वसन्तसेना—(**मन ही मन, सिर हिलाकर, हँसती हुई**) ठीक है । (**प्रकट**) उन्हें बुलाओ ।

मदनिका—जो आज्ञा (**जाकर**) शर्विलक, भीतर चलो ।

शर्विलक—(**पास जाकर, घबड़ाये हुए**) आर्ये, कल्याण हो ।

वसन्तसेना—आर्य, वसन्तसेना प्रणाम करती है । आइए, विराजिये ।

शर्विलक—सार्थवाह ने आपसे निवेदन किया है कि—घर के जर्जर होने से आभूषणों की रक्षा करना कठिन है । अतः आप इन्हें ग्रहण करें । (**मदनिका को आभूषण देकर जाने लगता है ।**)

वसन्तसेना—अज्ज ! ममावि दाव पडिसन्देसं तहिं अज्जो णेदु । [आर्य ! ममापि तावत् प्रतिसन्देशं तत्रार्य्यो नयतु ।]

शर्विलकः—(स्वगतम्) कस्तत्र यास्यति ? (प्रकाशम्) कः प्रतिसन्देशः ?

वसन्तसेना—पडिच्छदु अज्जो मदणिअं । [प्रतीच्छतु आर्यो मदनिकाम् ।]

शर्विलकः—भवति ! न खल्ववगच्छामि ।

वसन्तसेना—अहं अवगच्छामि । [अहमवगच्छामि ।]

शर्विलकः—कथमिव ?

वसन्तसेना—अहं अज्जचारुदत्तेण भणिदा—'जो इमं अलङ्कारअं समप्पइस्सदि, तस्स तुए मदणिआ दादव्वा ।' ता सो ज्जेव एदं दे देदित्ति एव्वं अज्जेण अवगच्छिदव्वं । [अहमार्य्यंचारुदत्तेन भणिता—'य इममलङ्कारकं समर्पयिष्यति, तस्य त्वया मदनिका दातव्या ।' तत् स एव एतां ते ददातीति एवमार्येण अवगन्तव्यम् ।]

भाण्डम्=सुवर्णभाण्डम्, तत्=तस्मात्, गृह्यताम्=लेहि । (मदनिकायाः=वसन्तसेनादास्याः करे, समर्प्य=दत्वा, प्रस्थितः=द्रुतं गतः ।)

वसन्तसेना—मम=वसन्तसेनायाः अपि, प्रतिसन्देशम्=आभूषणप्रेक्षणरूपवाचिकस्य प्रतिदानरूपम् ।

शर्विलकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कः=जनः, तत्र=चारुदत्तसमीपम्, यास्यति=गमिष्यति । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम् ।)

वसन्तसेना—प्रतीच्छतु=पत्नीत्वेन ग्रहणं करोतु मदनिकाम् ।

शर्विलकः—भवति=आर्ये, नावगच्छामि=अकारणं मदनिकादानस्याभिप्रायं न जानामि ।

वसन्तसेना—अहं=वसन्तसेना अवगच्छामि=जानामि, साभिप्रायकथनमिदम् ।

शर्विलकः—कथमिव=केन प्रकारेणेदम् ।

वसन्तसेना—आर्येण=चारुदत्तेन, भणिता=कथिता, तस्य=आभूषणसमर्पकस्य हस्ते मदनिका दातव्या ।

वसन्तसेना—आर्य ! आप मेरा उत्तर भी लेते जायें ।

शर्विलक—(मन ही मन) हाय, वहाँ जायेगा कौन ? (प्रकट) क्या जवाब पहुँचाना है ?

वसन्तसेना—आप मदनिका को स्वीकार करें । (यही जवाब है ।)

शर्विलक—आर्ये, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ ?

वसन्तसेना—मैं समझ रही हूँ ।

शर्विलक—इसका मतलब ?

वसन्तसेना—चारुदत्त ने मुझसे कहा है—'जेवर पहुँचाने वाले को तुम अपनी मदनिका सौंप देना' । इसलिए आप चारुदत्त द्वारा प्रदत्त इस मदनिका को समझें ।

शर्विलकः—(स्वगतम्) अये ! विज्ञातोऽहमनया । (प्रकाशम्) साधु, आर्यचारुदत्त ! साधु ।

गुणेष्वेव हि कर्त्तव्यः प्रयत्नः पुरुषैः सदा ।
गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेश्वरैरगुणैः समः ॥ २२ ॥

अपि च—

गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यो न किञ्चिदप्राप्यतमं गुणानाम् ।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भोरलङ्घ्यमुल्लङ्घितमुत्तमाङ्गम् ॥ २३ ॥

वसन्तसेना—को एत्थ पवहणिओ ? [**कोऽत्र प्रवहणिकः ?**]

शर्विलकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अनया=वसन्तसेनया, विज्ञातः=अवबुद्धः । (प्रकाशं=सर्वश्राव्यम् ।) साधु=सुष्ठु, आर्य चारुदत्त !

अन्वयः—पुरुषैः, सदा, गुणेषु, एव, प्रयत्नः, कर्त्तव्यः, हि, गुणयुक्तः, दरिद्रः, अपि, अगुणैः, ईश्वरैः, समः, न ॥ २२ ॥

गुणेष्वेवेति । पुरुषैः=लोकैः, सदा=सर्वदा, गुणेषु=दयादाक्षिण्यादिषु, एव=निश्चयेन, प्रयत्नः=उद्योगः, कर्त्तव्यः=विधेयः, हि=यतः, गुणयुक्तः=गुणसमन्वितः, दरिद्रः=अकिंचनः, अपि=चेत्, अगुणैः=गुणहीनैः, ईश्वरैः=धनसम्पन्नैः, समः=तुल्यः, न=न भवति । अप्रस्तुतप्रशंसा, अर्थान्तरन्यासश्चेति अलङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दश्चेति ॥ २२ ॥

अन्वयः—पुरुषेण, गुणेषु, यत्नः, कार्यः, गुणानाम्, किञ्चिदपि, अप्राप्यतमम्, न, उडुपेन, गुणप्रकर्षात्, अलङ्घ्यम्, शम्भोः, उत्तमाङ्गम्, उल्लङ्घितम् ॥ २३ ॥

गुणेष्विति । पुरुषेण=लोकेन, गुणेषु=दयादाक्षिण्यादिषु, यत्नः=प्रयत्नः, कार्यः=विधेयः, गुणानाम्=गुणसम्बलितानाम्, जनानाम्, किञ्चिदपि=किमपि वस्तु, अप्राप्यतमम्=दुर्लभं नास्ति, उडुपेन=चन्द्रमसा, गुणप्रकर्षात्=गुणाधिक्यात्, अलङ्घ्यम्=केनाऽपि लङ्घितुमशक्यं शम्भोः=शिवस्य, उत्तमाङ्गम्=शिरः, उल्लङ्घितम्=आरूढम् । अर्थान्तरन्यासः, उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ २३ ॥

वसन्तसेना—कः=सेवकः, अत्र=अस्मिन् स्थाने, प्रवहणिकः=गोशकटचालकः ?

शर्विलक—(**मन ही मन**) तो क्या इसने सब बात जान ली है ? (**प्रकट**) धन्य हो, आर्य चारुदत्त ।

मनुष्यों को हमेशा अच्छे गुणों को अपनाना चाहिए । क्योंकि गुणी दरिद्र निर्गुण धनी से बढ़कर होता है ॥ २२ ॥

और भी—मनुष्य को हमेशा सद्‌गुणों के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए । क्योंकि गुणवानों के लिए संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । अपने गुण के कारण ही भगवान् शंकर के दुर्लङ्घ्य मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥ २३ ॥

वसन्तसेना—यहाँ कौन गाड़ीवान है ?

(प्रविश्य सप्रवहणम् ।)

चेटः—अज्जए ! सज्जं पवहणं । [**आर्ये ! सज्जं प्रवहणम् ।**]

वसन्तसेना—हञ्जे मदणिए ! सुदिट्ठं मं करेहि । दिण्णासि । आरुह पवहणं । सुमरेसि मं । [**हञ्जे मदनिके ! सुदृष्टां मां कुरु । दत्ताऽसि । आरोह प्रवहणम् ! स्मरसि माम् ।**]

मदनिका—(रुदती) परिच्चत्तम्हि अज्जआए । (इति पादयोः पतति) [**परित्यक्ताऽस्मि आर्यया ।**]

वसन्तसेना—संपदं तुमं ज्जेव बन्दणीआ संवुत्ता । ता गच्छ । आरुह पवहणं । सुमरेसि मं । [**साम्प्रतं त्वमेव वन्दनीया संवृत्ता । तद् गच्छ । आरोह प्रवहणम् । स्मरसि माम् ।**]

शर्विलकः—स्वस्ति भवत्यै । मदनिके !

सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यतां जनः ।
यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुण्ठनम् ।। २४ ।।

(प्रविश्य = रंगे समागत्य, प्रवहणिकः = शकटचालकः)

चेटः—आर्ये = मान्ये, सज्जम् = प्रस्तुतम्, प्रवहणम् = शकटम् ।

वसन्तसेना—सुदृष्टाम् = शोभनमवलोकिताम्, माम् = वसन्तसेनाम्, कुरु = विधेहि । दत्ता = प्रदत्ताऽसि । आरोह = अधिरोहणं कुरु, प्रवहणम् = शकटम् । स्मरसि = स्मरणं करोसि, माम् = वसन्तसेनाम् ।

मदनिका—(रुदती = क्रन्दती) आर्यया = मान्यावसन्तसेनया, परित्यक्ताऽस्मि = उत्सर्गिताऽस्मि । (इति = एवमुक्त्वा, पादयोः = चरणयोः, पतति ।)

वसन्तसेना—साम्प्रतम् = अधुना, त्वमेव = ब्राह्मणवधूत्वात् मदनिका एव, वन्दनीया = पूजनीया, संवृत्ता = जाता, तत् = तस्मात्, गच्छ = याहि ।

शर्विलकः—स्वस्ति = कल्याणम्, भवत्यै = देव्यै, मदनिके—

(गाड़ी के साथ प्रवेश कर)

चेट—आर्ये, गाड़ी तैयार है ।

वसन्तसेना—अरी ओ मदनिके, जरा आँख भर देख लेने दो, आज से तो तुम पराई हो गई हो । आओ गाड़ी पर बैठो । मुझे भूल मत जाना ।

मदनिका—(**रोती हुई**) आर्या ने मुझे छोड़ दिया । (**ऐसा कहकर वसन्तसेना के पैरों पर गिरती है ।**)

वसन्तसेना—अरी, अब तो तुम मेरे लिए पूजनीय हो गई हो । आओ, गाड़ी पर बैठो । मुझे याद रखना ।

शर्विलक—आपका कल्याण हो । मदनिके—

वसन्तसेना को भर आँख देख लो और विनय भाव से इन्हें प्रणाम करो । क्योंकि इन्हीं की कृपा से वेश्यालय में रहकर भी तुमने 'वधू' का घूंघट पाया है । ।। २४ ।।

(इति मदनिकया सह प्रवहणमारुह्य गन्तुं प्रवृत्तः ।)

(नेपथ्ये) कः कोऽत्र भोः ! राष्ट्रियः समाज्ञापयति—'एष खलु आर्यको गोपालदारको राजा भविष्यती'ति सिद्धादेशप्रत्ययपरित्रस्तेन पालकेन राज्ञा घोषादानीय घोरे बन्धनागारे बद्धः । ततः स्वेषु स्वेषु स्थानेषु अप्रमत्तैर्भवद्भिर्भवितव्यम् ।'

शर्विलकः—(आकर्ण्य) कथं राज्ञा पालकेन प्रियसुहृदार्यको मे बद्धः । कलत्रवांश्चास्मि संवृत्तः । आः, कष्टम् । अथवा—

द्वयमिदमतीव लोके प्रियं नराणां सुहृच्च वनिता च ।
सम्प्रति तु सुन्दरीणां शतादपि सुहृद्विशिष्टतमः ॥ २५ ॥

अन्वयः—एष, जनः, सुदृष्टः, क्रियताम्, शिरसा, वन्द्यताम्, यत्र, दुर्लभम्, वधू, शब्दावगुण्ठनम्, ते, प्राप्तम् ॥ २४ ॥

सुदृष्ट इति । एषः=पुरोवर्ती, जनः=लोकः, सुदृष्टः=समादरेणावलोकितः, क्रियताम्=विधीयताम्, शिरसा=मस्तकेन, वन्द्यताम्=प्रणम्यताम्, यत्र=यस्मिन् जने, दुर्लभम्=मनसाऽपि दुष्प्राप्यम्, वधूशव्दावगुण्ठनम्=आवरणम्, ते=तव, कर्त्तुः शेषत्वविवक्षया ते इति षष्ठी, इति पृथ्वीधरः, प्राप्तम्=लब्धम्, अनया वसन्तसेनाकृपया मया परिणीता भार्या अभूः इति । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । आर्याजातिः ॥ २४ ॥

(मदनिका सह, प्रवहणम्=शकटम्, आरुह्य=आरोहणं कृत्वा,
गन्तुं=प्रस्थितुं, प्रवृत्तः=उन्मुखः भवतीति शेषः)

(नेपथ्ये=वेशस्थाने) राष्ट्रियः=राष्ट्रशासकः, समाज्ञापयति=घोषणा कारयति, आर्यकः=एतन्नामा गोपालदारकः=आभीरपुत्रः, सिद्धस्य=सिद्धपुरुषस्य, आदेशे=कथने, प्रत्ययः=विश्वासः तस्मात् परित्रस्तः=भीतः, तेन, पालकेन=एतन्नामकेन, राज्ञा=नृपेण, घोषात्=आभीरपल्याः, घोरे=भयङ्करे, अप्रमत्तैः=सावधानैः ।

शर्विलकः—(आकर्ण्य=राष्ट्रियाज्ञां श्रुत्वा) प्रियसुहृत्=बालमित्रम्, कलत्रवान्=भार्यावान्, आः=पीडायाम्—

अन्वयः—लोके, सुहृद्, वनिता, च, इदम्, द्वयम्, नराणाम्, अतीव, प्रियम्, तु, सम्प्रति, सुन्दरीणाम्, शतात्, अपि, सुहृद, विशिष्टतमः ॥ २५ ॥

(इस प्रकार मदनिका के साथ गाड़ी पर चढ़कर जाने को प्रस्तुत होता है ।)

(नेपथ्य में) यहाँ कौन है ? राजपुरुष का आदेश है—'यह अहीर का बेटा आर्यक राजा होगा' इस प्रकार किसी सिद्धपुरुष के कहने पर डरे हुए राजा पालक ने उसे मड़ई से पकड़कर कठोर कारागार में बन्द कर दिया है ।

शर्विकल—(**सुनकर**) राजा पालक ने मेरे मित्र आर्यक को पकड़ लिया है । इधर मैं स्त्री वाला हो गया हूँ । खेद है—

संसार में मनुष्य को स्त्री और मित्र दो ही प्रिय हैं । किन्तु इस समय सैकड़ों सुन्दरियों की अपेक्षा मित्र बढ़कर है ॥ २५ ॥

भवतु, अवतरामि । (इत्यवतरति ।)

मदनिका—(सास्रमञ्जलिं बद्ध्वा) एव्वं णेदं । ता परं णेदु मं अज्जउत्तो समीवं गुरुअणाणं । [एवमेतत् । तत्परं नयतु मामार्यपुत्रः समीपं गुरुजनानाम् ।]

शर्विलकः—साधु, प्रिये ! साधु । अस्माच्चित्तसदृशमभिहितम् । (चेटमुद्दिश्य) भद्र ! जानीते रेभिलस्य सार्थवाहस्य उदवसितम् ?

चेटः—अध इं । [अथ किम् ?]

शर्विलकः—तत्र प्रापय प्रियाम् ।

चेटः—जं अज्जो आणवेदि । [यदार्य आज्ञापयति ।]

मदनिका—जधा अज्जउत्तो भणादि । अप्पमत्तेण दाव अज्जउत्तेण होदव्वं । [यथा आर्यपुत्रो भणति, अप्रमत्तेन तावदार्यपुत्रेण भवितव्यम् ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

द्वयमिति । लोके=संसारे, सुहृद्=मित्रम्, च=पुनः, वनिता=भार्या, इदम्=उक्तप्रकारकम्, द्वयम्=उभयम्, नराणाम्=पुरुषाणाम्, अतीव=अधिकम्, प्रियम्=प्रीतिकरम्, अस्तीति शेषः । तु=किन्तु, सम्प्रति=अधुना, सुन्दरीणाम्=रूपलावण्ययुतां नारीणाम्, शतात्=शतसङ्ख्यायाः, अपि सुहृद्=मित्रम्, विशिष्टतमः=श्रेष्ठतमः अधिकप्रियः, अस्तीति भावः । अत्र तुल्ययोगिता व्यतिरेकश्चालङ्कारः । आर्याजातिः ।

मदनिका—तत्=तस्मात्, परम्=प्रथमम्, गुरुजनानाम्=श्रेष्ठसम्बन्धिजनानाम् ।

शर्विलकः—अस्मच्चित्तस्य सदृशम्=मम मनोनुकूलम्, अभिहितम्=उक्तम्, रेभिलस्य=एतदाख्यस्य, उदवसितम्=गेहम् ।

चेटः—अथ किम्=जानामीति भावः ।

शर्विलकः—तत्र=तस्मिन् स्थाने, प्रियाम्=मदनिकाम्, प्रापय=उपस्थापय ।

चेटः—यत्=यथा, आर्यः=श्रीमान्, आज्ञापयति=आदिशति ।

मदनिका—यथा=येन प्रकारेण, आर्यपुत्रः=स्वामी, अप्रमत्तेन=सावधानेन भवितव्यम् । (इति निष्क्रान्ता ।)

अच्छा उतरता हूँ । (गाड़ी से उतरता है ।)

मदनिका—(आँखों में आँसू भरकर, हाथ जोड़कर) आपका विचार ठीक है; पर मुझे गुरुजनों के पास पहुँचा दें ।

शर्विलक—धन्य हो प्रिये, तुमने तो मेरे मन की बात कह दी । (चेट से) तुम रेभिल बनिए का घर जानते हो ?

चेट—क्यों नहीं ।

शर्विलक—वहाँ ही इन्हें पहुँचा दो ।

चेट—आपकी जैसी आज्ञा ।

मदनिका—आप जैसा विचार कर रहे हैं, ऐसे काम में आपको भी सावधान रहना चाहिए । (यह कहकर निकल जाती है ।)

शर्विलकः—अहमिदानीम्—

ज्ञातीन् विटान् स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्
राजापमानकुपितांश्च नरेन्द्रभृत्यान् ।
उत्तेजयामि सुहृदः परिमोक्षणाय
यौगन्धरायण इवोदयनस्य राज्ञः ॥ २६ ॥

अपि च—प्रियसुहृदमकारणे गृहीतं
रिपुभिरसाधुभिराहितात्मशङ्कैः ।
सरभसमभिपत्य मोचयामि
स्थितमिव राहुमुखे शशाङ्कबिम्बम् ॥ २७ ॥

(इति निष्क्रान्तः ।)

अन्वयः—उदयनस्य, राज्ञः, यौगन्धरायणः, इव, सुहृदः, परिमोक्षणाय, ज्ञातीन्, विटान्, स्वभुजविक्रमलब्धवर्णान्, राजापमानकुपितान्, नरेन्द्रभृत्यान्, च उत्तेजयामि।

ज्ञातीनिति । उदयनस्य=वत्सराजस्य, राज्ञः=नृपस्य, यौगन्धरायणः=उदयनस्यामात्यः, इव=यथा, सुहृदः=मित्रस्य, परिमोक्षणाय=मोचनाय, ज्ञातीन्=बान्धवान्, विटान्=धूर्त्तजनान्, स्वभुजविक्रमेण=निजबाहुबलेन, लब्धः=प्राप्तः, वर्णः=यशः यैस्तान्, राज्ञः=नृपालकस्य, अपमानेन=तिरस्कारेण, कुपितान्=क्रुद्धान्, नरेन्द्रस्य=राज्ञः, भृत्यान्=सेवकान्, च=पुनः, उत्तेजयामि=प्रोत्साहयामि । अस्मिन् श्लोके तुल्ययोगितालङ्कारः श्रौती उपमा च । वृत्तं वसन्ततिलकम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—आहितात्मशङ्कैः, असाधुभिः, रिपुभिः, अकारणे, गृहीतम्, राहुमुखे-स्थितम्, शशाङ्कबिम्बम्, इव, प्रियसुहृदम्, सरभसम्, अभिपत्य, मोचयामि ॥ २७ ॥

प्रियेति । आहिता=स्थापिता, आत्मनि=स्वस्मिन्, शङ्का=सन्देहः, तैः, असाधुभिः=दुष्टैः, रिपुभिः=शत्रुभिः, अकारणे=कारणाभावे सत्यपि, गृहीतम्=कारागारे निबद्धम्, राहुमुखे स्थितम्=विधुन्तुदानने स्थितम्, शशाङ्कबिम्बम्=चन्द्रमण्डलम्, इव=यथा, प्रियसुहृदम्=प्रियमित्रम्, सरभसम्=सवेगम्, अभिपत्य=आक्रम्य, मोचयामि=बन्धनविहीनं करोमि । पुष्पिताग्रा वृत्तम्, उपमालङ्कारः ॥२७॥

(इति निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

शर्विलक—इस समय मुझे—

जैसे राजा उदयन की रक्षा के लिए यौगन्धरायण ने प्रयास किया था, उसी प्रकार अपने मित्र की रक्षा के लिए प्रयत्नशील होना है । उसके उद्धार के लिए—धूर्त्तों, राजा के निरादर से क्रुद्ध उनके कुटुम्बियों, सचिवों एवं अपने बाहुबल के लिए विख्यातवीरों को उकसाता हूँ ॥ २६ ॥

और भी—अपने मन की शंका से भयभीत होकर अकारण ही इस दुष्ट ने मेरे मित्र को जेल में डाल दिया है । राहु के मुँह में पड़े चन्द्रमण्डल की तरह अपने मित्र का मैं चलकर उद्धार करता हूँ ॥ २७ ॥

(चला जाता है ।)

चेटी—(प्रविश्य) अज्जए ! दिट्ठिआ वड्ढसि । अज्जचारुदत्तस्स सआसादो वम्हणो आअदा । [आर्ये ! दृष्ट्या वर्द्धसे आर्यचारुदत्तस्य सकाशात् ब्राह्मण आगतः ।]

वसन्तसेना—अहो ! रमणीअदा अज्ज दिवसस्स । ता हञ्जे ! सादरं बन्धुलेण समं पवेसेहि णं । [अहो ! रमणीयता अद्य दिवसस्य । तत् हञ्जे ! सादरं बन्धुलेन समं प्रवेशय एनम् ।]

चेटी—जं अज्जआ आणवेदि । (इति निष्क्रान्ता ।)[यदार्या आज्ञापयति ।]

(विदूषको बन्धुलेन सह प्रविशति ।)

विदूषकः—ही ही भोः ! तवच्चरणकिलेसविणिज्जिदेण रक्खसराओ रावणो पुप्फकेण विमाणेण गच्छदि; अहं उण वम्हणो अकिदतवच्चरणकिलेसो वि णरणारीजणेण गच्छामि । [ही ही भोः ! तपश्चरणक्लेशविनिर्जितेन राक्षसराजो रावणः पुष्पकेण विमानेन गच्छति; अहं पुनर्ब्राह्मणोऽकृततपश्चरणक्लेशोऽपि नरनारीजनेन गच्छामि ।]

चेटी—(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा) दृष्ट्या=भाग्येन, सकाशात्=समीपात् ।

वसन्तसेना—रमणीयता=शुभकार्यजातेनापहृतधनप्राप्त्या, बन्धुलेन=कुलटापुत्रेण अथवा परगृहललिताः परान्नपुष्टा, (४।२८) इति वक्ष्यमाणलक्षितेन पुरुषेण, सह=साकम्, विदूषकः=मैत्रेयः, एनम्=समागतम्, प्रवेशय ।

चेटी—यत्=यथा, आर्या=मान्या, आज्ञापयति=आदिशति । (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ता=बहिर्गता ।)

(विदूषकः=मैत्रेयः, बन्धुलेन=कुलटापुत्रेण, सह=साकम्, प्रविशति=प्रवेशं करोति ।)

विदूषकः—ही ही भोः=ही ही इति हर्षसूचकमव्ययम्, तपश्चरणस्य=तपस्यायाः, क्लेशेन=दुःखेन, विनिर्जितः=अधिगतस्तेन, राक्षसराजः=दैत्यराजः, रावणः=दशकन्धरः, पुष्पकेण=एतदाख्येन, विमानेन=यानविशेषेण, गच्छति=याति, अहम्=विदूषकः, पुनः=भूयः, ब्राह्मणः=विप्रः, अकृतः=अविहितः, तपश्चरणस्य=तपस्यायाः, क्लेशः=पीडा येन तादृशः, नरनारीजनेनः=सामान्यपुंस्त्रीजनेन, गच्छामि=यामि ।

चेटी—(मंच पर उपस्थित होकर) आर्ये ! शुभ समाचार है । आर्य चारुदत्त के यहाँ से एक ब्राह्मण आया है ।

वसन्तसेना—आह ! आज मेरा दिन बड़ा ही सुखद है । चेटी, बन्धुल के साथ ससम्मान उन्हें भीतर ले आओ ।

चेटी—जैसी आज्ञा । (कहकर निकल जाती है ।)

(बन्धुल के साथ विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—अरे, आश्चर्य है । राक्षसराज रावण ने उग्रतपस्या की थी, जिसके फलस्वरूप पुष्पक विमान से घूमा करता था, और मैं ब्राह्मण बिना तपस्या किये ही नरनारी रूप विमान से चलता हूँ ।

चेटी—पेक्खदु अज्जो अम्हकेरकं गेहदुआरं। [प्रेक्षतामार्यं अस्मदीयं गेहद्वारम्।]

विदूषकः—(अवलोक्य, सविस्मयम्) अम्मो ! सलिल-सित्त-मज्जिद-किद-हरिदोवलेवणस्स, विविह-सुअन्धिकुसुमोवहार-चित्तलिहिद-भूमिभाअस्स, गअणतलालोअण-कोदूहल-दूरुण्णामिदसीसस्स, दोलाअमाणावलंबिदैरावण-हत्थब्भमाइद-मल्लिआदामगुणालङ्किदस्स, समुच्छिददंति-दंततोरणाव-भासिदस्स, महारअणोवराओवसोहिणा पवणवलंदोलणा-ललंतचंचलग्ग-हत्थेण, 'इदो एहि' त्ति वाहरंतेण विअ मं सोहग्गपडाआ-णिवहेणोवसोहि-दस्स, तोरणधरणत्थम्भवेदिआ-णिक्खित्त-समुल्लसंत-हरिदचूदपल्लवललाम-फटिअ-मंगल-कलसाहिरामोहअपासस्स, महासुरवक्खत्थलदुब्भेज्जवज्ज-णिरंतरपडिवद्धकणअकवाडस्स, दुग्गदजणमणोरहा-आसकरस्स, वसन्तसेणा-भवण-दुआरस्स सस्सिरीअदा। जं सच्चं मज्जत्थस्स वि जणस्स वलादिट्ठिं आआरेदि। [अहो ! सलिल-सिक्तमार्जित-कृत-हरितोपलेपनस्य, विविध-सुगन्धि-कुसुमोपहार-चित्रलिखितभूमि-भागस्य, गगनतलालोकन-कौतूहलदूरोन्नमितशीर्षस्य, दोलायमानावलम्बितैरावण-हस्त-भ्रमायित-मल्लिकादामगुणालङ्कृतस्य, समुच्छ्रितदन्ति-दन्ततोरणावभासितस्य, महारत्नोपरागोपशोभिना पवनबलान्दोलना-ललच्चञ्चलाग्र-

---

चेटी—आर्य !=मान्य !, प्रेक्षताम्=पश्यताम्, अस्मदीयम्=मामकीयम्, गृहद्वारम्=भवनद्वारम्।

विदूषकः—(अवलोक्य=दृष्ट्वा, सविस्मयम्=साश्चर्यम्) अहो=इत्याश्चर्ये, सलि-लेन=जलेन, सिक्तम्=आर्द्रम्, ततः मार्जितम्=मार्जन्या परिष्कृतम्, कृतम्=विहितम्, हरितेन=हरितवर्णेन गोमयादिना यत्र उपलेपनम्, तादृशस्य विविधानाम्=अनेकवर्णा-नाम्, सुगन्धीनाम्=सुगन्धियुक्तानाम्, कुसुमानाम्=पुष्पाणाम्, उपहारैः=उपायनैः, चित्रलिखितः=आलेख्याङ्कितः, इव=यथा, भूमिभागः=भूप्रदेशः, यस्य तस्य, गगन-तलस्य=आकाशमण्डलस्य, आलोकनाय=अवलोकनाय, यत् कौतूहलम्=कौतुकम्, तेन, दूरे=दूरप्रदेशे, उन्नमितम्=उत्थापितम्, शीर्षम्=मस्तकम्, येन तस्येव। दोलाय-मानः=वायुसंसर्गेण कम्पितः, अवलम्बितः=अधोलम्बितः, तथा ऐरावतस्य=सुरगजस्य हस्तः=शुण्डादण्डः, तस्य भ्रमः=भ्रान्तिः यस्मिन् स तद्वदाचरितः इति ऐरावतहस्त-भ्रमायितः, मल्लिकादामगुणः=मल्लिकापुष्पहारः, तेन अलङ्कृतस्य=सुशोभितस्य,

---

चेटी—मान्यवर, आप हमारे घर का दरवाजा देखें।

विदूषक—(देखकर, आश्चर्य के साथ) पानी छिड़क कर, झाड़ू लगाकर गोबर से लीपा गया है। अनेक तरह के फूलों के उपहार चढ़ाने के कारण यहाँ की जमीन चित्र की तरह बन गई है। अपना ऊपरी हिस्सारूपी माथा उठाकर मानों आकाश छूने की स्पर्द्धा कर रहा है। इसमें लटकी मल्लिका की माला हाथी के सूंड़

हस्तेन 'इत एहि' इति व्याहरतेव मां सौभाग्यपताकानिवहेनोपशोभितस्य, तोरण-धरणस्तम्भवेदिका-निक्षिप्तसमुल्लसद्धरित-चूतपल्लवललामस्फटिकमङ्गलकलशाभिरामो-भयपार्श्वस्य, महासुर-वक्षःस्थल-दुर्भेद्य-वज्र-निरन्तरप्रतिबद्ध-कनक-कपाटस्य दुर्गतजन-मनोरथायासकरस्य, वसन्तसेनाभवनद्वारस्य सश्रीकता। यत् सत्यं मध्यस्थस्यापि जनस्य बलाद् दृष्टिमाकारयति।]

चेटी—एदु एदु अज्जो। इमं पढमं पओट्ठं पविसदुं अज्जो। [एतु एतु आर्यः। इमं प्रथमं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः।]

समुच्छ्रितेन=समुन्नतेन, दन्तिदन्ततोरणेन=गजदन्तनिर्मितबहिर्द्वारेण, अवभासितस्य =अलङ्कृतस्य, महारत्नानाम्=महर्घमणीनाम्, उपरागेण=उपहारेण, शोभते तच्छी-लेन, पवनबलेन=वायुघातेन, या आन्दोलना=अवधूननम् तया ललत् चञ्चलः=नीचै-रवलम्बमानकम्पितः, अग्रहस्तः=कराग्रम्, यस्य तेनैव 'इत एहि' इति शब्दार्थस्य चेष्टया व्याहरतेव=आह्वयता इव। सौभाग्यपताकानाम्=मङ्गलतोरणानाम्, निवहेन= समूहेन, उपशोभितस्य=विराजितस्य, तोरणधरणाय=बहिर्द्वारावलम्बनाय, ये स्तम्भाः तेषां वेदिका=परिष्कृतभूमयः, तासु निक्षिप्तौ=स्थापितौ, समुल्लसन्तः=शोभायमानाः, हरिताः=हरिद्वर्णाः, ये चूतपल्लवाः=आम्रपत्राणि तैः ललामौ=अतिसुन्दरौ, यौ, स्फटिकमङ्गलकलशौ=स्फटिकनिर्मितमाङ्गलिकघटौ, ताभ्याम् अभिरामम्=रमणीय-मुभयपार्श्वम् यस्य तथाभूतस्य महासुरस्य=हिरण्यकशिपोः, वक्षःस्थलम्=उरःप्रदेशम्, इव=यथा, दुर्भेद्यम्=दुःखेन भेत्तुं योग्यम्, वज्रैः=हीरकैः, निरन्तरम्=निविडम्, यथा तथा प्रतिबद्धम्=जटितम्, कनककपाटम्=स्वर्णनिर्मितकपाटं यस्य तादृशस्य, दुर्गतजनानाम्=अकिञ्चनजनानाम्, ये मनोरथाः=अभिलाषाः, तेषाम् आयासकरस्य =दुःखोत्पादकस्य, वसन्तसेनाभवनद्वारस्य अहो=आश्चर्यं, सश्रीकता=सौन्दर्यम्, यत्सत्यम्=एतन्निश्चितम्, मध्यस्थस्यापि=उदासीनस्यापि, दृष्टिम्, बलात्=हठात्, आकारयति=आकर्षति।

चेटी—एतु एतु=समागच्छतु, आर्य=मान्य। मम इमं प्रथमं प्रकोष्ठम्=कक्षम्।

की भ्रान्ति पैदा कर रही है। इसके तोरण हाथीदाँत के बने हैं। इसमें चन्द्रकान्त-मणि जैसे महँगे रत्न जड़े हैं। हवा के झोंके से ये हिल रहे हैं। लगता है, ये हाथ से हमें ही बुला रहे हैं। दोनों ओर तोरण बाँधने के लिए स्तम्भ शुभसूचक पताकाओं से सुशोभित हैं। हरे-हरे आम के पल्लवों से ये सजे हैं। इन पर स्फटिक पत्थर के बने मांगलिक कलश रक्खे हैं। हिरण्यकशिपु की कठोर छाती की तरह इनमें सोने के किवाड़ लगे हैं। इन किवाड़ों में हीरों की कीलें लगी हैं। यहाँ गरीब लोग दिन-रात मेहनत कर रहे हैं। वसन्तसेना के इस दरवाजे की शोभा अपूर्व है। इन्हें देखने के लिए निःस्पृहों की आँखें भी सहसा सस्पृह हो जाती हैं।

चेटी—आइए, आइए, यह पहला कमरा है। इसमें प्रवेश कीजिए।

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भोः ! इधो वि पढमे पओट्ठे ससि-संख-मुणालसच्छाओ, विणिहिद-चूण्ण-मुट्ठिपाण्डुराओ, विविह-रअण-पडिवद्धकंचण-सोबाण-सोहिदाओ, पासादपंतिओ. ओलंबिदमुत्तादामेहिं फटिअ-वादाअणमुहचंदेहिं णिज्झाअंती विअ उज्जइणिं। सोत्तिओ विअ सुहोव-विट्ठो णिद्दाअदि दोवारिओ। सदहिणा कलमोदणेण पलोहिदा ण भक्खंति वाअसा वलिं सुधासवण्णदाए। आदिसदु भोदी। [ही ही भोः ! इतोऽपि प्रथमे प्रकोष्ठे शशि-शङ्ख-मृणालसच्छायाः, विनिहितचूर्णमुष्टिपाण्डुराः विविध-रत्न-प्रतिबद्ध-काञ्चन-सोपान-शोभिताः, प्रासादपङ्क्तयः, अवलम्बितमुक्तादामभिः स्फटिकवातायन-मुखचन्द्रैर्निध्यायन्तीव उज्जयिनीम्। श्रोत्रिय इव सुखोपविष्टो निद्राति दौवारिकः। सदध्ना कलमोदनेन प्रलोभिता न भक्षयन्ति वायसा बलिं सुधासवर्णतया। आदिशतु भवती।]

चेटी—एदु एदु अज्जो। इमं दुदिअं पओट्ठं पविसदु अज्जो। [एतु एतु आर्यः। इमं द्वितीयं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः।]

विदूषकः—(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा च) इतोऽपि=अस्मिन्नपि, प्रथमे प्रकोष्ठे=प्रथमकक्षायाम् शशिशङ्खमृणालसच्छायाः=चन्द्रकम्बुविसकान्तयः, विनिहितचूर्णमुष्टिपाण्डुराः=अर्पितसुधाचूर्णवद्धहस्ततलधवलाः, विविधरत्नप्रतिबद्ध-काञ्चनसोपानशोभिताः=नानामणिखचितसुवर्णनिर्मितारोहणविराजिता प्रसादपङ्क्तयः=सौधश्रेणयः, अवलम्बितमुक्तादामभिः=अधोलम्बितमौक्तिकहारैः, स्फटिकवाताय-नानि=स्फटिकमणिरचितगवाक्षाः, तान्येव मुखचन्द्राः=चन्द्राननास्तैः, उज्जयिनीम्=अवन्तिराजधानीम्, निध्यान्तीव=आलोकयन्तीव। श्रोत्रियः इव=वेदाध्यायिब्राह्मण इव, सुखोपविष्टा=सांसारिक कार्येष्वनासक्तत्वेन स्थितः, वायसाः=काकाः, सदध्ना=दधिमिश्रितेन, कलमोदनेन=धान्यभक्तेन, प्रलोभिताः=आकर्षिताः, सुधासवर्णतया=भित्युपलिप्तचूर्णसमानवर्णतया, बलिम्=दधिभक्तवलिम्, न=नहि, भक्षयन्ति=खाद-यन्ति। आदिशतु=आज्ञापयतु, भवती=श्रीमती।

चेटी—एतु एतु आर्य=समागच्छतु भवान्। इमम्=अमूम्, द्वितीयं प्रकोष्ठम्=कक्षम्, प्रविशतु=प्रवेशं करोतु।

विदूषक—(प्रवेश कर और देखकर) पहले प्रकोष्ठ में भी चन्द्रमा, शंख एव भिसांड की तरह श्वेत चूर्ण से सुशोभित, रत्नजटित सोने की सीढ़ियों से आकर्षक, महलों की कतारें झूलती मोती की मालाओं से तथा स्फटिक से बने झरोखे रूपी मुखचन्द्र से मानो उज्जयिनी की शोभा देख रही हैं। दरवाजे पर बैठा द्वारपाल वेदपाठी ब्राह्मण की तरह निश्चिन्त नींद ले रहा है। दही के साथ अगहनी चावल के भात से लुभाये जाने पर भी ये कौवे सुधातुल्य शुभ्र वलि को चूने के भय से नहीं खा रहे हैं। हाँ, श्रीमतीजी अब आगे की राह बताएँ।

चेटी—आइये श्रीमान्, इस दूसरे कमरे में प्रवेश कीजिये।

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भोः ! इधा वि दुदीए पओट्ठे पज्जंतोवणीद-जवस-वुस-कवलसुपट्टा-तेल्लब्भंगिदविसाणा वद्धा पवहण-वइल्ला । अअं अण्णदरो अवमाणिदो विअ कुलीणो दीहं णीससदि सेरिहो । इदो अ अवणीदजुज्झस्स मल्लस्स विअ मद्दीअदि गीवा मेसस्स । इदो इदो अवराणं अस्साणं केसकप्पणा करीअदि । अअं अवरो पाडच्चरो विअ दिढवद्धो मंदुराए साहामिओ । (अन्यतोऽवलोक्य च) इदो अ कूरच्चुअतेल्लमिस्सं पिंडं हत्थी पडिच्छावीअदि मेत्थपुरिसेहिं । आदिसदु भोदी । [ही ही भोः ! इतोऽपि द्वितीये प्रकोष्ठे पर्यन्तोपनीत-यवस-बुस-कवलसुपुष्टास्तैलाभ्यक्तविषाणा बद्धाः प्रवहणबलीवर्दाः । अयमन्यतरः अवमानित इव कुलीनो दीर्घं निःश्वसिति सैरिभः । इतश्च अपनीतयुद्धस्य मल्लस्येव मर्द्यते ग्रीवा मेषस्य । इत इतः अपरेषामश्वानां केशकल्पना क्रियते । अयमपरः पाटच्चर इव दृढबद्धो मन्दुरायां शाखामृगः । इतश्च कूर-च्युत-तैल-मिश्रं पिण्डं हस्ती प्रतिग्राह्यते मात्रपुरुषैः । आदिशतु भवती ।]

चेटी—एदु एदु अज्जो । इमं तइअं पओट्ठं पविसदु अज्जो । [एतु एतु आर्यः । इमं तृतीयं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः ।]

विदूषकः—पर्यन्तोपनीतानि=पार्श्वभागे प्रक्षिप्तानि, यवसानाम्=तृणानाम्, बुसानाम्=धान्यत्वचानाम्, कवलैः=ग्रासैः, सुपुष्टाः=पुष्टाङ्गाः, तैलेन=स्नेहेन, अभ्यक्तानि=लिप्तानि, विषाणानि=शृङ्गाणि येषां ते प्रवहणवलीवर्दाः=वृषभाः सन्तीति शेषः । अन्यतरः=द्वयोर्मध्ये एकः, अन्यः, कुलीनः=सद्वंशोद्भवः पुरुषः, इव सैरिभः=महिषः, दीर्घम्=अत्यधिकम्, अवमानितः=कृतापमानः, निःश्वसिति=श्वासं मुञ्चति, अपनीतम्=वारितम्, युद्धम्=मल्लयुद्धम्, यस्य तस्य, मल्लस्य=बाहुयुद्ध-निपुणस्य, केशानाम्=कचानाम्, कल्पना=रचना, पाटच्चरः=तस्करः, इव=यथा, मन्दुरायाम्=बाजिशालायाम्, दृढबद्धः=दृढबन्धनः, शाखामृगः=वानरः, कूरात्=द्रव्यविशेषात्, च्युतम्=निष्ठ्यूतम्, यत् तैलम्, तेन मिश्रम्=संयुक्तम्, पिण्डम्, मात्र-पुरुषैः=हस्तिपकैः, हस्ती=गजः प्रतिग्राह्यते । आदिशतु भवती=आज्ञापयतु श्रीमती ।

चेटी—एतु एतु=समागच्छतु, आर्य=मान्य, इमम्=एतत्, तृतीयं प्रकोष्ठम् ।

विदूषक—(प्रवेशकर और देखकर) सामने डाली गई घास और भूसे खाने से तगड़े तेल लगे सींध वाले गाड़ी के बैल बँधे हैं । यह एक भैंसा, खानदानी अपमानित आदमी की तरह लंबी साँसे खींच रहा है । दूसरी ओर लड़कर आये पहलवान की तरह भेड़ों की गर्दन मली जा रही है । इधर घोड़ों के बाल छाँटे जा रहे हैं, उधर चोर की तरह वानर को घुड़साल में बाँधकर रक्खा गया है । (दूसरी ओर देखकर) इधर तेल टपकते हुए गोल-गोल पिण्डों को महावत हाथी को खिला रहा है । अब श्रीमती आगे की राह बतलाएँ ।

चेटी—आइए, इस तीसरे घर में आप प्रवेश करें ।

विदूषकः—(प्रविश्य, दृष्ट्वा च) ही ही भोः ! इधो वि तइए पओट्ठे इमाइं दाव कुलउत्तजणोववेसणणिमित्तं विरचिदाइं आसणाइं । अद्धवाचिदो पासअ-पीठे चिट्ठइ पोत्थवो । ऐसो अ मणिमअ-सारिआ-सहिदो पासअपीठो । इमे अ अवरे मअणसंधि-विग्गह-चदुरा विविह-वण्णिआ-विलित्त-चित्त-फलअग्ग-हत्था इदो तदो परिब्भमिंत गणिआ वुड्ढविडा अ । आदिसदु भोदी । [ही ही भोः ! इतोऽपि तृतीये प्रकोष्ठे इमानि तावत् कुलपुत्रजनोपवेशननिमित्तं विरचितानि आसनानि । अर्द्धवाचितं पाशकपीठे तिष्ठति पुस्तकम् । एतच्च मणिमय-सारिका-सहितं पाशकपीठम् । इमे च अपरे मदन-सन्धि-विग्रह-चतुरा विविध-वर्णिका-विलिप्त-चित्रफल-काग्रहस्ता इतस्ततः परिभ्रमन्ति गणिका वृद्धविटाश्च । आदिशतु भवती ।]

चेटी—एदु एदु अज्जो । इमं चउट्ठं पओट्ठं पविसदु अज्जो । [एतु एतु आर्यः । इमं चतुर्थं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः ।]

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भोः ! इधो वि चउट्ठे पओट्ठे जुव-दिकर-ताडिदा जलधरा विअ गंभीरं णदंति मुदंगा । हीणपुण्णाओ विअ गअणादो तारआओ । णिवडंति कंसतालआ । महुअर-विरुअ-महुरं वज्जदि

विदूषकः—कुलपुत्रजनानाम् = सद्वंशोद्भवपुरुषाणाम्, उपवेशनाय=उपवेशनार्थम्, विरचितानि = सज्जीकृतानि, अर्द्धम् = अर्द्धभागम्, वाचितम् = अधीतम् यस्य तत् = तादृशम्, पुस्तकम् = कामशास्त्रादिग्रन्थम्, पाशकस्य = अक्षक्रीडनस्य, पृष्ठे = आसने तिष्ठति । मणिमयसारिकाभिः=मणिरचितगुटकादिभिः, सहितम् = संयुक्तम्, मदनस्य= कामस्य, सन्धिः = मेलनम्, विग्रहः = कलहः, तयोः चतुराः = प्रवीणाः, विविधवर्णि-काभिः = नानाविधरज्जनद्रव्यैः, विलिप्तानि = चित्रितानि, यानि चित्रफलकानि = यातायातं कुर्वन्ति च । गणिकाः = वाराङ्गनाः वृद्धधूर्त्ताश्चेति ।

चेटी—चतुर्थप्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः ।

विदूषकः—युवतीनाम् = तरुणीनाम्, करैः = हस्तैः, ताडिताः = आहताः, मृदङ्गाः = मुरजाः, नदन्ति = शब्दं कुर्वन्ति, गगनात् = नभोमण्डलात्, क्षीणपुण्याः = भोगेन

विदूषक—(**प्रवेशकर और देखकर**) अरे आश्चर्य है, भद्र लोगों को बैठने लायक उपस्कर सजाये गये हैं । आधी पढ़ी हुई पुस्तक पाशा खेलने की चौकी पर पड़ी है । पाशा के कोष्ठक भी कीमती पाशे से भरे हैं । एक ओर प्रेम-मिलन एवं प्रणय-कलह कराने में चतुर वेश्याएँ एवं दूसरी ओर वृद्ध विट हाथों में अनेक आकर्षक चित्र लिए इधर-उधर घूम रहे हैं । आप आगे की राह बतलायें ।

चेटी—आइए, यह रहा चौथा प्रकोष्ठ, इसमें आप प्रवेश करें ।

विदूषक—(**प्रवेशकर और देखकर**) अरे आश्चर्य है, इस घर में युवतियाँ मृदङ्ग बजा रही हैं । पुण्यक्षीण होने पर आकाश से गिरे तारे की तरह करताल भी

वंसो। इअं अवरा ईसाप्पणअ-कुविद-कामिणी विअ अंकारोविदा कररुह-परामरिसेण सारिज्जदि वीणा। इमाओ अवराओ कुसुम-रस-मत्ताओ विअ महुअरिओ अदिमहुरं पगीदाओ गणिआदारिआओ णच्चीअंति, पट्टअं पठिअंति ससिंगारओ। ओवग्गिदा गवक्खेसु वादं गेण्हंति सलिल-गग्गरीओ। आदिसदु भोदी। [ही ही भोः ! इतोऽपि चतुर्थे प्रकोष्ठे युवति-कर-ताडिता जलधरा इव गम्भीरं नदन्ति मृदङ्गाः। क्षीणपुण्या इव गगनात्तारका निपतन्ति कांस्यतालाः। मधुकर-विरुत-मधुरं वाद्यते वंशः। इयमपरा ईर्ष्या-प्रणयकुपितकामिनीव अङ्कारोपिता कररुहपरामर्शेन सार्यते वीणा। इमा अपराश्च कुसुमरसमत्ता इव मधुकर्य्यः अतिमधुरं प्रगीता गणिकादारिकाः नर्त्यन्ते, नाट्यं पाठ्यन्ते सशृङ्गारम्। अपवल्गिता गवाक्षेषु वातं गृह्णन्ति सलिलगर्ग्यः। आदिशतु भवती।]

चेटी—एदु एदु अज्जो। इमं पंचमं पओट्ठं पविसदु अज्जो। [एतु एतु आर्यः। इमं पञ्चमं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः।]

विदूषकः—(प्रविश्य, दृष्ट्वा च) ही ही भो ! इधो वि पंचमे पओट्ठे अअं दलिद्द-जण-लोहुप्पादणअरो आहरइ उवचिदो हिंगु-तेल्लगंधो। विविह-

---

परिसमाप्तसुकृताः, तारकाः इव=नक्षत्राणि यथा, निपतन्ति=पतन्ति, 'वंदग्ध्यवादनादेव निपातः' इति पृथ्वीधरः। मधुकराणाम्=भ्रमराणाम्, विरुतमिव=गुञ्जितमिव, वंशः=वंशी, वाद्यते=शब्दायते, ईर्ष्या=अन्योत्कर्षासहिष्णुता, प्रणये=प्रेमालिङ्गने, कुपिता=क्रुद्धाः, कामिनी=भामिनी, इव, अङ्कारोपिता=क्रोडे स्थापिता, वीणा=तन्त्री, कररुहाणाम्=नखानाम्, परामर्शेन=स्पर्शेन, उत्सार्यते=प्रसादनम् क्रियते, कुसुमानाम्=पुष्पाणाम्, रसैः=रसास्वादनैः, मत्ताः=क्षीबाः, मधुकर्यः, प्रकृष्टम्=उत्कृष्टम्, गीतम्=गुञ्जनम् यासां ताः, गणिकानाम्=वेश्यानाम्, दारिकाः=बालिकाः, सशृङ्गारम्=ससज्जम्, नृत्यते=नृत्यं कार्यन्ते, नाट्यम्=नाट्यशास्त्रञ्च, पाठ्यन्ते=अध्यापयन्ते, गवाक्षेषु=वातायनेषु, अपवल्गिताः=स्थापिताः, सलिलगर्ग्यः=जलपूर्णघटाः, वातम्=पवनम्, गृह्णन्ति=सेवन्ते।

चेटी—पञ्चमं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः।

विदूषकः—दरिद्रजनानाम्=धनहीनानाम्, लोभोत्पादनकरम्=तृष्णोद्दीपकः,

---

बज रहे हैं। भौरों की गुंजार की तरह बांसुरी भी बज रही है। ईर्ष्या के कारण प्रणयकुपित युवती की तरह गोद में वीणा को रखकर उसके तारों को साधा जा रहा है। पुष्परस पीकर मदमत्त भौरों की तरह वेश्या-बालिकाओं को अभिनय सिखलाये जा रहे हैं। झरोखे पर रक्खी जलपूर्ण गगरियाँ हवा में ठंढी हो रही हैं। आगे बढ़ें, श्रीमतीजी।

चेटी—यह पाँचवाँ घर है, इसमें प्रवेश करें श्रीमान्।

विदूषक—(भीतर जाकर और देखकर) इस घर में गरीबों को लुभाने वाले

सुरहि-धूमुग्गरेहिं णिच्चं संताविज्जमाणं णीसअदि विअ महाणसं दुआर-मुहेहिं। अधिअं उसुसावेदि मं साहिज्जमाण-बहुविह-भक्ख-भोअण-गंधो। अअं अवरो पडच्चरं विअ पोट्टिं धोअदि रूपिदारओ। बहुविहाहारविआरं उवसाहेदि सूवआरो। वज्झंति मोदआ, पच्चंति अ पूवआ। (आत्मगतम्) अवि दाणिं इह वड्ढिअं भुंजसु त्ति पादोदअं लहिस्सं ? (अन्यतोऽवलोक्य च) इदो गंधव्वच्छरगणेहि विअ विविहालंकारसोहिदेहि गणिआजणेहि बंधलेहिं अ जं सच्चं सग्गीअदि एदं गेहं। भो ! के तुम्हे बंधुला णाम ? [ही ही भोः ! इतोऽपि पञ्चमे प्रकोष्ठे अयं दरिद्रजनलोभोत्पादनकरम् आहरति उपचितो हिङ्गुतैलगन्धः। विविध-सुरभि-धूमोद्गारैः नित्यं सन्ताप्यमानं निःश्वसितीव महानसं द्वारमुखैः। अधिकमुत्सुकायते मां साध्यमानबहुविध-भक्ष्य-भोजनगन्धः। अयमपरः पच्चरमिव पेशिं धावति रूपिदारकः। बहुविधाहार-विकारमुपसाधयति सूपकारः। बध्यन्ते मोदकाः। पच्यन्ते च पूपकाः। अपि इदानीमहं वर्द्धितं भुङ्क्ष्व इति पादोदकं लप्स्ये ? इह गन्धर्वाप्सरोगणैरिव विविधालङ्कारशोभितैः गणिकाजनैः बन्धुलैश्च यत्सत्यं स्वर्गायते इदं गेहम्। भोः ! के यूयं बन्धुला नाम ?]

उपचितः=वृद्धिं गतः, हिङ्गुतैलगन्धः=हिङ्गुस्नेहसुगन्धिः, आहरति=समन्तात् प्रसरति, महानसम्=पाकशाला, 'रसवत्यान्तु पाकस्थानमहानसे' इत्यमरः। नित्यम् =प्रतिदिनम्, सन्ताप्यमानः=सन्तापं प्राप्यमाणः, विविधसुरभीणां=अनेकविधसुगन्ध-युक्तानां धूमानाम्, उद्गारः=उद्गीरणः येभ्यस्तैः द्वारमुखैः=प्रतीहाराननानि तैः निःश्वसति=उच्छ्वासम् गृह्णाति इव, साध्यमानानाम्=पच्यमानानाम्, बहुविधा-नाम्=अनेकप्रकाराणाम्, भक्ष्याणाम्=भक्ष्यचर्व्यादीनाम्, भोजनानाम्=व्यञ्जनादीनाम्, गन्धः=सौरभः, उत्सुकायते=उत्सुकं करोसि, रूपिदारकः—रूपिणम्=पशुम्, रूपम् स्वभावे सौन्दर्ये नामगे पशुशब्दयोः' इति मेदिनी। दारयति=विदारयति इति रूपिदारकः=पशुहन्ता, अपरश्चायं रूपमस्यास्तीति रूपी, स चासौ दारकः=बालकः, रूपिदारकः=सुशीलबालः, पटच्चरमिव=जीर्णवस्त्रमिव 'पटच्चरम् जीर्णवस्त्रम्' इत्यमरः। हतपशोः=मारितछागस्य, उदरपेशिम्=उदरस्थकोमलमालम्, धावति

पाकशाला से हींग की सुगन्ध आ रही है। ये पाकशाला अपने दरवाजे से धुएँ के साथ अनेक तरह की सुगंध साँस की तरह बाहर निकाल रहे हैं। अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों की सुगन्ध मुझे खींच रहे हैं। यह बूचर बालक पुराने वस्त्र की तरह पशु के आँत को धो रहे हैं। रसोइया अनेक प्रकार के आकर्षक भोजन तैयार कर रहे हैं। कहीं लड्डू बाँधे जा रहे हैं। कहीं पूए बन रहे हैं। (मन ही मन) तो क्या यहाँ पैर धोने के लिए पानी कहीं मिलेगा। (दूसरी ओर देखकर) यहाँ गन्धर्वों एवं अप्सराओं के झुण्डों की तरह अनेक जेवरों वाली अप्सराओं के घूमने से यह घर स्वर्ग की तरह लग रहा है। ये बन्धुल कौन हैं ?

बन्धुलाः— वयं खलु—

परगृहललिताः परान्नपुष्टाः
परपुरुषैर्जनिताः पराङ्गनासु ।
परधननिरता गुणेष्ववाच्या
गजकलभा इव बन्धुला ललामः ॥ २८ ॥

विदूषकः—आदिसदु भोदी । [आदिशतु भवती ।]

चेटी—एदु एदु अज्जो ! इमं छट्ठं पओट्ठं पविसदु अज्जो । [एतु एतु आर्यः । इमं षष्ठं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः ।]

विदूषकः—(प्रविश्यालोक्य च) ही ही भो ! इधो वि छट्ठे पओट्ठे अमुं दाव सुवण्ण-रअणाणं कम्मतोरणाइं णील-रअण-विणिक्खित्ताइं इंदाउहट्ठाणं

=प्रक्षालयति, सूपकारः=पाककर्त्ता, बहुविधानाम्=अनेकप्रकारकाणाम्, आहाराणाम्=खाद्यपदार्थानाम्, विकारम्=भेदम्, उपसाधयति=सम्पादयति, मोदकाः=लड्डुकानि, बध्यन्ते=वर्त्तुलीक्रियन्ते, पूपकाः=पिष्टकरूपाणि, पच्यन्ते=सिद्धीक्रियन्ते, इह=अत्र, वर्द्धितम=सम्पन्नम्, पादोदकम्=पादप्रक्षालनाय जलम्, स्वर्गायते=इहैव स्वर्गवदाचरतीति भावः ।

अन्वयः—परगृहललिताः, परान्नपुष्टाः, परपुरुषैः, पराङ्गनासु, जनिताः, परधननिरताः, गुणेषुः, अवाच्या, बन्धुलाः, गजकलभाः, इव, ललामः ॥ २८ ॥

परगृहेति । परगृहललिताः=अन्यसदनपालिताः, परान्नपुष्टाः=अन्यजनान्नधनपालिताः, परपुरुषैः=अन्यजनैः, पराङ्गनासु=परनारीषु, जनिताः=समुत्पन्नाः, परधननिरताः=अन्यविभवसंसक्ताः, गुणेषु=दयादाक्षिण्यादिगुणेषु, अवाच्या=अकथनीया, बन्धुलाः=कुलटापुत्राः, गजकलभाः=हस्तिशावकाः, इव=यथा, ललामः=विहरामः । उपमालङ्कारः, पुष्पिताग्रा वृत्तञ्चेति ॥ २८ ॥

विदूषकः—आदिशतु=आज्ञापयतु, भवती ।

चेटी—इमं षष्ठं प्रकोष्ठम् ।

विदूषकः—नीलरत्नैः=मरकतमणिभिः, विनिक्षिप्तानि=जडितानि, सुवर्णरत्नानाम्=रत्नजटितकनकानाम्, कर्मतोरणानि=शिल्परचनाविशेषेण बहिर्द्वाराणि,

---

बन्धुल—हम लोग तो—

दूसरों के घरों में सुख से रहने वाले, दूसरों के दाने पर पले हुए, अन्य पुरुषों के द्वारा दूसरों की स्त्रियों में पैदा किए गये, पराये धन को मौज से उड़ाने वाले, गुणहीन हम बन्धुल लोग हाथियों के बच्चों की तरह बिहार करते हैं ॥ २८ ॥

विदूषक—अब आप आगे की राह दिखलाएँ ।

चेटी—आइए श्रीमान्, अब आप इस छठे घर में प्रवेश करें ।

विदूषक—(भीतर घुसकर और देखकर) अहा, इस छठे कक्ष की छटा भी तो निराली है । मरकतमणिजटित सोने और कीमती पत्थरों से बने ये तोरण इन्द्रधनुष

विअ दरिसअंति । वेदुरिअ-मोत्तिअपवालपुप्फराअ-इंदणील-कक्केतरअ-पद्मराअ-मरगअ-पहुदिआइं रअणविसेसाइं अण्णोण्णं विचारेंति सिप्पिणो । वज्झंति जादरूवेहिं माणिक्काइं, घडिज्जंति सुवण्णालंकारा रत्तसुत्तेण, गत्थीअंति गोत्तिआभरणाइं, घसीअंति धीरं वेदुरिआइं, छेदीअंति संखआ, साणिज्जंति पवालआ, सुक्खविअंति ओल्लविदकुंकुम-पत्थरा । सालीअदि कत्थूरिआ, विसेसेण घिस्सदि चंदणरसो, संजोईअंति गंधजुत्तीओ, दीअदि गणिआ-कामुकाणं सकप्पूरं तांबोलं; अवलोईअदि सकडक्खअं, पअट्ठदि हासो, पिवीअदि अ अणवरअं ससिक्कारं मइरा । इमे चेडा, इमा चेडिआओ, इमे अवरे अवधीरिद-पुत्त-दार-वित्ता मणुस्सा करआ-साहिद-पीद-मदिरेहिं गणिआ-जणेहिं जे मुक्का आसआ ताइं पिअंति । आदिसदु भोदी । [ही ही भो: ! इतोऽपि षष्ठे प्रकोष्ठे अमूनि तावत् सुवर्णरत्नानां कर्मतोरणानि नील-रत्न-विनिक्षिप्तानि इन्द्रायुधस्थानमिव दर्शयन्ति । वैदूर्य-मौक्तिक-प्रवाल-पुष्परागेन्द्रनील-कर्केतरक-पद्मराग-मरकतप्रभृतीन् रत्नविशेषान् अन्योन्यं विचारयन्ति शिल्पिन: । वध्यन्ते जातरूपैर्माणिक्यानि, घटचन्ते सुवर्णालङ्कारा रक्तसूत्रेण, ग्रथ्यन्ते मौक्तिकाभरणानि, घृष्यन्ते धीरं वैदूर्याणि, छिद्यन्ते शङ्खा:, शाण्यन्ते प्रबालका:, शोष्यन्ते आर्द्रकुङ्कुमप्रस्तरा:, सार्य्यते कस्तूरिका, विशेषेण घृष्यते चन्दनरस:, संयोज्यन्ते गन्धयुक्तय:, दीयते गणिका-कामुकयो: सकर्पूरं ताम्बूलम्, अवलोक्यते सकटाक्षम्, प्रवर्त्तते हास:, पीयते च अनवरतं

इन्द्रायुधस्य=देवराजधनुष:, स्थानम्=प्रदेशम्, इव=यथा, दर्शयति=आत्मानमवभासयति, शिल्पिन:=परीक्षका:, अन्योयं विचारयति=मिथ: चिन्तयति, सुवर्णै:=कनकै:, माणिक्यानि=रत्नप्रभृतय:, वध्यन्ते–स्वर्णसूत्रैर्वध्यन्ते, घटचन्ते=सस्वदवध्यन्ते, सुवर्णालङ्काराणि=स्वर्णभूषणानि, रत्नसूत्रेण=मणितन्तुना, धीरम्=गभीरम्, यथा स्यात्तथा, वैदूर्याणि=सूर्यकान्तमणय:, घृष्यन्ते=मसृणतां सम्पादयन्ते, शङ्खा: छिद्यन्ते=सन्तक्ष्यन्ते, शाण्यते=शाणेन वर्त्तुलीक्रियन्ते, कुङ्कुमस्य=केशरस्य, प्रस्तरा:=स्तरा:, शोष्यन्ते=शुष्का: क्रियन्ते, सार्यते—इतस्तत: चाल्यते परिष्क्रियते वा, आर्द्रीक्रियते इति पृथ्वीधर: । गन्धयुक्तय:=सौरभयुतम्, ताम्बूलम्, अवधीरितानि=

की शोभा से सम्पन्न हैं । जौहरी लोग आपस में मिलकर हीरे, मोती, मूँगे, मणिक, पन्ना, पुखराज और लहसुनियाँ जैसे रत्नों को परख रहे हैं । कहीं मणियों को सोने में जड़ा जा रहा है, कहीं सोने के आभूषणों को लाल डोरे में गूँथा जा रहा है, कहीं मोतियों की मालाएँ बनायी जा रही हैं, कहीं लहसुनियाँ पत्थर घिसे जा रहे हैं, कहीं शंख को चिकनाया जा रहा है; कहीं सान पर मूँगे चढ़ाये जा रहे हैं, कहीं गीले केसरों को सुखाया जा रहा है, कहीं कस्तूरी इकट्ठी की जा रही है, कहीं चन्दन घिसे जा रहे हैं, तो कहीं सुगन्धित लेप चढ़ाये जा रहे हैं । कहीं वेश्याओं को, तो कहीं उनके प्रेमियों को पान के बीड़े दिये जा रहे हैं, कहीं तिरछी निगाहें चल रही हैं, तो

ससीत्कारं मदिरा। इमे चेटाः, इमाश्चेटिकाः, इमे अपरे अवधीरितपुत्रदारवित्ता मनुष्याः करकासहितपीतमदिरैर्गणिकाजनैर्ये मुक्ता आसवाः तान् पिबन्ति। आदिशतु भवती।]

चेटी–एदु एदु अज्जो। इमं सत्तमं पओट्ठं पविशदु अज्जो [एतु एतु आर्यः। इमं सप्तमं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः।]

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) ही ही भो! इधो वि सत्तमे पओट्ठे सुसिलिट्ठ-विहंग-वाडीसुह-णिसण्णाइं अण्णो-चुंबणपराइं सुहं अणुभवंति पारावद-मिहुणाइं। दहिभत्त-पूरिदोदरो बम्हणो विअ सुत्तं पढदि पंजर-सुओ। इअं अवरा सामि-संमाणणा-लद्ध-पसरा विअ घरदासी अधिअं कुर-कुराअदि मदणसारिआ। अणेअ-फलरसास्साद-पतुट्ठ-कंठा कुंभदासी विअ कूअदि परपुट्टा। आलंबिदा णागदंतेसु पंजर-परंपराओ। जोधीअंति लावआ। आलवीअंति पंजरकविंजला। पेसीअंति पंजरकवोदा। इदो तदो विविहमणि-चित्तलिदो विअ अअं सहरिसं णच्चंतो रवि-किरण संतत्त पक्खुक्खेवेहिं विधुवेहिं विअ पासादं घरमोरो। (अन्यतोऽवलोक्य) इदो पिंडी-किदा विअ चंदपादा पदगदिं सिक्खंता विअ कामिणीणं पच्छादो परिभमंति राअहंसमिहुणा। एदे अवरे वुड्ढ-महल्लका विअ इदो तदो संचरंति घरसारसा। ही ही भो! पसारणअं किदं गणिआए णाणापक्खिसमूहेहिं। जं सच्चं क्खु णंदणवणं विअ मे गणिआघरं पडिभासादि। आदिसदु भोदी। [ही ही भोः! इतोऽपि सप्तमे प्रकोष्ठे। सुश्लिष्ट-विहङ्गवाटी-सुखनिषण्णानि अन्योन्य-

---

तिरस्कृतानि, कामान्धतया परित्यक्तानि, पुत्रदारवित्तानि = सुतकलत्रधनानि, यैस्ते—तादृशाः, मनुष्याः = जनाः, करकया = वर्षोपलेन, ('बर्फ' इति भाषायाम्) सहितं यथास्यात्तथा, पीता = आस्वादिता, मदिरा=आसवम् यैः तादृशैः वेश्याजनैः, मुक्ताः = पीतोच्छिष्टाः आसवाः तान् पिबन्ति।

चेटी—एतु = समागच्छतु, आर्यः = मान्यः, इमम् = अदः, सप्तमम् = सप्तसङ्ख्यम्, प्रकोष्ठम् = कक्षम्, प्रविशतु = प्रवेशङ्करोतु, आर्य = मान्यः।

विदूषकः—सुश्लिष्टा = सुनिर्मिता, या विहङ्गवाटी = खगशाला तस्यां सुखेन =

कहीं हँसी-मजाक चल रहे हैं, कहीं सी-सी करके लोग शराब पी रहे हैं, कहीं चेट हैं तो कहीं चेटिकाएँ, अपना पुत्र पत्नी और सर्वस्व छोड़कर आनेवाले लोग वेश्याओं के द्वारा पीकर छोड़ी गई शराब शिकोरों में पी रहे हैं। अच्छा तो अब चेटीजी आगे की राह दिखलाओ।

चेटी—आइए महाशय, अब इस सातवें कक्ष में प्रवेश कीजिए।

विदूषक—(भीतर जाकर और देखकर) अहा, सातवें कक्ष की छटा भी तो निराली है। कपोतपालिका में ये कबूतर के जोड़े परस्पर एक दूसरे को चूमते हुए

चुम्बनपराणि सुखमनुभवन्ति पारावतमिथुनानि। दधिभक्तपूरितोदरो ब्राह्मण इव सूक्तं पठति पञ्जरशुकः। इयमपरा स्वामिसम्माननालब्धप्रसरा गृहदासी इव अधिकं कुरकुरायते मदनसारिका। अनेकफलरसास्वादप्रतुष्टकण्ठा कुम्भदासीव कूजति परपुष्टा। आलम्बिता नागदन्तेषु पञ्जरपरम्परा। योध्यन्ते लावकाः। आलाप्यन्ते पञ्जरकपिञ्जलाः। प्रेष्यन्ते पञ्जरकपोताः। इतस्ततो विविधमणिचित्रित इवायं सहर्षं नृत्यन् रविकिरण-सन्तप्तं पक्षोत्क्षेपैर्विधुवतीव प्रासादं गृहमयूरः। इतः पिण्डीकृता इव चन्द्रपादाः पदगतिं शिक्षमाणानीव कामिनीनां पश्चात् परिभ्रमन्ति राजहंसमिथुनानि। एतेऽपरे वृद्ध-

---

आनन्देन, निषण्णानि=स्थितानि, अन्योन्यम्=परस्परम्, चुम्बनपराणि=चुम्बना-सक्तानि, पारावतानाम्=कपोतानाम्, मिथुनानि=युगलानि। पञ्जरस्थः शुकः दधिभक्तेन—दद्ध्योदनेन, पूरितम्—तृप्तम्, उदरम् यस्यासौ, शुकः सूक्तम्—सुवचनम्। स्वामिनः=रक्षकस्य, सम्मानना=सम्मानेन,लब्धाः=अधिगताः, प्रसरः =प्रभातः, यया सा तादृशी गृहदासी=सदन-सेविका, इव=यथा, मदनसारिका—मैनाख्यः पक्षी, कुरकुरायते=शब्दायते, अनेकेषाम्=नानास्वरूपाणाम्, फलानाम् रसास्वादेन=रसपानेन, प्रतुष्टकण्ठः=प्रहृष्टगलदेशः, यस्या सा परपुष्टः=कोकिलः, कुम्भस्य=वेश्यागामिनः, दासी=सम्भोगार्थं स्थापिता सेविका अर्थात् कुट्टिनी, ''कुम्भ-दासी तु कुट्टिनी'' इति शब्दरत्नावली। कूजति=शब्दं करोति। पञ्जाराणाम्=शुकादि युक्तपञ्जराणाम्, परम्परा=पङ्क्तयः, नागदन्तेषु—भित्तिप्रोथितकाष्ठदण्डेषु, आल-म्बिता=आधृता, लावकाः=खगविशेषाः, कपिञ्जलाः=गौरतित्तिराः, पञ्जरकपोता =पञ्जरस्थः कपोताः, प्रेक्ष्यन्ते। विविधमणिचित्रित इव=नानारत्नजटित इव, सहर्षम्=समोदम् रविकिरणैः=सूर्यमयूखैः, सन्तप्तम्=परितप्तम्, प्रासादम्=प्रकोष्ठम्, गृहमयूरः=पालितबर्ही, पक्षोत्क्षेपैः=पक्षसञ्चालनैः, विधुवतीव=बीजयतीव, पिण्डी-कृता इव=राशीकृता इव, चन्द्रस्य=शशिनः, पाशः=किरणाः, राजहंसानां मिथुनानि पदगतिम्=चरणगमनम्, मन्दगमनमित्यर्थः, शिक्षमाणान्=प्रशिक्षमाणान्,

---

सुख का अनुभव कर रहे हैं। दही-भात से संतुष्ट ब्राह्मणों की तरह पिंजरबद्ध ये सुग्गे सूक्तपाठ कर रहे हैं। नायक से समादृत प्रभावशाली गृहदासी की तरह ये मैनाएँ कुर-कुरा रही हैं। अनेक तरह के फलों का आस्वादन लेने के कारण आकर्षक कण्ठवाली कुट्टिनी की तरह ये कोयल कूक रही है। खूटियों पर अनेक पिंजरे लटक रहे हैं। कहीं लावक चिड़ियाँ लड़ाई जा रही हैं तो कहीं तीतर बोल रहे हैं। कहीं कबूतरों को उड़ाकर निर्दिष्ट स्थान पर भेजा जा रहा है तो कहीं गृहपालित मयूर इधर-उधर घूम रहे हैं। लगता है सूर्य की तप्त किरणों से संतप्त इस महल को अपने मणि चित्रित आकर्षक पंखों को उठाकर हवा झल रहे हैं। (दूसरी ओर देखकर) इकट्ठी की गई बहुत सारी चाँदनी की तरह अतिश्वेत राजहंसों के जोड़े हंसगमनाओं के पीछे-पीछे चलते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानों इनसे ये मन्द गमन की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। घर के बड़े बूढ़ों की तरह ये गृहसारस इधर-उधर घूम रहे हैं। वसन्त-

महल्लिका इव इतस्ततः सञ्चरन्ति गृहसारसाः। ही ही भोः! प्रसारणं कृतं गणिकया नानापक्षिसमूहैः। यत्सत्यं नन्दनवनमिव मे गणिकागृहं प्रतिभासते। आदिशतु भवती।]

चेटी—एदु एदु अज्जो। इमं अट्ठमं पओट्ठं पविसदु अज्जो। [एतु एतु आर्यः। इमम् अष्टमं प्रकोष्ठं प्रविशतु आर्यः।]

विदूषकः—(प्रविश्यावलोक्य च) भोदि! को एसो पट्टपावारअपाउदो अधिअदरं अच्चब्भुद-पुणरुत्तालंकारालंकिदो अंगभंगेहिं परिक्खलंतो इदो तदो परिब्भमदि। [भवति! क एष पट्टप्रावारकप्रावृत अधिकतरमत्यद्भुतपुनरुक्तालङ्कारालङ्कृतः, अङ्गभङ्गैः परिस्खलन्नितस्ततः परिभ्रमति?]

चेटी—अज्ज! एसो अज्जआए भादा भोदि। [आर्य! एष आर्याया भ्राता भवति।]

विदूषकः—केत्तिअं तवच्चरणं कदुआ वसंतसेणाए भादा भोदि। अधवा [1]मा दाव, जइ वि एसो उज्जलो सिणिद्धो अ सुअंधो अ, तह वि मसाणवीधीए

इव=यथा, कामिनीनाम्=युवतीनाम्, पश्चात्, परिभ्रमन्ति=अनुसरन्ति, एते अपरे =अन्ये, वृद्धमत्तल्लिका=गृहपूज्याः, इव=यथा, गृहसारसाः=खगविशेषाः, सञ्चरन्ति=परिभ्रमन्ति। गणिकया=वसन्तसेनया, नानापक्षिसमूहैः=अनेक द्विजकुलैः, प्रसारणम्=व्यापनं कृतम्, नन्दनवनमिव=इन्द्रकाननमिव, गणिकागृहम्=वसन्तसेनासदनम्, प्रतिभासते=शोभते।

विदूषकः—भवति=श्रीमति, कः=पुरुषविशेषः, एषः=असौ, पट्टप्रावारकप्रावृत्तः =कौशेयोत्तरीयेणावृत्तः, अत्यद्भुतैः=अतिविचित्रैः, पुनरुक्तैः=द्विगुणितैः, अलङ्कारैः =आभूषणैः, अलङ्कृतः=सुशोभितः, अङ्गभङ्गैः=देहभङ्गिभिः, परिस्खलन्=परितः पतन्, इतस्ततः=यत्र तत्र परिभ्रमति।

चेटी—एषः=निर्दिष्टो जनः, अस्माकं आर्यायाः=वसन्तसेनायाः भ्राता=अनुजः, भवति।

सेना ने सारे घरों को अनेक तरह के पक्षियों से भर डाला है। सच पूछा जाये तो ये वेश्या का घर होते हुए भी मुझे नन्दनवन की तरह प्रतीत हो रहा है। अच्छा तो अब आप आगे की राह दिखलायें।

चेटी—आइए, अब इस आठवें प्रकोष्ठ में प्रवेश करें।

विदूषक—(भीतर जाकर और देखकर) मान्ये, यह कौन है? देह में रेशमी चादर लपेटे एक ही तरह के कई जेवर पहने, विचित्र वेशभूषा में सजे, देह लचकाकर गिरते-पड़ते घूम रहा है।

चेटी—मान्यवर, ये आर्या वसन्तसेना के भाई हैं।

---

१. कुछ संस्करणों में इस प्रसंग को पद्य के रूप में भी व्यक्त किया गया है। किन्तु, यदि इसे पद्य रूप में व्यक्त किया जाता है, तो इसमें पाँच चरण होते है। काले

जादो विअ चम्पअरुक्खो अणहिगमणीओ लोअस्स। (अन्यतोऽवलोक्य) भोदि ! एसा उण का फुल्लपावारअ-पाउदा उवाणह्-जुअल-णिक्खित्त-तेल्ल-चिक्कणेहिं पादेहि उच्चासणे उवविट्ठा चिट्ठदि ? [कियत् तपश्चरणं कृत्वा वसन्तसेनाया भ्राता भवति। अथवा मा तावत्, यद्यपि एष उज्ज्वलः स्निग्धश्च तथापि श्मशानवीथ्यां जात इव चम्पकवृक्षः अनभिगमनीयो लोकस्य। भवति ! एषा पुनः का पुष्पप्रावारकप्रावृतोपानद्युगलनिक्षिप्त-तैल-चिक्कणाभ्यां पादाभ्या-मुच्चासनोपविष्टा तिष्ठति ?]

चेटी—अज्ज ! एसा क्खु अम्हाणं अज्जआए अत्तिआ। [आर्य ! एषा खल्वस्माकम् आर्याया माता।]

विदूषकः—अहो ! से अपवितडाइणीए पोट्टवित्थारो। ता किं एदं पवेसिअ महादेवं विअ दुआरसोहा इध घरे णिम्मिदा ? [अहो ! अपवित्र-डाकिन्या उदरविस्तारः। तत् किम् एतां प्रवेश्य महादेवमिव द्वारशोभा इह गृहे निर्मिता ?]

विदूषकः—कियत्=कियन्मात्रम्, तपश्चरणम्=तपस्याम्, कृत्वा=सम्पाद्य। अथवा=किंवा, मा तावत्=मयोक्तं नोचितम्, तत्र कारणं दर्शयति, उज्ज्वलः =गौरवर्णः, स्निग्धः=रमणीयः, सुगन्धश्च=सुगन्धिधारणात्, तथापि श्मशानवीथ्याम् =दाहसरपथे, जातः=समुत्पन्नः, चम्पकवृक्षः=प्रसिद्धपुष्पविशेषतरुः, इव अनभिगमनीयः =अस्पृश्यः, लोकस्य=जनस्य। फुल्लेन=प्रस्फुटितेन, प्रावारकेण=दुकूलेन, प्रावृता =आवृत्ता, उपानद्युगले=चर्मपदत्राणद्वये, निक्षिप्तौ=न्यस्तौ, तैलचिक्कणौ च ताभ्याम् पादाभ्याम्, उच्चासनोपविष्टा=समुन्नतासनोपरि स्थिता, तिष्ठति=उपविशति।

चेटी—एषा=पुरोवर्त्तमाना, अस्माकम्=नः, आर्यायाः=वसन्तसेनायाः, माता =जननी, अस्तीति शेषः।

विदूषकः—अहो=इत्याश्चर्यम्, अपवित्रायाः=गणिकात्वेन दूषितायाः, डाकिन्याः=

विदूषक—कितनी अधिक तपस्या के फलस्वरूप यह वसन्तसेना का भाई बना है। अथवा ऐसी बात नहीं है; सुन्दर, स्निग्ध, कोमल एवं सुगन्धित होने के बावजूद श्मशान की राह में उत्पन्न होने वाले चम्पक वृक्ष की तरह यह संसार के लिए अस्पृश्य है। (दूसरी ओर देखकर) अरे यह कौन है ? इसकी सारी देह फैले वस्त्र से ढँकी है। जूतों में तैल लगे रहने के कारण इसके दोनों पैर अत्यन्त स्वच्छ एवं कोमल बने हैं। यह एक ऊँचे आसन पर बैठी है।

चेटी—मान्यवर, यह आर्या वसन्तसेना की माँ है।

विदूषक—अरे, इस कलुष डाकिनी का पेट कितना बड़ा है ? तो क्या इसे घर में घुसाकर भगवान शंकर की तरह स्थापित कर द्वारशोभा बढ़ाई गई है ?

साहब के अनुसार "अणहिगमणीओ" को छोड़ देने पर वह आर्या छन्द के रूप में ही शेष रह जाता है।

चेटी—हदास ! मा एव्वं उवहस अम्हाणं अत्तिअं। एसा क्खु चाउत्थिएण पीडीअदि। [हताश ! मैवमुपहस अस्माकं मातरम्। एषा खलु चातुर्थिकेन पीडयते।]

विदूषकः—(सपरिहासम्) भअवं चाउत्थिअ ! एदिणा उवआरेण मं वि बम्हणं आलोएहि। [भगवन् चातुर्थिक ! एतेनोपचारेण मामपि ब्राह्मणमालोकय।]

चेटी—हदास ! मरिस्ससि। [हताश ! मरिष्यसि।]

विदूषकः—(सपरिहासम्) दासीए धीए ! वरं ईदिसो सूण-पीण-जठरो मुदो ज्जेव। [दास्याः पुत्रि ! वरम् ईदृशः शूनपीनजठरो मृत एव।]

सीधु-सुरासव-मत्तिआ एआवत्थं गदा हि अत्तिआ।
जइ मरइ एत्थ अत्तिआ भोदि सिआल-सहस्स-जत्तिआ॥ २९॥

[सीधुसुरासवमत्ता एतावदवस्थां गता हि माता।
यदि म्रियतेऽत्र माता भवति शृगालसहस्रयात्रा॥]

=पिशाचिन्याः, उदरविस्तारः=कुक्षिस्थौल्यम्, पीनोदरत्वात्, गौरवर्णत्वाच्च महादेवसाम्यमिति।

चेटी—हताश=हा दीन ! एवम्=अनेन प्रकारेण, अस्माकं मातरम्=जननीम्, मा उपहस=परिहासं न कुरु। एषा चातुर्थिकेन=चतुर्थेन दिवसेन निर्वृत्तः चातुर्थिकस्तेन ज्वरेण पीडयते।

विदूषकः—(सपरिहासम्=परिहासेन युतम्) भगवन्=हे देव चातुर्थिक ! एतेन उपचारेण=सेवया, माम्=विदूषकम्, आलोकय=पश्य।

चेटी—हताश=निराश, मरिष्यसि=मृत्युं गमिष्यसि।

विदूषकः—(सपरिहासम्=सहास्यम्) दास्याः पुत्रि=दासेया, वरम्=श्रेष्ठम्, शूनम्=फुल्लम्, पीनम्=प्रकृत्या स्थूलं जठरं यस्य सं, तादृशः जनः मृत एव वरम्।

अन्वयः—सीधुसुरासवमत्ता, माता, एतावदवस्थाम्, गता, हि। अत्र, माता यदि, म्रियते, शृगालसहस्रयात्रा भवति।

सीध्विति। सीधुसुरासवैः=त्रिप्रकारकैरासवविशेषैः, मत्ता=प्राप्तमदोन्मत्ता, माता =वसन्तसेनाजननी, एतावदवस्थाम्=एतादृशीं दशाम्, गता=प्राप्ता, हि=यतः, अत्र

चेटी—अरे ओ निराश, इस तरह हमारी माँ का मजाक मत उड़ाओ। ये चातुर्थिक ज्वर से पीड़ित हैं।

विदूषक—(परिहास करते हुए) भगवन् चातुर्थिक ! कृपया इसी उपचार से मुझ ब्राह्मण की ओर भी आँख फेरो।

चेटी—रे पापी, मरोगे।

विदूषक—(परिहास करते हुए) ओ दासी पुत्री, ऐसे विशाल पेट वाली का मरने में ही भला है।

कच्ची, पक्की तीनों तरह की शराब पीकर वसन्तसेना की माँ इस तरह मोटी हो गई है। यदि इस समय मरे तो हजारों सियारों का महाभोज हो जाये॥ २९॥

भोदि ! किं तुम्हाणं जणवत्ता वहन्ति ? [भवति ! किं युष्माकं यानपात्राणि वहन्ति ?]

चेटी—अज्ज ! णहि णहि । [आर्य ! नहि नहि ।]

विदूषकः—किं वा एत्थ पुच्छीअदि । तुम्हाणं क्खु पेम्मणिम्मलजले मअणसमुद्दे त्थण-णिअंब-जहणा-ज्जेव जाणवत्ता मणहरणा । एव्वं वसन्तसेणाए बहुवुत्तन्तं अट्टपओट्ठं भवणं पेक्खिअ, जं सच्चं जाणामि, एकत्थं विअ तिविट्ठवं दिट्ठं । पसंसिदं णत्थि मे वाआविहवो । किं दाव गणिआघरो ? अधवा कुबेरभवणपरिच्छेदो त्ति ? । कहिं तुम्हाणं अज्जआ ? [किं वा अत्र पृच्छयते ? युष्माकं खलु प्रेमनिर्मलजले मदनसमुद्रे स्तननितम्बजघनान्येव यानपात्राणि मनोहराणि । एवं वसन्तसेनाया बहुवृत्तान्तम् अष्टप्रकोष्ठं भवनं प्रेक्ष्य, यत् सत्यं जानामि; एकस्थमिव त्रिविष्टपं दृष्टम् । प्रशंसितुं नास्ति मे वाचाविभवः । किं तावत् गणिकागृहम् ? अथवा कुबेरभवनपरिच्छेदः ? इति कस्मिन् युष्माकमार्या ?]

=अस्मिन् काले, माता=जननी, यदि=चेत्, म्रियते=मृत्युं गच्छति, तदा अस्याः शरीरेण शृगालसहस्रस्य=जम्बुकसहस्रस्य, यात्रा=भोजनोत्सवो भवति ॥ २९ ॥

भवति=श्रीमति, किमिति प्रश्ने, युष्माकम्=वः, यानपात्राणि=शकटादीनि, वहन्ति=वाणिज्यार्थं वहन्ति ?

चेटी—आर्य=हे मान्य, नहि नहि । शकटादीनि नात्र वहन्ति ।

विदूषकः—किं वात्र पृच्छयते=व्यापार-पोतविषये किमपि प्रष्टव्यं नास्ति, प्रेम=प्रणयः, एव निर्मलम्=स्वच्छम्, जलम्=सलिलम्, यस्मिन् तस्मिन्, मदनः=मन्मथः, एव समुद्रः=उदधिः, तस्मिन् मनोहराणि=सुन्दराणि, स्तननितम्बजघनानि अर्थात् तस्मिन् स्तनौ=कुचौ, नितम्बः=कटिप्रोथः, जघनम्=स्त्रीकटया पुरोभागः, 'पश्चान्नितम्बः स्त्रीकटया क्लीबे तु जघनम् पुरः' इत्यमरः । यथा वणिजां व्यापारेण धनप्राप्तिसाधनानि पोताः भवन्ति, तथैव भवतीनां धनोपार्जनं जायते इत्यर्थः । बहवो वृत्तान्ताः—खगकुलानां क्रिया यस्मिन् तदष्टौ=अष्टसङ्ख्यकाः प्रकोष्ठाः =गृहाणि, यत्र तत्र तादृशं भवनं प्रेक्ष्य=विलोक्य, त्रयाणाम्=स्वर्गमर्त्यपातालाख्या-

---

अजी, क्या आप लोग, व्यापारिक गाड़ियाँ चलाती हैं ?

चेटी—नहीं श्रीमान्, ऐसी बातें नहीं है ।

विदूषक—अरे, इन गाड़ियों के बारे में क्या पूछना है ? कामदेव रूपी सागर के निर्मल जल में कुच, नितम्ब और जंघा ही आप सबों की गाड़ियाँ हैं । अनेक तरह के पशु-पक्षी और मानवों से भरे आठ कमरे वाले वसन्तसेना के महल को देखकर मुझे तो विश्वास हो गया कि एक ही जगह स्थित स्वर्ग्य, मर्त्य और पाताल लोकमय त्रिभुवन को ही मैंने देख लिया है । इस महल की प्रशंसा करने की शक्ति मेरी वाणी में नहीं है । मैं यह निश्चय ही नहीं कर पाता हूँ कि यह किसी वेश्या का घर है या मैं कुबेर-भवन के समीप में हूँ । अच्छा तो आपकी आर्या, वसन्तसेना कहाँ हैं ?

चेटी—अज्ज ! एसा रुक्खवाडिआए चिट्ठदि। ता पविसदु अज्जो। [आर्य ! एषा वृक्षवाटिकायां तिष्ठति। तत् प्रविशतु आर्यः।]

विदूषकः—(प्रविश्य, दृष्ट्वा च) ही ही भो ! अहो रुक्खवाडिआए सस्सिरिअदा। अच्छरीदि-कुसुमपत्थारा रोविदा अणेअपादवा णिरन्तर-पादवतल-णिम्मिदा जुवदिजण-जहणप्पमाणा पट्टदोला, सुवण्णजुधिआ-सेहालिआ-मालई-मल्लिआ णोमालिआ-कुरवआ-अदिमोत्तअ-पहुदिकुसुमेहिं सअं णिवडिदेहिं जं सच्चं लहु करेदि विअ णंदणवणस्स सरिस्सरीअदां। (अन्यतोऽवलोक्य) इदो अ उदअंत-सूरसमप्पहेहिं कमलरत्तोप्पलेहिं। संझाअदि विअ दीहिआ। [ही ही भोः ! अहो वृक्षवाटिकायाः सश्रीकता। अच्छरीतिकुसुमप्रस्ताराः, रोपिता अनेकपादपाः, निरन्तर-पादपतल-निर्मिता युवति-जन-जघनप्रमाणा पट्टदोला, सुवर्णयूथिका-शेफालिका-मालती-मल्लिका-नवमल्लिका-कुरबकातिमुक्तक-प्रभृतिकुसुमैः स्वयं निपतितैर्यत्सत्यं लघूकरोतीव नन्दनवनस्य सश्रीकताम्। इतश्च उदयत्सूर-समप्रभैः कमलरक्तोत्पलैः सन्ध्यायते इव दीर्घिका।]

नाम्, विष्टपानाम्=लोकानाम्. समाहारः त्रिविष्टपम्=देवलोकः, वाचा=वाण्या, विभवः=सामर्थ्यमित्यर्थः। कुबेरभवनस्य=कुबेरगृहस्य परिच्छेदः=भागः। अत्र सन्देहस्य कदापि निरसनाभावात् शुद्धसन्देहालङ्कारः।

चेटी—आर्य=मान्य, एषा=स्वामिनी वसन्तसेना, वृक्षवाटिकायाम्=उद्याने, तिष्ठति=स्थितास्ति। तत्=तस्मात्, आर्यः=मान्यः, प्रविशतु=प्रवेशं करोतु।

विदूषकः—(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, दृष्ट्वा=अवलोक्य च) अहो=इत्याश्चर्यम्, वृक्षवाटिकायाः=उद्यानस्य, सश्रीकता=शोभासम्पन्नता। अच्छरीत्या=शोभनप्रकारेण, कुसुमानाम्=पुष्पाणाम्, प्रस्तारः=समुदायः येषु ते, अनेकपादपाः=बहवः वृक्षाः, रोपिता=आरोपिताः सन्तीति भावः। निरन्तराः=सघनाः, ये पादपाः=तरवः, तेषां तले=अधोभागे, निर्मिता=रचिता, युवतिजनस्य=कैशोर्यपूर्णनारीलोकस्य, जघनम्=कटिपुरोभागः। प्रमाणम्=परिमितिः, यस्या तादृशी। एवम्भूतापट्टस्य=क्षौमसूत्रस्य, दोला=हिंदोलाऽस्तीति, सुवर्णयूथिका=हेमपुष्पिका, शेफालिका=श्रृंगारहारः, मालती=सुमना, जातिर्वा, मल्लिका=वनचन्द्रिका, 'मोतिया' इति भाषायाम्, नव-

---

चेटी—आर्य, मान्या वसन्तसेना इस उद्यान में बैठी हैं। आप इधर आयें।

विदूषक—(भीतर जाकर और देखकर) अहा, इस उद्यान की छटा ही निराली है। स्वच्छ एवं विकासोन्मुख फूलों की कतारें लगी हैं। अनेक तरह के पेड़ लगाये गये हैं। युवतियों की कमर की ऊँचाई के अनुसार डाल में रस्सी डालकर झूले डाले गये हैं। सोनजूही, हरसिंगार, मालती, बेला, चमेली, सदाबहार या कटसरैया एवं माधवी-लता के फूलों की बहार, सचमुच नन्दनवन की शोभा को ठुकरा रही है। (दूसरी ओर देखकर) अहा, उगते हुए सूरज की तरह लाल-लाल फूलों से भरे सरोवर की शोभा तो सन्ध्या की तरह हो रही है।

अवि अ [अपि च]—

एसो असोअबुच्छो णवणिग्गम-कुसुम-पल्लवो भादि ।
सुभडो व्व समरमज्झे घण-लोहिद-पंक-चच्चिक्को ॥ ३० ॥
[एषोऽशोकवृक्षो नवनिर्गतकुसुमपल्लवो भाति ।
सुभट इव समरमध्ये घनलोहितपङ्कचर्चितः ॥]

भोदु, ता कहिं तुम्हाणं अज्जआ ? [भवतु, तत् कस्मिन् युष्माकमार्या ?]

चेटी - अज्ज ! ओणमेहि दिट्ठिं; पेक्ख अज्जअं । [आर्य ! अवनमयदृष्टिम्, प्रेक्षस्व आर्याम् ।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा, उपसृत्य) सोत्थि भोदिए । [स्वस्ति भवत्यै ।]

वसन्तसेना—(संस्कृतमाश्रित्य) अये ! मैत्रेयः । (उत्थाय) स्वागतम् । इदमासनम्, अत्रोपविश्यताम् ।

मल्लिका=गौरी, कुरबकाः=रक्तपुष्पविशेषाः, अतिमुक्तकम्=माधवीलतापुष्पम्, तत् प्रभृतिभिः कुसुमैः=पुष्पैः, स्वयं निपतितैः=बन्धशैथिल्यादधः पतितैः, नन्दनवनस्य=देवराजोद्यानस्य, सश्रीकताम्=श्रीसम्पन्नताम्, लघूकरोतीति=अलघुम् लघूकरोतीति भावः, सूरसमप्रभैः=सूर्यसदृशकान्तियुतैः, कमलैः=पद्मविशेषैः, रक्तोत्पलैः=रक्तकमलैः, दीर्घिका=वापी, सन्ध्यायते=सन्ध्या इवाचरतीति भावः ।

अन्वयः—नवनिर्गतकुसुमपल्लवः, एषः, अशोकवृक्षः, समरमध्ये, घनलोहितपङ्कचर्चितः सुभटः, इव भाति ।

एष इति । नवनिर्गताः=नवोत्पन्नाः, कुसुमपल्लवाः=पुष्पनवपत्राणि, यस्य सः तादृशः, एषः=पुरोवर्त्तमानः, अशोकवृक्षः=विशोकपादपः, समरमध्ये=रणाङ्गणे, घनैः=गाढैः, लोहितैः=रक्तवर्णैः, एव पङ्कैः=कर्दमैः, चर्चितः=कृतलेपनः, सुभटः=सुयोद्धा, इव भाति=शोभते । उपमालङ्कारः । गाथाछन्दश्चेति ॥ ३० ॥

भवतु=यातु, तत्=तस्मात्, कस्मिन्=कुत्र, युष्माकम्=वः, आर्या=वसन्तसेना ।

चेटी—आर्य=हे मान्य, अवनमयदृष्टिम्=अधोऽवलोकय, प्रेक्षस्व=पश्य, आर्याम् ।

विदूषकः—(दृष्ट्वा=विलोक्य, उपसृत्य=समीपं गत्वा) भवत्यै=श्रीमत्यै, स्वस्ति=कल्याणं भवतु ।

वसन्तसेना—अये=सम्भ्रमार्थकमव्ययम्, मैत्रेयः=एतन्नामकब्राह्मणः (उत्थाय

और भी—रणाङ्गन में सघनरक्तपङ्क से लिप्त योद्धा की तरह नये निकले फूल पत्तियों वाला यह अशोक का पेड़ सुशोभित हो रहा है ॥ ३० ॥

अच्छा तो आपकी आर्या वसन्तसेना कहाँ हैं ?

चेटी—आर्य, जरा अपनी निगाह तो नीचे कीजिए, आर्या को देखिए ।

विदूषक—(देखकर और पास जाकर) आपका कल्याण हो ।

वसन्तसेना—अरे, मैत्रेय हैं । (उठकर) स्वागत हो, यह रहा आसन, यहाँ विराजिए ।

विदूषकः—उवविसदु भोदी। (उभावुपविशतः।) [उपविशतु भवती।]

वसन्तसेना—अपि कुशलं सार्थवाहपुत्रस्य ?

विदूषकः—भोदि ! कुशलं। [भवति ! कुशलम्।]

वसन्तसेना—आर्यं मैत्रेय ! अपीदानीम्—

गुणप्रवालं विनयप्रशाखं विस्रम्भमूलं महनीयपुष्पम्।
तं साधुवृक्षं स्वगुणैः फलाढ्यं सुहृद्विहङ्गाः सुखमाश्रयन्ति ॥ ३१ ॥

विदूषकः—(स्वगतम्) सुट्ठु उवलक्खिदं दुट्ठविलासिणीए। (प्रकाशम्) अध इं। [सुष्ठु उपलक्षितं दुष्टविलासिन्या। अथ किम् ?]

=उत्थितो भूत्वा) स्वागतम्=सत्कृतिः। इदम्=एतत्, आसनम्=उपवेशनाधारः, अत्र=अस्मिन् स्थाने, उपविश्यताम्=उपवेशनं कुरु।

विदूषकः—उपविशतु भवती=श्रीमती (उभौ=द्वौ, उपविशतः।)

वसन्तसेना—अपि=चेत्, कुशलम्=क्षेमम्, सार्थवाहपुत्रस्य=वणिक्सुतस्य।

विदूषकः—भवति=श्रीमति ! कुशलम्=मङ्गलम् अस्तीति शेषः।

वसन्तसेना—आर्य=मान्य मैत्रेय, अपि=चेत्, इदानीम्=अधुना—

अन्वयः—गुणप्रवालम्, विनयप्रशाखम्, विश्रम्भमूलम्, महनीयपुष्पम्, स्वगुणैः, फलाढ्यम्, तम्, साधुवृक्षम्, सुहृद्विहङ्गाः, सुखम्, आश्रयन्ति।

गुणेति। गुणाः=दयादाक्षिण्यादिगुणाः एव प्रवालाः=किसलयाः, यस्य तम्, विनयः=विनम्रता, एव प्रशाखम्=प्रकृष्टशाखा यस्य तम्, विश्रम्भः=विश्वासः, एव मूलम्=सर्वावलम्बतया हेतुः यस्य तम्, महनीयम्=पूज्यम्, पुष्पम्=प्रसूनं यस्य तं स्वगुणैः=निजक्षमादिशीलैः, फलाढ्यम्=फलसम्पन्नम्, तम्=सार्थवाहसुतम्, साधुवृक्षम्=सज्जनपादपम्, सुहृदः=मित्राणि, एव विहङ्गाः=पक्षिणः, सुखम्=सुखपूर्वकम्, आश्रयन्ति=अवलम्बन्ते किमित्यर्थः। अस्मिन् श्लोके रूपकालङ्कारः, उपजातिर्वृत्तञ्चेति।

विदूषकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) सुष्ठु=साधु, उपलक्षितम्=अनुमितम्, दुष्टविलासिन्या=गणिकया वसन्तसेनया। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) अथ किम्=अस्त्वेवम्।

विदूषक—आप भी बैठिए। (दोनों बैठते हैं।)

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त तो सकुशल हैं ?

विदूषक—हाँ, श्रीमति, वे सकुशल हैं।

वसन्तसेना—आर्य मैत्रेय, क्या इस समय—

जिनके गुण ही कोपल हैं, विनम्रता ही डाली है, विश्वास ही जड़ है, महानता ही फूल हैं, ऐसे अपने गुणों द्वारा फलपरिपूर्ण उस सज्जन चारुदत्त रूपी पेड़ पर मित्र रूपी पक्षी सुखपूर्वक निवास करते हैं ॥ ३१ ॥

विदूषक—(मन ही मन) इस दुष्ट वेश्या ने ठीक ही अनुमान किया है (प्रकट) और क्या ?

वसन्तसेना—अये ! किमागमनप्रयोजनम् ?

विदूषकः—सुणादु भोदी । तत्तभवं चारुदत्तो सीसे अंजलिं कदुअ भोदिं विण्णवेदि । [श्रृणोतु भवती । तत्रभवान् चारुदत्तः शीर्षे अञ्जलिं कृत्वा भवतीं विज्ञापयति ।]

वसन्तसेना—(अञ्जलिं वद्ध्वा) किमाज्ञापयति ?

विदूषकः—मए तं सुवण्णभण्डअं विस्सम्भादो अत्तणकेरकेत्ति कदुअ जूदे हारिदं । सो अ सहिओ राअवात्थहारी ण जाणिअदि कहिं गदो त्ति । [मया तत् सुवर्णभाण्डं विस्रम्भादात्मीयमिति कृत्वा द्यूते हारितम् । स च सभिको राजवार्ताहारो न ज्ञायते कुत्र गत इति ।]

चेटी—अज्जए ! दिट्ठिआ वड्ढसि । अज्जो जूदिअरो संवुत्तो [आर्ये ! दिष्टया वर्द्धसे । आर्यो द्यूतकरः संवृत्तः ।]

वसन्तसेना—(स्वगतम्) कधं चौरेण अवहिदं पि सोंडीरदाए जूदे हारिदं

वसन्तसेना—अये=इति जिज्ञासायाम्, किमिति प्रश्ने, आगमनस्य=अत्र समागनस्य, प्रयोजनम्=कारणम्, अस्तीति शेषः ।

विदूषकः—श्रृणोतु=आकर्णयतु, भवती=श्रीमती, तत्र भवान्=श्रीमान्, चारुदत्तः=सार्थवाहसुतः, शीर्षे अञ्जलिं कृत्वा=कर-शिरःसंयोगं विधाय, भवतीम्=श्रीमतीम्, विज्ञापयति=निवेदयति ।

वसन्तसेना—(अञ्जलिं वद्ध्वा=कृताञ्जलिम्) किमाज्ञापयति=किमादिशति ?

विदूषकः—मया=चारुदत्तेन, सुवर्णभाण्डम्=आभूषणपेटिकाम्, विश्रम्भात्=त्वयि विश्वासात्, आत्मीयम्=स्वकीयं मत्वा, द्यूते=अक्षक्रीडायाम्, हारितम्=पराजितम् । स च=असौ, सभिकः=द्यूताध्यक्षः, राजवार्त्ताहारी=राजसन्देशवाहकः, न ज्ञायते=न जाने, कुत्र=अस्मिन् स्थाने, गतः=प्रयातः इति ।

चेटी—आर्ये=मान्ये, दिष्टया वर्द्धसे=सौभाग्येन त्वया वर्द्धसे, आर्यः=मान्यश्चारुदत्तः, द्यूतकरः=अक्षक्रीडाकरः, संवृत्तः=सञ्जातः इति ।

वसन्तसेना—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कथमिति जिज्ञासायाम्, चौरेणापहृतमपि

वसन्तसेना—अच्छा, तो श्रीमान् के यहाँ आने का कारण क्या हैं ?

विदूषक—तो सुनिए, समादरणीय आर्य चारुदत्त ने हाथ जोड़कर आपसे निवेदन किया है ।

वसन्तसेना—(हाथ जोड़कर) आर्य की आज्ञा क्या है ?

विदूषक—आपने जो उनके पास आभूषणों का बक्सा धरोहर के रूप में रक्खा था, आप पर अधिक विश्वस्त होने के कारण अपना समझकर वे उसे जुए में हार गये । इसी बीच जुए का सभाध्यक्ष वह राजदूत पता नहीं कहाँ चला गया ।

चेटी—आर्ये, भाग्य से ही बढ़ रही हो, लो, आर्य चारुदत्त जुआड़ी हो गये ।

वसन्तसेना—(मन में ही) चोर ने जिन आभूषणों को चुरा लिया, अपनी

त्ति भणादि। अदो ज्जेव कामीअदि। [कथं चौरेणापहृतमपि शौण्डरतया द्यूते हारितमिति भणति। अत एव काम्यते।]

विदूषकः—ता तस्स कारणादो गेण्हदु भोदी इमं रअणावलिं। [तत् तस्य कारणात् गृह्णातु भवती इमां रत्नावलीम्।]

वसन्तसेना—(आत्मगतम्) किं दंसेमि तं अलंकारअं? (विचिन्त्य) अधवा ण दाव। [किं दर्शयामि तमलङ्कारकम्? अथवा न तावत्।]

विदूषकः—किं दाव ण गेण्हदि भोदी एदं रअणावलिं? [किं तावत् न गृह्णाति भवती रत्नावलीम्?]

वसन्तसेना—(विहस्य सखीमुखं पश्यन्ती) मित्तेअ! कधं ण गेण्हिस्सं रअणावलिं। (इति गृहीत्वा पार्श्वे स्थापयति। स्वगतम्) कधं झीणकुसुमादो वि सहआरपादवादो मअरंदविंदओ णिवडंति। (प्रकाशम्) अज्ज! विण्णवेहि तं जूदिअरं मम वअणेण अज्जचारुदत्तं—'अहं पि पदोसे अज्जं पेक्खिदुं आअच्छामि' त्ति। [मैत्रेय! कथं न ग्रहीष्यामि रत्नावलीम्? कथं हीनकुसुमादपि सहकारपादपात् मकरन्दबिन्दवो निपतन्ति। आर्य! विज्ञापय तं द्यूतकरं मम वचनेन आर्यचारुदत्तम्—'अहमपि प्रदोषे आर्यं प्रेक्षितुमागच्छामि' इति।]

=चौरेणापहारेऽपि, शौण्डीरतया=स्वदोषाभावेऽपि औदार्येण, द्यूते=अक्षक्रीडायाम्, हारितम्=पराजितम्, इति=एवम्, भणति=कथयति। अत एव=अनेनैव कारणेन सम्पत्तिशालिनं विहाय अयमेव मया काम्यते=रन्तुमीप्स्यते।

विदूषकः—तत्=तस्मात्, तस्य=सुवर्णभाण्डस्य, कारणात्=हेतोः, गृह्णातु=स्वीकरोतु, भवती=श्रीमती, इमाम्=एनाम्, रत्नावलीम्=रत्नमालाम्।

वसन्तसेना—(आत्मगतम्=स्वगतम्) किमिति प्रश्ने, दर्शयामि=दृष्टिपथे आनयामि, तम्=चौरेणापहृतमलङ्कारभाण्डम्, अथवा=वा, न तावत्=नोचितमिति।

विदूषकः—किं तावत्=कथं तर्हि, न=नहि, गृह्णाति=ग्रहणं करोति, भवती=श्रीमती, एताम्=एनाम्, रत्नावलिम्=रत्नमालाम्।

वसन्तसेना—(विहस्य=मन्दस्मितम् कृत्वा, सखीमुखम्=आली-आननम्, पश्यन्ती=अवलोकयन्ती) मैत्रेय=हे विदूषक, कथं न ग्रहीष्यामि=कथं न स्वीकरोमि।

उदारता के कारण वे कहते हैं—'उन्हें मैं जुए में हार गया।' इसीलिए मैं उन्हें इतना चाहती हूँ।

विदूषक—तो फिर, उसके बदले आप इस रत्नमाला को स्वीकार करें।

वसन्तसेना—(अपने आप) तो क्या वह आभूषण इन्हें दिखला दूँ? (विचार कर) या अभी नहीं।

विदूषक—तो क्या आप यह रत्नहार स्वीकार नहीं कर रही हैं?

वसन्तसेना—(हँसकर, सखी की ओर देखती हुई) मैत्रेय, भला मैं रत्नहार क्यों

विदूषकः—(स्वगतम्) किं अण्णं तहिं गदुअ गेण्हिस्सदि । (प्रकाशम्) भोदि ! भणामि (स्वगतम्) 'णिअंतीअदु गणिआपसंगादो' त्ति । (इति निष्क्रान्तः ।) [किमन्यत् तस्मिन् गत्वा ग्रहीष्यति । भवति ! भणामि, निवर्त्ततामस्माद् गणिकाप्रसङ्गात् इति ।]

वसन्तसेना—हञ्जे ! गेण्ह एदं अलङ्कारअं, चारुदत्तं अहिरमिदुं गच्छम्ह । [हञ्जे ! गृहाणैतमलङ्कारम्, चारुदत्तमभिरन्तुं गच्छामः ।]

चेटी—अज्जए ! पेक्ख पेक्ख, उण्णमदि अकालदुद्दिणं । [आर्ये ! प्रेक्षस्व, प्रेक्षस्व । उन्नमति अकालदुर्दिनम् ।]

(इति=एवमुक्त्वा, गृहीत्वा=नीत्वा, पार्श्वे=स्वसमीपे, स्थापयति । स्वगतम्=आत्मगतम्) हीनानि=अपगतानि, कुसुमानि=पुष्पाणि, यस्य तस्मात्, सहकार-पादपात्=रसालवृक्षात्, मकरन्दबिन्दवः=पुष्परसकणाः, निपतन्ति । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) विज्ञापय=कथय, तं द्यूतकरम्=कितवम्, आर्यचारुदत्तम्=मान्य-सार्थवाहसुतम्, मम=वसन्तसेनायाः, वचनेन—अहमपि=वसन्तसेनाऽपि प्रदोषे=सन्ध्यासमये, आर्यम्=भवन्तम्, प्रेक्षितुम्=अवलोकयितुम्, आगच्छामि । इति ।

विदूषकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) किमन्यत्=इतोप्यधिकं किमपि, तस्मिन्=चारुदत्तसमीपे, गत्वा ग्रहीष्यति (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) भवति=श्रीमति, तव समागमनस्य वार्तां निवेदयिष्यामि । (स्वगतम्=आत्मगतम्) निवर्त्तताम्=विरम, गणिकायाः=वेश्यायाः, प्रसङ्गात् । (इति निष्क्रान्तः=रङ्गात् प्रस्थितः ।)

वसन्तसेना—गृहाण=ग्रहणं कुरु, एतम् अलङ्कारम्=रत्नहारम्, चारुदत्तम्=सार्थवाहसुतम्, अभिरन्तुम्=रमणार्थम्, गच्छामः=चलामः ।

चेटी—आर्ये=मान्ये, प्रेक्षस्व=अवलोकय, अकाले=असमये, दुर्दिनम्=मेघ-समूहः । उन्नमति=उत्पद्यते, इदानीं तत्र गन्तुं नोचितमिति भावः ।

न लूंगी ? (लेकर, अपने पास रखकर, मन ही मन) हाय, मंजरीविहीन आम के पेड़ से भी रस की बूंदें टपकती हैं । (प्रकट) महाशय, कृपया आप जुआड़ी महोदय आर्य चारुदत्त से मेरा निवेदन कह देंगे कि आज सूर्यास्त के बाद मैं स्वयं उनके दर्शन हेतु आ रही हूँ ।

विदूषक—(मन ही मन) वहाँ आकर क्या कुछ और लेगी । (सुनाकर) श्रीमतीजी कह दूंगा । (मन ही मन) आप इस वेश्या का संसर्ग छोड़ दें । (यह कहकर चला जाता है ।)

वसन्तसेना—चेटि, इस रत्नावली को रक्खो । हमलोग चारुदत्त के साथ रमण करने चलती हैं ।

चेटी—आर्ये, देखिये, देखिये । बिना समय के उमड़ते हुए बादलों को ।

वसन्तसेना—

उदयन्तु नाम मेघाः भवतु निशा वर्षमविरतं पततु ।
गणयामि नैव सर्वं दयिताभिमुखेन हृदयेन ।। ३२ ।।

हञ्जे ! हारं गेण्हिअ लहुं आअच्छ [हञ्जे ! हारं गृहीत्वा लघु आगच्छ ।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति मदनिका-शर्विलको नाम चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः ।

अन्वयः—मेघाः, उदयन्तु, नाम, निशा, भवतु, अविरतम्, वर्षम्, पततु, दयिताभिमुखेन, हृदयेन, सर्वम्, नैव, गणयामि ।

उदयन्त्विति । मेघाः=जलदाः, उदयन्तु=उत्पन्नाः भवन्तु, नाम इति स्वीकारे, निशा=रजनी, भवतु=अस्तु, अविरतम्=अनवरतम्, वर्षम्=वृष्टिः, पततु=यातु अहम्, दयिताभिमुखेन=प्रियतममिलनोत्सुकेन, हृदयेन=चित्तेन, सर्वम्=अखिलम्, एतत् नैव गणयामि=नैव चिन्तयामि । आर्या जातिः ।। ३२ ।।

हञ्जे, गृहीत्वा=नीत्वा, लघु=शीघ्रम्, आगच्छ ।

(इति=एवमुक्त्वा, सर्वे=सकलजनाः निष्क्रान्ताः=रङ्गमञ्चात् बहिर्गतः ।)

मृच्छकटिके मदनिका-शर्विलकोपाख्यानस्य मुख्यवर्ण्यत्वात्
मदनिका-शर्विलको नाम चतुर्थोऽङ्कः ।

वसन्तसेना—बादल उठें (घिर आयें), रात हो जाये, घनघोर वर्षा आ जाये, फिर भी हृदय से प्रियतम की ओर अभिमुख मैं इन सबकी परवाह नहीं करती हूँ ।

चेटी ! हार लेकर शीघ्र आओ ।

(सब चले जाते हैं ।)

चतुर्थ अङ्क समाप्त ।

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति आसनस्थः सोत्कण्ठश्चारुदत्तः ।)

चारुदत्तः—(ऊद्र्ध्वमवलोक्य) उन्नमत्यकालदुर्दिनम् । यदेतत्—

आलोकितं गृहशिखण्डिभिरुत्कलापै-
र्हंसैर्यियासुभिरपाकृतमुन्मनस्कैः ।
आकालिकं सपदि दुर्दिनमन्तरीक्ष-
मुत्कण्ठितस्य हृदयञ्च समं रुणद्धि ॥ १ ॥

अपि च—

मेघो जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलो
विद्युत्प्रभा-रचित-पीत-पटोत्तरीयः ।

(अथ पूर्वोत्तरकथां सङ्घटयितुं पूर्ववर्णितचारुदत्तस्य प्रवेशमाह—तत इति ।)

(आसनस्थः=पीठे उपविष्टः, सोत्कण्ठः=प्रियामिलनोत्सुकः, चारुदत्तः=सार्थवाहसुतः, प्रविशति=सभ्यानां दृष्टिगोचरतां याति ।)

चारुदत्तः—(ऊर्ध्वम्=उपरि, अवलोक्य=दृष्ट्वा) उन्नमति=उपरि आगच्छति, अकाले=असमये, दुर्दिनम्=मेघाच्छन्नमहः । यदेतत्—

अन्वयः—उत्कलापैः, गृहशिखण्डिभिः, आलोकितम्, यियासुभिः, उन्मनस्कैः, हंसैः, अपाकृतम् आकालिकम्, दुर्दिनम्, सपदि, अन्तरिक्षम् उत्कण्ठितस्य, हृदयम्, च समम् रुणद्धि ।

आलोकितमिति । उत्कलापैः=ऊर्ध्वप्रसारितपुच्छैः, गृहस्य=सदनस्य, शिखडण्डिनः=मयूराः, आलोकितम्=सस्पृहमवलोकितम्, यियासुभिः=मानसरोवरं गन्तुमिच्छुभिः, उन्मनस्कैः=गन्तुमुत्सुकैः, हंसैः=मरालैः, अपाकृतम्=तिरस्कृतम् । आकालिकम्=असमयोत्पन्नम्, दुर्दिनम्=मेघाच्छन्नदिनम्, सपदि=झटिति, अन्तरिक्षम्=गगनम्, उत्कण्ठितस्य=विरहोत्सुकस्य, हृदयम्=चित्तम, समम्=साकम्, रुणद्धि=आच्छादयति । अस्मिन् श्लोके दीपकालङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तञ्चेति ॥ १ ॥

अन्वयः—जलार्द्रमहिषोदरभृङ्गनीलः, विद्युत्प्रभारचितपीतपटोत्तरीयः, संहतबलाकगृहीतशङ्खः, अपरः, केशवः, इव, खम् आक्रमितुम्, प्रवृत्तः, मेघः, आभाति ।

(इसके बाद आसन पर बैठे हुए उत्कण्ठित चारुदत्त का प्रवेश)

चारुदत्त—(ऊपर की ओर देखकर) यह असमय में ही काली घटाएँ उमड़ रही हैं ।

ऊपर की ओर पाँखें फैलायें जिसे पालतू मयूरों ने देखा, गमनोन्मुख खिन्न मन हंसों ने जिसे उपेक्षा की दृष्टि से देखा, वह अकालदुर्दिन आकाश और विरही के हृदय को एक साथ ढँक रहा है ॥ १ ॥

आभाति संहतबलाक-गृहीतशङ्खः
खं केशवोऽपर इवाक्रमितुं प्रवृत्तः ॥ २ ॥

अपि च—

केशवगात्रश्यामः, कुटिल-बलाकावली-रचित-शङ्खः।
विद्युद्गुणकौशेयश्चक्रधर इवोन्नतो मेघः ॥ ३ ॥

एता निषिक्तरजतद्रवसन्निकाशा धारा जवेन पतिता जलदोदरेभ्यः।
विद्युत्प्रदीपशिखया क्षणनष्टदृष्टाश्छिन्ना इवाम्बरपटस्य दशाः पतन्ति ॥४॥

मेघ इति। जलेन=सलिलेन, आर्द्रः=प्रक्षालितदेहः, यः महिषः=लुलापः, 'लुलापो महिषोवाहद्विषत्कासरसैरिभाः' इत्यमरः। तस्य उदरम्=कुक्षिः, जलोत्थितावस्थायाम्, महिषदेहस्याधिककृष्णत्वप्रतीतिर्भवति, तेन जलार्द्रेति विशेषणं प्रयुक्तमत्रेति बोध्यः, तथा भृङ्गः=भ्रमरश्च, तद्वत् नीलः=श्यामः मेघः, विद्युदः=तडिदः, "तडित्सौदामिनी विद्युत्" इत्यमरः। प्रभा=कान्तिः, एव रचितम्=कृतम्, पीतपटोत्तरीयम्=पीताम्वरोत्तरीयम्, संहताः=सुसम्बद्धाः, बलाकाः=बकपङ्क्तयः, एव गृहीतः=धृतः, शङ्खो येन तथोक्तः, अपरः=अन्यः, केशवः=श्रीकृष्ण, इव खम्=गगनम्, आक्रमितुम्=व्याप्तुम्, प्रवृत्तः=उद्युक्तः, मेघः=जलदः, आभाति=शोभते। अत्रोत्प्रेक्षारूपकयोः परस्परसापेक्षत्वेन सङ्करालङ्कारः। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २ ॥

अन्वयः—केशवगात्रश्यामः, कुटिलंबलाकावलीरचितशङ्खः, विद्युद्गुणकौशेयः मेघः चक्रधरः, इव, उन्नतः।

केशव इति। केशवस्य=श्रीकृष्णस्य, गात्रम्=देहम्, इव श्यामः=नीलवर्णः, कुटिला=वक्रा, बलाकावली=बकपङ्क्तिसमूहः, सैव रचितः=कृतः, शङ्खः येन तथोक्तः, विद्युदः=तडिदः, एव गुणाः=तन्तवः, तेषां कौशेयम्=चीनवस्त्रं यस्य सः, मेघः=जलदः, चक्रधरः=श्रीकृष्ण इव, उन्नतः=उद्गतः। अत्राऽपि सङ्करालङ्कारः। आर्या जातिश्चेति ॥ ३ ॥

अन्वयः—निषिक्तरजतद्रवसन्निकाशाः, जलदोदरेभ्यः, पतिताः, एता, धाराः, विद्युत्प्रदीपशिखया, क्षणनष्टदृष्टा, अम्बरपटस्य छिन्नाः, दशाः, इव, जवेन, पतन्ति।

एता इति। निषिक्ताः=तरलीकृता, ये रजतस्य=रौप्यस्य, द्रवाः=द्रवीभूत-

---

और भी—पानी से भींगे पेट वाले भैंसे और काले भौंरों की तरह नीले मेघ, विद्युत्कान्ति से निर्मित पीताम्बर धारण कर साथ में बकपंक्तिरूपी शंख धारण कर भगवान् विष्णु की तरह सम्पूर्ण आकाश को घेर रहा है ॥ २ ॥

और भी—भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्त्ति की तरह श्यामवर्ण, वक्रबकपंक्ति से निर्मित शंख तथा बिजली के सूत्र से निर्मित पीताम्बर धारण कर यह मेघ सम्पूर्ण आकाश के आयाम को घेर रहा है ॥ ३ ॥

चाँदी के घोल की तरह बादल के पेट से जल की धारा बड़े वेग से गिर रही है, बिजलीरूपी दीपशिखा के द्वारा कभी तो ये दृष्टिगोचर होती है और कभी अदृश्य

संसक्तैरिव चक्रवाकमिथुनैर्हंसैः प्रडीनैरिव
व्याविद्धैरिव मीनचक्रमकरैर्हर्म्यैरिव प्रोच्छ्रितैः।
तैस्तैराकृतिविस्तरैरनुगतैर्मेघैः समभ्युन्नतैः
पत्रच्छेद्यमिवेह भाति गगनं विश्लेषितैर्वायुना ॥ ५ ॥
एतत्तद्धृतराष्ट्रचक्रसदृशं मेघान्धकारं नभो
हृष्टो गर्जति चातिदर्पितबलो दुर्योधने वा शिखी।

पदार्थाः तेषां सन्निकाशाः=तुल्याः (अतिशुभ्राः), जलोदरेभ्यः=मेघजठरेभ्यः, जवेन =वेगेन, पतिताः=च्युताः, विद्युदेव=तडिदेव, प्रदीपशिखा=दीपाग्रज्योतिः, तया क्षणम्=किञ्चित्कालम्, दृष्टाः=दष्टिपथे समागताः, ततः नष्टाः=तिरोहिताः, एताः =दृश्यमानाः, धारा=सलिलधारा, अम्बरमेव=गगनमेव, पटम्=वस्त्रम्, यस्य तस्य दशाः=प्रान्तसूत्राणि इव, जवेन=वेगेन, पतन्ति=क्षरन्तीति भावः। अस्मिन् श्लोके निरङ्गरूपकालङ्कारः। अन्यच्च 'अम्बरं व्योम्निवाससि' इति अमरप्रामाण्यात् अम्बरस्य पटसमानार्थतया पुनरुक्तवदाभासोऽलङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ ४ ॥

अन्वयः—वायुना, विश्लेषितैः, संसक्तैः, चक्रवाकमिथुनैः, इव, प्रडीनैः, हंसैः, इव, व्याविद्धैः, मीनचक्रमकरैः, इव, प्रोच्छ्रितैः, हर्म्यैः, इव, तैः, तैः आकृतिविस्तरैः अनुगतैः, समभ्युन्नतैः, मेघैः, गगनम्, इह, पत्रच्छेद्यम्, इव, भाति ॥ ५ ॥

संसक्तैरिति। वायुना=पवनेन, विश्लेषितैः=भेदं गतैः, इतस्ततश्चालितैर्वा, संसक्तैः=सञ्चालितैः, चक्रवाकमिथुनैः=कोकयुगलैः, इव=यथा, प्रडीनैः=उड्डीनैः, हंसैः=मरालैः, इव=यथा, व्याविद्धैः=प्रक्षिप्तैः, मीनचक्रैः=मत्स्यसमूहैः, मकरैः= ग्राहैः, इव=यथा, प्रोच्छ्रितैः=अत्युच्चैः, तैः, हर्म्यैः=प्रासादैः, इव=यथा, तैः तैः =तादृशैः, आकृतिभिः=आकारैः, विस्तरैः=विस्तृतैः, अनुगतैः=पश्चाच्चलितैः, समभ्युन्नतैः=अतिविशालैः, मेघैः=जलदैः, गगनम्=आकाशम्, इह=अस्मिन् स्थाने, पत्रच्छेद्यम्=चित्रितम्, इव=यथा, भाति=शोभते। अत्रोपमालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं छन्दश्चेति ॥ ५ ॥

हो जाती है। ये जलधाराएँ ऐसी प्रतीत होती है मानो आकाश रूपी फटे कपड़े से धागे टूट टूटकर गिर रहे हों ॥ ४ ॥

परस्पर एक-दूसरे से मिले चकवा-चकई के जोड़े की तरह, आकाश में उड़ते हंसों की तरह, समुद्र-मंथन के समय इधर-उधर फेंके गये मत्स्यों एवं मगरों की तरह, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की तरह, वायु-संचालित अनेक आकार वाले बादलों से चित्रपट की तरह आकाश सुशोभित हो रहा है ॥ ५ ॥

(आगे के इस श्लोक में दुर्योधन के राज्य तथा वर्षाकाल का वर्णन एक साथ किया गया है)

अक्षद्यूतजितो युधिष्ठिर इवाध्वानं गतः कोकिलो
हंसाः सम्प्रति पाण्डवा इव वनादज्ञातचर्या गताः ॥ ६ ॥

(विचिन्त्य) चिरं खलु कालो मैत्रेयस्य वसन्तसेनायाः सकाशं गतस्य, नाद्यापि आगच्छति ।

विदूषकः—(प्रविश्य) अहो ! गणिआए लोभो अदक्खिणदा अ, जदो ण कधा वि किदा अण्णा । अणाअरेण ज्जेव लभणिअ किं पि एवमेव गहिदा रअणा-

---

अन्वयः—सम्प्रति, मेघान्धकारम् एतत्, नभः, तद्धृतराष्ट्रचक्रसदृशम्, हृष्टः, अतिदर्पितबलः, दुर्योधनः, वा, शिखि, गर्जन्ति, कोकिलः, अक्षद्यूतजितः, इव युधिष्ठिरः, अध्वानम्, गताः, पाण्डवाः, इव, हंसाः, वनात्, अज्ञातचर्याम्, गताः ।

एतदिति । सम्प्रति=इदानीम्, मेघान्धकारम्—मेघैः=वारिवाहैः, अन्धकारः=तमः, यत्र तत्, एतत्=अवलोक्यमानम्, नभः=आकाशम्, तस्य=विख्यातस्य, धृतराष्ट्रस्य=कौरवपितुः, चक्रतुल्यम्=राज्यतुल्यम् (चक्षुरहितत्वादाकाशस्याऽपि शशिसूर्यविरहात्) हृष्टः=सन्तुष्टः, अतिदर्पितबलः—अतिदर्पितम्=अतिगर्वप्रकाशकम्, बलम्=रूपम्, यस्यासौ, अथवा—अतिदर्पितम्, बलम्=शक्तिम्, सैन्यं वा यस्यासौ । मेघालोके मयूराः प्रसन्नाः बलशालिनश्च भवन्ति, पक्षे–दुर्योधनः वा=इव, शिखी=मयूरः, गर्जन्ति=केकां करोति, कोकिलः,=पिकः, अक्षेण=पाशकेन, द्यूतम्=क्रीडनकम्, तत्र जितः=पराजितः, युधिष्ठिरः=पाण्डुपुत्रः, इव=यथा, अध्वानम्=जनशून्यस्थानम्, अन्यत्र वनप्रदेशम्, गताः=प्राप्ताः, पाण्डवाः=पाण्डुपुत्राः, इव=यथा, हंसाः=मरालाः, वनात्=जलाशयात्, अन्यत्र वनवासात्, अज्ञातचर्चाम्=अज्ञातवासम्, गताः=प्राप्ताः । आत्रार्थी उपमालङ्कारः, पूर्णोपमा चानपेक्षिततया संसृष्टिरलङ्कारश्च । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ६ ॥

(विचिन्त्य=विचार्य) चिरम्=दीर्घम्, कालम्=समयम्, खलु=निश्चयेन, मैत्रेयस्य=मित्रविदूषकस्य, वसन्तसेनायाः=एतदाख्यवेश्यायाः, सकाशम्=समीपम्, गतस्य=प्रेषितस्य, न=नहि, अद्यापि=अधुनापि, आगच्छति=समायाति ।

विदूषकः—(प्रविश्य रङ्गे उपस्थितो भूत्वा) अहो=आश्चर्यम्, गणिकायाः=वसन्तसेनायाः, लोभः=परद्रव्याभिलाषः, अदक्षिणता=कार्पण्यम्, च=पुनः, यतः=

असंयमित दुर्योधन के राज्य की तरह इस अकाल जलद से सम्पूर्ण आकाश अन्धकाराच्छन्न हो गया है । अतिदर्प के साथ दुर्योधन (मेघपक्ष में मयूर) संतोष के साथ गरज रहे हैं । जुए में हारे युधिष्ठिर की तरह कोयल वनपथ की ओर बढ़ गई हैं । हंस भी पाण्डवों की तरह मानसरोवर की ओर अज्ञातवास में चले गये हैं ॥६॥

(कुछ सोचते हुए) वसन्तसेना के पास मैत्रेय को गये बहुत देर हो रही है, अब तक लौटे नहीं ।

विदूषक—(आकर) अरे, वेश्या वसन्तसेना का लालच और उसकी अनुदारता तो देखो, जेवर के सिवा उसने कोई दूसरी बात तक नहीं की । बिना कुछ बोले

वली । एत्तिआए ऋद्धीए ण तए अहं भणिदो, 'अज्जमित्तेअ ! वीसमीअदु मल्लकेण पाणीअं पि पिबिअ गच्छीअदु, त्ति । ता मा दाव दासीए धीआए गणिआए मुहं पि पेक्खिस्सं । (सनिर्वेदम्) सुट्ठु क्खु वुच्चदि—'अकंदसमुत्थिदा पउमिणी, अवंचओ वाणिओ, अचोरो सुवण्णआरो, अकलहो गामसमागमो, अलुद्धा गलिआ' त्ति, दुक्करं एदे संभावीअन्ति । ता पिअवअस्सं गदुआ इमादो गणिआ-पसगांदो णिवत्तावेमि । (परिक्रम्य दृष्ट्वा) कध पिअवअस्सो रुक्खवाडिआए उविविट्ठो चिट्ठदि; ता जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य) सोत्थि भवदे, वड्ढदु भवं । [अहो गणिकाया लोभः अदक्षिणता च, यतो न कथाऽपि कृता अन्या । अनादरेणैव अभणित्वा किमपि एवमेव गृहीता रत्नावली । एतावत्या ऋद्धया न तया अहं भणितः; आर्यमैत्रेय ! विश्रम्यताम्, मल्लकेन पानीयमपि पीत्वा गम्यतामिति । तत् मा तावत् दास्याः पुत्र्या गणिकाया मुखमपि प्रेक्षिष्ये । सुष्ठु खलु उच्यते—'अकन्दसमुत्थिता पद्मिनी, अवञ्चको वणिक्, अचौरः सुवर्णकारः, अकलहो ग्रामसमागमः, अलुब्धा गणिका' इति, दुष्करमेते सम्भाव्यते । तत् प्रियवयस्यं गत्वा अस्मात् गणिकाप्रसङ्गात् निवर्त्तयामि । कथं प्रियवयस्यो वृक्षवाटिकायामुपविष्टस्तिष्ठति; तद्यावदुपसर्पामि । स्वस्ति भवते, वर्द्धतां भवान् ।]

येन हेतुना, न=नहि, अन्या=भिन्ना, कथापि=वार्त्तापि, कृता=पृष्टा, अनादरेणैव =अवधीरणैव, अभणित्वा=अकथयित्वा, किमपि=किञ्चित्, गृहीता=धृता, रत्नावली=रत्नहारः । एतावत्या=एतावत्पर्यन्तेन, ऋद्धया=ऐश्वर्येण, तया=गणिकया, अहम्=बिदूषकः, भणितः=कथितः, विश्रम्यताम्=श्रमोपशमनं क्रियताम्, मल्लकेन =पात्रविशेषेण, पानीयम्=सलिलम्, पीत्वा=पानङ्कृत्वा, गम्यताम्=याहि । तत्=तेन, मा तावत्=नैव, गणिकायाः=वेश्यायाः, मुखमपि=आननमपि, प्रेक्षिष्ये (सनिर्वेदम्=सखेदम्) सुष्ठु=सम्यक्, उच्यते—अकन्दात्=मूलरहितात्, समुत्थिता=समुत्पन्ना, पद्मिनी=कमलिनी, अवञ्चकः=अप्रतारकः, वणिक्=पण्याजीवः, अचौरः =चौर्यरहितः, सुवर्णकारः=कलादः, अकलहः=विवादशून्यः, ग्रामसमागमः=ग्रामीणसम्मेलनम्, अलुब्धा=लोभरहिता, गणिका=वेश्या, एते दुष्करम्=दुस्साध्यम्, सम्भा-

---

अनादरपूर्वक उसने रत्नहार ले लिया । इतने अपार वैभव के रहते हुए भी उसने एक बार भी नहीं कहा—आर्य मैत्रेय, थोड़ा विश्राम कर लो या एक गिलास पानी ही पीकर जाओ । अतः ऐसी नीच वेश्या का तो मुँह भी नहीं देखना चाहिए । (दुःखी होकर) ठीक ही कहा है—बिना जड़ की जन्मी कमललता, न ठगनेवाला बनियाँ, सोना न चुरानेवाला सुनार, बिना झगड़े की ग्रामपंचायत, लोभरहित वेश्या—इनका मिलना मुश्किल है, तो चलकर अपने प्रियमित्र चारुदत्त को सर्वप्रथम इस वेश्या के संसर्ग से अलग हटाता हूँ । (घूमकर और देखकर) क्या मित्रवर उद्यान में बैठे हैं, तो क्यों न उनके पास ही चलूँ । (समीप जाकर) आपका कल्याण हो, आपकी उन्नति हो ।

चारुदत्तः—(विलोक्य) अये ! सुहृन्मे मैत्रेयः प्राप्तः । वयस्य ! स्वागतम्, आस्यताम् ।

विदूषकः—उपविट्ठो म्हि । [उपविष्टोऽस्मि ।]

चारुदत्तः—वयस्य ! कथय तत् कार्यम् ।

विदूषकः—तं क्खु कज्जं विणट्ठं । [तद् खलु कार्यं विनष्टम् ।]

चारुदत्तः—किं तया न गृहीता रत्नावली ?

विदूषकः—कुदो अम्हाणं एत्तिअं भाअधेअं ? णव-णलिण-कोमलं-अंजलिं मत्थए कदुअ पडिच्छिआ । [कुतः अस्माकमेतावद् भागधेयम् ? नव नलिनकोमलमञ्जलिं मस्तके कृता प्रतीष्टा ।]

व्यते=सम्भावना क्रियते, तत्=तस्मात्, प्रियवयस्यम्=प्रियमित्रम्, गत्वा=समीपमुपसृत्य, अस्मात् गणिकायाः=वैश्यायाः, प्रसङ्गात्=संसर्गात्, निवर्तयामि=अवरोधयामि । (परिक्रम्य=प्रतिनिवर्त्य, दृष्ट्वा=अवलोक्य) कथमिति जिज्ञासायाम्, प्रियवयस्यः=प्रियमित्रः, वृक्षवाटिकायाम्=उपवने, उपविष्टः=आसनस्थः, तिष्ठति, तत्=तस्मात् यावदित्यवधारणे, उपसर्पामि=समीपं गच्छामि (उपसृत्य=समीपमागत्य) भवते=तुभ्यम्, स्वस्ति=कल्याणमस्तु, वर्द्धताम्=एधताम्, भवान्=श्रीमान् ।

चारुदत्तः—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इति हर्षसूचकमव्ययम्, मे=मम, सुहृद=मित्र, मैत्रेयः=एतन्नामधारी पुरुषः, प्राप्तः=समागतः, वयस्य=हे मित्र, स्वागतम्, आस्यताम्=उपविश्यताम् ।

विदूषकः—उपविष्टः=स्थितः, अस्मि=भवामि ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, कथय=वर्णय, तत् खलु कार्यम्=वसन्तसेनायै रत्नहारप्रदानात्मकं कार्यं यथोक्तं तथा कृतमिति ।

विदूषकः—तत्=पूर्वोक्तम्, कार्यम्=रत्नावलीसमर्पणरूपकृत्यम्, विनष्टम्=विध्वस्तम् ।

चारुदत्तः—किमिति प्रश्ने, तया=वसन्तसेनया, न=नहि, गृहीता=स्वीकता, रत्नावली ?

विदूषकः—कुतः=कस्मात्, अस्माकम्=नः, एतावत्=एवंविधं, भागधेयम्=

चारुदत्त—(देखकर) अरे, मेरे मित्र मैत्रेय तो आ गए । मित्र, स्वागत है । आओ, बैठो ।

विदूषक—मित्र बैठ गया हूँ ।

चारुदत्त—मित्र, जिस काम के लिए तुम गये थे, उसके बारे में बतलाओ ।

विदूषक—भाई, वह काम तो बिगड़ गया ।

चारुदत्त—क्या उसने रत्नहार स्वीकार नहीं किया ?

विदूषक—नहीं भाई, हम लोगों का इतना बड़ा भाग्य कहाँ ? नये कमल की तरह कोमल हथेलियों को माथे से लगाकर रत्नहार स्वीकार कर लिया ।

चारुदत्तः—तत् किं ब्रवीषि विनष्टमिति ?

विदूषकः—भो ! कधं ण विणट्टं ? जं अभुत्तस्स अपीदस्स चोरेहिं अवहिदस्स अप्पमुल्लस्स सुवण्णभंडअस्स कारणादो चतुस्समुद्द-सारभूदा रअणमाला हारिदा। [भोः ! कथं न विनष्टम् ? यत् अभुक्तस्य अपीतस्य चोरैरपहृतस्य अल्पमूल्यस्य सुवर्णभाण्डकस्य कारणात् चतुःसमुद्रसारभूता रत्नमाला हारिता।]

चारुदत्तः—वयस्य ! मैवम्।

यं समालम्ब्य विश्वासं न्यासोऽस्मासु तथा कृतः।
तस्यैतन्महतो मूल्यं प्रत्ययस्यैव दीयते ॥ ७ ॥

अदृष्टम्, नवनलिनवत्=सद्यःप्रस्फुटितपद्मकलिकावत्, कोमलम्=सुकुमारम्, अञ्जलिम्=कर-हस्तसम्पुटम्, कृत्वा=विधाय, प्रतीष्टा=स्वीकृता।

चारुदत्तः—तत्=तर्हि, किम्=कथम्, ब्रवीषि=कथयसि, विनष्टम्=उच्छिन्नम्।

विदूषकः—भो=इति सम्बोधने, कथम्=केन प्रकारेण, न=नहि, विनष्टम्=विनाशङ्गतः। यत्=यस्मात्, अभुक्तस्य=अनुपभुक्तस्य, अपीतस्य=अनाचमितस्य, चोरैः=तस्करैः, अपहृतस्य=बलान्नीतस्य, अल्पमूल्यस्य=स्तोकार्घस्य, सुवर्णभाण्डकस्य कारणात्=हेतोः, चतुःसमुद्रसारभूता=सागरचतुष्टयाणाम्, सारभूतः=तत्त्वपूर्णः, रत्नमाला=रत्नहारम्, हारिता=विनष्टेति भावः।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, मैवम्=एवं मा वद।

अन्वयः—तया, यम्, विश्वासम्, समालम्ब्य, अस्मासु, न्यासः, कृतः, तस्य, महतः, प्रत्ययस्य, एव, एतत्, मूल्यम्, प्रदीयते।

यमिति। तया=गणिकया वसन्तसेनया, यं विश्वासम्=प्रत्ययम्, समालम्ब्य=आश्रित्य, अस्मासु=मादृशधनरहितेषु, न्यासः=निक्षेपः, कृतः=विहितः, तस्य=पूर्वक्तस्य, महतः=अगाधस्य, प्रत्ययस्य=विश्वासस्य, एव एतत्=रत्नहाररूपम्, मूल्यम्=निष्क्रियः, प्रदीयते=समर्प्यते। अतिमहर्घस्य प्रत्ययस्य एतत् मूल्यं दीयते, न तु सुवर्णभाण्डस्येति। यतो हि वसन्तसेनया विश्वासं समाश्रित्यैव मादृशधनहीनजनेषु अलङ्कारनिक्षेपः कृतः तस्यामितमूल्यस्यैव रत्नावलीरूपं निष्क्रियं समर्प्यते। अस्मिन् श्लोकेऽतिशयोक्तिरलङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दश्चेति ॥ ७ ॥

चारुदत्त—तो फिर ऐसा क्यों कहते हो कि काम बिगड़ गया ?

विदूषक—अजी, बिगड़ा क्यों नहीं ? जो बिना खाये-पीये गये, चोरों द्वारा चुराये गये, कम कीमत वाले सोने के आभूषणों के बदले चारों समुद्र के सारभूत कीमती रत्नहार खो दिया।

चारुदत्त—मित्र, ऐसी बात मत कहो ?

उसने जिस विश्वास के साथ हमारे पास धरोहर रक्खा था, उस विश्वास की यह कीमत चुकायी गई है, न कि स्वर्णभूषणों की ॥ ७ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! एदं पि मे दुदिअं संतावकारणं, जं सहीजण-दिण्ण-सण्णाए पडन्तोवारिदं मुहं कदुअ, अहं उवहसिदो, ता अहं बम्हणो भविअ दाणिं भवन्तं सीसेण पडिअ विण्णवेमि । णिवत्तीअदु अप्पा इमादो बहुपच्चवाआदो गणिआपसङ्गादो । गणिआ णाम, पादुअन्तर-प्पविट्ठा विअ लेट्टुआ दुक्खेण उण णिराकरीअदि । अवि अ, भो वअस्स ! गणिआ, हत्थी, काअत्थओ, भिक्खु चाटो, रासहो अ, जहिं एदे णिवसन्ति, तहिं दुट्टा वि ण जाअन्ति । [**भो वयस्य ! एतदपि मे द्वितीयं सन्तापकारणम्, यत् सखीजन-दत्त-संज्ञया पटान्तापवारितं मुखं कृत्वा अहमुपहसितः । तदहं ब्राह्मणो भूत्वा इदानीं भवन्तं शीर्षेण पतित्वा विज्ञापयामि निवर्त्यतामात्मा अस्मात् बहुप्रत्यवायाद् गणिका-प्रसङ्गात् । गणिका नाम, पादुकान्तरप्रविष्टा इव लेष्टुका, दुःखेन पुनर्निराक्रियते । अपि च, भो वयस्य ! गणिका, हस्ती, कायस्थः, भिक्षुः, चाटः, रासभश्च यत्रैते निवसन्ति, तत्र दुष्टा अपि न जायन्ते ।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! अलमिदानीं सर्वं परिवादमुक्त्वा; अवस्थयैवास्मि निवारितः । पश्य—

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, एतदपि=इदमपि, मे=मम, द्वितीयम्=अपरम्, सन्तापकारणम्=पीडाहेतुः, यत् सखीजनेषु=आलीसमूहेषु, दत्ता=कृता, संज्ञा=सङ्केतः, यया तया पटान्तेन=अञ्चलेन, अपवारितम्=आच्छादितम्, मुखम्=आननम्, कृत्वा=विधाय, अहम्=मैत्रेयः, उपहसितः=उपहासं प्रापितः । बहवः=अनेके, प्रत्यवायाः=पापानि, यस्मिन् तस्मात् । लेष्टुका=लघुकठोरमृत्तिकाखण्डः, निराक्रियते=अपक्रियते । अपि च=अन्यच्च, गणिका=वेश्या, हस्ती=गजः, कायस्थः=जातिविशेषः, चाटः=वञ्चकः, क्षुद्रविषयभोक्ता इति पृथ्वीधरः, शठ इति भट्टाचार्यः, रासभश्च=गर्दभश्च, यत्र=यस्मिन् स्थाने, निवसन्ति=निवासं कुर्वन्ति, तत्र=तस्मिन् स्थाने, दुष्टाः=दुर्जनाः, अपि न जायन्ते=न संगताः भवन्ति ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, अलम्=व्यर्थम्, इदानीम्=अधुना, सर्वम्=सकलम्, परिवादम्=निन्दाम्, उक्त्वा=कथित्वा, अवस्थया=निर्धनावस्थया, निवारितः=अपवारितः, पश्य=अवलोकय—

विदूषक—हे मेरे मित्र, हमारे दुःख का दूसरा कारण यह भी है कि अपनी सखियों को इशारे से कुछ कहकर तथा अपने आँचल से मुख ढँक कर उसने हमारी खिल्ली भी उड़ाई है । इसलिए ब्राह्मण होने के बावजूद मैं तुम्हारे चरणों में माथा टेककर विनती करता हूँ—अति संकटमयी इस वेश्या की संगति से विमुख हो जाओ । वेश्या तो जूते में घुसे उस कंकर की तरह है जो घुसने के बाद बड़ी मुश्किल से निकाले जा सकते हैं । हे मित्र, याद रक्खो—वेश्या, हाथी, कायस्थ, भिखारी, शठ और गधे जहाँ रहते हैं, वहाँ भले लोगों की बात क्या, दुष्ट भी नहीं फटकते ।

चारुदत्त—वेश्याओं की निन्दा से भला क्या-लाभ ? इस समय तो मैं अपनी गरीबी के कारण स्वतः उनसे दूर हूँ । देखो—

वेगं करोति तुरगस्त्वरितं प्रयातुं
प्राणव्ययान्न चरणास्तु तथा वहन्ति ।
सर्वत्र यान्ति पुरुषस्य चलाः स्वभावाः
खिन्नास्ततो हृदयमेव पुनर्विशन्ति ॥ ८ ॥

अपि च, वयस्य !

यस्यार्थास्तस्य सा कान्ता, धनहार्यो ह्यसौ जनः ।
(स्वगतम्) न, गुणहार्यो ह्यसौ जनः । (प्रकाशम्)
वयमर्थैः परित्यक्ताः, ननु त्यक्तैव सा मया ॥ ९ ॥

अन्वयः—तुरगः, त्वरितम्, प्रयातुम्, वेगम्, करोति, तु, प्राणव्ययात्, चरणाः, तथा, न, वहन्ति, पुरुषस्य, चलाः, स्वभावाः, सर्वत्र, यान्ति, ततः, खिन्नाः, पुनः हृदयम्, एव, विशन्ति ॥ ८ ॥

वेगमिति—तुरगः=घोटकः, त्वरितम्=शीघ्रम्, प्रयातुं=गन्तुम्, वेगम्=जवम्, करोति=विदधाति, तु=किन्तु, प्राणव्ययात्=सत्त्वनाशात्, तस्य=घोटकस्य निर्बलतया चरणाः=पादाः, तथा=तेन प्रकारेण, जवेन न वहन्ति=चलन्ति, अनेनैव प्रकारेण, पुरुषस्य=अकिञ्चनजनस्य, चलाः=चञ्चलाः, स्वभावाः=प्रकृतयः, सर्वत्र=सकलासु दिक्षु, यान्ति=व्रजन्ति, किन्तु, ततः=तस्मात्, खिन्नाः=दुःखिताः, पुनः=भूयः, हृदयम्=चित्तम्, एव, विशन्ति=विलीयन्ते । दृष्टान्तोऽलङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तञ्चेति ॥ ८ ॥

अन्वयः—यस्य, अर्थाः, (सन्ति) तस्य, सा, कान्ता (अस्ति) हि, असौ, जनः, धनहार्यः (अस्ति) । वयम्, अर्थैः, परित्यक्ताः (अतः) ननु, सा, मया, त्यक्ता एव ॥९॥

यस्येति—यस्य=जनस्य, अर्थाः=धनानि, सन्तीति शेषः, तस्य=जनस्य, सा=वेश्या, कान्ता=प्रिया, भवतीति भावः । हि=यतः, असौ जनः=लोकः, वसन्तसेनेति भावः । धनेन=वित्तेन, हार्यः=वशीकर्त्तुं योग्यः अस्ति ।

(स्वगतम्=आत्मगतम्) न=नहि, असौ जनः=वसन्तसेना-नामकवेश्या गुणहार्यः=दयादाक्षिण्यादिभिः हार्यः । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम् ।)

वयम्, अर्थैः=धनैः, परित्यक्ताः=हीनाः, अतः ननु=निश्चयमेव, सा=वसन्तसेना,

---

घोड़े तेज भागने के लिए अकुलाते हैं किन्तु, थके रहने पर वे वेग से दौड़ नहीं पाते, मनुष्य के चंचल मन चारों ओर दौड़ते हैं किन्तु साधनहीन होने पर भीतर ही भीतर विलीन हो जाते हैं ॥ ८ ॥

और भी हे मित्र—

जिसके पास धन है, उसी की वसन्तसेना हैं । क्योंकि, वेश्या तो धन से ही वश में आती है ।

(मन ही मन) नहीं वह तो गुण से भी वश में आ सकती है । (प्रकट)

हम दरिद्र हैं, इसलिए वह स्वतः मुझसे परित्यक्ता है ॥ ९ ॥

विदूषकः—(अधोऽवलोक्य, स्वगतम्) जधा एसो उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससदि, तधा तक्केमि मए विणिवारिअन्तस्स अधिअदरं वड्ढिदा से उक्कण्ठा। ता सुट्ठु क्खु एव्वं वुच्चदि—'कामो वामो' त्ति। (प्रकाशम्) भो वअस्स ! भणिदं अ ताए—'भणेहि चारुदत्तं, अज्ज पओसे मए एत्थ आअन्तव्वं' त्ति। ता तक्केमि रअणावलीये अवरितुट्टा अवरं मग्गिदुं आअमिस्सदि त्ति। **[यथा एष ऊर्ध्वं प्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वसिति, तथा तर्कयामि—मया विनिवार्यमाणस्य अधिकतरं वृद्धा अस्य उत्कण्ठा। तत् सुष्ठु खल्वेवमुच्यते 'कामो वामः' इति। भो वयस्य। भणितञ्च तया 'भण चारुदत्तम्—अद्यप्रदोषे मया अत्र आगन्तव्यम्' इति। तत् तर्कयामि रत्नावल्या अपरितुष्टा अपरं मार्गयितुमागमिष्यतीति।]**

चारुदत्तः—वयस्य ! आगच्छतु, परितुष्टा यास्यति।

चेटः—(प्रविश्य) अवेध माणहे। **[अवेत मानवाः !]**

जधा जधा वश्शदि अब्भखण्डे तधा तधा तिम्मदि पुट्ठिचम्मे।
जधा जधा लग्गदि शीदवादे तधा तधा वेवदि मे हलक्के॥ १०॥

मया=चारुदत्तेन, त्यक्ता=परित्यक्ता एव। अस्मिन् श्लोके काव्यलिङ्गमलङ्कारः, अनुष्टुप् छन्दश्चेति॥ ९॥

विदूषकः—(अधः=अधोभागे, अवलोक्य=दृष्ट्वा, स्वगतम्=आत्मगतम्) यथा=येन प्रकारेण, एषः=चारुदत्तः, ऊर्ध्वम्=उपरि, प्रेक्ष्य=अवलोक्य, दीर्घम्=लम्बम्, निःश्वसति=उच्छ्वसति, तथा=तेन, तर्कयामि=अनुमिनोमि, मया=मैत्रेयेण, निवार्यमाणस्य=वर्जितस्य, अस्य=चारुदत्तस्य, उत्कण्ठा=वसन्तसेनाविषयक-अभिलाषा, वृद्धा=वृद्धिगता, कामः=मदनः, सर्वथा वामः=प्रतिकूलो भवति। रत्नावल्या=रत्नहारतः, अपरितुष्टा=असन्तुष्टा, अपरम्=अन्यत् किञ्चित्, मार्गयितुम्=याचितुम्, आगमिष्यति।

चारुदत्तः—वयस्य=मित्र, आगच्छतु=आयातु, परितुष्टा=सन्तुष्टा भूत्वा, यास्यति=गमिष्यति।

चेटः—(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा) अवेत=जानीत, मानवाः=नराः।

विदूषक—(**नीचे देखकर, मन ही मन**) यह ऊपर की ओर देखते हैं, लम्बी साँस खींचते हैं। लगता है मेरे मना करने पर इनकी उत्कण्ठा और बढ़ गई है। यह ठीक ही कहा गया है—काम सदा प्रतिकूल होता है। (**प्रकट**) मेरे मित्र, उसने चलते समय कहा है—आर्य चारुदत्त से निवेदन कर देना, आज सूर्यास्त के बाद मैं उनसे मिल रही हूँ।' मैं सोचता हूँ रत्नहार से उसे सन्तोष नहीं हुआ, वह कुछ और लेने आयेगी।

चारुदत्त—आने तो दो प्यारे, खुश होकर लौटेंगी।

चेट—(**मंच पर आकर**) अरे मानवों, मेरी बातें सुनो।

[यथा यथा वर्षति अभ्रखण्डम्, तथा तथा तिम्यति पृष्ठचर्म।
यथा यथा लगति शीतवातस्तथा तथा वेपते मे हृदयम् ॥]

(प्रहस्य)

वंशं वाए शत्तछिद्दं शुशद्दं वीणं वाए शत्ततन्ति णदन्ति।
गीअं गाए गद्दहश्शाणुलूअं के मे गाणे तुंबुलू णालदे वा ॥ ११ ॥

[वंश वादयामि सप्तच्छिद्रं सुशब्दम्, वीणां वादयामि सप्ततन्त्रीं नदन्तीम्।
गीतं गायामि गर्दभस्यानुरूपं को मे गाने तुम्बुरुर्नारदो वा ॥]

आणत्त म्हि अज्जआए वसन्तसेणाए—कुम्भीलआ ! गच्छ तुमं । मम आगमणं अज्जचारुदत्तश्श णिवेदेहि'त्ति । ता जाव आज्जचारुदत्तश्श गेहं

अन्वयः—यथा, यथा, अभ्रखण्डम्, वर्षति, तथा तथा, पृष्टचर्म, तिम्यति, यथा यथा शीतवातः, लगति, तथा, तथा, मे, हृदयं, वेपते ॥ १० ॥

यथेति—यथा यथा=येन येन प्रकारेण, अभ्रखण्डम्=मेघखण्डम्, वर्षति=सलिलं मुञ्चति, पृष्टचर्मः=पश्चिमाङ्गाजिनम्, तिम्यति=आर्द्रीभवति, यथा यथा शीतवातः=शीतलवायुः, लगति=स्पृशति, तथा तथा=तेन तेन प्रकारेण, मे=मम चेटस्य, हृदयम्=चित्तम्, वेपते=कम्पते । उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् ॥ १० ॥

अन्वयः—सप्तच्छिद्रम्, सुशब्दम्, वंशं वादयामि, सप्ततन्त्रीम्, नदन्तीम्, वीणाम्, वादयामि, गर्दभस्य, अनुरूपम्, गीतम्, गायामि, मे, गाने, तुम्बुरुः, वा, नारदः कः ? ॥ ११ ॥

वंशमिति—सप्तच्छिद्रम्=सप्तविलानि यस्य तम्, सुशब्दम्=मधुरध्वनिम्, वंशं=वेणुम्, वादयामि=ध्वनितं करोमि, सप्ततन्त्रीम्=सप्ततन्तवः यस्यास्ताम्, नन्दन्तीम्=शब्दायमानाम्, वीणाम्=वल्लकीम् वादयामि=शब्दापयामि, गर्दभस्य=रासभस्य, अनुरूपम्=योग्यम्, गीतम्=गानम्, गायामि=करोमि, मे=चेटस्य, गाने=गीताराधने, तुम्बुरुः=एकः गानविद्याविशारदः गन्धर्वः, वा=अथवा, नारदः=देवर्षिः, कः=कीदृक् गुणयुक्तः, तुच्छ इत्यर्थः । अस्मिन् श्लोके व्यतिरेकालङ्कारः, उपजातिछन्दश्चेति ॥ ११ ॥

आज्ञप्तोऽस्मि=आदिष्टोऽस्मि, आर्यया=मान्यया, वसन्तसेनया=एतदाख्यगणि-

---

जैसे-जैसे मेघ बरसता है, मेरी पीठ की खाल भींगती है और जैसे-जैसे ठंढी हवा बहती है, वैसे-वैसे मेरा दिल काँपता है ॥ १० ॥

(हँसकर) सात छेदवाली बाँसुरी से मीठी धुन बजाता हूँ, सात तारों से बज़ने वाला सितार भी बजाता हूँ गदहे की तरह गीत भी गाता हूँ, मेरे गाने के सामने प्रसिद्ध गन्धर्व गायक तुम्बुरू तथा देवर्षि गायक नारद भी तुच्छ हैं ॥ ११ ॥

आर्या वसन्तसेना ने कहा है—कुम्भीलक जाकर आर्य चारुदत्त को मेरे आगमन

गच्छामि। (परिक्रम्य, प्रविष्टकेन दृष्ट्वा) एशे चारुदत्ते रुक्खवाडिआए चिट्ठदि। एशे वि शे दुट्ट वडुके। ता जाव उवशप्पेमि। कधं ढक्किदे दुवाले रुक्खवाडिआए। भोदु, एदश्श दुट्टवडुकश्श शण्णं देमि। (इति लोष्टगुटिका क्षिपति।) [**आज्ञप्तोऽस्मि आर्यया वसन्तसेनया—'कुम्भीलक ! गच्छ त्वम्, मम, आगमनम् आर्यचारुदत्तस्य निवेदय' इति। तद् यावत् आर्यचारुदत्तस्य गेहं गच्छामि। एष चारुदत्तो वृक्षवाटिकायां तिष्ठति एषोऽपि स दुष्टवटुकः। तद्यावदुपसर्पामि। कथमाच्छादितं द्वारं वृक्षवाटिकायाः। भवतु, एतस्य दुष्टवटुकस्य संज्ञां ददामि।**]

विदूषकः—अए ! को दाणि एसो पाआरवेट्ठिदं विअ कइत्थं मं लोट्टकहिं ताडेदि ? [**अये ! क इदानीमेष प्राकारवेष्टितमिव कपित्थं मां लोष्टकैस्ताडयति ?**]

चारुदत्तः—आराम-प्रासाद-वेदिकायां क्रीडद्भिः पारावतैः पातितं भवेत्।

कया, गच्छ=व्रज, त्वम्=भवान्। मम=वसन्तसेनायाः, आगमनम्=समागमनम्, निवेदय=कथय, तत्=तस्मात्, यावत् आर्यचारुदत्तस्य=मान्यसार्थवाहसुतस्य, गेहम्=सदनम्, गच्छामि=व्रजामि। (परिक्रम्य=कियत् पदानि गत्वा, प्रविष्टकेन= कपाटया सन्धिच्छिद्रद्वारा दृष्ट्वा=अवलोक्य) एषः=असौ, चारुदत्तः, वृक्षवाटिकायाम्=उद्याने, तिष्ठति=स्थितोऽस्ति, एषोऽपि=अयमपि, दुष्टवटुकः=मैत्रेयः, उपसर्पामि=समीपमुपगच्छामि, कथम्=इति प्रश्ने, आच्छादितम्=पिहितम्, द्वारम्= कपाटम्, दुष्टवटुकस्य=विदूषकस्य, संज्ञाम्=संकेतम्। (इति लोष्टगुटिका=लेष्टुखण्डम्, क्षिपति=पातयति।)

विदूषकः—अये=इत्याश्चर्यम्, कः=पुरुषविशेषः, इदानीम्=अधुना, प्राकारवेष्टितम्=भित्तिवेष्टितम्, कपित्थम्=दधित्थम्, माम्=विदुषकस्य, लोष्टकैः= स्वल्पमृत्तिकाखण्डैः, ताडयति=ताडनं करोति।

चारुदत्तः—आरामस्य=उद्यानस्य, प्रासादः=भवनम्, तस्य वेदिकायाम्=वद्धभूमौ, क्रीडद्भिः=खेलद्भिः, पारावतैः=कपोतैः, पातितम्=निपातितम्, लोष्ठकमिति शेषः।

की सूचना दे दो। अतः मान्य चारुदत्त के घर चलता हूँ (**घूमकर तथा किवाड़ के छेद से झांककर**) यह आर्य चारुदत्त उद्यान में बैठे हैं और साथ में दुष्ट ब्राह्मण विदूषक भी है। तो फिर उनके पास ही चलता हूँ। अरे, क्या उद्यान का द्वार बन्द हैं ? अच्छा तो इस दुष्ट ब्राह्मण को संकेत करता हूँ। (**कंकर फेंकता है।**)

विदूषक—अरे चहारदिवारी से घिरे रहने के बावजूद मेरे माथे पर कैथ की की तरह कंकर से कौन मारता है ?

चारुदत्त—उपवन के महल की छत पर बनी कपोतपालिका पर खेल रहे कबूतरों ने यह गिराया होगा ?

विदूषकः—दासीए पुत्त! दुट्ठपारावअ! चिट्ठ चिट्ठ, जाव एदिणा दण्डकट्टेण सुपक्कं विअ चूअफलं इमादो पासादादो भूमिए पाडइस्सं। (इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य धावति।) [**दास्याः पुत्र! दुष्टपारावत! तिष्ठ तिष्ठ, यावदेतेन दण्डकाष्ठेन सुपक्वमिव चूतफलम् अस्माद् प्रासादाद् भूमौ पातयिष्यामि।**]

चारुदत्तः—(यज्ञोपवीतेन आकृष्य) वयस्य! उपविश। किमनेन। तिष्ठतु दयितासहितस्तपस्वी पारावतः।

चेटः—कधं पारावदं पेक्खदि, मं ण पेक्खदि। भोदु, अवराए लोट्टगुडिआए पुणो वि ताडइस्सं। (तथा करोति।) [**कथं पारावतं प्रेक्षते, मां न प्रेक्षते। भवतु, अपरया लोष्टगुटिकया पुनरपि ताडयिष्यामि।**]

विदूषकः—(दिशोऽवलोक्य) कधं कुम्भीलओ! ता जाव उपसप्पामि। (उपसृत्य, द्वारमुद्घाट्य) अरे कुम्भीलअ! पविश। साअदं दे। [**कथं कुम्भीलक! तद् यावदुपसर्पामि। अरे कुम्भीलक! प्रविश! स्वागतं ते?**]

विदूषकः—एतेन=पुरोवर्त्तिना, दण्डकाष्ठेन=काष्ठदण्डेन, सुपक्वमिव=परिपक्वमिव, चूतफलम्=रसालफलम्, अस्मात् प्रासादात्=भवनात्, भूमौ=पृथिव्याम्, पातयामि। (इति=एवमुक्त्वा, दण्डकाष्ठमुद्यम्य=लगुडमुत्थाप्य, धावति।)

चारुदत्तः—(यज्ञोपवीतेन आकृष्य=यज्ञोपवीतं गृहीत्वाऽऽकर्षति) वयस्य=मित्र, उपविश=तिष्ठ, तिष्ठतु, दयितासहितः=प्रेमिकया युक्तः, तपस्वी=वराकः, पारावतः=कपोतः।

चेटः—पारावतम्=कपोतम्, प्रेक्षते=अवलोक्यते, माम्=चेटम्, न=नहि, प्रेक्षते। भवतु=अस्तु, अपरया=अन्यया, लोष्ठगुटिकया=मृत्तिकाखण्डेन, पुनरपि=भूयोऽपि, ताडयिष्यामि=ताडनं करिष्यामि। (तथा=पूर्वोक्त प्रकारेण, करोति=विदधति।)

विदूषकः—(दिशः=सर्वतः, अवलोक्य=दृष्ट्वा) कथमिति जिज्ञासायाम्, यावत्=इति अवधारणे, उपसर्पामि=समीपमुपगच्छामि, प्रविश=समागच्छ।

विदूषक—अरे, नीच, दुष्ट कबूतर, ठहर, डंडा मारकर तुम्हें पके आम की तरह कपोतपालिका से नीचे गिराता हूँ (**डंडा उठाता है और बढ़ता है**)।

चारुदत्त—(**जनेऊ पकड़ कर खींचता है**) मित्र, बैठो, इससे भला क्या लाभ होगा? अपनी प्रिया के साथ इस गरीब कबूतर को बैठने तो दो।

चेट—ये कबूतर को देखते हैं पर, मुझे नहीं देखते। अच्छा तो फिर इन्हें कंकर मारता हूँ। (**कंकर फेंकता है।**)

विदूषक—(**चारों ओर देखकर**) अरे, कुम्भीलक, अच्छा तो इसके पास जाता हूँ (**आगे बढ़कर और दरवाजा खोलकर**) आओ जी कुम्भीलक आओ, तुम्हारा स्वागत है।

चेटः—(प्रविश्य) अज्ज ! वन्दामि । [आर्य ! वन्दे ।]

विदूषकः—अरे ! कहिं तुमं ईदिसे दुद्दिणे अन्धआरे आअदो । [अरे ! कस्मिन् त्वमीदृशे दुर्दिने अन्धकारे आगतः ।]

चेटः—अले एशा शा । [अरे एषा सा ।]

विदूषकः—का एशा का ? [का एषा का ?]

चेटः—एशा शा । [एषा सा ।]

विदूषकः—किं दाणिं दासीए पुत्ता ! दुब्भिक्खकाले वुड्ढरङ्को विअ उद्धकं सासाअसि 'एसा सा सा' त्ति । [किमिदानीं दास्याः पुत्रः ! दुर्भिक्षकाले वृद्धरङ्क इव ऊर्ध्वकं श्वासायसे 'एषा सा सा' इति ।]

चेटः—अले तुमं पि दाणिं इन्द्र-मह-कामुको विअ सुट्ठु किं काकाअसि का का' त्ति ? [अरे ! त्वमपीदानीमिन्द्रमहकामुक इव सुष्ठु किं काकायसे 'का का' इति ?]

विदूषकः—ता कहेहि । [तद् कथय ।]

चेटः—आर्य=मान्य, वन्दे=त्वामभिवन्दे ।

विदूषकः—कस्मिन्=हेतौ, दुर्दिने=असमये, अन्धकारे=तमसावृते, आगतः=समागतः ।

चेटः—एषा=इयम्, सा=पूर्वोक्ता ।

विदूषकः—का=नारी विशेषा, सा=अज्ञाता ?

चेटः—एषा=इयम्, सेति ।

विदूषकः—किम्=कथम्, इदानीम्=अधुना, दुर्भिक्षकाले=अकालसमये, वृद्धरङ्क इव=दरिद्रबृद्धजन इव, ऊर्ध्वकम् श्वासायसे=ऊर्ध्वश्वासमुच्छवसिषि ।

चेटः—त्वमपि=भवानपि, इदानीम्=अधुना, इन्द्रामखकामुक इव=देवराजयज्ञस्येच्छुकः काक इव । अर्थात् इन्द्रपूजायां काकेभ्यः बलिः समर्प्यते, अतः काकाः इन्द्रपूजामिच्छन्ति । निष्कारणमेव का-कायसे=का-का-शब्दं करोसि ।

विदूषकः—तत्=तस्मात्, कथय=आगमनस्य कारणं वद ।

चेट—(भीतर आकर) आर्य, प्रणाम करता हूँ ।

विदूषक—अरे, अन्धकाराच्छन्न इस दुर्दिन में तुम्हारा आना कैसे हुआ ?

चेट—अरे, वह यह है ।

विदूषक—कौन यह कौन है ?

चेट—अरे, वह यह है ।

विदूषक—दासी के बच्चे, अकाल के समय भिखारी बूढ़े की तरह ऊपर की ओर लम्बी साँस खींचकर 'सा सा' क्यों कर रहे हो ?"

चेट—अरे, तुम भी तो इस समय इन्द्रबलि के लोभी कौए की तरह 'का का' कर रहे हो ।

विदूषक—तो फिर कहो ।

चेटः—(स्वगतम्) भोदु, एव्वं भणिश्शं। (प्रकाशम्) अले ! पण्हं दे दइश्शं। [भवतु, एवं भणिष्यामि। अरे ! प्रश्नं ते दास्यामि।]

विदूषकः—अहं दे मुण्डे गोड्डं दइस्सं। [अहं ते मुण्डे पादं दास्यामि।]

चेटः—अले, जाणाहि दाव, तेण हि कस्सिं काले चूआ मोलेन्ति। [अरे। जानीहि तावत्, तेन हि कस्मिन् काले चूता मुकुलयन्ति ?]

विदूषकः—अरे दासीए पुत्ता ! गिम्हे। [अरे ! दास्याः पुत्र ! ग्रीष्मे।]

चेटः—(सहासम्) अले ! णहि णहि। [अरे ! नहि नहि।]

विदूषकः—(स्वगतम्) कि दाणिं एत्थ कहिस्सं ? (विचिन्त्य) भोदु, चारुदत्तं गदुअ पुच्छिस्सं। (प्रकाशम्) अरे ! मुहुत्तअं चिट्ठ। (चारुदत्तमुपसृत्य) भो वअस्स ! पुच्छिस्सं दाव, कस्सिं काले चुआ मोलेन्ति ? [किमिदानीमत्र कथयिष्यामि ? भवतु चारुदत्तं गत्वा प्रक्ष्यामि। अरे ! मुहूर्तकं तिष्ठ। भो वयस्य ! प्रक्ष्यामि तावत् कस्मिन् काले चूता मुकुलयन्ति ?]

चेटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) भवतु=अस्तु, एवम्=इत्थम्, भणिष्यामि=कथयिष्यामि। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) प्रश्नम्=पृच्छा, ते दास्यामि।

विदूषकः—अहम्=मैत्रेयः, ते=तव, मुण्डे=शिरसि, पादम्=चरणाघातम्, दास्यामि।

चेटः—जानीहि=ज्ञातोऽसि, कस्मिन् काले=कदा, चूताः=रसालाः, मुकुलयन्ति=पुष्पिताः भवन्ति।

विदूषकः—अरे दास्याः पुत्र=रे अधमसुत, ग्रीष्मे=ग्रीष्मकाले, चूताः मुकुलयन्ति।

चेटः—(सहासम्=उपहासपूर्वकम्) अरे, नहि नहि=ग्रीष्मकाले नहि।

विदूषकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अत्र=अस्मिन् प्रश्ने, किमुत्तरं दास्यामि, (विचिन्त्य=चिन्तयित्वा) भवतु=अस्तु, चारुदत्तम्=सार्थवाहम्, गत्वा=उपगम्य, प्रक्ष्यामि। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्।) मुहूर्तकम्=क्षणम्, तिष्ठ। (चारुदत्तम् उपसृत्य=समीपं गत्वा) तथैव पृच्छति।

चेट—(**मन ही मन**) तो फिर इस तरह कहूँगा। (**प्रकट**) अरे तुमसे एक सवाल पूछता हूँ।

विदूषक—मैं तुम्हारे माथे पर पैर रक्खूंगा।

चेट—अच्छा तो बतलाओ तो आम कब बौराते हैं ?

विदूषक—रे नीच, गर्मी में।

चेट—(**उपहास करते हुए**) ऐसा नहीं हो सकता ?

विदूषक—(**मन ही मन**) तो क्या उत्तर होगा (**सोचकर**) अच्छा तो चल कर चारुदत्त से ही पूछता हूँ। (**प्रकट**) क्षणभर रुको (**चारुदत्त के पास जाकर**) मित्र, आम कब बौराते हैं ?

चारुदत्तः—मूर्ख ! वसन्ते ।

विदूषकः—(चेटमुपगम्य) मुक्ख ! वसन्ते । [**मूर्ख ! वसन्ते ।**]

चेटः—दुदिअं दे पण्हं दइश्शं । शुशमिद्धाणं गामाणं का लक्खअं कलेदि ? [**द्वितीयं ते प्रश्नं दास्यामि । सुसमृद्धानां ग्रामाणां का रक्षां करोति ?**]

विदूषकः—अरे, रच्छा [**अरे ! रथ्या ।**]

चेटः—(सहासम्) अले ! णहि णहि । [**अरे ! नहि नहि ।**]

विदूषकः—भोदु, संसए पडिदम्हि । (विचिन्त्य) भोदु, चारुदत्तं पुणो वि पुच्छिस्सं । (पुनर्निवृत्य चारुदत्तं तथैवोदाहरति ।) [**भवतु, संशये पतितोऽस्मि । भवतु, चारुदत्तं पुनरपि प्रक्ष्यामि ।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! सेना ।

विदूषकः—(चेटमुपगम्य) अरे ! दासीए पुत्ता ! । सेणा । [**अरे ! दास्याः पुत्र ! सेना ।**]

चारुदत्तः—मूर्ख=अज्ञ, वसन्ते=वसन्तकाले ।

विदूषकः—तथैव उत्तरयति—मूर्ख ! वसन्ते मुकुलयन्ति ।

चेटः—द्वितीयम्=अपरम्, सुसमृद्धानाम्=सम्पत्तिशालिनाम्, ग्रामाणाम्=नगराणाम् ।

विदूषकः—रथ्याः=प्रतोली । 'रथ्या प्रतोली विशिखा स्यात्' इत्यमरः ।

चेटः—नहि=नोत्तरं युक्तमिति ।

विदूषकः—भवतु=अस्तु, संशये=सन्देहे, पतितोऽस्मि=क्षिप्तोऽस्मि । (विचिन्त्य=विचार्य, भवतु, चारुदत्तं पुनरपि=भूयोऽपि, प्रक्ष्यामि=प्रच्छाकरिष्यामि । (पुनर्निवर्त्य=पुनः चारुदत्तं गत्वा, तथैव=तत्प्रश्नानुसारेणैव, उदाहरति=कथयति ।)

चारुदत्तः—वयस्य=मित्र ! सेना=सेना, तत्र रक्षा करोतीति ।

विदूषकः—अरे, दास्याः पुत्र=दासेय ! सेना ।

चारुदत्त—मूर्ख, वसन्त में ।

विदूषक—(**चेट के पास जाकर**) मूर्ख ! वसन्त में ।

चेट—अब रहा मेरा यह दूसरा प्रश्न—सम्पन्न नगरों की रक्षा कौन करता है ?

विदूषक—अरे गली ।

चेट— (**हँस कर**) नहीं नहीं ।

विदूषक—मैं तो संशय में पड़ गया हूँ (**कुछ सोचकर**) अच्छा तो फिर चारुदत्त से ही पूछता हूँ । (**पुनः चारुदत्त के पास आकर पूछता है ।**)

चारुदत्त—मित्र, सेना ।

विदूषक—(**चेट के पास पहुँच कर**) अरे दासी पुत्र, सेना ।

चेटः—अले ! दुवे वि एक्कश्शिं कदुअ शिग्घं भणाहि । [**अरे द्वे अपि एकस्मिन् कृत्वा शीघ्रं भण ।**]

विदूषकः—सेणावसन्ते । [**सेनावसन्ते ।**]

चेटः—णं पलिवत्तिअ भणाहि । [**ननु परिवर्त्त्य भण ।**]

विदूषकः—(कायेन परिवर्त्य) सेणावसन्ते । [**सेनावसन्ते ।**]

चेटः—अले मुक्ख वडुका ! पदाइं पलिवत्तावेहि । [**अरे मूर्ख बटुक ! पदे परिवर्त्तय ।**]

विदूषकः—(पादौ परिवर्त्य) सेणावसन्ते [**सेनावसन्ते ।**]

चेटः—अले मुक्ख ! अक्खलपदाइं पलिवत्तावेहि । [**अरे मूर्ख ! अक्षरपदे परिवर्त्तय ।**]

विदूषकः—(विचिन्त्य) वसन्तसेणा । [**वसन्तसेना ।**]

चेटः—एशा शा आअदा । [**एषा सा आगता ।**]

चेटः—अरे, द्वे अपि=उभावपि, उत्तरौ, एकस्मिन् कृत्वा=एकपदत्वेन, शीघ्रं=त्वरितं, भण=कथय ।

विदूषकः—सेनावसन्ते=क्रमपरिवर्तनं कृत्वा वदति ।

चेटः—ननु=संशोधने प्रयुक्तमव्ययः, परिवर्त्य=परिवर्तनं कृत्वा, भण=वद ।

विदूषकः—(कायेन=शरीरेण, परिवृत्य=प्रत्यावर्त्तनं कृत्वा, वदति) सेनावसन्ते इति ।

चेटः—अरे मूर्ख=रे अज्ञ, पदे=सुबन्तरूपे, परिवर्त्तय=परिवर्त्तनं कुरु ।

विदूषकः—(पादौ=ननु विभक्त्यन्ते शब्दस्थाने हैमबन्धनमनुसृत्य 'पदौ' अवयवार्थको मत्वा चरणौ परिवर्त्य पुनः 'सेनावसन्ते' इत्येव वदति ।)

चेटः—अरे मूर्ख=रे अज्ञ, अक्षरपदे=विभक्त्यन्तशब्दे परिवर्त्तनं विधेहि ।

विदूषकः—(विचिन्त्य=विचार्य) 'वसन्तसेना' इति वदति ।

चेटः—एषा=एतदाख्या, सा=वसन्तसेना, आगता=समागता ।

चेट—तो दोनों उत्तरों को मिलाकर जल्दी से एक साथ उच्चारण करो ।

विदूषक—सेनावसन्त ।

चेट—अरे, उलट कर कहो ।

विदूषक—(**देह घुमाकर**) सेनावसन्त ।

चेट—रे मूर्ख ब्राह्मण, पदपरिवर्त्तन कर बोलो ।

विदूषक—(**पैरों को बदलकर**) 'सेनावसन्त ।'

चेट—रे मूर्ख, अक्षरवाले पद में उलट फेरकर बोलो, पैरों में नहीं ।

विदूषक—(**कुछ सोचकर**) 'वसन्तसेना' ।

चेट—हाँ, वही वसन्तसेना आई है ।

विदूषकः—ता जाव चारुदत्तस्स णिवेदेमि। (उपसृत्य) भो चारुदत्त ! धणिओ दे आअदो। [**तद् यावत् चारुदत्तस्य निवेदयामि। भो चारुदत्त ! धनिकस्ते आगतः।**]

चारुदत्तः—कुतोऽस्मत्कुले धनिकः ?

विदूषकः—जइ कुले णत्थि, ता दुवारे अत्थि। एसा वसन्तसेणा आअदा। [**यदि कुले नास्ति, तद्द्वारे अस्ति। एषा वसन्तसेना आगता।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! किं मां प्रतारयसि ?

विदूषकः—जइ मे वअणे ण पत्तिआअसि, ता एदं कुम्भीलअं पुच्छ। अरे दासीए पुत्ता ! कुम्भीलअ ! उवसप्प। [**यदि मे वचने न प्रत्ययसे, तदिमं कुम्भीलकं पृच्छ। अरे दास्याः पुत्र ! कुम्भीलक ! उपसर्प।**]

चेटः—(उपसृत्य) अज्ज ! वन्दामि। [**आर्य ! वन्दे।**]

चारुदत्तः—भद्र ! स्वागतम्। कथय, सत्यं प्राप्ता वसन्तसेना ?

विदूषकः—तत्=तर्हि, यावदित्यवधारणे, निवेदयामि=कथयामि, भो चारुदत्त =हे मित्र, ते=तव, धनिकः=महाजनः, आगतः=संम्प्राप्तः।

चारुदत्तः—कुतः=कस्मात्, अस्मत्=मदीये, कुले=वंशे, धनिकः=उत्तमर्णः, न कोऽप्यस्तीति भावः।

विदूषकः—यदि=चेत्, कुले=वंशे, नास्ति=न वर्त्तते, तत्=तर्हि, द्वारे= प्रवेशस्थाने। वसन्तसेना समागता।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, किम्=कथम्, माम्=चारुदत्तम्, प्रताडयसि= वञ्चनां करोषि।

विदूषकः—यदि=चेत्, मे=मम, वचने=कथने, न=नहि, प्रत्ययसे=विश्वसीहि, तत्=तर्हि, एतत्=उपस्थितः। दास्याः पुत्र=अधमसुत, उपसर्प=अग्रे आगच्छ।

चेटः—(उपसृत्य=समीपमागत्य) आर्य=मान्यवर, वन्दे=त्वामभिवन्दे।

चारुदत्तः—भद्र=हे मान्य, स्वागतम्=तव सत्कारमस्ति, कथय=वद।

विदूषक—तो फिर, मित्र चारुदत्त से कहता हूँ। (**पास जाकर**) मित्र, आपके महाजन आये हैं।

चारुदत्त—हमारे खानदान में महाजन कहाँ से आया ?

विदूषक—अरे, खानदान में नहीं है तो मत रहें, दरवाजे पर तो हैं ही। वसन्तसेना आई है।

चारुदत्त—मित्र, क्यों मुझे ठगते हो ?

विदूषक—यदि मेरी बात का विश्वास नहीं है तो इस कुम्भीलक से ही पूछ लो न। अरे ओ, दासी का बेटा, जरा इधर तो आओ।

चेट—(**पास जाकर**) आर्य, प्रणाम करता हूँ।

चारुदत्त—भद्र, स्वागत है, कहो क्या सचमुच वसन्तसेना आई है ?

चेटः—एशा शा आअदा वसन्तसेणा। [**एषा सा आगता वसन्तसेना।**]

चारुदत्तः—(सहर्षम्) भद्र ! न कदाचित् प्रियवचनं निष्फलीकृतं मया। तद्गृह्यतां पारितोषिकम्। (इत्युत्तरीयं प्रयच्छति।)

चेटः—(गृहीत्वा प्रणम्य सपरितोषम्) जाव अज्जआए णिवेदेमि। [**यावदार्यायै निवेदयामि।**] (इति निष्क्रान्तः।)

विदूषकः—भो ! अवि जाणासि; किं णिमित्तं ईदिसे दुद्दिणे आअदेत्ति ?। [**भोः ! अपि जानासि; किं निमित्तमीदृशे दुर्दिने आगतेति ?**]

चारुदत्तः—वयस्य ! न सम्यगवधारयामि।

विदूषकः—मए जाणिदं ! अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्लं सुवण्णभण्डअं त्ति ण परितुट्ठा अवरं मग्गिदुं आअदा [**मया ज्ञातम्। अल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्यं सुवर्णभाण्डकम् इति न परितुष्टा, अपरं मार्गयितुमागता।**]

चेटः—एषा=इयम्, सा=वसन्तसेना, आगता=समागतेति।

चारुदत्तः—(सहर्षम्=सप्रसन्नम्) कदाचित्=कथमपि, प्रियवचनम्=आप्त कथनम्, मया=चारुदत्तेन, निष्फली=परिणामशून्यम्, कृतम्=विहितम्।

चेटः—(गृहीत्वा=उपहारग्रहणङ्कृत्वा) सपरितोषम्=सन्तुष्टतया, प्रणम्य=प्रणामङ्कृत्वा) यावदिति अवधारणे, आर्यायै=वसन्तसेनायै, निवेदयामि=कथयामि। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः।)

विदूषकः—भोः=इतिसम्बोधने, जानासि=अवगतोऽसि, किं निमित्तम्=कस्मिन् हेतोः, इदृशे=एवंविध, दुर्दिने=असमये, आगता=समागतेति।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, न=नहि, सम्यक्=सुष्ठुतया, अवधारयामि=जानामि।

विदूषकः—मया=मैत्रेयेण, ज्ञातम्=बुद्धम्, अल्पमूल्या=स्तोकार्घा, रत्नावली=रत्नहारः, बहुमूल्यम्=महार्घ्यम्, सुवर्णभाण्डम्=कनकाभरणम्, इति=तेन हेतुना, न=नहि, परितुष्टा=सन्तुष्टिगता, अपरम्=अन्यदपि, मार्गयितुम्=अन्वेष्टुम्, आगतेति।

चेट—हाँ जी, वसन्तसेना ही तो आई है।

चारुदत्त—(**खुशी के साथ**) मैंने किसी तरह की खुशखबरी सुनने के बाद किसी को भी यों ही लौटने नहीं दिया है। इसलिए इनाम लेकर ही जाओ। (**चादर देता है।**)

चेट—(**लेकर प्रणाम कर, सन्तोष के साथ**) तब तक चलकर आर्या वसन्तसेना से कहता हूँ। (**चला जाता है।**)

विदूषक—मित्र, जानते हो, ऐसे दुर्दिन में यह क्यों आई है।

चारुदत्त—नहीं तो, मेरी समझ में बात ठीक से जम नहीं पाती।

विदूषक—मैं जानता हूँ। रत्नावली कुछ कम कीमत की है और इसका स्वर्णभूषण का डिब्बा अधिक कीमती है, ऐसा सोचकर, असन्तोष की स्थिति में कुछ और माँगने आई है।

चारुदत्तः—(स्वगतम्) परितुष्टा यास्यति ।

(ततः प्रविशति उज्ज्वलाभिसारिकावेशेन वसन्तसेना,
सोत्कण्ठा छत्रधारिणी विटश्च ।)

विटः—(वसन्तसेनामुद्दिश्य)

अपद्मा श्रीरेषा प्रहरणमनङ्गस्य ललितं
कुलस्त्रीणां शोको मदनवरवृक्षस्य कुसुमम् ।
सलीलं गच्छन्ती रतिसमयलज्जाप्रणयिनी
रतिक्षेत्रे रङ्गे प्रियपथिकसार्थैरनुगता ।। १२ ।।

चारुदत्तः—परितुष्टा=सन्तुष्टा, यास्यति=गृहं गमिष्यतीति ।

(ततः=तदनन्तरम्, उज्ज्वलाभिसारिकावेशेन—उज्जलः=धवलः अभिसारिकायाः=अभिसरणोन्मुखाया, वेशः=परिधानं तेन, उक्तञ्च—

"अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा ।
स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ।।"

अन्यदपि— विचित्रोज्ज्वलवेशात्तु रणन्नूपुरकङ्कणा ।
प्रमोदस्मेरवदना स्याद्वेश्याऽभिसरेद्यदि ।।

सोत्कण्ठा=प्रियदर्शनोत्सुका, वसन्तसेना=गणिका, प्रविशति=रङ्गमञ्चे समुपस्थिता भवति, च=पुनः, छत्रधारिणी=वृष्टिजलवारणार्थ छत्रं, धारयतीति सा, विटश्च)

विटः—(वसन्तसेनाम्=गणिकाम्, उद्दिश्य=उपलक्ष्य)—

अन्वयः—रतिसमयलज्जाप्रणयिनी, प्रियपथिकसार्थैः, अनुगताः रङ्गे (इव) रतिक्षेत्रे, सलीलम्, गच्छन्ती, एषा, अपद्मा, श्रीः, अनङ्गस्य, ललितम्, प्रहरणम्, कुलस्त्रीणाम्, शोकः, मदनवरवृक्षस्य, कुसुमम्, अस्ति ।। १२ ।।

अपद्मेति । रतिसमये=रमणकाले, अभिसरणसमये वा, लज्जायाम्=व्रीडायाम्, प्रणयिनी=प्रीतियुक्ता, अर्थात् कुलललना इत सलज्जेति भावः, प्रियैः=मनोहरैः, पथिकसार्थैः=पान्थसमूहैः, अनुगताः=अनुसृताः, अतिरमणीयतया पान्था अपि अस्यामासक्ताः भवन्तीति भावः । रङ्गे=नाट्यशालायाम्, इव रतिक्षेत्रे=सुरतोचितस्थाने, सलीलम्=सविलासम्, गच्छन्ती=व्रजन्ती, एषा=वसन्तसेना, अपद्मा=कमलोत्पत्ति-

---

चारुदत्त—(मन ही मन) अब यहाँ से सन्तुष्ट होकर जायेगी ।

(इसके बाद शुभ्र अभिसारिका के रूप में उत्कण्ठित वसन्तसेना, छत्रधारिणी दासी एवं विट का प्रवेश ।)

विट—(वसन्तसेना को उद्देश्य करके)

सुरत के समय सलज्जा, पथिकों के समूह से पीछा की गई, राग (रङ्ग) बढ़ाने वाली, संकेतित स्थान के लिए सविलास आगे बढ़ने वाली, यह वसन्तसेना, बिना कमल के ही लक्ष्मी है, कामदेव का सुकुमार आयुध है, कुलीन ललनाओ का शोक है, कामरूपी सुन्दर वृक्ष का मनोरम फूल है ।। १२ ।।

वसन्तसेने ! पश्य, पश्य—

गर्जन्ति शैलशिखरेषु विलम्बिबिम्बा
मेघा वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः ।
येषां रवेण सहसोत्पतितैर्मयूरैः
खं वीज्यते मणिमयैरिव तालवृन्तैः ॥ १३ ॥

अपि च—

पङ्कक्लिन्नमुखाः पिबन्ति सलिलं धाराहता दर्दुराः
कण्ठं मुञ्चति बर्हिणः समदनो नीपः प्रदीपायते ।
संन्यासः कुलदूषणैरिव जनैर्मेघैर्वृतश्चन्द्रमा
विद्युन्नीचकुलोद्गतेव युवतिर्नैकत्र सन्तिष्ठते ॥ १४ ॥

रहिता, श्रीः=लक्ष्मीः, अस्ति, अनङ्गस्य=मदनस्य, ललितम्=सुन्दरम्, प्रहरणम् आयुधम्, कुलस्त्रीणाम्=कुलाङ्गनानाम्, शोकः=सन्तापः, सौन्दर्यातिशयेन कुलपुत्रान् अपीयं वसन्तसेना मोहयति, अतस्तेषां वध्वः शोकाकुलाः भवन्तीति भावः । मदनः= मन्मथः, एव वरः=श्रेष्ठः, वृक्षः=पादपस्तस्य कुसुमम्=प्रसूनमस्तीति शेषः । विरोधाभासोऽलङ्कारः शिखरिणी वृत्तञ्चेति ॥ १२ ॥

वसन्तसेने=गणिके, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—वियुक्तवनिताहृदयानुकाराः, शैलशिखरेषु, विलम्बिविम्बाः, मेघाः, गर्जन्ति, येषाम्, रवेण, सहसा, उत्पतितैः, मयूरैः, मणिमयैः, तालवृन्तैः, खम्, वीज्यते, इव ॥ १३ ॥

गर्जन्तीति । वियुक्ताः=विरहिण्यः, या वनिताः=ललनाः, तासाम् हृदयम्= चेतः, अनुकुर्वन्ति=अनुसरन्ति, इति तथाभूताः, मलिनाः इति भावः । शैलानां=पर्वतानाम्, शिखरेषु=शृंगेषु, विलम्बि=लम्बमानम्, बिम्बम्=मण्डलं येषां तैः, मेघाः= जलदाः, गर्जन्ति=नदन्ति, येषाम्=जलदानाम्, रवेण=घोषेण, सहसा=झटिति, उत्पतितैः=उड्डीनैः, मयूरैः=बर्हिभिः, मणिमयैः=मणिखचितैः, तालवृन्तैः= व्यजनैः, खम्=गगनम्, वीज्यत इति । उपमालङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तञ्च ॥ १३ ॥

अन्वयः—धाराहताः, पङ्कक्लिन्नमुखाः, दर्दुराः, सलिलम्, पिबन्ति, समदनः, बर्हिणः, कण्ठम्, मुञ्चति, नीपः, प्रदीपायते, कुलदूषणैः, जनैः, संन्यासः, इव, मेघैः, चन्द्रमा, वृत्तः, नीचकुलोद्गता, युवतिः, इव, विद्युत्, एकत्र, न सन्तिष्ठते ॥ १४ ॥

वसन्तसेने देखो-देखो—

वियोगिनी कामिनियों के हृदय की तरह मलिन, पहाड़ की चोटियों पर लटके हुए मेघमण्डल गरज रहे हैं, जिसकी आवाज से घबड़ा कर उड़ते हुए मयूर अपने मणिमय पंखों से लगता है जैसे आकाश को हवा कर रहे हैं ॥ १३ ॥

और भी—वर्षा की जलधारा से ताडित एवं कीचड़ से लतपथ मुँहवाले मेढक पानी पी रहे हैं । कामातुर मयूर अपनी मीठी आवाज में बोल रहे हैं । अपने सफेद

बसन्तसेना–भाव ! सुट्ठु दे भणिदं । [भाव ! सुष्ठु ते भणितम् ।] एषा हि–

मूढे ! निरन्तरपयोधरया मयैव
कान्तः सहाभिरमते यदि किं तवात्र ।
मां गर्जितैरपि मुहुर्विनिवारयन्ती
मार्गं रुणद्धि कुपितेव निशा सपत्नी ॥ १५ ॥

पङ्केति । धाराभिः=वृष्टिसम्पातैः, हताः=ताडिताः, पङ्केन=कर्दमेन, क्लिन्नानि =लिप्तानि, मुखानि=आननानि येषां ते, दुर्दुराः=मण्डूकाः, सलिलम्=जलम्, पिबन्ति=आचामन्ति, मदनेन सहितं समदनम्=सकामम्, बर्हिणः=मयूरः, 'मयूरो बर्हिणः बर्ही नीलकण्ठो भुजङ्गभुक्, शिखावलः शिखी, केकी मेघानादानुलाप्स्यपि' इत्यमरः । कण्ठम्=केकारवम्, मुञ्चति=त्यजति, नीपः=कदम्बः, प्रदीपायते=पुष्पैः प्रदीपवत् आचरति, कुलम्=वंशम्, दूषयन्तीति कुलदूषणास्तैः कुलदूषणैः=कुलकलङ्ककरैः, सन्यासः=यतिधर्मः, इव=यथा, मेघैः=वारिवाहैः, चन्द्रमाः=सुधाकरः, वृत्तः=आच्छादितः, अन्यत्र, महापानकादिदोषाद् बहिष्कृतोऽपि सन्यासमाश्रित्य तमपि दूषयतीति भावः । नीचकुलोद्गताः=अधमवंशोत्पन्ना, युवतिः=तरुणिः, इव=यथा, विद्युत्=चपला, एकत्र=एकस्मिन् स्थाने, न सन्तिष्ठते=स्थिरतां न गच्छति । श्रौती उपमालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ १४ ॥

वसन्तसेना—भाव=विद्वन्, सुष्ठु=साधु, ते=त्वया, भणितम्=कथितम् । एषा=इयम्, हि=यतः—

अन्वयः—कुपिता, सपत्नी, इव, निशा, हे मूढे, निरन्तरपयोधरया, मया, सह, एव, कान्तः, यदि, अभिरमते, (तदा) अत्र, तव किम्, (इदृशैः) गर्जितैः, अपि, मुहुः, विनिवारयन्ती, (मम) मार्गम्, रुणद्धि ॥ १५ ॥

मूढ इति । कुपिता=क्रुद्धा, सपत्नी—समानः पतिर्यस्या सा सपत्नी=समानपतिका स्त्री इव=यथा, निशा=रात्रिः, मूढे=मूर्खे, वसन्तसेने अर्थात् मया सह रमणरतमपि कान्तं यासि अतस्त्वं मूढाऽसि । निरन्तराः=एकीभूताः, अन्यत्र पीनत्वात् संश्लिष्टौ, पयोधराः=जलधराः, अन्यत्र स्तनौ च यस्यास्तया, मया=निशया एव सह=साकम्, कान्तः=प्रियः, यदि=चेत्, अभिरमते=क्रीडति, तदा=तर्हि, अत्र=अस्मिन् विषये, तव=वसन्तसेनायाः, किम्=का हानिः ? एतादृशैः गर्जितैः=नर्दितैः, अपि मुहुः=

फूलों के कारण खिले कदम्ब के पेड़ जलते दीप की तरह लग रहे हैं । नीच ख़ानदान में जन्म लेने वाली औरत की तरह बिजली कहीं एक जगह स्थिर नहीं रह पाती है । कुल को कलंकित करने वाले संन्यासी की तरह चन्द्रमा मेघों से घिर रहा है ॥१४॥

बसन्तसेना—विद्वन्, आपने ठीक ही कहा है । यह तो—

सौतिन की तरह ये कालीरात बार-बार गरज कर हमारी राह रोकती है । यह कहती है—री मूर्खे, निबिड़ मेघों से घिरी हुई या सघन कुचों वाली मेरी तरह प्रियतम चारुदत्त से रमण करती हो तो इसमें तुम्हें लाभ क्या होगा ? ॥ १५ ॥

विटः—भवतु एवं तावत्, उपालभ्यतां तावदियम् ।

वसन्तसेना—भाव ! किमनया स्त्री-स्वभाव-दुर्विदग्धया उपालब्धया । पश्यतु भावः—

मेघा वर्षन्तु गर्जन्तु मुचन्त्वशनिमेव वा ।
गणयन्ति न शीतोष्णं रमणाभिमुखाः स्त्रियः ॥ १६ ॥

विटः—वसन्तसेने ! पश्य पश्य ! अयमपरः—

पवन-चपल-वेगः स्थूलधारा-शरौघः
स्तनित-पटह-नादः स्पष्टविद्युत्पताकः ।
हरति करसमूहं खे शशाङ्कस्य मेघो
नृप इव पुरमध्ये मन्दवीर्यस्य शत्रोः ॥ १७ ॥

पौनःपुन्यम्, विनिवारयन्ती=निषेधं कुर्वन्ती, मम मार्गम्=पन्थानम्, रुणद्धि=आवृणेति । अत्र श्लेषालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ १५ ॥

विटः—भवतु=यातु, एवम् निशाकृतमार्गावरोधः, तावदिति वाक्यालङ्कारे, इयम्=निशा, उपालभ्यताम्=सपत्नीत्वेन निन्द्यताम् ।

वसन्तसेना—भाव=हे विद्वन्, स्त्रीस्वभावेन=नारीप्रकृत्या, दुर्विदग्धया=दुराग्रहयुक्तया, उपालब्धया=कृतोपलम्भनया, अनया=निशया, किम्=न किमपीति । पश्यतु=अवलोकयतु, भावः=श्रीमन् विद्वन्वेति—

अन्वयः—मेघाः, गर्जन्तु, वर्षन्तु, वा, अनिशम्, एव, मुञ्चन्तु, रमणाभिमुखाः, स्त्रियः, शीतोष्णम्, न, गणयन्ति ॥ १६ ॥

मेघा इति । मेघाः=जलदाः, गर्जन्तु=नदन्तु, वर्षन्तु=सलिलं क्षरन्तु, वा=अथवा, अशनिम्=वज्रम्, एव मुञ्चन्तु=पातयन्तु, रमणाय=रन्तुम्, अभिमुखाः=गमनाय तत्पराः, रन्तुं यियासन्त्यः, स्त्रियः=कामिन्यः, वर्षावज्रजन्ये शीतोष्णे ज्ञेये न=नहि, गणयन्ति=मन्यन्ते । अप्रस्तुतालङ्कारः । अनुष्टुप् छन्दश्चेति ॥ १६ ॥

विटः—वसन्तसेने=गणिके, पश्य=अवलोकय, अयम्=एषः, अपरः=अन्यः—

अन्वयः—पवनचपलवेगः, स्थूलधाराशरौघः, स्तनितपटहनादः, स्पष्टविद्युत्पताकः, मेघः, पुरमध्ये, मन्दवीर्यस्य, शत्रोः, नृप इव खे, शशाङ्कस्य, करसमूहं, हरति ॥ १७ ॥

पवनेति । पवनेन=वायुना, चपलः=चंचलः, वेगः=गतिर्यस्य सः, अन्यत्र वायु-

---

विट—तो ठीक है, तुम इस रात को बैठकर कोसो ।

वसन्तसेना—महाशय, नारी स्वभाव से ईर्ष्यालु होती है, तो फिर इस रात को कोसने से भला क्या लाभ ? देखिए—

मेघ चाहे बरसे या वज्र गिराये, रमणोत्सुक रमणी प्रियतम के पास जाने में शीत या ताप की चिन्ता नहीं करती ॥ १६ ॥

विट—देखो, वसन्तसेने, यह दूसरा देखो—

(यहाँ मेघ का वर्णन एक विजेता राजा की तरह किया गया है) पानी की प्रबल धारायें ही जिनके बाण समूह हैं, जिनका गरजना ही नगाड़े की आवाज है,

वसन्तसेना—एव्वं णेदं। ता कधं एसो अवरो। [एवमेतत्। तत् कथमेवः अपरः—]

एतैरेव यदा गजेन्द्रमलिनैराध्मातलम्बोदरै-
र्गर्जद्भिः सतडिद्बलाकशबलैर्मेघैः सशल्यं मनः।
तत् किं प्रोषित-भर्तृ-वध्य-पटहो हा हा हताशो बकः
प्रावृट् प्रावृडिति ब्रवीति शठधीः क्षारं क्षते प्रक्षिपन्॥ १८॥

वेग इवाप्रतिहतगतिर्यस्य तादृशः, स्थूलाः=पुष्टाः, धारा=आसारः एव शरौघः=वाणसमूहः यस्य तादृशस्य, स्तनितम्=गर्जितम्, पटहस्य=ढक्कायाः, नादः=ध्वनिरिवान्यत्र स्तनितमिव पटहनादो यस्य सः, तथा स्पष्टाः=सुव्यक्ताः, विद्युत्=चपला एव पताका=ध्वजः यस्य सः, अन्यत्र स्पष्टा विद्युदिव पताका यस्य तादृशः, मेघः=वारिवाहः, मन्दम्=क्षीणम्, वीर्यम्=पराक्रमः यस्य तस्य, शक्तिहीन इत्यर्थः, शत्रोः=वैरिणः, पुरमध्ये=नगरमध्ये, नृपः=विजयी राजा इव, खे=गगने, शशाङ्कस्य=चन्द्रस्य, करसमूहम्=किरणजालम्, अन्यत्र नृपग्राह्यं धनम्, हरति=अपहरति, अन्यत्र बलात् गृह्णाति। विजेता नृपतिः यथा वैरिणः राजधानीमध्ये राजदेयं धनं हरति तथैवायं मेघोऽपि गगने चन्द्रस्य करसमूहं हरतीति भावः। अत्र पूर्णोपमालङ्कारः। मालिनीवृत्तम्॥ १७॥

वसन्तसेना—एतत्=पुरोवर्त्तिनः, एवम्=इत्थम् चेत्, तत्=तर्हि, अपरः=अन्यः, कथम्?

अन्वयः—गजेन्द्रमलिनैः, आध्मातलम्वोदरैः, गर्जद्भिः, सतडिद्बलाकशबलैः, एतैः, एव, मेघैः, मनः, शल्यम्, तत्, प्रोषितभर्तृवध्यपटहः, हताशः, शठधीः, वकः, क्षते क्षारम्, प्रक्षिपन्, इव, हा-हा किम् प्रावृट् प्रावृडिति ब्रवीति?॥ १८॥

एतैरिति। यदा=यस्मिन् काले, गजेन्द्रमलिनैः=गजराजवत्कृष्णवर्णैः, आध्मातानि=उच्छूनानि, अत एव लम्वानि अधोलम्वमानानि उदराणि=जठराणि येषाम् तैः तडिद्भिः=विद्युद्भिः वलाकाभिः=बकपङ्क्तिभिः सहिता सतडिद्वलाकाः, अत एव

चंचल चपला ही जिनकी पताका है, ऐसा मेघ आकाश में चन्द्रकिरणों को उसी प्रकार छीन रहा है जैसे एक विजेता राजा हवा की भाँति वेग वाला, सशक्त बाणसमूह वाला, गड़गड़ाते नगाड़े वाला, बिजली की तरह चमकती पताका वाला अपने पराजित शत्रुओं की राजधानी में घुसकर उनसे कर वसूल करता है॥ १७॥

वसन्तसेना—यह तो ठीक है, तब दूसरे—

मत्त गजराज की तरह नीले वर्ण वाले, जल से भरे रहने के कारण विराट पेट वाले, बिजली और बकपंक्तियों के संयोग से चित्रित एवं गरजते हुए मेघों से अब विरहियों के हृदय में काँटे चुभ रहे हैं। हाय, परदेश में रहने वाले विरही पतियों के बधकालीन नगाड़े की आवाज की तरह ये मूर्ख बगुले घाव पर नमक छिड़कने की तरह 'वर्षा वर्षा' क्यों रट रहे हैं?॥ १८॥

विटः—वसन्तसेने ! एवमेतत् । इदमपरं पश्य—

बलाका-पाण्डुरोष्णीषं विद्युदुत्क्षिप्तचामरम् ।
मत्त-वारण-सारूप्यं कर्त्तुकाममिवाम्बरम् ।। १९ ।।

वसन्तसेना—भाव ! पेक्ख पेक्ख ! [भाव ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व ।]

एतैरार्द्र-तमालपत्र-मलिनैरापीतसूर्यं नभो
वल्मीकाः शरताडिता इव गजाः सीदन्ति धाराहताः ।
विद्युत्काञ्चनदीपिकेव रचिता प्रासादसञ्चारिणी
ज्योत्स्ना दुर्बलभर्तृकेव वनिता प्रोत्सार्य मेघैर्हृता ।। २० ।।

शबलाः=विचित्राः, तैः गर्जद्भिः=नदद्भिः, एतैः=गगने वर्त्तमानैः, मेघैः=वारिवाहैः, मनः=चेतः, सशल्यम्=विरहवेदनोदयात् शल्यविद्धम्, इव । तत्=तस्मात् कारणात्, प्रोषिताः=विदेशं गताः, भर्त्तारः=पतयः यासां ताः वध्यपटहः=बधकाले वाद्यमानः दुन्दुभिः, हताशा=आशाविहीना, शठधीः=वञ्चकबुद्धिर्यस्य सः, बकः, क्षते=व्रणे, क्षारम्=लवणम्, प्रक्षिपन्=योजयन्, इव=यथा, हा हा=इति महाखेदे, किम्=कस्मात् हेतोः, प्रावृट् प्रावृड् इति, ब्रवीति=रटति ।। १८ ।।

विटः—वसन्तसेने=गणिके, इदमपरम्=अन्यत्, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—बलाकापाण्डुरोष्णीषम्, विद्युदुत्क्षिप्तचामरम्, अम्बरम्, मत्तवारण-सारूप्यम्, कर्त्तुकामम्, इव, (प्रतिभाति) ।। १९ ।।

बलाकेति । बलाका=बकपङ्क्तिः, एव पाण्डुरम्=शुभ्रम्, उष्णीषम्=शिरोवस्त्रम् यस्य तत् पक्षान्तरे बलाकावत् श्वेतमस्तकावेष्टनम् यस्य तत्, विद्युत्=चपला एव उत्क्षिप्तम्=ऊर्ध्वं चलितम्, चामरम्=प्रकीर्णकम्, यस्य तथाभूतम्, अन्यत्र विद्युदिव-चामरं उत्क्षिप्तं यस्य तथा अम्बरम्=गगनम्, मत्तवारणस्य=मदान्धगजस्य, सारूप्यम्=सादृश्यम्, कर्त्तुकामम्=विधातुमिच्छुकमिव, प्रतिभातीति शेषः । संसृष्टिरलङ्कारः । अनुष्टुप्छन्दः ।। १९ ।।

वसन्तसेना—भाव=विद्वन्, पश्य पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—आर्द्रतमालपत्रमलिनैः, एतैः, मेघैः, आपीतसूर्यम्, नभः, धाराहताः, वल्मीकाः, शरताडिता, गजा, इव, सीदन्ति, विद्युत्, प्रासादसञ्चारिणी, काञ्चनदीपिका, इव, रचिता, ज्योत्स्ना, दुर्बलभर्तृका, इव, प्रोत्सार्य, हृता ।। २० ।।

एतैरिति । आर्द्राणि=सलिलसिक्तानि, यानि तमालस्य=तमालतरोः, पत्राणि=

विट—यह तो ठीक है । तब यह दूसरा—

बकपंक्ति रूपी श्वेत पगड़ी, पहनकर, बिजली रूपी चंचल चामर लेकर यह आकाश मंडल मतवाले गजराज की समानता करने को उत्सुक हो रहा है ।। १९ ।।

वसन्तसेना—मान्यवर देखिए—

भीगे आबनूस के पत्तों की तरह काले बादलों से सूर्यहीन आकाश ढँक रहा है, वर्षा की धारा से बाण से बिंधे हाथियों की तरह ये दीमक विनष्ट हो रहे हैं । सोने

विटः—वसन्तसेने ! पश्य पश्य—

एते हि विद्युद्गुण-बद्ध-कक्षा गजा इवान्योन्यमभिद्रवन्तः ।
शक्राज्ञया वारिधराः सधारा गां रूप्यरज्ज्वेव समुद्धरन्ति ॥ २१ ॥

अपि च । पश्य—

महावाताध्मातैर्महिष-कुल-नीलैर्जलधरै-
श्चलैर्विद्युत्पक्षैर्जलधिभिरिवान्तःप्रचलितैः ।

पर्णानि, तद्वत् मलिनाः=श्यामवर्णाः, तैः, एतैः=पुरोवर्त्तमानैः मेघैः, नभः=गगनम्, आपीतसूर्यम्—आपीत=समाछन्नः, सूर्यः=रविः, यस्मिन् तत्=तादृशम्, धाराभिः= जलसन्निपातैः, हताः=ताडिताः, वल्मीकाः=वामलूराः, शरैः=त्राणैः, ताडिताः=कृत-प्रहाराः, गजाः=कुञ्जराः, इव=यथा, सीदन्ति=कष्टं प्राप्नुवन्ति, विद्युत्=चपला, प्रासाद-सञ्चारिणी=प्रासादतले विचरणशीला, काञ्चनदीपिका=स्वर्णदीपिका, इव=यथा, रचिता=निर्मिता, दुर्वलः=क्षीणशक्तिः, भर्त्ता=पतिः यस्यास्तादृशी, वनिता= नारी इव ज्योत्स्ना=चन्द्रिका, मेघैः=वारिवाहैः, प्रोत्सार्य=हठादुत्थाप्य, हृता= अपहृता । यथा दुर्वलस्य लोकस्य सुन्दरी पत्नी लम्पटैः बलान्नीयते तथैव चन्द्रज्योत्स्ना मेघैः अपहृता भवतीति भावः । उपमालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ २० ॥

अन्वयः—विद्युद्गुणबद्धकक्षाः, अन्योऽन्यम्, अभिद्रवन्तः, गजाः, इव, सधाराः, एते, वारिधराः, शक्राज्ञया, गाम्, रूप्यरज्ज्वा, इव, समुद्धरन्ति ॥ २१ ॥

एत इति । विद्युत्=चपला एव गुणः=रज्जुः तेन बद्धाः=संयमिता, कक्षा= मध्यभागः येषाम् ते गजपक्षे—चपलेव रज्जुस्तेन बद्धाः=आवद्धाः, कक्षाः उदरभागः येषां ते, अन्योन्यम्=परस्परम्, अभिद्रवन्तः=अभिमुखीभवन्तः, गजाः=करिणः, इव, सधाराः=सलिलधारायुक्ताः एते=अवलोक्यमानाः, वारिधाराः=जलदाः, शक्रस्य इन्द्रस्य, आज्ञया=आदेशेन, गाम्=धरित्रीम्, रूप्यरज्ज्वा=रजतगुणाः, इव=यथा, समुद्धरन्ति=उत्कर्षन्ति । उपमा-उत्प्रेक्षयोः संसृष्टिः । उपजातिर्वृत्तम् ॥ २१ ॥

अपि च=अन्यच्च, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—महावाताध्मातैः, महिषकुलनीलैः, विद्युत्पक्षैः अन्तःप्रचलितैः, जलधिभिः,

---

के दीप की तरह गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में ये बिजलियाँ चमक रही हैं । बलहीन व्यक्ति की सुन्दर पत्नी को जैसे लम्पट छीन लेते हैं वैसे ही इन बादलों ने चाँद की चाँदनी को छीन लिया है ॥ २० ॥

विट—देखो, वसन्तसेने, देखो—

विजलीरूपी रस्सी से कसी कसर वाले, आपस में एक दूसरे को धक्का देते हुए हाथियों की तरह ये बादल मानो देवराज इन्द्र की आज्ञा से श्वेत जलधारा रूपी चाँदी की रस्सियों से बाँध कर धरती को ऊपर की ओर खींच रहे हैं ॥ २१ ॥

और भी देखो—विस्फूर्जित सागर की तरह, झंझावात के आघात से चंचल,

इयं गन्धोद्दामा नव-हरित-शष्पाङ्कुरवती
धरा धारापातैर्मणिमयशरैर्भिद्यत इव ॥ २२ ॥

वसन्तसेना—भाव ! एसो अवरो । [भाव ! एष अपरः ।]—

एह्येहीति शिखण्डिनां पटुतरं केकाभिराक्रन्दितः
प्रोड्डीयेव बलाकया सरभसं सोत्कण्ठमालिङ्गितः ।
हंसैरुज्झितपङ्कजैरतितरां सोद्वेगमुद्वीक्षितः
कुर्वन्नञ्जनमेचका इव दिशो मेघः समुत्तिष्ठति ॥ २३ ॥

इव, चलैः, जलधरैः, नवहरितशष्पाङ्कुरवती, गन्धोद्दामा, इयम्, धरा, धारापातैः, मणिमयशरैः, भिद्यते, इव ॥ २२ ॥

महावातेति । महावातेन=झञ्झानिलेन, आध्मातैः=पूरितैः, महिषकुलनीलैः=सैरिभसमूहवत्कृष्णवर्णैः, विद्युत्पक्षैः=तडिदेव पत्राणि येषां तैः अन्तःप्रचलितैः=अभ्यन्तरविक्षुब्धैः, जलधिभिः=सागरैः, इव=यथा, चलैः=चञ्चलैः, नवानाम्=नूतनानाम्, हरितानाम्=पालाशानाम्, 'पालाशो हरितो हरित्' इत्यमरः । शष्पाणाम्=घासानाम्, 'शष्पं बालतृणं घासो यवसं तृणमर्जुनम्'' इत्यमरः । ये अङ्कुराः=अभिनवोद्भिदः, 'अङ्कुरोऽभिनवोद्भिदि' इत्यमरः । तद्वती=शष्पप्ररोहशालिनी, गन्धेन=अभिनववृष्टिजनितमृत्तिकागन्धेन, उद्दामा=उत्कटा, इयम्=एषा, धरा=धरित्री, धारापातैः=सलिलधारानिपातैः, एव मणिमयशरैः=रत्नविनिर्मितबाणैः, भिद्यते=छिद्यते, इव=यथेति । जलधिभिरिवेति पूर्णोपमा, भिद्यत इवेति क्रियोत्प्रेक्षा, विद्युत्पक्षैरिति रूपकम्, अन्तिमचरणे धकाररकारयोरनेकधा सकृत्साम्यात् छेकानुप्रासः, एतेषां परस्पराङ्गाङ्गिभावेन संसृष्टि, शिखरिणी वृत्तञ्चेति ॥ २२ ॥

वसन्तसेना—भाव=हे विद्वन्, एषः=पुरोदृश्यमानः, अपरः=अन्यः—

अन्वयः—शिखण्डिनाम्, केकाभिः, एहि एहि, इति पटुतरम्, आक्रन्दितः, बलाकया, सरभसं, प्रोड्डीय, सोत्कण्ठम्, आलिङ्गितः, इव, उज्झितपङ्कजैः, हंसैः, अतितराम्, सोद्वेगम्, उद्वीक्षितः, मेघः, दिशः, अञ्जनमेचकाः, कुर्वन्, इव, समुत्तिष्ठति ॥ २३ ॥

एहीति । शिखण्डिनाम्=मयूराणाम्, केकाभिः=मयूरध्वनिभिः, एहि एहि=

भैंसों के झुंड के समान काले, चंचल बिजली वाले, जल से भरे ये बादल नई नई हरी घासों के अङ्कुरवाली तथा सोंधी महक वाली इस धरती को धारापात रूपी मणिमय बाणों से वेध रहा है ॥ २२ ॥

वसन्तसेना—महाशय, यह भी देखिए—

मयूर स्पष्ट शब्दों में 'आओ-आओ' कहकर इन बादलों को बुला रहा है साभिलाष बगुलों की पातियाँ मानो दौड़कर इन्हें गले लगा रहीं हैं । कमलवनों को छोड़ते हुए उद्विग्न से ये हंस इन्हें घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं और ये मेघ दिशाओं को काजल पोतता हुआ मौज से आकाश में घूम रहा है ॥ २३ ॥

विटः—एवमेतत् । तथाहि पश्य—

निष्पन्दीकृत-पद्मषण्ड-नयनं नष्ट-क्षपा-वासरं
विद्युद्भिः क्षण-नष्ट-दृष्ट-तिमिरं प्रच्छादिताशामुखम् ।
निश्चेष्टं स्वपितीव सम्प्रति पयोधारा-गृहान्तर्गतं
स्फीताम्भोधर-धाम-नैक-जलद-च्छत्रापिधानं जगत् ॥ २४ ॥

वसन्तसेना—भाव ! एव्वं णेदं । ता पेक्ख पेक्ख । [भाव ! एवमेतत् । तत् **प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व ।**]

आगच्छ आगच्छ, इति=इत्थंप्रकारेण, पटुतरम्=उच्चैस्तरम्, आक्रन्दितः=आहूतः, वलाकया=बकपङ्क्त्या, सरभसम्=सवेगम्, प्रोड्डीय=गगने, उड्डयनं विधाय, सोत्कण्ठम्=साभिलाषम्, आलिङ्गितः=कृताऽश्लिष्टः, इव=यथा, उज्झितानि=परित्यक्तानि, पङ्कजानि=कमलवनानि यैस्तैः हंसैः=राजहंसैः, अतितराम्=अत्यधिकम्, सोद्वेगम्=साभिलाषम्, उद्वीक्षितः=दृष्टिपथमानीतः, मेघः=वारिवाहः, दिशः=काष्ठाः, अञ्जनेन=कज्जलेन, मेचकाः=मलिनाः, कुर्वन् इव, समुत्तिष्ठति=नवं नवमुत्पद्यते । असंसृष्टिरलङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ २३ ॥

विटः—एवम्=इत्थंरूपेण, एतत् । तथाहि=तेनैव रूपेण, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—निष्पन्दीकृतपद्मषण्डनयनम्, नष्टक्षपावासरम्, विद्युद्भिः, क्षणनष्टदृष्टतिमिरम्, प्रच्छादिताशामुखम्, स्फीताम्भोधरधामनैकजलदच्छत्रापिधानम्, पयोधारागृहान्तर्गतम्, जगत्, सम्प्रति, निश्चेष्टम्, स्वपिति, इव ॥ २४ ॥

निष्पन्दीति । निष्पन्दीकृतानि=स्थिरीकृतानि, पद्मषण्डानि=कमलसमूहाः 'अब्जादिकदम्बे षण्डमस्त्रियामि'त्यमरः । त एव नयनानि=नेत्राणि येन तद्, नष्टौ=दर्शनहीनतां गतौ, क्षपावासरौ=रात्रिदिवसौ यस्मिन् तत्, विद्युद्भिः=तडिद्भिः क्षणम्=अल्पकालम्, नष्टम्=अदर्शनं प्राप्तम्, पश्चात् दृष्टम्=अवलोकितम्, तिमिरम्=अन्धकारः यत्र तथाभूतम्, प्रच्छादितानि=समाच्छादितानि, आशाः=दिशः, एव मुखानि यस्य तत्, स्फीतानाम्=वृद्धिङ्गतानाम्, अम्भोधराणाम्=मेघानाम्, धाम्नि=स्थाने, ये नैकजलदाः=भूरिमेघाः त एव छत्राणि=आतपत्राणि, तैः अपिधानम्=आच्छादनम् यस्य तत्, पयसाम्=वर्षाम्बुनाम्, धाराः=प्रवाहाः एव गृहाणि=सदनानि, तेषाम्, अन्तर्गतम्=मध्येऽवस्थितम्, जगत्=संसारम्, सम्प्रति=अधुना, निश्चेष्टम्=निश्चिन्तम्, स्वपिति=शेते । क्रियोत्प्रेक्षालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २४ ॥

विट—तुम्हारा कहना ठीक ही है देखो न—

कमलरूपी आँखें बन्दकर, रात दिन का भेद मिटाकर कभी सघन अन्धकार में छिपकर तो कभी विजली के प्रकाश में प्रकट होकर (आँख मिचौनी करते हुए) दिशारूपी मुंह ढँककर जलधारारूपी घर में, बहुरंगे बादल के छाते लगाकर आकाश में यह संसार निश्चिन्त होकर सो रहा है ॥ २४ ॥

वसन्तसेना—महाशय, आपका कहना विल्कुल ठीक है । और भी देखिए—

गता नाशं तारा उपकृतमसाधाविव जने
वियुक्ता कान्तेन स्त्रिय इव न राजन्ति ककुभः।
प्रकामान्तस्तप्तं त्रिदशपति-शस्त्रस्य शिखिना
द्रवीभूतं मन्ये पतति जलरूपेण गगनम् ॥ २५ ॥

अपि च, पश्य—

उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति तिमिरौघम्।
प्रथमश्रीरिव पुरुषः करोति रूपाण्यनेकानि ॥ २६ ॥

वसन्तसेना—भाव=हे विद्वन्, एवमेतत्=यदुक्तं तत् सत्यम्। तत्=तस्मात्, प्रेक्षस्व=अवलोकय—

अन्वयः—असाधौ, जने, उपकृतम्, इव, ताराः, नाशम्, गताः, कान्तेन, वियुक्ताः, स्त्रियः, इव, ककुभः, न, राजन्ति, त्रिदशपतिशस्त्रस्य, शिखिना, प्रकामम्, अन्तस्तप्तम्, द्रवीभूतम्, गगनम्, जलरूपेण, पतति, (इति अहं) मन्ये ॥ २५ ॥

गतेति। असाधौ=दुर्जने, जने=लोके, उपकृतम्=कृतोपकारः, इव=यथा ताराः=नक्षत्राणि, नाशम्=अदर्शनम्, गताः=प्राप्ताः, कान्तेन=प्रियेण, वियुक्ताः=विरहिताः, स्त्रियः=नार्यः, इव=यथा, ककुभः=दिशः, न=नहि, राजन्ति=शोभन्ते, त्रिदशपतिशस्त्रस्य=इन्द्रायुधस्य, शिखिना=इन्द्रवज्राग्निना, प्रकामम्=यथेष्टम्, अन्तस्तप्तम्=अभ्यन्तरसन्तप्तम्, गगनम्=आकाशम्, जलरूपेण=सलिलस्वरूपेण, पतति=वृष्टयात्मना स्रवति, इति अहम्, मन्ये=सम्भावयामि। संसृष्टिरलङ्कारः। शिखरिणीवृत्तम् ॥ २५ ॥

अन्वयः—मेघः, उन्नमति, नमति, वर्षति, गर्जति, तिमिरौघम्, करोति, प्रथमश्रीः, पुरुषः, इव, अनेकानि, रूपाणि, करोति ॥ २६ ॥

उन्नमतीति। मेघः=वारिवाहः, उन्नमति=वायुवेगेन सहोपरि गच्छति, कदाचित् नमति=सलिलभारेणाधोलम्बितो भवति, वर्षति=सलिलं मुञ्चति, गर्जति=गर्जनं करोति, तिमिरौघम्=अन्धकारसमूहम्, करोति=विदधाति, प्रथमश्रीः—प्रथमा=नूतना, समागता श्रीः=सम्पद् यस्य तादृशः पुरुषः=जनः, इव=यथा, अनेकानि=

दुष्टलोगों के लिए किये गये उपकार की तरह ये आकाश के तारे खो गये हैं। पतिहीन वियोगिनी की तरह दिशाएँ श्रीहत हो गई हैं। इन्द्र के हथियार से निकलने वाली आग से झुलसा आकाश मानो पिघलकर पानी के रूप में गिर रहा है ॥ २५ ॥

और भी देखिये—पहले पहल सम्पत्तिपाये पुरुष की तरह ये बादल अनेक रूप धारण कर रहा है। कभी तो ऊपर उठकर सारे आकाश को घेर लेता है और कभी नीचे की ओर झुककर फैल जाता है। कभी बरसता है तो कभी गरजता है। कभी घोर अन्धकार से सम्पूर्ण आकाश के आयाम को ढँक लेता है ॥ २६ ॥

विटः—एवमेतत् ।

विद्युद्भिर्ज्वलतीव संविहसतीवोच्चैर्बलाकाशतै-
महेन्द्रेण विवलगतीव धनुषा धाराशरोद्गारिणा ।
विस्पष्टाशनि-निस्वनेन रसतीवाघूर्णतीवानिलै-
र्नीलैः सान्द्रमिवाहिभिर्जलधरैर्धूपायतीवाम्बरम् ॥ २७ ॥

वसन्तसेना—

जलधर ! निर्लज्जस्त्वं यन्मां दयितस्य वेश्म गच्छन्तीम् ।
स्तनितेन भीषयित्वा धाराहस्तैः परामृशसि ॥ २८ ॥

बहुविधानि, रूपाणि=आकृतीः, करोति=विस्तारयतीति । दीपकालङ्कारः, आर्या जातिश्चेति ॥ २६ ॥

अन्वयः—अम्बरम्, विद्युद्भिः, ज्वलति, इव, बलाकाशतैः, उच्चैः, संविहसति, इव, धाराशरोद्गारिणा, माहेन्द्रेण, धनुषा, विवलगति, इव, विस्पष्टाशनिनिस्वनेन, रसति, इव, अनिलैः, आघूर्णति, इव, अहिभिः, इव, नीलैः, जलधरैः, सान्द्रम्, धूपायति, इव ॥ २७ ॥

विद्युद्भिरिति । अम्बरम्=गगनम्, विद्युद्भिः=तडिद्भिः, ज्वलति=देदीप्यते, इव=यथा, बलाकाः=बकपङ्क्तयः, तासाम्, शतैः=शतसंख्यकैः, उच्चैः=ऊर्ध्वमुड्डीयमानैः, संविहसति=हास्यं करोति, इव=यथा, धाराः=जलवृष्टिः, एव शराः=वाणाः, तान् उद्गिरति=वर्षति, इव=यथा, तेन, माहेन्द्रेण=देवराजसम्बन्धिना, धनुषा=कोदण्डेन, विवलगति=योद्धुं प्रवर्तते, विस्पष्टः=अभिव्यक्तः, यः अशनेः=वज्रस्य, स्वनः=निनादस्तेन विद्युन्निर्घोषेण रसति=गर्जति, इव=यथा, अनिलैः=पवनैः, आघूर्णति=भ्रमति इव, अहिभिः=नागैः, इव, नीलैः=श्यामवर्णैः, जलधरैः=मेघैः, सान्द्रम्=सघनम्, धूपायति=आत्मानं सुगन्धीकरोति, इव । उपमा-क्रियोत्प्रेक्षयोर्मिथोनैरपेक्ष्येण संसृष्टिः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ २७ ॥

अन्वयः—हे जलधर, त्वम्, निर्लज्जः (असि), यत्, दयितस्य, वेश्म, गच्छन्तीम्, मां स्तनितेन, भीषयित्वा, धाराहस्तैः, परामृशसि ॥ २८ ॥

जलधरेति । हे जलधर=हे मेघ ! त्वम्=भवान्, निर्लज्जः=लज्जाविहीनः, असि,

---

विट—बात तो ऐसी ही है—

आकाश, मानो विजलियों से जल रहा है; बगुलों की सैकड़ों पाँतों से खिलखिलाकर हंस रहा है, धारारूपी बाणों को वर्षाकर इन्द्रधनुष उठाये पैंतरा बदल रहा है, बज्रनिर्घोष से सिंहनाद कर रहा है, वायु के रूप में क्रुद्ध होकर घूम रहा है, करैत साँप की तरह काले बादलों से कृष्ण धूम सेवन कर रहा है ॥ २७ ॥

बसन्तसेना—रे मेघ, तुम बड़े ही निर्लज्ज हो, मैं अपने प्रियतम के घर जा रही हूँ और तुम मुझे गरज कर डरा रहे हो, इतना ही नहीं अपने जलधारारूपी हाथों से मेरा स्पर्श भी कर रहे हो ॥ २८ ॥

भोः शक्र !

किं ते ह्यहं पूर्वरतिप्रसक्ता यत्त्वं नदस्यम्बुद-सिंहनादैः ।
न युक्तमेतत् प्रियकाङ्क्षिताया मार्गं निरोद्धुं मम वर्षपातैः ।।२९।।

अपि च—

यद्वदहल्याहेतोर्मृषा वदसि शक्र ! गौतमोऽस्मीति ।
तद्वन्ममापि दुःखं निरवेक्ष्य निवार्यतां जलदः ।। ३० ।।

यत्=यस्मात्, दयितस्य=प्रियस्य, वेश्म=गृहम्, गच्छन्तीम्=यान्तीम्, माम्=वसन्तसेनाम्, स्तनितेन=स्वगर्जितेन, भीषयित्वा=त्रासयित्वा, धाराहस्तैः=जलधारास्वरूपकरैः, परामृशसि=स्पर्शं करोसि । समासोक्तिरलङ्कारः, आर्यावृत्तञ्चेति ।। २८ ।।

भो शक्र=हे इन्द्र—

अन्वयः—अहम्, किम्, ते पूर्वरतिप्रसक्ता (आसम्) यत्, त्वम्, आम्बुदसिंहनादैः, नदसि, प्रियकांक्षितायाः, मम, मार्गम्, वर्षपातैः, निरोद्धुम्, एतत्, न, युक्तम् ।।२९।।

किमिति । अहम्=वसन्तसेना, किमिति प्रश्ने, ते=तव, पूर्वा=प्रथमवर्त्तिनी, रतिः=अनुरागस्तत्र, प्रसक्ता=आसक्ता आसमिति शेषः । यत्=यस्मात् कारणात्, त्वम्=भवान्, अम्बुदानाम्=जलदानाम्, सिंहनादैः=मृगपतिसदृशगर्जनैः, नदसि=गर्जसि, प्रियः=प्रियतमः, कांक्षितः=अभिलषितः यया तस्याः मम=वसन्तसेनायाः, मार्गम्=पन्थानम्, वर्षपातैः, निरोद्धुम्=अवरोद्धुम्, एतत्=गर्जनादिकम्, न=नहि, युक्तम्=उचितमिति । काव्यलिङ्गमलङ्कारः, उपजातिः वृत्तम् ।। २९ ।।

अन्वयः—हे शक्र, यद्वत्, अहल्याहेतोः, गौतमः, अस्मि, इति, (त्वम्) मृषा, वदसि, मम, अपि, दुःखम्, निरवेक्ष्य तद्वत्, जलदः, निवार्यताम् ।। ३० ।।

यद्वदिति । हे शक्र=हे इन्द्र, यद्वत्=यथा, अहल्याहेतोः—अहल्यायाः=गौतमभार्यायाः, हेतोः=कारणात्, गौतमः=अहल्यापतिः, अस्मीति कामानुरक्ततया, मृषा=असत्यम्, वदसि=उक्तवान्, तद्वत्=तेनैव प्रकारेण, मम=वसन्तसेनायाः, अपि=चेत्, दुःखम्, रतिजनितकष्टं निरवेक्ष्य=आत्मौपम्येन विचार्य, जलदः=प्रियगृहगमनप्रतिबन्धभूतः मेघः, निवार्यताम्=अपसार्यताम् । अहल्या-सङ्गमहेतोः इन्द्रः गौतमे स्नातुं गते सति तद्रूपं धृत्वा छलेन तामालिलिङ्गेति पौराणिकी कथानुसन्धेया । आर्या जातिः ।। ३० ।।

हे इन्द्र ! मैंने पहले कभी तुमसे प्रेम भी किया था कि तुम्हारा मेघ सिंह की तरह गरज कर मेरी राह रोकना चाहता है और तुम भी मेघ बरसा कर मुझ विरहिणी की राह रोक रहे हो, क्या यह तुम्हारे लिए उचित है ? ।। २९ ।।

और भी—ओ देवराज, मुनिपत्नी अहल्या पर एक बार आसक्त होकर तुमने कैसे झूठ कह दिया था 'मैं गौतम हूँ' । क्या तुम मुझ विरहिणी के दुःख को समझ कर मेरी राह के बाधक अपने मेघ को रोक नहीं सकते ? ।। ३० ।।

अपि च—

गर्ज वा वर्ष वा शक्र मुञ्च वा शतशोऽशनिम् ।
न शक्या हि स्त्रियो रोद्धुं प्रस्थिता दयितं प्रति ।। ३१ ।।
यदि गर्जति वारिधरो गर्जतु तन्नाम निष्ठुराः पुरुषाः ।
अयि विद्युत् ! प्रमदानां त्वमपि च दुःखं न जानासि ? ।। ३२ ।।

विटः—भवति ! अलमलमुपालम्भेन । उपकारिणी एवेयम् ।

ऐरावतोरसि चलेव सुवर्णरज्जुः
शैलस्य मूर्ध्नि निहितेव सिता पाताका ।

अन्वयः—हे शक्र, गर्ज, वा, वर्ष, वा, शतशः, अशनिम्, मुञ्च, (किन्तु) दयितम्, प्रतिप्रस्थिताः, स्त्रियः, रोद्धम्, न, शक्याः, हि ।। ३१ ।।

गर्जेति । हे शक्र=हे देवराज, गर्ज=गर्जनम् कुरु, वा=अथवा, वर्ष=सलिलधारावर्षणं कुरु, वा=किंवा शतशः=अनन्तम्, अशनिम्=वज्रम्, मुञ्च=पातय, (किन्तु) दयितम्=निजप्रियम्, प्रति प्रस्थिताः=प्रचलिताः, स्त्रियः=कामिन्यः, रोद्धुम्=निग्रहीतुम्, न=नहि, शक्या =समर्थाः, हि । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, अनुष्टुब्वृत्तञ्चेति ।। ३१ ।।

अन्वयः—यदि, वारिधरः, गर्जति, तद्, गर्जतु, नाम (यतः) पुरुषाः, निष्ठुराः (भवन्ति, किन्तु) अयि, विद्युत्, त्वमपि, च, प्रमदानाम्, दुखम्, न जानासि ।।३२।।

यदिति । यदि=चेत्, वारिधरः=मेघः, गर्जति=नदति, तद्=तु, गर्जतु=नदतु, नाम=इति स्वीकारे, यतः पुरुषाः=पुमांसः, निष्ठुराः=निर्दयाः, भवन्ति, किन्तु अयि विद्युत्=तडित्, अर्थात् हे चपले त्वमपि च=स्त्रीभूत्वाऽपि, प्रमदानाम् कामपीडितानां कामिनीनाम्, दुःखम्=कामजन्यपीडाम्, न जानासि=न वेत्सि ? इति महद्दुःखमेतद् विद्युदपि मुहुः स्फुरणेन भीषयति वसन्तसेनामतः उपलभ्यते । समासोक्तिरलङ्कारः, आर्याजातिः ।। ३२ ।।

विटः—भवति=श्रीमति, अलम्=व्यर्थम्, उपालम्भेन=तिरस्कारेण । उपकारिणी एवेयम् । भूयोभूयः स्फुरणेन मार्गदर्शनादुपकारिणी एवेति भावः ।

और भी—अरे ओ देवराज, चाहे तुम वरसो, या गरजो, अथवा एक ही साथ सैकड़ों वज्र ही क्यों न गिरा दो, पर प्रियतम से मिलने के लिए जाती हुई कामिनी को तुम नहीं रोक सकते ।। ३१ ।।

यदि मेघ गरजता है तो उसे गरजने दो, क्योंकि पुरुष तो कठोर होते ही हैं । किन्तु, अरी ओ बिजली तुम नारी होकर भी एक नारी की पीड़ा नहीं जान पायी ।। ३२ ।।

विट—अरी ओ श्रीमती, बिजली की निन्दा तो वेकार ही कर रही हो, यह विचारी तो चमक कर तुम्हें राह दिखला रही है ।

आखण्डलस्य भवनोदरदीपिकेयम्
आख्याति ते प्रियतमस्य हि सन्निवेशम् ॥ ३३ ॥

वसन्तसेना—भाव ! एव्वं, तं ज्जेव एदं गेहं। [**भाव! एवम्, तदेव एतद् गेहम्** ।]

विटः—सकल-कलाभिज्ञाया न किञ्चिदिह तवोपदेष्टव्यमस्ति । तथापि स्नेहः प्रलापयति । अत्र प्रविश्य कोपोऽत्यन्तं न कर्त्तव्यः ।

यदि कुप्यसि नास्ति रतिः कोपेन विनाऽथवा कुतः कामः ।
कुप्य च कोपय च त्वं प्रसीद च त्वं प्रसादय च कान्तम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—ऐरावतोरसि, चला, सुवर्णरज्जुः, इव, शैलस्य, मूर्ध्नि, निहिता, सिता, पताका, इव, आखण्डलस्य, भवनोदरदीपका, इव, ते, प्रियतमस्य, सन्निवेशम्, आख्याति, हि ॥ ३३ ॥

ऐरावतेति । ऐरावतस्य=इन्द्रगजस्य, उरसि=वक्षसि, चला=चपला, सुवर्णरज्जुः= कनकनिर्मितम् दाम इव शैलस्य=पर्वतस्य, मूर्ध्नि=शिखरे, निहिता=स्थापिता, सिता=श्वेतवर्णा, पताका=ध्वजः इव, आखण्डलस्य=देवेन्द्रस्य, भवनोदरदीपिका= गृहमध्यस्थप्रदीपिका इव, इयम्=एषा, विद्युत्=चपला, ते=तव वसन्तसेनायाः, प्रियतमस्य=चारुदत्तस्य, सन्निवेशम्=निवासस्थानम्, आख्याति=स्वप्रकाशेन दर्शयतीति भावः । आर्या वृत्तम् ॥ ३३ ॥

वसन्तसेना—भाव=विद्वन्, एवम्=यदुक्तम् तत्सत्यम्, तदेव, एतत् गेहम्= इदम् तस्यैव गृहमस्ति ।

विटः—सकलासु=निखिलासु, कलासु=नृत्यगानादिविद्यासु, अभिज्ञायाः=प्रवीणायाः, न=नहि, किमपि=किञ्चित्, इह=अस्मिन् लोके, तव=वसन्तसेनायाः, उपदेष्टव्यम्=निर्देशितव्यम्, अस्ति=भवति, तथापि=पुनरपि, स्नेहः=निर्हेतुकप्रेम, प्रलापयति=मुखरीकरोति, अत्र=अस्मिन् स्थाने, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, कोपः=क्रोधः, न कर्त्तव्यः=न विधातव्यः ।

अन्वयः—यदि, कुप्यसि, रतिः, नास्ति, अथवा कोपेन, विना, कुतः, कामः, त्वम्, कुप्य च, कोपय च, त्वम्, प्रसीद् च, कान्तम्, प्रसादय च ॥ ३४ ॥

ऐरावत हाथी की छाती पर झूलती सोने की चंचल सिकड़ी की तरह, अथवा ऊँचे पहाड़ की चोटी पर गाड़ी गई पताका की तरह या देवराज के घर में जलती प्रकाश रेखा की तरह यह विजली तुम्हारे प्रियतम के घर की राह तुम्हें दिखला रही है ॥ ३३ ॥

वसन्तसेना—मान्यवर, आप ठीक ही कहते हैं, यह उन्हीं का घर है ।

विट—यद्यपि सम्पूर्ण कलाओं में तुम स्वयं पारङ्गत हो, तुम्हें कुछ भी सिखाना उचित नहीं है, फिर भी तुम्हारा स्नेह मुझे कुछ कहने को विवश कर रहा है । चारुदत्त के घर में घुस कर तुम्हें अधिक क्रोध नहीं करना चाहिए ।

यदि ज्यादे गुस्सा करोगी तो अनुराग ही नहीं जगेगा । अथवा विना कुछ गुस्साये

भवतु, एवं तावत्! भो भोः! निवेद्यतामार्य्यचारुदत्ताय—

एषा फुल्ल-कदम्ब-नीप-सुरभौ काले घनोद्भासिते
कान्तस्यालयमागता समदना हृष्टा जलार्द्रालका।
विद्युद्वारिदगर्जितैः सचकिता त्वद्दर्शनाकाङ्क्षिणी
पादौ नूपुर-लग्न-कर्दम-धरौ प्रक्षालयन्ती स्थिता ॥ ३५ ॥

चारुदत्तः—(आकर्ण्य) वयस्य! ज्ञायतां किमेतदिति।

यदिति। यदि=चेत्, कुप्यसि=कोपं करोषि, रतिः=अनुरागः, नास्ति=न विद्यते, अथवा=वा, कोपेन=क्रोधेन, विना=अन्तरेण, कुतः=क्व, कामः=सम्भोगानन्दप्राप्तिः, त्वम्=वसन्तसेना, कुप्य=प्रणयकोपमावह, च=पुनः, कोपय=कान्तमपि क्रोधं कारय, त्वम्=स्वयम्, प्रसीद=प्रसन्ना भव, च=पुनः, कान्तम्=रमणम्, च प्रसादय=प्रसन्नतामापादयेति। नाटचालङ्कारः, गीतिर्नाम मात्रावृत्तम् ॥ ३४ ॥

भवतु=यातु, एवम्=इत्थम्, तावदित्यवधारणे, निवेद्यताम्=कथ्यताम्।

अन्वयः—समदना, हृष्टा, जलार्द्रालका, विद्युद्वारिदगर्जितैः, सचकिताः त्वद्दर्शना, कांक्षिणी, एषा, फुल्लकदम्बनीपसुरभौ, घनोद्भासिते, काले, कान्तस्य, आलयम्, आगता, नूपुरलग्नकर्दमधरौ, पादौ, प्रक्षालयन्ती, स्थिता ॥ ३५ ॥

एषेति। समदना=सकामा, हृष्टा=प्रसन्ना, जलार्द्रालका—जलैः=वर्षाबिन्दुभिः, आर्द्राः=सिक्ताः, अलकाः=कुन्तलाः, यस्या सा, विद्युद्भिः=तडिद्भिः, वारिदानां=मेघानाम्, गर्जितैः=स्तनितैः, सचकिता=भयार्त्ता, त्वत्=चारुदत्तस्य, दर्शनाकाङ्क्षिणी=अवलोकानायोत्कण्ठिता, एषा=वसन्तसेना, फुल्लैः=प्रस्फुटितैः, कदम्बैः=भृङ्गवल्लभैः, नीपैः=विषघ्नैः, सुरभिः=सुगन्धितस्तस्मिन्, घनैः=वारिवाहैः, उद्भासिते=सुशोभिते, काले=समये, कान्तस्य=प्रियस्य, आलयम्=सदनम्, आगता=प्राप्ता, नूपुरयोः=मञ्जीरयोः, लग्ने=संलग्ने, कर्दमान्=पङ्कान्, धरतः पादौ=चरणौ, प्रक्षालयन्ती=प्रक्षालनं कुर्वती सती, स्थिता=वर्त्तमानास्ति। पुनरुक्तवदाभासालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ ३५ ॥

रति का आनन्द कहाँ मिलेगा? पहले अपने प्रेमी को थोड़ा क्रुद्ध कर दो, पुनः स्वयं मुँह फुलाओ, फिर मान मनौअल कर खुद खुश हो जाओ और बाद में उन्हें भी प्रसन्न कर दो ॥ ३४ ॥

अच्छा, यह तो हुआ, अब आर्य चारुदत्त को भी तो सूचित कर दो—

खिले कदम्ब और नीपतरु की सुगन्ध से तर, बादलों से घिरे इस वर्षाकाल में, कामपीड़िता, प्रसन्नवदना, वर्षा में भींगे बाल वाली वसन्तसेना अपने प्रियतम के घर आई है। किन्तु, विजली की चमक और बादलों के गर्जन से आक्रान्त प्रिय मिलन के लिए उत्सुक अपने पायलों में लगे कीचड़ को धोती हुई दरवाजे पर खड़ी है ॥ ३५ ॥

चारुदत्त—(सुनकर) मित्र, पता तो लगाओ, कैसी आवाज आ रही है?

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । (वसन्तसेनामुपगम्य सादरम्) सोत्थि भोदीए । [**यद्भवानाज्ञापयति । स्वस्ति भवत्यै ।**]

वसन्तसेना—अज्ज ! वन्दामि । साअदं अज्जस्स । (विटं प्रति) भाव ! एसा छत्तधारिआ भावस्स ज्जेव भोदु । [**आर्य वन्दे । स्वागतमार्यस्य । भाव ! एषा छत्रधारिका भावस्यैव भवतु ।**]

विटः—(स्वगतम्) अनेनोपायेन निपुणं प्रेषितोऽस्मि । (प्रकाशम्) एवं भवतु । भवति ! वसन्तसेने ।

साटोप-कूट-कपटानृतजन्मभूमेः
शाठ्यात्मकस्य रति-केलिकृतालयस्य ।
वेश्यापणस्य सुरतोत्सवसङ्ग्रहस्य
दाक्षिण्यपण्य-सुख-निष्क्रय-सिद्धिरस्तु ॥ ३६ ॥

चारुदत्तः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा) वयस्य=हे मित्र, ज्ञायताम्=अवगम्यताम्, एतत्=शब्दापनम्, किमिति प्रश्ने ।

विदूषकः—यत्=यथा, भवान्=श्रीमान्, आज्ञापयति=आदिशति, (वसन्तसेनाम्=गणिकाम्, उपगम्य=समीपं गत्वा, सादरम्=ससम्मानम्) भवत्यै=श्रीमत्यै, स्वस्ति=कल्याणं भवतु ।

वसन्तसेना—आर्य=हे मान्य, वन्दे=प्रणमामि, स्वागतम्=प्रत्युद्गमनम् । (विटं प्रति=कामानुचरं प्रति) एषा=पुरोवर्त्तमाना, छत्रधारिका=मदीया छत्रधारिणी चेटी, भावस्यैव=विटस्यैव, भवतु=अधीनस्था यातु ।

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अनेन=पूर्वोक्त प्रकारेण, उपायेन=साधनेन, निपुणम्=सकौशलम्, प्रेषितोऽस्मि=विसृष्टोऽस्मि । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) एवं भवतु=मदीयैव छत्रधारिका भवतु ।

अन्वयः—साटोपकूटकपटानृतजन्मभूमेः, शाठ्यात्मकस्य, रतिकेलिकृतालयस्य सुरतोत्सवसङ्ग्रहस्य, वेश्यापणस्य, दाक्षिण्यपण्यसुखनिष्क्रियसिद्धिः, अस्तु ॥ ३६ ॥

साटोपेति । साटोपम्=सगर्वम् यत्, कूटम्=माया, कपटम्=छलम्, अनृतम्=मिथ्याभाषणम्, एतेषां जन्मभूमेः=उद्गमस्थानस्य, शाठ्यम्=धूर्त्तता, एव आत्मा=

विदूषक—जैसी आप की आज्ञा (**वसन्तसेना के पास जाकर, सम्मानपूर्वक**) श्रीमती का कल्याण हो ।

वसन्तसेना—आर्य को प्रणाम है । मैं आपका अभिनन्दन करती हूँ (**विट को**) महाशय, यह चेटी अब आपको सौंपती हूँ ।

विट—(**मन में**) बड़ी चतुराई के साथ इसने घर लौट जाने को कह दिया (**सुनाकर**) ठीक है, देवि,

छल, कपट और माया के सगर्व उत्पन्न होने की भूमि, जिसकी आत्मा ही धूर्त्तता है, काम क्रीड़ा ही जिसका घर है, संभोग सुख ही जिसका संचय है—उस वेश्या रूपी

(इति निष्क्रान्तो विटः ।)

वसन्तसेना—अज्जमित्तेअ ! कहिं तुम्हाणं जूदिअरो ? [**आर्य मैत्रेय ! कस्मिन् युष्माकं द्यूतकरः ?**]

विदूषकः—(स्वगतम्) ही ही भो ! जुदिअरो त्ति भणन्तीए अलंकिदो पिअवअस्सो । (प्रकाशम्) भोदि ! एसो क्खु सुक्खरुक्ख-वाडिआए । [**ही ही भोः ! द्यूतकर इति भणन्त्या अलङ्कृतः प्रियवयस्यः । भवति ! एष खलु शुष्क-वृक्ष-वाटिकायाम् ।**]

वसन्तसेना—अज्ज ! का तुम्हाणं सुक्ख-रुक्ख-वाडिआ वुच्चदि ? । [**आर्य ! का युष्काकं शुष्क-वृक्ष-वाटिका उच्यते ?**]

विदूषकः—भोदि ! जहिं ण खाईअदि ण पीईअदि । [**भवति ! यस्मिन् न खाद्यते न पीयते ।**]

प्रवृत्तिर्यस्य तादृशस्य, रतिकेलिः=काम-क्रीडा, तेन कृतः=विहितः, आलयः=आश्रयः येन तस्य, सुरतमेव=सम्भोगमेव, उत्सवः=उल्लासः, तस्य संग्रहः=संचयः, यस्मिन् तथाभूतस्य, वेश्यापणस्य=गणिकाव्यवहारस्य, वा, दाक्षिण्येन=धनविनिमयेन, पण्यस्य =विक्रेयवस्तुनः, सुखेन=आनन्देन, निष्क्रियः=विनिमयः, तस्य सिद्धिः= साफल्यम्, अस्तु=भवतु । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ ३६ ॥

(इति=एवमुक्तौ सत्याम्, विटः=कामानुचरः, निष्क्रान्तः=रङ्गभूमितः प्रस्थितः ।)

वसन्तसेना—कस्मिन्=कुत्र, युष्माकम्=वः, द्यूतकरः=अक्षक्रीडकः, परिहासोक्तिरियं चारुदत्तं प्रति ।

विदूषकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) प्रियवयस्यः=प्रियमित्रः, द्यूतकरः=कितवः, इति=एवम्, भणन्त्या=कथनेन, अलङ्कृतः=विभूषितः, (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) भवति=श्रीमति, एषः=असौ, शुष्कवृक्षवाटिकायाम्=भोजनपानासम्भवस्थल्याम्, वर्त्तते ।

वसन्तसेना—आर्य=हे मान्य, केति प्रश्ने, युष्माकम्=वः, शुष्कवृक्षवाटिका, उच्यते=कथ्यते ।

बाजार की विक्रय वस्तु जवानी का उदारता पूर्वक आदान-प्रदान करो और वह मूल्य दान ही तुम्हारी सिद्धि हो ॥ ३६ ॥

(विट का प्रस्थान)

वसन्तसेना—आर्य मैत्रेय, आपके जुआड़ी महाराज कहाँ हैं ?

विदूषक—**(मन ही मन)** वाह, जुआड़ी शब्द से इसने मित्र चारुदत्त को अच्छा अलङ्कृत कर दिया है । **(सुनाकर)** अरी श्रीमती जी, वे शुष्कवृक्षवाटिका में बैठे हैं ।

वसन्तसेना—आर्य, आप शुष्कवृक्षवाटिका किसे कहते हैं ?

(वसन्तसेना स्मितं करोति)

विदूषकः—ता पविसदु भोदी ! [**तत्प्रविशतु भवती ।**]

वसन्तसेना—(जनान्तिकम्) एत्थ पविसिअ किं मए भणिदव्वं ? । [**अत्र प्रविश्य किं मया भणितव्यम् ?**]

चेटी—जूदिअर ! अवि सुहो दे पदोसो ? त्ति ! [**द्यूतकर ! अपि सुखस्ते प्रदोषः ? इति ।**]

वसन्तसेना—अवि पारइस्सं ? [**अपि पारयिष्यामि ?**]

चेटी—अवसरो ज्जेव पारइस्सदि । [**अवसर एव पारयिष्यति ।**]

विदूषकः—पविसदु भोदी । [**प्रविशतु भवती ।**]

वसन्तसेना—(प्रविश्योपसृत्य च, पुष्पैस्ताडयन्ती) अइ जूदिअर ! अवि सुहो दे पदोसो ? [**अयि द्यूतकर ! अपि सुखस्ते प्रदोष ?**]

विदूषकः—भवति=श्रीमति, यस्मिन् स्थाने, न खाद्यते न पीयते=भोजनपानादिकमसम्भवेति ।

(वसन्तसेना=गणिका, शुष्कवृक्षवाटिकालक्षणं श्रुत्वा स्मितम्=मन्दहास्यम्, करोति ।)

वसन्तसेना—(जनान्तिकम्—जनस्य=उद्देश्यभूतलोकस्य अन्तिकम्=समीपमितिजनान्तिकम्=अनन्यबोध्यमिति । (तथोक्तं दर्पणे—"त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तराकथाम् । अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्याज्जनान्ते तज्जनान्तिकम् ।।" त्रिपताकालक्षणमुक्तम् संगीतरत्नाकरे—"स एव त्रिपताका स्याद् वक्रितानामिकाङ्गुलिः ।") अत्र=अस्मिन् वाटिकायाम्, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, मया=वसन्तसेनया, किमिति प्रश्ने, भणितव्यम् =कथितव्यम् ।

चेटी—द्यूतकर=हे कितव, अपि=चेत्, ते=तव, सुखः=सुखकरः, प्रदोषः= सान्ध्यवेलेति ?

वसन्तसेना—अपि=प्रश्ने, पारयिष्यामि=कथितुं समर्था भविष्यामि ?

चेटी—अवसर एव=समय एव, पारयिष्यति ।

विदूषकः—प्रविशतु=प्रवेशं करोतु, भवती=श्रीमती ।

विदूषक—अरी ओ श्रीमती, जहाँ न कुछ खाया जाता है और न पिया ही जाता है ।

(वसन्तसेना मुस्कराती है)

विदूषक—तो फिर, चलिए भीतर ।

वसन्तसेना—(**मुँह फेरकर**) हाय, तो उनके सामने जाकर क्या कहूँगी ?

चेटी—जुआड़ी जी, आप की यह शाम सुखद तो है ?

वसन्तसेना—क्या ऐसा कह पाऊँगी ?

चेटी—समय ही आप से कहवा देगा ।

विदूषक—पहले आप भीतर तो आयें ।

चारुदत्तः—(अवलोक्य) अये वसन्तसेना प्राप्ता । (**सहर्षमुत्थाय**) अयि प्रिये !

सदा प्रदोषो मम याति जाग्रतः
सदा च मे निःश्वसतो गता निशा ।
त्वया समेतस्य विशाललोचने !
ममाद्य शोकान्तकरः प्रदोषकः ॥ ३७ ॥

तत्स्वागतं भवत्यै । इदमासनम्, अत्रोपविश्यताम् ।

विदूषकः—इदं आसणं, उवविसदु भोदी । [**इदमासनम्, उपविशतु भवती ।**]

(वसन्तसेना आसीना । ततः सर्वे उपविशन्ति)

वसन्तसेना—(पुष्पैस्ताडयन्ती=अतीवानुकूल्य संसूचनार्थम् ।)

चारुदत्तः—(अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इत्याश्चर्यसूचकम्, वसन्तसेना प्राप्ता=प्रिया समागता । अयि प्रिये=हे वल्लभे !

अन्वयः—सदा, जाग्रतः, एव, मम, प्रदोषः, याति, सदा, च, निःश्वसतः, मे, निशा गता, विशाललोचने, अद्य, त्वया, समेतस्य, मम, प्रदोषकः, शोकान्तकरः ।३७।

सदेति । सदा=सर्वदा, जाग्रतः=अप्राप्तनिद्रस्य, एव मम=चारुदत्तस्य, प्रदोषः=सान्ध्यवेला, याति=गच्छति, सदा=सततम्, च=पुनः, निश्वसतः=दीर्घं श्वसतः मे=मम चारुदत्तस्य, निशा=रात्रिः, गता=व्यतीता, विशाललोचने=आयतनयने, अद्य=अस्मिन् दिने, त्वया=वसन्तसेनया, समवेतस्य=समन्वितस्य, मम=चारुदत्तस्य, प्रदोषकः=सान्ध्यवेला, शोकान्तकरः=सन्तापनाशकः शान्तिकरश्च, भवतीति शेषः । वंशस्थविलं वृत्तम् ॥ ३७ ॥

तत्=तस्मात्, स्वागतम्=शुभागमनम्, भवत्यै=श्रीमत्यै, इदम्=एतत्, आसनम्=उपवेशनाधारः, अत्र=अस्मिन् आसनोपरि, उपविश्यताम्=उपवेशनं क्रियताम् ।

विदूषकः—इदम् आसनम्, भवती=श्रीमती, उपविशतु ।

(वसन्तसेना=गणिका, आसीना=उपविष्टा, ततः=तत्पश्चात्,
सर्वे=सकलाः, उपविशन्ति ।)

वसन्तसेना—(भीतर आकर, चारुदत्त पर फूल फेंककर) ओ जुआड़ी जी, आपकी यह शाम तो सुखद हैं ?

चारुदत्त—(**देखकर**) अरे, वसन्तसेना आ गई (**खुश होकर और उठकर**) आओ प्रिये आओ !

अरी ओ विशाललोचने, मेरी हर शाम आह भरते और हर रात उसाँस काटते ही बीतती है; पर आज की शाम तुम्हारे साथ रहने से जरूर रंगीन रहेगी ॥ ३७ ॥

आओ, स्वागत है । लो विराजो इस आसन पर ।

विदूषक—बैठिए, श्रीमतीजी, इस आसन पर बैठिए ।

(वसन्तसेना के बैठने के बाद सभी यथास्थान बैठ जाते हैं ।)

चारुदत्तः—वयस्य ! पश्य पश्य—

वर्षोदकमुद्गिरता श्रवणान्तविलम्बिना कदम्बेन ।
एकः स्तनोऽभिषिक्तो नृपसुत इव यौवराज्यस्थः ॥ ३८ ॥

तद्वयस्य क्लिन्ने वाससी वसन्तसेनायाः । अन्ये प्रधानवाससी समुपनीयतामिति ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यद्भवानाज्ञापयति ।]

चेटी—अज्जमित्तेअ ! चिट्ठ तुमं, अहं ज्जेव अज्जअं सुस्सूसइस्सं । [आर्य मैत्रेय । तिष्ठ त्वम्, अहमेवार्यां शुश्रूषयिष्यामि ।]

(तथा करोति ।)

चारुदत्तः—वयस्य=मित्र, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—वर्षोदकम्, उद्गिरता, श्रवणान्तविलम्बिना, कदम्बेन, एकः, स्तनः, यौवराज्यस्थः, नृपसुतः, इव, अभिषिक्तः ॥ ३८ ॥

वर्षोदकमिति । वर्षोदकम्=मेघसलिलम्, उद्गिरता=सम्पातिता, श्रवणस्य=कर्णस्य, अन्तिमे=अन्तिमे भागे, विलम्बते=आलम्बते, तेन, कदम्बेन, नीपपुष्पेण, एकः द्वयोर्मध्ये एकः, स्तनः=कुचः, यौवराज्यस्थः=युवराजपदवीम् अधिरूढः, नृपसुतः=राजपुत्रः, इव=यथा, अभिषिक्तः=सिञ्चितः । श्रौती उपमालङ्कारः, आर्या वृत्तञ्चेति ॥ ३८ ॥

तत्=तस्मात्, वयस्य=हे मित्र, क्लिन्ने=आर्द्रीभूते, वाससी=परिधानीयम्, वसन्तसेनायाः । अन्ये=अपरे, प्रधानवाससी=उपयुक्तवस्त्रद्वयम्, समुपनीयताम्=समानीयताम् ।

विदूषकः—यत्=यथा, भगवान्=श्रीमान्, आज्ञापयति=आदिशति ।

चेटी—आर्य मैत्रेय, तिष्ठ=स्थीयताम्, अहमेव=चेटी एव, आर्याम्=वसन्तसेनाम्, शुश्रूषयिष्यमि=शुश्रूषिष्ये ।

(तथाकरोति=आर्द्रवस्त्रापसारणपूर्वकं परिधानादिकं करोति ।)

चारुदत्त—मित्र, देखो तो—

कान में लगे कदम्ब के फूल से टपककर ये वर्षा की बूँदें वसन्तसेना के एक स्तन को ठीक उसी तरह अभिषिक्त कर रही हैं, जैसे राजसिंहासन पर बैठने के लिए किसी युवराज को अभिषिक्त किया जा रहा हो ॥ ३८ ॥

तो मित्र, देखो न, वसन्तसेना के सारे कपड़े भींग गये हैं । जाओ, कोई इनके लायक अन्य परिधान ले आओ ।

विदूषकः—जैसी आपकी आज्ञा ।

चेटी—आर्य मैत्रेय, आप रहने दें । मैं ही इनकी परिचर्या करती हूँ ।

(वैसा ही करती है ।)

विदूषकः—(अपवारितकेन) भो वअस्स ! पुच्छामि दाव तत्थभोदिं किं पि। [भो वयस्य ! पृच्छामि तावत्तत्रभवतीं किमपि।]

चारुदत्तः—एवं क्रियताम्।

विदूषकः—(प्रकाशम्) अध किंणिमित्तं उण ईदिसे पणट्ठचन्दालोए दुद्दिणअन्धआरे आअदा भोदि ?। [अथ किंनिमित्तं पुनरीदृशे प्रनष्टचन्द्रालोके दुर्दिनान्धकारे आगता भवती ?]

चेटी—अज्जए ! उजुओ बम्हणो। [आर्ये ! ऋजुको ब्राह्मणः।]

वसन्तसेना—णं णिउणो त्ति भणाहि। [ननु निपुण इति भण।]

चेटी—एषा क्खु अज्जुआ एव्वं पुच्छिदुं आअदा—'कित्तिअं ताए रअणावलीए मुल्लं' त्ति। [एषा खलु आर्या एवं प्रष्टुमागता—'कियत्तस्या रत्नावल्या मूल्यम्' इति।]

विदूषकः—(जनान्तिकम्) भो ! भणितं मए, जधा अप्पमुल्ला रअणावली, बहुमुल्लं सुवण्णभण्डअं, ण परितुट्टा, अवरं मग्गिदुं आअदा। [भोः !

विदूषकः—(अपवारितकेन=रहस्यकथनमुद्रया) भो वयस्य=हे मित्र, पृच्छामि =अस्ति काचित् पृच्छा।

चारुदत्तः—एवं क्रियताम्=पृच्छताम्।

विदूषकः—(प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) किंनिमित्तम्=किमर्थम्, इदृशे प्रनष्टचन्द्रालोके=विनष्टचन्द्रप्रकाशे दुर्दिनान्धकारे=सघनघनावरणेऽन्धकारे, भवती= श्रीमती, आगता=सम्प्राप्तेति।

चेटी—आर्ये=मान्ये, ऋजुकः=सरलमतिः, मदनावेशजन्यव्यवहारशून्यः, ब्राह्मणः=विप्रवटुः।

वसन्तसेना—ननु=निश्चयेन, निपुणः=कुशलः धूर्त्तो वा, इति भण=कथय।

चेटी—एषा=इयम्, खलु=निश्चयेन, आर्या=मान्या, प्रष्टुम्=ज्ञातुम्, आगता=समागता। कियत्=किंपरिमाणम्, तस्या रत्नावल्याः=तस्य रत्नहारस्य, मूल्यम्=अर्घः इति।

विदूषकः—(जनान्तिकम्=अनन्यबोध्यम्) मया=मैत्रेयेण, भणितम्=कथितम्, अल्पमूल्या=स्वल्पार्घा, रत्नावली, बहुमूल्यम्=महार्घम्, सुवर्णभाण्डकम्=कनका-

---

विदूषक—(धीरे से) मित्र, मैं इनसे कुछ पूछना चाहता हूँ।

चारुदत्त—पूछो।

विदूषक—(सुनाकर) चाँदनी रहित सघनमेघ से घिरी इस अकाल वेला में आपका आना कैसे हुआ ?

चेटी—आर्ये, ये बड़े सीधे ब्राह्मण हैं।

वसन्तसेना—सीधे नहीं, चालाक कहो।

चेटी—आपने जो रत्नावली दी है, उसकी कीमत क्या है। यही जानने को आर्या यहाँ आई है।

भणितं मया—यथा अल्पमूल्या रत्नावली, बहुमूल्यं सुवर्णभाण्डकम्, न परितुष्टा, अपरं मार्गयितुमागता ।]

चेटी—सा क्खु अज्जआए अत्तणकेरकेत्ति भणिअ जूदे हारिदा, सो अ सहिओ राअ-वात्थहारी ण जाणीअदि कहिं गदो त्ति । [सा खलु आर्यया आत्मीयेति भणित्वा द्यूते हारिता स च सभिको राजवार्त्ताहारी न ज्ञायते कुत्र गत इति ।]

विदूषकः—भोदि ! मन्तिदं ज्जेव मन्तीअदि । [भवति ! मन्त्रितमेव मन्त्यते ।]

चेटी—जाव सो अण्णेसीअदि, ताव एदं ज्जेव गेण्ह सुवण्णभण्डअं । (इति दर्शयति ।) [यावत् सोऽन्विष्यते, तावदिदमेव गृहाण सुवर्णभाण्डकम् ।]

(विदूषको विचारयति ।)

चेटी—अदिमेत्तं अज्जो णिज्झाअदि, ता किं दिट्ठपुरुव्वो दे ? [अतिमात्रमार्यो निध्यायति, तत् किं दृष्टपूर्वं ते ?]

भूषणम्, न=नहि, परितुष्टा=संतुष्टा, अपरम्=अन्यम्, मार्गयितुम्=अन्वेष्टुम्, आगता=समागतेति भावः ।

चेटी—सा=रत्नावली, आर्यया=मान्यया, आत्मीया=स्वकीया, इति भणित्वा=कथयित्वा, द्यूते=अक्षक्रीडायाम्, स च=स चासौ, सभिकः=द्यूताध्यक्षः । मैत्रेयेण यथा रत्नहारसमर्पणकाले कथितम्, तथैव कौतुकात् विदूषकोक्तस्य मिथ्यात्वप्रकाशनाय च कथयति ।

विदूषकः—भवति=श्रीमति, मन्त्रितमेव=कथितमेव, मन्त्यते=कथ्यते ।

चेटी—यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, सः=सभिकः, अन्विष्यते=अन्वेषणं क्रियते, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, इदमेव=एतदेव, सुवर्णभाण्डकम्=स्वर्णाभूषणम्, गृहाणं=स्वीक्रियताम् ।

(विदूषकः=मैत्रेयः, विचारयति=चिन्तयति ।)

विदूषक—(धीरे से) अजी, मैंने तो पहले ही कहा था कि रत्नहार की कीमत इसके आभूषण से कम है, वही वसूलने को यह आई है ।

चेटी—उस रत्नहार को अपना समझकर वसन्तसेना जुए में उसे हार गई । उस जुए का सभाध्यक्ष पता नहीं कहाँ चला गया ।

विदूषक—श्रीमती जी, रत्नहार देते समय मैंने जो कुछ कहा है, आप उसे ही दुहरा रही हैं ।

चेटी—जब तक उस सभाध्यक्ष को खोजा जा रहा है तब तक आप इस सुवर्णभाण्ड को ही अपने पास रख लें । (सुवर्णभाण्ड दिखलाती है ।)

(विदूषक सोचता है ।)

चेटी—आप इसे बहुत दृष्टि गड़ाकर देख रहे हैं, क्या पहले भी कभी आपने इसे देखा है ?

विदूषकः—भोदि ! सिप्पकुसलदाए ओबन्धेदि दिट्ठिं [**भवति ! शिल्पकुशलतया अवबध्नाति दृष्टिम् ।**]

चेटी—अज्ज, वंचिदोसि दिट्ठीए। तं ज्जेव एदं सुवण्णभण्डअं । [**आर्य ! वञ्चितोऽसि दृष्टया । तदेवैतत् सुवर्णभाण्डकम् ।**]

विदूषकः—(सहर्षम्) भो वअस्स ! तं ज्जेव एदं सुवण्णभण्डअं जं अम्हाणं गेहे चोरेहिं अवहिदं । [**भो वयस्य ! तदेवैतत् सुवर्णभाण्डकम्, यदस्माकं गेहे चौरैरपहृतम् ।**]

चारुदत्तः—वयस्य !

योऽस्माभिश्चिन्तितो व्याजः कर्त्तुं न्यासप्रतिक्रियाम् ।
स एव प्रस्तुतोऽस्माकं किन्तु सत्यं विडम्बना ।। ३९ ।।

विदूषकः—भो वअस्स ! सच्चं, सवामि बम्हण्णेण । [**भो वयस्य ! सत्यं, शपे ब्राह्मण्येन ।**]

चेटी—अतिमात्रम्=अत्यधिकम्, आर्यः=मान्यः, निध्यायति=पश्यति, तत्=तस्मात्, किम्=इति प्रश्ने जिज्ञासायाम् वा, ते=तव, दृष्टपूर्वम्=प्रथमेऽवलोकितम् ।

विदूषकः—भवति=श्रीमति, शिल्पकुशलतया=रचनानैपुण्येन, अवबध्नाति=सन्निध्यातः, दृष्टिम्=नेत्रम् ।

चेटी—आर्य=हे मान्य, दृष्टया=अवलोकनेन, वञ्चितोऽसि=प्रतारितोऽसि । तत्=दृष्टपूर्वमेव, एतत्, सुवर्णभाण्डकम्=आभूषणम् ।

विदूषकः—(सहर्षम्=सप्रसन्नम्) भो वयस्य=हे मित्र, एतत् सुवर्णभाण्डकम् तदेव, यत् अस्माकं, गेहे=सदने, चौरैः=तस्करैः, अपहृतम्=चोरितम् ।

अन्वयः—न्यासप्रतिक्रियाम्, कर्त्तुम्, अस्माभिः, यः, व्याजः, चिन्तितः, अस्माकम्, सः, एव व्याजः, प्रस्तुतः, किन्तु, विडम्बना (इति) सत्यम् ।। ३९ ।।

य इति । न्यासस्य=निक्षेपस्य, प्रतिक्रियाम्=क्षतिपूर्त्तिम्, कर्त्तुम्=विधातुम्, यः व्याजः=कपटः, चिन्तितः=विचारितः, सः=व्याजः, एव, अस्माकम्=नः प्रस्तुतः=उपस्थितः, किन्तु, सत्यम्=यथार्थतः, इयम् विडम्बना=कपटाचारः ।।३९।।

विदूषकः—सत्यम्=यथार्थतः, ब्राह्मण्येन=विप्रत्वेन, शपे=शपथं कृत्वा कथयामि ।

विदूषक—अरी महरानी, मैं तो इसकी कारीगरी को देख रहा हूँ ।

चेटी—आर्य, आपकी आँखें धोखा दे रही है । यह वही सुवर्णभाण्ड है ।

विदूषक—(**खुशी के साथ**) हे मित्र, यह वही सुवर्णभाण्ड है, जिसे हमारे घर से चोरों ने चुरा लिया था ।

चारुदत्त—मित्र !

सुवर्णभाण्ड धरोहर के लिए हमने जो कपट किया था; रत्नहार के सम्बन्ध में इसने भी यही उपस्थित किया है । किन्तु, यह एक छलावा है सच नहीं ।। ३९ ।।

विदूषक—हे मित्र, मैं ब्राह्मणत्व की शपथ खाकर कहता हूँ यह वही आभूषण है ।

चारुदत्तः—प्रियं नः प्रियम् ।

विदूषकः—(जनान्तिकम्) भो ! पुच्छामि णं कुदो एदं समासादिदं त्ति ! [भोः ! पृच्छामि ननु कुत इदं समासादितमिति ?]

चारुदत्तः—को दोषः ?

विदूषकः—(चेटचाः कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

चेटी—(विदूषकस्य कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

चारुदत्तः—किमिदं कथ्यते ? । किं वयं बाह्याः ?

विदूषकः—(चारुदत्तस्य कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव ।]

चारुदत्तः—भद्रे ! सत्यं तदेवेदं सुवर्णभाण्डम् ?

चेटी—अज्ज ! अधइं । [आर्य ! अथ किम् ?]

चारुदत्तः—प्रियम्=अभिमतम्, नः=अस्माकम्, प्रियम् ।

विदूषकः—(जनान्तिकम्=अनन्यबोध्यम्) कुतः=कुत्रतः, इदम्=सुवर्णभाण्डम्, समासादितम्=प्राप्तम् ।

चारुदत्तः—को दोषः=दोषरहितोऽयं, पृच्छयताम् ।

विदूषकः—(चेटचाः=दास्याः, कर्णे=श्रवणे) एवमिव=अस्मद्गृहादपहार्य केनचित् त्वां समर्पितमिदं स्वर्णभाण्डमिति ।

चेटी—(विदूषकस्य=मैत्रेयस्य, कर्णे) एवमिव=सत्यमिदमिति ।

चारुदत्तः—किमिति प्रश्ने, इदम्=युवयोरिदं वार्त्तालापम्, वयम्=चारुदत्तादिकम्, वाह्याः=बहिरङ्गाः स्मः ?

विदूषकः—(चारुदत्तस्य=सार्थवाहसुतस्य, कर्णे) एवमिव=सर्वं सत्यमेव कथयति ।

चारुदत्तः—भद्रे=हे कल्याणि, सत्यम्=यथार्थम्, तदेवेदं सुवर्णभाण्डम्=काक्वा प्रश्नोऽभिव्यज्यते ।

चेटी—आर्य=हे मान्य, अथ किम्=सत्यमेवेदं तदेव सुवर्णभाण्डमस्ति ।

चारुदत्त—यह तो खुश खबरी है ।

विदूषक—(कान में) मैं इससे पूछता हूँ—"इसने इसे कहाँ पाया ?"

चारुदत्त—इसमें भला क्या हर्ज है ?

विदूषक—(चेटी के कान में) ऐसी बात हैं । (हमारे घर से चुरा कर किसी ने उन्हें दे दिया ।)

चेटी—(विदूषक के कान में) हाँ, भई, बात कुछ वैसी ही है ।

चारुदत्त—आप दोनों कानाफूसी क्यों कर रहे हैं ? क्या हम पराये हैं ?

विदूषक—(चारुदत्त के कान में) बात ऐसी ही है ।

चारुदत्त—क्यों कल्याणि, यही बात है ।

चेटी—हाँ, महाशय यह वही आभूषण है ।

चारुदत्तः—भद्रे ! न कदाचित् प्रियनिवेदनं निष्फलीकृतं मया। तद्-गृह्यतां पारितोषिकमिदमङ्गुलीयम्। (इत्यनङ्गुलीयकं हस्तमवलोक्य लज्जां नाटयति।)

वसन्तसेना—(आत्मगतम्) अदो ज्जेव कामीअसि। [अत एव काम्यसे।]

चारुदत्तः—(जनान्तिकम्) भोः ! कष्टम्।

धनैर्वियुक्तस्य नरस्य लोके किं जीवितेनादित एव तावत्।
यस्य प्रतीकारनिरर्थकत्वात् कोपप्रसादा विफलीभवन्ति ॥ ४० ॥

अपि च—

पक्षविकलश्च पक्षी, शुष्कश्च तरुः, सरश्च जलहीनम्।
सर्पश्चोद्धृतदंष्ट्रस्तुल्यं लोके दरिद्रश्च ॥ ४१ ॥

चारुदत्तः—कदाचित्=कथमपि, प्रियनिवेदनम्=मनोनुकूलकथनम्, मया=चारुदत्तेन, निष्फलीकृतम्=विफलीकृतम्। तत्=तस्मात्, गृह्यताम्=स्वीक्रियताम्, परितोषिकम्=पुरस्कारस्वरूपम्, इदम्=एतत्, अङ्गुलीयकम्=मुद्रा। (इति=एवमुक्त्वा, अनङ्गुलीयकम्=मुद्राहीनम्, हस्तम्=करम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा, लज्जाम्=त्रपाम्, नाटयति=अभिनयति।)

वसन्तसेना—(आत्मगतम्=स्वगतम्) अत एव=गुणोत्कर्षादेव, काम्यसे=अभिलष्यसे।

अन्वयः—लोके, धनैः, वियुक्तस्य, नरस्य, आदित, एव, जीवितेन, किम्, तावत्, प्रतीकारनिरर्थकत्वात्, यस्य, कोपप्रसादाः, विफलीभवन्ति ॥ ४० ॥

धनैरिति। लोके=संसारे, धनैः=सम्पद्भिः, वियुक्तस्य=रहितस्य, नरस्य=जनस्य, आदितः एव=जन्मतः एव, जीवितेन=जीवनेन, किं तावत्=किं फलमित्यर्थः, यस्य=दरिद्रस्य, कोपप्रसादाः=क्रोधानुग्रहाः, विफलीभवन्ति=निष्फलाः भवन्तीति। श्लोकेऽत्र पूर्वार्द्धेऽप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, उत्तरार्द्धेकाव्यालिङ्गमलङ्कारः, उपजातिवृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—पक्षविकलः, पक्षी, च, शुष्कः, तरुः, च, जलहीनम्, सरः, च, उद्धृतदंष्ट्रः, सर्पः, दरिद्रः च, लोके, तुल्यम्, (भवति) ॥ ४१ ॥

चारुदत्त—भद्रे, मैंने कभी किसी के प्रियवचन खाली नहीं जाने दिया, लो यह अँगूठी तुम्हारा पुरस्कार है। (हाथ में अँगूठी नहीं देखकर लज्जा का अभिनय करता है।)

वसन्तसेना—(मन ही मन) तुम्हारी इसी अदा पर तो फिदा हूँ।

चारुदत्त—(धीरे से) खेद है—

संसार में गरीबों का जन्म ही बेकार है। क्योंकि, वह किसी पर न तो खुश होकर कुछ दे ही सकता है और न बिगड़ कर कुछ बिगाड़ ही सकता है ॥ ४० ॥

और भी—संसार में गरीबों की जिन्दगी, पंखहीन पखेरू, सूखे पेड़, सूखे तालाब एवं विषदन्त विहीन साँप की तरह बेकाम है ॥ ४१ ॥

अपि च—

शून्यैर्गृहैः खलु समाः पुरुषा दरिद्राः
कूपैश्च तोयरहितैस्तरुभिश्च शीर्णैः ।
यद् दृष्टपूर्व-जन-सङ्गम-विस्मृताना-
मेवं भवन्ति विफलाः परितोषकालाः ॥ ४२ ॥

विदूषकः—भो ! अलं अदिमेत्तं सन्तप्पिदेण (प्रकाशं, सपरिहासम्) भोदि ! समप्पीअदु मम केरिआ ण्हाण-साडिआ । [**भोः ! अलमतिमात्रं सन्तापितेन । भवति ! समर्प्यतां मम स्नानशाटिका ।**]

वसन्तसेना—अज्जचारुदत्त ! जुत्तं णेदं इमाए रअणावलीए इमं जणं तुलइदुं । [**आर्य चारुदत्त ! युक्तं नेदम् अनया रत्नावल्या इमं जनं तूलयितुम् ।**]

पक्षेति । पक्षविकलः=पत्राभ्यां रहितः, पक्षी=खगः, च=पुनः, शुष्कः=नीरसः, तरुः=वृक्षः, च, जलेन=सलिलेन, हीनम्=रहितम्, सरः=जलाशयः, च उद्धृतदंष्ट्रः=उत्पाटितदशनः, सर्पः=नागः, दरिद्रः=अकिञ्चनः, लोके=संसारे, तुल्यम्=सदृशम्, भवतीति भावः । मालोपमाऽप्रस्तुतप्रशंसयोर्मेलनात् सङ्करः । आर्याजातिश्चेति ॥ ४१ ॥

अन्वयः—शून्यैः, गृहैः, तोयरहितैः, कूपैः, शीर्णैः, तरुभिश्च, समाः दरिद्राः, पुरुषाः खलु, यद्, दृष्टपूर्वजनसङ्गमविस्मृतानाम्, परितोषकालाः, एवं विफलाः, भवन्ति ॥४२॥

शून्यैरिति । शून्यैः=जनहीनैः, गृहैः=सदनैः, तोयरहितैः=जलशून्यैः, कूपैः=उदपानैः, शीर्णैः=पत्रपुष्पविहीनैः, तरुभिः=वृक्षैः, समाः=तुल्याः, खलु=यथार्थतः, दरिद्राः पुरुषाः=निर्धनजनाः, यत्=यतो हि, दृष्टपूर्वस्य=पूर्वपरिचितस्य, जनस्य=लोकस्य, सङ्गमेन=मिलनेन, विस्मृतानाम्=विस्मृतनिजदैन्यानाम्, परितोषकालाः=पुरस्कार प्रदानकालाः, एवम्=अनेनैव प्रकारेण, विफलाः=निष्फलाः, भवन्ति=जायन्ते । मालोपमालङ्कारः । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४२ ॥

विदूषकः—भोः=हे मित्र, अलम्=व्यर्थम्, अतिमात्रम्=अत्यधिकम्, सन्तापितेन=आकुलितेन मनसा । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्, सपरिहासम्=स्मितङ्कृत्वा) भवति=श्रीमति, समर्प्यताम्=देहि, मम स्नानशाटिका=यत्र रत्नहारं निक्षिप्तमासीत्, एतेन आत्मनः सुवर्णभाण्डप्राप्तौ पूर्वदत्तरत्नावलीं प्रत्यर्पणं सूचितम् ।

और भी—गरीब आदमी तो सूने घर, सूखे पेड़, जलहीन कुँए की तरह बेकार हैं जिन्हें पूर्वपरिचित लोग भी पहचान नहीं पाते । खुश होकर भी वे किसी को कुछ दे नहीं पाते ॥ ४२ ॥

विदूषक—भाई, बेकार पछताने से अब क्या फायदा ? (**सबको सुनाकर, हँसते हुए**) श्रीमति जी, अब तो हमारी स्नान साड़ी लौटा दीजिए ।

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त, रत्नहार भेजकर अपने जो मुझे तौलने की चेष्टा की, वह उचित नहीं है ।

चारुदत्तः—(सविलक्षस्मितम्) वसन्तसेने ! पश्य पश्य—

कः श्रद्धास्यति भूतार्थं सर्वो मां तूलयिष्यति ।
शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता ।। ४३ ।।

विदूषकः—हञ्जे ! किं भोदिए इध ज्जेव सुविदव्वं ? [**हञ्जे किं भवत्या इहैव स्वप्तव्यम् ?**]

चेटी—(विहस्य) अज्जमित्तेअ ! अदिमेत्तं दाणिं उजुअं अत्ताणअं दंसेसि ! [**आर्य मैत्रेय ! अतिमात्रमिदानीम् ऋजुमात्मानं दर्शयसि ।**]

विदूषकः—भो वअस्स ! एसो क्खु ओसारअन्तो विअ सुहोवविट्टं जणं पुणोवि वित्थारिवारिधाराहिं पविट्ठो पज्जण्णो [**भो वयस्य ! एष खलु अपसारयन्निव सुखोपविष्टं जनं पुनरपि विस्तारिवारि-धाराभिः प्रविष्टः पर्जन्यः ।**]

चारुदत्तः—सम्यगाह भवान् ।

वसन्तसेना—अनया रत्नावल्या=सुवर्णभाण्डस्य प्रतिशोधभूतया, इमं जनम्=वसन्तसेनाम्, तूलयितुम्=तुलवत् लघूकर्त्तुम्, न, इदम्=एतत्, युक्तम्=उचितमिति ।

चारुदत्तः—(सविलक्षस्मितम्=त्रपामन्दहासाभ्यां सहितम्,) वसन्तसेने पश्य=अवलोकय—

क इति—इदं श्लोकं तृतीयेऽङ्के व्याख्यातम् । (दृष्टव्यं श्लो० २४) ।।४३।।

विदूषकः—हञ्जे=वसन्तसेनाम् प्रति सख्यभावेन विदूषकस्य इदम् सम्बोधनपदम् । किमिति प्रश्ने, भवत्या=श्रीमत्या, इहैव=अत्रैव, स्वप्तव्यम्=शयनं कर्तव्यम् ?

चेटी—(विहस्य=हास्यं कृत्वा,) आर्य=मान्य, मैत्रेय, इदानीम्=अधुना, अतिमात्रम्=अत्यधिकम्, आत्मानम्=स्वम्, ऋजुम्=सरलम्, दर्शयसि ।

विदूषकः—यो वयस्य=हे मित्र, सुखेन=आनन्देन, उपविष्टम्=स्थितम्, जनम्=प्राणिनम्, अपसारयन्=दूरीकुर्वन्, सुसमाच्छादितस्थाने गन्तुं प्रेरयन्निव, पर्जन्यः=मेघः, विस्तारिभिः=वर्धमानाभिः, वारिधाराभिः=सलिलसन्निपातैः प्रविष्टः=समागत इति ।

चारुदत्तः—सम्यक्=उचितमेव, आह=कथितः, भवान्=श्रीमान्—

चारुदत्तः—(**लजाते हुए, मुस्कुराकर**) देखो, वसन्तसेने ।

हमारी बात पर भला विश्वास ही कौन करता ? सभी तो मुझे ही बेइमान समझते । क्योंकि, इस संसार में गरीबी सबके सन्देह का घर है ।। ४३ ।।

विदूषक—चेटी जी, आपकी श्रीमती वसन्तसेना रात में यहीं सोयेगी क्या ?

चेटी—(**हंसकर**) आर्यमैत्रेय, इतने भोले-भाले क्यों बन रहे हो ?

विदूषक—मित्र, देखते नहीं, सुख से बैठे लोगों को हटाते हुए ये बादल अपनी बढ़ती हुई जलधारा के साथ घिर आये हैं ।

चारुदत्त—ठीक कहते हो, मित्र !

अमूर्हि भित्त्वा जलदान्तराणि पङ्कान्तराणीव मृणालसूच्यः ।
पतन्ति चन्द्रव्यसनाद्विमुक्ता दिवोऽश्रुधारा इव वारिधाराः ॥ ४४ ॥

अपि च—

धाराभिरार्यजनचित्तसुनिर्म्मलाभि-
श्चण्डाभिरर्जुन-शर-प्रतिकर्कशाभिः ।
मेघाः स्रवन्ति बलदेव-पट-प्रकाशाः
शक्रस्य मौक्तिकनिधानमिवोद्गिरन्तः ॥ ४५ ॥

अन्वयः—हि, अमूः, वारिधाराः, मृणालसूच्यः पङ्कान्तराणि, इव, जलदान्तराणि, भित्त्वा, चन्द्रव्यसनात्, विमुक्ताः, दिवः, अश्रुधाराः इव, पतन्ति ॥ ४४ ॥

अमूर्हीति । हि=इति निश्चयः, अमूः=एता, पुरोवर्त्तिनः, वारिधाराः=जलधाराः, मृणालानाम्=बिसानाम्, सूच्यः=अङ्कुराः, पङ्कस्य=कर्दमस्य, अन्तराणि=अन्तर्भागान्, इव, जलदानाम्=मेघानाम्, अन्तराणि=मध्यभागानि, भित्वा=विदार्य, चन्द्रस्य=शशिनः, व्यसनात्=जलदावरणरूपापत्तेर्मरणरूपापत्तेश्च विमुक्ताः=गगनाद् नेत्राच्च प्रवाहिताः । दिवः=गगनस्य, अश्रुधाराः=नयनाम्बुधाराः, इव पतन्ति=निःसरन्ति । अस्मिन् श्लोके पङ्कान्तराणीवेति श्रौती उपमा, दिवोऽश्रुधारा इवेति जात्युत्प्रेक्षा, चन्द्रदिवोर्नायकनायिकाव्यवहारारोपात् समासोक्तिश्चेति । उपजातिर्वृत्तम् ॥ ४४ ॥

अन्वयः—बलदेवपटप्रकाशाः, मेघाः आर्यजनचित्तसुनिर्मलाभिः, अर्जुनशरप्रतिकर्कशाभिः, चण्डाभिः, धाराभिः, शक्रस्य, मौक्तिकनिधानम्, उदगिरन्तः, इव, स्रवन्ति ॥ ४५ ॥

धाराभिरिति । बलदेवस्य=कृष्णाग्रजबलरामस्य, पटः=नीलवस्त्रम्, तद्वत् प्रकाशः=आभा येषां ते तथोक्तः, मेघाः=वारिवाहाः, आर्यजनस्य=सुसभ्यलोकस्य, चित्तवत्=अन्तःकरणमिव सुनिर्मलाः=अतिविमलास्ताभिः, अर्जुनस्य=पार्थस्य, शरवत्=बाणा इव, प्रतिकर्कशाभिः=अत्यधिककठोराभिः, चण्डाभिः=प्रचण्डाभिः, धाराभिः=सलिलप्रवाहैः, शक्रस्य=इन्द्रस्य, मौक्तिकानाम्=मुक्तानाम्, निधानम्=निधिम्, उद्गिरन्तः=निःसारयन्तः, इव स्रवन्ति=वर्षन्ति । अस्मिन् श्लोके सर्वत्रलुप्तोपमा, उद्गिरन्त इवेत्यंशे क्रियोत्प्रेक्षा सङ्करश्चेति । वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ ४५ ॥

निश्चय ही कीचड़ को चीरकर निकली कमललता की जड़ के अंकुर की तरह बादल के पेट को चीरकर निकली ये जलधाराएँ आकाश की आँखों से चूते मानो आँसू की धारा है अपने प्रेमी चन्द्रमा पर आई विपत्ति के कारण ही उसने ऐसा किया है ॥ ४४ ॥

और भी—बलदेवजी के नीले वस्त्रों की कान्ति की तरह ये मेघ सज्जनों के चित्त की तरह निर्मल तथा अर्जुन के प्रचण्डबाणों की तरह कठोर एवं तीखी धाराओं से मानो इन्द्र के मोतियों के खजाने को लुटा रहा है ॥ ४५ ॥

प्रिये ! पश्य पश्य—

एतैः पिष्ट-तमाल-वर्णकनिभैरालिप्तमम्भोधरैः
संसक्तैरुपवीजितं सुरभिभिः शीतैः प्रदोषानिलैः ।
एषाऽम्भोद-समागम-प्रणयिनी स्वच्छन्दमभ्यागता
रक्ता कान्तमिवाम्बरं प्रियतमा विद्युत् समालिङ्गति ॥ ४६ ॥

(वसन्तसेना शृङ्गारभावं नाटयन्ती चारुदत्तमालिङ्गति ।)

चारुदत्तः—(स्पर्शं नाटयन्, प्रत्यालिङ्ग्य)

भो मेघ ! गम्भीरतरं नद त्वं तव प्रसादात् स्मरपीडितं मे ।
संस्पर्शरोमाञ्चितजातरागं कदम्बपुष्पत्वमुपैति गात्रम् ॥ ४७ ॥

प्रिये=वल्लभे, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—अम्भोदसमागमप्रणयिनी, स्वच्छन्दम्, अभ्यागता, रक्ता, प्रियतमा, इव, एषा, विद्युत्, पिष्टतमालवर्णकनिभैः, एतैः, अम्भोधरैः, आलिप्तम्, संसक्तैः, सुरभिभिः, शीतैः, प्रदोषानिलैः, उपवीजितम्, च, कान्तम् इव, अम्बरम् समालिङ्गति ॥ ४६ ॥

एतैरिति । अम्भोदेन=मेघेन, सह समागमः=सम्मेलनम्, तत्र प्रणयिनी=प्रेमशालिनी, पक्षे–मेघोदयात् प्रियमिलनोत्सुका प्रणयिनी, स्वच्छन्दम्=स्वतन्त्रम्, अभ्यागता =समागता, प्रियतमा पक्षे—प्राप्ता, रक्ता=अनुरक्ता, प्रियतमेव=बल्लभेव, एषा=मेघसमूहे स्फुरन्ती, विद्युत्=तडित्, पिष्टम्=चूर्णीकृतम्, यत् तमालवर्णकम्=तमालपत्रस्य विलेपनम्, 'वर्णकः स्याद्विलेपनम्' इत्यमरः । तत्सन्निभैः=तत्सदृशनीलवर्णैः, एतैः= पुरोदृश्यमानैः, अम्भोधरैः=मेघैः, आलिप्तम्=कृतालेपनम्, तथा संसक्तैः=घनीभूतैः, सुरभिभिः=सुगन्धिभिः, शीतैः=शीतलैः, प्रदोषानिलैः=सान्ध्यपवनैः, उपवीजितम्= विहितव्यजनम्, कान्तम्=प्रणयिनम् इव, अम्बरम्=गगनम्, समालिङ्गति=आलिङ्गनम् करोति । समासोक्तिरलङ्कारः, शार्दूलविडितं वृत्तम् ॥ ४६ ॥

(वसन्तसेना, शृङ्गारभावम्=सम्भोगस्पृहाम्, नाटयन्ती=अभिनयन्ती, चारुदत्तम्=सार्थवाहम्, आलिङ्गति=श्लिष्यति ।)

चारुदत्तः—(स्पर्शम्=संसर्गम्, नाटयन्=अभिनयन्, प्रत्यालिङ्ग्य=प्रत्याश्लेषङ्कृत्वा ।)

प्रिये, देखो देखो—मेघ के संगम की प्रबल इच्छावाली, अपनी इच्छा से आई हुई, अनुरक्ता यह बिजली रूपी प्रियतमा, पत्थरों पर कूटे तमालपत्र की तरह काले मेघों से अनुलिप्त तथा एकीभूत सुरभित, शीतल सान्ध्यपवन से पंखा झले जाते हुए आकाशरूपी प्रियतम का आलिङ्गन कर रही है ॥ ४६ ॥

(वसन्तसेना कामुक भावना प्रदर्शित करती हुई चारुदत्त का आलिङ्गन करती है ।)

चारुदत्त—(स्पर्श का अनुभव करते हुए आलिङ्गन करता है ।)

हे मेघ, तुम और जोर से गरजो । तुम्हारी कृपा से काम पीड़ित मेरी देह वसन्त-

विदूषकः—दासीए पुत्त ! दुद्दिण ! अणज्जो दाणिं सि तुमं, जं अत्तभोदि विज्जुआए भाअवेसि । [**दास्याः पुत्र ! दुर्दिन ! अनार्य इदानीमसि त्वम्, यदत्रभवतीं विद्युता भाययसि ।**]

चारुदत्तः—वयस्य ! नार्हस्युपालब्धुम् ।

वर्षशतमस्तु दुर्दिनमविरतधारं शतह्लदा स्फुरतु ।
अस्मद्विधदुर्लभया यदहं प्रियया परिष्वक्तः ।। ४८ ।।

अपि च—वयस्य !

धन्यानि तेषां खलु जीवितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम् ।
आर्द्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति ।। ४९ ।।

अन्वयः—भो मेघ, त्वम्, गम्भीरतरम्, नद । तव, प्रसादात्, स्मरपीडितम्, मे, गात्रम्, संस्पर्शरोमाञ्चितजातरागम्, कदम्बपुष्पत्वम् उपैति ।। ४७ ।।

भो मेघ इति । भो मेघ=हे जलद, त्वम्=भवान्, गम्भीरतम्=घोरतरम्, नद=रवं कुरु । तव=भवतः, प्रसादात्=अनुग्रहात्, स्मरपीडितम्=मदनसन्तप्तम्, मे=मम, गात्रम्=देहम्, संस्पर्शेन=वसन्तसेनासंसर्गेण, रोमाञ्चितम्=पुलकितम्, तस्मात् जातः=समुत्पन्नः, रागः=अनुरागः यस्मिन् तथाभूतं सत् कदम्बपुष्पत्वम्=कदम्बपुष्पवत्, उपैति=शोभतीति भावः । निदर्शनालङ्कारः, उपजातिर्वृत्तम् ।। ४७ ।।

विदूषकः—दास्याः=सेविकायाः, पुत्र=सुत, दुर्दिन=मेघाच्छन्नो दिवस, अनार्य=अधम, इदानीम्=अधुना, त्वम्=भवान्, अत्रभवतीम्=पूज्यवसन्तसेनाम्, विद्युता=तडिता, भाययसि=त्रासयसि ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, नार्हसि=न शक्नोसि, उपालब्धुम्=अधिक्षेप्तुम् ।

अन्वयः—अविरतधारम्, दुर्दिनम्, वर्षशतम्, अस्तु, शतह्लदा, स्फुरतु, यत्, अहम्, अस्मद्विधदुर्लभया, प्रियया, परिष्वक्तः ।। ४८ ।।

वर्षेति । अविरतधारम्=निरवच्छिन्नजलधारम्, दुर्दिनम्=मेघाच्छन्नदिनम्, वर्षशतम्=वर्षाणां शतम्, अस्तु=भवतु, शतह्लदा=विद्युत्, स्फुरतु=स्फुरणं करोतु, यत्=यस्मात्, अस्मद्विधानाम्=अस्मादृशाकिञ्चनानाम्, दुर्लभया=दुष्प्रापया, प्रियया=वसन्तसेनया, परिष्वक्तः=यथेच्छमालिङ्गितः । आर्यावृत्तम् ।। ४८ ।।

सेना के सम्पर्क रोमांचित एवं पुलकित हो उठी है, लगता है जैसे कदम्बवृक्ष विकसित फूलों से लदा है ।। ४७ ।।

विदूषक—अरे दासीपुत्र दुर्दिन, तुम बड़े दुष्ट हो, अपनी बिजली से अकारण श्रीमति वसन्तसेना को डरा रहे हो ।

चारुदत्त—मित्र, इस तरह इस मेघ को नहीं कोसना चाहिए ।

लगातार मेघ सैकड़ों साल तक बरसते रहें, विजलियाँ चमकती रहें, क्योंकि, मेरे जैसे गरीब के लिए दुर्लभकामिनी वसन्तसेना ने इसी दुर्दिन के कारण मुझे आलिङ्गत किया है ।। ४८ ।।

और भी मित्र !—उन्हीं लोगों का जीवन धन्य है जिनके दरवाजे पर वर्षा में

प्रिये ! वसन्तसेने !

स्तम्भेषु प्रचलित-वेदि-सञ्चयान्तं
शीर्णत्वात् कथमपि धार्यते वितानम् ।
एषा च स्फुटित-सुधा-द्रवानुलेपात्
संक्लिन्ना सलिल-भरेण चित्रभित्तिः ॥ ५० ॥

(ऊर्द्ध्वमवलोक्य) अये ! इन्द्रधनुः । प्रिये ! पश्य पश्य—

विद्युज्जिह्वेनेदं महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन ।
जलधर-विवृद्ध-हनुना विजृम्भितमिवान्तरीक्षेण ॥ ५१ ॥

अन्वयः—तेषाम्, जीवितानि, खलु, धन्यानि, ये, गृहम्, आगतानाम्, कामिनीनाम्, मेघोदकशीतलानि, गात्राणि, गात्रेषु, परिष्वजन्ति ॥ ४९ ॥

धन्यानीति । तेषाम्=जनानाम्, जीवितानि=जीवनानि, खलु=निश्चयेन, धन्यानि=सफलानि, ये=जनाः, गृहम्=स्वसदनम्, आगतानाम्=सम्प्राप्तानाम्, कामिनीनाम्=मदनविह्वलानां सुन्दरीणाम्, मेघानाम्=जलदानाम्, उदकैः=सलिलैः, शीतलानि=शैत्यानि, गात्राणि=शरीराणि, गात्रेषु=स्वकीयाऽङ्गेषु, परिष्वजन्ति=गाढमालिङ्गन्ति । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, इन्द्रवज्रावृत्तञ्चेति ॥ ४९ ॥

अन्वयः—प्रचलितवेदिसञ्चयान्तम्, वितानम्, शीर्णत्वात्, स्तम्भेषु, कथमपि, धार्यते, एषा, चित्रभित्तिः, च, स्फुटितसुधाद्रवानुलेपात्, सलिलभरेण, सङ्क्लिन्ना ॥५०॥

स्तम्भेष्विति । प्रचलितः=कम्पितः, पवनगत्येति शेषः, वेद्याः=बद्धभूमेः, सञ्चये=समूहे, अन्तः=प्रान्तभागः यस्य तादृशम्, वितानम्=वस्त्रवेश्म 'वितानमुल्लोचो दूष्याद्यं वस्त्रवेश्मनि' इत्यमरः । शीर्णत्वात्=अतिजीर्णत्वात्, स्तम्भेषु=स्थूणासु, कथमपि=महता दुःखेन, धार्यते=येन केन प्रकारेण स्थीयते, एषा=पुरोदृश्यमाना, चित्रभित्तिः=चित्रैः अलङ्कृतं कुड्यञ्चेति, स्फुटितः=यत्र तत्र गलितः, यः सुधाद्रवः=लिप्ततरलचूर्णस्तस्यानुलेपात्=विलेपनात्, सलिलभरेण सलिलाधिक्येन, संक्लिन्ना=आर्द्राः जाता । अतः अत्र न स्थातव्यमित्यर्थः । प्रहर्षिणीवृत्तञ्चेति ॥ ५० ॥

(ऊर्ध्वम्=उपरि, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इत्याश्चर्यम्, इन्द्रधनुः=देवेन्द्रचापम्, प्रिये=प्रियतमे, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—विद्युज्जिह्वेन, महेन्द्रचापोच्छ्रितायतभुजेन, जलधरविवृद्धहनुना, अन्तरीक्षेण, विजृम्भितम् ॥ ५१ ॥

भींगकर अपनी इच्छा से कोई कामिनी उपस्थित हो तथा भींगीं और ठंडी अपनी देह को बाहों में जकड़कर गर्मी पहुँचाने का उन्हें मौका दे ॥ ४९ ॥

प्रिय वसन्तसेने !—वेदिकाओं के भीतरी भागवाला पुराना वितान हवा की झोंकों से काँप रहा है । उसके भार को ये पुराने खूंटे अब ढो नहीं पा रहे हैं, और ये भित्ति चित्र भी चूना गलने के कारण भीतर से बलबला उठे हैं ॥ ५० ॥

(ऊपर की ओर देखकर) अहा, प्रियतमे देखो तो—

लगता है जैसे मेघ नहीं बरस रहा है बल्कि आकाश ने मुंह खोलकर जंभाई ली

तदेहि, अभ्यन्तरमेव प्रविशावः। (इत्युत्थाय परिक्रमति ।)

तालीषु तारं विटपेषु मन्द्रं शिलासु रुक्षं सलिलेषु चण्डम्।
सङ्गीतवीणा इव ताडयमानास्तालानुसारेण पतन्ति धाराः ॥ ५२ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

दुर्द्दिनो नाम पञ्चमोऽङ्कः

विद्युदिति। विद्युत्=चपला एव, जिह्वा=रसना यस्य तेन, महेन्द्रस्य=इन्द्रस्य, चापः=धनुः एव उच्छ्रितौ=उपरि प्रसारितौ, भुजौ=बाहू यस्य तादृशेन, जलधरः= मेघः, एव विवृद्धः=वृद्धिगतः, हनुः=चिबुकम्, यस्य तथोक्तेन, अन्तरीक्षेण=गगनेन, विजृम्भितमिव=मुखव्यादानमिव विहितमित्यर्थः। रूपकालङ्कारः, आर्यावृत्तञ्चेति ॥५१॥

तत्=वज्रपातादिशङ्कया, अभ्यन्तरम्=गृहाभ्यन्तरम्, एहि=प्रविश। (इति= एवमुक्त्वा, उत्थाय=उत्थितोभूत्वा, परिक्रामति=भ्रमति ।)

अन्वयः—तालानुसारेण, ताडयमानाः, सङ्गीतवीणा, इव, धाराः, तालीषु, तारम्, विटपेषु, मन्द्रम्, शिलासु, रूक्षम्, सलिलेषु, चण्डम्, पतन्ति ॥ ५२ ॥

तालीस्विति। तालानुसारेण=सङ्गीताङ्गतालानुकूलेन, ताडयमानाः=वाद्यमाना सङ्गीतवीणा=सङ्गीततन्त्री, इव=यथा, धाराः=जलधाराः, तालीषु=तालवनेषु, तालपत्रेषु वा, तारम्=उच्चैः, विटपेषु=वृक्षशाखासु, मन्द्रम्=गुरुगम्भीरम्, शिलासु= प्रस्तरखण्डेषु, रुक्षम्=कर्कशम्, सलिलेषु=जलेषु, चण्डम्=अतितीव्रम्, पतन्ति= वर्षन्ति। उपमालङ्कारः, उपजातिवृंतम् ॥ ५१ ॥

(इति=एवमुक्तौ सत्यामित्यर्थः, सर्वे=वसन्तसेनया सह चारुदत्तप्रभृतयः, निष्क्रान्ताः=प्रस्थिता, रङ्गभूमितः इति शेषः ।)

मृच्छकटिके दुर्दिनशोभायाः प्रधानवर्ण्यत्वात्
दुर्दिनो नाम पञ्चमोऽङ्कः ॥

है। लाल-लाल विजलियाँ ही इनकी लपलपाती जीभ हैं, इन्द्रधनुष ही इनकी विशाल बाहें हैं, मेघ का फैलाव ही इनकी दाढी है ॥ ५१ ॥

इसलिए चलो अब हमलोग भीतर ही चलें। (**उठकर घूमता है।**)

वरसा की धारा ताल के पत्तों पर ऊँची आवाज से, पेड़ों की डालियों पर ग़ंभीर, पत्थर की चट्टानों पर कर्कश तथा जल में प्रचण्डध्वनिके साथ बजायी गई संगीत वीणा की तरह काललय के साथ गिर रही हैं ॥ ५२ ॥

(**सब निकल जाते हैं।**)

दुर्दिननामक पाँचवाँ अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी ।)

चेटी—कधं अज्ज वि अज्जआ ण विवुज्झदि । भोदु, पविसिअ पडिबोधइस्सं । (इति नाटचेन परिक्रामति ।) [**कथमद्यापि आर्या न विवुध्यते। भवतु, प्रविश्य प्रतिबोधयिष्यामि ।**]

(ततः प्रविशति आच्छादितशरीरा प्रसुप्ता वसन्तसेना ।)

चेटी—(निरूप्य) उत्थेदु उत्थेदु अज्जआ । पभादं संवुत्तं ? [**उत्तिष्ठतु उत्तिष्ठतु आर्या । प्रभातं संवृत्तम् ।**]

वसन्तसेना—(प्रतिबुद्धय) कधं रत्ति ज्जेव पभादं संवुत्तं ? [**कथं रात्रिरेव प्रभातं संवृत्तम् ?**]

चेटी—अम्हाणं एसो पभादो, अज्जआए उण रत्ति ज्जेव । [**अस्माकमेतत् प्रभातम्, आर्यायाः पुना रात्रिरेव ।**]

(चेटी=चारुदत्तस्य सेविका, प्रविशति=रङ्गमञ्चे उपस्थिता भवति ।)

चेटी—कथमिति जिज्ञासायाम्, अद्यापि=एतावत्काले व्यतीतेऽपि, आर्या=वसन्तसेना, न=नहि, विबुध्यते=निद्रां त्यजति, भवतु=यातु, प्रविश्य=अन्तःप्रकोष्ठे प्रविश्य, प्रतिबोधयिष्यामि=जागरितुं प्रेरयिष्यामि । (इति=इत्थम् विचिन्त्य, नाट्चेन =अभिनयेन, परिक्रामति=परिभ्रमणं करोति ।)

(ततः=तत्पश्चात्, आच्छादितशरीरा=आवृतदेहा, प्रसुप्ता=निद्रिता, प्रविशति=दृष्टिगोचरा भवति ।)

चेटी—(निरूप्य=अवलोक्य) उत्तिष्ठतु=निद्रां त्यजतु, आर्या=वसन्तसेना, प्रभातं संवृत्तम्=व्यतीता रजनी ।

वसन्तसेना—(प्रतिबुध्य=निद्रां विहाय) कथमिति प्रश्ने, रात्रिरेव=निशा एव प्रभातम्=प्रातःकालम्, संवृत्तम्=संजातम्, सुरतासङ्गेन रात्रिं व्यतीत्य निद्रितायाः वसन्तसेनया, उक्तिरियम् ।

चेटी—अस्माकम्=निशायां शयानानां नः, एतत्=कालम्, प्रभातम्=प्रत्यूषम्, आर्यायाः=मान्यायाः, पुनः=भूयः, रात्रिः=निशा, एव ।

(इसके बाद मंच पर चेटी का प्रवेश)

चेटी—क्या अभी तक आर्या वसन्तसेना सोयी हैं ? अच्छा तो चलकर उन्हें जगाती हूँ । **(अभिनय पूर्वक मंच पर घूमती है ।)**

(इसके बाद चादर से देह ढँककर वसन्तसेना सोई हुई दिखलाई पड़ती है ।)

चेटी—(देखकर) आर्ये, उठो, उठो, सवेरा हो गया ।

वसन्तसेना—(जगकर) क्या रात ही भोर हो गई ?

चेटी—हमलोगों के लिए तो सबेरा हो गया, किन्तु श्रीमति के लिए अभी रात है ही ।

वसन्तसेना—हञ्जे ! कहिं उण तुम्हाणं जूदिअरो ? [हञ्जे ! कस्मिन् पुनर्युष्माकं द्यूतकरः ?]

चेटी—अज्जए ! वड्ढमाणअं समादिसिअ पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं गदो अज्जचारुदत्तो । [आर्ये ! वर्द्धमानकं समादिश्य पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं गत आर्य-चारुदत्तः ।]

वसन्तसेना—किं समादिसिअ ? [किं समादिश्य ?]

चेटी—जोएहि रत्तीए पवहणं । वसन्तसेना गच्छदु त्ति । [योजय रात्रौ प्रवहणम् । वसन्तसेना गच्छतु इति ।]

वसन्तसेना—हञ्जे ! कहिं मए गंतव्वं ? [हञ्जे ! कस्मिन् मया गन्तव्यम् ?]

चेटी—अज्जए ! जहिं चारुदत्तो । [आर्ये ! यस्मिन् चारुदत्तः ।]

वसन्तसेना—(चेटीं परिष्वज्य) सुट्ठु ण णिज्झाइदो रत्तीए । ता अज्ज पच्चक्खं पेक्खिस्सं । हञ्जे ! किं पविट्ठा अहं इह अब्भन्तरचदुस्सालअं ?

वसन्तसेना—हञ्जे=परिचारिके, कस्मिन्=कुत्र, युष्माकम्=वः, द्यूतकरः= अक्षदेविन् ?

चेटी—आर्ये=मान्ये, वर्द्धमानकं=एतदाख्यसेवकम्, समादिश्य=आदेशं दत्वा, पुष्पकरण्डकम्=इदमेकस्योद्यानस्य नाम, जीर्णोद्यानम्=शीर्णवाटिकाम्, आर्यचारुदत्तः गतः=प्रस्थितः ।

वसन्तसेना—किं समादिश्य=किमादेशं दत्वा गतः ?

चेटी—रात्रौ=निशायाम्, प्रवहणम्=वृषभवाहनम्, योजय=प्रस्तुतं कुरु, वसन्तसेना गच्छतु=यातु ।

वसन्तसेना—हञ्जे=सेविके, कस्मिन्=कुत्र, मया=वसन्तसेनया, गन्तव्यम्= प्राप्तव्यम् ?

चेटी—आर्ये=मान्ये, यस्मिन्=यत्र, चारुदत्तः=आर्यः ।

वसन्तसेना—(चेटीम्=दासीम्, परिष्वज्य=समालिङ्ग्य) हञ्जे=आलि,

वसन्तसेना—अच्छा तो तुम्हारे जुआरी जी कहाँ चले गये ?

चेटी—वर्द्धमानक को हुक्म देकर स्वयं आर्य चारुदत्त पुष्पकरण्डक नामक पुरानी वाटिका में गये हैं ।

वसन्तसेना—क्या कहकर गये हैं ?

चेटी—अगली रात के लिए बैलगाड़ी ठीक करो । आर्या वसन्तसेना उस पर सवार होकर जायेगी ।

वसन्तसेना—अरी, मुझे कहाँ जाना होगा ?

चेटी—मान्ये, जहाँ आर्य चारुदत्त गये हैं ।

वसन्तसेना—(चेटी को गले लगाकर) रात में उन्हें मैंने ठीक से नहीं देखा,

[हञ्जे ! सुष्ठु न निध्यातो रात्रौ । तदद्य प्रत्यक्षं प्रेक्षिष्ये । हञ्जे ! किं प्रविष्टा अहमिह अभ्यन्तरचतुःशालकम् ?]

चेटी—ण केवलं अब्भन्तरचदुस्सालअं । सव्वजणस्स वि हिअअं पविट्ठा । [न केवलमभ्यन्तरचतुःशालकम्, सर्वजनस्यापि हृदयं प्रविष्टा ।]

वसन्तसेना—अवि सन्तप्पदि चारुदत्तस्स परिअणो ? [अपि सन्तप्यते चारुदत्तस्य परिजनः ?]

चेटी—सन्तप्पिस्सदि । [सन्तप्स्यति ।]

वसन्तसेना—कदा ? [कदा ?]

चेटी—जदा अज्जआ गमिस्सदि । [यदा आर्या गमिष्यति ।]

वसन्तसेना—तदो मए पढमं सन्तप्पिदव्वं । (सानुनयम्) हञ्जे ! गेण्ह

सुष्ठु=सम्यक् प्रकारेण, रात्रौ=निशायाम्, न=नहि, निध्यातः=अवलोकितः, तत् =तस्मात्, अद्य=दिने, प्रत्यक्षम्=स्पष्टतः, प्रेक्षिष्ये=अवलोकयिष्यामि, हञ्जे= सेविके, किमिति प्रश्ने, इह=अस्मिन् गृहे, अहम्=वसन्तसेना, अभ्यन्तरचतुःशालकम् =अन्तःपुरम्, प्रविष्टा=प्रवेशङ्कृता । चतसृणां शालानां समाहारः चतुःशालम् तस्याभ्यन्तरे इति अभ्यन्तरचतुःशालकम् ।

चेटी—न=नहि, केवलम्=मात्रम्, अभ्यन्तरचतुःशालकम्=अन्तःपुरम्, प्रत्युत सर्वजनस्य=चारुदत्तगृहवासिनो जनस्य, हृदयम्=चेतसि, प्रविष्टा=स्नेहाधिकारिणी सञ्जाता ।

वसन्तसेना—अपि=चेत्, प्रश्नार्थे प्रयुक्तोऽपिशब्दः, चारुदत्तस्य=सार्थवाहस्य, परिजनः=पारिवारिकजनः विशेषतस्तस्य पत्नी, सन्तप्यते=सपत्नीत्वबुद्धया, गणिकागमनबुद्धया च सन्तापं प्राप्स्यति किम् ?

चेटी—सन्तप्स्यति=सन्तापं गमिष्यति ।

वसन्तसेना—कदा=कस्मिन् समये सन्तापं गमिष्यति ?

चेटी—यदा=यस्मिन् काले, आर्या=मान्या, गमिष्यति=अन्नतः यास्यति तदा परिजनः सन्तप्स्यते ।

वसन्तसेना—ततः=तस्मात्, प्रथमम्=पूर्वम्, मया=वसन्तसेनया, सन्तप्तव्यम्

अतः आज दिन में उन्हें अच्छी तरह देखूँगी । सखी यह तो बतलाओ क्या मैं अभी उनके अन्तःपुर में हूँ ?

चेटी—केवल अन्तःपुर में ही नहीं, बल्कि आप हम सबों के दिल में समा गईं हैं ।

वसन्तसेना—क्या आर्य चारुदत्त के परिचर हमारे यहाँ आने से दुःखी हैं ?

चेटी—हैं नहीं, पर दुःखी होंगे ।

वसन्तसेना—कब ?

चेटी—जब आप यहाँ से जायेंगी ?

वसन्तसेना—तो सबसे पहले तो मुझे ही दुःखी होना चाहिए । (विनम्र भाव से)

एदं रअणावलिं, मम वहिणिआए अज्जाधूदाए गदुअ समप्पेहि। भणिदव्वं अ—'अहं सिरिचारुदत्तस्स गुणणिज्जिदा दासी, तहा तुम्हाणं पि; ता एसो तुह ज्जेव कण्ठाहरणं होदु रअणावली। [ततो मया प्रथमं सन्तप्तव्यम्। हञ्जे ! गृहाण एतां रत्नावलीं मम भगिन्यै आर्याधूतायै गत्वा समर्पय, वक्तव्यञ्च—'अहं श्रीचारुदत्तस्य गुणनिर्जिता दासी, तदा युष्माकमपि। तदेषा तवैव कण्ठाभरणं भवतु रत्नावली।]

चेटी—अज्जए ! कुविस्सदि चारुदत्तो अज्जाए दाव। [आर्ये ! कुपिष्यति चारुदत्त आर्यायै तावत्।]

वसन्तसेना—गच्छ, ण कुविस्सदि। [गच्छ, न कुपिष्यति।]

चेटी—(गृहीत्वा) जं आणवेदि। (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविशति) अज्जए ! भणादि अज्जा धूदा--अज्जउत्तेण तुम्हाणं पसादीकिदा, ण जुत्तं मम एदं गेण्हिदुं। अज्जउत्तो ज्जेव मम आहरणविसेसो त्ति जाणादु भोदी।

=तद्विशिष्टगुणेन वशीकृतत्वात् शोचनीयम्। (सानुनयम्=सविनयम्।) हञ्जे=सेविके, गृहाण=हस्ते क्रियताम्, एतां रत्नावलीं=रत्नहारम्, मम=वसन्तसेनायाः, भगिन्यै=स्वस्रे, आर्याधूतायै=चारुदत्तपत्न्यै, गत्वा=समीपं यात्वा, समर्पय=देहि, वक्तव्यम्=सूचितव्यम्, इयम्=एषा, श्रीचारुदत्तस्य गुणैः=दयादाक्षिण्यादिभिः, निर्जिता=वशीकृता, दासी=सेविका, तदा=तर्हि, युष्माकमपि=धूताया अपि दासी। तत्=तस्मात्, एषा=रत्नावली, तवैव=धूतायाः एव, कण्ठाभरणम्=कण्ठभूषणम्, रत्नावली=रत्नहारः, भवतु=अस्तु, इदं कण्ठहारं स्वामिनीयोग्यम्, मम कण्ठे तु नार्हतीति भावः।

चेटी—आर्ये=मान्ये, कुपिष्यति=कोपं करिष्यति, प्रदत्तवस्तुनः पुनरादानात् इत्यर्थः।

वसन्तसेना—गच्छ=व्रज, न कुपिष्यति=क्रोधं न करिष्यति।

चेटी—(गृहीत्वा=रत्नहारं नीत्वा) यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा, पुनः=भूयः, प्रविशति=उपस्थिता भवति।)

सखि, यह रत्नहार लो और मेरी ओर से मेरी बहन, आर्य चारुदत्त की धर्मपत्नी आर्या धूता को सौंप दो। उनसे कहना—आर्य चारुदत्त के गुणों खिचकर मैं उनकी दासी बनकर यहाँ आई हूँ। मैं उनकी दासी हूँ, अतः आर्या धूता की भी दासी हूँ। इसलिए यह रत्नहार उनके गले ही शोभेगा।

चेटी—आर्ये, तो फिर आर्य चारुदत्त मान्या धूता पर नाराज होंगे।

वसन्तसेना—जाओ न, वे बिल्कुल नाराज नहीं होंगे।

चेटी—(हार लेकर) अब आप जैसा कहें (बाहर निकल जाती है और कुछ क्षण के बाद पुनः लौटकर आ जाती है।) उनका कहना है कि 'आर्यपुत्र ने

[यदाज्ञापयति । आर्ये ! भणत्यार्या धूता—'आर्यपुत्रेण युष्माकं प्रसादीकृता न युक्तं ममैतां ग्रहीतुम् । आर्यपुत्र एव मम आभरणविशेष इति जानातु भवती ।']

(ततः प्रविशति दारकं गृहीत्वा रदनिका ।)

रदनिका—एहि वच्छ ! सअडिआए कीलम्ह । [एहि वत्स ! शकटिकया क्रीडावः ।]

दारकः—(सकरुणम्) रदणिए ! किं मम एदाए मट्टिआसडिआए, तं ज्जेव सोवरण्ण-सअडिअं देहि । [रदनिके ! किं मम एतया मृत्तिकाशकटिकया; तामेव सौवर्णशकटिकां देहि ।]

रदनिका—(सनिर्वेदं निःश्वस्य) जाद । कुदो अम्हाणं सुवण्ण-ववहारो ? तादस्स पुणो वि रिद्धीए सुवण्णसअडिआए कीलिस्ससि । ता जाव विणोदेमि णं । अज्जआवसन्तसेणाआए समीवं उपसप्पिस्सं । (उपसृत्य) अज्जए !

आर्या=मान्या, धूता भणति=कथयति, आर्यपुत्रेण=चारुदत्तेन, युष्माकं=वः, प्रसादीकृता=उपायनीकृता, प्रसन्नं भूत्वा तुभ्यं प्रदत्ता । तदा मम=धूतायाः ग्रहीतुम्=इदनाभूषणं ग्रहीतुम्, न युक्तम्=नोचितम् । आर्यपुत्र एव=पतिश्चारुदत्त एव, मम=धूतायाः, आभरणविशेषः=प्रधानाभूषणम्, इति=इत्थम्, जानातु, भवती=श्रीमती ।

(ततः=तत्पश्चात्, दारकम्=शिशुम्, गृहीत्वा=नीत्वा, रदनिका=चारुदत्तगृहदासी, प्रविशति ।)

रदनिका—एहि=आगच्छ, वत्स=पुत्र, शकटिकया=लघुशकटेन, क्रीडावः=खेलावः ।

दारकः—(सकरुणम्=दुःखितो भूत्वा) मम=दारकस्य, एतया=अनया, मृत्तिकाशकटिकया=मृच्छकटिकेन, किम्प्रयोजनम् ? तामेव=पूर्वदृष्टामेव, सौवर्णशकटिकाम्=कनकनिर्मितशकटिकाम्, देहि=आनय ।

अस्य प्रकरणस्य मृच्छकटिकमिति नामकर्त्तुमेव कविनाऽत्र मृत्तिकया निर्मिताया शकटिकायाः अवतारणं कृतमिति बोध्यम् ।

रदनिका—(सनिर्वेदम्=सखेदम्, निःश्वस्य=निश्वासं गृहीत्वा) जात=हे सुत, कुतः=कस्मात्, अस्माकम्=नः, सुवर्णव्यवहारः=कनकव्यवसायः, तातस्य=

प्रसन्न होकर यह हार आपको दिया है, अतः इसे आप से पुनः लौटा लेना उचित नहीं । फिर उन्होंने कहा कि आर्यपुत्र ही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ आभूषण हैं, ऐसा आपको जानना चाहिए ।

(इसके बाद रदनिका बालक को लेकर मंच पर आती है ।)

रदनिका—आओ बेटे, इस गाड़ी से हम लोग खेलें ।

बालक—(सकरुण भाव से) रदनिके, मुझे इस मिट्टी की गाड़ी से क्या मतलब ? मुझे तो वही सोने वाली गाड़ी चाहिए ।

रदनिका—(गहरी साँस लेकर, दुःख के साथ) बेटे, हमारे घर सोने का व्यव-

पणमामि [जात ! कुतोऽस्माकं सुवर्णव्यवहारः ? तातस्य पुनरपि ऋद्ध्या सुवर्ण-शकटिकया क्रीडिष्यसि । तद्यावद्विनोदयाम्येनम् । आर्याया वसन्तसेनायाः समीपमुपसर्पिष्यामि । आर्ये ! प्रणमामि ।]

वसन्तसेना—रदणिए ! साअदं दे । कस्स उण अअं दारओ ? अणलंकिद-सरीरो वि चन्दमुहो आणंदेदि मम हिअअं । [रदनिके ! स्वागतं ते । कस्य पुनरयं दारकः ? अनलङ्कृतशरीरोऽपि चन्द्रमुख आनन्दयति मम हृदयम् ।]

रदनिका—एसो क्खु अज्जचारुदत्तस्स पुत्तो रोहसेणो णाम । [एष खलु आर्यचारुदत्तस्य पुत्रो रोहसेनो नाम ।]

वसन्तसेना—(बाहू प्रसार्य) एहि मे पुत्तअ ! आलिङ्ग । (इत्यङ्क उपवेश्य) अणुकिदं अणेण पिदुणो रूवं । [एहि मे पुत्रक ! आलिङ्ग । अनुकृतमनेन पितुः रूपम् ।]

जनकस्य, पुनरपि=भूयोऽपि, ऋद्ध्या=सम्पत्त्या, सुवर्णशकटिकया=सुवर्णमय्या शकटिकया, क्रीडिष्यति=खेलयिष्यति । तत्=तस्मात्, एनम्=बालम्, यावदित्यवधारणे, विनोदयामि=शिशुं गृहीत्वाऽन्यत्र गमनेन प्रकृतिस्थं भावयामि । आर्याया वसन्तसेनाया, समीपम्=निकटम्, उपसर्पिष्यामि=गमिष्यामि । (उपसृत्य=समीपं गत्वा) आर्ये=मान्ये, प्रणमामि=प्रणामं करोमि ।

वसन्तसेना—रदनिके=परिचारिके, स्वागतम्=शुभागमनमस्तु, ते=तव रदनिकायाः । कस्य=पुरुषविशेषस्य, अयम्=एषः, दारकः=बालकः ? अनलङ्कृतशरीरोऽपि अनलङ्कृतम्=आभूषणादिशून्यम्, शरीरम्=देहं यस्यासौ । अनेन कथनेन चारुदत्तस्य निर्धनतायाः पराकाष्ठा अभिव्यज्यते । चन्द्रमुखः=दर्शनीयाननः, चन्द्र इव मुखं यस्यासौ । आनन्दयति=प्रसादयति, मम=वसन्तसेनायाः, हृदयम्=चित्तमिति जिज्ञासा ।

रदनिका—एषः=अयम्, खलु=निश्चयेन, आर्यचारुदत्तस्य=सार्थवाहस्य, पुत्रः=सुतः, अस्य नाम रोहसेनः अस्ति ।

वसन्तसेना—(बाहू=भुजौ, प्रसार्य=विस्तार्य) एहि=समागच्छ, मे=मम, पुत्रक=सुत । आलिङ्ग=आलिङ्गनं कुरु । अनुकृतम्=प्राप्तमिति भावः । अनेन=बालकेन, पितुः=जनकस्य चारुदत्तस्य, रूपम्=आकृतिरिति । पिता-पुत्रौ सदृशौ इत्यर्थः ।

हार कहाँ ? तुम्हारे पिताजी पर जब भाग्यलक्ष्मी खुश होंगी, तब फिर सोने की गाड़ी से खेलना । तो इस बच्चे का तब तक जी बहलाऊँ । आर्या वसन्तसेना के पास ही ले चलूँ ? (पास जाकर) मान्ये, प्रणाम करती हूँ ।

वसन्तसेना—आओ रदनिके, स्वागत है । यह बच्चा किसका है ? निराभरण होते हुए भी इसकी आकृति आकर्षक है । यह मेरे हृदय को आनन्दित कर रहा है ।

रदनिका—यह आर्य चारुदत्त का पुत्र रोहसेन है ।

वसन्तसेना—(बाँहें फैलाकर) मेरे बेटे, आओ, गले लग जाओ । (गोद में बैठाकर) इसने बिल्कुल पिता की आकृति पाई है ।

रदनिका—ण केवलं रूवं, सीलं पि तक्केमि। एदिणा अज्जचारुदत्तो अत्ताणअं विणोदेदि। [न केवलं रूपम्, शीलमपि तर्कयामि। एतेन आर्यं चारुदत्त आत्मानं विनोदयति।]

वसन्तसेना—अध किंणिमित्तं एसो रोअदि ? [अथ किंनिमित्तमेष रोदिति।]

रदनिका—एदिणा पडिवेसिअ-गहवइ-दारअ-केरिआए सुवण्णसअडिआए कीलिदं। तेण अ सा णीदा। तदो उण तं मग्गन्तस्स मए इअं मट्टिआ-सअडिआ कदुअ दिण्णा। तदो भणादि—रदणिए ! किं मम एदाए मट्टिआ-सअडिआए, तं ज्जेव सोवण्ण-सअडिअं देहि' त्ति। [एतेन प्रतिवेशिकगृहपति-दारकस्य सुवर्ण-शकटिकया क्रीडितम्। तेन च सा नीता। ततः पुनस्तां मार्गयतो मयेयं मृत्तिका-शकटिका कृत्वा दत्ता। ततो भणति—'रदनिके ! किं मम एतया मृत्तिका-शकटिकया, तामेव सौवण-शकटिकां देहि' इति।]

वसन्तसेना—हद्धी, हद्धी ! अअं पि णाम पर-संपत्तीए संतप्पदि। भअवं ! कअन्त ! पोक्खर-वत्त-पडिद-जलबिंदु-सरिसेहि कीलसि तुमं पुरिस-भाअ-

---

रदनिका—न केवलं रूपम्=आकृत्या साम्यम्, अपितु शीलमपि=स्वभावोऽपि पितुः अनुरूपमिति, तर्कयामि=अनुमानं करोमि। एतेन=अनेन सह, आत्मानम्=स्वम्, विनोदयति=चित्तं सान्त्वयति।

वसन्तसेना—किं निमित्तम्=केन कारणेन, एषः=अयम्, रोदिति=विलापं करोति ?

रदनिका—प्रतिवेशिकः=गृहसमीपे निवासकर्त्ता, स चासौ गृहपतिः गृहस्वामी तस्य दारकस्य=पुत्रस्य सुवर्णशकटिकया=कनकनिर्मितलघुशकटेन. क्रीडितम्। तेन=वणिक्पुत्रेण सा=सुवर्णशकटिका, नीता=गृहीता। ताम्=पूर्वोक्तशकटिकाम्, मार्गयतः=प्रार्थयतः, मृत्तिकाशकटिका=मृन्निर्मिता शकटिकायानम्, दत्ता=समर्पिता। एतया=मृच्छकटिकया, मम किम्=न किमपि प्रयोजनम्। तामेव=पूर्वप्राप्तामेव, सौवर्णशकटिकां=कनकशकटं, देहि=प्रयच्छेति।

वसन्तसेना—हा धिक्=तिरस्कारार्थेऽव्ययम्, अयमपि=एषोऽपि बालकः, पर-सम्पत्त्या=अन्यस्य धनेन, सन्तप्यते=दुःखितो भवति, भगवन् कृतान्त=दैव, 'कृतान्तो

रदनिका—केवल आकृति ही नहीं, मुझे लगता है इसने स्वभाव भी पिता का ही पाया है। आर्य चारुदत्त तो इसी से अपना मनोविनोद करते हैं।

वसन्तसेना—अच्छा तो यह रो क्यों रहा है ?

रदनिका—अपने पड़ोसी सेठ के बेटे की सोने की गाड़ी से यह अभी खेल चुका है। वह उस गाड़ी को ले गया है। फिर भी यह गाड़ी माँगने लगा तो मिट्टी की गाड़ी बनाकर इसे मैंने दे दी है। तब यह कहता है मुझे मिट्टी की गाड़ी नहीं सोने वाली गाड़ी ही चाहिए।

वसन्तसेना—हाय हाय, यह भी तो दूसरों की सम्पत्ति से जल रहा है। हाय,

धेएहि। (इति सास्रा) जाद ! मा रोद, सोवण्ण-सअडिआए कीलिस्ससि। [हा धिक्, हा धिक् ! अयमपि नाम परसम्पत्त्या सन्तप्यते। भगवन् ! कृतान्त ! पुष्कर-पत्र-पतित-जलबिन्दु-सदृशैः क्रीडसि त्वं पुरुषभागधेयैः। जात ! मा रुदिहि, सौवर्ण-शकटिकया क्रीडिष्यसि।]

दारकः—रदणिए ! का एसा ? [रदनिके ! का एषा ?]

वसन्तसेना—पिदुणो दे गुणणिज्जिदा दासी। [पितुस्ते गुणनिर्जिता दासी।]

रदनिका—जाद ! अज्जआ दे जणणी भोदि। [जात ! आर्या ते जननी भवति।]

दारकः—रदणिए ! अलिअं तुमं भणासि, जइ अम्हाणं अज्जआ जणणी, ता कीस अलंकिदा ? [रदनिके ! अलीकं त्वं भणसि, यद्यस्माकमार्या जननी, तत् केन अलङ्कृता ?]

वसन्तसेना—जाद ! मुद्धेण मुहेण अदिकरुणं मन्तेसि। (नाट्येनाभरणान्य-

---

यमसिद्धान्तदैवाकुशलकर्मसु' इत्यमरः। पुष्करस्य=पद्मस्य, पत्रे=दले, पतिताः=वर्त्तमानाः, ये जलबिन्दवः=सलिलकणाः, तत्सदृशैः=तत्तुल्यैः, पुरुषाणाम्=जनानाम्, भागधेयैः=प्रारब्धैः, त्वम्=भवान्, क्रीडसि=खेलसि। जात=हे सुत, मा रुदिहि=रोदनं मा कुरु, सौवर्णशकटिकया=कनकशकटेन, क्रीडिष्यसि=खेलिष्यसि।

दारकः—रदनिके=परिचारिके, का एषा=नारी विशेषा ?

वसन्तसेना—ते=तव, पितुः=जनकस्य, गुणनिर्जिता=गुणेन वशीकृता, दासी=सेविकेति।

रदनिका—जात=हे सुत, आर्या=मान्या, ते=तव, जननी=माता, भवति, पितृभोग्यत्वेन मातृस्थानीया।

दारकः—रदनिके=परिचारिके, अलीकम्=मिथ्या, त्वम्=रदनिका, भणसि=वदसि, यत्=यस्मात्, अस्माकम्=नः, आर्या=मान्या, जननी=माता भवति, तत्=तदा, केन=कारणेन, अलङ्कृता=आभूषणैः भूषिता, मम माता तु आभूषणशून्या इयन्तु, भूषणैः अलङ्कृता। अतो नेयं मम माता भवति, इति भावः।

वसन्तसेना—जात=हे पुत्र, मुग्धेन=शोभनीयेन, मुखेन=आननेन, अतिकरुणम्

विधाता, कमल के पत्ते पर गिरे पानी की बूँदों की तरह मनुष्यों के भाग्य से खेला करते हो। (रोते हुए) बेटे, मत रो, तुम भी सोने की गाड़ी से खेलोगे।

बालक—रदनिके, ये कौन हैं ?

वसन्तसेना—तुम्हारे पिता के गुणों से विजित एक दासी।

रदनिका—बेटे, ये माननीया, तुम्हें माँ होंगी।

बालक—रदनिके, तुम झूठ बोलती हो। ये अगर मेरी माँ होती तो भला इतने आभूषण क्यों पहनती।

वसन्तसेना—बेटे, इतने भोले-भाले मुख से ऐसी कारुणिक बातें क्यों बोल रहे

वतार्य रुदती ।) एसा दाणिं दे जणणी संवुत्ता, ता गेण्ह एदं अलंकारअं सोवण्णसअडिअं घडावेहि । [**जात ! मुग्धेन मुखेन अतिकरुणं मन्त्रयसि । एषा इदानीं ते जननी संवृत्ता । तद् गृहाणैतमलङ्कारकम्, सौवर्णशकटिकां घटय ।**]

दारकः—अवेहि, ण गेण्हिस्सं, रोदसि तुमं । [**अपेहि, न ग्रहीष्यामि, रोदिषि त्वम् ।**]

वसन्तसेना—(अश्रूणि प्रमृज्य) जाद ! ण रोदिस्सं । गच्छ कील । (अलङ्कारैर्मृच्छकटिकां पूरयित्वा ।) जाद ! कारेहि सोवण्णसअडिअं । [**जात ! न रोदिष्यामि । गच्छ, क्रीड । जात ! कारय सौवर्णशकटिकाम् ।**]

(इति दारकमादाय निष्क्रान्ता रदनिका ।)

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः ।)

चेटः—रदणिए, रदणिए ! णिवेदेहि अज्जआए वशन्तशेणाए—'ओहालिअं पक्खदुआलाए शज्जं पवहणं चिट्ठति ।' [**रदनिके, रदनिके ! निवेदय आर्यायै वसन्तसेनायै—'अपवारितं पक्षद्वारके सज्जं प्रवहणं तिष्ठति' ।**]

=अतिपीडादायकम्, मन्त्रयसि=ब्रूषे । एषा=इयम्, इदानीम्=अधुना, ते=तव, जननी=माता, संवृत्ता=सञ्जाता, तत्=तस्मात्, गृहाण=गृह्यताम्, एतत्=ममाधिकृतम्, अलङ्कारकम्=आभूषणम्, सौवर्णशकटिकाम्=कनकनिर्मितशकटम्, घटय=स्वर्णकारेण निर्मापय ।

दारकः—अपेहि=दूरमपसर, न=नहि, ग्रहीष्यामि=ग्रहणं करिष्यामि, यतो हि, त्वम्=भवती, रोदिषि=आश्रूणि मुञ्चसि ।

वसन्तसेना—(अश्रूणि=नेत्रजलानि, प्रमृज्य=निर्घृष्य) जात=हे पुत्र, न=नहि, रोदिष्यामि=अतः परं विलापं करिष्यामि । गच्छ=याहि, क्रीड=खेलय । कारय=निर्माणं कारय, स्वर्णशकटिकायाः स्वर्णकारेण ।

(इति=अनन्तरम्, दारकम्=बालकम्, आदाय=नीत्वा, रदनिका=सेविका, निष्क्रान्ता=बहिर्गता ।)

(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, प्रवहणाधिरूढः=शकटाधिरूढः ।)

हो । (**शरीर से सारे आभूषण हटाकर रोती हुई,**) लो, अब तो तुम्हारी माँ बन गई । इन जेवरों को ले जाओ और इससे अपनी गाड़ी बनवा लो ।

बालक—हटो, मैं नहीं लेता, तुम रो रही हो ।

वसन्तसेना—(**आँसू पोंछकर**) बेटे, अब नहीं रोऊँगी, जाओ खेलो । (**मिट्टी की गाड़ी को जेवरों से भर देती है ।**) इनसे सोने की गाड़ी बनवा लो ।

(**बालक को लेकर रदनिका बाहर निकल जाती है ।**)

(**गाड़ी पर बैठे चेट का प्रवेश ।**)

चेट—रदनिके, मान्या वसन्तसेना से निवेदन करो, बगल के दरवाजे पर उनके जाने के लिए पर्दा लगी बैलगाड़ी खड़ी है ।

रदनिका—(प्रविश्य) अज्जए ! एसो वड्ढमाणओ विण्णवेदि—'पक्खदुआरए सज्जं पवहणं' त्ति । [**आर्ये ! एष वर्द्धमानको विज्ञापयति—'पक्षद्वारे सज्जं प्रवहणम्' इति ।**]

वसन्तसेना—हञ्जे ! चिट्ठदु मुहुत्तअं, जाव अहं अत्ताणअं पसाधेमि । [**हञ्जे ! तिष्ठतु मुहूर्त्तकम्, यावदहमात्मानं प्रसाधयामि ।**]

रदनिका—(निष्क्रम्य) वड्ढमाणअ ! चिट्ठ मुहुत्तअं । जाव अज्जआ अत्ताणअं पसाधेदि । [**वर्द्धमानक ! तिष्ठ मुहूर्त्तकम् । यावदार्या आत्मानं प्रसाधयति ।**]

चेटः—ही ही भो ! मए वि जाणत्थलके विशुमलिदे, ता जाव गेण्हिअ आअच्छामि । एदे णश्शा लज्जु-कडुआ वइल्ला । भोदु, पवहणेण ज्जेव गदागदिं कलिश्शं । (इति निष्क्रान्तश्चेटः ।) [**ही ही भोः ! मयापि यानास्तरणं विस्मृतम्, तत् यावद् गृहीत्वा आगच्छामि । एते नस्यरज्जु-कटुका बलीवर्दाः । भवतु, प्रवहणेनैव गतागतिं करिष्यामि ।**]

चेटः—रदनिके=परिचारिके, निवेदय=सूचय, आर्यायै=वसन्तसेनायै, अपवारितम्=पटावृत्तम्, सज्जम्=प्रस्तुतम्, प्रवहणम्=गोयानम्, पक्षद्वारे=पार्श्वद्वारे, तिष्ठति=स्थितम् अस्ति ।

रदनिका—(प्रविश्य=अन्तःप्रकोष्ठे गत्वा) आर्ये=मान्ये, एषः=अयम्, वर्द्धमानकः=शकटवाहकः, विज्ञापयति=निवेदयति, पक्षद्वारे=पार्श्वद्वारे, सज्जम्=तत्परम्, प्रवहणम्=यानम्, इति ।

वसन्तसेना—हञ्जे=प्रिये, मुहूर्तकम्=क्षणम्, तिष्ठतु=प्रतीक्षां करोतु, यावत्=समयपर्यन्तम्, अहम्=वसन्तसेना, आत्मानम्=स्वम्, प्रसाधयामि=आभूषणैः प्रियोपभोगयोग्यं करोमि ।

रदनिका—(निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा) वर्द्धमानक=हे शाकटिक, मुहूर्त्तकम्=क्षणम्, तिष्ठ=प्रतीक्षां कुरु, यावदार्या=मान्या वसन्तसेना, आत्मानम्=स्वम्, प्रसाधयति=सुसज्जितां करोतीति भावः ।

चेटः—मयापि=चेटेनापि, यानास्तरणम्—यानस्य=शकटस्य, आस्तरणम्=आच्छादनम्, विस्मृतम्=नानीतम्, तत्=तस्मात्, गृहीत्वा=नीत्वा, आगच्छामि=

रदनिका—(भीतर जाकर) आर्ये, वर्धमानक निवेदन करता है कि बगल के दरवाजे पर बैलगाड़ी आपको ले जाने के लिए तैयार है ।

वसन्तसेना—सखि, क्षणभर रोको, जरा मैं तैयार हो लूं ।

रदनिका—(बाहर निकलकर) वर्धमानक, पल भर रुको । आर्या तैयार हो रही हैं ।

चेट—अरे, मैं भी तो गाड़ी का गद्दा भूल आया हूँ, जब तक ये तैयार होती हैं, उसे मैं ले आता हूँ । नाथे रहने के बावजूद ये बैल चलने को छटपटा रहे हैं तो फिर

वसन्तसेना—हञ्जे ! उवणेहि मे पसाधणं, अत्ताणअं पसाधइस्सं । (इति प्रसाधयन्ती स्थिता ।) [हञ्जे ! उपनय मे प्रसाधनम्, आत्मानं प्रसाधयिष्यामि ।]

(प्रविश्य प्रवहणाधिरूढः स्थावरकश्चेट ।)

चेटः—आणत्तो म्हि लाअ-शालअशंठाणेण—'थावलआ ! पवहणं गेण्हिअ पुष्पकलण्डुअं जिण्णुज्जाणं तुलिदं आअच्छेहि' त्ति । भोदु, तहिं ज्जेव गच्छामि । वहध वइल्ला ! वहध । (परिक्रम्यावलोक्य च,) कधं गामशअलेहिं लुद्धे मग्गे । किं दाणिं एत्थ कलइश्शं । (साटोपम्) अले ले ! ओशलध ओशलध । (आकर्ण्य) कि भणाध—'एशे कश्श केलके पवहणे' त्ति । एशे लाअ-शालअ-शण्ठाणअकेलके पवहणे त्ति । ता शिग्धं ओशलध । (अवलोक्य) कधं एशे अवले शहिअं विअ मं पेक्खिअ शहश ज्जेव जूदपलाइदे विअ जूदिअले ओहालिअ अत्ताणअं अण्णदो अवक्कन्ते ! ता को उण एशे ? अधवा किं मम एदिणा ? तुलिदं गमिश्शं । अले ले गामेलुआ ! ओशलध ओशलध । किं भणाध—'मुहुत्तअं, चिट्ट, चक्कपलिवट्टिं देहि' त्ति । अले ले ! लाअ-शालअ-शंठाणकेलके हग्गे शूले चक्कपलिवट्टिं दइश्शं ? अधवा एशे एआई तवश्शी । ता एव्वं कलेमि, एदं पवहणं अज्जचालुदत्तश्श रुक्खवाडिआए पक्खदुआलए थावेमि । (इति प्रवहणं संस्थाप्य) एशे म्हि आअदे । (इति निष्क्रान्तः ।) [आज्ञप्तोऽस्मि राज-श्यालक-संस्थानेन—'स्थावरक ! प्रवहणं गृहीत्वा पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं त्वरितमागच्छ' इति । भवतु, तत्रैव गच्छामि । वहतं बलवर्दौ !

पुनरागच्छामि, एते=उभे, नस्या=नासिकाग्रां भवा सा चासौ रज्जुश्चेति तथोक्ता तया कटुकाः=तीव्राः, वलीवर्दाः=वृषभाः । गतागतिम्=गमनञ्चागमनञ्चेति । (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः, चेटः=शकटवाहकः ।)

वसन्तसेना—हञ्जे=हले, उपनय=आनय, मे=मम, प्रसाधनम्=प्रसाधनद्रव्यम्, आत्मानम्=स्वशरीरम्, प्रसाधयिष्यामि=अलङ्करिष्यामि ।

(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, प्रवहणाधिरूढः=शकटारूढः, स्थावरकः=स्थावरवज्जडः, चेटः=परिचारकः ।)

चेटः—आज्ञप्तोऽस्मि=आदिष्टोऽस्मि, राज्ञः=नृपस्य, श्यालकः=उपभोगायाङ्गीकृतायाः कामिन्याः भ्राता, संस्थानकाख्यस्तेन, प्रवहणम्=यानम्, गृहीत्वा=नीत्वा,

---

क्यों न इसी गाड़ी से गद्दा लेकर शीघ्र लौट आऊँ । (**इतना कहकर चेट गाड़ी लेकर चल देता है ।**)

वसन्तसेना—सखि, मेरी प्रसाधन सामग्री तो ला दो, मैं अपने को तैयार कर लूं । (**अपने को सजाती है ।**)

(**इसी बीच गाड़ी पर सवार स्थावरक चेट का प्रवेश ।**)

चेट—राजा के साले संस्थानक ने जल्द गाड़ी लेकर पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में पहुँचने को कहा है । तो फिर चलूं । बढ़े चलो, बैलो ! बढ़े चलो । (**कुछ दूर**

वहतम् । कथं ग्रामशकटैः रुद्धो मार्गः । किमिदानीमत्र करिष्यामि ? अरे रे ! अपसरत अपसरत । किं भणथ—'एतत् कस्य प्रवहणम् ?' इति । एतद् राजश्यालक-संस्थानस्य प्रवहणमिति । तत् शीघ्रमपसरत । कथम् एषः अपरः सभिकमिव मां प्रेक्ष्य सहसैव द्यूतपलायित इव द्यूतकरः अपवार्यात्मानम् अन्यतः अपक्रान्तः । तत् कः पुनरेषः ? अथवा किं मम एतेन ? त्वरितं गमिष्यामि । अरे रे ग्राम्याः ! अपसरत अपसरत । किं भणथ—'मुहूर्त्तकं तिष्ठ, चक्रपरिवृत्तिं देहि' इति । अरे रे राज-श्यालक-संस्थानस्य अहं शूरः, चक्रपरिवृत्तिं दास्यामि ? अथवा एष एकाकी तपस्वी । तदेवं करोमि, एतत् प्रवहणमार्यचारुदत्तस्य वृक्षवाटिकायाः पक्षद्वारके स्थापयामि । एषोऽस्मि आगतः ।]

पुष्पकरण्डकम्=एतदाख्यम्, जीर्णोद्यानम्=पुरातनोद्यानम्, त्वरितम्=शीघ्रम्, आगच्छ=समागच्छ, इति । भवतु=यातु, तत्रैव=तस्मिन्नेव स्थाने, गच्छामि=व्रजामि, वहतम्=गच्छतम्, बलीवर्दौ=बलवन्तौ वृषभौ । (परिक्रम्य=कियत्पदं गत्वा, च= पुनः, अवलोक्य=दृष्ट्वा) कथमिति प्रश्ने, ग्रामशकटैः=ग्राम्ययानैः रुद्धः=अवरुद्धः, मार्गः=पथः, किमिति जिज्ञासायाम्, इदानीम्=अधुना, अत्र=अस्मिन् विषये, करिष्यामि=निष्पादयिष्यामि, अरे रे=इति सम्बोधने, अपसरत=अपगच्छत । (आकर्ण्य= श्रुत्वा), किं भणत=किं वदथ, एतत्=पुरोवर्त्तिनः, कस्य=जनस्य, प्रवहणम्= शकटम्, इति । एतत्=सन्मुखे उपस्थितः, प्रवहणम्=गोशकटम्, राजश्यालकस्य= नृपश्यालकस्य, संस्थानकस्य अस्तीति भावः । तत्=तस्मात्, शीघ्रम्=त्वरितम् अपसरत=अपगच्छत । (अवलोक्य=दृष्ट्वा) कथमिति प्रश्ने, एषः=असौ, अपरः= अन्यः, सभिकमिव=द्यूतसभाध्यक्षमिव, मां प्रेक्ष्य=अवलोक्य, सहसैव=अकस्मादेव, द्यूतपलायित इव=अक्षस्थानात् पलायित इव, द्यूतकरः=अक्षकरः, आत्मानम्=स्वम्, अपवार्य=गोपनं कृत्वा, अन्यतः=भिन्नमार्गतः, अपक्रान्तः=बहिर्गतः, तत्=तस्मात्, कः=व्यक्तिविशेषः, पुनरेषः=असौ, अथवा=किं वा, मम=चेटस्य, एतेन किं प्रयोजनम् ? त्वरितम्=शीघ्रम्, गमिष्यामि=यास्यामि, रे ग्राम्याः=ग्रामवासिनः, अपसरत=दूरं गच्छत । किं भणथ=वदथ, मुहूर्त्तकम्=क्षणम्, तिष्ठ=स्थीयताम्, चक्रपरिवृत्तिम्=चक्रस्य परिवर्त्तनस्थानम्, अन्योन्यमभिमुखमागच्छतोः शकटयोरेक-

---

चलकर और देखकर) गाँव की गाड़ियों से तो राह खचाखच भरी है । तो अब क्या करूँ ? (**गर्व के साथ**) अरे, ओ गाड़ीवानो हटो, रास्ता छोड़ो । (**सुनकर**) क्या कहा ? यह किसकी गाड़ी है ? राजा से साले संस्थानक की यह गाड़ी है । जल्दी करो, रास्ता दो । (**देखकर**) जुए के सभाध्यक्ष को देखकर जुए से भागे जुआरी की तरह मुझे देखकर अपने को छिपाते हुए यह दूसरी ओर क्यों सरक गया ? अच्छा तो फिर यह कौन है ? अथवा इससे मुझे क्या मतलब ? शीघ्रता से चला जाऊँ । अरे ओ गँवारो, हटो, रास्ते से हटो । क्या कहा ? पलभर रुको । जरा पहिए में सहारा लगा दो । अरे तुम्हें पता है—मैं राजा के साले संस्थानक का वीर, भला मैं अपनी गाड़ी

चेटी—अज्जए ! णेमिसद्दो विअ सुणीअदि, ता आअदो पवहणो। [आर्ये ! नेमिशब्द इव श्रूयते, तदागतं प्रवहणम् ।]

वसन्तसेना—हञ्जे । गच्छ, तुवरदि मे हिअअं। ता आदेसेहि पक्खदुआरअं। [हञ्जे ! गच्छ, त्वरते मे हृदयम् । तदादेशय पक्षद्वारकम् ।]

चेटी—एदु एदु अज्जआ। [एतु एतु आर्या।]

वसन्तसेना—(परिक्रम्य) हञ्जे। वीसम तुमं। [हञ्जे ! विश्राम्य त्वम् ।]

चेटी—जं अज्जआ आणवेदि। (इति निष्क्रान्ता।) [यदार्या आज्ञापयति।]

वसन्तसेना—(दक्षिणाक्षिस्पदं सूचयित्वा, प्रवहणमधिरुह्य च।) किं ण्णेदं फुरदि दाहिणं लोअणं ? अधवा चारुदत्तस्स ज्जेव दंसणं अणिमित्तं पमज्जइस्सदि।

मपसृत्य तिष्ठति तदाऽपरस्य शकटस्याग्रे गन्तुमवकाशो मिलति। संस्थानकस्य=एतदाख्यस्य, अहम् शूरः=वीरः, चक्रपरिवृत्तिं दास्यामि, अर्थात् चक्रपरिवृत्तिं नाहं दास्यामि, अथवा=किंवा, एषः=असौ, एकाकी=एक मात्रः, तपस्वी=दीनः, तत्=तस्मात्, एवम्=इत्थम्, करोमि। एतत् प्रवहणम्=शकटम्, आर्य चारुदत्तस्य, वृक्षवाटिकायाः=उद्यानस्य, पक्षद्वारके=पार्श्वद्वारे, स्थापयामि=नियोजयामि।

चेटी—आर्ये=मान्ये, नेमिः=चक्राधारस्तस्याः शब्दः=ध्वनिः, श्रूयते=श्रवणं क्रियते। तत्=तस्मात्, आगतम्=प्रत्यागतम्, प्रवहणम्=शकटम्।

वसन्तसेना—हञ्जे=आलि, गच्छ=याहि, त्वरते=शीघ्रगमनायोत्कण्ठितं भवति, मे=मम वसन्तसेनायाः, हृदयम्=चित्तम्, तत्=तस्मात्, आदेशय=निर्दिशतु, पक्षद्वारकम्=मार्गम्।

चेटी—एतु एतु=समागच्छतु, आर्या=मान्या।

वसन्तसेना—(परिक्रम्य=कियत् पदं गत्वा) विश्राम्य=क्षणमात्रं विलम्बस्व, त्वम्=भवती।

चेटी—यत्=यथा, आर्या=मान्या, आज्ञापयति=आदिशति। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ता=रङ्गादबहिर्गता।)

वसन्तसेना—(दक्षिणम्=वामेतरम्, अक्षिः=लोचनम्, स्पन्दम्=स्फुरणम्,

---

घुमा कर तुम्हारी गाड़ी के लिए रास्ता दूं ? हाय, यह गरीब तो अकेला है। मुझे गाड़ी घुमा लेना चाहिए। तो फिर अपनी गाड़ी आर्य चारुदत्त के बगीचे वाले दरवाजे पर घुमा कर रोक देता हूँ। (**गाड़ी को रोक कर**) यह मैं आया। (**चला जाता है।**)

चेटी—आर्ये, धुरी की आवाज सुनाई पड़ रही है। शायद बैलगाड़ी आ गई।

वसन्तसेना—प्रिय सखि, चलो न, मेरा चित्त चंचल हो रहा है। दरवाजे की राह दिखलाओ।

चेटी—इधर से, इधर से मान्या चलें।

वसन्तसेना—(**घूमकर**) सखि, अब तुम आराम करो।

चेटी—जैसी आपकी आज्ञा। (**चली जाती है।**)

[किन्विद स्फुरति दक्षिणं लोचनम् ? अथवा चारुदत्तस्यैव दर्शनमनिमित्तं प्रमार्जयिष्यति ।]

स्थावरकश्चेटः—(प्रविश्य) ओशालिदा मए शअडा, ता जाव गच्छामि । (इति नाट्येनाधिरुह्य चालयित्वा । स्वगतम्) भालिके पवहणे । अधवा चक्कपलिवट्टिआए पलिश्शंतश्श भालिके पवहणे पडिभाशेदि । भोदु, गमिश्शं । जाध गोणा ! जाध । **[अपसारिता मया शकटाः । तद् यावद् गच्छामि । भारिकं प्रवहणम् । अथवा चक्र-परिवृत्तिकया परिश्रान्तस्य भारिकं प्रवहणं प्रतिभासते । भवतु, गमिष्यामि । यातं गावौ ! यातम् ।]**

(नेपथ्ये) अरे रे दोवारिआ ! अप्पमत्ता सएसु सएसु गुम्मट्ठाणेसु होध । एसो अज्ज गोवालदारओ गुत्तिअं भंजिअ, गुत्तिवालअं वावादिअ, बन्धणं भेदिअ, परिब्भट्टो अवक्कमदि । ता गेण्हध गेण्हध । **[अरे रे दौवारिकाः ! अप्रमत्ताः स्वकेषु स्वकेषु गुल्मस्थानेषु भवत । एषोऽद्य गोपालदारको गुप्तिं भङ्क्त्वा, गुप्तिपालकं व्यापाद्य, बन्धनं भित्वा, परिभ्रष्टः अपक्रामति । तद्गृह्णीत गृह्णीत ।]**

सूचयित्वा=अनुभूय, प्रवहणम्=शकटम्, आरुह्य=आरोहणं कृत्वा) किन्नु=कथम्, इदम्=एतत्, दक्षिणम्=सव्यम्, लोचनम्=नयनम्, स्फुरति=स्पन्दनं करोति । अथवा=किंवा, चारुदत्तस्यैव=सार्थवाहस्यैव, दर्शनम्=ब्राह्मणत्वेनावलोकनम्, अनिमित्तम्=अनिष्टम्, प्रमार्जयिष्यति=विनाशयिष्यति ।

स्थावरकश्चेटः—(प्रविश्य=रङ्गे उपस्थितो भूत्वा) अपसारिताः=दूरीकृताः, मया=चेटेन, शकटाः=यानानि, तत्=तस्मात्, गच्छामि=व्रजामि । भारिकम्=भारपूर्णम्, प्रवहणम्=यानम् । अथवा=वा, चक्रपरिवृत्तिकया=चक्रपरिवर्त्तनजन्यक्लेशेन, परिश्रान्तस्य=थकितस्य, भारिकम्=भारपूर्णम्, प्रवहणम्=शकटम्, प्रतिभासते=अनुभूयते । भवतु=यातु, गमिष्यामि=चलिष्यामि, यातम्=गच्छतम्, गावौ=हे वृषभौ ।

(नेपथ्ये=रङ्गागारे), अरे रे दौवारिकाः=अरे प्रहरिणः, अप्रमत्ताः=प्रमादशून्याः, स्वकेषु=स्वकीयेषु, स्वकीयेषु, गुल्मस्थानेषु=रक्षणदेशेषु, भवत । एषः=अयम्, अद्य=रात्रौ, गोपालदारकः=आर्यको नाम गोपसुतः, गुप्तिम्=कारागारम्,

---

वसन्तसेना—(**गाड़ी पर बैठते ही दाहिनी आँख फड़कती है ।**) दाहिनी आँख क्यों फड़क रही है ? अथवा—चारुदत्त के दर्शन से ही अनिष्ट का निवारण हो जायेगा ।

स्थावरकचेट—(**प्रवेश कर**) मैंने गाडियों को हटा दिया है । अब चलूं । (**अभिनयपूर्वक गाड़ी पर चढ़कर, उसे चलाकर, मन ही मन**) गाड़ी तो बोझिल मालूम पड़ती है । अथवा राह से गाड़ी हटाने के कारण थके हुए मुझे गाड़ी भी भारी लगती है । अच्छा तो चलें । चलो, बैलों ! बढे चलो ।

(**नेपथ्य में**) अरे ओ सिपाहियों, अपनी चौकियों पर सावधान हो जाओ ।

(प्रविश्य अपटीक्षेपेण सम्भ्रान्त एकचरणलग्ननिगडो ऽवगुण्ठित आर्यकः परिभ्रमति ।)

चेटः—(स्वगतम्) महन्ते णअलीए संभमे उप्पण्णं, ता तुलिदं तुलिदं गमिश्शं । (इति निष्क्रान्तः ।) [**महान् नगर्यां सम्भ्रम उत्पन्नः, तत् त्वरितं त्वरितं गमिष्यामि ।**]

आर्यकः—

हित्वाऽहं नरपतिबन्धनापदेश-
व्यापत्ति-व्यसन-महार्णवं महान्तम् ।
पादाग्र-स्थित-निगडैक-पाश-कर्षी
प्रभ्रष्टो गज इव बन्धनाद् भ्रमामि ॥ १ ॥

भङ्क्त्वा=त्रोटयित्वा, गुप्तिपालकम्=कारागृहरक्षकम्, व्यापाद्य=हत्वा, बन्धनम्=शृंखलाभूताम्, भित्वा=भेदनं कृत्वा, परिभ्रष्टः=बन्धनच्युतः, अपक्रामति=अपगच्छति । तत्=तस्मात्, गृह्णीत=निरुध्यत ।

(प्रविश्य=रङ्गे उपस्थितस्य अपटीक्षेपेण=पटपरिवर्त्तनमन्तरेणैव । तदुक्तं साहित्य दर्पणे—'पटीक्षेपो न कर्त्तव्यः आर्त्तराजप्रवेशने ।' सम्भ्रान्तः=भयाकुलः, एकस्मिन् चरणे पादाग्रे, लग्नः=बद्धः, निगडः=बन्धनम्, यस्य तथाभूतः, अवगुण्ठितः=वस्त्राच्छादिताननः, आर्यकः=आर्यनामा, परिभ्रमति=पर्यटति ।)

चेटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) नगर्याम्=राजधान्याम्, महान् सम्भ्रमः=भयोत्पन्नगमनवेगः, तत्=तस्मात्, त्वरितम्=शीघ्रम्, गमिष्यामि ।

अन्वयः—महान्तम्, नरपतिबन्धनापदेशव्यापत्तिव्यसनमहार्णवम्, हित्वा, पादाग्रस्थितनिगडैकपाशकर्षी, अहम्, बन्धनात्, प्रभ्रष्टः, गजः, इव, भ्रमामि ॥ १ ॥

हित्वेति । महान्तम्=दुस्तरम्, नरपतेः=नृपस्य, बन्धनम्=कारागारे वन्दीकरणमेव अपदेशः=व्याजः तेन या व्यापत्तिः=ताडनादिमहाविपत्तिः तद्रूपम् यत् व्यसनम्=सङ्कटम्, तदेव महार्णवः=विशालसमुद्रस्तम्, हित्वा=तीर्त्वा, पादाग्रे=चरणाग्रे, स्थितः=संलग्नः यः, निगडः=शृङ्खला, स एव, एकः=केवलः, पाशः=बन्धनदाम

यह अहीर का छोकड़ा आर्यक, जेल का फाटक तोड़कर, दरवाजे पर खड़े सन्तरी की हत्या कर, कैद से छूटकर भागा जा रहा है । पकड़ो, इसे पकड़ो ।

(बिना पर्दा गिराये ही आर्यक का प्रवेश, एक पैर में लटकी बेड़ी तथा कपड़े से सारी देह ढँककर घबड़ाया हुआ-सा घूम रहा है ।)

चेट—(**मन ही मन**) अरे, शहर में तो चारों ओर आतंक फैल गया है । अतः यहाँ से जल्दी-जल्दी भाग निकलूँ । (**चला जाता है ।**)

आर्यक—राजा की कैद के बहाने से होने वाले आपत्तिपूर्ण संकट के विशाल सागर को पारकर, बन्धन को तोड़कर भागे हुए हाथी की तरह एक पैर में सिक्कड़ लटकाये इधर-उधर घूम रहा हूँ ॥ १ ॥

भोः अहं खलु सिद्धादेश-जनित-परित्रासेन राज्ञा पालकेन घोषादानीय विशसने गूढागारे बन्धनेन बद्धः । तस्माच्च प्रियसुहृच्छर्विलकप्रसादेन बन्धनात् परिभ्रष्टोऽस्मि । (अश्रूणि विसृज्य ।)

भाग्यानि मे यदि तदा मम कोऽपराधो
यद्वन्यनाग इव संयमितोऽस्मि तेन ।
दैवी च सिद्धिरपि लङ्घयितुं न शक्या
गम्यो नृपो बलवता सह को विरोधः ? ।। २ ।।

तं कर्षति इति तथोक्तः अहम्=आर्यकः, बन्धनात्=शृङ्खलायाः, प्रभ्रष्टः=च्युतः, गजः=हस्ती, इव=यथा, भ्रमामि=पर्यटनं करोमि । नृपतिबन्धनं प्रतिषिध्य महार्णवत्व स्थापनात् अपह्नुतिः, प्रभ्रष्टोगज इवेति श्रौती उपमालङ्कारः । प्रहर्षिणीवृत्तम् ।। १ ।।

सिद्धः=सर्वज्ञयोगी, तस्यादेशेन=आज्ञया, जनितः=समुत्पन्नः, परित्रासः=महाभयम्, यस्य तेन राज्ञा=भूपतिना, पालकेन=एतदाख्येन, घोषात्=आभीरपल्लीतः, विशसने=वध्यस्थले, गूढागारे=कारागारे, बन्धनेन=शृंखलादिना, बद्धः=दृढीकृतः, शार्विलकस्य=एतन्नामकपुरुषविशेषस्य, प्रसादेन=कृपया, बन्धनात्=शृंखलातः, परिभ्रष्टोऽस्मि=परिच्युतोऽस्मि । (अश्रूणि=नयनजलानि, विसृज्य=प्रमृष्टच ।)

अन्वयः—यदि, मे, भाग्यानि, तदा, मम, कः, अपराधः, यत्, तेन, वन्यनागः, इव, संयमितः, अस्मि । दैवी, सिद्धिः, अपि, च, लङ्घयितुम्, न शक्या, नृपः, गम्यः, बलवता, सह कः, विरोधः ? ।। २ ।।

भाग्येति । यदि=चेत्, मे=ममार्यकस्य, भाग्यानि=पूर्वकर्माणि, तदा=तर्हि मम=आर्यकस्य, कः=कीदृशः, अपराधः=दोषः ? न कोऽपि मम दोष इति भावः । यत्=यस्मात्, तेन=नृपतिना, वन्यनागः=वनोत्पन्नगजः, इव=यथा, संयमितः=निगडितः, अस्मि=भवामि, दैवी=भाग्याधीना, सिद्धिः=राज्यलाभः, अपि च=अन्यच्च, लङ्घयितुम्=अतिक्रामयितुम्, न शक्या=न समर्था । तथापि नृपः=राजा, गम्यः=आश्रयणीयः भवतीतिशेषः । बलवता=शक्तिशालिना, सह=साकम्,

---

हाय, किसी त्रिकालदर्शी सिद्ध ने कह दिया—'आर्यक, राजा होगा' । बस, इस भविष्यवाणी से डर कर राजा पालक ने मुझे घर से घसीटकर इस काल कोठरी में बेड़ी से जकड़ दिया । मेरे मित्र, शर्विलक ने मुझे उस कालकोठरी से आज मुक्त कराया है । (**बहते हुए आँसुओं को पोंछकर ।**)

यदि मेरे भाग्य में ही लिखा है कि मैं राजा बनूंगा तो इसमें मेरा भला क्या कसूर है ? फिर भी राजा ने मुझे बनैले हाथी की तरह पकड़ कर इस कारागार में क्यों बन्द कर दिया ? भाग्य में जो लिखा है वह तो होगा ही । फिर, राजा तो सबके लिए सेव्य है भला, बलवान् से विरोध कौन करना चाहेगा ? ।। २ ।।

तत् कुत्र गच्छामि मन्दभाग्यः। (विलोक्य) इदं कस्यापि साधोरनावृतपक्षद्वारं गेहम्।

इदं गृहं भिन्नमदत्तदण्डो विशीर्णसन्धिश्च महाकपाटः।
ध्रुवं कुटुम्बी व्यसनाभिभूतां दशां प्रपन्नो मम तुल्यभाग्यः॥ ३॥

तदत्र तावत् प्रविश्य तिष्ठामि।

(नेपथ्ये) जाध गोणा ! जाध। [**यातं गावौ ! यातम्।**]

आर्यकः—(आकर्ण्य) अये। प्रवहणमित एवाभिवर्त्तते।

कः=कीदृशः, विरोधः=विवादः। समानधर्मिणा सहैव मित्रता शत्रुता च करणीयेति भावः। अस्य श्लोकस्य पूर्वार्द्धे वन्यनाग इवेति श्रौती उपमा, उत्तरार्द्धे चार्थान्तरन्यासश्चेति, वसन्ततिलका वृत्तम्॥ २॥

तत्=तस्मात्, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, गच्छामि=यामि, मन्दभाग्यः=हतभाग्येति, (विलोक्य=दृष्ट्वा) इदम्=पुरोवर्त्तिनम्, कस्यापि=अपरिचितस्यापि, साधोः=साधुपुरुषस्य, अनावृतम्=कपाटादिरहितम्, पक्षद्वारम्=पार्श्वद्वारम्, गेहम्=सदनमिति।

अन्वयः—इदम्, गृहम्, भिन्नम्, विशीर्णसन्धिः, अदत्तदण्डः, महाकपाटः, मम, तुल्यभाग्यः, कुटुम्बी, ध्रुवम्, व्यसनाभिभूताम्, दशाम्, प्रपन्नः॥ ३॥

इदमिति। इदम्=पुरोवर्त्तिनम्, गृहम्=सदनम्, भिन्नम्=यत्र तत्र छिन्नम्, विशीर्णः=जीर्णः, सन्धिः=फलकानां संयोजनम्, यस्य तादृशस्यास्तीति भावः, न दत्तः अदत्तः दण्डः=अर्गला यस्य सः, महाकपाटः=विशालाररम्, मम=आर्यकस्य, तुल्यभाग्यः=हतभाग्यसदृशम्, कुटुम्बी=अस्य गृहस्य स्वामी, ध्रुवम्=निश्चितम्, व्यसनाभिभूताम्=महाविपत्याऽस्कन्दिताम्, दशाम्=स्थितिम्, प्रपन्नः=प्राप्तः। उपेन्द्रवज्रा वृत्तम्॥ ३॥

तत्=तस्मात्, तावदित्यवधारणे, प्रविश्य=प्रवेसङ्कृत्वा, तिष्ठामि=स्थितो भवामि। (नेपथ्ये=रङ्गशालायाम्) यातम्=गच्छतम्, गावौ=वृषभौ, यातम्=गच्छतम्।

आर्यकः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा) अये=इत्याश्चर्यम्, प्रवहणम्=यानम्, इतः=अस्यां दिशि, अभिवर्त्तते=आगच्छति।

हाय, मैं अभागा हूँ, कहाँ जाऊँ ? (**देखकर**) यह किसी भले आदमी का घर मालूम पड़ता है, क्योंकि इसकी खिड़की की किवाड़ें खुली हैं।

यह घर बड़ा ही पुराना लगता है, इसको दीवार के जोड़ टूटे फूटे हैं, दरवाजे के किवाड़ों में किल्ली नहीं है। लगता है इस घर का मालिक भी मेरी तरह निश्चय ही अभागा है जो गरीबी की मार से आक्रान्त हो, इस स्थिति को प्राप्त किया है॥३॥

इसलिए इसमें घुसकर शरण लेता हूँ।

(नेपथ्य में) बढे चलो, बैलो ! बढ़े चलो।

आर्यक—(सुनकर) अरे, बैलगाड़ी तो इधर ही आ रही है।

भवेद् गोष्ठीयानं न च विषमशीलैरधिगतं
वधूसंयानं वा तदभिगमनोपस्थितमिदम्।
र्बाहिनेतव्यं वा प्रवर-जन-योग्यं विधिवशाद्
विविक्तत्वाच्छून्यं मम खलु भवेद्देवविहितम्॥ ४॥

(ततः प्रवहणेन सह प्रविश्य।)

वर्द्धमानकश्चेटः—हीणामहे ! आणीदे मए जाणत्थलके। रदणिए ! णिवेदेहि अज्जआए वशन्तशेणाए 'अवत्थिदे शज्जे पवहणे अहिलुहिअ पुप्फकलण्डअं जिण्णुज्जाणं गच्छदु अज्जआ।' [आश्चर्यम् ! आनीतं मया यानास्तरणम्। रदनिके ! निवेदय आर्यायै वसन्तसेनायै 'अवस्थितं सज्जं प्रवहणम्, अधिरुह्य पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं गच्छतु आर्या।]

आर्यकः—(आकर्ण्य) गणिकाप्रवहणमिदं, बहिर्यानश्च। भवतु, अधिरोहामि। (इति स्वैरमुपसर्पति।)

अन्वयः—इदम्, विषमशीलैः, अधिगतम्, गोष्ठीयानम्, न च भवेत्, शून्यम् वधूसंयानम्, तदभिगमनोपस्थितम्, वा (भवेत्) विविक्तत्वात्, प्रवरजनयोग्यम्, विधिवशात्, बहिर्नेतव्यम्, दैवविहितम्, मम, भवेत्, खलु॥ ४॥

भवेदिति। इदम्=गोयानम्, विषमशीलैः=भ्रष्टचरितैः, अधिगतम्=अधिष्ठितम्, गोष्ठीयानम्=विद्वत्परिषद्प्रवहणम्, न च भवेत्=न स्यात्, वधूसंयानम्=नवोढाप्रवहणम्, शून्यम्=जनरहितम, तत्=तस्याः वध्वा, अधिगमनाय=इतोऽन्यत्र गन्तुं समुद्यतो भवेत्। वा=अथवा, विविक्तत्वात्=पूतत्वान्निर्जनत्वाद्वा, प्रवरजनयोग्यम्=श्रेष्ठलोकोपयुक्तम्, विधिवशात्=भाग्यवशात्, बहिर्नेतव्यम्=बाह्यप्रदेशे नेतुं योग्यम्, दैवविहितम्=जन्मार्जितपुण्येन प्रापितम्, मम=आर्यकस्य, भवेत्=स्यात्, खलु=निश्चयेनेति। सन्देहालङ्कारः, शिखरिणीवृत्तञ्चेति॥ ४॥

(ततः=तत्पश्चात्, प्रवहणेन=यानेन, सह=साकम्, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा।)

वर्द्धमानकश्चेटः—आश्चर्यम्=अद्भुतम्, आनीतम्=उपस्थापितम्, मया=चेटेन, यानास्तरम्=गोरथावगुण्ठनवस्त्रम्, निवेदय=कथय, अवस्थितम्=प्रस्तुतम्, सज्जम्=सुसज्जितम्, प्रवहणम्=गोरथम्, अधिरुह्य=आरोहणङ्कृत्वा, पुष्पकरण्डकम्=पुष्पकरण्डकाख्यम्, जीर्णोद्यानम्=शीर्णोपवनम्, गच्छतु=चलतु, आर्या=मान्या।

यह गाड़ी किसी सामाजिक उत्सव में भाग लेने के लिए किसी असामाजिक व्यक्ति को नहीं ढो रही है, क्योंकि यह बिल्कुल शान्त लगती है। या, यह किसी नवोढ़ा को ले जाने के लिए आई हो, अथवा किसी बड़े आदमी को कहीं पहुँचाने के लिए जा रही हो, अथवा भाग्य से मुझे ही बाहर निकालने के लिए आई हो॥ ४॥

(इसके बाद गाड़ी लिये हुए बर्द्धमानकचेट उपस्थित होता है।)

बर्द्धमानकचेट—वाह, मैं तो गाड़ी का गद्दा लेकर लौट आया। रदनिके ! आर्यावसन्तसेना से कह दो—गाड़ी तैयार है, आर्या चढ़कर पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान चलें।

चेटः—(श्रुत्वा) कधं णेउलशद्दे ? ता आअदा क्खु अज्जआ। अज्जए ! इमे णश्श-कडुआ वइल्ला, ता पिट्ठदो ज्जेव आलुहदु अज्जआ। [**कथं नूपुरशब्दः ? तदागता खलु आर्या । आर्ये ! इमौ नस्यकटुकौ बलीवर्दौ; तत् पृष्ठत एवारोहतु आर्या ।**]

(आर्यकस्तथा करोति ।)

चेटः—पादुप्फाल-चालिदाणं णेउलाणं वीशन्तो शद्दो। भलक्कन्ते अ पवहणे। तधा तक्केमि शंपदं अज्जआए आलूढाए होदव्वं । ता गच्छामि । जाध गोणा ! जाध । (इति परिक्रामति ।) [**पादोत्फालचालितानां नूपुराणां विश्रान्तः शब्दः । भाराक्रान्तं च प्रवहणम् । तथा तर्कयामि, साम्प्रतमार्यया आरूढया भवितव्यम्, तद्गच्छामि । यातं गावौ ! यातम् ।**]

आर्यकः—(आकर्ण्य = श्रुत्वा) इदम् = पुरोवर्त्तिनम्, गणिकाप्रवहणम् = वेश्यायाः यानम्, बहिः = बाह्यदेशे, यानम् = गमनम्, अस्येति बहिर्यानम् । भवतु = यातु, अधिरोहामि = आरोहणं करोमि । (इति = एवं विचिन्त्य, स्वैरम् = मन्दम्, उपसर्पति = गच्छति ।)

चेटः—(श्रुत्वा = आकर्ण्य) कथम् = इत्याशङ्कायाम्, नूपुरशब्दः = पादकटकध्वनिः, आर्यकस्य चरणसंलग्नः श्रृंखलाशब्दमाकर्ण्य पूर्वसंकेतितायाः वसन्तसेनाया नूपुरशब्दं मन्यमानस्य वर्द्धमानस्येयमुक्तिः । तत् = तस्मात्, आगता = समागता, खलु = निश्चयेन, आर्या = वसन्तसेना, आर्ये = मान्ये, इमौ = पुरोवर्त्तिनौ, बलीवर्दौ = वृषभौ, नस्येन = नासिकान्तरलग्नसूत्रेण, कटुकौ = तीक्ष्णौ, अतः पृष्टतः एव = पृष्टभागतः एव, आरोहतु = आरोहणं करोतु, आर्या = मान्या ।

(आर्यकः = गोपसुतः, तथाकरोति = पृष्टतः एव शकटमधिरोहति ।)

चेटः—पादयोः = चरणयोः, उत्फालेन = ऊर्ध्वं क्षेपणेन, चालितानाम् = प्रेरितानाम्, नूपुराणाम् = पादकटकानाम्, शब्दः = रवः, विश्रान्तः = शान्तः । भाराक्रान्तम् = भारेण = आचितेन, 'शाकटो भार आचितः' इत्यमरः । आक्रान्तम् = अभिभूतम् । तथा = तेन, तर्कयामि = अनुमिनोमि, साम्प्रतम् = अधुना, आर्यया = वसन्तसेनया, आरुढया =

आर्यक—(**सुनकर**) अच्छा तो यह किसी गणिका की गाड़ी है, वह कहीं बाहर जा रही है । तो फिर इसी पर चढ़ता हूँ । (**धीरे से जाता है ।**)

चेट—(**सुनकर**) पायल की आवाज सुनाई पड़ती है ? तो आर्या आ गई । मान्ये, आप गाड़ी पर पीछे से चढें । बैल नाथा है और वह चलने को उतावला हो रहा है ।

(आर्यक पीछे की ओर से चढ़ जाता है ।)

चेट—**पैर उठाकर गाड़ी पर चढ़ते समय बजते हुए पायल की आवाज बन्द हो गई है । गाड़ी का बोझ भी भारी हो गया है । इसलिए मैं अनुमान करता हूँ कि वसन्तसेना अब गाड़ी पर चढ़ गई होंगी । तो अब चलूँ । चलो, बैलो ! चलो । (घूमता है ।)**

वीरकः—(प्रविश्य) अरे रे अरे ! जअ-जअमाण-चन्दणअ-मंगलफुल्ल-भद्द-प्पमुहाः ! [**अरे रे अरे ! जय-जयमान-चन्दनक-मङ्गल-पुष्पभद्र-प्रमुखाः !**]

किं अच्छध वीसद्धा जो सो गोवालदारओ रुद्धो ।
भेत्तूण समं वच्चइ णरवइ-हिअअं बन्धणं अ ॥ ५ ॥

[**किं स्थ विश्रब्धाः ? यः स गोपालदारको रुद्धः ।**
भित्वा समं व्रजति नरपतिहृदयं बन्धनञ्च ॥]

अले पुरत्थिमे पदोली-दुआरे चिट्ठ तुमं, तुमं पि पच्छिमे, तुमं पि दक्खिणे, तुमं पि उत्तरे । जो वि एसो पाआरखण्डो, एदं अहिरुहिअ चन्दणेण समं गदुअ अवलोएमि । एहि चन्दणअ ! एहि, इदो दाव । [**अरे ! पुरस्तात् प्रतोलीद्वारे तिष्ठ त्वं, त्वमपि पश्चिमे, त्वमपि दक्षिणे, त्वमपि उत्तरे । योऽपि एष प्राकारखण्डः, एनमधिरुह्य चन्दनेन समं गत्वा अवलोकयामि । एहि चन्दनक ! एहि, इतस्तावत् ।**]

प्रवहणमधिरुढया, भवितव्यम् । तत्=तस्मात्, गच्छामि=व्रजामि । (इति=एवमुक्त्वा, परिक्रामति=अग्रे सरति)

वीरकः—(प्रविश्य=आगत्य) वीरकः=कुत्सितः वीरः वीरकः एतदाख्यः सेनापतिरयम् । जय-जयमान-चन्दनक-प्रभृतयस्तदधीनसेनापतयः ।

अन्वयः—विश्रब्धाः, किं, स्थ, यः, गोपालदारकः, रुद्धः, सः, नरपतिहृदयम्, च, बन्धनम्, अपि, समम्, भित्वा, व्रजति ॥ ५ ॥

किमिति । विश्रब्धाः=विश्वस्ताः, किम्=कथम्, स्थ=तिष्ठथ, यः गोपालस्य=आभीरस्य, दारकः=पुत्रः, रुद्धः=बद्धः, आसीत् सः=असौ, नरपतेः=नृपस्य, हृदयम्=चेतः, च=तथा, बन्धनम्=कारागारश्चापि, समम्=साकम्, भित्त्वा=विदार्य, व्रजति=पलायते । सहोक्तिरलङ्कारः, आर्यावृत्तञ्चेति ॥ ५ ॥

अरे इति—रे जय त्वम्, पुरस्तात्=पूर्वस्यां दिशि, प्रतोल्याः=रथ्यायाः, द्वारे=मुखभागे, तिष्ठ=स्थितो भव, त्वमपि=भवानपि, पश्चिमे=प्रतीच्याम्, त्वमपि=चन्दनकोऽपि, दक्षिणे=अवाच्याम्, त्वमपि=मङ्गलमपि, उत्तरे=उत्तरस्यां दिशि,

---

वीरक—(**प्रवेश करके**) अरे रे, जय, जयमान, चन्दनक, मङ्गल, पुष्पभद्र प्रभृति प्रधान पुरुषो !

आप सभी विश्वस्त हो कर इस तरह क्यों पड़े हैं ? गोपबालक आर्यक, जो कारागार में बन्द था, जेल की बेड़ी और राजा के दिल दोनों को एक साथ तोड़कर भाग निकला है ॥ ५ ॥

अरे, तुम सामने पूरबवाली गली के छोर पर तैयार रहो; तुम भी पछाँही मोड़ पर चले जाओ, तुम दक्खिनी राह रोककर खड़े हो जाओ और तुम उत्तर की ओर राह पर सतर्क होकर रहो और मैं चन्दनक के साथ इस ऊँचे टीले पर चढ़कर देखता हूँ । आओ चन्दनक, आओ, इधर तो आओ ।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः ।)

चन्दनकः—अरे रे वीरअ-विसल्ल-भीमङ्गअ-दण्डकालअ-दण्डसूर-प्पमुहा !
[अरे रे वीरक-विशल्य-भीमाङ्गद-दण्डकाल-दण्डशूरप्रमुखाः !]

आअच्छध वीसत्था तुरिअं जत्तेह लहु करेज्जाह ।
लच्छी ण जेण रण्णो पहवइ गोत्तन्तरं गंतुं ॥ ६ ॥
[आगच्छत विश्वस्तास्त्वरितं यतध्वं लघु कुरुत ।
लक्ष्मीर्येन न राज्ञः प्रभवति गोत्रान्तरं गन्तुम् ॥]

अवि अ—[अपि च—]

उज्जाणेसु सहासु अ मग्गे णअरीअआवणे घोसे ।
तं तं जोहह तुरिअं संका वा जाअए जत्थ ॥ ७ ॥
[उद्यानेषु सभासु च मार्गे नगर्यापणे घोषे ।
तं तमन्विष्यत त्वरितं शङ्का वा जायते यत्र ॥]

प्राकारस्य=प्राचीरस्य, खण्डः=भागः, एतम्=प्राचीरखण्डम्, अधिरुह्य=आरोहणङ्कृत्वा, चन्दनेन समम्=साकम्, गत्वा=समागत्य अवलोकयामि=अहम् पश्यामि । एहि=आगच्छ, चन्दनक, इतस्तावत् ।

(प्रविश्य=आगत्य, सम्भ्रान्तः=भयविह्वलः सन् ।)

चन्दनकः—वीरकविशल्यादयः सैनिकाः बोध्याः ।

अन्वयः—विश्वस्ता, आगच्छत, त्वरितम्, यतध्वम्, लघु, कुरुत, येन, राज्ञः, लक्ष्मीः, गोत्रान्तरम्, गन्तुम्, न, प्रभवति ॥ ६ ॥

आगच्छतेति । विश्वस्ताः=हे विश्वासपात्राणि, आगच्छत=अनुसरत, त्वरितम्=शीघ्रम्, यतध्वम्=आर्यकं गृहीतुं प्रयत्नं कुरुत, लघु=क्षिप्रं कुरुत, येन=हेतुना, राज्ञः=नृपपालकस्य, लक्ष्मीः=राज्यश्रीः, गोत्रान्तरम्=अन्यत् कुलम्, गन्तुम्=यातुम्, न=नहि, प्रभवति=उत्सहते । 'आर्याजातिः' इति भट्टाचार्यः, 'गाथा' इति पृथ्वीधरः ॥ ६ ॥

अन्वयः—उद्यानेषु, सभासु, च, मार्गे, नगर्यापणे, घोषे, त्वरितम्, यत्र, शङ्का, वा, जायते (तत्र), तम्, अन्विष्यत ॥ ७ ॥

उद्यानेष्विति । उद्यानेषु=वाटिकासु, सभासु=समितिषु, च=पुनः, मार्गे=पथि, नगर्याम्=पुरि, आपणे=वस्तुक्रयविक्रयस्थाने, घोषे=आभीरपल्याम्, त्वरि-

---

(घबड़ाए हुए चन्दनक का प्रवेश)

चन्दनक—अरे, वीरक, विशल्य, भीमाङ्गद, दण्डकाल, दण्डशूर प्रभृति रक्षको—

अरे ओ विश्वासभाजनो, आओ, जल्दी करो, आर्यक को पकड़ने का शीघ्र प्रयत्न करो, जिससे राजा पालक की राज्यलक्ष्मी अन्य कुल में न जा सके ॥ ६ ॥

और भी—बगीचों में, सभाओं में, नगरों में, बाजारों में और अहीरों की बस्तियों में अथवा जहाँ कहीं भी सन्देह हो, उस भगोड़े को खोजो ॥ ७ ॥

रे रे वीरअ ! किं किं दरिसेसि भणाहि दाव वीसद्धं ।
भेत्तूण अ बन्धणअं को सो गोवालदारअं हरइ ॥ ८ ॥
[रे रे वीरक ! किं किं दर्शयसि भणसि तावद्विश्रब्धम् ।
भित्त्वा च बन्धनकं कः स गोपालदारकं हरति ॥]

(युग्मकम्)

कस्स ट्ठमो दिणअरो कस्स चउत्थो अ वट्टए चन्दो ।
छट्ठो अ भग्गवगहो भूमिसुओ पंचमो कस्स ॥ ९ ॥
भण कस्स जम्म-छट्ठो जीवो णवमो तहेअ सूरसुओ ।
जीअंते चंदणए को सो गोवालदारअं हरइ ॥ १० ॥
[कस्याष्टमो दिनकरः कस्य चतुर्थश्च वर्त्तते चन्द्रः ।
षष्ठश्च भार्गवग्रहो भूमिसुतः पञ्चमः कस्य ॥]

तम्=शीघ्रम्, तम्=स्थानविशेषम्, अन्विष्यत=गवेषयत, यत्र=यस्मिन् स्थाने, शङ्का=सन्देहः, वा=अथ वा जायते=उत्पद्यते । 'आर्याजातिः' इति भट्टाचार्यः, 'गाथा' इति पृथ्वीधरः ॥ ७ ॥

अन्वयः—रे रे वीरक, किं किं, दर्शयसि, विश्रब्धं, किं, भणसि, तावत्, बन्धनकम्, भित्त्वा, सः, कः, गोपालदारकम्, हरति ॥ ८ ॥

रे रे इति । रे रे वीरक, किं किं दर्शयसि=गोपालदारकस्य किं किं निर्दिशसि, इत्यर्थः, विश्रब्धम्=विश्वासपूर्वकम् । यथा, स्यात्तथा, किं भणसि=कथयसि, तावदिति साकल्ये, बन्धनकम्=लौहशृंखलाम्, भित्वा=भेदनं कृत्वा, सः=असौ, कः=पुरुषविशेषः, गोपालदारकम्=आभीरपुत्रम्, हरति=बलादाच्छिद्य याति । गीतिर्जातिः ॥८॥

अन्वयः—कस्य, अष्टमः, दिनकरः कस्य, चन्द्रः, चतुर्थः, च, वर्त्तते, कस्य, भार्गवग्रहः, षष्ठः, च, भूमिसुतः, पञ्चमः, वर्त्तते ॥ ९ ॥

कस्येति । कस्य=जनस्य, अष्टमः=जन्मराशेः अष्टमस्थानावस्थितः, दिनकरः=रविः, कस्य पुरुषविशेषस्य, चन्द्रः=चन्द्रमा, चतुर्थः=चतुर्थराशिस्थः, च=पुनः, वर्त्तते=अस्ति, कस्य=पुरुषस्य, भार्गवग्रहः=शुक्रः, षष्ठः=षष्ठस्थानस्थितः, च=तथा, भूमिसुतः=मङ्गलः, पञ्चमः=जन्मराशेः पञ्चमस्थानीयः, वर्त्तते=अस्ति । एते ग्रहाः, तत्तत्स्थाने स्थिताः सन्तः महदनिष्टं कुर्वन्ति । आर्या छन्दः ॥ ९ ॥

अन्वयः—भण, जीवः, कस्य, जन्मषष्ठः, तथैव, सूरसुतः, नवमः चन्दनके जीवति, सः, कः (यः) गोपदारकम्, हरति ॥ १० ॥

अरे, वीरक, तुम क्या क्या दिखला रहे हो ? विश्वास पूर्वक क्या क्या बक रहे हो ? बन्धन को तोड़कर उस अहीर के छोकड़े को कौन छुड़ाये लिए जा रहे हैं ॥८॥

किसके आठवे स्थान पर सूर्य है ? चन्द्रमा किसके चौथे स्थान पर है ? शुक्र किसके छठे स्थान पर है तथा मंगल किसके पाँचवे स्थान पर है ? ॥ ९ ॥

भण कस्य जन्मषष्ठो जीवो नवमस्तथैव सूरसुतः ।
जीवति चन्दनके कः स गोपालदारकं हरति ॥]

वीरकः—भड ! चन्दणआ ! [भट ! चन्दनक !]

अवहरइ कोवि तुरिअं चंदणअ ! सवामि तुज्ज हिअएण ।
जह अद्धुइद-दिणअरे गोवालअ-दारओ खुडिदो ॥ ११ ॥
[अपहरति कोऽपि त्वरितं चन्दनक ! शपे तव हृदयेन ।
यथा अर्द्धोदितदिनकरे गोपालक-दारकः खुटितः ॥]

भणेति । भण=कथय, जीवः=वृहस्पतिः, कस्य=जनस्य, जन्मषष्ठः=जन्मराशितः षष्ठस्थानापन्नः अस्ति, तथैव सूरसुतः=शनिः, कस्य नवमः=नवमराशिस्थितः, चन्दनके=एतदाख्यके मयि, जीवति=वर्त्तमाने सति, सः कः पुरुषविशेषः अस्ति, यः गोपालदारकम्=आभीरसुतम्, आर्यकम्, हरति=बलान्नयति ॥ १० ॥

तद्यथा जन्मतः अष्टमस्थानस्थितसूर्यस्य फलमाह—

"हुतवहभयमारश्चन्द्रजः सौख्यमुग्रं धनहरणमथार्किर्भार्गवश्चार्थलाभम् ।
मरणमथ पतङ्गः स्थाननाशं सुरेज्यः, सृजतिनिधनसंस्थो नेत्ररोगञ्च चन्द्रः ॥

जन्मतः चतुर्थगश्चन्द्रस्य फलम्—

सूक्ष्मां शास्त्रविबोधिकामपि धियं मूढां करोत्यङ्गिरा,
घोरां दुःखपरम्परां दिनकरः कुक्ष्यामयं चन्द्रमाः ।
सौम्यो रोगविनाशमिच्छति नृणां रोगक्षयं भार्गवो,
भौमः शत्रुभयं चतुर्थभवने सौरिश्च वित्तक्षयम् ॥

षष्ठस्थानस्थितशुक्रस्य फलम्—

स्थिताः षष्ठे राशौ दिनकरमहीजार्कतनया, वुधश्चन्द्रश्चैवं प्रचुरधनधान्यानि ददति ।
समृद्धिं शत्रूणां मनसि च विशालं सुरगुरुः भृगुर्नाशं कुर्यात् युवतिकृतवैरञ्च परमम् ॥

जन्मतः पञ्चमस्थानस्थितमङ्गलस्य फलम्—

दौर्भाग्यं शशलाञ्छनः क्षितिसुतश्चोद्विग्नतां चेतसः ।

नवमस्थानस्थशनैश्चरफलम्—

धर्मस्थाने दिनकरसुतो नाशमर्थस्य कुर्यात् ।

—वादरायणः, पृथ्वीधरस्य टीकातः ।

वीरकः—भट चन्दनक=हे वीरचन्दनक,

बतलाओ; वृहस्पति किसके छठे स्थान पर अवस्थित है ? शनि किसके नवम स्थान पर है ? जो मुझ चन्दनक के जीते जी उस अहीर के बच्चे को छुड़ाकर भाग रहा है ? ॥ १० ॥

वीरक—हे वीर चन्दनक !

मैं तुम्हारे हृदय की शपथ खाकर कहता हूँ कि उसे किसी ने अभी ही अपहृत किया है । क्योंकि सूर्य के आधा निकलने के समय ही वह आभीरपुत्र भागा है ॥११॥

चेटः—जाध, गोणा ! जाध । [यातं, गावौ ! यातम् ।]

चन्दनकः—(दृष्ट्वा) अरे रे ! पेक्ख पेक्ख । [अरे रे ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व ।]

ओहारिओ पवहणो वच्चइ मज्झेण राअमग्गस्स ।
एदं, दाव विआरह, कस्स कहिं पवसिओ पवहणो त्ति ।। १२ ।।

[अपवारितं प्रवहणं व्रजति मध्येन राजमार्गस्य ।
एतत्तावद्विचारय कस्य कुत्र प्रेषितं प्रवहणमिति ।।]

वीरकः—(अवलोक्य) अरे पवहणवाहआ ! मा दाव एदं पवहणं वाहेहि । कस्स केरकं एदं पवहणं ? को वा इध आरुढो ? कहिं वा वज्जइ ? [अरे प्रवहणवाहक ! मा तावदेतत् प्रवहणं वाहय । कस्यैतत् प्रवहणम् ? को वा इहारूढः ? कुत्र वा व्रजति ?]

अन्वयः—हे चन्दनक, तव, हृदयेन, शपे, कः, अपि, त्वरितम्, अपहरति, यथा गोपालदारकः, अर्द्धोदितदिनकरे, खुटितः ।। ११ ।।

अपहरतीति । हे चन्दनक=हे वीर, तव=भवतः, हृदयेन=हृदयं स्पृष्ट्वा, अहं शपे=शपथं करोमि, कोऽपि=अज्ञातपुरुषः, त्वरितम्=शीघ्रम्, आर्यकमपहरति=अचूचुरत् । यथा अर्द्धोदितदिनकरे=सूर्योदयवेलायाम्, गोपालदारकः=गोपसुतः, खुटितः=वन्धनं खण्डयित्वा मोचितः । आर्यावृत्तिः ।। ११ ।।

चेटः—यातम्=गच्छतम्, गावौ=बलीवर्दौ, यातम्=गच्छतम् ।

चन्दनकः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) प्रेक्षस्व=अवलोकय ।

अन्वयः—राजमार्गस्य, मध्येन, अपवारितम्, प्रवहणम्, व्रजति, एतत्, तावत्, विचारय कस्य, प्रवहणम्, कुत्र, प्रेषितम्, इति ।। ११ ।।

अपवारितमिति । राजमार्गस्य=घण्टापथस्य, मध्येन=मध्यभागेन, अपवारितम्=आच्छादितम्, प्रवहणम्=यानम्, व्रजति=गच्छति, एतत्=इदम्, तावत्=साकल्येन, विचारय=जानीहि, कस्य=जनस्य प्रवहणम्=शकटम्, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, प्रेषितम्=गन्तुं निर्दिष्टम् । गाथावृत्तम् ।। १२ ।।

वीरकः—(अवलोक्य=दृष्ट्वा) अरे प्रवहणवाहक=रे शकटवाहक, मा=इति निषेधे, तावदित्यवधारणे, प्रवहणम्=यानम्, वाहय=स्थानान्तरं प्रापय । कस्य=जनस्य, एतत्=इदम्, शकटम्=प्रवहणम्, को वा=कः व्यक्तिविशेषो वा, इह=अस्मिन् शकटे, आरूढः=स्थितः, वा=तथा, कुत्र=कस्मिन्, व्रजति=याति ।

चेट—बैलो, बढ़े चलो ।

चन्दनक—(देखकर) अरे रे देखो तो—

सड़क के बीचों बीच पर्दा लगी गाड़ी जा रही है । इसकी पूछताछ तो करो यह किसकी गाड़ी है और कहाँ जा रही है ? ।। १२ ।।

वीरक—(देखकर) ओ गाड़ीवान्, गाड़ी रोको, यह गाड़ी किसकी है और इस पर कौन जा रहा है ? और कहाँ जायेगी ?

चेटः—एशे क्खु पवहणे अज्जचालुदत्तश्श केलके। इध अज्जआ वशन्तशेणा आलूढ़ा, पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं कीलिदुं चालुदत्तश्श णीअदि। [एतत् खलु प्रवहणमार्यचारुदत्तस्य। इह आर्या वसन्तसेना आरूढा, पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं क्रीडितुं चारुदत्तस्य नीयते' इति।]

वीरकः—(चन्दनकमुपसृत्य) एसो पवहणवाहओ भणादि—'अज्जचालुदत्तश्श पवहणं, वशन्तशेणा आलूढ़ा, पुप्फकरण्डअं जिण्णुज्जाणं णीअदि' त्ति। [एष प्रवहणवाहको भणति—'आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणम्, वसन्तसेना आरूढा, पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं नीयते इति।]

चन्दनकः—ता गच्छदु ! [तत् गच्छतु !]

वीरकः—अणवलोइदो ज्जेव ? [अनवलोकित एव ?]

चन्दनकः—अध इं। [अथ किम्।]

वीरकः—कस्स पच्चएण ? [कस्य प्रत्ययेन ?]

चन्दनकः—अज्जचारुदत्तस्स। [आर्यचारुदत्तस्य।]

चेटः—एतत् = इदम्, खलु = निश्चयेन, प्रवहणम् = यानम्, आर्यचारुदत्तस्य = सार्थवाहसुतस्य, इह = अस्मिन् शकटे, आर्या = मान्या वसन्तसेना, आरूढा = स्थिता, पुष्पकरण्डकम् = एतदाख्यम्, जीर्णोद्यानम् = शीर्णवाटिकाम्, क्रीडितुम् = उद्यानकेलिकर्त्तुम्, चारुदत्तस्य = सार्थवाहसुतस्य पार्श्वे, नीयते = प्राप्यते।

वीरकः—(चन्दनकम् = एतदाख्यसैनिकम्, उपगम्य = समीपं गत्वा) एषः = अयम्, प्रवहणवाहकः = शकटचालकः, भणति = वदति—आर्य चारुदत्तस्य प्रवहणम् = शकटम् अस्ति, अस्मिन् शकटे वसन्तसेना आरुढा = स्थिता, पुष्पकरण्डकम् = एतदाख्योपवनम्, नीयते = प्राप्यते।

चन्दनकः—तत् = तस्मात्, गच्छतु = यातु।

वीरकः—अनवलोकित एव = विना परिदर्शनङ्कृत्वैव।

चन्दनकः—अथ किम् = अस्त्वेवम्।

वीरकः—कस्य = पुरुषविशेषस्य, प्रत्ययेन = प्रतीत्या।

चन्दनकः—आर्यचारुदत्तस्य = सार्थवाहसुतस्य।

चेट—यह गाड़ी आर्य चारुदत्त की है, इस पर आर्या वसन्तसेना मनोविनोद के लिए पुष्पकरण्डक नामक पुराने उपवन में जा रही है।

वीरक—(**चन्दनक के पास जाकर**) गाड़ीवान् कहता है—"गाड़ी आर्य चारुदत्त की है, पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में मनोविनोद के लिए वसन्तसेना जा रही है।"

चन्दनक—अच्छा तो जाने दो।

वीरक—अनदेखे ही।

चन्दनक—तो और क्या ?

वीरक—किसके भरोसे ?

चन्दनक—आर्य चारुदत्त के विश्वास पर।

वीरकः—को अज्जचारुदत्तो ? का वा वसन्तसेणा ? जेण अणवलोइदं वज्जई। [क आर्यचारुदत्तः ? का वा वसन्तसेना ? येनानवलोकितं व्रजति ।]

चन्दनकः—अरे ! अज्जचारुदत्तं ण जाणासि ? ण वा वसन्तसेणिअं ? जइ अज्जचारुदत्तं वसन्तसेणिअं वा ण जाणासि, ता गअणे जोण्हासहिदं चन्दं पि तुमं ण जाणासि । [अरे ! आर्यचारुदत्तं न जानासि ? न वा वसन्तसेनिकाम् ? यदि आर्यचारुदत्तं वसन्तसेनिकां वा न जानासि, तद् गगने ज्योत्स्नासहितं चन्द्रमपि त्वं न जानासि ।]

को तं गुणारविन्दं सीलमिअंक जणो ण जाणादि ? ।
आवण्णदुक्ख-मोक्खं चउ-साअर-सारअं रअणं ।। १३ ।।
[कस्तं गुणारबिन्दं शीलमृगाङ्कं जनो न जानाति ?
आपन्न-दुःखमोक्षं चतुःसागरसारं रत्नम् ।।]
दो ज्जेव पूअणीआ एत्थ णअरीए तिलअभूदा अ ।
अज्जा वसन्तसेणा धम्मणिही चारुदत्तो अ ।। १४ ।।

वीरकः—कः=अज्ञातजनः, आर्यचारुदत्तः, का वा=तथैव वसन्तसेना । येन अनवलोकितमेव=परिदर्शनं (परीक्षणं) विनैव, व्रजति=गच्छति ।

चन्दनकः—अरे चारुदत्तं न जानासि=नावगतोऽसि, न वा वसन्तसेनाम्, यदि आर्यचारुदत्तं वसन्तसेनां वा न जानासि । तद्=तर्हि, गगने=आकाशे, ज्योत्स्नया=चन्द्रिकया सहितम्=संयुक्तम्, चन्द्रम्=चन्द्रमसमपि, त्वं न जानासि=न वेत्सि । चन्द्रिकासहितं चन्द्रमिव वसन्तसेनासहितं चारुदत्तं प्रति अज्ञानता गगनगतसकललोकालोकनीययोश्चन्द्रचन्द्रिकयोरज्ञानमिवेति भावः । अत्र कोप्यनिर्वचनीयः भावः शाश्वतिकः सम्बन्धश्च कविना प्रख्यापितः ।

अन्वयः—गुणारबिन्दम्, शीलमृगाङ्कम्, आपन्नदुःखमोक्षम्, चतुःसागरसारम्, रत्नम्, तम्, कः, जनः, न जानाति ।। १३ ।।

क इति । गुणेषु=परोपकारादिगुणेषु, अरविन्दम्=कमलमिव, शीले=मधुरस्वभावे, मृगाङ्कः=चन्द्रः इव, तम् आपन्नानाम्=दुःखितानाम्, दुःखस्य=कष्टस्य मोक्षः=मुक्तिः येन तम्, चतुर्णाम् सागराणाम्=समुद्राणाम्, सारम्=उत्तमोत्तमं, रत्नम्=मणिस्वरूपम्, तम्=चारुदत्तम्, कः=पुरुषः, न जानाति=न वेत्ति । रूपकालङ्कारः । आर्या जातिः ।। १३ ।।

वीरक—कौन हैं ये चारुदत्त और वसन्तसेना ? जिनकी गाड़ी विना जाँचे ही जा रही है ?

चन्दनक—अरे, तुम इन्हें नहीं जानते ? अगर चारुदत्त और वसन्तसेना को नहीं जानते तो आकाश में चन्द्र और चन्द्रिका को भी नहीं जानते ।

गरीबों को सहारा देने वाला, चारों सागरों के रत्नभूत, गुण में कमल और शील में चन्द्रमा की तरह आर्य चारुदत्त को कौन नहीं जानता है ? ।। १३ ।।

[द्वावेव पूजनीयावत्र नगर्यां तिलकभूतौ च ।
आर्या वसन्तसेना धर्मनिधिश्चारुदत्तश्च ॥]

वीरकः—अरे चन्दणआ ! [अरे चन्दनक !]

**जाणामि चारुदत्तं वसन्तसेणं अ सुट्ठु जाणामि ।
पत्ते अ राअकज्जे पिदरं पि अहं ण जाणामि ॥ १५ ॥**

[जानामि चारुदत्तं वसन्तसेनाञ्च सुष्ठु जानामि ।
प्राप्ते च राजकार्ये पितरमपि अहं न जानामि ॥]

आर्यकः—(स्वगतम्) अयं मे पूर्ववैरी, अयं मे पूर्वबन्धुः । यतः—

**एककार्यनियोगेऽपि नानयोस्तुल्यशीलता ।
विवाहे च चितायाञ्च यथा हुतभुजोर्द्वयोः ॥ १६ ॥**

अन्वयः—इह, नगर्याम्, द्वौ, एव, पूजनीयौ, तिलकभूतौ, च, आर्या, वसन्तसेना, धर्मनिधिः, चारुदत्तः, च ॥ १४ ॥

द्वाविति । इह=अस्याम्, नगर्याम्=उज्जयिन्याम्, द्वौ=उभौ, एव, पूजनीयौ=सम्मानार्हौ, तिलकभूतौ=मुकुटस्वरूपौ, च । तयोः एका आर्या=मान्या, वसन्तसेना, अपरः धर्मनिधिः=धर्मशीलः चारुदत्तश्चेति ॥ १४ ॥

अन्वयः—चारुदत्तम्, वसन्तसेनाम्, च, सुष्ठु, जानामि, (किन्तु,) राजकार्ये, प्राप्ते, पितरम्, अपि, अहम्, न जानामि ॥ १५ ॥

जानामीति । चारुदत्तम्=सार्थवाहसुतम्, वसन्तसेनाम्=गणिकाम्, च=पुनः, सुष्ठु=सुन्दरस्वरूपेण, जानामि=अवगतोऽस्मि । (किन्तु) राजकार्ये=राजकर्मणि, प्राप्ते=समुपस्थिते, पितरम्=जनकम्, अपि अहम्=चन्दनकः, न जानामि=नावगतोऽस्मि । अर्थापत्तिरलङ्कारः । आर्याजातिः ॥ १५ ॥

आर्यकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अयम्=एषः, मे=मम, पूर्ववैरी=प्रतिकूलकार्यकारितया शत्रुः, पूर्वबन्धु=अनुकूलकार्यसम्पादकतया बन्धुः । यतः=यस्मात्–एकस्य बन्धुत्वेऽपरस्य वैरित्वे कारणमुपन्यस्यति ।

अन्वयः—एककार्यनियोगे, अपि, अनयोः, तुल्यशीलता, न । यथा, विवाहे, चितायाम्, च, द्वयोः, हुतभुजोः ॥ १६ ॥

एकेति । एकस्मिन्=समाने, कार्ये=कर्मणि, नियोगे=नियोजने, अपि=चेत्,

---

इस नगरी में दो ही श्रेष्ठ व्यक्ति हैं, पूजनीय हैं । एक आर्या वसन्तसेना और दूसरे धर्मात्मा आर्य चारुदत्त ॥ १४ ॥

वीरक—ओ चन्दनक ।

मैं आर्या वसन्तसेना को भी जानता हूँ और आर्य चारुदत्त को भी । किन्तु राज-काज में मैं अपने बाप को नहीं जानता हूँ ॥ १५ ॥

आर्यक—(अपने आप) यह वीरक मेरा पुराना दुश्मन है और चन्दनक पुराना मित्र है । क्योंकि—

चन्दनकः—तुमं तन्तिलो सेणावई रण्णो पच्चईदो। एदे धारिदा मए बइल्ला, अवलोएहि। [त्वं तन्त्रिलः सेनापतिः राज्ञः प्रत्ययितः। एतौ धारितौ मया बलीवर्दौ, अवलोकय।]

वीरकः—तुमं पि रण्णो पच्चइदो, वलवइ, ता तुमं ज्जेव अवलोएहि। [त्वमपि राज्ञः प्रत्ययितो बलपतिः, तत् त्वमेव अवलोकय।]

चन्दनकः—मए अवलोइदं तुए अवलोइदं भोदि ? [मया अवलोकित त्वया अवलोकित भवति ?]

वीरकः—जं तुए अवलोइदं तं रण्णा पालएण अवलोइदं। [यत् त्वया अवलोकितं तत् राज्ञा पालकेनावलोकितम्।]

चन्दनकः—अरे ! उण्णामेहि धुरं। [अरे ! उन्नमय धुरम्।]

अनयोः=वीरकचन्दनकयोः, तुल्यशीलता=समरूपता, न=न वर्त्तते, यथा=येन प्रकारेण, विवाहे=परिणये, च=पुनः, चितायाम्=चित्याम्, च=अपि, द्वयोः= उभयोः स्थितयोः, हुतभुजोः=पावकयोः, एकस्य मङ्गलजनकत्वात् अपरस्या-माङ्गलिकत्वादिति। पथ्यावक्त्रम् ॥ १६ ॥

चन्दनकः—त्वम्=वीरकः, तन्त्रिलः=प्रधानः 'तन्त्रं प्रधाने सिद्धान्ते सूत्रदाये परिच्छदे।' इत्यमरः। सेनापतिः=सेनानीः, राज्ञः=नृपस्य, प्रत्ययितः=विश्रब्धः, एतौ=इमौ, बलीवर्दौ=वृषभौ, मया=चन्दनकेन, धारितौ=अवलम्बितौ, अवलो-कय=शकटं निरीक्षस्व।

वीरकः—त्वमपि=चन्दनकोऽपि, राज्ञः=नृपस्य, प्रत्ययितः=विश्वासभाजनः, वलपतिः=सेनानायकः, तत्=तस्मात्, त्वमेव=चन्दनक एव, अवलोकय=पश्य।

चन्दनकः—मया=चन्दनकेन, अवलोकितम्=परीक्षितम्, त्वया=वीरकेन, अवलोकितम्=निरीक्षितम्, भवति=याति।

वीरकः—यत्=किञ्चित्, त्वया=चन्दनकेन, अवलोकितम्=निरीक्षितम्, तत्= वस्तु, राज्ञा=नृपेन पालकेन, अवलोकितम्=परीक्षितं भवति।

चन्दनकः—अरे=इति सम्बोधने, उन्नमय=उर्ध्वं कुरु, धुरम्=भारम्।

दोनों एक ही काम में लगे हैं फिर भी दोनों के स्वभाव में बड़ा अन्तर है। ठीक उसी प्रकार जैसे विवाह की आग और चिता की आग में अन्तर है। चन्दनक वैवाहिक अग्नि की तरह यदि सुखद है तो यह वीरक चिताग्नि की तरह दुःखद है ॥ १६ ॥

चन्दनक—तुम राजा के विश्वासभाजन सेनानायक हो। अतः मैंने बैलों को थाम लिया है अब तुम गाड़ी का निरीक्षण कर लो।

वीरक—राजा के तुम भी तो विश्वस्त सेनापति हो, तुम्हीं देख लो न।

चन्दनक—क्या मेरे देख लेने से तुम्हारा देखना हो जायेगा ?

वीरक—यदि तुमने देख लिया तो राजा पालक ने ही देख लिया।

चन्दनक—ओ गाड़ी वाले, पर्दा उठाओ।

(चेटस्तथा करोति ।)

आर्यकः—(स्वगतम् ।) अपि रक्षिणो मामवलोकयन्ति ? अशस्त्रश्चास्मि मन्दभाग्यः । अथवा—

भीमस्यानुकरिष्यामि बाहुः शस्त्रं भविष्यति ।
वरं व्यायच्छतो मृत्युर्न गृहीतस्य बन्धने ।। १७ ।।

अथवा, साहसस्य तावदनवसरः ।

(चन्दनको नाट्येन प्रवहणमारुह्यावलोकयति ।)

आर्यकः—शरणागतोऽस्मि ।

चन्दनकः—(संस्कृतमाश्रित्य) अभयं शरणागतस्य ।

(चेटः तथाकरोति=धुरं ऊर्ध्वं करोति ।)

आर्यकः—(स्वगतम्=आत्मगतम् ।) अपि=चेत्, रक्षिणः=सैनिकाः, माम्=आर्यकम्, अवलोकयन्ति=पश्यन्ति । अशस्त्रः=शस्त्रविहीनः, च=पुनः, अस्मि ।

अन्वयः—भीमस्य, अनुकरिष्यामि, बाहुः, शस्त्रम्, भविष्यति, व्यायच्छतः, मृत्युः, वरम्, बन्धने, गृहीतस्य, न ।। १७ ।।

भीमस्येति । भीमस्य=वृकोदरस्य, अनुकरिष्यामि=अनुरूपमाचरिष्यामि, बाहुः=भुजः, शस्त्रम्=आयुधम्, भविष्यति । व्यायच्छतः=परपरिभवं कुर्वत इति पृथ्वीधरः व्यायामः कुर्वत इति भट्टाचार्यः, युद्धं कुर्वतः । मृत्युः=मरणम्, वरम्=श्रेष्ठम्, बन्धने=कारागारे, गृहीतस्य=बद्धस्य, न=नहि वरम् । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।।१७।।

अथवा=वा, साहसस्य=धृष्टतायाः, तावदित्यवधारणे, अनवसरः=असमयः ।

(चन्दनकः नाट्येन=अभिनयेन, प्रवहणम्=शकटम्, अवरुह्य=अवरोधं कृत्वा, अवलोकयति=पश्यति ।)

आर्यकः—शरणागतोऽस्मि=तव शरणं प्राप्तोऽस्मि ।

चन्दनकः—(संस्कृतम्=देववाणीम्, आश्रित्य=अवलम्ब्य) अभयम्=भयस्याभावः, शरणागतस्य=शरणापन्नस्य ।

(चेट गाड़ी का पर्दा उठाता है ।)

आर्यक—(मन ही मन) क्या ये रक्षक मुझे देखेगें । अभागा हूँ मैं । मेरे पास कोई हथियार भी तो नहीं है । अथवा—

तो मैं भीम का ही अनुकरण करूँगा । ये बाँहें ही मेरे हथियार बनेंगे । जेल में बन्द होने को अपेक्षा लड़कर मर जाना ही अच्छा होगा १७ ।।

अथवा, साहस का यह उचित समय नहीं है ।

(चन्दनक गाड़ी पर चढ़कर देखता है ।)

आर्यक—मैं आप की शरण में हूँ ।

चन्दनक—(संस्कृत भाषा में) शरणागत को डरने की आवश्यकता नहीं ।

आर्यकः—

त्यजति किल तं जयश्रीर्जहति च मित्राणि बन्धुवर्गश्च ।
भवति च सदोपहास्यो यः खलु शरणागतं त्यजति ।। १८ ।।

चन्दनकः—कधं अज्जओ गोवालदारओ सेणवित्तासिदो विअ पत्तरहो साउणिअस्स हत्थे णिवडिदो। (विचिन्त्य) एसो अणवराधो सरणाअदो अज्जचारुदत्तस्स पवहणं आरूढो पाणप्पदस्स मे अज्जसव्विलअस्स मित्तं। अण्णदो राअ-णिओओ। ता किं दाणिं एत्थ जुत्तं अणुचिट्ठिदुं ? अधवा, जं भोदु, तं भोदु, पढमं ज्जेव अभअं दिण्णं। **[कथमार्यको गोपालदारकः श्येनवित्रासित इव पत्ररथः शाकुनिकस्य हस्ते निपातितः। एषोऽनपराधः शरणागत आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमारूढः प्राणप्रदस्य मे आर्यशर्विलकस्य मित्रम्; अन्यतो राजनियोगः। तत् किमिदानीमत्र युक्तमनुष्ठातुम् ? अथवा यद्भवतु तद्भवतु, प्रथममेवाभयं दत्तम्।]**

अन्वयः—यः, खल, शरणागतम्, त्यजति, तम्, जयश्रीः, त्यजति, मित्राणि, च, जहति, बन्धुवर्गः (जहति) सदा, उपहास्य,च, भवति ।। १८ ।।

त्यजतीति। यः पुरुषविशेषः, खलु=निश्चयेन, शरणागतम्=आश्रयप्राप्तम् जनम्, त्यजति=जहाति, तम्=जनम्, जयश्रीः=विजयलक्ष्मीः, त्यजति=परित्यागं करोति, मित्राणि=सहृदः, च=पुनः, जहति=त्यजति, बन्धुवर्गः=सम्बन्धिनः, च=पुनः, त्यजति=परित्यागं करोति, सदा=सर्वदा, उपहास्यः=उपहसनीय, च=अपि, भवति=जायते। समुच्चयोऽलङ्कारः च, आर्याजातिश्चेति ।। १८ ।।

चन्दनकः—कथमित्याशङ्कायाम्, आर्यकः=एतादाख्यः, गोपालदारकः=गोपसुतः, श्येनेन=शशादनेन, वित्रासितः=भयं प्रापितः, इव=यथा, पत्रम् एव रथः यस्य स पत्ररथः=पक्षी, शाकुनिकस्य=व्याधस्य, हस्ते=करे, निपतितः=प्राप्तः। (विचिन्त्य= विचार्य) एषः=अयम्, अनपराधः=निर्दोषः, शरणागतः=आश्रयप्राप्तः, आर्यचारुदत्तस्य=सार्थवाहसुतस्य, प्रवहणम्=गोरथम्, आरूढः=स्थितः, मे=मम, प्राण, प्रदस्य=जीवनदायिनः, आर्यशर्विलकस्य=एतदाख्यस्य, मित्रम्=सखा, अन्यतः, राजनियोगः=नृपस्यादेशः। तत्=तस्मात्, इदानीम्=अधुना, अत्र=अस्मिन् विषये, किमनुष्ठातुम्=किं कर्त्तुम्, युक्तम्=उचितम्। अथवा=किं वा, यत् भवतु=यत् भाव्यं, तद्भवतु, प्रथममेव=पूर्वमेव, अभयम्=भयाभावम्, दत्तम्=प्रदत्तमिति।

आर्यक—निश्चय ही जिसने शरणागत की रक्षा नहीं की, विजय लक्ष्मी उसे छोड़ देती है, मित्र एवं भाई बन्धु भी उसका परित्याग कर देते हैं और वह समाज के बीच सदा के लिए उपहासास्पद बन जाता है ।। १८ ।।

चन्दनक—अहीर का पुत्र आर्यक, बाज से डरे पक्षी की तरह बहेलिए के हाथ में जा फँसा। (**सोचकर**) एक ओर तो यह आर्यक निर्दोष है, हमारी शरण में है, आर्य चारुदत्त की गाड़ी पर सवार है, मेरे प्राणप्रद मित्र शर्विलक का मित्र है; दूसरी ओर राजाज्ञा है। तो अब क्या करना चाहिए ? अथवा जो हो, इसे तो पहले से ही अभयदान दे चुका हूँ।

भीदाभअप्पदाणं दत्तस्स परोवआर-रसिअस्स।
जइ होइ होउ णासो तहवि अ लोए गुणो ज्जेव ॥ १९ ॥
[भीताभयप्रदानं ददतः परोपकाररसिकस्य।
यदि भवति भवतु नाशस्तथापि च लोके गुण एव ॥]

(सभयमवतीर्य) दिट्ठो अज्जो—(इत्यर्धोक्ते) ण, अज्जआ वसन्तसेणा। तदो एसा भणादि—'जुत्तं णेदं, सरिसं णेदं, जं अहं अज्जचारुदत्तं अहिसारिदुं गच्छन्ती राअमग्गे परिभूदा।' **[दृष्ट आर्यः—न, आर्या वसन्तसेना! तदेषा भणति—'युक्तं नेदम्, सदृशं नेदम्, यदहमार्यचारुदत्तमभिसर्तुं गच्छन्ती राजमार्गे परिभूता।']**

वीरकः—चन्दणआ! एत्थ मह संसओ समुप्पण्णो। **[चन्दनक! अत्र मम संशय समुत्पन्नः।]**

अन्वयः—भीताभयप्रदानम्, ददतः, परोपकाररसिकस्य, यदि, नाशः, भवति, (तदा) भवतु, तथा, अपि, च, लोके गुण, एव ॥ १९ ॥

भीतेति। भीताभयप्रदानम्=भयभीतमभयदानम्, ददतः=प्रयच्छतः, परोपकार-रसिकस्य=परोपकारतत्परस्य, यदि=चेत्, नाशः=मृत्युः, भवति=जायते, तदा भवतु=अस्तु तथापि च=पुनः नाशे जाते अपि, लोके=संसारे, गुणः=यशः, एव भवति। आर्यावृत्तञ्च ॥ १९ ॥

(सभयम्=भयेन सहितम्, अवतीर्य=अधोगत्वा) दृष्टः=अवलोकितः, आर्यः इति अर्द्धोक्ते आर्यकस्य महाविपत्तिमाशङ्क्य, न आर्या वसन्तसेना इति कथयति। आर्या वसन्तसेना इति वक्तव्ये आर्य इति भयेन कथितम्, तथाहि साहित्यदर्पणे—

'दृप्तादीनां भवेद्भ्रंशो वाच्यादन्यतरद्वचः।'

तेन भ्रंशो नाम नाट्यलक्षणमत्र। तत्=तस्मात्, एषा=वसन्तसेना, भणति=कथयति—इदम्=एतत् कर्म, न=नहि, युक्तम्=उचितम्, सदृशम्=तवोचितम्, न=नहि, इदम्=एतत्, यत् अहम्=वसन्तसेना, आर्यचारुदत्तम्=सार्थवाहसुतम्, अभिसर्त्तुम्=अभिसरणं कर्त्तुम्, गच्छन्तीम्=व्रजन्तीम्, राजमार्गे=राजपथे, परिभूता=तिरस्कृता, अपमानिता वेति।

डरे हुए को अभयदान देनेवाले परोपकारप्रेमी की यदि मौत भी होती हो तो चिन्ता नहीं। क्योंकि मृत्यु के बाद भी संसार में उसकी प्रशंसा ही होती है, निन्दा नहीं ॥ १९ ॥

(डरते हुए, उतर कर) भाई मैंने आर्य को देख लिया **(इस तरह आधा कह लेने के बाद)** नहीं आर्या वसन्तसेना को देख लिया। उनका कहना है कि—'यह काम उचित नहीं हुआ। आपके योग्य नहीं हुआ। मैं तो आर्य चारुदत्त से मिलने जा रही थी और आपने बीच सड़क पर रोक कर मुझे इस तरह अपमानित किया है'।

चन्दनकः—कधं दे संसओ ? [कथं ते संशयः ?]

वीरकः—

संभम-घग्घरकंठो तुमं पि जादोसि जं तुए भणिदं ।
दिट्ठो मए क्खु अज्जो पुणो वि अज्जा वसन्तसेणे त्ति ।। २० ।।
[सम्भ्रम-घर्घर-कण्ठस्त्वमपि जातोऽसि यत्त्वया भणितम् ।
दृष्टो मया खलु आर्यः पुनरप्यार्या वसन्तसेनेति ।।]

एत्थ मे अप्पच्चओ । [अत्र मे अप्रत्ययः ।]

चन्दनकः—अरे ! को अप्पच्चओ तुह ? वअं दक्खिणत्ता अव्वत्त-भासिणो । खस-खत्ति-खडा-खडट्टो-विलअ-कण्णाट-कण्ण-प्पावरण-दविड-चोल-चीण-वव्वर-खेर-खाण-मुख-मधु-घाद-पहुदाणं मिलिच्छजादीणं अणेअ-देस-भासा-भिण्णा जहेट्ठं मन्तआम—'दट्ठो दिट्ठा वा, अज्जो अज्जआ वा ।' [अरे ! कः अप्रत्ययस्तव ? वयं दाक्षिणात्या अव्यक्तभाषिणः । खस-खत्ति-खडा-खडट्टो-विलय-

---

वीरकः—चन्दक=हे सैनिक, अत्र=अस्मिन् उत्तरे, मम=वीरकस्य, संशयः=सन्देहः, समुत्पन्नः=जातः ।

चन्दनकः—कथमितिप्रश्ने, ते=तव, संशयः=सन्देहः ?

अन्वयः—त्वमपि, सम्भ्रमघर्घरकण्ठः, जातः, असि । यत् त्वया, मया, खलु, आर्यः, दृष्टः, ततः, आर्या, वसन्तसेना, इति, च, पुनः भणितम् ।। २० ।।

सम्भ्रमेति । त्वमपि=चन्दनकोऽपि, सम्भ्रमेण=मिथ्याकथनोद्वेगेन, घर्घरः=घर्घरध्वनियुक्तः, कण्ठः=गलप्रदेशः यस्य तादृशः, जातः=सम्पन्नः, असि=वर्तसे, यत्=यस्मात्, त्वया=चन्दनकेन, पूर्वं भणितम्=कथितम्, मया खलु=निश्चितम् आर्यः=कोऽपि सम्माननीयपुरुषः, दृष्टः=अवलोकितः, ततः=तदनन्तरम्, आर्या=मान्या वसन्तसेना इति च=इत्थम्, भणितम्=उक्तम् । तेन मम सन्देहः । गीतिः वृत्तम् ।। २० ।।

अत्र=अस्मिन् विषये, मे=मम, अप्रत्ययः=अविश्वासः ।

चन्दनकः—अरे कः=कथम्, तव=भवतः अप्रत्ययः=अविश्वासः, वयम्=चन्दनकादिः, दक्षिणात्या=दक्षिणदेशीयाः, अव्यक्तभाषिणः=अस्पष्टवक्तारः, म्लेच्छ-

---

वीरक—चन्दनक, मुझे तुम्हारी बात में कुछ शक लगता है ।

चन्दनक—तुम्हें शक क्यों हो गया ?

वीरक—तुम घबड़ाये से लगते हो, तुम्हारी आवाज थरथरा रही है, तुमने पहले कहा—'मैंने आर्य को देख लिया, फिर कहा आर्या वसन्तसेना को देख लिया—यह विसंगति क्यों ।। २० ।।

इसी से मुझे शक हो गया है ।

चन्दनक—अरे, तुम्हें अविश्वास क्यों हो रहा है ? हम दक्षिणवासी तो अशुद्ध बोलते ही हैं । खस, खत्ति, खड़ा, खड़हो, विलय, कर्णाट, कर्ण, प्रावरण, द्रविड़,

कर्णाट-कर्ण-प्रावरण-द्रविड-चोल-चीन-बर्बर-खेर-खान-मुख-मधुघात-प्रभृतीनां म्लेच्छजातीनाम् अनेकदेशभाषाभिज्ञा यथेष्टं मन्त्रयामः–'दृष्टो दृष्टा वा, आर्यः आर्या वा।']

वीरकः—णं अहं पि पलोएमि। राअ-अण्णा एसा। अहं रण्णो पच्चइदो। [ननु अहमपि प्रलोकयामि। राजाज्ञा एषा। अहं राज्ञः प्रत्ययितः।]

चन्दनकः—ता किं अहं अप्पच्चइदो संवुत्तो? [तत् किमहमप्रत्ययितः संवृत्तः?]

वीरकः—णं सामि-णिओओ। [ननु स्वामिनियोगः।]

चन्दनकः—(स्वगतम्) अज्जगोवालदारओ अज्जचारुदत्तस्स पवहणं अहिरुहिअ अवक्कमदि त्ति जइ कहिज्जदि, तदो अज्जचारुदत्तो रण्णा सासिज्जइ, ता को एत्थ उवाओ?। (विचिन्त्य) कण्णाट-कलह-प्पओअं कलेमि। (प्रकाशम्) अरे वीरअ! मए चन्दणकेण पलोइदं पुणो वि तुमं पलोएसि, को तुमं? [आर्यगोपालदारकः आर्यचारुदत्तस्य प्रवहणमधिरुह्य अपक्रामतोति यदि कथ्यते, तदा आर्यचारुदत्तो राज्ञा शाष्यते. तत् कोऽत्र उपायः?

जातीनाम्=असभ्यानाम्, अनेकदेशभाषाभिज्ञाः=विविधदेशभाषाभिज्ञाः, यथेष्टम्=पर्याप्तम्, मन्त्रयामः=भाषामहे।

वीरकः—ननु=अस्तु, अहमपि=वीरकोऽपि, प्रलोकयामि=पश्यामि, राजाज्ञा=नृपादेशः, एषा=इयम्, अहम्=वीरकः, राज्ञः=नृपस्य, प्रत्ययितः=विश्वस्तः।

चन्दनकः—तत्=तर्हि, किमिति प्रश्ने, अहम्=चन्दनकः, अप्रत्ययितः=अविश्वस्तः, संवृत्तः=सञ्जातः।

वीरकः—ननु=अथ, स्वामिनः=राज्ञः पालकस्य, नियोगः=आदेशः।

चन्दनकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) आर्यगोपालदारकः=आभीरपुत्रः, आर्यचारुदत्तस्य=मान्यसार्थवाहसुतस्य, प्रवहणम्=यानम्, अधिरुह्य=आरोहणं कृत्वा, अपक्रामति=पलायते, इति=इत्थम्,· यदि=चेत्, कथ्यते=उच्यते, तदा=तर्हि, आर्यचारुदत्तः राज्ञा=नृपेन पालकेन, शिष्यते=दण्डयिष्यते, तत्=तस्मात्

चोल, चीन, वर्वर, खेर, खान, मुख, मधुघात आदि असभ्य जातिवाले हम देश की विभिन्न भाषाओं से अनजान रहने के कारण मनमाना 'देखा गया' 'देखी गई' 'आर्य' 'आर्या' आदि बोलते ही रहते हैं।

वीरक—अच्छा तो मैं भी राजा का विश्वासभाजन ही हूँ और उनकी आज्ञा है तो जरा मैं भी देख लूँ।

चन्दनक—तो क्या मैं अविश्वासी हो गया?

वीरक—अरे, नहीं राजा का आदेश ही ऐसा है।

चन्दनक—(मन ही मन) यदि यह कहा जाय कि गोपबालक आर्यक चारुदत्त की गाड़ी से जा रहा है तो निश्चय ही आर्य चारुदत्त भी राजा से दण्डित होंगे। तो

कर्णाट-कलह-प्रयोगं करोमि। अरे वीरक ! मया चन्दनकेन प्रलोकितं पुनरपि त्वं प्रलोकयसि, कस्त्वम् ?]

वीरकः—अरे तुमं पि को ? [अरे त्वमपि कः ?]

चन्दनकः—पूइज्जन्तो माणिज्जन्तो तुमं अप्पणो जादिं ण सुमरेसि। [पूज्यमानो मन्यमानस्त्वमात्मनो जातिं न स्मरसि ?]

वीरकः—(सक्रोधम्) अरे ! का मह जादी ? [अरे ! का मम जातिः ?]

चन्दनकः—को भणउ ? [को भणतु ?]

वीरकः—भणउ। [भणतु।]

चन्दनकः—अहवा ण भणामि। [अथवा न भणामि।]

जाणन्ती वि हु जादिं तुज्झ अ ण भणामि सील-विहवेण।
चिट्ठउ महच्चिचअ मणे किं हि कइत्थेण भग्गेण॥ २१॥

कोऽत्र=किमस्मिन् विषये, उपायः=युक्तिः ? (विचिन्त्य=विचार्य,) कर्णाटकलह-प्रयोगम्=कर्णाटदेशानुरूपेण विरोधारम्भम्, करोमि=आचरामि। (प्रकाशम्=सर्व-श्राव्यम्,) अरे वीरक ! मया, प्रलोकितम्=अवलोकितम्, पुनरपि=भूयोऽपि त्वम्=भवान्, प्रलोकयसि=अवलोकनं करोसि, कस्त्वम्=किमसि त्वम् ?

वीरकः—अरे=इति सम्बोधने, त्वमपि=भवानपि, कः=द्रष्टाविशेषः ?

चन्दनकः—पूजमानः=आत्मानं पूजनीयं, मन्यमानः, त्वम्=भवान्, आत्मनः=स्वम्, जातिम्= गोत्रम्, न=नहि, स्मरसि=स्मरणं करोसि ?

वीरकः—(सक्रोधम्=सकोपम्) का=किम्, मम=वीरकस्य, जातिः=गोत्रः ?

चन्दनकः—कः=पुरुषविशेषः, भणतु=नामोच्चारणं करोतु।

वीरकः—भणतु=कथय।

चन्दनकः—अथवा=वा, न=नहि, भणामि=उच्चारणं करोमि।

अन्वयः—तव, खलु, जातिम्, जानन्, अपि, अहम्, शीलविभवेन, च, न भणामि। मम, मनसि, एव, तिष्ठतु। हि, कपित्थेन, भग्नेन, किम् ?॥ २१॥

फिर क्या उपाय है ? (सोचकर) कर्णाटकदेशीय कलह शुरू कर देता हूँ। (सुनाकर) अरे वीरक जब मैंने देख ही लिया तो फिर तुम देखनेवाले कौन होते हो ?

वीरक—तो फिर, तुम्हीं कौन देखने वाले हो ?

चन्दनक—ओ अपने को पूज्य समझने वाले वीरक, अपनी जात का ख्याल करो।

वीरक—(गुस्सा कर) अरे, मेरी जाति क्या है ?

चन्दनक—नीच जाति का नाम कौन ले ?

वीरक—नहीं बोलो तो सही।

चन्दनक—नहीं बतलाऊँगा।

[जानन्नपि खलु जातिं तव च न भणामि शीलविभवेन।
तिष्ठतु ममैव मनसि किं हि कपित्थेन भग्नेन ॥]

वीरकः—णं भणउ भणउ। [ननु भणतु भणतु।]

(चन्दनकः संज्ञां ददाति।)

वीरकः—अरे ! किं णेदं ?। [अरे ! किन्नु इदम् ?]

चन्दनकः—

सिण्ण-सिलाअल-हत्थो पुरिसाणं कुच्च-गण्ठि-सण्ठवणो।
कत्तरि-वावुद-हत्थो तुमं पि सेणावई जादो ॥ २२ ॥

[शीर्णशिलातलहस्तः पुरुषाणां कूर्च्च-ग्रन्थि-संस्थापनः।
कर्त्तरी-व्यापृत-हस्तस्त्वमपि सेनापतिर्जातः ॥]

जानन्निति। तव=भवतः, खलु=निश्चितम्, जातिम्=गोत्रम् 'जातिः सामान्यजन्मनः' इत्यमरः। 'जातिश्छन्दसि सामान्ये गोत्रजन्मनोः' इति विश्वः। जानन्=विदन्, अपि=चेत्, अहम्=चन्दनकः, शीलविभवेन=स्वभावसम्पत्या, न=नहि, च=पुनः, भणामि=कथयामि, मम=चन्दनकस्य, मनसि=चित्ते, एव तिष्ठतु=गुप्तरूपेण स्थिता भवतु, हि=यतः, कपित्थेनः=दधित्थेन, 'कपित्थे स्युर्दधित्थग्राहिमन्मथाः। तस्मिन् दधिगलः पुष्पफलदन्तशठावपि।' इत्यमरः। भग्नेन=स्फुटितेन, किम्=न किमपि लाभ इत्यर्थः। अत्र दृष्टान्तालङ्कारः, आर्याजातिश्चेति ॥ २१ ॥

वीरकः—ननु=निश्चयेन, भणतु=कथयतु।

(चन्दनकः संज्ञाम्=संकेतम्, ददादि=करोति।)

वीरकः—अरे=इति सम्बोधनें, किन्तु=परञ्च, इदम्=एतत्।

अन्वयः—शीर्णशिलातलहस्तः, पुरुषाणाम्, कूर्चग्रन्थिसंस्थापनः, कर्त्तरिव्याप्तहस्तः, त्वम्, सेनापतिः, अपि जातः ॥ २२ ॥

शीर्णेति। शीर्णशिलातलहस्ते=भग्नप्रस्तरखण्डकरे, पुरुषाणाम्=लोकानाम्, कूर्चानाम्=श्मश्रूणाम्, "कूर्चमस्त्री भ्रूवोर्मध्येकठिनश्मश्रुकैतवे" इति मेदिनी। ग्रन्थे=मूलप्रदेशस्य, संस्थापनम्=समुच्छेदः येन तादृशः, कर्त्तरि व्याप्तहस्तः=क्षुरव्यस्तकरः, त्वम्=भवान्, सेनापतिः अपि=सेनानायकोऽपि जातः=बभूवेति। आर्या वृत्तञ्चेति ॥ २२ ॥

तुम्हारी जाति जानता हूँ किन्तु, अपने शील के कारण मैं कहूँगा नहीं। वह मेरे मन में ही रहे। बेकार कैथ फोड़ने से क्या लाभ है ? ॥ २१ ॥

वीरक—कहो, कहो।

(चन्दनक इशारे से बतलाता है।)

वीरक—इशारे क्या कर रहे हो ?

चन्दनक—एक हाथ में शान चढ़ानेवाले टूटे पत्थर के टुकड़े दूसरे हाथ में दाढ़ी छीलनेवाला उस्तुरा रखनेवाला नाई भी तुम सेनापति बन गये ॥ २२ ॥

वीरकः—अरे चन्दणआ ! तुमं वि माणिज्जन्तो अप्पणो केरिकं जादिं ण सुमरेसि । [अरे ! चन्दनक ! त्वमपि मन्यमान आत्मनो जातिं न स्मरसि ।]

चन्दनकः—अरे ! का मह चन्दणअस्स चन्दविसुद्धस्स जादी ? । [अरे ! का मम चन्दनकस्य चन्द्रविशुद्धस्य जातिः ?]

वीरकः—को भणउ ? [को भणतु ?]

चन्दनकः—भणउ भणउ । [भणतु भणतु ।]

(वीरको नाटयेन संज्ञां ददाति ।)

चन्दनकः—अरे ! किं णेदं । [अरे ! किन्नु इदम् ।]

वीरकः—अरे ! सुणाहि सुणाहि । [अरे शृणु शृणु ।]

जादी तुज्झ विसुद्धा मादा भेरी पिदा वि दे पडहा ।
दुम्मुह ! करडअ-भादा तुमं पि सेणावई जादो ।। २३ ।।

[जातिस्तव विशुद्धा माता भेरी पितापि ते पटहः ।
दुर्मुख ! करटकभ्राता त्वमपि सेनापतिर्जातः ।।]

वीरकः—अरे चन्दनक, त्वमपि=भावानपि, मन्यमानः=माननीयः, आत्मनः=स्वस्य, जातिम्=गोत्रम् न=नहि, स्मरसि=स्मरणं करोसि ।

चन्दनकः—अरे इति सम्बोधने, मम=चन्दनकस्य चन्द्रविशुद्धस्य=चन्द्र इवातिनिर्मलस्य, का जातिः=किं गोत्रम् ?

वीरकः—को भणतु=कः उच्चारणं करोतु ।

चन्दनकः—भणतु भणतु=कथयतु कथयतु ।

(वीरकः नाटयेन=अभिनयेन, संज्ञाम्=संकेतम्, ददाति=बोधयति ।)

चन्दनकः—अरे, इति सम्बोधने, इदम्=एतत्, कन्नु=किं इति ?

वीरकः—अरे, शृणु=आकर्ण्यताम् ।

अन्वयः—दुर्मुख ! विशुद्धा, तव, जातिः । ते, माता, भेरी, पिता, पटहः । कर्टक-भ्राता, त्वम्, अपि, सेनापतिः जातः २३ ।।

जातिरिति—विशुद्धा=पवित्रा, तव=भवतः, जातिः=गोत्रम्, ते=तव,

वीरक—रे चन्दनक, तुम्हें भी अपनी जाति याद नहीं आती ।

चन्दनक—चन्द्रमा की तरह स्वच्छ मुझ चन्दनक की कौन जाति है रे ?

वीरक—नीच जाति का कौन नाम ले ?

चन्दनक—बोलो, बोलो ।

(वीरक इशारे से कुछ बतलाता है ।)

चन्दनक—अरे इशारे क्या कर रहे हो ? साफ बतलाओ न ।

वीरक—तो सुन ही ले—

रे दुर्मुख ! तो सुन, तुम्हारी माँ दुन्दुभि है, बाप ढोलक है और भाई तुरही ऐसी जाति के तुम बलाधिपति बन गये हो ।। २३ ।।

चन्दनकः—(सक्रोधम्) अहं चन्दणओ चम्मारओ ? ता पलोएहि पवहणं। [**अहं चन्दनकश्चर्मकारः ? तत् प्रलोकय प्रवहणम्।**]

वीरकः—अरे पवहणवाहआ ! पडिवत्तावेहि पवहणं, पलोइस्सं। [**अरे ! प्रवहणवाहक ! परिवर्त्तय प्रवहणं, प्रलोकयिष्यामि।**]

(चेटस्तथा करोति।)

(वीरकः प्रवहणमारोढुमिच्छति, चन्दनकः सहसा केशेषु गृहीत्वा पातयति, पादेन ताडयति च।)

वीरकः—(सक्रोधमुत्थाय) अरे अहं तुए वीसत्थो राआण्णत्तिं करेन्तो सहसा केसेसु गेण्हिअ पादेण ताडिदो। ता सुणु रे ! अहिअरणमज्झे जइ दे चउरंगं ण कप्पावेमि, तदा ण होमि वीरओ। [**अरे ! अहं त्वया विश्वस्तो राजाज्ञप्तिं कुर्वन् सहसा केशेषु गृहीत्वा पादेन ताडितः। तच्छृणु रे ! अधिकरणमध्ये यदि ते चतुरङ्गं न कल्पयामि, तदा न भवामि वीरकः।**]

माता=जननी, भेरी=वाद्यविशेषः, पिता=जनकः, पटहः=ढक्का, रे दुर्मुख=अनर्गलवादिन्, कर्टकः=वाद्यविशेषः, भ्राता=सहोदरः, त्वमपि=एतादृक्चर्मकारोऽपि, सेनानायकः=वलाधिपतिः,जातः=भूत इति। आर्या जातिः॥ २३॥

चन्दनकः—(सक्रोधम्=सकोपम्) अहं=चन्दनकः, चर्मकारः=पादुकाकारः, तत्=तर्हि, प्रलोकय=पश्यतु, प्रवहणम्=गोरथम्।

वीरकः—अरे प्रवहणवाहक=रे शकटचालक, परिवर्त्तय=मदभिमुखं कुरु, प्रवहणम्=यानम्, प्रलोकयिष्यामि=अवलोकनं करिष्यामि।

(चेटः तथाकरोति=यथादिशति तथाकरोति।)

(वीरकः प्रवहणम्=शकटोपरि, आरोढुम्=आरोहणं कर्त्तुम्, इच्छति=अभिलषति, चन्दनकः सहसा=हठात्, केशेषु=कचेषु, गृहीत्वा=धृत्वा, पातयति=भूमौ पातयति, पादेन=चरणाघातेन, ताडयति च।)

वीरकः—(सक्रोधम्=सकोपम्, उत्थाय=उत्थितो भूत्वा) अरे अहम्=वीरकः, त्वया=चन्दनकेन, विश्वस्तः=विश्रब्धः, राजाज्ञप्तिं=नृपादेशम्, कुर्वन्=विदधन्,

---

चन्दनक—(अतिक्रुद्ध होकर) अच्छा तो चन्दनक चमार है ? तो देख लो गाड़ी जरा।

वीरक—रोक रे गाड़ीवाले, मैं गाड़ी देखूंगा।

(चेट वैसा ही करता है।)

(वीरक गाड़ी पर चढ़ना चाहता है और चन्दनक उसके बाल पकड़ कर धरती पर पटकता है और पैरों से पीटता है।)

वीरक—(क्रोधपूर्वक उठते हुए) मुझ विश्वासी सैनिक को राजाज्ञापालन करते

चन्दनकः–अरे ! राअउलं अहिअरणं वा वज्ज । किं तुए सुणअ-सरिसेण ? । [**अरे ! राजकुलमधिकरणं वा व्रज । किं त्वया शुनकसदृशेन ?**]

वीरकः—तह । (इति निष्क्रान्तः ।) [**तथा ।**]

चन्दनकः—(दिशोऽवलोक्य) गच्छ रे पवहणवाहआ, गच्छ । जइ को वि पुच्छेदि, तदो भणसि 'चन्दणअ-वीरएहिं अवलोइदं पवहणं वज्जइ । अज्जे ! वसन्तसेणे ! इमं अ अहिण्णाणं दे देमि । (इति खड्गं प्रयच्छति ।) [**गच्छ रे प्रवहणवाहक ! गच्छ । यदि कोऽपि पृच्छति, ततो भणिष्यसि 'चन्दनक-वीरकाभ्याम् अवलोकितमिदं प्रवहणं व्रजति ।' आर्ये ! वसन्तसेने ! इदञ्च अभिज्ञानं ते ददामि ।**]

आर्यकः—(खड्गं गृहीत्वा सहर्षमात्मगतम् ।)

सहसा=झटिति, केशेषु गृहीत्वा=शिरोरुहेषु हस्तेकृत्वा, पादेन=चरणेन, ताडितः=प्रहारितः । शृणु=आकर्ण्यताम्, अधिकरणमध्ये=न्यायालये, चतुरङ्गम्=चतुःप्रकारकं दण्डम् (शिरोमुण्डन-कशाघात-धनहरण-बहिष्करणानि), कल्पयामि=दापयिष्यामि, तदा न=नहि ।

चन्दनकः—राजकुलम्=नृपसन्निधौ, वा=अथवा, अधिकरणम्=न्यायालये, व्रज=गच्छ, किम्=न किमपि, त्वया=भवता, शुनकसदृशेन=कुक्कुरतुल्येन । न किमपि अनिष्टं भवतीति भावः ।

वीरकः–तथा=सोपालम्भोऽयं कुक्कुरतुल्यः अङ्गीकारः ।

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।)

चन्दनकः—(दिशोऽवलोक्य=सर्वतः विलोक्य) गच्छ=प्रयाहि, रे प्रवहणवाहक=शाकटिक, गच्छ=याहि, यदि=चेत्, कोऽपि=पुरुषविशेषः, पृच्छति=ज्ञातुमिच्छति, ततः=तदा, भणिष्यसि=कथयिष्यसि, चन्दनक-वीरकाभ्याम्, इदम्=शकटम्, अवलोकितम्=परीक्षितम्, प्रवहणम्=यानम्, व्रजति=याति । आर्ये वसन्तसेने, इदम्=एतत्, अभिज्ञानम्=चिह्नम्, ते ददामि=प्रयच्छामि । (खड्गं=कृपाणम्, प्रयच्छति=ददाति ।

आर्यकः—(खड्गम्=करवालम्, गृहीत्वा=नीत्वा, सहर्षम्=सानन्दम्, आत्मगतम्=स्वगतम् ।)

समय केश खींच कर लतियाया है तो सुन लो, राजा के सामने या न्यायालय में तुम्हें चतुरंग दण्ड नहीं दिलवाया तो मेरा नाम वीरक नहीं ।

चन्दनक—अरे जा जा, राजा को फरियाद सुना या कचहरी जा । तुझ जैसे कुत्ते से हमारा कुछ नहीं बिगड़ता ।

वीरक—अच्छा तो देख लूंगा । (**चला जाता है ।**)

चन्दनक—(**सब ओर देख कर**) जा रे गाड़ीवान् जा । रास्ते में यदि कोई कुछ पूछे तो कह देना—चन्दनक और वीरक ने गाड़ी देख ली है । आर्ये, वसन्तसेने, यह चिह्न अपने साथ रख लो । (**तलवार देता है ।**)

अये ! शस्त्रं मया प्राप्तं स्पन्दते दक्षिणो भुजः ।
अनुकूलञ्च सकलं हन्त संरक्षितो ह्यहम् ॥ २४ ॥

चन्दनकः—अज्जए ! [आर्ये !]

एत्थ मए विण्णविदा पच्चइदां चन्दणं पि सुमरेसि ।
ण भणामि एस लुद्धो णेहस्स रसेण बोल्लामो ॥ २५ ॥

[अत्र मया विज्ञप्ता प्रत्ययिता चन्दनमपि स्मरसि ।
न भणामि एष लुब्धः स्नेहस्य रसेन वदामः ॥]

आर्यकः—

चन्दनश्चन्द्रशीलाढ्यो दैवादद्य सुहृन्मम ।
चन्दनं भोः ! स्मरिष्यामि सिद्धादेशस्तथा यदि ॥ २६ ॥

अन्वयः—अये, मया, शस्त्रम्, प्राप्तम्, दक्षिणः, भुजः, स्पन्दते, सकलम्, अनुकूलम्, हि, अहम्, संरक्षितः ॥ २४ ॥

अये इति । अये=इति हर्षसूचकमव्ययम्, मया=आर्यकेण, शस्त्रम्=आयुधम्; प्राप्तम्=अधिगतम्, दक्षिणः=वामेतरः, भुजः=बाहुः, स्पन्दते=स्फुरति, सकलम्=अखिलम्, अनुकूलम्=अविपरीतम्, हि=यतः, अहम्=आर्यकः, संरक्षितः=सुरक्षितः । भाविकल्याणं प्रतिबहुकारणोपन्यासात् समुच्चयोऽलङ्कारः । पथ्यावक्त्रं छन्दम् ॥ २४ ॥

चन्दनकः—आर्ये=मान्ये,

अन्वयः—अत्र, मया, विज्ञप्ता, प्रत्ययिता, चन्दनमपि, स्मरसि, एषः, लुब्धः, न, भणामि, स्नेहस्य, रसेन, ब्रूमः ॥ २५ ॥

अत्रेति । अत्र=अस्मिन् विपत्तिसमये, मया=चन्दनकेन, विज्ञप्ता=सूचिता, प्रत्ययिता=विश्वासं प्रापिता, चन्दनमपि=मामपि, स्मरसि=स्मरिष्यसि, एषः=तवोपकारकः, अहम्, लुब्धः=लोभपरवशः सन्, न भणामि=न वदामि, किन्तु स्नेहस्य=प्रेम्णः, रसेन=अनुभूत्या, ब्रूमः=कथयामः । गाथाछन्दः ॥ २५ ॥

अन्वयः—चन्द्रशीलाढ्यः, चन्दनः, दैवात्, अद्य, मम, सुहृद्, यदि सिद्धादेशः, तथा, भोः, चन्दनम्, स्मरिष्यामि ॥ २६ ॥

चन्दन इति । चन्द्रशीलाढ्यः=चन्द्रवच्छीतलस्वभावयुक्तः, चन्दनः=चन्दनकः,

---

आर्यक—(हाथ में तलवार लेकर, मन ही मन खुश होते हुए)

अहा, मुझे हथियार मिल गया । मेरी दाईं भुजा भी फड़क रही है । सब कुछ अनुकूल हो रहा है । मैं अब पूरी तरह सुरक्षित हूँ ॥ २४ ॥

चन्दनक—आर्ये, मेरी एक प्रार्थना है, इस संकट से निकलने के बाद इस चन्दनक को भूलेंगे तो नहीं । यह मैं किसी लोभ से नहीं, प्रत्युत् स्नेहवश कह रहा हूँ ॥२५॥

आर्यक—सुधाकर की तरह शीतल स्वभाववाला चन्दनक संयोग से आज मेरा

चन्दनकः—

अभअं तुह देउ हरो विण्हू बम्हा रवी अ चन्दो अ।
हत्तूण सत्तुवक्खं सुम्भ-णिसुम्भे जधा देवी ॥ २७ ॥

[अभयं तव ददातु हरो विष्णुर्ब्रह्मा रविश्च चन्द्रश्च।
हत्वा शत्रुपक्षं शुम्भनिशुम्भौ यथा देवी ॥]

(चेटः प्रवहणेन निष्क्रान्तः ।)

चन्दनकः—(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) अरे ! णिक्कमन्तस्स मे पिअवअस्सो सव्विलओ पिट्ठदो ज्जेव अणुलग्गो गदो । भोदु, पाधाणदण्डधारओ वीरओ राअ-पच्चअ-आरो विरोधिदो । ता जाव अहं पि पुत्त-भादुपडिवुदो एदं ज्जेव अणुगच्छामि । (इति निष्क्रान्तः ।) [अरे ! निष्क्रामतो मम प्रियवयस्यः

दैवात्=भाग्यात्, अद्य=अधुना, मम=आर्यकस्य, सुहृद्=सखा, सिद्धादेशः=सिद्धकथनम्, यदि=चेत्, सत्यं भविष्यति, तदा भोः=हे चन्दनक ! त्वां स्मरामि=स्मरणं करोमि । उपमाऽलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—हरः, विष्णुः, ब्रह्मा, रविः, च, चन्द्रः, च, तव, अभयं, ददातु । शत्रुपक्षम्, हत्वा, यथा, शुम्भनिशुम्भौ, देवी ॥ २७ ॥

अभयमिति । हरः=शिवः, विष्णुः=हरिः, ब्रह्मा=विधिः, (स्रष्टा, पालनकर्त्ता, संहर्ता च) रविः=सूर्यः, चन्द्रः=सुधाकरः, च, तव=भवतः, अभयम्=भयाभावम्, ददातु=प्रयच्छतु, शत्रुपक्षम्=अरिकुलम्, हत्वा=विनाश्य, तथैव विजयं लभस्व यथा शुम्भनिशुम्भौ=एतदाख्यौ दैत्यौ, हत्वा देवी=दुर्गा विजयं प्राप्तवती । तुल्ययोगिता-उपमालङ्कारौ, आर्याछन्दश्च ॥ २७ ॥

(चेटः प्रवहणेन=शकटेन, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।)

चन्दनकः— (नेपथ्याभिमुखम्=रङ्गशालां प्रति, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अरे=इति आश्चर्ये, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः, मम=चन्दनकस्य, प्रियवयस्यः=परम मित्रम्, शर्विलकः पृष्टतः एव पश्चादेव, अनुलग्नः=अनुसृतः, गतः, भवतु=यातु, प्रधान-

---

मित्र बन गया है । यदि सिद्ध की वाणी सच निकली तो निश्चय ही तुम्हें याद करूँगा ॥ २६ ॥

चन्दनक—ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र सभी तुम्हें अभयदान दें । शत्रुओं को पराजित कर तुम उसी प्रकार विजयी बनो जैसे शुम्भ निशुम्भ को मार कर देवी दुर्गा विजयी बनी थी ॥ २७ ॥

(चेट गाड़ी लेकर बाहर निकल जाता है ।)

चन्दनक—(नेपथ्य की ओर देखकर) अरे, गाड़ी के बाहर निकलते ही मेरा मित्र शर्विलक भी गाड़ी का अनुसरण करते हुए बाहर निकल गया । अच्छा तो

शर्विलकः पृष्ठत एवानुलग्नो गतः। भवतु, प्रधानदण्डधारको वीरको राजप्रत्ययकारी विरोधितः। तद्यावदहमपि पुत्रभ्रातृपरिवृत एतमेवानुगच्छामि।]

इति प्रवहणविपर्ययो नाम षष्ठोऽङ्कः।

दण्डधारकः=प्रधानबलाधिपतिः, वीरकः=वीरकनामा, राजप्रत्ययकारी=राज्ञः पालकस्य विश्वासभाजनः, विरोधितः=अवज्ञया प्रकोपितः। तत्=तस्मात्, अहमपि=चन्दनकोऽपि, पुत्रभ्रातृपरिवृतः=सकलपरिवारेण सह, एतम्=आर्यकम्, एव अनुगच्छामि=अनुसरामि।

(मृच्छकटिके, प्रवहणयोः=चारुदत्त-संस्थानकयोः शकटयोः, विपर्ययः=परिवृत्ति यत्र, तस्मात् प्रवहणविपर्ययो नाम षष्ठोऽङ्कः।)

(इति षष्ठोऽङ्कः समाप्तः।)

राजा पालक के विश्वासभाजन बलाधिपति वीरक से मैंने विरोध ठाना है तो अच्छा यही होगा कि मैं भी सपरिवार इसी आर्यक के पास चला जाऊँ।

(चला जाता है।)

प्रवहणविपर्ययनामक छठा अंक समाप्त

सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चारुदत्तो विदूषकश्च ।)

विदूषकः—भो ! पेक्ख पेक्ख, पुप्फकरण्डअ-जिण्णुज्जाणस्य सस्सिरीअदां।
[भोः ! प्रेक्षस्व, प्रेक्षस्व, पुष्पकरण्डक-जीर्णोद्यानस्य सश्रीकताम् ।]

चारुदत्तः—वयस्य ! एवमेवतत् । तथाहि—

वणिज इव भान्ति तरवः पण्यानीव स्थितानि कुसुमानि ।
शुल्कमिव साधयन्तो मधुकर-पुरुषाः प्रविचरन्ति ।। १ ।।

इत आरभ्य दशमाङ्कोपक्षिप्तवसन्तसेनाप्रकाशपर्यन्तो विमर्शसन्धिः । तथा च शकारप्रहारजनितस्य वसन्तसेनायाश्चैतन्यलोपरूपविघ्नस्य चारुदत्तवधोद्यमरूप-विघ्नस्य च परिव्राजकपरिचर्यया वसन्तसेनाप्रकाशेन चापगमात् परस्परानुरागवशा-देवेदानीं परस्परप्राप्तिनिश्चयात् नियताप्तिर्नाम चतुर्थी कार्यावस्थाऽत्र द्रष्टव्या । तद्यथा साहित्यदर्पणे—

"अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता ।"

अत्र वसन्तसेनाप्राप्तिरूपफलस्य नियताप्तिः ।

विमर्शसन्धिस्तु यथा दर्पणे—

'यत्र मुख्यफलोपाय उद्भिन्नो गर्भितोऽधिकः ।
शापाद्यैः सान्तरायश्च स विमर्श इति स्मृतः ।।'

विमर्शसन्धेरपवादादीनि त्रयोदशाङ्गानि तत्र तत्र प्रदर्शयिष्यन्ते सप्तमाङ्कादि-दशमाङ्कमध्ये गर्भसन्धिरुक्त इति प्राचीनाः, तच्चिन्त्यम् । पूर्वोक्तदिशादर्पणकृता विमर्श-सन्धेः समन्वितत्वात् । अलं प्राचीनोपरि कटाक्षपातेन ।

अथ पूर्वोत्तरकथां संघटयितुं पूर्ववर्णितयोः चारुदत्तविदूषकयोः प्रवेशमाह—**तत इति ।**

विदूषकः—भोः=अयि, प्रेक्षस्व=अवलोकय, पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानस्य, सश्रीकताम् =सौन्दर्यसम्पन्नताम् ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र; एतत्=इदम्, एवमेव=इत्थमेव । तथाहि=पुनश्च-

अन्वयः—तरवः वाणिजः, इव, भान्ति, कुसुमानि, पण्यानि, इव स्थितानि, मधुकरपुरुषाः, शुल्कम्, साधयन्तः, इव, प्रविचरन्ति ।। १ ।।

(विदूषक के साथ चारुदत्त का प्रवेश ।)

विदूषक—अहा ! पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यान की छटा कितनी मनोरम है जरा देखिए तो सही ।

चारुदत्त—मित्र, यह शोभा तो ठीक उसी तरह है । जैसे—

विदूषकः—भो ! इमं असंक्कार-रमणीअं सिलाअलं उवविसदु भवं। [**भोः ! इदमसंस्काररमणीयं शिलातलमुपविशतु भवान्।**]

चारुदत्तः—(उपविश्य) वयस्य ! चिरयति वर्द्धमानकः।

विदूषकः—भणिदो मए—'वढ्ढमाणअ ! वसन्तसेणिअं गेण्हिअ लहुं लहुं आअच्छ' त्ति। [**भणितो मया—'वर्द्धमानक ! वसन्तसेनां गृहीत्वा लघु लघु आगच्छ' इति।**]

चारुदत्तः—तत् किं चिरयति ?

किं यात्यस्य पुरः शनैः प्रवहणं तस्यान्तरं मार्गते ?
भग्नेऽक्षे परिवर्तनं प्रकुरुते ? छिन्नोऽथवा प्रग्रहः ?।
वर्त्मान्तोज्झित-दारु-वारित-गतिर्मार्गान्तरं याचते ?
स्वैरं प्रेरितगोयुगः किमथवा स्वच्छन्दमागच्छति ? ॥ २ ॥

वणिज इति। तरवः=द्रुमाः, वणिजः=आपणिकाः, इव=यथा, भान्ति=शोभन्ते, कुसुमानि=पुष्पाणि, पण्यानि=विक्रेयवस्तूनि, इव स्थितानि=राजन्ते, मधुकराः=भ्रमराः, पुरुषाः=राजपुरुषाः, शुल्कम्=राजकीयकरम्, साधयन्तः=गृह्णन्तः, इव=यथा, प्रविचरन्ति=इतस्ततः परिभ्रमन्ति। अत्रोपमालङ्कारः। आर्यावृत्तञ्चेति ॥ १ ॥

विदूषकः—भोः=इति सम्बोधने, इदम्=पुरोवर्त्तिनम्, असंस्काररमणीयम्=संस्काराभावेऽपि प्राकृतिकसौन्दर्ययुक्तम्, शिलातलम्=प्रस्तरखण्डोपरि, भवान्=श्रीमान्, उपविशतु=आसनग्रहणं करोतु।

चारुदत्तः—(उपविश्य=शिलाखण्डोपरि आसनं गृहीत्वा) वयस्य=हे मित्र, चिरयति=विलम्बं करोति। वर्धमानकः=शाकटिकः।

विदूषकः—मया=मैत्रेयेण, भणितः=आदिष्टः, वर्धमानक ! वसन्तसेनां गृहीत्वा=नीत्वा, लघु लघु=त्वरितम्, आगच्छ=समागम्यताम्।

चारुदत्तः—तत्=तर्हि, किम्=कथम्, चरयति=विलम्बं करोति ?

अन्वयः—किम्, अस्य, पुरः, प्रवहणम्, शनैः, याति ? तस्य, अन्तरम् मार्गते ? अक्षे, भग्ने, परिवर्त्तनम्, प्रकुरुते किम् ? अथवा, प्रग्रहः, छिन्नः, वर्त्मान्तो-

---

(कोई बाजार हो) इसके पेड़ बनिए हैं और फूल क्रय-विक्रय की वस्तु हैं, उद्यान के भौंरे राजपुरुष के द्वारा कर वसूलते इधर उधर हिल डोल रहे हैं ॥ १ ॥

विदूषक–बिना धोये पीछे भी साफ़ सुथरे इस पत्थर के पटिये पर आप बैठ जाँय।

चारुदत्त—(**बैठकर**) मित्र, पता नहीं बर्द्धमानक, इतनी देर क्यों लगा रहा है ?

विदूषक—मैंने तो उससे कह दिया है—जितना जल्द हो सके वसन्तसेना को लेकर आ जाओ।

चारुदत्त—तो फिर, देर क्यों कर रहा है ?

क्या इसकी गाड़ी के आगे कोई सड़ियल गाड़ी धीरे-धीरे आ रही है और वह

(प्रविश्य गुप्तार्यकप्रवहणस्थः ।)

चेटः—जाध गोणा ! जाध । [यातं गावौ ! यातम् ।]

आर्यकः—(स्वगतम्)

नरपतिपुरुषाणां दर्शनाद्भीतभीतः
सनिगडचरणत्वात् सावशेषापसारः ।
अविदितमधिरूढो यामि साधोस्तु याने
परभृत इव नीडे रक्षितो वायसीभिः ॥ ३ ॥

ज्झितदारुवारितगतिः, मार्गान्तरम्, याचते, किम् ? अथवा, स्वैरं, प्रेरितगोयुगः, स्वच्छन्दम्, आगच्छति, किम् ? ॥ २ ॥

किमिति । अस्य=शाकटिकस्य, पुरः=अग्रे, प्रवहणम्=कोऽप्यन्यत् गोरथम्, शनैः=मन्दम्, मन्दम्, किमिति जिज्ञासायाम्, याति=गच्छति, तस्य=पुरोगच्छतः शकटस्य, अन्तरम्=गन्तुमवकाशम्, मार्गते=अन्विष्यति ? अक्षे=चक्रे, भग्ने=त्रुटिते सति, परिवर्तनम्=अन्यचक्रयोजनम्, प्रकुरुते=विदधाति, किमित्याशङ्कायाम् । अथवा=वा, प्रग्रहः=वृषभबन्धनरज्जुः, छिन्नः=भग्नो जातः ? अथवा वर्त्मनः=मार्गस्य, अन्ते=मध्यभागे, उज्झितम्=त्यक्तम्, छित्वा केनचित् पातितम्, दारुः=काष्ठम् तेन रुद्धा=अवरुद्धा, गतिः=गमनम् यस्य तादृशः सन्, 'कर्मान्तो राजादीनां नियोगविशेषः तत्सम्बन्धिनि धर्मे त्यक्तकाष्ठानि तैः प्रतिरुद्धगमनः' इति पृथ्वीधरः । मार्गान्तरम्=अन्यं पन्थानम्, याचते=प्रार्थयति ? अथवा=वा, स्वैरम्=शनैः शनैः, प्रेरितगोयुगम्=सञ्चालितवृषभद्वयम्, येन तथोक्तः सः स्वच्छन्दम्=यथेच्छम्, आगच्छति=आयाति किम् ? विलम्बस्य कारणं निश्चेतुं नाहं शक्नोमि, इति तदाशयः । अत्र सन्देहो नामालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ २ ॥

(आर्यकं नीत्वा शकटेन सह चेटस्य प्रवेशमाह–**प्रविश्येति ।** गुप्तार्यकप्रवहणस्थः—गुप्तरूपेण स्थितः आर्यकः यत्र, तस्मिन् प्रवहणे स्थितः ।)

आर्यकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्)—

अन्वयः—नरपतिपुरुषाणाम्, दर्शनात्, भीतभीतः, सनिगडचरणत्वात्, सावशेषापसारः, नीडे, वायसीभिः, रक्षितः, परभृत, इव साधोः, याने, अविदितम्, अधिरूढः, यामि ॥ ३ ॥

राह काट कर आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहा है ? या इसकी गाड़ी का कोई पहिया तो नहीं टूट गया, जिसे बदलने में इसे देर हो रही है । अथवा बैलों के पगहे तो कहीं टूट नहीं गये ? या बीच सड़क पर लकड़ी काटकर तो किसी ने नहीं गिरा दिया जिससे राह रुकी है ? और दूसरी राह से आने की बात सोच रहा है ? अथवा—बैलों को धीमे-धीमे हाँकता हिचकोले खाता मस्ती से धीरे-धीरे आ रहा है ? ॥ २ ॥

(छिपकर गाड़ी में बैठे हुए आर्यक को लेकर चेट का प्रवेश ।)

चेट—बढ़े चलो, बैलो बढ़े चलो ।

आर्यक—(**मन ही मन**) सिपाहियों को देखकर काफी डरे हुए, पैरों में बेड़ी

अहो ! नगरात् सुदूरमपक्रान्तोऽस्मि । तत् किमस्मात् प्रवहणादवतीर्य वृक्षवाटिकागहनं प्रविशामि ? उताहो प्रवहणस्वामिनं पश्यामि । अथवा कृतं वृक्षवाटिकागहनेन । अभ्युपपन्नवत्सलः खलु तत्रभवानार्यचारुदत्तः श्रूयते; तत् प्रत्यक्षीकृत्य गच्छामि ।

स तावदस्माद्व्यसनार्णवोत्थितं
निरीक्ष्य साधुः समुपैति निर्वृतिम् ।
शरीरमेतत् गतमीदृशीं दशां
धृतं मया तस्य महात्मनो गुणैः ॥ ४ ॥

नरेति । नरपतिपुरुषाणाम्=राज्ञः सैनिकानाम्, दर्शनात्=अवलोकनात्, भीत-भीतः=भयाक्रान्तः, सनिगडचरणत्वात्—निगडेन=श्रृंखलया सहितं, चरणम्=पादः यस्य तस्य भावः तत्त्वं तस्मात्, सावशेषः=अल्पावशिष्टः, अपसारः=पलायनं यस्य तादृशः, अत एव नीडे=कुलाये, वायसीभिः=काकीभिः, रक्षितः=पालितः, परभृतः=कोकिलः, इव=यथा, साधोः=साधुपुरुषस्य चारुदत्तस्य, याने=शकटे, अविदितम्=अज्ञातम्, यथा स्यात् तथा, अधिरूढः=आरूढः यामि=व्रजामि । श्रौती उपमा, मालिनीवृत्तम् ॥ ३ ॥

अहो=इति विस्मयसूचकमव्ययम्, नगरात्=पुरात्, सुदूरम्=अतिदूरम्, अपक्रान्तोऽस्मि=निर्गतोऽस्मि । तत् किम्=तर्हि किम्, अस्मात्=एतस्मात्, प्रवहणात्=शकटात्, अवतीर्य=अधोभूय वृक्षवाटिकागहनम्=द्रुमसंकुलम्, प्रविशामि=प्रवेशम् करोमि, उताहो=अथवा, प्रवहणस्वामिनम्=चारुदत्तम्, पश्यामि=अवलोकयामि, अथवा=वा, वृक्षवाटिकागहनेन=तरुसंकुलेन, तत्र प्रवेशेन, कृतम्=व्यर्थम्, अभ्युपपन्नवत्सलः=शरणागतपालकः, खलु=निश्चयेन, तत्र भवान्=श्रीमान्, चारुदत्तः=सार्थवाहसुतः, श्रूयते=ज्ञायते, तत्=तस्मात्, प्रत्यक्षीकृत्य=तं दृष्ट्वा, गच्छामि=व्रजामि ।

अन्वयः—साधुः, सः, अस्मात्, वसनार्णवोत्थितम्, निरीक्ष्य, निर्वृत्तिम्, समुपैति । मया, ईदृशीम्, दशाम्, गतम्, एतत्, शरीरम्, तस्य, महात्मनः, गुणैः, धृतम् ॥ ४ ॥

पड़े रहने के कारण भागने में बिल्कुल असमर्थ, सज्जन चारुदत्त की गाड़ी में छिपकर ठीक उसी तरह सुरक्षित में जा रहा हूँ, जैसे कौए के घोंसले में मादा काक द्वारा अज्ञात भाव से पालित कोयल के बच्चे होते हैं ॥ ३ ॥

अरे वाह, मैं तो अब शहर से बहुत दूर बाहर निकल आया हूँ, तो क्यों न, गाड़ी से चुपके उतर कर इन सघन पेड़ों की ओट में छिपकर निकल जाऊँ । अथवा—इस गाड़ी के मालिक से ही क्यों न मिल लूँ ? पेड़ों की ओट से भाग निकलना अच्छा नहीं होगा । हमने सुना है—आर्य चारुदत्त शरणागतवत्सल हैं तो मिलकर ही जाना ठीक होगा ।

उस भले आदमी को इस विपत्तिरूपी सागर से उबरा हुआ मुझे देख कर परम

चेटः—इमं तं उज्जाणं, ता जाव उवशप्पामि । (उपसृत्य) अज्जमित्तेअ ! [**इदं तदुद्यानम्, तद् यावदुपसर्पामि । आर्य मैत्रेय !**]

विदूषकः—भो ! पिअं दे णिवेदेमि, वड्ढमाणओ मन्तेदि, आगदाए वसन्तसेणाए होदव्वं । [**भोः ! प्रियं ते निवेदयामि, वर्द्धमानको मन्त्रयति, आगतया वसन्तसेनया भवितव्यम् ।**]

चारुदत्तः—प्रियं नः प्रियम् ।

विदूषकः—दासीए पुत्ता ! किं चिरइदोसि ? [**दास्याः पुत्र ! किं चिरायितोऽसि ?**]

चेटः—अज्ज ! मित्तेअ ! मा कुप्प । जाणत्थलके विशुमलिदे त्ति कदुअ गदागदिं कलेन्ते चिलइदे म्हि । [**आर्य ! मैत्रेय ! मा कुप्य । यानास्तरणं विस्मृतमिति कृत्वा गतागतिं कुर्वन् चिरायितोऽस्मि ।**]

स इति । साधु=सज्जनः, सः=चारुदत्तः, अस्मात्=अनुभूयमानात्, व्यसनम्=कष्टम्, एव अर्णवः=समुद्रः, तस्मात्=सागरात्, उत्थितम्=निर्गतम्, निरीक्ष्य=दृष्ट्वा, निर्वृत्तिम्=परमं सुखम्, समुपैति=प्राप्नोति, मया=आर्यकेण, ईदृशीम्=अतिकष्टकरीम्, दशाम्=स्थितिम्, गतम्=प्राप्तम्, एतत्=पुरोवर्त्तिनम् मदीयम्, शरीरम्=देहम्, तस्य=विख्यातस्य, महात्मनः=साधुपुरुषस्य, गुणैः=दयादाक्षिण्यादि गुणैः, धृतम्=अवस्थापितम् । साधुचारुदत्तस्य शकटे रक्षितोऽहम् । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः । वंशस्थवृत्तञ्च ॥ ४ ॥

चेटः—इदम्=एतत्, तत्=पूर्वोक्तम्, उद्यानम्=वाटिकाम्, तत्=तस्मात्, उपसर्पामि=प्रविशामि ।

विदूषकः—भोः=इति सम्बुद्धौ, प्रियम्=अभिलषितम्, ते=तव, निवेदयामि=कथयामि, वर्द्धमानको मन्त्रयति=आह्वयति, वसन्तसेनया=तव प्रियया, आगतया=उपस्थितया, भवितव्यम् ।

चारुदत्तः—प्रियम्=अभिलषितम्, नः=अस्माकम्, प्रियम् ।

विदूषकः—दास्याः पुत्र=रे अधम, किम्=कथम्, चिरायितोऽसि=विलम्बं कृतवान् असि ।

चेटः—आर्य=हे मान्य, मा कुप्य=क्रोधम् मा कुरु, यानास्तरणम्=अवगुण्ठन-

---

सुख का अनुभव होगा । क्योंकि ऐसी संकटमयी स्थिति में पड़ी मेरी देह उसी साधु पुरुष के गुणों से अब तक सुरक्षित है ॥ ४ ॥

चेट—यह वह फुलवारी है तो चलूं (**पहुँच कर**) आर्य मैत्रेय,

विदूषक—मित्र, तुम्हें मैं खुशखबरी सुनाता हूँ, वर्द्धमानक बुला रहा है; वसन्तसेना आ गई होगी ?

चारुदत्त—निश्चय ही हमारे लिए यह खुशखबरी है ।

विदूषक—अरे ओ नीच, तुमने इतनी देर क्यों कर दी ?

चारुदत्तः—वर्द्धमानक ! परिवर्त्तय प्रवहणम् । सखे ! मैत्रेय ! अवतारय वसन्तसेनाम् ।

विदूषकः—किं णिअडेण वद्धा से गोडा ? जेण सअं ण ओदरेदि । (उत्थाय प्रवहणमुद्घाटच) भो ! ण वसन्तसेणा, वसन्तसेणो क्खु एसो । **[किं निगडेन बद्धावस्याः पादौ ? येन स्वयं नावतरति । भोः ! न वसन्तसेना, वसन्तसेनः खल्वेषः ।]**

चारुदत्तः—वयस्य ! अलं परिहासेन, न कालमपेक्षते स्नेहः । अथवा स्वयमेवावतारयामि । (इत्युत्तिष्ठति ।)

आर्यकः—(दृष्ट्वा) अये ! अयमेव प्रवहणस्वामी न केवलं श्रुतिरमणीयः, दृष्टिरमणीयोऽपि । हन्त ! रक्षितोऽस्मि ।

वस्त्रम्, विस्मृतम्=विस्मरणं कृतम्, गतागतिम्=यातायातम्, कुर्वन्=विदधन्, चिरायतोऽस्मि=विलम्बितोऽस्मि ।

चारुदत्तः—वर्द्धमानक=हे शाकटिक, परिवर्त्तय=द्वाराभिमुखम् कुरु, प्रवहणम्=शकटम्, सखे=हे मित्र मैत्रेय, अवतारय=अवतारणं कुरु, वसन्तसेनाम्=मम प्रियाम् ।

विदूषकः—किमिति प्रश्ने, निगडेन=श्रृङ्खलेन, बद्धौ=नियन्त्रितौ, पादौ=चरणौ, अस्याः येन=कारणेन, स्वयम्=स्वयमेव, न=नहि, अवतरति=शकटादवतरति । (उत्थाय=उत्थितो भूत्वा, प्रवहणम्=शकटम्, उद्घाटच=अपावृत्यः) भोः=इति सम्बोधने, न वसन्तसेना=नेयं तव प्रिया, अपितु वसन्तसेनः=कोऽपि पुरुषः ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, अलम्=व्यर्थम्, परिहासेन=हास्येन, स्नेहः=अनुरागातिरेकः, कालम्=विलम्बं, न=नहि, अपेक्षते=वाञ्छति । अथवा—स्वयमेव=आत्मनः एव, अवतारयामि=अधोवतारणं करोमि ।

आर्यकः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) अयमेव=एष एव, प्रवहणस्वामी=शकटाधिपतिः, न=नहि, केवलम्=एकमात्रम्, श्रुतिरमणीयः=श्रवणसुन्दरः, अपितु

चेट—मान्यवर, गुस्सा न करें, गाड़ी का गद्दा भूल गया था अतः उसे लाने के क्रम में आने-जाने के कारण कुछ देर हो गई ।

चारुदत्त—वर्द्धमानक, गाड़ी घुमाओ । मैत्रेय, वसन्तसेना को उतारो ।

विदूषक—क्या इनके पैर में बेड़ी पड़ी है, जिससे खुद उतर नहीं रही हैं ? **(उठकर गाड़ी को खोलकर)** मित्र, यह वसन्तसेना नहीं, वसन्तसेन है ।

चारुदत्त—क्यों मजाक करते हो । प्रेम विलम्ब नहीं चाहता । अथवा—मैं स्वयं ही उतार लेता हूँ । **(उतारने के लिए उठता है ।)**

आर्यक—**(देखकर)** तो क्या यही गाड़ी के मालिक हैं । यह सुनने में ही नहीं देखने में भी रमणीय हैं । वाह, अब मेरी रक्षा निश्चित हो गई ।

चारुदत्तः—(प्रवहणमधिरुह्य) अये । तत् कोऽयम् ?

करिकर-समबाहुः सिंहपीनोन्नतांसः
पृथुतर-सम-वक्षास्ताम्रलोलायताक्षः ।
कथमिदमसमानं प्राप्त एवंविधो यो
वहति निगडमेकं पादलग्नं महात्मा ॥ ५ ॥

ततः को भवान् ?

आर्यकः—शरणागतो गोपालप्रकृतिरार्यकोऽस्मि ।

चारुदत्तः—किं घोषादानीय योऽसौ राज्ञा पालकेन बद्धः ?

दृष्टिरमणीयः=सुदर्शनः, हन्त=प्रसन्नताद्योतकमव्ययपदम्, रक्षितः=सुरक्षितः अस्मि=वर्त्ते ।

चारुदत्तः—(प्रवहणमधिरुह्य=शकटारोहणं कृत्वा, दृष्ट्वा=अवलोक्य, च=पुनः) अये=इत्याश्चर्यम् ।

अन्वयः—यः, महात्मा, करिकरसमबाहुः, सिंहपीनोन्नतांस, पृथुतरसमवक्षाः, ताम्रलोलायताक्षः, इदम्, असमानम्, प्राप्तः, पादलग्नम्, एकम्, निगडम्, कथम्, वहति ।

करीति । यः=जनः, महात्मा=महापुरुषः, करिकरसमबाहू=गजशुण्डतुल्यभुजौ, सिंहस्य=मृगाधिपस्य, इव पीनौ=पृथुलौ, उन्नतौ=उच्छ्रितौ, अंसौ=स्कन्धौ यस्य एतादृशः, पृथुतरम्=विशालतरम्, समम्=समानम्, वक्षः=वक्षस्थलं यस्य सः । ताम्रे=इषद्रक्ते, लोले=चपले, अक्षिणी=नेत्रे यस्य तथोक्तः, इदम्=एतत्, असमानम्=अनुचितबन्धनम्, प्राप्तः=उपगतः, पादलग्नम्=चरणसंयुतम्, एकम्=एकमात्रम्, निगडम्=श्रृङ्खलम्, कथम्=केन कारणेन, वहति=धारयति । महापुरुषलक्षणलक्षितस्य एवंविधस्य पुरुषस्य एतत् बन्धनम्, अत्याश्चर्यकरमिति भावः । प्रथमपादे लुप्तोपमे द्वे । मालिनीवृत्तञ्चेति ॥ ५ ॥

ततः=तर्हि, भवान्=त्वम्, कः=कोऽसीति प्रश्ने ।

आर्यकः—शरणागतः=शरणापन्नः, गोपालप्रकृतिः=गोपवंशोद्भवः, आर्यकः=एतन्नामकः, अस्मि=वर्त्ते ।

चारुदत्त—(गाड़ी पर चढ़कर) अरे तब यह कौन है ?

इसकी बाँहें हाथी की सूँड़ की तरह हैं, सिंह की तरह मोटे एवं ऊँचे कन्धे हैं, एवं चौड़ी छाती है, ताँबे के रङ्ग की चंचल काली कजरारी आँखें हैं । इस तरह में यह कोई महान् व्यक्ति प्रतीत होता है । फिर भी, इसके व्यक्तित्व के प्रतिकूल इसके पैर में बेड़ी क्यों पड़ी है ? ॥ ५ ॥

तब आप कौन है ?

आर्यक—मैं गोपबालक आर्यक एक शरणार्थी हूँ ।

चारुदत्त—क्या आप वही आर्यक है जिसे राजा पालक ने घर से निकाल कर जेल में बन्द कर दिया था ?

आर्यकः—अथ किम् ।

चारुदत्तः—

विधिनैवोपनीतस्त्वं चक्षुर्विषयमागतः ।
अपि प्राणानहं जह्यां न तु त्वां शरणागतम् ॥ ६ ॥

(आर्यको हर्षं नाटयति ।)

चारुदत्तः—वर्द्धमानक ! चरणान्निगडमपनय ।

चेटः—जं अज्जो आणवेदि । (तथा कृत्वा ।) अज्ज ! अवणीदाइं णिगडाइं । [यदार्यं आज्ञापयति । आर्य ! अपनीतानि निगडानि ।]

आर्यकः—स्नेहमयान्यन्यानि दृढतराणि दत्तानि ।

चारुदत्तः—घोषात्=आभीरपल्याः, आनीय=नीत्वा, राज्ञा=नृपेन पालकेन, बद्धः=कारागारे निक्षिप्तः, असौ=स एव आर्यकः, किमसि त्वम् ?

आर्यकः—अथ किम्=अर्थात् असावेवाहमस्मि ।

अन्वयः—त्वम्, विधिना, एव, उपनीतः, चक्षुर्विषयम्, आगतः, अहम्, प्राणान्, अपि, जह्याम्, तु, शरणागतम्, त्वाम्, न ॥ ६ ॥

विधिनेति । त्वम्=भवान्, विधिना=अनुकूलदैवेन, एव, उपनीतः=आनीतः, मम चक्षुषोः नयनयोः विषयम्=गोचरम्, दृष्टिपथमित्यर्थः, आगतः=समागतः, अहम्=चारुदत्तः, प्राणान्=अशून्, अपि=चेत्, जह्याम्=त्यजेयम्, तु=किन्तु, शरणागतम्=आपन्नम्, त्वाम्=आर्यकम् न=नहि, जह्यामिति । प्राणान् परित्यज्याऽपि तव रक्षां करिष्यामीति मे निश्चयः । अत्र व्यवसायो नाम विषमसन्धेरङ्गम् । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।

(आर्यकः, हर्षं=प्रसन्नतां, नाटयति=अभिनयति ।)

चारुदत्तः—वर्द्धमानकः=हे शाकटिक, चरणात्=पादात्, निगडम्=शृंखलम्, अपनय=दूरमपसारय ।

चेटः—यत्=यथा, आर्यः=मान्यः, आज्ञापयति=आदिशति । (तथा=पूर्वोक्तप्रकारेण, कृत्वा=विधाय ।) अपनीतानि=दूरीकृतानि ।

आर्यकः—स्नेहमयानि=प्रेमस्वरूपाणि, अन्यानि=अपराणि, दृढतरानि=लोह, निगडापेक्षयाऽतिदृढानि निगडानि दत्तानि ।

आर्यक—जी हाँ, मैं वही आर्यक हूँ ।

चारुदत्त—हे आर्यक, तुम्हारे भाग्य ने तुम्हें आँखों के सामने. ला पटका है, मैं अपनी जान दे सकता हूँ, पर तुम्हारी रक्षा करूँगा ॥ ६ ॥

(आर्यक खुश हो जाता है ।)

चारुदत्त—गाड़ीवान् इनके पैर की बेड़ी काटो ।

चेट—जैसी आप की आज्ञा (**वैसा ही करके**) आर्य, बेड़ी काट दी गई है ।

आर्यक—तुमने अपनी प्रेमरूपी दूसरी कठिन बेड़ी डाल दी है ।

विदूषकः—सङ्गच्छेहि णिअडाइं, एसो वि मुक्को, सम्पदं अम्हे वज्जिस्सामो । [सङ्गच्छ निगडानि, एषोऽपि मुक्तः, साम्प्रतं वयं व्रजिष्यामः ।]

चारुदत्तः—धिक्, शान्तम् ।

आर्यकः—सखे ! चारुदत्त ! अहमपि प्रणयेनेदं प्रवहणमारूढः । तत् क्षन्तव्यम् ।

चारुदत्तः—अलङ्कृतोऽस्मि स्वयंग्राहप्रणयेन भवता ।

आर्यकः—अभ्यनुज्ञातो भवता गन्तुमिच्छामि ।

चारुदत्तः—गम्यताम् ।

आर्यकः—भवतु, अवतरामि ।

चारुदत्तः—सखे ! नावतरितव्यम् । प्रत्यग्रापनीतसंयमनस्य भवतोऽलघु-

---

विदूषकः—निगडानि=शृङ्खलानि, सङ्गच्छ=सङ्गतं कुरु, एषोऽपि=आर्यकोऽपि, मुक्तः, वयम्=सर्वे, साम्प्रतम्, वजिष्यामः=गमिष्यामः ।

चारुदत्तः—धिक्=निन्दाद्योतकमव्ययम्, शान्तम्=शान्तं पापम् ।

आर्यकः—सखे=हे मित्र, अहमपि=आर्यकोऽपि, प्रणयेन=प्रेम्णा, इदम्=एतत्, प्रवहणम्=शकटमारूढः, तत्क्षन्तव्यम्=मर्षितव्यम् ।

चारुदत्तः—अलंकृतोऽस्मि=विभूषितोऽस्मि, स्वयंग्राहप्रणयेन=स्वेच्छया प्रवहणग्रहणस्वीकारप्रेम्णा, भवता=त्वया ।

आर्यकः—भवता=त्वया, अभ्यनुज्ञातः=आज्ञप्तः, गन्तुम्=इतश्चलितुम्, इच्छामि =अभिलषामि ।

चारुदत्तः—गम्यताम्=यथाभिलषितदेशम्, गच्छ ।

आर्यकः—भवतु=यातु, अवतरामि=शकटादवतरामीत्यर्थः ।

चारुदत्तः—सखे=हे मित्र, प्रत्यग्रम्=नवम्, अपनीतम्=अपसारितम्, संयमनम्

विदूषक—बेड़ी कटी, ये भी महाशय मुक्त हुए, अब हमलोग वसन्तसेना की खोज में लगें ।

चारुदत्त—रहने दो, ऐसी बातें मुँह से भी नहीं निकालो ।

आर्यक—मित्र, मैं तो उत्सुकतावश इस गाड़ी पर सवार हो गया था । इसके लिए आप मुझे क्षमा कर दें ।

चारुदत्त—आप अपनी इच्छा से इस गाड़ी पर चढ़े हैं, इससे तो कुछ मेरी शोभा ही बढ़ी है ।

आर्यक—आप का हुक्म लेकर अब मैं जाना चाहता हूँ ।

चारुदत्त—खुशी खुशी आप जाँय ।

आर्यक—अच्छा, उतरता हूँ ।

चारुदत्त—मित्र गाड़ी से मत उतरो । सिपाही घूम रहे हैं । तुम्हारे पैर से बेड़ी

संवारा गतिः। सुलभपुरुषसञ्चारेऽस्मिन् प्रदेशे प्रवहणं विश्वासमुत्पादयति, तत् प्रवहणेनैव गम्यताम्।

आर्यकः—यथाह भवान्।

चारुदत्तः—**क्षेमेण व्रज बान्धवान्,**

आर्यकः— **ननु मया लब्धो भवान् बान्धवः,**

चारुदत्तः—**स्मर्त्तव्योऽस्मि कथान्तरेषु भवता,**

आर्यकः— **स्वात्मापि विस्मर्यते ?।**

चारुदत्तः—**त्वां रक्षन्तु पथि प्रयान्तममराः,**

=बन्धनम् यस्य, तस्य भवतः=आर्यकस्य, अलघुः=मन्दः, सञ्चारः=पादक्षेपः, यस्यां सा गतिः=गमनम्, सुलभः=अनायासलभ्यः, पुरुषाणाम्=रक्षिणाम्, सञ्चारः =सञ्चरणम्, यस्मिन्। तथाविधे अस्मिन्, प्रदेशे=क्षेत्रे, प्रवहणम्=शकटम्, विश्वासम् उत्पादयति= विश्रब्धतां नयति। तत्=तस्मात्, प्रवहणेन एव, गम्यताम् =याहि।

आर्यकः—यथा=येन प्रकारेण, भवान्=चारुदत्तः, आह।

अथ चारुदत्तार्यकयोः प्रश्नोत्तरक्रमेण कविः पद्यमाह—

अन्वयः—**चारुदत्तः**–बान्धवान्, क्षेमेण, व्रज। **आर्यकः**–ननु मया, भवान्, बान्धवः, लब्धः। **चारुदत्तः**—भवता, कथान्तरेषु, स्मर्त्तव्यः, अस्मि। **आर्यकः**—स्वात्मा, अपि, विस्मर्यते ? **चारुदत्तः**—अमराः, पथि, प्रयान्तम्, त्वाम्, रक्षन्तु। **आर्यकः**—त्वया, अहम्, संरक्षितः। **चारुदत्तः**—स्वैः, भाग्यैः, परिरक्षितः, असि। **आर्यकः**—हे, तत्रापि, ननु, भवान्, हेतुः ॥ ७ ॥

व्याख्या—चारुदत्तः गमनस्यानुज्ञाम् ददाति—

चारुदत्तः—बान्धवान्=स्वजनान्, क्षेमेण=कुशलेन, व्रज=गच्छ।

आर्यकः—मया=आर्यकेण, भवान्=त्वम्, बान्धवः=स्वजनः, लब्धः=प्राप्तः।

चारुदत्तः—भवता=त्वया, कथान्तरेषु=सामयिकवार्त्तासु, अस्मि=वर्त्ते, स्मर्त्तव्यः=स्मरणीयः।

आर्यकः—स्वात्मा=स्वकीयम्, अपि=चेत्, विस्मर्यते=विस्मरणीयो भवति ?

अभी ही कटी है। तुम ठीक से अभी चल नहीं सकते। गाड़ी तुम्हारे लिए निरापद है। अतः इसी से जाओ।

आर्यक—आपकी जैसी आज्ञा हो।

चारुदत्त—सकुशल आप अपने बन्धुजनों से मिलें।

आर्यक—मैं तो आपको ही अपना बन्धु मानता हूँ।

चारुदत्त—फुरसत कें समय मुझे भी याद कर लेना।

आर्यक—क्या अपनी आत्मा को भी कोई भूलता है ?

चारुदत्त—जाते हुए रास्ते में तुम्हारी रक्षा देवता करें।

आर्यकः— संरक्षितोऽहं त्वया,

चारुदत्तः—स्वैर्भाग्यैः परिरक्षितोऽसि,

आर्यकः— ननु हे ! तत्रापि हेतुर्भवान् ॥ ७ ॥

चारुदत्तः—यत्, उद्यते पालके महती रक्षा न वर्त्तते, तत् शीघ्रमपक्रामतु भवान् ।

आर्यकः—एवं पुनदर्शनाय । (इति निष्क्रान्तः ।)

चारुदत्तः—

कृत्वैवं मनुजपतेर्महद्व्यलीकं,
स्थातुं हि क्षणमपि न प्रशस्तमस्मिन् ।
मैत्रेय ! क्षिप निगडं पुराणकूपे
पश्येयुः क्षितिपतयो हि चारदृष्टचा ॥ ८ ॥

चारुदत्तः—अमराः=देवाः, पथि=मार्गे, प्रयान्तम्=गच्छन्तम्, त्वाम्=आर्यकम्, रक्षन्तु=रक्षां कुर्वन्तु ।

आर्यकः—त्वया=चारुदत्तेन, अहम्=आर्यकः, संरक्षितः=परित्रातः ।

चारुदत्तः—स्वैः=स्वकीयैः, भाग्यैः=दैवैः, परिरक्षितः=संरक्षितः, असि=वर्त्तसे ।

आर्यकः—हे=इति सम्बोधने, तत्रापि=भाग्यविहिते रक्षणेऽपि, ननु=निश्चयेन, भवान्=त्वम्, हेतुः=कारणम्, तादृशभाग्योत्पत्तावपि भवानेव कारणमिति भावः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ७ ॥

चारुदत्तः—यत्=यस्मात्, उद्यते=प्रयत्नशीले, पालके=नृपे, महती=उत्तमा, रक्षा=सुरक्षा, न=नहि, वर्त्तते=अस्ति । तत्=तस्मात्, शीघ्रम्=त्वरितम्, भवान्=त्वम्, अपक्रामतु=पलायताम् ।

आर्यकः—एवम्=अपक्रमामि, पुनर्दर्शनाय=भवतः दर्शनं पुनः प्राप्यं स्यादिति निवेदयन् (सन्) । (निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।)

अन्वयः—हे मैत्रेय, एवम्, मनुजपतेः महद्, व्यलीकम्, कृत्वा, अस्मिन्, क्षणम् अपि, स्थातुम्, न, प्रशस्तम् । निगडम्, पुराणकूपे, क्षिप । हि, क्षितिपतयः, चारदृष्टचा पश्येयुः ॥ ८ ॥

कृत्वेति । हे मैत्रेय=हे मित्र, एवम्=इत्थम्, मनुजपतेः=नृपपालकस्य, महद्

आर्यक—मेरी रक्षा तो आपने ही कर दी ।

चारुदत्त—नहीं, तुम्हारी रक्षा तो तुम्हारे भाग्य ने की है ।

आर्यक—हाँ मित्र, उस भाग्य में भी तुम्हीं कारण हो ॥ ७ ॥

चारुदत्त—राजा पालक तुम्हें पकड़ने की हर सम्भव कोशिश कर रहा है । अतः तुम्हारी रक्षा अभी भी खतरे में है । तुम यहाँ से जल्द भाग जाओ ।

आर्यक—पुनः दर्शन देव के लिए । (चला जाता है)

चारुदत्त—इस तरह राजकीय अपराध करके इस बगीचे में अब एक क्षण भी

(वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा) सखे ! मैत्रेय ! वसन्तसेनादर्शनोत्सुकोऽयं जनः । पश्य—

अपश्यतोऽद्य तां कान्तां वामं स्फुरति लोचनम् ।
अकारणपरित्रस्तं हृदयं व्यथते मम ॥ ९ ॥

तदेहि, गच्छावः । (परिक्रम्य) कथमभिमुखमनाभ्युदयिकं श्रमणकदर्शनम् । (विचार्य) प्रविशत्वयमनेन पथा । वयमप्यनेनैव पथा गच्छामः ।

(इति निष्क्रान्तः ।)

इत्यार्यकापहरणं नाम सप्तमोऽङ्कः ।

=विशालम्, व्यलीकम्=अप्रियम्, कृत्वा=विधाय, अस्मिन्=एतस्मिन् उद्याने, क्षणमपि=किञ्चित् कालमपि, स्थातुम्=वर्तितुम्, न=नहि, प्रशस्तम्=प्रशंसनीयम्, हि=यस्मात्, निगडम्=शृंखलम्, पुराणकूपे=प्राचीनकूपे, यत्र जनाः जलं पातुं न गच्छन्ति, क्षिप=पातय । हि=यतः, क्षितिपतयः=राजानः, चारदृष्टया=आप्तजनदृष्टया, गुप्तचरैरित्यर्थः । पश्येयुः=अवलोकयेयुः । जानन्तु इति भावः । अतोऽत्र न स्थातव्यमिति शेषः । अत्रार्थान्तरन्यासो नामालङ्कारः, प्रहर्षिणी वृत्तञ्चेति ॥ ८ ॥

(वामाक्षिणः=दक्षिणेतरनेत्रस्य, स्पन्दनम्=स्फुरणम्, सूचयित्वा=निर्दिश्य, भावि-अनिष्टज्ञापकमेतदिति सूचना निर्दिष्टा ।) सखे=हे मित्र, मैत्रेय, वसन्तसेनादर्शनोत्सुकः=वसन्तसेनायाः अनवलोकनेन उत्सुकः=उत्कण्ठितः, अयम्=एषः, जनः=व्यक्तिः, पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—अद्य, ताम्, कान्ताम्, अपश्यतः, मम, वामम्, लोचनम्, स्फुरति, अकारणपरित्रस्तम्, हृदयम्, व्यथते ॥ ९ ॥

अपश्यत इति । अद्य=सम्प्रति, ताम्=वसन्तसेनाम्, कान्ताम्=प्रियाम्, अपश्यतः अनवलोकयतः, मम=चारुदत्तस्य, वामम्=दक्षिणेतरम्, लोचनम्=नेत्रम्, स्फुरति=स्पन्दते, अकारणं=कारणरहितम्, परित्रस्तम्=भयविह्वलम्, मम हृदयम्=चित्तम्, व्यथितम्=पीडितं भवति । अस्मिन् श्लोके कारणाभावेऽपि परित्रासव्यथयोः कार्ययोरुत्पत्या विभावनालङ्कारः ॥ ९ ॥

तत्=तस्मात्, एहि=समागच्छ, गच्छावः=व्रजावः । (परिक्रम्य=कियत् पदं

रुकना भी उचित नहीं है । मैत्रेय, इस बेड़ी को जल्द किसी पुराने कुँए में फेंककर यहाँ से भागो । क्योंकि राजा दूत की आँखों से देखता है ॥ ८ ॥

(**बाईं आँख फड़कती है ।**) मैत्रेय, अब मैं वसन्तसेना को शीघ्र देखने के लिए अति आकुल हो उठा हूँ । देखो—

प्रियतमा वसन्तसेना आँखों से दूर है और मेरी बाईं आँख फड़क रही है । विना कोई कारण मेरा मन अकुला रहा है ॥ ९ ॥

गत्वा) कथमित्याशङ्कायाम्, अभिमुखम्=सम्मुखम्, अनाभ्युदयिकम्=अमङ्गलसूचकम्, श्रमणकस्य=बौद्धसंन्यासिनः, दर्शनम्=अवलोकनम्। (विचार्य=चिन्तयित्वा) अनेन पथा=मार्गेण, अयम्=श्रमणकः, प्रविशतु=यातु, वयमपि अनेनैव पथा=मार्गेण, गच्छामः=व्रजामः, वामाक्षिस्पन्दनं, हृत्कम्पनं, श्रमणकदर्शनाद्यपशकुनपरम्परा अग्रे भविष्यतः चारुदत्तवसन्तसेनयोः अनिष्टस्य सूचिकेति बोध्यम्। (इति=एवं विचार्य, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

मृच्छकटिके गोपालदारकस्य आर्यकस्य अपहरणं नायकसाहाय्येन पलायनं मुख्यवर्ण्यत्वात् आर्यकापहरणं नाम सप्तमोऽङ्कः।

(इति सप्तमोऽङ्कः समाप्तः।)

तो फिर आओ हम चले ही। (घूमकर) हाय ! सिर मुडाते ही ओले पड़े सामने ही ये अमांगलिक बौद्ध संन्यासी के दर्शन हुए। (**कुछ सोच कर**) अच्छा तो फिर ये इस रास्ते से जांय, हम भी इसी रास्ते से चलें।

(मंच छोड़कर सभी चले जाते हैं।)

सातवाँ अंक समाप्त।

अष्टमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति आर्द्रचीवरहस्तो भिक्षुः ।)

भिक्षुः—अज्ञा ! कलेध धम्मशंचअं । [अज्ञाः ! कुरुत धर्मसञ्चयम् ।]

शंजम्मध णिअपोटं णिच्चं जग्गेध झाण-पडहेण ।
विशमा इन्दिअ-चोला हलन्ति चिलशंचिदं धम्मं ॥ १ ॥

[संयच्छत निजोदरं नित्यं जागृत ध्यानपटहेन ।
विषमा इन्द्रियचौरा हरन्ति चिरसञ्चितं धर्मम् ॥]

अवि अ, अणिच्चदाए पेक्खिअ णवलं दाव धम्माणं शलणम्हि । [अपि च, अनित्यतया प्रेक्ष्य केवलं तावद्धर्माणां शरणमस्मि ।]

(ततः=तदनन्तरम्, आर्द्रम्=सलिलसिक्तम्, चीवरम्=कौपीनम्, हस्ते=करे यस्य सः, भिक्षुः=बौद्धसंन्यासी, प्रविशति=प्रवेशङ्करोति ।)

भिक्षुः—हे अज्ञाः=रे मूढाः, धर्मचयम्=पुण्यसञ्चयम्, कुरुत=क्रियन्ताम् ।

अन्वयः—निजोदरम्, संयच्छत, ध्यानपटहेन, नित्यम्, जाग्रत, विषमाः, इन्द्रिय-चौराः, चिरसञ्चितम्, धर्मम्, हरन्ति ॥ १ ॥

संयच्छतेति । निजोदरम्=स्वजठरम्, संयच्छत=स्वल्पभोजनादिना नियन्त्रितं कुरुत, ध्यानपटहेन=अवधानरूपढक्कानादेन, नित्यम्=प्रतिदिनम्, जाग्रत=जागरणं कुरुत, विषमाः=विकटाः इन्द्रियचौराः=विषयग्रहणसाधनभूततस्कराः, चिरसञ्चितम्=दीर्घकालैकत्रीकृतम्, धर्मम्=पुण्यकर्मम्, हरन्ति=मुष्णन्ति । इन्द्रियचापल्येन जनाः महदनिष्टमुत्पादयन्ति, अतः तेषां संयमने प्रयत्नो विधेयः । अत्र ध्याने पटहत्वारोपः, इन्द्रिये चौरत्वारोपश्च शाब्दः, धर्मे धनत्वारोपस्तु आर्थः, इत्येकदेशविवर्तिरूपकम्, जागरणं प्रति इन्द्रियचौरकर्तृकं धर्मात्मकधनहरणस्य हेतुत्वात् काव्यलिङ्गम् । सङ्करश्चानयोः, आर्या जातिश्चेति ॥ १ ॥

अपि च=अन्यच्च, अनित्यतया=जागतिकं सर्वं क्षणिकमिति भावेन, प्रेक्ष्य=अवलोक्य, केवलम्=एकमात्रम्, धर्माणाम्=बौद्धाचाराणाम्, शरणमस्मि=आश्रयो भवामि ।

(इसके बाद भींगा भगवा हाथ में लिये संन्यासी का प्रवेश ।)

संन्यासी—हे पुरुषो, धर्म का उपार्जन करो ।

अपने पेट को नियंत्रण में रक्खो, ध्यानरूपी नगाड़े से हमेशा जगते रहो, क्योंकि ये इन्द्रियाँ अतिशक्तिशालिनी हैं, चोर हैं, चिरकालोपार्जित धर्म भी ये सहसा अपहृत कर लेती हैं ॥ १ ॥

और धर्म के अतिरिक्त सम्पूर्ण संसार को नश्वर समझ कर ही मैं धर्म की शरण में आया हूँ ।

पंचज्जण जेण मालिदा इत्थिअ मालिअ गाम लक्खिदे।
अवल अ चण्डाल मालिदे अवसं वि शे णल शग्ग गाहदि ॥ २ ॥
[पञ्चजना येन मारिताः स्त्रियं मारयित्वा ग्रामो रक्षितः।
अबलश्च चाण्डालो मारितः अवश्यमपि स नरः स्वर्गं गाहते ॥]
शिल मुंडिद तुंड मुण्डिदे चित्तं ण मुंडिद कीश मुण्डिदे।
जाह उणअ चित्त मुंडिदे शाहु शुट्ठु शिल ताह मुण्डिदे ॥ ३ ॥
[शिरो मुण्डितं तुण्डं मुण्डितं चित्तं न मुण्डितं किमर्थं मुण्डितम् ?।
यस्य पुनश्च चित्तं मुण्डितं साधु सुष्ठु शिरस्तस्य मुण्डितम् ॥]

अन्वयः—येन, पञ्चजनाः, मारिताः, स्त्रियम्, मारयित्वा, ग्रामः, रक्षितः, अबलः चाण्डालः, च, मारितः, स, नरः, अवश्यम्, स्वर्गम् अपि गाहते ॥ २ ॥

पञ्चेति। येन=प्रबुद्धजनेन, पञ्चजनाः=पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, मारिताः=वशीकृताः, स्त्रियम्=विषयोपभोगस्पृहावर्द्धिनीमविद्याम्, मारयित्वा=स्वनियन्त्रणे कृत्वा, ग्रामः=आत्मनिवासभूतं शरीरम्, रक्षितः=परित्रातः, अबलः=निर्बलः, चाण्डालः=अहङ्कारः कामो वा, च=पुनः, मारितः=विनाशितः, सः=असौ, नरः=पुरुषः, अवश्यम्=निश्चितम्, स्वर्गम्=सुरलोकम् गाहते=गच्छति। अत्रेन्द्रियादिभ्यः पञ्चजनादेः भिन्नस्याऽपि अभेदेनोपवर्णनादतिशयोक्तिः, वैतालीयं छन्दः ॥२॥

अन्वयः—यस्य, शिरः, मुण्डितम्, तुण्डम्, मुण्डितम्, चित्तम्, न, मुण्डितम् (तदा) किमर्थम्, मुण्डितम्, (यस्य) च, चित्तम्, साधु, मुण्डितम्, तस्य, शिरः, सुष्ठु, मुण्डितम् ॥ ३ ॥

शिर इति। यस्य=जनस्य, शिरः=मस्तकम्, मुण्डितम्=केशरहितम् कृतम्, तुण्डम्=मुखम् ('वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्, इत्यमरः।) मुण्डितम्=श्मश्रुरहितं कृतम्, किन्तु चित्तम्=अन्तःकरणम्, न=नहि, मुण्डितम्=विमलीकृतम्, तदा किमर्थम्=कस्मै प्रयोजनाय, मुण्डितम्=केशादिकर्त्तनं कृतम्। च=पुनः यस्य=जनस्य, चित्तम्=चेतः, साधु=सम्यक्, मुण्डितम्=किल्विषरहितं कृतम्, तस्य=तादृशस्य पुरुषस्य, एव सुष्ठु=सम्यक् प्रकारेण, मुण्डितम्=परिष्कृतम्। शुद्धिपदेन बाह्यशुद्धिः नाभिधीयतेऽन्तःशुद्धिरेव तात्त्विकी शुद्धिः। अतिशयोक्तिरलङ्कारः, वैतालीयं छन्दः ॥ ३ ॥

जिसने पञ्चज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रित कर लिया, अविद्यारूपी स्त्री को मारकर शरीर रूपी ग्राम की रक्षा कर ली है तथा घमण्ड या कामरूपी निर्बल चाण्डाल का जिसने बध कर डाला है, निश्चय ही वह स्वर्ग जाता है ॥ २ ॥

जिसने सिर मुंडा लिया, दाढी मुँडा ली, किन्तु मन नहीं मुड़ाया, उसने कुछ भी नहीं मुँडाया और जिसने अपने मन से विषय वासना को हटा दिया, निश्चय ही उसी का सिर मुँडाना सार्थक है ॥ ३ ॥

गिह्दि-काशाओदए एशे चीवले, जाव एदं लट्टिअ-शालकाहकेलके उज्जाणे पविशिअ पोक्खलिणीए पक्खालिअ लहुं लहुं अवक्कमिश्शं। (परिक्रम्य तथा करोति।) [**गृहीत-काषायोदकमेतत् चीवरम्, यावदेतत् राष्ट्रियश्यालकस्य उद्याने प्रविश्य पुष्करिण्यां प्रक्षाल्य लघु लघु अपक्रमिष्यामि।**]

(नेपथ्ये) चिट्ठ, ले दुट्टशमणका ! चिट्ठ। [**तिष्ठ, रे दुष्टश्रमणक ! तिष्ठ।**]

भिक्षुः—(दृष्ट्वा सभयम्) ही अविद माणहे ! एशे शे लाअशालशंठाणे आअदे। एक्केण भिक्खुणा अवलाहे किदे अण्णं वि जहिं जहिं भिक्खुं पेक्खदि, तहिं तहिं गोणं विअ णासं विन्धिअ ओवाहेदि। ता कहिं अशलणे शलणं गमिश्शं ? अधवा भट्टालके ज्जेव बुद्धे मे शलणे [**आश्चर्यम् ! एष स राज-श्याल-संस्थानक आगतः। एकेन भिक्षुणा अपराधे कृते, अन्यमपि यस्मिन् यस्मिन् भिक्षुं प्रेक्षते, तस्मिन् तस्मिन् गामिव नासिकां विद्ध्वा अपवाहयति। तत् कस्मिन् अशरणः शरणं गमिष्यामि ? अथवा भट्टारक एव बुद्धो मे शरणम्।**]

गृहीतम्=ग्रहणं कृतम्, काषायोदकम्=गैरिकवर्णजलम्, चीवरम्=कौपीनम्, यावदित्यवधारणे, एतत्=इदम्, राष्ट्रियश्यालकस्य=संस्थानकस्य, उद्याने=वाटिकायाम् प्रविश्य=गत्वा, पुष्करिण्याम्=सरोवरे, प्रक्षाल्य=विमलं कृत्वा, लघुलघु=शीघ्रम्, अपक्रमिष्यामि=पलायिष्ये। (प्ररिक्रम्य=कियत् पदं गत्वा, तथा करोति=तथैव विदधति।)

(नेपथ्य=वेशरचनागृहे) तिष्ठ=स्थीयताम्, रे=अरे, दुष्टश्रमणक=नीचबौद्धसन्यासिन्, तिष्ठ=स्थिरो भव।

भिक्षुः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य, सभयम्=सत्रासम्) आश्चर्यम्=विस्मयम्, एषः=अयम्, सः=असौ, राजश्याल संस्थानक, आगतः=उपस्थितोऽभवत्। एकेन=एकमात्रेण, भिक्षुणा=भिक्षुकेन, अपराधे=दोषे, कृते=विहिते, अन्यमपि=अपरमपि, यस्मिन् यस्मिन्=यत्र यत्र, भिक्षुम्=सन्यासिनम्, प्रेक्षते=पश्यति, तस्मिन् तस्मिन्, गामिव=वृषभमिव, नासिकां विद्ध्वा=नाथयित्वा, अपवाहयति=निःसारयति, तत्=तस्मात्, अशरणः=असहायः, कस्मिन्=कस्य पुरुषस्य, शरणम्=

यह भगवाँ अब काफी गेरुआ रंग सोख चुका है, जल्दी-जल्दी, राजा के साले के बगीचे में घुसकर उसी सरोवर में इसे धोकर निकल जाऊँ। (**जाकर वैसा ही करता है।**)

(**नेपथ्य में**) ठहर, रे नीच, बौद्ध संन्यासी तू ठहर।

भिक्षु—**(देखकर, डरते हुए)** हाय, हाय यह तो राजा का साला संस्थान आ गया, यह दुष्ट तो किसी एक सन्यासी के अपराध करने पर, जहाँ कहीं भी संन्यासी को देखता है—बैल की तरह उसकी नाक में नाथ डाल कर, पीट-पीट कर बाहर खदेड़ देता है। मैं तो विल्कुल असहाय हूँ किसकी शरण जाऊँ ? अथवा—भगवान् बुद्ध ही मेरे संरक्षक हैं।

(प्रविश्य सखड्गेन विटेन सह शकारः ।)

शकारः—चिट्ठ, ले दुट्टशमणका ! चिट्ठ । आवाणअ-मज्झ-पविट्टश्श विअ लत्तमूलअश्श शीशं दे मोडइश्शं । (इति ताडयति ।) [**तिष्ठ, रे दुष्टश्रमणक ! तिष्ठ । आपानक-मध्य-प्रविष्टस्येव रक्तमूलकस्य शीर्षं ते भङ्क्ष्यामि ।**]

विटः—काणेलीमातः ! न युक्तं निर्वेद-धृत-कषायं भिक्षुं ताडयितुम् । तत् किमनेन । इदं तावत् सुखोपगम्यमुद्यानं पश्यतु भवान् ।

अशरण-शरण-प्रमोदभूतैर्वनतरुभिः क्रियमाण-चारु कर्म ।
हृदयमिव दुरात्मनामगुप्तं नवमिव राज्यमनिर्जितोपभोग्यम् ।। ४ ।।

आश्रयम्, गमिष्यामि=व्रजिष्यामि ? अथवा=वा, भट्टारकः=स्वामी, बुद्धः=सुगतः, एव=एकमात्रम्, मे=मम भिक्षोः, शरणम्=आश्रयम् ।

(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, सखड्गेन=सकरवालेन, विटेन सह शकारः ।)

शकारः—तिष्ठ=स्थीयताम्, रे=अरे, दुष्ट=नीच, श्रमणक=भिक्षु, तिष्ठ, आपानक—आपिबन्ति अस्मिन्निति आपानकम्=पानगोष्ठी तस्य मध्ये प्रविष्टस्य= आनीतस्य, रक्तमूलकस्य रक्तरञ्जितमूलकस्य, शीर्षम्=मस्तकम्, ते=तव, भङ्क्ष्यामि= भग्नं करोमि । (इति=एवमुक्त्वा, ताडयति=प्रहरणं करोति ।)

विटः—काणेलीमातः—काणेली=अविवाहितास्त्री, माता=जननी यस्यासौ= पुंश्चलीपुत्र, निर्वेदेन=आत्मावमानेन, धृतम्=धारणं कृतम्, काषायवस्त्रम्=गैरिक-वसनं येन तम्, भिक्षुम्=भिक्षाजीविकम्, ताडयितुम्=प्रहर्त्तुम्, युक्तम्=उचितम्, न । तत्=तस्मात्, अनेन भिक्षुणा, किम्=किम्प्रयोजनम् ? न किमपीत्यर्थः । इदम्= एतत्, सुखोपगम्यम्=सुखसाधनीभूतम् उद्यानम्=वाटिकाम्, भवान्=त्वम्, पश्यतु= अवलोकयतु ।

अन्वयः—अशरणशरणप्रमोदभूतैः, वनतरुभिः, क्रियमाणचारुकर्म, दुरात्मनाम्, हृदयमिव, अगुप्तम्, नवम्, राज्यमिव, अनिर्जितोपभोग्यम् (उद्यानं पश्य) ।

अशरणेति । अशरणानाम्=गृह विहीनानाम्, शरणानि=आश्रयाः, प्रमोदभूताः= आनन्दस्वरूपाः, अशरणाश्च ते प्रमोदभूताश्च तैः, वनस्य=उपवनस्य, तरुभिः=द्रुमैः,

---

(तलवार लिए हुए विट के साथ शकार का प्रवेश ।)

शकार—ठहर रे नीच संन्यासी, ठहर, मदिरा पीने वालों के बीच आई हुई लाल मूली की तरह तुम्हारा माथा फोड़ता हूँ । (**मारता है ।**)

विट—अरे ओ कुँआरी माँ के बेटे, गैरिकवस्त्रधारी विरागी संन्यासी को भी कोई मारता है ? इससे झगड़ने से भला क्या लाभ ? सुख प्राप्य इस वाटिका की निराली छटा तो देखो ।

घरहीनों के लिए आश्रयभूत, आनन्ददायक इन पेड़ों के परोपकारी काम को तो देखो । यह दुष्टों के दिल की तरह सामान्य सर्वगम्य तथा नवीन राज्य की तरह अनियंत्रित उपभोग्य फल को देने वाला है ।। ४ ।।

भिक्षुः—शाअदं, पशीददु उवाशके। [स्वागतम्, प्रसीदतु उपासकः ।]

शकारः—भावे ! पेक्ख, पेक्ख । आक्कोशदि मम्। [भाव ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व । आक्रोशति माम् ।]

विटः—किं ब्रवीति ?

शकारः—उवाशके त्ति मं भणादि । किं हग्गे णाविदे ? [उपासक इति मां भणति । किमहं नापितः ?]

विटः—बुद्धोपासक इति भवन्तं स्तौति ।

शकारः—थुणु, शमणका ! थुणु । [स्तुनु श्रमणक ! स्तुनु ।]

भिक्षुः—तुमं धण्णे, तुमं पुण्णे । [त्वं धन्यः, त्वं पुण्यः ।]

क्रियमाणचारुकर्म=प्रारब्धाकर्षककार्यम्, यस्मिन् तत्, दुरात्मनाम्, हृदयमिव=चित्तमिव, अगुप्तम्=अनियन्त्रितम्, नवम्=नूतनम्, राज्यमिव=साम्राज्यमिव, अनिर्जितानि=अवशानि, उपभोग्यानि=तडागोपवनादीनि वस्तूनि यस्मिन् तत्तथोक्तम् । अत्रोपमे द्वे, तयोः परस्परनैरपेक्ष्येण संसृष्टिः । पुष्पिताग्रा वृत्तञ्चेति ॥ ४ ॥

भिक्षुः—स्वागतम्=उपचारम्, प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु, उपासकः=आराधक इति ।

शकारः—भाव=विद्वन्, प्रेक्षस्व=अवलोकय, आक्रोशति=गालिप्रदानं करोति ।

विटः—किं ब्रवीति=केन शब्देनापशब्दं वदतीति प्रश्नः ।

शकारः—उपासक इति=नापितः, अर्थात् केशकर्त्तनकाले जनानाम् उप=समीपे, आसकः=स्थास्नुः, नापित एव भवतीति भावः । मां=शकारम्, उच्चवंशोद्भवं नापितम्, भणति=कथयति । गालिप्रदानमेवेति किमिति प्रश्ने, अहम्=शकारः, नापितः=जातिविशेषः, असत्यमेतदिति तात्पर्यः ।

विटः—बुद्धोपासक इति=अहिंसाप्रचारक बुद्धोपासनेन त्वयि भूतदया तिष्ठतीति, भवन्तम्=श्रीमन्तम्, स्तौति=प्रशंसति, नायं गालिप्रदानं करोति इति तात्पर्यः ।

शकारः—स्तुनु=प्रशंसां कुरु, श्रमणक=हे भिक्षु, स्तुनु=स्तुतिं कुरु ।

भिक्षुः—त्वम्=भवान्, धन्यः=महाभागः, त्वम् पुण्यः=पुण्यवानसि, भयेन मिथ्याभाषणं करोति ।

भिक्षु—मैं आप का स्वागत करता हूँ । उपासक प्रसन्न हों ।

शकार—आत्मन्, देखो तो यह गाली बक रहा है ।

विट—क्या कहता है ?

शकार—मुझे उपासक कहता है । क्या मैं हज्जाम हूँ ?

विट—बुद्ध का उपासक कहकर यह आप की प्रशंसा करता है ।

शकार—प्रशंसा करो, संन्यासी प्रशंसा ।

भिक्षु—आप प्रशंसनीय, आप पवित्र हैं ।

शकारः—भावे ! धण्णे पुण्णे त्ति मं भणादि। किं हगे शलावके, कोश्टके, कोम्भकले वा ? [भाव ! धन्यः पुण्य इति मां भणति। किमहं श्रावकः, कोष्ठकः, कुम्भकारो वा ?]

विटः—काणेलीमातः ! ननु धन्यस्त्वं पुण्यस्त्वमिति भवन्तं स्तौति।

शकारः—भावे ! ता कीश एशे इध आगदे ? [भाव ! तत् केन एष इहागतः ?]

भिक्षुः—इदं चीवलं पक्खालिदुं। [इदं चीवरं प्रक्षालयितुम्।]

शकारः—अले दुट्टशमणका ! एशे मह वहिणीपदिणा शव्वुज्जाणाणं पबले पुप्फकलण्डुज्जाणे दिण्णे, जहिं दाव शुणहका शिआला पाणिअं पिअन्ति। हग्गे वि पबलपुलिशे मणुश्शके ण ण्हामि। तहिं तुमं पुक्खलिणीए पुलाणकुलुत्थ-जूश-शवलाइं दुश्श-गन्धिआइं चीवलाइं पक्खालेशि। ता तुमं एक्कपहालिअं कलेमि। [अरे दुष्टश्रमणक ! एतन्मम भगिनीपतिना सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डकोद्यानं दत्तम्, यस्मिन् तावत् शुनकाः श्रृगालाः पानीयं

शकारः—भाव=हे विद्वन्, 'धन्य पुण्य' इति=इत्थम्, मां=शकारम्, भणति=कथयति। किमहम्, श्रावकः=वन्दिजनः, कोष्ठकः=भाण्डारिकः द्यूतकरो वेति, कुम्भकारः=कुलालो वा।

विटः—काणेलिमातः=पुंश्चलीपुत्र, ननु=निश्चयेन, धन्यः पुण्यश्चेति—बुध्या शिल्पकलया च जीविकानिर्वाहकरणात् एते धन्याः, लोकोपकारकरणात् पुण्याश्चेति भवन्तम्=श्रीमन्तम्, स्तौति=प्रशंसां करोति। अन्ये तु शकारवचनात् अनर्थका एते शब्दाः इति वदन्ति।

शकारः—भाव=विद्वन्, तत्=तर्हि, केन=कारणविशेषेण, इह=अत्र, एष=असौ, आगतः।

भिक्षुः—इदम्=एतत्, चीवरम्=कोपीनम्, प्रक्षालयितुम्=विमलीकर्त्तुम्।

शकारः—अरे दुष्ट=नीच, श्रमणक=सन्यासिन्, एतत्=पुरोवर्त्तिनः, मम=शकारस्य, भगिन्याः=स्वसुः, पतिना=भर्त्रा, पालकेनेत्यर्थः, सर्वेषु=सकलेषु, उद्यानेषु=

शकार—हे विद्वन्, यह मुझे—'धन्य पुण्य' कह रहा है। क्या मैं चारण, जुआरी या कुम्हार हूँ।

विट—रे पुंश्चलीपुत्र, यह तुम्हें धन्य कहता है, तुम्हें पुण्यात्मा कहकर तुम्हारी प्रशंसा करता है।

शकार—महाशय, तो फिर यह इस बगीचे में क्या लेने आया है ?

भिक्षु—इस भगवे को धोने के लिए।

शकार—रे दुष्ट संन्यासी, मेरे जीजा राजा पालक ने यह श्रेष्ठतम पुष्पकरण्डक

पिबन्ति, अहमपि प्रवरपुरुषो मनुष्यको न स्नामि। तस्यां त्वं पुष्करिण्यां पुराण-कुलुत्थ-यूष-शबलानि दूष्यगन्धीनि चीवराणि प्रक्षालयसि। तत् त्वामेकप्रहारिकं करोमि।]

विटः—काणेलीमातः ! तथा तर्कयामि, यथा अनेन अचिरप्रव्रजितेन भवितव्यम्।

शकारः—कथं भावे जाणादि ? [कथं भावो जानाति ?]

विटः—किमत्र ज्ञेयम्। पश्य—

अद्याप्यस्य तथैव केशविरहाद्गौरी ललाटच्छविः
कालस्याल्पतया च चीवरकृतः स्कन्धे न जातः किणः।

वाटिकासु, प्रवरम्=श्रेष्ठम्, इदं पुष्पकरण्डकोद्यानम्, दत्तम्=प्रदानं कृतम्, यस्मिन्=उद्याने, तावदित्यवधारणे, शुनकाः=कुक्कुराः, शृगालाः=जम्बुकाः, पानीयम्=जलम्, पिबन्ति=पानं कुर्वन्ति, अहमपि=शकारोऽपि प्रवरपुरुषः=श्रेष्ठजनः, 'मनुष्यकः' इति पुनरुक्तवत्, शकारोचितमेतद्भाषणम्, न स्नामि=स्नानम् न करोमि। तस्याम्=पूर्वोक्ताम्, पुष्करिण्याम्=कृत्रिमजलाशये, पुराणः कुलुत्थः=कलायसस्य-विशेषः, तस्य यूथवत्=चूर्णवत्, शबलानि=विचित्राणि, इति भट्टाचार्यः, क्वचित् 'कुलित्थः' इत्यपि पाठः, तत्र कुलित्थः=तण्डुलभेदः तस्य यूषेण=क्वाथेन, शबलानि=तुल्यानि, दूष्यगन्धीनि=तीव्रदुर्गन्धियुक्तानि, चीवराणि=कौपीनानि, प्रक्षालयसि=प्रक्षालनं करोसि, तत्=तस्मात्, त्वाम्=श्रमणकम्, एकः प्रहारः—प्राणापहारकत्वेन अस्ति अस्य तम् एक प्राहारिकम्=एक प्रहारेण मारणीयमिति।

विटः—काणेलीमातः=रे अधम्, तथा=तेनैव प्रकारेण, तर्कयामि=अनुमिनोमि, यथा=येन प्रकारेण, अनेन=संन्यासिना, अचिरेण=नवीनेन, प्रव्रजितेन=सन्यास-ग्रहणकृतेन भवितव्यम्।

शकारः—कथम्=केन प्रकारेण, भावः=विद्वान्, जानाति=अवगच्छति।

विटः—किमत्र ज्ञेयम्=न किमपि ज्ञेयमस्ति। सर्वं सुस्पष्टमेवेति। तदेव पक्षेण दर्शयितुमाह पश्य—

अन्वयः—अद्य, अपि, केशविरहात्, अस्य, ललाटच्छविः, तथैव, गौरी, कालस्य,

---

उद्यान मुझे दिया है। इसमें कुत्ते और सियार पानी पीते हैं। यहाँ तक कि प्रधान पुरुष मैं मनुष्य होकर भी इसमें स्नान नहीं करता हूँ। उस स्वच्छ जलाशय में तुमने पुरानी कुलथी के चूर्ण से रंगे बदबू फैलाते भगवे को धोया है। अतः मैं तुम्हें एक वेंत की मार खाने की सजा देता हूँ।

विट—पुंश्चली पुत्र, मेरा अनुमान है कि यह हाल में ही बौद्ध सन्यासी बना है।

शकार—आप यह कैसे जानते हैं ?

विट—इसमें जानने की बात ही क्या है। देखो—

नाभ्यस्ता च कषाय-वस्त्र-रचना दूरं निगूढान्तरो
वस्त्रान्तश्च पटोच्छ्रयात् प्रशिथिलं स्कन्धे न सन्तिष्ठते ॥ ५ ॥

भिक्षुः—उवाशके ! एव्वं । अचिल-पव्वजिदे हग्गे । [**उपासक ! एवम् । अचिरप्रव्रजितोऽहम् ।**]

शकारः—ता कीशं तुमं जातमेत्तक ज्जेव ण पव्वजिदे ? । (इति ताडयति ।) [**तत् केन त्वं जातमात्र एव न प्रव्रजितः ?**]

अल्पतया, स्कन्धे, चीवरकृतः, किणः, च, न, जातः, कषायवस्त्ररचना, च, न, अभ्यस्ता, दूरम्, निगूढान्तरम्, पटोच्छ्रयात्, प्रशिथिलम्, वस्त्रान्तम्, च, स्कन्धे, न, सन्तिष्ठते ॥ ५ ॥

अद्याप्यस्येति । अद्य=इदानीम्, अपि=चेत्, केशविरहात्=कचाभावात्, अस्य=श्रमणकस्य, ललाटस्य=भालस्य, छविः=द्युतिः, तथैव=तादृशी एव, यथा मुण्डनकाले आसीत्तथैव, गौरी=गौरवर्णाः, आसन्नकेशकर्त्तने मस्तकस्य भालस्य च छविः भिन्नवर्णा भवति, न तु एकरूपेति भावः । कालस्य=प्रवजनसमयस्य, अल्पतया =अचिरतया, स्कन्धे=अंसे, चीवरैः=कौपीनैः, कृतः=विहितः, किणः=चिह्नम्, च=अपि, न=नहि, जातः=उत्पन्नः स्यात् । कषायवस्त्ररचना=गैरिकवसन-धारणम्, च=पुनः, न अभ्यस्ता=सम्यक् साधिता, दूरम्=अत्यधिकम्, निगूढम्= आच्छादितम्, अन्तरम्=देहस्य मध्यभागम्, येन तत्, पटस्य=वसनस्य, उच्छ्रयात्= दैर्घ्यात्, अतः प्रशिथिलम्=अतिस्रस्तम्, वस्त्रान्तम्=पटप्रान्तम्, चापि स्कन्धे= अंसदेशे, न संतिष्ठते=स्थिरं न भवति । काव्यलिङ्गमलङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ५ ॥

भिक्षुः—उपासक=हे अर्चक, एवम्=यदुक्तं तत्सत्यमेव, अचिरेण=अनति-कालेन, प्रव्रजितः=संन्यासग्रहणं कृतोऽहम् ।

शकारः—तत्=तस्मात्, केन=कथम्, त्वम्=भवान्, जातमात्र एव=जन्म-कालत एव, न प्रव्रजितः=संन्यास ग्रहणं न कृतः । (इति=एवमुक्त्वा, ताडयति= ताडनं ददाति ।)

आज भी, बालों के मुंडवा देने से इसके लिलार का रंग वैसा ही गोरा है, बहुत कम समय होने के कारण इसके कंधे पर झोले लटकाने का घट्टा नहीं पड़ा है । अभी तक इसने गेरुआ वस्त्र तक भी पहनना नहीं सीखा है । इसे भगवा रंगना भी नहीं आता है । इसके लम्बे और ढीले काले उत्तरीय वस्त्र के छोर कन्धे पर टिक नहीं पा रहे हैं ॥ ५ ॥

भिक्षु—हाँ उपासक, तुम्हारा कथन बिलकुल सत्य है । मैंने हाल में ही संन्यास ग्रहण किया है ।

शकार—तो, जन्म लेते ही तुमने सन्यास क्यों नहीं ग्रहण किया ? **(पीटता है ।)**

भिक्षुः—णमो बुद्धश्श। [नमो बुद्धाय।]

विटः—किमनेन ताडितेन तपस्विना ? मुच्यतां, गच्छतु।

शकारः—अले ! चिट्ठ दाव, जाव शंपधालेमि। [अरे ! तिष्ठ तावत्, यावत् सम्प्रधारयामि।]

विटः—केन सार्द्धम् ?

शकारः—अत्तणो हडक्केण। [आत्मनो हृदयेन।]

विटः—हन्त ! न गतः।

शकारः—पुत्तका ! हडक्का ! भट्टके ! पुत्तके ! एशे शमणके अवि णाम किं गच्छदु, किं चिट्ठदु ? (स्वगतम्) णावि गच्छदु, णावि चिट्ठदु। (प्रकाशम्) भावे ! शंपधालिदं मए हडक्केण शह। एशे मह हडक्के भणादि। [पुत्रक ! हृदय ! भट्टारक ! पुत्रक ! एष श्रमणकः अपि नाम किं गच्छतु, किं तिष्ठतु ? नापि गच्छतु, नापि तिष्ठतु। भाव ! सम्प्रधारितं मया हृदयेन सह। एतन्मम हृदयं भणति।]

भिक्षुः—नमो बुद्धाय इत्यत्र बुद्धस्मरणं मरणभयात् करोति।

विटः—अनेन=अमुना, तपस्विना=वराकेण, ताडितेन=प्रहृतेन, किम्=न किमपीति, मुच्यताम्=त्यज्यताम्, गच्छतु।

शकारः—अरे तिष्ठ=स्थिरो भव, तावत् यावत् सम्प्रधारयामि=अस्मिन् विषये विचारयामि।

विटः—केन सार्द्धम्=केन पुरुषेण सह ?

शकारः—आत्मनः=स्वस्य, हृदयेन=चित्तेन सह।

विटः—हन्त=इति खेदे, न गतः=श्रमणकः न पलाय्य गतः।

शकारः—पुत्रक=हे पुत्र, हृदय=हे चित्त, भट्टारक=स्वामिन्, असमसम्बोधनं शकारोक्तत्वात्, एषः=असौ, श्रमणकः=सन्यासी, अपि=चेत्, गच्छतु=यातु, नापि गच्छतु=अथवा न यातु, नापि तिष्ठतु=अत्रैव तिष्ठतु, भाव=विद्वन्, सम्प्रधारितम्, मया=मया विचारितम्, हृदयेन सह=चित्तेन सार्धम्।

भिक्षु—भगवान बुद्ध को नमस्कार है।

विट—इस गरीब को भला पीटने से क्या फायदा ? छोड़ो, इसे जाने दो।

शकार—अरे रुको तो, इसके जाने के बारे में थोड़ा विचार तो कर ही लूं।

विट—किसके साथ ?

शकार—अपने मन के साथ।

विट—हाय हाय, सन्यासी भागा नहीं।

शकार—बेटे, हृदय, मालिक, बेटे—क्या यह बौद्ध सन्यासी चला जाय या ठहरे ? (मन ही मन) न ठहरे, न जाय, (प्रकट) विद्वन् मैंने मन से पूछ लिया है, मेरा मन कहता है।

विटः—किं ब्रवीति ?

शकारः—मावि गच्छदु, मावि चिट्ठदु, मावि ऊश्शशदु, मावि णीशशदु। इध ज्जेव झत्ति पडिअ मलेदु। [मापि गच्छतु, मापि तिष्ठतु, मापि उच्छ्वसितु, मापि निःश्वसितु। इहैव झटिति पतित्वा म्रियताम्।]

भिक्षुः—णमो बुद्धश्श। शलणागदम्हि। [नमो बुद्धाय। शरणागतोऽस्मि।]

विटः—गच्छतु।

शकारः—णं शमएण। [ननु समयेन।]

विटः—कीदृशः समयः ?

शकारः—तधा कद्दमं फेलदु, जधा पाणिअं पङ्काइलं ण होदि। अधवा पाणिअं पुञ्जीकदुअ कद्दमे फेलदु। [तथा कर्दमं क्षिपतु, यथा पानीयं पङ्काविलं न भवति। अथवा पानीयं पुञ्जीकृत्य कर्दमे क्षिपतु।]

विटः—अहो मूर्खता !

विटः—किं ब्रवीति=किं वदति ?

शकारः—मापि गच्छतु=न कुत्रापि यातु, तिष्ठतु=अवस्थितो भवतु, उच्छ्वसितु=श्वासं गृह्णातु, निश्वसितु=श्वासं त्यजतु, इहैव=अत्रैव, झटिति=शीघ्रमेव, पतित्वा=स्खलित्वा, म्रियताम्=देहत्यागं करोतु।

भिक्षुः—नमो बुद्धाय=सुगताय नमः, शरणागतः=आश्रयप्राप्तः, अस्मि=भवामि।

विटः—गच्छतु=यातु।

शकारः—ननु=निश्चयेन, समयेन=शपथेन, 'समयाशपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इत्यमरः।

विटः—कीदृशः=केन प्रकारेण, समयः=शपथः।

शकारः—तथा=तेन प्रकारेण, कर्दमम्=पङ्कम्, क्षिपतु=निक्षेपं करोतु, यथा=येन, पङ्काविलम्=कर्दमेन मलिनम्, न भवति=न याति, पानीयम्=जलम्, पुञ्जीकृत्य, कर्दमे=पङ्के, क्षिपतु=निक्षिपतु।

विट—क्या कहता है ?

शकार—यह न जाय, न रुके, न सांस ले, न सांस छोड़े; सीधे गिर कर मर जाय।

भिक्षु—भगवान बुद्ध को प्रणाम है। मैं शरणागत हूँ, मुझे बचाओ।

विट—जाओ।

शकार—एक ही शर्त्त पर।

विट—वह क्या ?

शकार—पानी में कीचड़ इस तरह फेंके कि पानी गन्दा न हो अथवा पानी ही इकट्ठा कर कीचड़ में फेंके।

विपर्यस्तमनश्चेष्टैः शिला-शकल-वर्ष्मभिः ।
मांसवृक्षैरियं मूर्खैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा ॥ ६ ॥

(भिक्षुर्नाट्येन आक्रोशति ।)

शकारः—किं भणादि ? [**किं भणति ?**]

विटः—स्तौति भवन्तम् ।

शकारः—थुणु थुणु, पुणो वि थुणु । [**स्तुनु स्तुनु, पुनरपि स्तुनु ।**]

(तथा कृत्वा निष्क्रान्तो भिक्षुः ।)

विटः—काणेलीमातः ! पश्योद्यानस्य शोभाम् ।

अमी हि वृक्षाः फल-पुष्प-शोभिता
कठोर-निष्पन्द-लतोपवेष्टिताः ।

विटः—अहो=इत्याश्चर्यम्, मूर्खता=जड़ता ।

अन्वयः—विपर्यस्तमनश्चेष्टैः, शिलासकलवर्ष्मभिः, मांसवृक्षैः, मूर्खैः, इयम्, वसुन्धरा, भाराक्रान्ता (वर्तते) ।

विपर्यस्तेति । विपर्यस्ते=व्यवहारविरुद्धे, मनश्चेष्टैः=चित्तव्यापारैः, शिलासकलवर्ष्मभिः=प्रस्तरखण्डशरीरैः, मांसवृक्षैः=पिशितपादपैः, मूर्खैः=अज्ञैः, इयम्=आधारभूता, वसुन्धरा=पृथ्वी, भाराक्रान्ता=अतिभारवती वर्त्तते । अत्र द्वितीयपादे लुप्तोपमा, तृतीये निरङ्गं केवलरूपकम्, अप्रस्तुतप्रशंसा च, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ।

(भिक्षुः, नाट्येन=अभिनयेन, आक्रोशति=अपशब्दं वदति ।)

शकारः—किं भणति=किं कथयति ?

विटः—स्तौति=प्रशंसां करोति, भवन्तम्=श्रीमन्तम् ।

शकारः—स्तुनु=स्तुतिं कुरु, पुनरपि=पुनश्च, स्तुनु=स्तुतिं कुरु ।

(शकारोक्तानुसारेण जले पङ्कं निक्षिप्य गतः ।)

विटः—काणेलीमातः=हे व्यभिचारिणीसुत, उद्यानस्य=वाटिकायाः, शोभा=छविः, पश्य=अवलोकय—

विट—हाय रे, बेवकूफी—

विपरीत बुद्धिवाले, पत्थरदिल, मांसल देह मूर्खों के द्वारा ही धरती भारवती है ॥ ६ ॥

(भिक्षु हावभाव से गलियाता है ।)

शकार—यह क्या कहता है ?

विट—आपका गुणगान करता है ।

शकार—थोड़ा और गुणगान करो फिर से स्तुति करो ।

(वैसा करके भिक्षुक चला जाता है ।)

विट—अरे ओ व्यभिचारिणी के बेटे, जरा बगीचे की छटा तो निहारो—

नृपाज्ञया रक्षिजनेन पालिता
नरा सदारा इव यान्ति निर्वृतिम् ॥ ७ ॥

शकारः— शुट्ठु भावे भणादि। [सुष्ठु भावो भणति।]

बहु-कुशुम-विचित्तिदा अ भूमी
कुशुम-भलेण विणामिदा अ रुक्खा।
दुम-शिहल-लदा अ लम्बमाणा
पणश-फला विअ वाणला ललन्ति ॥ ८ ॥

[बहुकुसुमविचित्रिता च भूमिः कुसुमभरेण विनामिताश्च वृक्षाः।
द्रुम-शिखर-लता च लम्बमानाः पनसफलानीव वानरा ललन्ति ॥]

विटः—काणेलीमातः! इदं शिलातलमध्यास्यताम्।

अन्वयः—फलपुष्पशोभिताः, कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः, अमी, वृक्षाः, नृपाज्ञया, रक्षिजनेन, पालिताः, सदाराः, नराः, इव, निर्वृत्तिम्, यान्ति ॥ ७ ॥

अमी इति। फलपुष्पशोभिताः=प्रसवकुसुमसुन्दराः, कठोरनिष्पन्दलतोपवेष्टिताः=स्थूलनिश्चलव्रततिभिरालिङ्गिताः, अमी=एते, वृक्षाः=द्रुमाणि, च=अपि, नृपाज्ञया=राज्ञः आदेशेन, रक्षिजनेन=रक्षकलोकेन, पालिताः=रक्षिताः, सदाराः=सपत्नीकाः, नराः=जनाः, इव=यथा, निर्वृत्तिम्=सुखम्, यान्ति=प्राप्नुवन्ति। अत्रोपमा, समासोक्तिश्चालङ्कारः, वंशस्थ वृत्तञ्चेति ॥ ७ ॥

शकारः—भावः=विद्वान्, सुष्ठु=शोभनम्, भणति=वदति।

अन्वयः—भूमिः, च, बहुकुसुमविचित्रिता, वृक्षाः, च, कुसुमभरेण, विनामिता, द्रुमशिखरलता, च, लम्बमाना, वानराः, पनसफलानि, इव, ललन्ति ॥ ८ ॥

बह्विति। भूमिः=उद्यानान्तः स्थितापृथ्वी, च=अपि, बहुकुसुमविचित्रिता=विविधवर्णप्रसूनरञ्जिता, वृक्षाः=पादपाः, च=पुनः, कुसुमभरेण=पुष्पपर्याहारेण, विनामिताः=नम्रीकृताः, द्रुमशिखरलता=पादपाग्रभागशाखा, च=अपि, लम्बमाना=अधोलम्बमाना, वानराः=कपयः, पनसफलानि=कण्टकिफलानि, इव=यथा, ललन्ति=शोभन्ते। अत्रोपमालङ्कारः, पुष्पिताग्रा वृत्तञ्चेति ॥ ८ ॥

विटः—काणेलीमातः इदम्=पुरोवर्त्तिनम्, शिलातलमध्ये=प्रस्तरखण्डोपरि, आस्यताम्=उपविशतु।

सिपाहियों से सुरक्षित, फल, फूलों से लदे, मोटी मोटी लताओं से लिपटे ये पेड़ निष्कम्प वातावरण में पत्नी के साथ प्रसन्न पुरुष की तरह सुखी लगते हैं ॥ ७ ॥

शकार—आपने बहुत ठीक कहा।

अनेक रंग के फूलों के चूकर गिरने के कारण बगीचे की धरती रंग बिरंगी हो गई है, पेड़ की ऊँची डालियाँ फल-फूलों के बोझ से झुक गये हैं। ऊपर की टहनियों में लटके बानर, कटहल की तरह लग रहे हैं ॥ ८ ॥

विट—ओ काणेलीसुत, इस पत्थर के टुकड़े पर बैठ जाओ!

शकारः—एशे म्हि आशिदे। (इति विटेन सह उपविशति।) भावे ! अज्ज वि तं वशन्तशेणिअं शुमलामि; दुज्जण-वअणं विअ हडक्कादो ण ओशलदि। [एषोऽस्मि आसितः। भाव ! अद्यापि तां वसन्तसेनाम् स्मरामि, दुर्जनवचनमिव हृदयान्नापसरति।]

विटः—(स्वगतम्) तथा निरस्तोऽपि स्मरति ताम्। अथवा—

स्त्रीभिर्विमानितानां कापुरुषाणां विवर्द्धते मदनः।
सत्पुरुषस्य स एव तु भवति मृदुर्नैव वा भवति॥ ९॥

शकारः—भावे ! कावि वेला थावलकचेडश्श भणिदश्श 'पवहणं गेण्हिअ लहुं लहुं आअच्छं' त्ति। अज्ज वि ण आअच्छदि त्ति, चिलम्हि वुभुक्खिदे। मज्झण्हे ण शक्कीअदि पादेहिं गन्तुं। ता पेक्ख पेक्ख—[भाव ! कापि वेला

शकारः—एषः=एतत्, आसितः=उपविष्टः, अस्मि=अहं भवामि (इति=एवमुक्त्वा, विटेन सह=सार्धम्, उपविशति=उपवेशितो भवति।) भाव=मान्यवर, अद्यापि=अधुनाऽपि, ताम्=पूर्वदृष्टाम्, वसन्तसेनाम्=एतदाख्यगणिकाम्, स्मरामि =स्मरणं करोमि। दुर्जनवचनम्=दुष्टलोकोक्तवाक्यम्, इव=यथा, हृदयात्=चित्तात्, न=नहि, अपसरति=बहिर्गच्छति।

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्।) तथा=पूर्वोक्तप्रकारेण, निरस्तोऽपि= अनादृतोऽपि, ताम्=वसन्तसेनाम्, स्मरति=स्मरणं करोति, अथवा=किं वा—

अन्वयः—स्त्रीभिः, विमानितानाम्, कापुरुषाणाम्, मदनः, विवर्धते, तु, सत्पुरुषस्य, स, एव, मृदुः, भवति, नैव, वा, भवति॥ ९॥

स्त्रीभिरिति। स्त्रीभिः=कामिनीभिः, विमानितानाम्=तिरस्कृतानाम्, कापुरुषाणाम्=धृष्टजनानाम्, मदनः=कामः, विवर्धते=वृद्धिं गच्छति, कुत्सितपुरुषाणां कृते कामस्यायं वामः स्वभावः यत् सः तिरस्कृतेषु तेषु वृद्धिमेव गच्छति। तु=किन्तु, सत्पुरुषस्य=कुलीनस्य, सः=कामः, एव मृदुः=क्षीणः, भवति=जायते, वा=अथवा नैव भवति=नोत्पद्यते। अप्रस्तुतप्रशंसाऽलङ्कारः॥ ९॥

शकारः—भाव=हे मान्य, कापि वेला=बहुः कालः व्यतीतः, स्थावरचेटकस्य=

शकार—लो बैठ गया, (विट के साथ बैठ जाता है।) महाशय, मैं आज भी उस वसन्तसेना को भूल नहीं पाता हूँ, दुष्टों के दुर्वचन की तरह हृदय से उसकी स्मृति हटती ही नहीं है।

विट—(मन ही मन) उस तरह अपमानित होने पर भी यह वसन्तसेना को भूल नहीं पाता है। अथवा,

कामिनियों की फटकार से जहाँ दुष्टकामुकों की कामवासना और तेज होती है, वहीं सत्पुरुषों की वासना कम हो जाती है या बिलकुल ही समाप्त हो जाती है॥

शकार—मान्यवर, स्थावरक को मैंने जल्द गाड़ी लेकर आने को कहा है,

स्थावरकचेटस्य भणितस्य 'प्रवहणं गृहीत्वा लघु लघु आगच्छे'ति । अद्यापि नागच्छतीति चिरमस्मि बुभुक्षितः । मध्याह्ने न शक्यते पादाभ्यां गन्तुम् । तत् पश्य पश्य—]

णहोमज्झगदे शूले दुप्पेक्खे कुविद-वाणल-शालिच्छे ।
भूमी दृढ़-शंतत्ता हदपुत्तशते व्व गन्धाली ।। १० ।।

[नभोमध्यगतः सूरो दुष्प्रेक्ष्यः कुपितवानरसदृशः ।
भूमिर्दृढसन्तप्ता हतपुत्रशतेव गान्धारी ।।]

विटः—एवमेतत्—

छायासु प्रतिमुक्तशष्पकवलं निद्रायते गोकुलं
तृष्णार्त्तैश्च निपीयते वनमृगैरुष्णं पयः सारसम् ।
सन्तापादतिशङ्कितैर्न नगरीमार्गो नरैः सेव्यते
तप्तां भूमिमपास्य च प्रवहणं मन्ये क्वचित्संस्थितम् ।।११।।

एतदाख्यशाकटिकस्य, भणितस्य=कथितस्य, प्रवहणम्=शकटम्, गृहीत्वा=नीत्वा, लघु लघु=शीघ्रम्, आगच्छ=समागम्यताम् । अद्यापि=अधुनाऽपि, नागच्छति=नायाति, चिरबुभुक्षितोऽस्मि=अतिक्षुधार्त्तोऽस्मि, मध्याह्ने=द्वितीयपरार्धे, पदाभ्याम्=चरणाभ्याम्, गन्तुम्=चलितुम्, न शक्यते । पश्य=अवलोकय,

अन्वयः—नभोमध्यगतः, सूर्यः, कुपितवानरसदृशः, दुष्प्रेक्ष्यः, हतपुत्रशता, गान्धारी, इव, भूमिः, दृढसन्तप्ता (अस्ति) ।। १० ।।

नभ इति । नभोमध्यगतः=गगनमध्ये स्थितः, सूर्यः=दिनकरः, कुपितवानरसदृशः=क्रोधितकपितुल्यः, दुष्प्रेक्ष्यः=दुःखेन प्रेक्षितुं योग्यः । हतपुत्रशता=विनाशितसुतशतसंख्यका, गान्धारी=दुर्योधनजननी, इव=यथा, भूमिः=पृथ्वी, दृढम्=कठोरम् यथा स्यात्तथा सन्तप्ता=उष्णा, सन्तापयुक्ता वेति उपमालङ्कारः, आर्यावृत्तञ्चेति ।। १० ।।

विटः—एतत्=इदम्, एवम्=यदुक्तं तत्सत्यम्—

अन्वयः—गोकुलम्, छायासु, प्रतिमुक्तशष्पकवलम्, निद्रायते । तृष्णार्त्तैः, वनमृगैः, उष्णम्, सारसम्, पयः, निपीयते । सन्तापात्, अतिशङ्कितैः, नरैः, नगरीमार्गः, न सेव्यते । प्रवहणम्, च, तप्ताम्, भूमिम्, अपास्य, क्वचित्, संस्थितम्, मन्ये ।। ११ ।।

छायास्विति । गोकुलम्=गवां समूहः, छायासु=अनातपेषु, प्रतिमुक्तशष्पकवलम्

पर, वह अब तक भी नहीं आया । भूख के मारे मेरी हालत खराब है और इस दुपहरिया में मैं पैदल चल नहीं सकता । जरा देखें तो—

आकाश के बीच चमचमाते ये सूरज गुस्साये हुए वानर की तरह कठिनाई से देखे जा सकते हैं । मारे गये सौ पुत्रों वाली गान्धारी की तरह यह धरती भी तो संतप्त हो उठी है ।। १० ।।

विट—ठीक ही तो कह रहे हो—

गायें घास चबाना छोड़कर छाया में झपकी ले रही हैं । जंगली जानवर प्यास

शकारः—भावे ! [भाव !]

शिलशि मम णिलीणे भाव ! शुज्जश्श पादे
शउणि-खग विहङ्गा लुक्खशाहाशु लीणा ।
णल-पुणिश-मणुश्शा उण्हदीहं शशन्ता
घल-शलण-णिशण्णा-आदपं णिव्वहन्ति ॥ १२ ॥

[**शिरसि मम निलीनो भाव ! सूर्यस्य पादः**
शकुनि-खग-विहङ्गा वृक्षशाखासु लीनाः ।
नर-पुरुष-मनुष्या उष्णदीर्घं श्वसन्तो
गृह-शरण-निषण्णा आतपं निर्वहन्ति ॥]

भावे अज्ज वि शे चेडे णाअच्छदि । अत्तणो विणोदणणिमित्तं किं पि

=परित्यक्तबालतृणग्रासम्, निद्रायते=स्वपिति, तृष्णार्त्तैः=पिपासाकुलैः, वनमृगैः=अरण्यपशुभिः, उष्णम्=तप्तम्, सारसम्=सरोवरसम्बन्धि, पयः=सलिलम्, निपीयते=नितरां पीयते, सन्तापात्=आतपात्, अतिशङ्कितैः=शङ्काकुलैः, नरैः=लोकैः, नगरीमार्गः=नगर्याः पन्थाः, न सेव्यते=न गम्यते, प्रवहणम्=शकटम्, च=अपि, तप्ताम्=सन्तप्ताम्, भूमिम्=पृथ्वीम्, अपास्य=परित्यज्य, क्वचित्=कुत्रचित्, संस्थितम्=निवृत्तगतिव्यापारम् वर्त्तते इति मन्ये=अहं स्वीकरोमि । स्वभावोक्तिरलङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ ११ ॥

शकारः—भाव=हे विद्वन्,

अन्वयः—हे भाव, सूर्यस्य, पादः, मम, शिरसि, निलीनः, शकुनिखगविहङ्गाः, वृक्षशाखासु लीनाः, नरपुरुषमनुष्याः, उष्णदीर्घम्, श्वसन्तः, गृहशरणनिषण्णाः, आतपम्, निर्वहन्ति ॥ १२ ॥

शिरसीति । हे भाव=हे विद्वन्, सूर्यस्य=दिनकरस्य, पादः=किरणः, मम=शकारस्य, शिरसि=मस्तके, निलीनः=नितरां पतितः अस्ति, शकुनिखगविहङ्गाः=पक्षिणः, अत्र द्विरुक्तिः शकारवचनत्वान्न दोषावह इति, वृक्षस्य=द्रुमस्य, शाखासु=लतासु 'समे शाखालते' इत्यमरः । लीनाः=निःशब्दं स्थिताः, नरपुरुषमनुष्याः=जनाः, उष्णम्=तप्तम्, दीर्घम्=विस्तृतम्, श्वसन्तः=श्वासक्रिया कुर्वन्तः, गृहशरणनिषण्णाः=भवनेषु स्थिताः, आतपम्=घर्मम्, निर्वहन्ति=यापयन्ति । मालिनीवृत्तम् ॥ १२ ॥

भाव=हे विद्वन्, अद्यापि=अधुनापि, सः=असौ, चेटः=स्थावरकः, नागच्छति

से व्याकुल होकर जलाशय का गर्म गर्म पानी पी रहे हैं । मनुष्य धूप से अकुलाकर घर में घुसे हैं; जनपथ शूना पड़ा है । अतः मैं समझता हूँ, धूप में गाड़ी रोककर वह भी किसी छाया में विश्राम कर रहा होगा ॥ ११ ॥

शकार—मान्यवर, सूर्य की किरणें मेरे माथे पर हैं, चिड़िया पेड़ की डालों में चुप्पी लगाये बैठी हैं, आदमी घर में दुबके अपनी गर्म साँस से देह की गर्मी ठंडा रहे हैं ॥ १२ ॥

गाइश्शं । (इति गायति ।) भावे ! भावे ! शुदं तुए ? जं मए गाइदं । [भाव ! अद्यापि स चेटो नागच्छति । आत्मनो विनोदननिमित्तं किमपि गास्यामि ! भाव, भाव ! श्रुतं त्वया ? यन्मया गीतम् ।]

विटः—किमुच्यते । गन्धर्वो भवान् ।

शकारः—कधं गंधव्वे ण भविश्शं ? [कथं गन्धर्वो न भविष्यामि ?]

हिङ्गूज्जले जीलक-भद्दमुत्थे वचाह गण्ठी शगुडा अ शुण्ठी ।
एशे मए शेविद गन्धजुत्ती कधं ण हग्गे मधुल-श्शलेत्ति ।। १३ ।।

[हिङ्गूज्ज्वला जीरक-भद्रमुस्ता वचाया ग्रन्थिः सगुडा च शुण्ठी ।
एषा मया सेविता गन्धयुक्तिः कथं नाहं मधुरस्वर इति ।।]

भावे ! पुणो वि दाव गाइश्शं । (तथा करोति ।) भावे ! भावे ! शुदं तुए ? जं मए गाइदं । [भाव ! पुनरपि तावत् गास्यामि । भाव ! भाव ! श्रुतं त्वया ? यन्मया गीतम् ।]

=नायाति आत्मनः=स्वस्य, विनोदननिमित्तम्=मनोविनोदार्थम्, किमपि= यथाकथञ्चित्, गास्यामि=गानं करिष्यामि, श्रुतम्=आकर्णितम्, त्वया=विटेन, यत् मया=शकारेण, गीतम्=गानं कृतम् ।

विटः—किमुच्यते=किं कथयसि ? भवान्=त्वम्, गन्धर्वः=गानविद्या-विशारदः ?

शकारः—कथम्=केन हेतुना, गन्धर्वो न भविष्यामि ?

अन्वयः—हिङ्गूज्वला, जीरकभद्रमुस्ता, वचायाः ग्रन्थिः, सगुडा शुण्ठी च, एषा, गन्धयुक्तिः, मया, सेविता, कथम्, नाहम्, मधुरस्वरः इति ।। १३ ।।

हिङ्गुज्ज्वलेति । हिङ्गूज्ज्वलाः=बाल्हीकैः वासिताः, जीरकभद्रमुस्ताः=जीरक-सहिता 'नागरमोथा' इति प्रसिद्धौषधिविशेषाः, वचायाः=उग्रगन्धायाः, ग्रन्थिः=काण्डः, सगुडा=गुडमिश्रिता शुण्ठी, च=पुनः, एषा=पूर्वकथिताः, गन्धयुक्तिः=गन्धयोगः, मया=शकारेण, सेविता=भुक्ता, तर्हि अहम्, कथम्=केन हेतुना, मधुरस्वरः= श्रवणसुखदकण्ठध्वनिः न भवेयम् । उपजातिः वृत्तञ्चेति ।। १३ ।।

पुनरपि=भूयोऽपि, गास्यामि=गानं करिष्यामि । (तथा=तेनैव प्रकारेण, करोति ।)

विद्वन् ! चेट अभी तक नहीं आ रहा है, तो मनोविनोद के लिए कुछ गीत ही गा लेता हूँ (गाता है ।) आपने सुना, मैंने जो गाया ।

विट—क्या कहा जाय ? तुम तो गन्धर्व हो ।

शकार—मैं गन्धर्व क्यों नहीं हूँ ?

हींग मिलाया सफेद जीरा, नागरमोथा, वच की गाँठ और गुड़ मिली सोंठ का सेवन मैंने किया है ? तो फिर, मेरे स्वर में माधुर्य क्यों नहीं आयेगा ? ।। १३ ।।

हे विद्वन्, मैं फिर गाता हूँ । (गाता है ।) मान्यवर ! मैंने जो गाया, उसे आपने सुना तो ?

विटः—किमुच्यते ? गन्धर्वो भवान् ।

शकारः—कधं गन्धव्वे ण भवामि ? [कथं गन्धर्वो न भवामि ?]

हिङ्गुज्जले दिण्ण-मरीच-चूण्णे वग्घालिदे तेल्ल-घिएण मिश्शे ।
भुत्ते मए पालहुदीअ-मंशे कधं ण हग्गे मधुलश्शलेत्ति ? ॥ १४ ॥

[हिङ्गूज्ज्वलं दत्तमरीचचूर्णं व्याघारितं तैलघृतेन मिश्रम् ।
भुक्तं मया पारभृतीयमांसं कथं नाहं मधुरस्वर इति ॥]

भावे ! अज्जवि चेडे णाअच्छदि । [भाव ! अद्यापि चेटो नागच्छति ।]

विटः—स्वस्थो भवतु भवान् । सम्प्रत्येव आगमिष्यति ।

(ततः प्रविशति प्रवहणाधिरूढा वसन्तसेना चेटश्च ।)

त्वया=विटेन, श्रुतम्=आकर्णितम् यत्=गीतम्, मया=शकारेण, गीतम्=गायनं कृतम् ।

विटः—किमिति प्रश्ने, उच्यते=कथ्यते ? अहं गन्धर्व एवेत्यत्र नास्ति सन्देहलवः ।

शकारः—कथम्=कस्मात् कारणात्, गन्धर्वः=गानविद्याविशारदः, न भवामि= अपितु भवाम्येव ।

अन्वयः—हिङ्गूज्ज्वलम्, दत्तमरीचचूर्णम्, तैलघृतेन मिश्रम्, व्याघारितम्, पारभृतीयमांसम्, मया, भुक्तम्, अहम्, कथम्, न, मधुरस्वर इति ॥ १४ ॥

हिङ्गूज्ज्वलमिति । हिङ्गूज्ज्वलम्=वात्सीकवासितम्, दत्तमरीचचूर्णम्=चूर्णीकृतकोलकरजमिश्रितम्, तैलघृतेन=तैलेन च, घृतेन च तैलघृतेन, मिश्रम्=संयुक्तम्, व्याघारितम्—विशेषेण आघारितम् व्याघारितम्=घृतादिकेन संस्कृतम्, पारभृतीयमांसम्=परभृतस्य इदं पारभृतीयम्, परभृतशब्दात् घप्रत्ययः=कोकिलामिषम्, मया=शकारेण, भुक्तम्=खादितम्, अहम्=शकारः, कथम्=कस्मात्, न=नहि, मधुरस्वरः—मधुरः=श्रवणप्रियः, स्वरः=कण्ठध्वनिः, यस्यासौ भवेयम् । उपजातिः वृत्तम् ॥ १४ ॥

अद्यापि=अधुनापि, चेटः=शाकटिकः, नागच्छति=नायाति ।

विटः—भवान्=त्वम्, स्वस्थो भवतु=प्रकृतिस्थो भवतु, सम्प्रत्येव=इदानीमेव, आगमिष्यति ।

(ततः=तत्पश्चात्, प्रवहणाधिरूढा=शकटाधिरूढा, वसन्तसेना चेटश्च प्रविशति ।)

विट—क्या कहा जाय ? तुम तो गन्धर्व हो ।

शकार—आखिर, मैं गन्धर्व क्यों नहीं हूँ ?

हींग डालकर, मरीच की बुकनी मिलाकर घी में वघारा हुआ कोयल का मांस मैंने खाया है । तो फिर मेरी आवाज सुरीली क्यों नहीं हो सकती ? ॥ १४ ॥

मान्यवर, अभी तक चेट आ नहीं रहा है ।

विट—आप होश तो संभालो, चेट तो अब आ ही पहुँचेगा ।

(इसके बाद गाड़ी पर सवार चेट और वसन्तसेना का प्रवेश ।)

चेटः—भीदे क्खु हग्गे। मज्झण्हिके शुज्जे। मा दाणिं कुविदे लाअशालशण्ठाणे हुविश्शदि। ता तुलिदं वहामि। जाध, गोणा! जाध। [भीतः खल्वहम्। माध्याह्निकः सूर्यः। मा इदानीं कुपितो राजश्यालसंस्थानो भविष्यति। तत् त्वरितं वहामि। यातम्, गावौ यातम्।]

वसन्तसेना—हद्धी! हद्धी! ण क्खु वड्ढमाणअस्स अअं सरसंजोओ, किं ण्णेदं? किं णु क्खु अज्जचारुदत्तेण वाहणपडिस्समं परिहरन्तेण अण्णो मणुश्शो अण्णं पवहणं पेसिदं भविस्सदि? फुरदि दाहिणं लोअणं, वेवदि मे हिअअं, सुण्णाओ दिसाओ, सव्वं ज्जेव विसंठुलं पेक्खामि। [हा धिक्! हा धिक्! न खलु वर्द्धमानकस्यायं स्वरसंयोगः। किन्नु इदम्? किंनु खलु आर्यचारुदत्तेन वाहनपरिश्रमं परिहरता अन्यो मनुष्योऽन्यत्, प्रवहणं प्रेषितं भविष्यति? स्फुरति दक्षिणं लोचनम्, वेपते मे हृदयम्, शून्याः दिशः, सर्वमेव विसंष्ठुलं पश्यामि।]

चेटः—भीतः=विलम्बगमनात् शकारस्य क्रोधानुमानेनातित्रस्तः, खलु=निश्चयेन, अहम्=चेटः, मध्याह्निकः=माध्यकालिकः, सूर्यः=रविः, इदानीम्=अधुना, राजस्यालसंस्थानः, कुपितः=क्रुद्धः, मा भविष्यति। तत्=तस्मात्, त्वरितम्=शीघ्रम्, वहामि। यातम्=गच्छतम्, गावौ=वृषभौ।

वसन्तसेना—'यातं, गावौ यातम्' चेटस्येत्याकारकः शब्दः श्रुत्वा वसन्तसेना आशङ्कति, अयम्=वृषभप्रेरणे शब्दः, वर्द्धमानकस्य=चारुदत्तशाकटिकस्य, स्वरसंयोगः=कण्ठध्वनिः, किन्नु इदम्=इदम् किमस्ति? किमिति प्रश्ने, आर्यचारुदत्तेन=मान्यसार्थवाहसुतेन, वाहनपरिश्रमम्—वाहनयोः=वहनकर्मणि नियुक्तयोः वृषभयोः, वाहनशब्दः अत्र वृषभयोः सञ्चालकस्य शकटस्य च द्योतकः, परिश्रमम्, परिहरता=अपनयता, अन्यः=अपरः, मनुष्यः=शाकटिकः, अन्यत्=अपरम्, प्रवहणम्=शकटम्, प्रेषितम्=प्रस्थापितम्, भविष्यति। दक्षिणम्=वामेतरम्, लोचनम्=नयनम्, स्फुरति=स्पन्दते, स्त्रीणामनिष्टसूचकमिदम्, मे=मम वसन्तसेनयाः, हृदयम्=चित्तम्, वेपते=कम्पते, दिशः=आशाः, शून्याः=रिक्ताः, सर्वमेव=अखिलमेव, विसंष्ठुलम्=विपरीतम्, पश्यामि।

चेट—मुझे तो बड़ा डर लग रहा है। सूर्य मध्याह्न में आ गया है। राजा का साला संस्थानक कहीं गुस्सा न जाय, इसलिए गाड़ी जल्दी-जल्दी हांकता हूँ। बढ़े चलो, बैलो! बढ़े चलो।

वसन्तसेना—हाय, हाय, यह तो वर्धमानक की आवाज नहीं है। तो फिर क्या बात है? क्या आर्यचारुदत्त ने थकावट दूर करने के लिए गाड़ी और गाड़ीवान् को बदल दिया है? मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है। कलेजा काँप रहा है। दिशाएँ सूनी-सूनी लग रही हैं। सब कुछ उल्टे दिखलाई पड़ रहा है।

शकारः—(नेमिघोषमाकर्ण्य) भावे ! भावे ! आगदे पवहणे । [भाव ! भाव ! आगतं प्रवहणम् ।]

विटः—कथं जानासि ?

शकारः—किं ण पेक्खदि भावे ? बुड्ढशूअले विअ घुलघुलाअमाणं लक्खीअदि । [किं न प्रेक्षते भावः ? वृद्धशूकर इव घुरघुरायमाणं लक्ष्यते ।]

विटः—(दृष्ट्वा) साधु लक्षितम् । अयमागतः ।

शकारः—पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! आगदे शि ? [पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! आगतोऽसि ?]

चेटः—अध इं । [अथ किम् ।]

शकारः—पवहणे वि आगदे ? [प्रवहणमप्यागतम् ?]

चेटः—अध इं । [अथ किम् ।]

शकारः—गोणा वि आगदे ? [गावावपि आगतौ ?]

शकारः—(नेमिः=चक्राधारः, तस्य घोषम्=शब्दम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा ।) भाव=हे मान्य, आगतम्=समागतम्, प्रवहणम्=शकटम् ।

विटः—कथम्=केन प्रकारेण, जानासि=अवगतोऽसि ?

शकारः—किम्=कथम्, न=नहि, प्रेक्षते=अवलोक्यते, भावः=विद्वान् ? वृद्धशूकरः=स्थविरवराहः, इव=यथा, घुरघुरायमाणम्=‘घुर-घुर’-इत्यव्यक्तशब्दं क्रियमाणम्, लक्ष्यते=अवबुध्यते ।

विटः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) साधु=सुष्ठु, लक्षितम्=अवलोकितम्, अयमागतः=शकटः समागतः ।

शकारः—पुत्रक=हे सुत, चेटः, आगतोऽसि=समागतोऽसि ?

चेटः—अथ किम्=अस्त्वेवम्, समागतोऽस्मि ।

शकारः—प्रवहणमपि=शकटोऽपि, आगतम्=उपस्थितम् ?

चेटः—अथ किम्=शकटोऽपि उपस्थित अस्ति ।

शकार—(गाड़ी की घड़घड़ाहट सुनकर) महाशय, गाड़ी आ गई ।

विट—कैसे जानते हो ?

शकार—क्या आप नहीं देख रहे हैं ? बूढ़े सुँअर की तरह घुरघुराती गाड़ी आ रही है ।

विट—(देखकर) आपने ठीक ही कहा । ये गाड़ी आ गई ।

शकार—बेटे, स्थावरक, चेट तुम आ गये ?

चेट—हाँ मैं आ गया ।

शकार—गाड़ी भी आ गई ?

चेट—हाँ, गाड़ी भी आ गई ।

चेटः—अध इं। [**अथ किम्।**]

शकारः—तुमं पि आगदे ? [**त्वमपि आगतः ?**]

चेटः—(सहासम्) भट्टके ! अहं वि आगदे। [**भट्टारक ! अहमप्यागतः।**]

शकारः—ता पवेशेहि पवहणं। [**तत् प्रवेशय प्रवहणम्।**]

चेटः—कदलेण मग्गेण ? [**कतरेण मार्गेण ?**]

शकारः—एदेण ज्जेव पाआलखंडेण। [**एतेनैव प्राकारखण्डेन।**]

चेटः—भट्टके ! गोणा मलेन्ति, पवहणे वि भज्जेदि, हग्गे वि चेडे मलामि। [**भट्टारक ! गावौ म्रियेते, प्रवहणमपि भज्यते, अहमपि चेटो म्रिये।**]

शकारः—अले लाअशालए हग्गे। गोणा मले, अवले कीणिश्शं। पवहणे भग्गे, अवलं घडाइश्शं। तुमं मले अण्णे पवहणवाहके हुविश्शदि। [**अरे ! राजश्यालकोऽहम्। गावौ मृतौ, अपरौ क्रेष्यामि। प्रवहणं भग्नम्, अपरं घटयिष्यामि। त्वं मृतः, अन्यः प्रवहणवाहको भविष्यति।**]

शकारः—गावावपि=वृषभावपि, आगतौ=उपस्थितौ ?

चेटः—अथ किम्=तावपि समागतौ।

शकारः—त्वमपि=चेटोऽपि, आगतः ?

चेटः—(सहासम्=हास्ययुतम्) भट्टारक=स्वामिन्, अहमपि=चेटोऽपि, आगतः।

शकारः—तत्=तर्हि, प्रवेशय प्रवहणम्=शकटं प्रविशय।

चेटः—कतरेण मार्गेण=द्वयोर्मार्गयोर्मध्ये केन पथा ?

शकारः—एतेनैन=पुरोवर्त्तिनैव, प्राकारखण्डेन=अल्पोच्चप्राकारभागेन।

चेटः—भट्टारक=स्वामिन्, गावौ=वृषभौ, म्रियते=मृतौ स्याताम्। प्रवहणमपि भज्यते=शकटोऽपि त्रुट्यते, अहमपि=चेटोऽपि, म्रिये।

शकारः—राजश्यालकोऽहम्=नाहं सामान्यजनः मम भागिनीपतिः नृपः अस्ति।

शकार—बैल भी आ गये ?

चेट—हाँ, बैल भी आ गये।

शकार—तुम भी आ गये ?

चेट—(हंसकर) हाँ, मालिक मैं भी आ गया।

शकार—तब गाड़ी भीतर करो।

चेट—किस राह से ?

शकार—इस टीले पर से।

चेट—मालिक, इस रास्ते से तो बैल मर जायेंगे, गाड़ी टूट जायेगी, और आपका सेवक मैं भी मर जाऊँगा।

शकार—अरे, मैं राजा का साला हूँ, बैल मरेंगे तो दूसरा खरीद लूंगा, गाड़ी टूटेगी तो दूसरी बन जायेगी, तुम मर जाओगे तो दूसरा गाड़ीवान् रख लूंगा।

चेटः—शव्वं उववण्णं हुविश्शदि, हग्गे अत्तणकेलके ण हुविश्शं। [**सर्वमुपपन्नं भविष्यति, अहमात्मीयो न भविष्यामि।]**

शकारः—अले ! शव्वं पि णश्शदु। पाआलखण्डेण पवेशेहि पवहणं। [**अरे ! सर्वमपि नश्यतु। प्राकारखण्डेन प्रवेशय प्रवहणम्।]**

चेटः—विभज्ज ले पवहण ! शमं शामिणा विभज्ज। अण्णे पवहणे भोदु। भट्टके गदुअ णिवेदेमि। (प्रविश्य) कधं ण भग्गे ? भट्टके ! एशे उवत्थिदे पवहणे। [**विभङ्ग्धि, रे प्रवहण ! समं स्वामिना विभङ्ग्धि। अन्यत् प्रवहणं भवतु, भट्टारकं गत्वा निवेदयामि। कथं न भग्नम् ? भट्टारक ! एतदुपस्थितं प्रवहणम्।]**

शकारः—ण छिण्णा गोणा ? ण मला लज्जु ? तुमं पि ण मले ? [**न छिन्नौ गावौ ? न मृता रज्जवः ? त्वमपि न मृतः ?]**

गावौ=वृषभौ, मृतौ चेत्सत्याम्, अपरौ=अन्यौ, क्रेष्यामि=मूल्येन ग्रहणं करिष्यामि, प्रवहणम्=शकटम्, भग्नम्=त्रुटितम्, अपरम्=अन्यम्, घटिष्यामि=निर्माणं कारयिष्यामि, त्वं मृतः=तव मरणात्, प्रवहणवाहकः=शाकटिकः, अन्यः=अन्यजनः, भविष्यति।

चेटः—सर्वम्=सकलम्, उपपन्नम्=प्राप्तम्, किन्तु अहम्=चेटः, आत्मीयः=एतच्छरीरसम्बन्धी।

शकारः—अरे इति सम्बोधने, सर्वमपि=सकलमपि, नश्यतु=विनष्टो भवतु, प्राकारखण्डेन=उन्नतभूभागेन, प्रवेशय=प्रवेशं कारय।

चेटः—विभङ्ग्धि=विनष्टं भव, स्वामिना समम्=भर्त्रा शकारेण साकम्, त्वया सह शकारोऽपि विनष्टो भवतु, इति प्रवहणवाहकस्याभिप्रायः। विभङ्ग्धि=विभञ्ज, अन्यत्=अपरम्, प्रवहणम्=शकटम्, भवतु=यातु, भट्टारकम्=स्वामिनम्, गत्वा=उपगम्य, निवेदयामि=कथयामि। अर्थात्—अस्मिन् प्रवहणे भग्ने सति अन्यत् प्रवहणं भवतु इति स्वामिनं निवेदयामि। (प्रविश्य=आगत्य) कथम्=किमर्थम् प्रवहणम्, न भग्नम्=त्रुटितम्। भट्टारक=हे स्वामिन्, एतत्=प्रवहणम्, उपस्थितम्=समागतम्।

शकारः—न=नहि, छिन्नौ=त्रुटितौ, गावौ=वृषभौ, मृता=हता, न रज्जवः=शुल्वानि, त्वमपि=चेटोऽपि, न मृतः=हतः। "मृतौ गावौ छिन्ना रज्जव" इति वक्तव्ये शकारत्वात् व्यत्ययेन कथयति छिन्नौ गावावित्यादिः।

चेट—सब कुछ ठीक हो जायेगा। पर मैं आपका सेवक तो जिन्दा नहीं रहूँगा।

शकार—सब कुछ, समाप्त हो जाने दो, तुम इस टीले पर से गाड़ी हाँको।

चेट—टूट जा री गाड़ी, मालिक के साथ ही खत्म हो जा, दूसरी गाड़ी बन जायेगी, मैं अभी मालिक को कहता हूँ। (**पास जाकर**) क्या गाड़ी टूटी नहीं ? मालिक, यह गाड़ी हाजिर है।

शकार—अरे बैल नहीं टूटे, रस्सियाँ नहीं मरीं और तुम भी नहीं मरे ?

चेटः—अध इं। [अथ किम्।]

शकारः—भाव ! आअच्छ, पवहणं पेक्खामो। भावे ! तुमं पि मे गुलु पलमगुलु। पेक्खिअशि शादलके अब्भन्तलके त्ति पुलक्कलणीए त्ति तुमं दाव पवहणं अग्गदो अहिलुह। [भाव ! आगच्छ, प्रवहणं पश्यावः। भाव ! त्वमपि मे गुरुः, परमगुरुः। प्रेक्ष्यसे, सादरकः अभ्यन्तरक इति पुरस्करणीय इति त्वं तावत् प्रवहण-मग्रतः अधिरोह।]

विटः—एदं भवतु। (इत्यारोहति।)

शकारः—अधवा चिट्ठ तुमं। तुह वप्पकेलके पवहणे ? जेण तुमं अग्गदो अहिलुहशि। हग्गे पवहणशामी अग्गदो पवहणं अहिलुहामि ! [अथवा तिष्ठ त्वम्। तव वप्रीयं प्रवहणम् ? येन त्वमग्रतः अधिरोहसि। अहं प्रवहणस्वामी अग्रतः प्रवहणमधिरोहामि।]

चेटः—अथ किम्=सकलं सुरक्षितमस्ति।

शकारः—भाव=हे मान्य, आगच्छ=समागम्यताम्, प्रवहणम्=शकटम्, पश्यावः=अवलोकयावः। भाव=हे मान्य, त्वमपि=भवान् अपि, मे=मम, गुरुः= आचार्यः, अन्तरङ्गो वेति, परमगुरुः=माननीयः, सादरकः=सम्मानसहितः, अभ्य-न्तरकः=अन्तरङ्गः, हृदयाभिप्रायस्यापि ज्ञाता इत्यर्थः, इति=अतः, पुरस्करणीयः= अग्रपूज्यः, सम्मानार्हः इति यावत्। इति=अतः, त्वम्=भवान् एव, तावत्= प्रथमतः, अग्रतः=प्रथमम्, प्रवहणम्=शकटम्, अधिरोहः=आरोहणं कुरु।

विटः—एवम्=यदुक्तं त्वया तदनुसारेणैव, भवतु=यातु। (इति=एवमुक्त्वा, आरोहति=शकरारूढो भवति।)

शकारः—अथवा=किंवा, त्वम्=भवान्, तिष्ठ=प्रतिनिवृतो भव। तव= भवतः, वप्रीयम्—वप्रस्य=पितुः, इदम् शकटमिति वप्रीयम्। काकुकथनम्, 'वप्रस्ताते स्त्रियां क्षेत्रे चरे रेणौ च रोधसि' इति त्रिकाण्डशेषः। गहादिभ्यश्च इति शैषिक छ-प्रत्ययः आकृतिगणत्वात्। येन=अधिकारविशेषेण, त्वम्=भवान्, अग्रतः= प्रथमतः, शकटे अधिरोहसि=आरोहसि। अहम्=शकारः, प्रवहणस्वामी=शकटा-धिपतिः। अतः अग्रतः=प्रथमतः, प्रवहणम्=शकटम्, अधिरोहामि=आरोहणं करोमीति।

चेट—हाँ, सब बच गये।

शकार—विद्वन्, आइए गाड़ी देखें। मान्यवर, तुम मेरे गुरु हो, परमगुरु हो आदरणीय हो, अन्तरङ्ग हो एवं सम्माननीय हो, अतः तुम्हीं पहले गाड़ी पर चढो।

विट—ठीक ऐसा ही हो। (**गाड़ी पर चढता है।**)

शकार—अथवा नहीं, तुम रुको। क्या तुम्हारे बाप की गाड़ी है ? जो तुम मुझसे पहले गाड़ी पर चढते हो ? मैं गाड़ी का मालिक हूँ, अतः इस पर सबसे पहले मैं चढ़ूंगा।

विटः—भवानेव ब्रवीति ।

शकारः—जइ वि हग्गे एवं भणामि, तधावि तुह एशे आदले अहिलुह भट्टकेत्ति भणिदुं । [**यद्यपि अहमेवं भणामि, तथापि तव एष आदरः अधिरोह भट्टारक । इति भणितुम् ।**]

विटः—आरोहतु भवान् ।

शकारः—एशे शम्पदं अहिलुहामि । पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! पलिवत्तावेहि पवहणं । [**एष साम्प्रतमधिरोहामि । पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! परिवर्त्तय प्रवहणम् ।**]

चेटः—(परावर्त्य) अहिलुहदु भट्टालके । [**अधिरोहतु भट्टारकः ।**]

शकारः—(अधिरुह्यावलोक्य च शङ्कां नाटयित्वा, त्वरितमवतीर्य विटं कण्ठे अवलम्ब्य) भावे ! भावे ! मलेदि, मलेदि । पवहणाधिलूढ़ा लक्खशी चोले वा पडिवशदि । जइ लक्खशी तदा उभे वि मूशे । अध चोले तदा उभे वि खज्जे ।

विटः—भवान्=त्वम्, एव ब्रवीति=प्रेरयति, शकटारोहणाय प्रथमतः मां भवानेव प्रेरयति, अतोऽहं अग्रतः अधिरोढुं प्रवृत्तः नास्त्यत्र मे कश्चिदपराधः ।

शकारः—यद्यपि अव्ययपदमिदम्, अहम्=शकारः, एवम्=त्वामग्रेऽधिरोहणार्थम्, भणामि=प्रेरयामि, तथापि तव=भवतः, एष=इदम्, आदरः=सम्मानः, अधिरोह=आरोहय, भट्टारक=स्वामी । हे स्वामिन्, भवानेवाग्रे शकटमधिरोह, इति त्वया मां निवेदितव्यः ।

विटः—आरोहतु=अधिरोहणं करोतु, भवान्=श्रीमान् ।

शकारः—एष साम्प्रतम्=अधुना, अधिरोहामि=शकटारोहणं करोमि, पुत्रक=हे सुत, परिवर्त्तय=प्रत्यावर्तय, प्रवहणम्=शकटम् ।

चेटः—(परावर्त्य=प्रत्यावर्त्य) अधिरोहतु=आरोहतु, भट्टारकः=स्वामी ।

शकारः—(अधिरुह्य=आरोहणं कृत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा, च=पुनः, शङ्काम्=सन्देहम्, नाटयित्वा=अभिनयङ्कृत्वा, त्वरितम्=शीघ्रमेव, अवतीर्य=अवरोहणं कृत्वा, विटम्, कण्ठे=गले, अवलम्ब्य=अवलम्बनङ्कृत्वा) भाव=हे विद्वन्,

---

बिट—आप ने ही तो ऐसा कहा था ।

शकार—हाँ, यद्यपि तुमसे ऐसा करने को मैंने ही कहा था फिर भी तुम्हारा भी तो कुछ कर्त्तव्य था, तुम मुझसे कहते—'मालिक, पहले आप चढिए ।'

विट—ठीक है तो पहले आप ही चढिए ।

शकार—अच्छा तो अब पहले मैं ही चढता हूँ । बेटे, स्थावरक, चेट, जरा गाड़ी तो घुमाओ ।

चेट—(गाड़ी घुमाकर) मालिक, चढ़िए ।

शकार—(चढ़कर, कुछ देखकर, सन्देह का अभिनय कर, जल्दी-जल्दी उतरकर

[भाव ! भाव ! म्रियते, म्रियते । प्रवहणाधिरूढा राक्षसी चौरो वा प्रतिवसति । यदि राक्षसी, तदा उभावपि मुषितौ । अथ चौरः तदा उभावपि खादितौ ।]

विटः—न भेतव्यम् । कुतोऽत्र वृषभयाने राक्षस्याः सञ्चारः । मा नाम, ते मध्याह्नार्क-ताप-च्छिन्न-दृष्टेः स्थावरकस्य सकञ्चुकां छायां दृष्ट्वा भ्रान्तिरुत्पन्ना ?

शकारः—पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! जीवेशि ? **[पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! जीवसि ?]**

चेट—अध इं । **[अथ किम् ।]**

शकारः—भावे ! पवहणाधिलढा इत्थिआ पडिवशदि । ता अवलोएहि । **[भाव ! प्रवहणाधिरूढा स्त्री प्रतिवसति । तदवलोकय ।]**

म्रियते=मृतोऽस्मि, प्रवहणमधिरुह्य=शकटारोहणङ्कृत्वा, राक्षसी=कौणपी, वा=अथवा, चौरः=तस्करः, प्रतिवसति=निवसति, यदि=चेत्, राक्षसी=कौणपी, अस्ति तदा=तर्हि, उभावपि=द्वावपि, मुषितौ=अपहृतौ, वञ्चितौ वेति, अथ=अथवा चौरश्चेत् तदा उभावपि=अहञ्च त्वञ्चापि, खादितौ=भक्षितौ । भयविह्वलः मूर्खश्च शकारः अत्रापि राक्षसी चेत्तदा खादितौ, चौरश्चेत्तदा मुषितौ' इति युज्यते, किन्तु शकारोक्तत्वात् तथोक्तमेव साधुः । चेटस्तु तत्पूर्वपरिचितमेवातः आवयोरेव प्राणभयम् ।

विटः—न भेतव्यम्=भयं न कर्त्तव्यम्, कुतः=कस्मात्, अत्र=अस्मिन्, वृषभयाने=गोरथे, राक्षस्याः=कौणप्याः, सञ्चारः=सम्भवः । मध्याह्नार्कस्य=मध्याह्न-सूर्यस्य, तापेन=उष्णतापेन, छिन्ना=कुण्ठा, दृष्टिः=नेत्रम्, यस्य तथाविधस्य ते=तव शकारस्य, स्थावरकस्य=स्थावरचेटकस्य, सकञ्चुकाम्=अङ्गस्थितवस्त्रसहिताम्, छायाम्=प्रतिबिम्बम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, भ्रान्तिः=भ्रमः, उत्पन्ना=प्रादुर्भूता ।

शकारः—पुत्रक=हे सुत, जीवसि ।

चेटः—अथ किम्=अवश्यमेवजीवामि ।

शकारः—प्रवहणाधिरूढा=शकटारूढा, स्त्री=नारी प्रतिवसति ।

विट के गले से लगकर) भाव, भाव, मर गये, मर गये । गाड़ी पर कोई राक्षसी बैठी है अथवा कोई चोर घुसा है । यदि राक्षसी है तो हम दोनों को लूटेगी और यदि चोर है तो तुम दोनों को खा जायेगा ।

विट—डरना नहीं चाहिए । इस गाड़ी में राक्षसी कहाँ से आ सकती है । दुपहरिया की धूप के कारण तुम्हारी आँखें चुंधिया गई हैं, अतः चेट के कपड़े की परछाइं देखकर तुम्हें भ्रम हो गया है ।

शकार—बेटा चेट, तुम जिन्दा हो ?

चेट—हाँ मालिक, मैं जिन्दा हूँ ।

शकार—महाशय, गाड़ी में कोई औरत बैठी है, देखो तो ।

विटः—कथं स्त्री !

अवनतशिरसः प्रयाम शीघ्रं पथि वृषभा इव वर्षताडिताक्षाः ।
मम हि सदसि गौरवप्रियस्य कुलजनदर्शनकातरं हि चक्षुः ।। १५ ।।

वसन्तसेना—(सविस्मयमात्मगतम्) कधं मम णअणाणं आआसअरो ज्जेव राअस्सालओ ! ता संसइदम्हि मन्दभाआ । एसो दाणिं मम मन्दभाइणीए ऊसरक्खेत्तपाडिदो विअ वीअमुट्ठी णिप्फलो इध आगमणो संवुत्तो । ता किं एत्थ करइस्सम् ? [**कथं मम नयनयोरायासकर एव राजश्यालः । तत् संशयिताऽस्मि मन्दभागा । एतदिदानीं मन्दभागिन्या ऊषरक्षेत्रपतित इव बीजमुष्टिः निष्फलमिहागमनं संवृत्तम् । तत् किमत्र करिष्यामि ?**]

विटः— कथम् स्त्री ? संशयसहिताश्चर्यबोधकमिदम् ।

अन्वयः—पथि, वर्षताडिताक्षाः, वृषभाः, इव, अवनतशिरसः, (वयम्) शीघ्रम्, प्रयाम । हि, सदसि, गौरवप्रियस्य, मम, चक्षुः, कुलजनदर्शनकातरम्, हि ।। १५ ।।

अवनतेति । पथि=मार्गे, वर्षैः=वृष्टिभिः ताडितानि=आहतानि, अक्षीणि=नेत्राणि, येषां तथोक्ताः, वृषभाः=बलीवर्दाः, इव=यथा, अवनतानि=नम्रीकृतानि, परस्त्रीदर्शनसङ्कोचेन, शिरांसि=मस्तकानि, यैः तादृशाः वयमिति, शीघ्रम्=त्वरितम्, प्रयाम=गच्छाम । हि=यतः, सदसि=सभायाम्, गौरवप्रियस्य=लब्धप्रतिष्ठस्य, मम=विटस्य, चक्षुः=नेत्रम्, कुलजनस्य=सद्वंशोद्भवनारीजनस्य, दर्शने=अवलोकने, कातरम्=लज्जाभिभूतत्वादसमर्थम्, हि=इति निश्चयेन । अत्रार्थान्तरन्यास-श्रौती-उपमयोश्च सङ्करालङ्कारः, पुष्पिताग्रावृत्तम् ।। १५ ।।

वसन्तसेना—(सविस्मयम्=साश्चर्यम्, आत्मगतम्=स्वगतम्) कथमित्याशङ्कायाम्, मम=वसन्तसेनायाः, नयनयोः=लोचनयोः, आयासकरः=कष्टदायकः, एव, राजश्यालकः शकारः । अनेन प्रतीयते यद् वसन्तसेना राजश्यालकं द्रष्टुमपि नेच्छति । तत्=तस्मात्, संशयिताऽस्मि=जीवनेऽपि सन्दिग्धाऽस्मि, मन्दभागा=जन्मार्जितसत्कर्मक्षीणा, एतत्=पूर्वोक्ता, इदानीम्=अधुना, ऊषरक्षेत्रे=क्षारभूमौ, पतितः=निक्षिप्तः, इव=यथा,

---

विट—क्या औरत ?

राह में मेघ के पानी से आहत आँखों वाले बैल की तरह सिर झुकाये हमें भी यहाँ से चुपचाप चल देना चाहिए । क्योंकि, मैं समाज का लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति हूँ । अतः किसी कुलललना के सामने मेरी आँखें स्वतः नीचे झुक जाती हैं । मै उसे देखने में बिल्कुल असमर्थ हूँ ।। १५ ।।

वसन्तसेना—(**आश्चर्य के साथ, मन ही मन**) क्या मेरी आँखों का काँटा राजा का साला शकार ही है । हाय मैं अभागिन हूँ, मेरी जान पर खतरा है । इस समय मुझ हतभागिनी का यहाँ आना ऊषर खेत में बीज बोने की तरह बेकार हो गया । तो मैं अब क्या करूँ ?

शकारः—कादले क्खु एशे बुड्ढचेडे पवहणं णावलोएदि । भावे ! आलो- एहि पवहणं । [**कातरः खल्वेषः वृद्धचेटः प्रवहण नावलोकयति । भाव ! आलोकय प्रवहणम् ।**]

विटः—को दोषः । भवत्वेवं तावत् ।

शकारः—कधं शिआला उड्डेन्ति वाअशा वच्चेन्ति । ता जाव भावे अक्खीहिं भक्खीअदि, दन्तेहिं पेक्खिअदि, दाव हग्गे पलाइश्शं । [**कथ शृगाला उड्डीयन्ते, वायसा व्रजन्ति । तद् यावत् भावः अक्षिभ्यां भक्ष्यते, दन्तैः प्रेक्ष्यते, तावदहं पलायिष्ये ।**]

विटः—(वसन्तसेनां दृष्ट्वा, सविषादमात्मगतम्) कथमये मृगी व्याघ्रमनु- सरति । भोः कष्टम् ।

बीजमुष्टिः=धान्यादीनां मुष्टिः इव, निष्फलम्=निरर्थकम्, इह=अत्र, आगमनम् =सम्प्राप्तिः, संवृत्तम्=सञ्जातम् । ऊषरक्षेत्रे पतितं बीजं यथा विनश्यति, तथैव चारुदत्तं विना रन्तुमागतायाः वसन्तसेनायाः आगमनमपि निरर्थकमेवेत्यनेन वसन्त- सेनायाः जीवननाशोऽपि ध्वन्यते । ततः=तस्मात्, अत्र=अस्मिन् विषये, किं कर्त्तव्यम् =विधातव्यम् ।

शकारः—कातरः=भीरुः, खलु=निश्चयेन, एषः=पुरोवर्तिनः, वृद्धः=जर्जरः, चेटः, प्रवहणम्=शकटम्, नावलोकयति=न पश्यति ।

विटः—को दोषः=न किमपि दोषः, एवम्=इत्थम्, भवतु=यातु, तावदित्यवधारणे ।

शकारः—कथमिति प्रश्ने, शृगालाः=जम्बुकाः, उड्डीयन्ते=नभो गम्यन्ते, वायसाः =काकाः, व्रजन्ति=गच्छन्ति, तत्=तस्मात्, भावः=मान्यः, अक्षिभ्याम्=नेत्राभ्याम्, भक्ष्यते=खाद्यते, दन्तैः=दशनैः, प्रेक्ष्यते=अवलोक्यते, पलायिष्ये=पलायनं करिष्यामि । मूर्खस्य भीतस्य च शकारस्य विपरीतोक्तिरियम् ।

विटः—(वसन्तसेनाम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, सविषादम्, आत्मगतम्=स्वगतम्) अये=इत्याश्चर्यम्, कथमिति जिज्ञासायाम्, मृगी=हरिणी, व्याघ्रम्=शार्दूलम्, अनुसरति=अनुगच्छति । भो कष्टम्=खेदम्, अनेन कथनेन शकारतो भाविनीं वसन्त- सेनायाः विपत्ति सूचयति ।

शकार—यह बूढ़ा चेट डरपोक है, ठीक से गाड़ी को देख पा नहीं रहा है । मान्यवर, जरा तुम्हीं देखो तो गाड़ी को ।

विट—क्या हर्ज है । मैं ही देख लेता हूँ ।

शकार—क्या सियार उड़ रहे हैं ? कौए भाग रहे हैं ? अतः जब तक (गाड़ी पर बैठी राक्षसी) मुझे आँखों से नहीं खा लेती, दाँतों से नहीं देख लेती, मैं भाग जाता हूँ ।

विट—(वसन्तसेना को देखकर, मन ही मन, दुःख से) अरे यह हिरणी बाघ का पीछा क्यों कर रही है ? हाय खेद है—

शरच्चन्द्रप्रतीकाशं पुलिनान्तरशायिनम् ।
हंसी हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता ।। १६ ।।

(जनान्तिकम्) वसन्तसेने ! न युक्तमिदं, नापि सदृशमिदम् ।

पूर्वं मानादवज्ञाय द्रव्यार्थे जननीवशात् ।

वसन्तसेना—ण । (इति शिरश्चालयति ।) [न ।]

विटः—अशौण्डीर्यस्वभावेन वेशभावेन मन्यते ।। १७ ।।

अन्वयः—हंसी, शरच्चन्द्रप्रतीकाशम्, पुलिनान्तरशायिनम्, हंसम्, परित्यज्य, वायसम्, समुपस्थिता ।। १६ ।।

शरच्चन्द्रेति । हंसी=मराली, शरदः=शरत्कालीनस्य, चन्द्रः=सुधाकरः, तेन प्रतीकाशम्=तुल्यम्, पुलिनस्य=नद्यास्तोयोत्थितभागस्य, अन्तरे=अभ्यन्तरे, शेते यस्तम् अथवा नद्याः अपरतटे शयानम्, हंसम्=मरालम्, परित्यज्य=त्यक्त्वा, वायसम् =काकम्, समुपस्थिता=समागता । हंसीव सुगमना वसन्तसेना शरच्चन्द्रवत् कीर्त्ति-धवलं, कुत्रचित् सुखेन वर्त्तमानं सर्वगुणसम्पन्नं चारुदत्तं विहाय काकमिव सर्वथा मलिनं शकारं सेवितुमागता । लुप्तोपमाऽप्रस्तुतप्रशंसयोः सङ्करः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।।

(जनान्तिकम्—जनस्य=उद्देश्यभूतलोकस्य, अन्तिकम्=समीपम्, इति जनान्तिकम्=अनन्यबोध्यम्, तद् यथास्यात्तथा) वसन्तसेने=हे वसन्तसेने, इदम्=एतत्, न=नहि, युक्तम्=समीचीनम्, नापि, इदम्=एतत्, सदृशम्=तवानुरूपम् ।

अन्वयः—पूर्वम्, मानात्, अवज्ञाय, (सम्प्रति) जननीवशात्, द्रव्यार्थम्, (अथवा) अशौण्डीर्यस्वभावेन, वेशभावेन, मन्यते ।

पूर्वमिति । पूर्वम्=पुरा, मानात्=दर्पात्, अवज्ञाय=तिरस्कृत्य, सम्प्रति= अधुना, जननीवशात्=मातुः आदेशात्, द्रव्यार्थम्=प्रचुरधनार्थम्, स्वयमेव समागतेति ।

वसन्तसेना—न=नहि । (इति=इदं श्रुत्वा, शिरः=उत्तमाङ्गम्, चालयति= वेपयति, विटस्य कथनानन्तरं वसन्तसेना अस्वीकृतिसूचकम् 'न' शब्दम् उच्चार्य अस्वीकारार्थकसङ्केते शिरश्चालयति । इदं श्रुत्वा दृष्ट्वा च पुनः विटेन कथ्यते—

विटः—अथवा—अशौण्डीर्यम्=अनौदार्यम्, वा दर्पराहित्यं स्वभावः=प्रकृतिः,

---

शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह अत्यन्त शुभ्र एवं नदी की रेती पर स्थित हंस को छोड़कर यह हंसी इस कौए के पास कैसे पहुँच गई है ।। १६ ।।

(धीरे से) वसन्तसेने, तुमने यह उचित नहीं किया, यह तुम्हारे योग्य नहीं हुआ—

पहले तो तुमने मान किया, शकार का अनादर किया । फिर धन के लालच से माँ के कहने पर—

वसन्तसेना—नहीं । (सिर हिलाती है ।)

विट—अपने वेश्यापन के कारण, अपने अनुदार स्वभाववश स्वतः शकार के पास पहुँच गई हो ।। १७ ।।

ननूक्तमेव मया भवतीं प्रति—'सममुपचर भद्रे ! सुप्रियश्चाप्रियश्च'।

वसन्तसेना—पवहणविपज्जासेण आगदा सरणागदम्हि। [**प्रवहणविपर्यासेनागता शरणागताऽस्मि।**]

विटः—न भेतव्यं, न भेतव्यम्। भवत्वेनं वञ्चयामि। (शकारमुपगम्य) काणेलीमातः ! सत्यं राक्षस्येवात्र प्रतिवसति।

शकारः—भावे ! भावे ! जइ लक्खशी पड़िवशदि, ता कीश ण तुमं मूशेदि ? अध चोले, ता किं ण तुमं भक्खिदे ? [**भाव ! भाव ! यदि राक्षसी प्रतिवसति, तत् केन न त्वां मुष्णाति ? अथ चौरः, तत् किं न त्वं भक्षितः ?**]

विटः—किमनेन निरूपितेन। यदि पुनरुद्यानपरम्परया पद्भ्यामेव नगरीमुज्जयिनीं प्रविशावः, तदा को दोषः स्यात् ?

यस्य तादृशेन, वेशभावेन=गणिकात्वेन, हेतुना मन्यते=शकारं स्वीकरोति। पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ १७ ॥

ननु=निश्चयेन, उक्तम्=कथितम्, एव मया=विटेन, भवतीम्=त्वाम्, प्रति–भद्रे=हे कल्याणि, सुप्रियम्=रसिकम्, च=पुनः, अप्रियम्=अरसिकम्, समम्=तुल्यम्, उपचर=व्यवहरेति।

वसन्तसेना—प्रवहणस्य=शकटस्य, विपर्यासेन=व्यत्ययेन, शरणे=तव संरक्षणे, आगता=प्राप्ताऽस्मि।

विटः—न भेतव्यम्=मा भैः, आश्वासने द्विरुक्तम्, भवतु=अस्तु, एनम्=शकारम्, वञ्चयामि=प्रतारयामि (उपगम्य=शकारसमीपं गत्वा) काणोलीमातः=हे पुंश्चलीपुत्र, सत्यम्=ऋतम्, राक्षसी=कौणपी, एवेति निश्चये, अत्र=अस्मिन् शकटे, प्रतिवसति=निवसति।

शकारः—भाव=विद्वन्, यदि=चेत्, राक्षसी=दानवी, तत्=तस्मात्, केन न=कथं न, त्वाम्=विटम्, मुष्णाति=चोरयति, अथ=वा, यदि चौरः=तस्करः, तत्=तर्हि, किं=कथम्, न त्वाम्=भवन्तम्, भक्षितः=खादितः ?

विटः—अनेन=शकटस्थजनेन, निरूपितेन=विचारितेन, किम्=न किमपि

मैंने तो पहले ही तुमसे कहा—हे कल्याणि, प्रिय और अप्रिय का भेद किये बिना तुम सभी पुरुषों के साथ समान व्यवहार करो।

वसन्तसेना—नहीं गाड़ी के फेरबदल में अनजाने ही मैं यहाँ गई हूँ। मैं आपकी शरण में हूँ मेरी रक्षा कीजिए।

विट—डरने की कोई बात नहीं है। ठहरो, मैं शकार को ठगता हूँ। (शकार के पास जाकर) अरे ओ कुँआरी के बेटे, गाड़ी पर तो सचमुच राक्षसी बैठी है।

शकार—महाशय, सचमुच यदि गाड़ी पर दानवी बैठी है तो उसने आपको लूटा क्यों नहीं, अथवा चोर बैठा है तो फिर खा क्यों न लिया ?

शकारः—एव्वं किदे किं भोदि ? [**एवं कृते किं भवति ?**]

विटः—एवं कृते व्यायामः सेवितो धुर्याणाञ्च परिश्रमः परिहृतो भवति ।

शकारः—एवं भोदु । थावलआ ! चेडा ! णेह पवहणं । अधवा चिट्ठ चिट्ठ । देवदाणं बम्हणाणं च अग्गदो चलणेण गच्छामि । णहि णहि, पवहणं अहिलुहिअ गच्छामि । जेण दूलदो मं पेक्खिअ भणिश्शन्ति, 'एशे शे लट्टिअ-शाले भट्टालके गच्छदि ।' [**एवं भवतु । स्थावरक ! चेट ! नय प्रवहणम् । अथवा, तिष्ठ, तिष्ठ । देवतानां ब्राह्मणानाञ्चाग्रतः चरणेन गच्छामि । नहि, प्रवहणमधिरुह्य गच्छामि । येन दूरतो मां प्रेक्ष्य भणिष्यन्ति—'एष स राष्ट्रियश्यालो भट्टारको गच्छति ।'**]

फलमिति यदि=चेत्, पुनः=भूयः, उद्यानस्य=आरामस्य परम्परया=पङ्क्त्या, अर्थात् उद्यानस्थिततरुश्रेणीस्थमार्गेण गुप्तरूपेण गन्तव्यम्, पद्भ्यामेव=चरणाभ्यामेव, नगरीम्=पुरीम्, प्रविशावः=प्रवेशं करिष्यावः, तदा=तर्हि, कः=किम्, दोषः=त्रुटिः, स्यात्=भवेत् ।

शकारः—एवम्=अनेन प्रकारेण, कृते=विहिते, किं भवति=न किमपीत्यर्थः ।

विटः—एवं कृते=इत्थं रूपेण गमनेन, व्यायामः=कायिकपरिश्रमः, सेवितः=कृतः, च=पुनः, धुर्याणाम्=धुरीणानामर्थात् वृषभाणाम्, परिश्रमः=आयासः, परिहृतः=परित्यक्तः ।

शकारः—एवम्=यदुक्तं तत्, भवतु=यातु, नय=नीत्वा गच्छ, प्रवहणम्=शकटम्, अथवा=वा, तिष्ठ=मा गच्छ, देवतानाम्=सुराणाम्, च=पुनः, ब्राह्मणानाम्=विप्राणाम्, अग्रतः=अग्रे भूत्वा, चरणेन=पदेन, गच्छामि=चलामि । न प्रवहणम्=शकटम्, अधिरुह्य=आरोहणङ्कृत्वा, गच्छामि=यामि । येन=यथा गमनेन, दूरतः=दूरादेव, माम्=शकारम्, प्रेक्ष्य=अवलोक्य, भणिष्यति=कथयिष्यति, एषः=अयम्, सः=असौ, राष्ट्रियस्य=राज्याधिपतेः, श्यालः=पत्निभ्राता, भट्टारकः=धनाध्यक्षः, गच्छति=याति ।

विट—इस तरह विचार करने से भला क्या लाभ ? यदि बगीचे की आड़ लेकर ही हम लोग मुख्य नगर उज्जयिनी पहुँच जाते हैं तो इसमें क्या हर्ज है ?

शकार—ऐसा करने से क्या लाभ होगा ?

विट—ऐसा करने से हम लोगों की कसरत हो जायेगी, गाड़ीवान् और बैलों की थकावट भी दूर हो जायेगी ।

शकार—तो फिर, ऐसा ही करो, बेटे चेट, गाड़ी लेकर आगे बढ़ । अथवा रुक जा, देवता और ब्राह्मण के आगे मैं पैदल ही चलूँगा । नहीं नहीं, मैं तो गाड़ी पर चढकर ही चलूंगा, ताकि दूर से ही लोग मुझे देखकर ही कहेंगे—'यह राजा का साला धनपति आ रहा है ।'

विटः—(स्वगतम्) दुष्करं विषमौषधीकर्त्तुम्। भवतु, एव तावत्। (प्रकाशम्) काणेलीमातः ! एषा वसन्तसेना भवन्तमभिसारयितुमागता।

वसन्तसेना—सन्तं पावं, सन्तं पावं। [शान्तं पापं, शान्तं पापम्।]

शकारः—(सहर्षम्) भावे ! भावे ! मं पवलपुलिशं मणुश्शं वाशुदेवकं ? [भाव ! भाव ! मां प्रवरपुरुषं मनुष्यं वासुदेवकम् ?]

विटः—अथ किम्।

शकारः—तेण हि अपुव्वा शिलि शमाशादिदा, तश्शिं काले मए लोशाइदा, शम्पदं पादेशुं पडिअ पशादेमि। [तेन हि अपूर्वा श्रीः समासादिता, तस्मिन् काले मया रोषिता, साम्प्रतं पादयोः पतित्वा प्रसादयामि।]

विटः—साधु अभिहितम्।

शकारः—एशे पादेशुं पडेमि। (इति वसन्तसेनामुपमृत्य) अत्तिके !

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) विषम्=गरलम्, औषधीकर्त्तुम्=औषधिरूपेण परिणमयितुम्, दुष्करम्=दुःसाध्यम्। भवतु=यातु, एवं तावदित्यवधारणे, (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) कणेलीमातः=पुंश्चलीसुत, एषा=इयं वसन्तसेना, भवन्तम्=श्रीमन्तम्, अभिसारयितुम्=रमणं कर्तुम्, समागता=आगता।

वसन्तसेना—शान्तं पापम्=अवाच्यमेतत्, 'शान्तं पापमनिर्देश्ये' इत्यभिधानात्। अतिशये द्विरुक्तिः।

शकारः—(सहर्षम्=सप्रसन्नम्) भाव=विद्वन्, माम्=शकारम्, प्रवरपुरुषम्=श्रेष्ठजनम्, मनुष्यम्=मानवम्, वासुदेवकम्=वासुदेवोपमम्, स्वेच्छयाऽभिसारयितुमागता।

विटः—अथ किम्=भवतः समीपमेवागता।

शकारः—तेन=तर्हिः, हीति निश्चयेन, अपूर्वा=अभूतपूर्वा, श्रीः=लक्ष्मीः, समासादिता=प्राप्ता, तस्मिन् काले=समये, मया=शकारेण, रोषिता=रोषं गमिता, साम्प्रतम्=अधुना, पादयोः=चरणयोः, पतित्वा=निपत्य, प्रसादयामि=प्रसन्नं करिष्यामि।

विटः—साधु=सुष्ठु, अभिहितम्=कथितम्।

शकारः—एषः=अयं जनः शकारोऽहम्, पादयोः=चरणयोः, पतामि=नियतामि

विट—(**मन ही मन**) जहर को औषधि बनाना बड़ा कठिन है। अच्छा ऐसा हो। (**प्रकट**) हे पुंश्चलीपुत्र, यह वसन्तसेना, छिपकर आपसे मिलने आई है।

वसन्तसेना—हाय, हाय, ऐसा बोलना भी पाप है।

शकार—(**खुश होकर**) मान्यवर, प्रधान पुरुष, मनुष्य, मुझ वासुदेव के पास ?

विट—हाँ, आपके ही पास आई है।

शकार—तब तो यह अपूर्व लक्ष्मी अनायास उपलब्ध हो गई। उस दिन तो इसे मैंने नाखुश कर दिया था आज इसके पैरों पर गिरकर इसे खुश कर लेता हूँ।

विट—बहुत अच्छा।

अम्बिके ! शुणु मम विण्णत्तिं । [एष पादयोः पतामि । मातः ! अम्बिके ! शृणु मम विज्ञप्तिम् ।]

एशे पड़ेमि चलणेशु विशालणेत्ते !
हत्थंजलिं दशणहे ! तव शुद्धदन्ति !
जं तं मए अवकिदं मदणातुलेण
तं खम्मिदाशि वलगत्ति ! तव म्हि दाशे ।। १८ ।।

[एष पतामि चरणयोर्विशालनेत्रे ! हस्ताञ्जलिं दशनखे ! तव शुद्धदन्ति !
यत्तन्मया अपकृतं मदनातुरेण तत् क्षामितासि वरगात्रि ! तवास्मि दासः ॥]

वसन्तसेना—(सक्रोधम्) अवेहि, अणज्जं मन्तेशि । (इति पादेन ताडयति ।) [अपेहि, अनार्यं मन्त्रयसि ।]

शकारः—(सक्रोधम्)

जे चुम्बिदे अम्बिकमादुकेहिं गदे ण देवाणं वि जे पणामं ।
शे पाडिदे पादतलेण मुंडे वणे शिआलेण जधा मुदङ्गे ।। १९ ।।

(इति=एवमुक्त्वा, वसन्तसेनाम्, उपसृत्य=समीपमागत्य) मातः ! अम्बिके=हे जननि, शृणु=आकर्ण्यताम्, मम=शकारस्य, विज्ञप्तिम्=प्रार्थना ।

अन्वयः—हे विशालनेत्रे, एषः, चरणयोः, पतामि, हे शुद्धदन्ति, दशनखे, तव, हस्ताञ्जलिम्, हे वरगात्रि, मदनातुरेण, मया, यत्, तत्, अपकृतम्, तत्, क्षामिता, असि, (अहम्) तव, दासः, अस्मि ।। १८ ।।

एष इति । हे विशालनेत्रे=हे आयतलोचने, एषः=शकारोऽहम्, चरणयोः=पादयोः, पतामि=पतितो भवामि, हे शुद्धदन्ति=हे स्वच्छदशने, दशनखे=दशनखरे, तव चरणयोः=पादयोः, हस्ताञ्जलिम्=करसम्पुटम्, करोमीति शेषः । हे वरगात्रि=हे कोमलाङ्गि, मदनातुरेण=कामपीडितेन, मया=शकारेण, यत् तत्=पूर्वकृतम्, अपकृतम्=अप्रियं कृतम्, तत्=अप्रियकार्यं, क्षामिता=मर्षिता असि, अहम्, तव=वसन्तसेनायाः दासः=सेवकः, अस्मि=भवामि । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ १८ ॥

वसन्तसेना—(सक्रोधम्=सकोपम्) अपेहि=दूरं गच्छ, अनार्यम्=अनर्गलम्, मन्त्रयसि=वदसि । (इति=एवमुक्त्वा, पादेन=चरणेन, ताडयति=अभिघातं करोति ।)

शकार—लो चरणों पर गिरता हूँ (वसन्तसेना के पास जाकर) हे माँ, हे अम्बे, मेरी विनती सुनो—

हे विशाललोचने तेरे पैरों पर मैं गिरता हूँ। हे दशनखमय चरण वाली, हे स्वच्छ दाँतों वाली, मैं तुम्हें हाथ जोड़ता हूँ। हे कोमलाङ्गि, कामातुर होकर मैंने जो पहले तुम्हें अपमानित किया, उसके लिए आज क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ ।। १८ ।।

वसन्तसेना—(गुस्साकर) दूर हट नीच, तुम अनर्गल बक रहे हो। (पैरों से उसे मारती है।)

[यच्चुम्बितमम्बिकामातृकाभिर्गतं न देवानामपि यत् प्रणामम् ।
तत् पातितं पादतलेन मुण्डं वने शृगालेन यथा मृताङ्गम् ।।]

अले थावलआ ! चेडा ! कहिं तुए एशा शमाशादिदा ? [अरे स्थावरक ! चेट ! कस्मिन् त्वया एषा समासादिता ।]

चेटः—भट्टके ! गाम-शअलएहिं लुद्धे लाअमग्गे, तदो चालुदत्तश्श लुक्ख-वाडिआए पवहणं थाविअ, तहिं ओदलिअ, जाव चक्कपलिवट्टिअं कलेमि, ताव एशा पवहणविपज्जाशेण इह आलूढे त्ति तक्केमि । [भट्टक ! ग्रामशकटैः रुद्धे राजमार्गे तदा चारुदत्तस्य वृक्षवाटिकायां प्रवहणं स्थापयित्वा, तस्मिन्नवतीर्य, यावत् चक्रपरिवृत्तिं करोमि, तावदेषा प्रवहणविपर्यासेन इह आरूढेति तर्कयामि ।]

शकारः—कधं पवहणं-विपज्जाशेण आगदा । ण मं अहिशालिदुं । ता

शकारः—(सक्रोधम्=क्रोधेन सहितम्)

अन्वयः—यत्, अम्बिकामातृकाभिः, चुम्बितम्, यत्, देवानाम्, अपि, प्रणामम्, न, गतम्, तत्, मुण्डम्, पादतलेन, पातितम्, यथा, वने, शृगालेन, मृताङ्गम् ।। १९ ।।

यदिति । यत्=मम मुण्डम्, अम्बिकामातृकाभिः=जननीभिः (शकारवचनत्वाद् नात्र पुनरुक्ति दोषः ।) चुम्बितम्=वात्सल्यातिरेकात् चुम्बनं कृतम्, यत्=मम मुण्डम् =मस्तकम्, त्वया पादतलेन=चरणतलेन, तथैव पातितम्=प्रक्षिप्तम्, यथा=येन प्रकारेण, वने=अरण्ये, शृगालेन=जम्बुकेन, मृतस्य=गतप्राणस्य, अङ्गम्=देहम् । अत्रोपमालङ्कारः, उपजातिः वृत्तञ्चेति ।। १९ ।।

अरे चेट, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, त्वया=चेटेन, एषा वसन्तसेना, समासादिता= सम्प्राप्तेति ।

चेटः—भट्टक=स्वामिन्, ग्रामशकटैः=ग्रामीणगोरथैः, रुद्धे=अवरुद्धे, राजमार्गे= नृपाध्वना, तदा=तस्मिन् काले, चारुदत्तस्य वृक्षवाटिकायाम्=उद्याने, प्रवहणम्= शकटम्, स्थापयित्वा, तस्मिन्नवतीर्य=शकटादवतीर्य, चक्रपरिवृत्तिम्=चक्रपरिवर्त्तनम् करोमि, तावत्=एतावदेव काले, एषा=वसन्तसेना, प्रवहणविपर्यासेन=शकटव्यति-क्रमेण, चारुदत्तस्य शकटमिति ज्ञात्वा मम शकटे आरूढा, इति तर्कयामि=अनुमिनोमि ।

शकार—(**क्रुद्ध होकर**) जिस माथे को मेरी माँ ने चूमा, जो सिर कभी देवताओं के आगे भी नहीं झुका, उस माथे को जैसे जंगल में सियार शव के अङ्गों को पैरों से रौंदता है उसी तरह तुमने पैरों से ठुकरा दिया है ।। १९ ।।

अरे, चेट, तू इसे कहाँ से उठा लाया ।

चेट—मालिक, गाँव की गाड़ियों से जब सड़क अवरुद्ध हो गई, उस समय मैंने कुछ देर के लिए अपनी गाड़ी चारुदत्त की वाटिका में खड़ी कर दी और उतर कर उन्हें घुमाने लगा, मैं सोचता हूँ उसी समय धोखे से यह इस गाड़ी पर चढ़ गई होगी ।

ओदल ओदल मम केलकादो पवहणादो। तुमं तं दलिद्दशात्थवाह-पुत्तकं अहिशालेशि, मम केलकाइं गोणाइं वाहेशि। ता ओदल ओदल गब्भदाशि ! ओदल ओदल। [कथं प्रवहणविपर्यासेनागता। न मामभिसारयितुम्। तदवतर अवतर मदीयात् प्रवहणात्। त्वं तं दरिद्रसार्थवाह-पुत्रकमभिसारयसि, मदीयौ गावौ वाहयसि। तदवतर अवतर गर्भदासि ! अवतर अवतर।]

वसन्तसेना—तं अज्जचारुदत्तं अहिसारेसि त्ति जं सच्चं अलंकिदम्हि इमिणा वअणेण। सम्पदं जं भोदु, तं भोदु। [तमार्यचारुदत्तमभिसारयसि इति यत् सत्यम्, अलङ्कृतास्मि अनेन वचनेन। साम्प्रतं यद्भवतु तद्भवतु।]

शकारः—

एदेहिं दे दशणहुप्पलमण्डलेहिं
हत्थेहिं चाडुशद-ताड़ण-लम्पडेहिं।
कड्ढामि दे वलतणुं णिअ-जाणकादो
केशेशु वालि-दइअं वि जहा जडाऊ॥ २०॥

[एताभ्यां ते दशनखोत्पलमण्डलाभ्यां हस्ताभ्यां चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम्।
कर्षामि ते वरतनुं निजयानकात् केशेषु बालिदयितामिव यथा जटायुः॥]

शकारः—गर्भदासी=नीचसम्बोधनमिदम्, अभिसारयितुं=एकान्ते रन्तुम्, अवतर=शकटं परित्यज्य भूमौ गच्छ, अन्यत् सर्वं सुस्पष्टम्।

वसन्तसेना—तम्=पूर्वोक्तम्, चारुदत्तम्=सार्थवाहसुतम्, अभिसारयसि=रन्तुमागतासि, इति=इत्थम्, यत्=यदि, सत्यम्=यथार्थम्, अनेन=पूर्वोक्तेन, वचनेन=कथनेन, अलङ्कृतास्मि=कृतकृत्याऽस्मि। साम्प्रतम्=अधुना, यद् भवतु=यत्किञ्चिदस्तु तद्भवतु।

अन्वयः—दशनखोत्पलमण्डलाभ्याम्, चाटुशतताडनलम्पटाभ्याम्, एताभ्याम्, हस्ताभ्याम्, यथा, जटायुः, बालिदयिताम्, इव, केशेषु, ते वरतनुम्, निजयानकात्, कर्षामि॥ २०॥

एताभ्यामिति। दश=दशसंख्यकानि, नखाः=करोरुहानि, एव उत्पलानाम्=कमलानाम्, मण्डलम्=समूहः, ययोः ताभ्याम्, चाटुशतानि=प्रियवचनशतानि, इव ताडनानि=प्रहाराः तेषु, लम्पटाभ्याम्=कामुकाभ्याम्, एताभ्याम्=पुरोवर्त्तमानाभ्याम्,

---

शकार—तो क्या गाड़ी के फेरबदल से यह आई है। मुझसे मिलने नहीं। तो फिर मेरी गाड़ी से उतर। नीच, मिलने जा रही है उस दरिद्र चारुदत्त से और मेरे बैलों से ढोयी जा रही है। उतर मेरी गाड़ी से, उतर।

वसन्तसेना—'उस आर्य चारुदत्त से रमण करने जा रही हो' यह सुनकर मैं निहाल हो गई। अब जो हो, सो हो।

शकार—मैं दसनख रूपी कमलवाले तथा मीठी मीठी बातों की तरह पीटने में अभ्यस्त अपने हाथों से तुम्हारा बाल पकड़कर गाड़ी से घसीटकर उसी तरह निकालता हूँ जैसे जटायु ने बालि की पत्नी तारा को घसीटा था॥ २०॥

विटः—अग्राह्या मूर्द्धजेष्वेताः स्त्रियो गुणसमन्विताः।
न लताः पल्लवच्छेदमर्हन्त्युपवनोद्भवाः ॥ २१ ॥

तदुत्तिष्ठ त्वम्। अहमेनामवतारयामि। वसन्तसेने! अवतीर्यताम्।

(वसन्तसेना अवतीर्य एकान्ते स्थिता।)

शकारः—(स्वगतम्) जे शे मम वअणावमाणेण तदा लोशग्गी शन्धुक्खिदे, अज्ज एदाए पादप्पहालेण अणेण पज्जलिदे, त शंपदं मालेमि णं। भोदु, एव्वं दाव (प्रकाशम्) भावे! भावे! [**यः स मम वचनापमानेन तदा रोषाग्निः सन्धुक्षितः, अद्य एतया पादप्रहारेणानेन प्रज्वलितः, तत् साम्प्रतं मारयाम्येनाम्। भवतु, एवं तावत्। भाव! भाव!**]

हस्ताभ्याम्=कराभ्याम्, यथा=येन प्रकारेण, जटायुः=गृद्ध्रराजः, बालिदयिताम्=ताराम्, इव=यथा, केशेषु=शिरोरुहेषु, ते=तव, वरतनुम्=कोमलशरीरम्, निजयानकात्=स्वशकटात्, कर्षामि=आकृष्य पतयामि। अत्र रामदयितामिवेति वक्तव्ये बालिदयितागिवेत्यपार्थकम्, एवञ्च ताडनोद्यतयोः करयोः काठिन्यमनुपवर्ण्य कमलकोमलत्वप्रदर्शनं शकारस्य मूर्खत्ववैशिष्टचमेव। ते ते, इव, यथा, अत्रापि पुनरुक्तिः शकारवचनादेव। वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २० ॥

अन्वयः—गुणसमन्विताः, एताः, स्त्रियः, मूर्धजेषु, अग्राह्याः, उपवनोद्भवाः, लताः, पल्लवच्छेदम्, न, अर्हन्ति ॥ २१ ॥

अग्राह्या इति। गुणसमन्विताः=विनयौदार्यादिगुणसम्वलिताः, एताः=वसन्तसेनातुल्याः स्त्रियः=नार्यः, मूर्धजेषु=केशेषु, अग्राह्याः=ग्रहीतुमयोग्याः भवन्ति, उपवनोद्भवाः=उद्यानोत्पन्नाः, लताः=वल्ल्यः, पल्लवछेदम्=किसलयभङ्गम्, न=नहि, अर्हन्ति=योग्याः न भवन्ति। अत्र दृष्टान्तालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ २१ ॥

तत्=तस्मात्, त्वम्=भवान्, उत्तिष्ठ=उत्थितो भव, अहम्=विटः, एनाम्=वसन्तसेनाम्, अवतारयामि=शकटात् अधः आनयामि।

(वसन्तसेना, अवतीर्य=शकटादवतीर्य, एकान्ते=जनशून्ये, स्थिता=उपस्थितेति।)

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) वचनस्य=अनुनयरूपकथनस्य, अपमानेन=अनादरेण, मम प्रार्थनायाः तिरस्कारेण, तदा=चारुदत्ताभिसरणकाले, मम=शकारस्य रोषाग्निः=कोपानलः, सन्धुक्षितः=प्रदीप्तः, सः=रोषाग्निः, पादेन=चरणेन,

---

विट—ये गुणवती स्त्रियाँ ऐसे घसीटी नहीं जाती, फुलवाड़ी की लताओं के पत्ते तोड़े नहीं जाते ॥ २१ ॥

तो फिर तुम उतरो, मैं इसे गाड़ी से उतारता हूँ। वसन्तसेने, उतरिये।

(वसन्तसेना गाड़ी से उतर कर एक ओर खड़ी हो जाती है।)

शकार—(मन ही मन) पहले जो इसके तिरस्कार से मेरी कोपाग्नि जली थी, आज इसके पैरों की ठोकर से दहक उठी है। तो अब इसे मारूँगा। अच्छा ठीक इस तरह, (प्रकट) हे विद्वन्!

जदिच्छशे लम्बदशा-विशालं पाबालअं शुत्तशदेहिं जुत्तम्।
मंशं च खादुं तह तुट्ठि कादुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू त्ति ॥ २२ ॥
[यदिच्छसि लम्बदशाविशालं प्रावारकं सूत्रशतैर्युक्तम्।
मांसञ्च खादितुं तथा तुष्टिं कर्तुं चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू इति ॥]

विटः-- ततः किम् ?

शकारः—मम पिअं कलेहि ! [मम प्रियं कुरु।]

विटः—बाढं करोमि, वर्जयित्वा त्वकार्यम्।

शकारः—भावे ! अकज्जाह गन्धे वि णत्थि, लक्खशी कावि णत्थि।
[भाव ! अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति, राक्षसी क्वापि नास्ति।]

विटः—उच्यतां तर्हि।

प्रहारः=आघातः, तेन प्रज्वलितः=ज्वालाभिः ज्वलितः। तत्=तेन हेतुना, साम्प्रतम् =अधुना, एनाम्=वसन्तसेनाम्, मारयामि=हन्मि। भवतु=यातु, एवम्=मम कथनानुरूपम्। भाव=हें विद्वन्।

अन्वयः—यदि, सूत्रशतैः, युक्तम्, लम्बदशाविशालम्, प्रावारकम्, तथा, चुहू, चुहू, चुक्कू, चुहू, इति (ध्वनिम् कुर्वन्) मांसम्, खादितुम्, तुष्टिम्, च, कर्त्तुम्, इच्छसि।

यदीति। यदि=चेत्, सूत्रशतैः=तन्तुसमूहैः, युक्तम्=सम्मिलितम्, लम्बदशा =दीर्घवस्त्रान्तैः, विशालम्=विस्तृतम्, प्रावारकम्=उत्तरीकम्, तथा 'चुहू चुहू चुक्कु चुहू चुहू' इति शब्दं कुर्वन्, मांसम्=पललम्, खादितुम्=भोक्तुम्, तुष्टिम्=तोषम्, च=अपि, कर्त्तुम्=सम्पादयितुम्, इच्छसि=अभिलाषां करोसि। उपजातिः वृत्तम्।

विटः—ततः=तर्हि, किम्=मया किं करणीयम् ?

शकारः—मम=शकारस्य, प्रियम्=वाञ्छितम्, कुरु=विधेहि।

विटः—वाढम्=ध्रुवम्, करोमि=विदधामि, अकार्यम्=अकरणीयम्, वर्जयित्वा =विहाय।

शकारः—भाव=हे विद्वन्, अकार्यस्य=अनुचितकर्मस्य, गन्धोऽपि=लेशोऽपि, नास्ति=न विद्यते।

विटः—उच्यताम्=कथ्यताम्, तर्हि=तदा।

यदि तुम रंग-विरंगे सूतों से विनिर्मित, लम्बी किनारी वाले दुपट्टे पुरस्कार में चाहते हो, चुहू, चुहू, चुक्कु, चुहू, आवाज के साथ मांस खाना चाहते हो ॥ २२ ॥

विट—तो मुझे क्या करना होगा ?

शकार—मेरे कथनानुसार करो।

विट—अवश्य करूँगा, पर दुष्कर्म को छोड़कर।

शकार—महाशय, अपकर्म की तो इसमें गन्ध भी नहीं है। वह कोई राक्षसी थोड़े ही है।

विट—तब कहो।

शकारः – मालेहि वसन्तशणिअं । [**मारय वसन्तसेनाम् ।**]

विटः—(कर्णौ पिधाय)

बालां स्त्रियञ्च नगरस्य विभूषणञ्च वैश्यामवेश-सदृश-प्रणयोपचाराम् ।
एनामनागसमहं यदि मारयामि केनोडुपेन परलोकनदीं तरिष्ये ॥ २३ ॥

शकारः—अहं ते भेड़क दइश्शं । अण्णं च विवित्ते उज्जाणे इध मालन्तं को तुमं पेक्खिश्शदि । [**अहं ते उडुपं दास्यामि । अन्यच्च विविक्ते उद्याने इह मारयन्तं कस्त्वां प्रेक्षिष्यते ?**]

विटः—पश्यन्ति मां दश दिशो, वनदेवताश्च,
चन्द्रश्च दीप्तिकिरणश्च दिवाकरोऽयम् ।

शकारः—मारय=हन, वसन्तसेनाम् ।

विटः—(कर्णो=श्रवणौ, पिधाय=आच्छाद्य)

अन्वयः—यदि, अहम्, नगरस्य, विभूषणम्, अवेशसदृशप्रणयोपचाराम्, वैश्याम्, बालाम्, अनागसम्, एनाम्, स्त्रियम्, घातयामि, केन, उडुपेन, परलोकनदीं तरिष्ये ॥ २३ ॥

बालामिति । यदि=चेत्, अहम्=विटः, नगरस्य=पुरः, विभूषणम्=अलङ्करणम् अवेशसदृशः=गणिकाजनविपरीतः, प्रणयस्य=अनुरागस्य, उपचारः=व्यवहारः, यस्याः ताम्, वेश्याम्=वाराङ्गनाम्, बालाम्=युवतीम्, अनागसम्=निरपराधाम्, एनाम्=उपस्थिताम्, स्त्रियम्=नारीम्, घातयामि=मारयामि, तर्हि, केन उडुपेन=प्लवेन, परलोकनदीम्=वैतरणीम्, तरिष्ये=तरिष्यामि । निरङ्गरूपकम्, वसन्ततिलका वृत्तञ्चेति ॥ २३ ॥

शकारः—अहम्=शकारः, ते=तुभ्यम्, उडुपम्=तरणीम्, दास्यामि=दातस्यामि, अन्यच्च=अपरञ्च, विविक्ते=निर्जने, उद्याने=वाटिकायाम्, इह=अस्मिन् स्थाने, मारयन्तम्=घातयन्तम्, कः=जनः, त्वाम्=विटम्, प्रेक्षिष्यते=द्रक्ष्यति ।

अन्वयः—सुकृतिदुष्कृतिसाक्षिभूताः, दशदिशः, वनदेवताः, च, चन्द्रः, च, दीप्त-

---

शकार— वसन्तसेना को मार दो ।

विट—(**कान मूँदकर**)

यदि मैं इस उज्जयिनी के अलंकार, कुलललना की तरह व्यवहार करने वाली निरपराध इस युवा वेश्या की मैं हत्या कर दूँ तो फिर परलोक की वैतरणी को किस नाव से पार करूँगा ? ॥ २३ ॥

शकार—वैतरणी पार करने के लिए मैं तुम्हें नौका दूंगा । दूसरी वात यह है कि इस निर्जन फुलवाड़ी में तुम्हें देखेगा ही कौन ?

विट—पाप और पुण्य की साक्षी ये दिशाएँ देखेंगी, वनदेवता, चन्द्रमा, तीक्ष्ण-

धर्मानिलौ च गगनञ्च तथान्तरात्मा
भूमिस्तथा सुकृति-दुष्कृति-साक्षिभूताः ॥ २४ ॥

शकारः—तेण हि पडन्तोवालिदं कटुअ मालेहि । [**तेन हि पटान्तापवारितां कृत्वा मारय ।**]

विटः—मूर्खं ! अपध्वस्तोऽसि ।

शकारः—अधम्मभीलू एशे बुड्ढकोले । भोदु, थावलअं चेडं अणुणेमि । पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! शोण्णखडआइं दइश्शं [**अधर्मभीरुरेष वृद्धकोलः । भवतु, स्थावरकं चेटमनुनयामि । पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! सुवर्णकटकानि दास्यामि ।**]

चेटः—अहं पि पहिलिश्शं । [**अहमपि परिधास्यामि ।**]

किरणः, अयम्, दिवाकरः, च, धर्मानिलौ, च, गगनम्, च, तथा, अन्तरात्मा, तथा भूमिः, माम्, पश्यन्ति ॥ २४ ॥

पश्यन्तीति । सुकृतिः=पुण्यः, दुष्कृतिः=पापम् तयोः साक्षिभूताः=साक्षात् द्रष्टारः, लिङ्गवचनभेदेनेदं विशेषणं सर्वत्रैव योज्यम्, दशदिशः=दशसंख्यका आशाः, च=पुनः, वनदेवता=अरण्याधिष्ठातृदेव्यश्च, चन्द्रः=सुधाकरः, च=पुनः, दीप्तकिरणः=प्रदीप्तमयूखाः, अयम्=एषः, दिवाकरः=सूर्यः, च, धर्मानिलौ=पुण्यपवनौ, च गगनम्=आकाशम्, च=तथा, अन्तरात्मा=हृदयस्थपरमात्मा, तथा भूमिः=पृथ्वी, माम्=विटम् पश्यन्ति=अवलोकयन्ति । तुल्ययोगिताऽलङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तञ्चेति ॥ २४ ॥

शकारः—तेन=तस्मात्, हि=यतः, पटान्तापवारिताम्=वस्त्राञ्चलेन समावृत्ताम्, कृत्वा=विधाय, मारय=जहि ।

विटः—मूर्खं=हे अज्ञ, अपध्वस्तोऽसि=अधः पतितोऽसि ।

शकारः—अधर्मभीरुः=पापशङ्कितः, एषः=अयम्, वृद्धकोलः=जरठशूकरः । भवतु=तिष्ठतु, चेटम् अनुनयामि=अनुनयं करोमि, पुत्रक=हे सुत, सुवर्णकटकानि=कनकाभूषणानि, दास्यामि=प्रदानं करिष्यामि ।

चेटः—अहमपि=चेटोऽपि, परिधास्यामि=धारणं करिष्यामि ।

किरणवाले ये दिवाकर, धर्म, वायु, आकाश और भूमि देखेगी और सबसे अधिक देखेंगी मेरी अन्तरात्मा ॥ २४ ॥

शकार—तो फिर, कपड़े से ढककर इसे मारो ।

विट—मूर्खं, तुम पतित हो गये हो ।

शकार—यह बूढा सुअर धर्म से डरता है । अच्छा तो इस काम के लिए मैं चेट से अनुनय करता हूँ । बेटे ! स्थावरक ! चेट ! देख मैं तुम्हें सोने का कंगन दूंगा ।

चेट—मैं उसे पहन लूंगा ।

शकारः—शोवण्णं दे पीढके कालइश्शं । [सौवर्णं ते पीठकं कारयिष्यामि ।]

चेटः—अहं उवविशिश्शं । [अहमपि उपवेक्ष्यामि ।]

शकारः—शव्वं दे उच्छिट्टं दइश्शं । [सर्वं ते उच्छिष्टं दास्यामि ।]

चेटः—अहं पि खाइश्शं । [अहमपि खादिष्यामि ।]

शकारः—शव्वचेडाणं महत्तलकं कलइश्शं । [सर्वचेटानां महत्तरकं कारयिष्यामि ।]

चेटः—भट्टके ! हुविश्शं । [भट्टक ! भविष्यामि ।]

शकारः—ता मण्णेहि मम वअणं । [तन्मन्यस्व मम वचनम् ।]

चेटः—भट्टके ! शव्वं कलेमि, वज्जिअ अकज्जं । [भट्टक ! सर्वं करोमि वर्जयित्वा अकार्यम् ।]

शकारः—अकज्जाह गन्धे वि णत्थि । [अकार्यस्य गन्धोऽपि नास्ति ।]

चेटः—भणादु भट्टके । [भणतु भट्टकः ।]

शकारः—सौवर्णम्=सुवर्णनिर्मितम्, ते=तुभ्यम्, पीठकम्=आसनम्, कारयिष्यामि ।

चेटः—अहमपि=चेटोऽपि, उपवेक्ष्यामि=उपवेशनं करिष्यामि ।

शकारः—सर्वम्=सकलम्, ते=तुभ्यम्, उच्छिष्टम्=अवशिष्टं भोजनं दास्यामि ।

चेटः—अहमपि स्वादिष्यामि=भोजनं करिष्यामि ।

शकारः—सर्वचेटानाम्=चेटानां मध्ये, महत्तरकम्=सर्वप्रधानम्, करिष्यामि ।

चेटः—भट्टकः=स्वामी, भविष्यामि ।

शकारः—तत्=तस्मात्, मन्यस्व मम वचनम्=मम आदेशपालनं कुरु ।

चेटः—भट्टक=स्वामिन्, सर्वम्=निखिलम्, करोमि, अकार्यम्=दुष्टकर्मम्, वर्जयित्वा=त्यक्त्वा ।

शकारः—अकार्यस्य=अकरणीयस्य, गन्धोऽपि=लेशोऽपि, नास्ति=न विद्यते ।

चेटः—भणतु=कथयतु, भट्टकः=स्वामी ।

शकार—बैठने के लिए मैं तुम्हें सोने का आसन बनवा दूंगा ।

चेट—मैं आराम से उस पर बैठूंगा ।

शकार—मैं बचा खुचा सारा भोजन तुम्हें ही दूंगा ।

चेट—मैं खूब खाऊँगा ।

शकार—मैं तुम्हें सभी चेटों का मुखिया बना दूंगा ।

चेट—तब तो मैं सबका मालिक बन जाऊँगा ।

शकार—तो फिर, मेरी बात मान लो ।

चेट—मालिक, मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, केवल कोई दुष्कर्म नहीं करूँगा ।

शकार—इसमें गलत काम की गन्ध भी नहीं है ।

चेट—तो फिर बतलाओ मालिक ।

शकारः—एणं वशन्तशेणिअं मालेहि। [**एनां वसन्तसेनां मारय।**]

चेटः—पशीददु भट्टके ! इअं मए अणज्जेण अज्जा पवहणपलिवत्तणेण आणीदा। [**प्रसीदतु भट्टकः इयं मया अनार्येण आर्या प्रवहणपरिवर्त्तनेनानीता।**]

शकारः—अले चेडा ! तवावि ण पहवामि ? [**अरे चेट ! तवापि न प्रभवामि ?**]

चेटः—पहवदि भट्टके शलीलाह, ण चालित्ताह। ता पशीददु भट्टके। भाआमि क्खु अहं। [**प्रभवति भट्टकः शरीरस्य, न चारित्रस्य। तत् प्रसीदतु भट्टकः। बिभेमि खलु अहम्।**]

शकारः—तुमं मम चेडे भविअ कश्श भाआशि ? [**त्वं मम चेटो भूत्वा कस्माद् बिभेषि ?**]

चेटः—भट्टके ! पललोअश्श। [**भट्टक ! परलोकात्।**]

शकारः—के शे पललोए। [**कः स परलोकः ?**]

शकारः—एनाम्=पुरोवर्त्तिनाम्, वसन्तसेनाम्=एतादाख्यगणिकाम्, मारय=हन।

चेटः—प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु, भट्टकः=स्वामी, इयम्=एषा, मया=चेटेन, अनार्येण=नीचेन, आर्या=वसन्तसेना, प्रवहणपरिवर्त्तनेन=शकटविपर्ययेन, आनीता=समानीता।

शकारः—अरे चेट=रे दास, तवापि=नीचचेटस्यापि, न प्रभवामि=न प्रभुर्भवामि, त्वयि, अपि ममाधिपत्यं नास्तीति भावः।

चेटः—भट्टकः=स्वामी, शरीरस्य=देहस्य, प्रभवति=समर्थो भवति, न चारित्रस्य=न व्यवहारस्य। तत्=तस्मात्. प्रसीदतु=प्रसन्नो भवतु, अहम्=चेटः, खलु=निश्चयेन, बिभेमि=भीतोऽस्मि।

शकारः—त्वम्=भवान्, मम=शकारस्य, चेटो भूत्वा=सेवको भूत्वा, कस्मात्=पुरुषात्, बिभेषि=भयभीतोऽसि।

चेटः—भट्टक=स्वामिन्, परलोकात्=लोकान्तरात्।

शकार—इस वसन्तसेना को समाप्त कर दो।

चेट—इसके लिए मुझे माफ कर दो मालिक। मैं ही पापी हूँ, गाड़ी बदल जाने के कारण मैंने ही आर्या वसन्तसेना को इस स्थिति में ला दिया है।

शकार—अरे सेवक, क्या तुम पर भी मेरा अधिकार नहीं है ?

चेट—है क्यों नहीं देह पर ही, चारित्र पर नहीं। आप रंज न हो, निश्चय ही मैं डरता हूँ।

शकार—रे तुम मेरा नौकर होकर डरते किससे हो ?

चेट—मालिक, मैं परलोक से डरता हूँ।

चेटः—भट्टके ! शुकिद-दुक्किदश्श पलिणामे । [**भट्टक ! सुकृतदुष्कृतस्य परिणामः ?**]

शकारः—केलिशे शुकिदश्श पलिणामे । [**कीदृशः सुकृतस्य परिणामः ।**]

चेटः—जादिशे भट्टके बहु-शोवण्ण-मंडिदे । [**यादृशो भट्टकः बहुसुवर्णमण्डितः ।**]

शकारः—दुक्किदश्श केलिशे ? [**दुष्कृतस्य कीदृशः ?**]

चेटः—जादिशे हग्गे पलपिण्डभक्खके भूदे । ता, अकज्जं ण कलइश्शं [**यादृशोऽहं परपिण्डभक्षको भूतः । तदकार्यं न करिष्यामि ।**]

शकारः—अले ! ण मालिश्शशि ? । (इति बहुविधं ताडयति ।) [**अरे ! न मारयिष्यसि ?**]

चेटः—पिट्टयदु भट्टके, मालेदु भट्टके; अकज्जं ण कलइश्शं । [**ताडयतु भट्टकः मारयतु भट्टकः, अकार्यं न करिष्यामि ।**]

शकारः—कः=किन्नामकः, सः=असौ, परलोकः=लोकान्तरः येन भीतोऽसि ?

चेटः—भट्टक=स्वामिन्, सुकृत-दुष्कृतस्य=धर्माधर्मयोः, परिणामः=फलम् ।

शकारः—कीदृशः=किमाकारः, सुकृतस्य=पुण्यस्य, परिणामः=फलम् ?

चेटः—यादृशः=यत्प्रकारकः, भट्टकः=स्वामी, बहुसुवर्णमण्डितः=समृद्धोऽसि ।

शकारः—दुष्कृतस्य=दुष्कर्मस्य, कीदृशः=किंप्रकारकः फलं भवति ?

चेटः—यादृशः अहम्=चेटः, परेषाम्=अन्येषाम्, पिण्डस्य=ग्रासस्य, भक्षकः=भोक्ता, भूतः । तस्मात्, अकार्यम्=दुष्कर्मम्, न=नहि, करिष्यामि=सम्पादयिष्यामि ।

शकारः—अरे न मारयिष्यसि=न हनिष्यसि । (इति=एवमुक्त्वा, बहुविधम्=नानारूपेण, ताडयति=आघातं करोति ।)

चेटः—भट्टकः=स्वामी, ताडयतु=प्रहरतु, मारयतु=हन्तु, अकार्यम्=दुष्कृत्यम्, न करिष्यामि=न संम्पादयिष्यामि ।

शकार—यह परलोक क्या है ?

चेट—मालिक, पाप और पुण्य का फल ही तो परलोक है ।

शकार—पुण्य का फल क्या होता है ?

चेट—आपकी तरह सम्पन्न होना ही पुण्य का फल है ।

शकार—और पाप का फल ?

चेट—मेरे जैसा आदमी जो दूसरों के टुकड़ों पर पलता हो, इसलिए अब और अधिक कुकर्म नहीं करूँगा ।

शकार—अरे, तो तुम इसे नहीं मारोगे ? (**अनेक प्रकार से पीटता है ।**)

चेट—चाहे आप मुझे पीटिए, जान से मार दीजिए, मैं ऐसा कुकर्म नहीं करूँगा ।

जेण म्हि गब्भदाशे विणिम्मिदे भाअधेअदोशेहिं।
अहिअं च ण कीणिश्शं तेण अकज्जं पलिहलामि ॥ २५ ॥
[येनास्मि गर्भदासो विनिर्मितो भागधेयदोषैः।
अधिकञ्च न क्रीणिष्यामि तेनाकार्यं परिहरामि ॥]

वसन्तसेना—भाव सरणागद म्हि। [भाव! शरणागतास्मि।]

विटः—काणेलीमातः मर्षय मर्षय। साधु स्थावरक! साधु।

अप्येष नाम परिभूतदशो दरिद्रः
प्रेष्यः परत्र फलमिच्छति नास्य भर्त्ता।
तस्मादमी कथमिवाद्य न यान्ति नाशं
ये वर्द्धयन्त्यसदृशं सदृशं त्यजन्ति ॥ २६ ॥

अन्वयः—येन, भागधेयदोषैः, गर्भदासः, विनिर्मितः, अस्मि। तेन, अधिकम्, न, क्रीणिष्यामि, अकार्यम्, च, परिहरामि ॥ २५ ॥

येनेति। येन=येन हेतुना, भागधेयदोषैः=पापपरिणामैः, गर्भदासः=आजन्मनः सेवकः, विनिर्मितः=कृतः अस्मि। तेन हेतुना, अधिकम्=अतोऽधिकम्, न=नहि, क्रीणिष्यामि=अर्जयिष्यामि, अकार्यम्=अनुचितकर्मम्, च=पुनः, परिहरामि= त्यजामि। आर्या जातिः ॥ २५ ॥

वसन्तसेना—भाव=हे विद्वन्, शरणागताऽस्मि=अभिपन्नाऽस्मि।

विटः—मर्षय मर्षय=क्षमां कुरु। साधु=धन्योऽसि, स्थावरक साधु=धन्योऽसि।

अन्वयः—परभूतदशः, दरिद्रः, प्रेष्यः, अपि, एषः, परत्र, फलं, नाम, इच्छति, अस्य, भर्त्ता, न, तस्मात्, ये, असदृशम्, वर्धयन्ति, सदृशम्, त्यजन्ति। अमी, अद्य, कथमिव, नाश, न, यान्ति ॥ २६ ॥

अयीति। परिभूतदशः=विपन्नावस्थः, दरिद्रः=अकिञ्चनः, प्रेष्यः=दासः, अपि=चेत्, एषः=पुरोवर्त्तमानः, परत्र=परलोके, फलम्=परिणामम्, नाम=इति सम्भावनायाम्, इच्छति=अभिलषति, किन्तु अस्य=सेवकस्य, भर्त्ता=स्वामी, न= परत्रफलं नेच्छति, तस्मात्=कारणविशेषात्, ये=जनाः, असदृशम्=अकर्त्तव्यम्,

---

पूर्वजन्म में किए गये पापों के कारण ही मेरा जन्म दास कुल में हुआ है। अब वसन्तसेना को मार कर और अधिक पाप बटोरना नहीं चाहूँगा। दुष्कर्म नहीं करूँगा ॥ २५ ॥

वसन्तसेना—भाव, मैं शरणागत हूँ।

विट—पुंश्चलीपुत्र, इसे माफ कर दो। धन्य रे चेट, धन्य।

यह दास दरिद्र है, दयनीय है, फिर भी परलोक के फल की इच्छा करता है, किन्तु इसके मालिक को इसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। तो फिर जो उचित काम छोड़कर पापों का पहाड़ बनाते रहते हैं, उनका इसी क्षण विनाश क्यों नहीं हो जाता ॥ २६ ॥

अपि च—

रन्ध्रानुसारी विषमः कृतान्तो यदस्य दास्यं तव चेश्वरत्वम् ।
श्रियं त्वदीयां यदयं न भुङ्क्ते यदेतदाज्ञां न भवान् करोति ॥ २७ ॥

शकारः—(स्वगतम्) अधम्मभीलुए बुडूढखोडे, पललोअभीलू एशे गब्भदाशे। हग्गे लट्टिअशाले कश्श भाआमि वल-पुलिश-मणुश्शे ? (प्रकाशम्) अले गब्भदाशे ! चेडे ! गच्छ तुमं। ओवलके पविशिअ वीशन्ते एअन्ते चिट्ठ। [**अधर्मभीरुको वृद्धश्रृगालः, परलोकभीरुरेष गर्भदासः । अहं राष्ट्रिय-श्यालः कस्माद्बिभेमि वर-पुरुष-मनुष्यः ? अरे गर्भदास ! चेट ! गच्छ त्वम्, अपवारके प्रविश्य विश्रान्त एकान्ते तिष्ठ ।**]

वर्धयन्ति=सञ्चितं कुर्वन्ति, सदृशम्=समीचीनम्, त्यजन्ति=परित्यागं कुर्वन्ति, अमी=शकारादयः कुकर्मवर्धकाः, अद्य=इदानीमेव, कथमिव=किमर्थम्, नाशम्=मृत्युम्, न=नहिं, यान्ति=व्रजन्ति। अत्र परिसंख्या, अप्रस्तुतप्रशंसा, विशेषोक्ति-रलङ्काराः, वसन्ततिलकावृत्तम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—कृतान्तः, रन्ध्रानुसारी, विषमः, यत्, अस्य, दास्यम्, तव, च, ईश्वर-त्वम्। यत्, अयम्, त्वदीयाम्, श्रियम्, न, भुङ्क्ते, यत्, भवान्, एतदाज्ञाम्, न, करोति ॥ २७ ॥

रन्ध्रेति। कृतान्तः=दैवम्, रन्ध्रम्=छिद्रम्, अनुसरति=अनुगच्छतीति रन्धानु-सारी=छिद्रान्वेषी, विषमः=विपरीतः, यत्=यस्मात्, अस्य=स्थावरकस्य, दास्यम्=दासता, तव=भवतः शकारस्य, च=पुनः, ईश्वरत्वम्=प्रभुत्वम्, यत्=यस्मात्, अयं=स्थावरकः, त्वदीयाम्=त्वत्सम्बन्धिनीम्, श्रियम्=सम्पदाम्, न=नहि, भुङ्क्ते=सेवते, यत्=यस्मात्, भवान्=शकारः, एतस्य=भृत्यस्य, आज्ञाम्=आदेशम्, न=नहि, करोति=विदधाति। अत्र समुच्चयः काव्यलिङ्गश्चालङ्कारः। उपजातिर्वृत्तम् ॥ २७ ॥

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अधर्मभीरुकः=पापात्त्रस्तः, वृद्धश्रृगालः=जीर्णजम्बुकोऽयम् विटः, परलोकभीरुः=परलोकाद्भयग्रस्तः, एषः=अयम्, गर्भदासः=आजन्मनः सेवकः, अहम्=शकारः, राष्ट्रियश्यालः=मम भगिनीपतिः राजा, कस्मात्=पुरुषात्, बिभेमि=भयं करोमि। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) गच्छ=याहि

और भी—भाग्य भी विपरीत ही करता है, वह छिद्रान्वेषी है, अन्यथा यह धार्मिक चेट नौकर और पापी शकार मालिक कैसे बन गया। और यह चेट शकार की सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर पाता और शकार जिसे चेट का दास होना चाहिए था, उसका हुक्म नहीं मानता ॥ २७ ॥

शकार—(मन ही मन) यह बूढा सियार विट, पाप से डरता है। और चेट परलोक से भय खाता है किन्तु मैं तो प्रधान पुरुष हूँ, राजा का साला हूँ, मुझे किसका डर है ? (प्रकट) अरे ओ नीच सेवक जा यहाँ से भाग जा और किसी एकान्त कुंज में विश्राम कर।

चेटः—जं भट्टके आणवेदि। (वसन्तसेनामुपसृत्य) अज्जए ! एत्तिके मे विहवे। (इति निष्क्रान्तः।) [**यद्भट्टक आज्ञापयति। आर्ये ! एतावान् मे विभवः।**]

शकारः—(परिकरं बध्नन्) चिट्ठ वशन्तशेणिए ! चिट्ठ। मालइश्शं। [**तिष्ठ वसन्तसेने ! तिष्ठ, मारयिष्यामि।**]

विटः—आः ! ममाग्रतो व्यापादयिष्यसि ? (इति गले गृह्णाति।)

शकारः—(भूमौ पतति।) भावे भट्टकं मालेदि। (इति मोहं नाटयति, चेतनां लब्ध्वा) [**भावो भट्टकं मारयति।**]

शव्वकालं मए पुट्टे मंशेण अ घिएण अ।
अज्ज कज्जे शमुप्पण्णे जादे मे वैलिए कधं॥ २८॥

[**सर्वकालं मया पुष्टो मांसेन च घृतेन च।**
अद्य कार्ये समुत्पन्ने जातो मे वैरिकः कथम्॥]

त्वम्=चेटः, अपवारके=गुप्तस्थाने, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, विश्रान्तः=श्रमापनोदनार्थम्, एकान्ते=निर्जनस्थाने तिष्ठ=प्रतीक्षस्व।

चेटः—यत्=यथा, भट्टकः=स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति (वसन्तसेनामुपगम्य=समीपं गत्वा) आर्ये=मान्ये, एतावान्=आत्मना तवानिष्टाकरणमात्रकः, विभवः=सामर्थ्यम्।

शकारः—(परिकरम्=कटिबन्धम्, बध्नन्) तिष्ठ=क्षणं प्रतीक्ष, वसन्तसेने मारयिष्यामि=व्यापादयिष्यामि।

विटः—आः=हन्त, मम=विटस्य, अग्रतः=सन्मुखे एव, व्यापादयिष्यसि=मारयिष्यसि। (इति=एवमुक्त्वा, गले=कण्ठे, गृह्णणं करोति।)

शकारः—(भूमौ=पृथिव्याम्, पतति=स्खलति) भाव=विद्वन्, भट्टकम्=स्वामिनम्, मारयति=घातयति। (इति=इत्थमुक्त्वा, मोहम्=अचैतन्यम्, नाटयति=अभिनयति। पुनः चेतनाम्=अमूर्च्छाम्, संज्ञां वा, लब्ध्वा=प्राप्य।)

अन्वयः—सर्वकालम्, मया, मांसेन, च, घृतेन, च, पुष्टः, अद्य, कार्ये, समुत्पन्ने, मे, वैरी, कथम्, जातः ?॥ २८॥

सर्वकालमिति। सर्वकालम्=सततम्, मया=शकारेण, मांसेन=पिशितेन,

चेट—मालिक जैसा कहें। (**वसन्तसेना के पास जाकर**) आर्ये, तुम्हारी रक्षा के लिए मुझमें इतनी ही ताकत है। (**निकल जाता है।**)

शकार—(**फेंटा कसते हुए**) रुको, वसन्तसेने रुको, मैं ही तुम्हें मारूँगा।

विट—अरे, तो क्या मेरे सामने ही मारोगे ? (**गर्दन पकड़ लेता है।**)

शकार—(**धरती पर गिर जाता है।**) विद्वन्, मालिक को मारते हो। (**अचेत हो जाता है, फिर होश में आकर**)

सदा मांस और घी खिलाकर मैंने तुम्हारा पालन किया है किन्तु, आज जब तुमसे काम पड़ा तो तुम हमारे शत्रु कैसे बन गए ?॥ २८॥

(विचिन्त्य) भोदु, लद्धे मए उवाए। दिण्णा बड्ढखोडेण शिरश्चालणशण्णा ता एदं पेशिअ वशन्तशेणिअं मालइश्शं। एव्वं दाव। (प्रकाशम्) भावे ! जं तुमं मए भणिदे, तं कधं हग्गे एव्वं वड्ढकेहिं गल्लकप्पमाणेहिं कुलेहि जादे अकज्जं कलेमि ?। एव्वं एदं अंगीकलावेदुं मए भणिदं। [भवतु, लब्धो मया उपायः। दत्ता वृद्धश्रृगालेन शिरश्चालनसञ्ज्ञा, तदेतं प्रेष्य वसन्तसेनां मारयिष्यामि। एवं तावत्। भाव ! यत् त्वं मया भणितः, तत् कथमहमेवं बृहत्तरैः गल्लकप्रमाणैः कुलैर्जातोऽकार्यं करोमि ? एवमेतदङ्गीकारयितुं मया भणितम्।]

विटः—किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥ २९ ॥

च=पुनः घृतेन=सर्पिषा, च, पुष्टः=शक्तिसम्पन्न कृतः, किन्तु, अद्य=अस्मिन् दिने, कार्ये=अवसरे, समुत्पन्ने=समागते, मे=मम शकारस्य, वैरी=रिपुः, कथम्=केन कारणेन, जातः=बभूव। पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ २८ ॥

(विचिन्त्य=क्षणं विचार्य) भवतु=यातु, लब्धः=प्राप्तः, मया=शकारेण, उपायः=युक्तिः, दत्ता=कृता, वृद्धश्रृगालेन=जर्जरजम्बुकेन, शिरश्चालनसंज्ञा=उत्तमाङ्गस्य कम्पनेन सङ्केतः तत्=तस्मात्, एतम्=अमुम्, प्रेष्य=अन्यत्र सञ्चाल्य, वसन्तसेनाम्, मारयिष्यामि=व्यापादयिष्यामि। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्,) भाव=हे पण्डित, यत्=यथा, त्वम्=भवान्, मया=शकारेण, भणितः=कथितः, तत् कथम्=केन प्रकारेण, अहम्=शकारः, एवम्=अनेन प्रकारेण, बृहत्तरैः=महत्तरैः, कुलैः=वंशैः, जातः=समुत्पन्नः, गल्लर्कप्रमाणैः=कुक्कुरोपमैः, अकार्यम्=अनुचितकर्मम्, करोमि=विदधामि। एतत्=वसन्तसेनाहत्यारूपम्, निषिद्धकर्मम्, अङ्गीकारयितुम्=स्वीकारयितुम्, मया=शकारेण, भणितम्=कथितम्।

अन्वयः—कुलेन, उपदिष्टेन, किम् ? अत्र, शीलम्, एव, कारणम्, सुक्षेत्रे, कण्टकिद्रुमाः, सुतराम्, स्फीताः, भवन्ति ॥ २९ ॥

किमिति। कुलेन=वंशेन, उपदिष्टेन=कथितेन, किम्=न किमपीत्यर्थः, यतः

(**कुछ सोचकर**) अच्छा तो अब मुझे उपाय सूझ गया। इस बूढे सियार ने शिर हिलाकर इशारा कर दिया है, तो पहले इसी को यहाँ से हटाकर तब वसन्तसेना को मारूँगा। तो ऐसा करूँ। (**प्रकट**) अरे ओ पण्डित, मैंने तुमसे जो कुछ कहा उस पर तुमने सोचा। जरा विचारो तो, ऊँच कुत्ते की तरह कुल में जन्म लेकर भला मैं ऐसा कुकर्म कैसे करूँगा ? यह सब तो मैंने केवल उसे स्वीकार कराने के लिए कहा था।

विट—अच्छाई के लिए, अच्छे खानदान में जन्म लेना कोई जरूरी नहीं है। इसमें तो आदमी का अपना स्वभाव ही कारण है। क्योंकि, अच्छी जमीन में भी कंटीले पेड़ जन्म लेकर और अधिक फैलते हैं ॥ २९ ॥

शकारः—भावे ! एशा तव अग्गदो लज्जाअदि, ण मं अंगीकलेदि, ता गच्छ, थावलअचेडे मए पिट्ठिदे गदे वि । एशे पलाइअ गच्छदि, ता तं गेण्हिअ आअच्छदु भावे । [भाव ! एषा तवाग्रतो लज्जते, न मामङ्गीकरोति तद् गच्छ, स्थावरकचेटो मया पीडितो गतोऽपि । एष पलाय्य गच्छति, तत् तं गृहीत्वा आगच्छतु भावः ।]

विटः—(स्वगतम्,)

अस्मत्समक्षं हि वसन्तसेना शौण्डीर्यभावान्न भजेत मूर्खम् ।
तस्मात् करोम्येष विविक्तमस्या विविक्तविस्रम्भरसो हि कामः ॥ ३० ॥

अत्र=अस्मिन् विधौ, शीलम्=स्वभावः, एव कारणम्=हेतुः, उच्चकुलोत्पन्नोऽपि कुकर्मी भवति, पुष्कलेऽपि समुत्पन्नो व्यक्तिः शिष्टो भवति, नात्र कुलं कारणम् । तथाहि सुक्षेत्रे=उत्कृष्टभूमौ, कण्टकिद्रुमाः=वदर्यादिकण्टकयुताः वृक्षाः, सुतराम्=अत्यधिकम्, स्फीताः=वृद्धिमुपगताः, भवन्ति=जायन्ते । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ २९ ॥

शकारः—भाव=हे विद्वन्, एषा=वसन्तसेना, तव=विटस्य, अग्रतः=सन्मुखे, लज्जते=लज्जिता भवति, तेन हेतुना माम्=शकारम्, न=नहि, अङ्गीकरोति=स्वीकरोति, तत्=तेन, गच्छ=गम्यताम्, स्थावरकः मया=शकारेण, पीडितः=व्यथितः, गतोऽपि=प्रस्थितोऽपि, एषः=असौ, पलाय्य=अपक्रम्य, गच्छति=समायाति, तत्=तस्मात्, तम्=चेटम्, गृहीत्वा=नीत्वा, भाव आगच्छतु=समायातु ।

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम् ।)

अन्वयः—वसन्तसेना, शौण्डीर्यभावात्, अस्मत् समक्षं, मूर्खम्, न भजेत्, तस्मात् एषः, अस्याः, विवक्तम्, करोमि, हि, कामः, विविक्तविश्रम्भरसः (भवति) ॥३०॥

अस्मदिति । वसन्तसेना=चारुदत्तानुरागिणी गणिका, शौण्डीर्यभावात्=आत्मनः औदार्यात्, अस्मत्समक्षम्=मम सन्मुखे, मूर्खम्=विवेकशून्यशकारम्, न=नहि, भजेत्=अङ्गीकुर्यात्, तस्मात्=कारणात्, एषः=अहम्, अस्याः=वसन्तसेनायाः, विविक्तम्=एकान्तम्, करोमि=विदधामि । हि=यतः कामः=मनोभवः, विविक्ते=शून्ये, विस्रम्भे=विश्वासे च रसः=आनन्दः यस्य स तादृशो भवति । अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, उपजातिर्वृत्तम् ॥ ३० ॥

शकार—हे पण्डित, वसन्तसेना तुम्हारे सामने लजाती है, इसी लिए वह मुझे स्वीकार नहीं करती है । अतः तुम यहाँ से हट जाओ । स्थावरक को भी मैंने पीट दिया है, वह भी रुककर भागा जा रहा है, कृपया उसे पकड़ कर ले आओ ।

विट—(मन ही मन)

अपने गर्वीले स्वभाव के कारण ही वसन्तसेना शायद मेरे सामने इस मूर्ख को कबूल नहीं करे । अतः मैं यहाँ से हटकर इन्हें इसका अवसर दे देता हूँ । क्योंकि एकान्त में ही परस्पर काम भावना बढ़ती है ॥ ३० ॥

(प्रकाशम्) एवं भवतु, गच्छामि ।

वसन्तसेना—(पटान्ते गृहीत्वा) णं भणामि सरणागदम्हि । [**ननु भणामि शरणागतास्मि ।**]

विटः—वसन्तसेने ! न भेतव्यं न भेतव्यम् । काणेलीमातः ! वसन्तसेना तव हस्ते न्यासः ।

शकारः—एव्वं । मम हत्थे एशा णाशेण चिट्ठदु । [**एवं । मम हस्ते एषा न्यासेन तिष्ठतु ।**]

विटः—सत्यम् ?

शकारः—सच्चं । [**सत्यम्**]

विटः—(किञ्चिद् गत्वा) अथवा मयि गते नृशंसो हन्यादेनाम् । तदपवारितशरीरः पश्यामि तावदस्य चिकीर्षितम् । (इत्येकान्ते स्थितः ।)

(प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) एवम्=अनेनैव प्रकारेण, भवतु=यातु, गच्छामि=यामि ।

वसन्तसेना—(पटान्ते=वस्त्राञ्चले, गृहीत्वा=गृहणं कृत्वा) भणामि=कथयामि, शरणागताऽस्मि=प्रपन्नाऽस्मि ।

विटः—वसन्तसेने=गणिके, न भेतव्यम्=भयं न कर्त्तव्यम् । तव=भवतः, हस्ते=करे, न्यासः=उपनिधिः ।

शकारः—एवम्=अस्तु, मम=शकारस्य, हस्ते=करे, एषा=वसन्तसेना, न्यासेन=निक्षेपभावेन, तिष्ठतु ।

विटः—सत्यम्=प्रतिज्ञातम् ?

शकारः—सत्यम्=ऋतम् ।

विटः—(किञ्चित्=कियत्पदम्, गत्वा=उपगम्य) अथवा=वा, मयि=विटे, गते=प्रस्थानं कृते सति, नृशंसः=क्रूरः, अयम् एनाम्=वसन्तसेनाम्, हन्यात्=हत्यां

(**सुनाकर**) अच्छा तो अब चलूं ।

वसन्तसेना—(**कपड़े से पकड़ कर**) मैं कहती हूँ न, मैं आप की शरण में हूँ ।

विट—वसन्तसेने डरने की कोई बात नहीं है । मत डरो । हे पुंश्चलीपुत्र, यह वसन्तसेना, मैं तुम्हारे हाथों में धरोहर छोड़ रहा हूँ ।

शकार—ठीक है, मेरे पास यह धरोहर ही है ।

विट—सच बोलते हो न ?

शकार—हाँ सच ।

विट—(**कुछ दूर जाकर**) या अगर मैं चला गया तो कहीं यह पापी, वसन्तसेना की हत्या न कर दे, तो क्या कहीं छिपकर इस पापी का चरित्र देखा जाय । (**शून्य स्थान में छिप जाता है ।**)

शकारः—भोदु, मालइश्शं। अधवा कवडकावडिके एशे बम्हणे वुड्ढखोडे कदावि ओवालिद-शलीले गदिअ, शिआले भविअ, हुलुभुलिं कलेदि! ता एदश्श वञ्चणाणिमित्तं एव्वं दाव कलइश्शं (कुसुमावचयं कुर्वन्नात्मानं मण्डयति) वाशू! वाशू! वसन्तशेणिए! एहि। [भवतु, मारयिष्यामि। अथवा कपट-कापटिक एष ब्राह्मणो वृद्धश्रृगालः कदापि अपवारितशरीरो गत्वा श्रृगालो भूत्वा कपटं करोति। तदेतस्य वञ्चनानिमित्तम् एवं तावत् करिष्यामि। बाले बाले! वसन्तसेने! एहि।]

विटः—अये! कामी संवृत्तः। हन्त! निर्वृतोऽस्मि। गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः।)

शकारः—

शुवण्णअं देमि पिअं वदेमि पडेमि शीशेण शवेट्टणेण।
तधा वि मं णेच्छशि शुद्धदन्ति! किं शेवअं कश्टमआ मणुश्शा ॥३१॥

[सुवर्णकं ददामि, प्रियं वदामि, पतामि शीर्षेण सवेष्टनेन।
तथापि मां नेच्छसि शुद्धदन्ति! किं सेवकं कष्टमया मनुष्याः ॥]

कुर्यात्। तत्=तस्मात्, अपवारितशरीरः=प्रच्छन्नो भूत्वा, अस्य=शकारस्य, चिकीर्षितम्=चेष्टितम्, अभिलषितम् वा, पश्यामि=अवलोकयामि।

शकारः—भवतु=यातु, मारयिष्यामि=हनिष्यामि। अथवा कपटेन=छलेन, कापटिकः=धूर्त्तः, एषः=विटः, ब्राह्मणः=विप्रः, वृद्धश्रृगालः=जराजीर्णजम्बुकः, कदापि, अपवारितशरीरः=लतागुलमादिना आच्छादितदेहः, गत्वा=भूत्वा, श्रृगालः=जम्बुकः, भूत्वा, कपटम्=छलम्, करोति। तत्=तस्मात्, एतस्य=विटस्य, वञ्चनानिमित्तम्=प्रतारणाहितुम्, एवम्=इत्थम्, करिष्यामि=आचरिष्यामि। (कुसुमावचयम्=पुष्पचयनम्, कुर्वन्=विदधन्, आत्मानम्=स्वम्, मण्डयति=भूषयति।) बाले=प्रमदे, एहि=आगच्छ।

विटः—अये=अरे, कामी=कामयुक्तः, संवृत्तः=सञ्जातः। हन्त=हर्षे, निर्वृत्तोऽस्मि=चिन्तामुक्तोऽस्मि गच्छामि=यामि। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः।)

अन्वयः—सुवर्णकम्, ददामि, प्रियम्, वदामि, सवेष्टनेन, शीर्षेण, पतामि, तथापि, हे शुद्धदन्ति, माम्, सेवकम्, किम्, न, इच्छसि? मनुष्याः कष्टमयाः (भवन्ति) ॥३१॥

शकार—अच्छा, मारूँगा। पर, कहीं यह रंगा सियार छिपकर देखता हो और मौका पाते ही झपट कर आक्रमण कर दे। अतः इसे धोखा देने के लिए पहले ऐसा करूँ। (**फूल चुनकर अपने को सजाता है।**) हे बाले, वसन्तसेने आओ।

विट—अरे यह तो कामातुर है। मैं निश्चिन्त हो गया। अब जाता हूँ। (**चला जाता है।**)

शकार—सोना देता हूँ। मीठी-मीठी बातें करता हूँ। पैरों पर माथा टेकता हूँ।

वसन्तसेना—को एत्थ सन्देहो ? (अवनतमुखी 'खलचरितम्' इत्यादि श्लोकद्वयं पठति ।) [कोऽत्र सन्देहः ?]

खलचरित ! निकृष्ट ! जातदोषः कथमिह मां परिलोभसे धनेन ।
सुचरितचरितं विशुद्धदेहं न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति ।। ३२ ।।
यत्नेन सेवितव्यः पुरुषः कुलशीलवान् दरिद्रोऽपि ।
शोभा हि पणस्त्रीणां सदृशजनसमाश्रयः कामः ।। ३३ ।।

सुवर्णकमिति । अहं तुभ्यं सुवर्णकम्=सुवर्णमुद्राम्, ददामि=प्रयच्छामि, प्रियम्=श्रवणसुखदं चाटुवचनम्, वदामि=वच्मि, सवेष्टनेन=उष्णीषयुक्तेन, शीर्षेण=शिरसा, पतामि=त्वच्चरणयोः प्रणमामि, तथापि=एतावत्कृतेऽपि, हे शुद्धदन्ति=हे शुभ्रदशने, माम्=कामुकम्, सेवकम्=सेवारतपरिजनम्, किम्=कथम्, न=नहि, इच्छसि=वाञ्छसि । मनुष्याः=मानवजातयः, कष्टमयाः=क्लेशमयाः भवन्ति । उपजातिर्वृत्तम् ।। ३१ ।।

वसन्तसेना—कोऽत्र सन्देहः=नास्ति काप्याशङ्काऽस्मिन् विषये । (अवनतमुखी=नताननाभूय, 'खलचरितम्' इत्यादि पठति ।)

अन्वयः—हे खलचरित, निकृष्ट, जातदोषः, इह, माम्, धनेन, कथम्, परिलोभसे ? मधुपाः सुचरितचरितम्, विशुद्धदेहम्, कमलम्, हि, न, परित्यजन्ति ।। ३१ ।।

खलेति । हे खलचरित=रे दुष्टाचरण, निकृष्ट=रे नीच, जातदोषः=उत्पन्ना क्रूरतादयः, इह=अस्मिन् प्रणयविषये, माम्=गुणानुरागिणीम्, वसन्तसेनाम्, धनेन=वैभवेन, कथम्=किमर्थम्, परिलोभयसे ? मधुपाः=मधुकर्यः, सुचरितचरितम्=मनोहरस्वभावशीलम्, विशुद्धदेहम्=निर्मलशरीरम्, कमलम्=पद्मम्, हि=यतः, न=नहि, परित्यजन्ति=त्यक्त्वा व्रजन्ति । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, पुष्पिताग्रावृत्तञ्चेति ।। ३२ ।।

अन्वयः—कुलशीलवान्, पुरुषः, दरिद्रः, अपि, यत्नेन, सेवितव्यः, हि सदृशजनसमाश्रयः, कामः, पणस्त्रीणाम्, शोभा (अस्ति) ।। ३३ ।।

अरी सुदन्ती, फिर भी मुझ सेवक को तुम नहीं चाहती हो । सच ही मनुष्य अपने अनुगतों से बडा क्रूर व्यवहार करता है ।। ३१ ।।

वसन्तसेना—इसमें क्या सन्देह ? (**'खलचरित' आदि दो श्लोकों को सर झुकाकर ही गुनगुनाती है ।)**

रे नीच, तुम अपने व्यवहार से क्रूर हो, मूर्खता प्रभृति तुममें दोष हैं फिर भी अपनी सम्पदा से तुम मुझे लुभाना चाहते हो । पर तुम यह नहीं जानते कि सुन्दर शील एवं आकर्षक आकृति वाले कमल को छोड़कर भौंरी और कहीं नहीं भटकती ।। ३२ ।।

यदि शीलवान् एवं कुलीन व्यक्ति निर्धन भी है तो भी सेवनीय है । क्योंकि, समशील एवं अनुरूपव्यक्ति के साथ समागम ही हम वारवनिताओं की शोभा है ।।३३।।

अवि अ। सहआरपादवं सेविअ ण पलास-पादवं अंगीकरिस्सं। [अपि च, सहकारपादपं सेवित्वा न पलाशपादपमङ्गीकरिष्यामि।]

शकारः—दाशीए धीए! दलिद्द-चालुदत्तके शहआलपादवे कडे, हग्गे उण पलाशे भणिदे, किंशुके वि ण कडे। एव्वं तुमं मे गालिं देन्ती अज्ज वि तं ज्जेव चालुदत्तकं शुमलेशि? [दास्याः पुत्रि! दरिद्र-चारुदत्तकः सहकार-पादपः कृतः, अहं पुनः पलाशो भणितः, किंशुकोऽपि न कृतः। एवं त्वं मे गालिं ददती अद्यापि तमेव चारुदत्तकं स्मरसि?]

वसन्तसेना—हिअअगदो ज्जेव किं त्ति ण सुमरीअदि? [हृदयगत एव किमिति न स्मर्यते?]

शकारः—अज्ज वि दे हिअअगदं तुमं च शमं ज्जेव मोडेमि! ता दलिद्द-

यत्नेनेति। कुलशीलवान्=सद्वंशोत्पन्नः चरित्रवान्, पुरुषः=मनुष्यः, दरिद्रः=अकिञ्चनः, अपि=चेत्, यत्नेन=प्रयासपूर्वकेन, सेवितव्यः=सेवनार्हः अस्ति, हि=यतः सदृशजनसमाश्रयः=अनुरूपकान्तविषयकः, कामः=अनुरागः, पणस्त्रीणाम्=वारविलासिनीनाम्, शोभा=प्रशंसनीया भवति। अर्थान्तरन्यासहेतुरलङ्कारयोः अङ्गाङ्गित्वेन सङ्करालङ्कारः, आर्याजातिः॥ ३३॥

अपि च=अन्यच्च, सहकारपादपम्=आम्रवृक्षम्, सेवित्वा=सेवनं कृत्वा, पलाशपादपम्=सौगन्ध्यहीनम्, किंशुकवृक्षवत् शकारं, न=नहि, अङ्गीकरिष्यामि=स्वीकरिष्यामि।

शकारः—दास्याः=सेविकायाः, पुत्रि=सुते, दरिद्रचारुदत्तकम्=निर्धनसार्थवाहसुतम्, सहकारपादपः कृतः=रसालपादपवत् सर्वजनप्रशंसनीयं वदति, अहम्=शकारः, पुनः पलाशः=निर्गुणम्, पलम्=मासम् अश्नानीति पलाशमिव मन्यसे, किंशुकोऽपि=पलाशपुष्पोऽपि नास्मि। एवं=अनेन प्रकारेण, त्वम्=वसन्तसेना, मे=माम गालीम्=अपशब्दम्, ददतीम्=वदतीम्, अद्यापि=अधुनाऽपि, तमेव=दरिद्रमेव चारुदत्तम्=सार्थवाहसुतम्, स्मरसि=स्मरणं करोसि।

वसन्तसेना—हृदयगतः=चेतसि स्थितः, एषः=असौ, किमिति न=कथन्न, स्मर्यते=स्मरणं क्रियते?

शकारः—अद्यापि=अधुनापि, ते=तव, हृदयगतम्=चित्तस्थम्, त्वाम्=वसन्त-

---

और भी—रसाल का रस एक बार चख लेने के बाद फिर इस पलाश को कबूल करूँ?

शकार—अरी ओ नौकरानी की बच्ची, तुमने उस भिखारी चारुदत्त को आम और मुझे टेसू का फूल भी नहीं सीधे पलाश का पेड़ कहा है। तुमने मुझे गली दी है और उस गरीब चारुदत्त को आज भी याद करती हो।

वसन्तसेना—जो दिल में बसा है उसकी याद कैसे नहीं आयेगी।

शत्थवाहअ-मणुश्श-कामुकिणि ! चिट्ठ, चिट्ठ। [अद्यापि ते हृदयगतं त्वाञ्च सममेव मोटयामि। तद् दरिद्र-सार्थवाहकमनुष्यकामुकिनि ! तिष्ठ, तिष्ठ।]

वसन्तसेना—भण भण, पुणो वि भण। सलाहणिआइं एदाइं अक्खराइं। [भण भण, पुनरपि भण। श्लाघनीयानि एतानि अक्षराणि।]

शकारः—पलित्ताअदु दाशीए पुत्ते दलिद्द-चालुदत्ताके तुमं। [परित्रायतां दास्याः पुत्रो दरिद्र-चारुदत्तस्त्वाम्।]

वसन्तसेना—परित्ताअदि, जदि मं पेक्खदि। [परित्रायते, यदि मां प्रेक्षते।]

शकारः—

किं शे शक्के वालिपुत्ते महिन्दे लम्भापुत्ते कालणेमी शुबन्धू।
लुदे लाआ दोणपुत्ते जडाऊ चाणक्के वा धुन्धुमाले तिशंकू ?॥ ३४॥

[किं स शक्रो बालिपुत्रो महेन्द्रः रम्भापुत्रः कालनेमिः सुबन्धुः।
रुद्रो राजा द्रोणपुत्रो जटायुश्चाणक्यो वा धुन्धुमारस्त्रिशंकुः ?॥]

सेनाम् च, सममेव=सहैव, मोटयामि=चूर्णयामि, तत्=पूर्वोक्तः, दरिद्रसार्थवाहकमनुष्यकामुकिनि=दुर्गतचारुदत्ताभिलाषिणि, तिष्ठ।

वसन्तसेना—भण भण=पुनः वद, श्लाघनीयानि=प्रशंसायोग्यानि, एतानि=पूर्वोक्तानि, अक्षराणि=वर्णानि।

शकारः—परित्रायताम्=परित्राणं करोतु, दास्यापुत्रः=नीचः, त्वाम्=वसन्तसेनाम्, चारुदत्तकः।

वसन्तसेना—परित्रायते=रक्षां क्रियते, यदि=चेत्, माम्=वसन्तसेनाम् प्रेक्षते।

अन्वयः—सः, किम्, शक्रः, बालिपुत्रः, महेन्द्रः ? रम्भापुत्रः, कालनेमिः सुबन्धुः, राजा, रुद्रः, द्रोणपुत्रः, जटायुः, चाणक्यः, धुन्धुमारः, वा त्रिशंकुः॥ ३४॥

किमिति। सः=चारुदत्तः, किं शक्रः=किमिन्द्रः ? वालिपुत्रः=बालितनयः, महेन्द्रः=शचीपतिः, रम्भापुत्रः=अप्सरसः सुतः, कालनेमिः=रावणमातुलः, सुबन्धुः=गद्यकविः, राक्षसो वा, राजा=भूपालः, रुद्रः=शिवः, द्रोणपुत्रः=द्रोणसुतः, जटायुः=गृध्रराजः, चाणक्यः=कौटिल्यः, धुन्धुमारः=राक्षसविशेषः, वा=अथवा, त्रिशङ्कुः=नृपतिविशेषः। येन प्रेक्षणमात्रेण त्वां रक्षति। शालिनी वृत्तम्॥ ३४॥

शकार—आज तुम्हारे दिल में बैठे उस चारुदत्त को तुम्हारे साथ चूर कर रख देता हूँ। ठहर, उस भिखारी को चाहने वाली ठहर।

वसन्तसेना—बोलो, बोलो, उन प्रिय अक्षरों का फिर एक बार उच्चारण तो करो।

शकार—देखता हूँ, वह नीच भिखारी चारुदत्त तुम्हें कैसे बचाता है ?

वसन्तसेना—अगर देख लें तो बचा ही लेगें।

शकार—क्या वह चारुदत्त, इन्द्र है या बालि का बेटा महेन्द्र है। रम्भा नामक अप्सरा का बेटा का कालनेमि है या सुबन्धु। राजा रुद्र है कि द्रोण का बेटा जटायु, चाणक्य है कि धुन्धुमार या कि वह त्रिशंकू है ? ३४॥

अधवा एदे वि दे ण लक्खन्ति । [अथवा एतेऽपि त्वां न रक्षन्ति ।]

चाणक्केण जधा शीदा मालिदा भालदे जुए ।
एव्वं दे मोडइश्शामि जडाऊ विअ दोवदि ॥ ३५ ॥
[चाणक्येन यथा सीता मारिता भारते युगे ।
एवं त्वां मोटयिष्यामि जटायुरिव द्रौपदीम् ॥]

(इति ताडयितुमुद्यतः ।)

वसन्तसेना—हा अत्ते ! कहिं सि ? हा अज्जचारुदत्त ! एसो जणो असंपुण्ण-मणोरधो ज्जेव विवज्जदि । ता उद्धं अक्कन्दइस्सं । अधवा वसन्त-सेणा उद्धे अक्कन्ददि त्ति लज्जणीअं क्खु एदं । णमो अज्जचारुदत्तस्स । **[हा मातः ! कस्मिन्नसि ? हा आर्य्यचारुदत्त ! एष जनः असम्पूर्णमनोरथ एव विपद्यते । तदूर्ध्वमाक्रन्दयिष्यामि । अथवा वसन्तसेना ऊर्ध्वमाक्रन्दतीति लज्जनीयं खल्वेतत् । नम आर्यचारुदत्ताय ।]**

अथवा=वा, एतेऽपि=रुद्रादयोऽपि, त्वाम्=वसन्तसेनाम्, न=नहि, रक्षन्ति=रक्षिष्यन्तीति भावः ।

अन्वयः—यथा, भारते, युगे, चाणक्येन, सीता, मारिता, जटायुः, द्रौपदीम्, इव, एवम्, त्वाम्, मोटयिष्यामि ॥ ३५ ॥

चाणक्येनेति । यथा=येन प्रकारेण, भारते=द्वापरान्ते कलिप्रारम्भे, युगे=समये, अत्र भारते युगे=भारतावच्छिन्ने समये इति व्याचख्यौ पृथ्वीधरः । चाणक्येन=कौटिल्येन, सीता=जनकसुता, मारिता=हता, जटायुः=गृध्रराजः, द्रौपदीम्=द्रुपदतनयाम् सैरन्ध्रीम्, इव=यथा, एवम्=अनेन प्रकारेण, त्वाम्=वसन्तसेनाम्, मोटयिष्यामि=चूर्णयिष्यामि । हतोपमाऽलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ ३५ ॥

(इति=एवमुक्त्वा, ताडयितुम्=घातयितुम्, उद्यतः=तत्परो बभूव ।)

वसन्तसेना—हा मातः=हे जननी, कस्मिन्नसि=त्वम् कुत्राऽसि । हा=इति खेदे, एषः=पुरोवर्त्ति जनः=लोकः, असम्पूर्णमनोरथः=पूर्णतां न गतः, मनोरथः=अभिलाषः, यस्य तादृशः, एषः=वसन्तसेना, विपद्यते=म्रियते । तत्=तस्मात्,

---

अथवा, ये भी तुम्हें बचा नहीं पायेंगे ।

महाभारत युद्ध में जैसे चाणक्य ने सीता को मारा था, जैसे जटायु ने द्रौपदी को मारा था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी हत्या कर दूंगा ॥ ३५ ॥

(पीटना चाहता है ।)

वसन्तसेना—हाय, माँ, तुम कहाँ हो ? हा प्रिय चारुदत्त, मनोरथ पूरा होने से पहले ही मर रही हूँ । जी करता है जोर जोर से चिल्ला कर रोऊँ । किन्तु नहीं—'वसन्तसेना चिल्ला रही है ।' यह कितनी लाज की बात है । हे आर्य चारुदत्त, तुम जहाँ हो, वहीं मेरा अन्तिम प्रणाम ।

शकारः—अज्जवि गब्भदाशी तश्श ज्जेव पावश्श णामं गेण्हदि ? (इति कण्ठे पीडयन्) शुमल गब्भदाशि ! शुमल । [**अद्यापि गर्भदासी तस्यैव पापस्य नाम गृह्णाति ? स्मर गर्भदासि ! स्मर ।**]

वसन्तसेना—णमो अज्जचारुदत्तस्स । [**नम आर्यचारुदत्ताय**]

शकारः—मल गब्भदाशि ! मल । (नाटयेन कण्ठे निपीडयन् मारयति ।) [**म्रियस्व गर्भदासि ! म्रियस्व ।**]

(वसन्तसेना मूर्च्छिता निश्चेष्टा पतति ।)

शकारः—(सहर्षम्)

एदं दोशकलण्डिअं अविणअशशावाशभूदं खलं
लत्तं तश्श किलागदश्श लमणे कालागदं आअदं ।
किं एशे शमुदाहलामि णिअअं बाहूण शूलत्तणं
णीशाशे वि मलेइ अम्ब शुमला शीदा जधा भालदे ॥३६॥

ऊर्ध्वम्=तारस्वरेण, आक्रन्दयिष्यामि=असहाया भूत्वा शब्दापयिष्ये । अथवा=किंवा, वसन्तसेना=गरिमामयी युवतिः, ऊर्ध्वमाक्रन्दति=तारस्वरेणाक्रन्दति, एतत्=क्रन्दनम्, खलु=निश्चयेन, लज्जनीयम्=लज्जास्पदम् ।

शकारः—अद्यापि=एतावतापि, गर्भदासी=नीचनारी, तस्यैव=चारुदत्तस्यैव, पापस्य=अधमस्य, नामगृह्णाति=नामोच्चारणं करोति । (इति=एवमुक्त्वा, कण्ठे=गले, पीडयन्=सम्पीडयन्) स्मर=स्मरणं कुरु ।

वसन्तसेना—नमः=प्रणतिः, आर्य चारुदत्ताय=मान्य सार्थवाहसुताय ।

शकारः—म्रियस्व=मृत्युं गमय, (नाटयेन=अभिनयेन, कण्ठे=गले, निपीडयन्=सम्पीडयन्, मारयति ।)

(वसन्तसेना मूर्च्छिता=हतचेतना, निश्चेष्टा=चलनवलनादिहीना, पतिता ।)

शकारः—(सहर्षम्=सप्रसन्नम्)

अन्वयः—दोषकरण्डिकाम्, अविनयस्य, आवासभूताम्, खलाम्, रक्ताम्, आगतस्य, तस्य, रमणे, आगताम्, किल, कालागताम्, एताम्, एषः, निजकम्, बाह्वोः, शूरत्वम्, किम्, उदाहरामि, निःश्वासे, अपि, अम्बा, म्रियते, यथा, भारते, सीता, सुमृता ।

शकार—यह नीच अभी भी उसी पापी को पुकार रही है । (**गला दबाता है ।**) ले अधम अब उसे खूब याद कर ।

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त को प्रणाम ।

शकार—मर साली मर । (**अभिनयपूर्वक गला दबाकर मारता है ।**)

(**वसन्तसेना मूर्च्छित होकर गिरती है और निश्चेष्ट हो जाती है ।**)

शकार—(**खुश होकर**)

[एतां दोषकरण्डिकामविनयस्यावासभूतां खलां
रक्तां तस्य किलागतस्य रमणे कालागतामागताम् :
किमेष समुदाहरामि निजकं बाह्वोः शूरत्वं
निःश्वासेऽपि म्रियते अम्बा सुमृता सीता यथा भारते ॥]

इच्छंतं मम णेच्छति त्ति गणिआ लोशेण मे मालिदा
शुण्णे पुप्फकलण्डके त्ति शहशा पाशेण उत्ताशिदा।
शे वा वंचिद भादुके मम पिदा मादेव शा दोप्पदी
जे शे पेक्खदि णेदिशं ववशिदं पुत्ताह शूलत्तणं ॥ ३७ ॥

[इच्छन्तं मां नेच्छतीति गणिका रोषेण मया मारिता
शून्येपुष्पकरण्डके इति सहसा पाशेनोत्त्रासिता।
स वा वञ्चितो भ्राता मम पिता मातेव सा द्रौपदी
योऽसौ पश्यति नेदृशं व्यवसितं पुत्रस्य शूरत्वम् ॥]

एतामिति। दोषकरण्डिकाम्=पापपेटिकाम्, अविनयस्य=अशिष्टतायाः, आवासभूताम्=निवासस्थानरूपाम्, खलाम्=दुष्टाम्, रक्ताम्=चारुदत्तेऽनुरागपूर्णाम्, आगतस्य=पूर्वसंकेतितस्थाने उपस्थितस्य, तस्य=चारुदत्तस्य, रमणे=सुरतनिमित्तम्, आगताम्=उपस्थितम्, किल=निश्चितम्, कालागताम्=मृत्युप्रेरिताम्, एताम्=वसन्तसेनाम्, मारयित्वेति शेषः, एषः=अहम्, निजकम्=स्वकीयम्, बाह्वोः=भुजयोः, शूरत्वम्=वीरत्वम्, किम्=केन प्रकारेण, उदाहरामि=वर्णयामि ? निःश्वासे=श्वसने, अपि=चेत्, अम्बा=जननी वसन्तसेना, म्रियते=गतासून् भवति, यथा=येन रूपेण, भारते=भारतवर्षे महाभारते वा, सीता=जनकसुता, सुमृता=सम्यक्रूपेण मृता। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—इच्छन्तम्, माम्, गणिका, न, इच्छति, इति, रोषेण, मया, शून्ये, पुष्पकरण्डके, सहसा, पाशेन, उत्त्रासिता, मारिता, च, सः, मम, भ्राता, वा, पिता, वञ्चितः, द्रौपदी, इव, सा माता, च, वञ्चिता, यः, असौ, पुत्रस्य, ईदृशम्, शूरत्वम्, व्यवसितम्, च, न, पश्यति ॥ ३७ ॥

इच्छन्तमिति। इच्छन्तम्=रन्तुमभिलषन्तम्, माम्=शकारम्, गणिका=वेश्या,

---

पाप की पिटारी, दुर्व्यवहार की निवास भूमि यह वसन्तसेना चारुदत्त को प्यार करती है; उसी के साथ रमण करने हेतु यह पापिन इस जीर्णोद्यान में क्या आई ? मौत इसे घसीटकर ले आई है। इसे मारकर मैं अपनी बाहुओं की क्या बड़ाई करूँ, जबकि जोर से मेरी श्वास लेने से ही यह उसी प्रकार माता मर गयी जैसे महाभारत में सीता मारी गई थी ॥ ३६ ॥

मैं इसे दिल से चाहता हूँ पर यह वेश्या मुझे नहीं चाहती है, इसी क्रोध से मैंने इसे इस एकान्त में गला घोंटकर मार डाला। वह मेरे भाई और पिता अथवा

भोदु, सम्पदं वुड्ढखोडे आगमिश्शदि त्ति। ता ओशलिअ चिट्ठामि। (तथा करोति।) [भवतु, साम्प्रतं वृद्धशृगाल आगमिष्यतीति तदपसृत्य तिष्ठामि।]

विटः—(प्रविश्य चेटेन सह) अनुनीतो मया स्थावरकश्चेटः। तद् यावत् काणेलीमातरं पश्यामि। (परिक्रम्यावलोक्य च।) अये ! मार्ग एव पादपो निपतितः। अनेन च पतता स्त्री व्यापादिता। भोः पाप ! किमिदमकार्यमनुष्ठितं त्वया ? तवापि पापिनः पतनात् स्त्रीवधदशनेनातीव पातिता वयम्। अनिमित्तमेतद् यत्सत्यं वसन्तसेनां प्रति शङ्कितं मे मनः। सर्वथा देवताः

न=नहि, इच्छति=अभिलषति। इति=अनेन, रोषेण=क्रोधेन, मया=शकारेण, शून्ये=जनशून्ये, पुष्पकरण्डके=पुष्पकरण्डकनामोद्याने, सहसा=हठात्, पाशेन=रज्जुरूपेण भुजेन, उत्त्रासिता=भृशं पीडिता तत्पश्चात् मारिता=हता। सः=असौ, मम=मे, भ्राता=अनुजः, वा=किंवा, पिता=जनकः, वञ्चितः=प्रतारितः, द्रौपदीव =द्रुपदसुतेव, सा=गणिका, माता=जननी च वञ्चितेति लिङ्गविपरिणामेन बोध्यम्। यः असौ=भ्राता, पिता च तथा या असौ जननी च, पुत्रस्य=मम शकारस्य, ईदृशम्= इत्थम्, शूरत्वम्=वीरत्वम्, व्यवसितम्=उद्योगश्च, न पश्यति=नावलोकयति। शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्॥ ३७॥

भवतु=अस्तु, साम्प्रतम्=अधुना, वृद्धशृगालः=जर्जरजम्बुकः, आगमिष्यति= उपस्थितो भविष्यति, तत्=तस्मात्, अपसृत्य=दूरं गत्वा, तिष्ठामि=उपविशामि। (तथा=तेनैव प्रकारेण, करोति=विदधाति।)

विटः—(प्रविश्य=प्रवेशं कृत्वा, चेटेन=सेवकेन, सह=सार्धम्) अनुनीतः= प्रार्थयित्वा समानीतः, मया=विटेन, स्थावरकश्चेटः। तत्=तस्मात्, यावत् काणेलीमातरम्=अधमशकारम्, पश्यामि=अवलोकयामि। (परिक्रम्य=कियतपदं गत्वा, च=पुनः, अवलोक्य=दृष्ट्वा,) अये=इत्याश्चर्यम्, मार्गे एव=दूरादेव, पादपः= वृक्षः, निपतितः=भूमौ पतितः, अनेन=वृक्षेण, स्त्री=काऽपि नारी, व्यापादिता= मारिता, भो पाप=रे नीच, अकार्यम्=पापम्, अनुष्ठितम्=सम्पादितम्, त्वया=भवता, तवापि=भवतापि, पापिनः=पापकर्मणः, पतनात्=निपतनात्,

---

द्रौपदी की तरह यह मेरी माँ अपने बेटे के वीरता पूर्ण इस काम को आँख भर देखने के लिए जिन्दा नहीं रही, यही खेद है॥ ३७॥

अच्छा तो वह बूढा सियार विट अब आने ही वाला है तो थोड़ा दूर हटकर प्रतीक्षा करूँ। (**कुछ दूर खिसक जाता है।**)

विट—(**चेट को साथ लिये विट का प्रवेश**) लो, मैं चेट को मनाकर ला दिया, तो अब उस अधम को देखता हूँ (**थोड़ा घूमकर और देखकर**) यह तो रास्ते में ही वृक्ष गिरा है। इसने गिर कर स्त्री को मार डाला। रे पापी, तुमने यह कुकर्म क्यों किया ? तुम्हारे गिरने और स्त्रीवध देखने के कारण हम भी पतित हो

स्वस्ति करिष्यन्ति। (शकारमुपसृत्य) काणेलीमातः ! एवं मया अनुनीतः स्थावरकश्चेटः।

शकारः—भावे ! शाअदं दे। पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! तवावि शाअदं। [**भाव ! स्वागतं ते। पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! तवापि स्वागतम्।**]

चेटः—अधइं। [**अथ किम्।**]

विटः—मदीयं न्यासमुपनय।

शकारः—कीदिशे ? [**कीदृशः ?**]

विटः—वसन्तसेना।

शकारः—गदा। [**गता।**]

विटः—क्व ?

स्त्रीवधदर्शनेन=नारीहत्याऽवलोकनेन, अतीव=अत्यर्थम्, पातिताः=अधःपातं प्रापिता, वयम्=विटादयः। एतत्=इदम्, अनिमित्तम्=अपशकुनम्, यत्सत्यम्=ऋतम्, वसन्तसेनाम्प्रति शङ्कितम्=सन्दिग्धम्, मे=मम, मनः=चेतः, सर्वथा=सर्वतोभावेन देवताः=सुराः, स्वस्ति=कल्याणम्, करिष्यन्ति। (शकारम्=राजश्यालकम्, उपसृत्य= समीपमागत्य) काणेलीमातः=रे अधम, एवम्=अनेन रूपेण, मया=विटेन, अनुनीतः=प्रार्थितः।

शकारः—भाव=हे विद्वन्, स्वागतम्=अभिनन्दनम्, ते=तव, तवापि=चेटस्यापि, स्वागतम्=सत्कारम्।

चेटः—अथ किम्=अस्तु एवम्।

विटः—मदीयम्=मामकीनम्, न्यासम्=निक्षेपम्, उपनय=प्रत्यावर्त्तय।

शकारः—कीदृशः=किम्प्रकारकम् ?

विटः—वसन्तसेना=वसन्तसेनारूपं न्यासम्।

शकारः—गता=सा तु गता।

विटः—क्व=कस्मिन् स्थाने गता ?

गये। अकारण ही वसन्तसेना के लिए मेरा मन सन्दिग्ध हो रहा है। देवता उसकी रक्षा करें। (**शकार के पास जाकर**) लो, मैंने तुम्हारे सेवक को मनाकर ला दिया।

शकार—मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ। बेटे, स्थावरक, चेट, तुम्हारा भी स्वागत है।

चेट—हाँ।

विट—अब मेरी धरोहर मुझे लौटा दो।

शकार—कैसी धरोहर ?

विट—वसन्तसेना।

शकार—वह तो गई।

विट—कहाँ ?

शकारः—भावश्श ज्जेव पिट्ठदो। [**भावस्यैव पृष्ठतः।**]

विटः—(सवितर्कम्) न गता खलु सा तया दिशा।

शकारः—तुमं कदमाए दिशाए गडे ? [**त्वं कतमया दिशा गतः ?**]

विटः—पूर्वया दिशा।

शकारः—शा वि दक्खिणाए गडा। [**सापि दक्षिणया गता।**]

विटः—अहं दक्षिणया।

शकारः—शा वि उत्तलाए। [**सापि उत्तरया।**]

विटः—अत्याकुलं कथयसि। न शुध्यति मे अन्तरात्मा। तत् कथय सत्यम्।

शकारः—शवामि भावश्श शीशं अत्तणकेलकेहिं पादेहिं ता, शण्ठावेहि हिअअं, एशा मए मालिदा। [**शपे भावस्य शीर्षमात्मीयाभ्यां पादाभ्याम्, तत् संस्थापय हृदयम् एषा मया मारिता।**]

शकारः—भावस्य=विदुषः एव, पृष्ठतः=पश्चात्।

विटः—(सवितर्कम्=सविचारम्) न=नहि, गता=याता, खलु=निश्चयेन, सा=वसन्तसेना, तया दिशा।

शकारः—त्वम्=भवान्, कतमया दिशा=कस्यां दिशि, गतः=प्रचलितः।

विटः—पूर्वया दिशा=पूर्वस्यां दिशि।

शकारः—साऽपि=वसन्तसेनापि, दक्षिणया=दक्षिणस्यां दिशि, गता।

विटः—अहम्=विटः, दक्षिणया=दक्षिणस्यां दिशि गतवान् आसम।

शकारः—साऽपि=वसन्तसेनापि, उत्तरया=उत्तरस्यां दिशि गता।

विटः—अत्याकुलम्=असम्बद्धम्, कथयसि=निवेदयसि, न शुध्यति=सन्देह-रहितो न भवति, अन्तरात्मा।

शकार—तुम्हारे पीछे पीछे।

विट—(**कुछ सोचकर**) नहीं उधर तो वह नहीं गई है।

शकार—तुम किस ओर गये थे ?

विट—पूरब की ओर।

शकार—तो फिर वह दक्षिण की ओर गई।

विट—मैं तो दक्षिण की ओर गया था।

शकार—वह भी उत्तर की ओर गई है।

विट—तुम कुछ घबड़ाकर बोल रहे हो। तुम्हारी बातें सच्ची नहीं लगती। ठीक-ठीक बतलाओ; वह कहाँ गई ?

शकार—मैं अपने पैरों से तुम्हारा माथा छू कर कसम खाकर कहता हूँ, दिल थामकर सुनो, मैंने वसन्तसेना को मार डाला।

विटः—(सविषादम्) सत्यं त्वया व्यापादिता ?

शकारः—जइ मम वअणे ण पत्तिआअसि, ता पेक्ख पढमं लट्ठिअशाल-सण्ठाणाह शूलत्तणं। (इति दर्शयति।) [**यदि मम वचने न प्रत्ययसे, तत् प्रेक्षस्व प्रथमं राष्ट्रिय-श्याल-संस्थानस्य शूरत्वम्।**]

विटः—हा ! हतोऽस्मि मन्दभाग्यः। (इति मूर्च्छितः पतति।)

शकारः—ही ही ! उवलदे भावे। [**ही ही ! उपरतो भावः।**]

चेटः—शमश्शशदु शमश्शशदु भावे। अविचालिअं पवहणं आणन्तेण ज्जेव मए पढमं मालिदा। [**समाश्वसितु समाश्वसितु भावः। अविचारितं प्रवहण-मानयतैव मया प्रथमं मारिता।**]

विटः—(समाश्वस्य सकरुणम्) हा वसन्तसेने !

शकारः—भावस्य=विदुषः, शीर्षम्=शिरम्, आत्मीयाभ्याम्=स्वकीयाभ्याम्, पादाभ्याम्=चरणाभ्यां स्पृष्ट्वा, शपे=शपथं करोमि, तत्=तस्मात्, संस्थापय=स्थिरं कुरु, हृदयम्=चित्तम्, एषा=वसन्तसेना, मया=शकारेण, मारिता=व्यापादिता।

विटः—(सविषादम्=सखेदम्) सत्यम्=तथ्यम्, त्वया=शकारेण, सा व्यापादिता=मारिता किम् ?

शकारः—यदि मम वचने=कथने, न प्रत्ययसे=विश्वसिसि, प्रेक्षस्व=अवलोकय, शूरत्वम्=वीरता। (इति=इत्थमुक्त्वा, दर्शयति।)

विटः—हा हतोऽस्मि=मारितोऽस्मि, मन्दभाग्यः=हतभाग्यः। (इति=एवमुक्त्वा, मूर्च्छितः=चेतनाशून्यो भूत्वा पतति।)

शकारः—उपरतः=मृतः, भावः=विद्वन्, ही=इति विस्मये।

चेटः—समाश्वसितु=धैर्यधारणं कुरु, अविचारितम्=विचाररहितम्, प्रवहण-मानयतैव=शकटेनानीय, मारिता=व्यापादिता।

विटः—(समाश्वस्य=धैर्यधारणं कृत्वा, सकरुणम्=करुणायुतम्) हा=इति खेदे, वसन्तसेने।

विट—(**दुःख के साथ**) क्या सचमुच तुमने उसे मार डाला ?

शकार—यदि तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं है तो राजा के साले की वीरता को देख लो। (**गिरी हुई वसन्तसेना को दिखाता है।**)

विट—हाय, मैं अभागा तो मर गया। (**अचेत होकर गिर जाता है।**)

शकार—अरे, विट तो मर गया।

चेट—भाव, धीरज धरो, बिना कुछ सोचे विचारे अपनी गाड़ी से यहाँ लाकर पहले तो मैंने ही उसका बध किया।

विट—(**धीरज रखकर, दयापूर्वक**) हाय, वसन्तसेने।

दाक्षिण्योदकवाहिनी विगलिता याता स्वदेशं रतिः
हा हालङ्कृतभूषणे ! सुवदने ! क्रीडारसोद्भासिनि !।
हा सौजन्यनदि ! प्रहासपुलिने ! हा मादृशामाश्रये !
हा हा नश्यति मन्मथस्य विपणिः सौभाग्यपण्याकरः ।। ३८ ।।

(सास्रम्) कष्टं भोः ! कष्टम् ।

किं नु नाम भवेत् कार्यमिदं येन त्वया कृतम् ।
अपापा पापकल्पेन नगरश्रीर्निपातिता ।। ३९ ।।

अन्वयः—दाक्षिण्योदकवाहिनी, विगलिता, रतिः, स्वदेशम्, याता, हा हा, अलङ्कृतभूषणे, सुवदने, क्रीडारसोद्भासिनि, हा प्रहासपुलिने, सौजन्यनदि, हा, मादृशाम्, आश्रये, हा ! हा ! मन्मथस्य, विपणिः, सौभाग्यपण्याकरः, नश्यति ।।३८।।

दाक्षिण्य इति । दाक्षिण्योदकवाहिनी=औदार्यजलनदी, विगलिता=विनष्टा, रतिः=कामदेवकलत्रम्, स्वदेशम्=निजनिवासस्थानम्, याता=गता, स्वर्गं गतेति भावः । हा हा=इति खेदे, अलङ्कृतभूषणे=हे स्वाभाविकसौन्दर्यातिशयेनालङ्कृत-विभूषणे, सुवदने=सुमुखि, क्रीडारसोद्भासिनि=सुरते निरतिशयानन्ददायिनि, हा=इति खेदे, प्रहासपुलिने—प्रकृष्टः=उत्कृष्टः, हासः=स्मितम्, एव पुलिनम्=तटम् यस्यास्तथाभूते, सौजन्यनदि=सुजनतायास्तरङ्गिणि, हा=इति महाकष्टे, मादृशाम्=अस्मतसदृशाम्, आश्रये=शरणदे, हा, मन्मथस्य=मदनस्य, विपणिः=पण्यवीथिका, सौभाग्यपण्याकरः—सौभाग्यम्=सौन्दर्यम्, तदेव पण्यम्=विक्रेयवस्तु-जातम्, तस्य आकरः=खनिः । नश्यति=विनष्टो जातः । रूपकालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितम्, वृत्तम् ।। ३८ ।।

(सास्रम्=अश्रुपूर्णम्) कष्टम्=महद्दुःखम्—

अन्वयः—किम्, नु, नाम, कार्यम्, भवेत्, येन, त्वया, इदम्, कृतम्, पापकल्पेन, अपापाः, नगरश्रीः, निपातिताः ।। ३८ ।।

किमिति । किम्=कीदृशम्, नु=इति प्रश्ने, नाम=सम्भावनायाम् अव्ययपदम्, कार्यम्=फलम्, भवेत्=स्यात्, येन=कर्मेण, त्वया=पापेन, इदम्=वसन्तसेना-

---

हा आभूषणों के आभूषण, सुन्दर मुखवाली, सुरतसुखदायिनि, सुजनता की नदी, हास्य के पुलिन, मेरे जैसे अनाथों की आश्रयदायिनि, हा वसन्तसेने, तुम कहाँ गई ? उदारता रूपी जल की नदी सूख गई । धरती की रति पुनः स्वर्ग चली गई । हाय, हाय, सौन्दर्यरूपी विक्रेय वस्तु की खान खत्म हो गई और कामदेव का बाजार लुट गया ।। ३८ ।।

(आँखों में आँसू भरकर) कष्ट है, महाकष्ट—

वसन्तसेना को मारकर तुम्हारा कौन सा मनोरथ पूरा हुआ ? किसलिए तुमने यह जघन्य अपराध किया ? महान् पापी तुमने इस पाप रहित नगरलक्ष्मी को ही समाप्त कर दिया ।। ३९ ।।

(स्वगतम्) अये ! कदाचिदयं पाप इदमकार्यं मयि सङ्क्रामयेत् । भवतु, इतो गच्छामि ।

(शकार उपगम्य धारयति ।)

विटः—पाप ! मा मा स्प्राक्षीः । अलं त्वया । गच्छाम्यहम् ।

शकारः—अले ! वशन्तशेणिअं शअं ज्जेव मालिअ मं दुशिअ कहिं पलाअशि ? शम्पदं ईदिशे हग्गे अणाध पाविदे । [**अरे ! वसन्तसेनां स्वयमेव मारयित्वा मां दूषयित्वा कुत्र पलायसे ? साम्प्रतम् ईदृशोऽहमनाथः प्राप्तः ।**]

विटः—अपध्वस्तोऽसि ।

शकारः—

अत्थं शदं देमि शुवण्णअं दे कहावणं देमि शवोडिअं दे ।
एशे दुशेट्ठाणं पलक्कमे मे शामाण्णए भोदु मणुशशआणं ।। ४० ।।

हत्यारूपदुष्कर्मम्, कृतम्=सम्पादितम्, पापकल्पेन=साक्षादपरपापेन, अपापाः=निरपराधा, नगरश्रीः=नगरलक्ष्मीः, निपातिता=मारिता । आर्थी-उपमा-निरङ्ग-रूपकयोश्च संसृष्टिः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ।। ३८ ।।

(स्वगतम्=आत्मगतम्) अये=इति आशंकायाम्, कदाचित्=सम्भवतः, अयम्=एषः, पाप=अधर्मिन्, इदम्=एतत्, अकार्यम्=हत्यास्वरूपदुष्कर्मम्, मयि=विटे, सङ्क्रामयेत्=आरोपयेत् । भवतु=यातु, इतः=अस्मात्स्थानात्, गच्छामि=व्रजामि ।

(शकारः उपगम्य=समीपंगत्वा, धारयति=गृह्णाति ।)

विटः—पाप=हे पापिन्, मा=इति निषेधे, स्प्राक्षीः=स्पर्शं कुरु । अलम्=व्यर्थम्, त्वया=भवता । गच्छामि=व्रजामि, अहम्=विटः ।

शकारः—अरे वसन्तसेनाम्=गणिकाम्, स्वयमेव=आत्मनः एव, मारयित्वा=व्यापाद्य, माम्=शकारम्, दूषयित्वा=दोषं दत्वा, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, पलायते=गम्यते । साम्प्रतम्=अधुना, ईदृशः=एतादृशः अनाथः=अशरणः, अहम्=शकारः, प्राप्तः=जातः (नारी हत्यापराधारोपात्) ।

विटः—अपध्वस्तोऽसि=अधः पतितोऽसि ।

अन्वयः—(अहम्) ते, शतम् अर्थान् सुवर्णकम्, ददामि, ते, सवोडिकम्,

---

(मन ही मन) अरे कहीं यह पापी इस कुकर्म को मेरे माथे ही न थोप दे ? अच्छा तो मुझे यहाँ से चल ही देना चाहिये ।

(शकार आकर विट को पकड़ लेता है ।)

विट—पापी, तुम मुझे मत छूओ । तुम्हारा प्रयास बेकार है । मैं अब चला ।

शकार—अरे, तुमने वसन्तसेना की हत्या कर दी और इस हत्या का कलंक मेरे माथे थोप कर स्वयं कहाँ भाग रहे हो ? हाय, इस समय मैं ऐसे असहाय हो गया ।

विट—तुम पतित हो ।

[अर्थान् शतं ददामि सुवर्णकं ते कार्षापणं ददामि सवोडिकं ते ।
एष दोषस्थानं पराक्रमो मे सामान्यको भवतु मनुष्यकाणाम् ।।]

विटः—धिकं, तवैवास्तु ।

चेटः—शन्तं पावं । [शान्तं पापम् ।]

(शकारः हसति ।)

विटः—

अप्रीतिर्भवतु विमुच्यतां हि हासो
धिक् प्रीतिं परिभवकारिकामनार्याम् ।
मा भूच्च त्वयि मम सङ्गतं कदाचिद्
आच्छिन्नं धनुरिव निर्गुणं त्यजामि ।। ४१ ।।

कार्षापणम्, ददामि, दोषस्थानम्, मे, एषः, पराक्रमः, मनुष्याणाम्, सामान्यकः, भवतु ।। ४० ।।

अर्थानिति । अहम्, ते=तुभ्यम्, शतम्=शतसंख्याकम्, प्रचुरतरमिति भावः । अर्थान्=विभवान्, सुवर्णकम्=स्वर्णमुद्राम्, ददामि=प्रयच्छामि, ते=तुभ्यम्, सवोडिकम्=बहुकपर्दिसमन्वितम्, कार्षापणम्=पणषोडशकपरिमितां राजमुद्राम्, ददामि=प्रयच्छामि, दोषस्थानम्=अपराधकारणम्, मे=मम, एषः=सम्प्रत्येवा-नुष्ठितः, पराक्रमः=शौर्यम्, मनुष्यकाणाम्=विटचेटप्रभृतीनाम्, सामान्यकः= साधारणः, भवतु=यातु । उपजातिवृत्तञ्चेति ।। ४० ।।

विटः—धिक्=इति अधिक्षिपति, तव=भवतः, एव, अस्तु=यातु ।

चेटः—शान्तं पापम्=नैतद्वाच्यम् ।

(शकार हसति=अट्टहासं करोति ।)

अन्वयः—हासः, विमुच्यताम्, अप्रीतिः, भवतु, हि, परिभवकारिकाम्, अनार्याम्, प्रीतिम्, धिक् । त्वयि, मम, सङ्गतम्, कदाचित्, मा भूत् । च, आच्छिन्नम्, निर्गुणम्, धनुः, इव, (त्वाम्) त्यजामि ।। ४१ ।।

अप्रीतिरिति । हासः=अनुपयुक्तहास्यम्, विमुच्यताम्=त्यज्यताम्, अप्रीतिः= अमैत्री, भवतु=यातु, हि=इति निश्चये, परिभवकारिकाम्=अनादरकारिणीम्, अनार्याम्=निन्दनीयाम्, प्रीतिम्=मैत्रीम्, धिक्=धिगस्तु । त्वयि=शकारे, मम=

शकार—मैं तुम्हें सोने के मोहरों से भर दूँगा । कौडियों के साथ कार्षापण भी दूँगा । अपराध का कारण मेरा यह पराक्रम किसी और सामान्यजन पर थोप देना ।

विट—तुम्हें धिक्कार है । यह दोष तो तुम्हीं पर होगा ।

चेट—ऐसा मत कहो शकार, जिसका पाप है, उसी पर रहेगा ।

(**शकार हँसता है ।**)

विट—बेकार हँसना बन्द करो । अब तुम्हारे साथ हमारी दोस्ती नहीं निभेगी ।

शकारः—भावे ! पशीद पशीद ! एहि णलिणीए पविशअ कीलेम्ह
[भाव ! प्रसीद, प्रसीद ! एहि, नलिन्यां प्रविश्य क्रीडावः ।]

विटः—अपतितमपि तावत् सेवमानं भवन्तं
पतितमिव जनोऽयं मन्यते मामनार्यम् ।
कथमहमनुयायां त्वां हतस्त्रीकमेनं
पुनरपि नगरस्त्री-शङ्कितार्द्धाक्षिदृष्टम् ।। ४२ ।।

(सकरुणम्) वसन्तसेने !

अन्यस्यामपि जातौ मा वेश्या भूस्त्वं हि सुन्दरि ! ।
चारित्र्यगुणसम्पन्ने ! जायेथा विमले कुले ।। ४३ ।।

विटस्य, सङ्गतम्=मेलनम्, कदाचित्=कस्मिन् अपि समये, मा भूत्=न भवतु । च=पुनः, आच्छिन्नम्=त्रुटितम्, निर्गुणम्=मौर्वीरहितम्, धनुः=चापः, इव=यथा, निर्गुणम्=दयादक्षिण्यादिगुणरहितम् त्वाम्, त्यजामि=परित्यागं करोमि । उपमालङ्कारः, प्रहर्षिणी वृत्तञ्चेति ।। ४१ ।।

शकारः—भाव=हे विद्वन्, प्रसीद=प्रसन्नो भव, एहि=समागच्छ, नलिन्याम्=कमलपूर्णसरस्याम्, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, क्रीडावः=खेलावः ।

अन्वयः—भवन्तम्, सेवमानम्, अपतितम्, अपि, माम्, अयम्, जनः, पतितम्, इव, मन्यते, हतस्त्रीकम्, नगरस्त्रीशङ्किताद्धाक्षिदृष्टम्, एनम्, त्वाम्, पुनरपि, कथम्, अनुयायाम् ।। ४२ ।।

अपतितमिति । भवन्तम्=त्वाम्, सेवमानम्=भजमानम्, अपतितम्=अपापम्, अपि=चेत्, माम्=विटम्, अयम्=एषः, जनः=लोकः, पतितम्=पापिनम्, इव=यथा, मन्यते=स्वीक्रीयते, हतस्त्रीकम्=स्त्रीघातिनम्, नगरस्त्रीशङ्किताद्धाक्षिदृष्टम्=पुरकामिनीभिः सन्दिग्ध नयनैर्दष्टम्, एनम्=पुरोवर्त्तमानम्, त्वाम्=शकारम्, पुनरपि भूयोऽपि, कथम्=केन प्रकारेण, अनुयायाम्=अनुसरेयम् । काव्यलिङ्गमलङ्कारः, मालिनी वृत्तम् ।। ४२ ।।

(सकरुणम्=सदयम्) वसन्तसेने,

ऐसी दोस्ती पर लानत है जिससे अपमान एवं दुष्टता की बदबू आती हो । तुम्हारे साथ हमारी संगति कभी न हो, तुम्हें टूटे डोरे वाले धनुष की तरह छोड़कर जाता हूँ ।।४१।।

शकार—अरे ओ विद्वन्, प्रसन्न हो जाओ, आओ इस कमल से भरे तालाब में हम क्रीड़ा करें ।

विट—तुम्हारे साथ रहने पर मैं स्वयं अपनी आँख में ही आप गिर जाऊँगा । जनसामान्य भी मुझे पतित एवं नीच समझेंगे । तुम वसन्तसेना के हत्यारे हो । नगर की महिलाएँ तुम्हें बड़ी सन्दिग्ध दृष्टि से देखती हैं । तुम्हीं बतलाओ, तुम पर खुश होकर मैं तुम्हें अब कैसे साथ दूँ ।। ४२ ।।

(दयापूर्वक) हे वसन्तसेने !

शकारः—मम केलके पुप्फकलण्डक-जिण्णुज्जाणे वशन्तशेणिअं मालिअ केहिं पलाअसि ? एहि, मम आवुत्तश्श अग्गदो ववहालं देहि । (इति धारयति ।) [**मदीये पुष्पकरण्डकजीर्णोद्याने वसन्तसेनां मारयित्वा कस्मिन् पलायसे । एहि, मम आवुत्तस्य अग्रतो व्यवहारं देहि ।**]

विटः—आः ! तिष्ठ जाल्म । (इति खड्गमाकर्षति ।)

शकारः—(सभयमपसृत्य) किं ले ! भीदेशि ? ता गच्छ । [**किं रे ! भीतोऽसि ? तद्गच्छ ।**]

विटः—(स्वगतम्) न युक्तमवस्थातुम् । भवतु, यत्र आर्यशर्विलकचन्दनकप्रभृतयः सन्ति, तत्र गच्छामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

अन्वयः—हे सुन्दरि, त्वम्, अन्यस्याम्, जातौ, अपि, वेश्या, मा, भूः, हे चारित्रगुणसम्पन्ने, विमले, कुले, जायेयाः ।

अन्यस्यामिति । हे सुन्दरि=हे सुवदने, त्वम्=वसन्तसेना, अन्यस्याम्=अपरस्याम् जातौ=जन्मनि, अपि, वेश्या=वारवनिता, मा भूः=न भव, हे चारित्र्यगुणसम्पन्ने=हे सुचरिते, विमले=सदाचारसम्पन्ने, कुले=वंशे, जायेयाः=उत्पद्येथाः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ४३ ॥

शकारः—मदीये=मदधीने, पुष्पकरण्डकजीर्णोद्याने=एतदाख्यवाटिकायाम्, वसन्तसेनाम्=एतदाख्यगणिकाम्, मारयित्वा=व्यापाद्य, कस्मिन्=कुत्र, पलायसे=पलायनं करोसि, एहि=आगच्छ, मम=शकारस्य, आवुत्तस्य=भगिनीपतेः, अग्रतः=समक्षे, व्यवहारम्=विचारम्, देहि=कथय ।

विटः—आः=इति कष्टे, तिष्ठ=स्थीयताम्, रे जाल्म=रे नीच । (इति=एवमुक्त्वा, खड्गम्=करवालं, आकर्षति ।)

शकारः—(सभयम्=सत्रासम्, अपसृत्य=किञ्चिद्दूरं गत्वा,) भीतोऽसि=भयग्रस्तोऽसि, तत् गच्छ=याहि ।

विटः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) अवस्थातुम्=निवसितुम्, न युक्तम्=नोचितम्, भवतु=यातु, यत्र=यस्मिन् स्थाने, आर्य शर्विलकादयः सन्ति । तत्र=तस्मिन् स्थाने, गच्छामि=व्रजामि । (इति निष्क्रान्तः=बहिर्गतः ।)

हे सुन्दरी, अगले जन्म में तुम वेश्या कुल में कभी जन्म मत लेना, तुम एक चरित्रगुणसम्पन्न महिला हो, अतः तुम किसी कुलीन घर में जन्म लेना ॥ ४३ ॥

शकार—अरे ओ दुष्ट, मेरे पुष्पकरण्डक नामक जीर्णोद्यान में वसन्तसेना को मारकर, अब कहाँ भागे जाते हो । आओ, मेरे भगिनीपति राजा पालक के सामने ही अब तुम्हारा विचार होगा । (**पकड़ता है ।**)

विट—अच्छा, ठहर रे नीच । (**तलवार खींचता है ।**)

शकार—(**डर से कुछ दूर हटकर**) अरे, तो क्या तुम डर गये, तब जाओ ।

विट—(**अपने आप**) अब यहाँ ठहरना बिल्कुल ठीक नहीं है । अच्छा तो जहाँ, आर्य शर्विलक, चन्दनक आदि गये हैं वहीं चला जाय । (**निष्क्रान्त होता है ।**)

शकारः—णिधणं गच्छ । अले थावलका ! पुत्तका ! कीलिशे मए किदे ? [**निधनं गच्छ । अरे स्थावरक ! पुत्रक ! कीदृशं मया कृतम् ।**]

चेटः—भट्टके ! महन्ते अकज्जे किदे । [**भट्टक ! महदकार्यं कृतम् ।**]

शकारः—अले चेडे ! किं भणाशि अकज्जे किदेत्ति ? भोदु, एव्वं दाव । (नानाभरणान्यवतार्य) गेण्ह एदं अलङ्कारअं, मए दाव दिण्णे । जेत्तिके वेले अलंकलेमि, तेत्तिकं वेलं मम । अण्णं तव । [**अरे चेट ! किं भणसि अकार्यं कृतमिति ? भवतु, एवं तावत् । गृहाण इममलङ्कारं मया तावद्दत्तम्, यावत्यां वेलायामलङ्करोमि, तावतीं वेलां मम अन्यां तव ।**]

चेटः—भट्टके ज्जेव एदे शोहन्ति, किं मम एदेहिं ? [**भट्टके एव एते शोभन्ते, किं मम एतैः ?**]

शकारः—ता गच्छ, एदाइं गोणाइं गेण्हिअ मम केलकाए पाशादवालग्गपादोलिआए चिट्ठ, जाव हग्गे आअच्छामि । [**तद् गच्छ, एतौ गावौ गृहीत्वा मदीयायां क्रीडार्थायां प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायां तिष्ठ, यावदहमागच्छामि ।**]

शकारः—निधनम्=मृत्युम्, गच्छ=याहि, पुत्रक=हे सुत, कीदृशम्=कथं प्रकारकम्, मया=शकारेण, कृतम्=विहितम् ।

चेटः—भट्टक=स्वामिन् ! महत्=अति, अकार्यम्=निकृष्टकर्मम्, कृतम्=सम्पादितम् ।

शकारः—अरे चेटक=रे सेवक, किं भणसि=किं कथयसि, अकार्यम्=अपकर्मम्, कृतम्=सम्पादितम्, इति ? भवतु=यातु । (नानाभरणानि=अनेकाभूषणानि, अवतार्य=शरीरादवतार्य) गृहाण=ग्रहणङ्कुरु, इमम्=एतत्, अलङ्कारम्=आभूषणम्, मया=शकारेण, तावत्=तावत् कालपर्यन्तम्, दत्तम्=सर्मपितम्, यावत्यां वेलायाम्=यावत्कालपर्यन्तं अलङ्करोमि=शरीरे धारयामि, तावत्यां वेलायाम्, मम=मामकीनाः, अन्या=अन्यस्मिन्, काले तव=त्वदीयाः । शरीरे आभूषणानि धारणसमये मम, पेटिकायां स्थापनकाले तवेति भावः ।

चेटः—भट्टके एव=भवतः शरीरे एव, एते=अलङ्काराणि, शोभन्ते=राजन्ते, किमिति प्रश्ने, मम=चेटस्य, एतैः । अर्थात् न किमपि प्रयोजनमस्ति ।

शकारः—तत्=तर्हि, गच्छ=याहि, एतौ=इमौ, गावौ=वृषभौ, गृहीत्वा=नीत्वा, मदीयायाम्=मदधीनायाम्, प्रासादस्य=भवनस्य, बालायाम्=अभिनवायाम्,

---

शकार—मर जा । अरे बेटा स्थावरक, मैंने कैसा काम किया ?

चेट—मालिक, आपने बहुत बुरा काम किया है ।

शकार—क्या कहा, रे सेवक, 'बहुत बुरा काम किया' ? अच्छा तो सुन । (अपनी देह से बहुत सारे जेवरों को उतार कर) ले, इसे रख ले । मैंने तुझे दे दिया । पहनने के समय ये मेरे रहेंगे और बाकी समय में तेरे ।

चेट—ये सब तो आपको ही शोभते हैं मालिक, मेरे लिए ये किस काम के हैं ?

शकार—तो जा, अब इन बैलों को अपने साथ लेते जा । हाँ और वहाँ महल की नई अटारी की ऊपर वाली प्रतोली में रुककर मेरी प्रतीक्षा करो । मैं आ ही रहा हूँ ।

चेटः—जं भट्टके आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः।) [**यद्भट्टक आज्ञापयति।**]

शकारः—अत्तपलित्ताणे भावे गदे अदंशणं, चेडं वि पाशाद-वालग्ग-पदोलिआए णिगलपूलिदं कदुअ थावइश्शं। एव्वं मन्ते लक्खिदे भोदि। ता गच्छामि। अधवा, पेक्खामि दाव एदं, किं एशा मिदा अधवा पुणो वि मालइश्शं। (अवलोक्य) कधं शुमिदा। भोदु, एदिणा पावालएण पच्छादेमि णं। अधवा णामंकिदे एशे, ता के वि अज्जपुलिशे पच्छहिजाणेदि। भोदु, एदिणा वादालीपुंजिदेण शुक्ख-पण्ण-पुडेण पच्छादेमि। (तथा कृत्वा, विचिन्त्य) भोदु, एव्वं दाव। सम्पदं अधिअलणं गच्छिअ ववहालं लिहावेमि। जहा अत्थश्श कालणादो शत्थवाह-चालुदत्तकेण मम केलकं पुप्फकलण्डकं जिण्णुज्जाणं पवेशिअ वशन्तशेणिआ वावादिदा त्ति। [**आत्मपरित्राणे भावो गतः अदर्शनम्, चेटमपि प्रासादबालाग्रप्रतालिकायां निगडपूरितं कृत्वा स्थापयिष्यामि। एवं मन्त्रो रक्षितो भवति। तद्गच्छामि। अथवा, पश्यामि तावदेनाम्, किमेषा मृता? अथवा पुनरपि मारयिष्यामि। कथं सुमृता। भवतु, एतेन प्रावारकेण प्रच्छादयामि एनाम्। अथवा नामाङ्कित एषः, तत् कोऽपि आर्यपुरुषः प्रत्यभिजानाति। भवतु, एतेन**

अग्रप्रतोलिकायाम्=उत्कृष्टरथ्याम्, प्रासादोपरि नवनिर्मितभवने इत्यर्थः, तिष्ठ= प्रतीक्षां कुरु, यावत्, अहम्=शकारः, आगच्छामि=समागतोऽस्मि।

चेटः—यत्=यथा, भट्टकः=स्वामी, आज्ञापयति=आदिशति। (इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः।)

शकारः—आत्मपरित्राणे=स्वरक्षणार्थम्, भावः=विद्वान्, गतः=यातः, अदर्शनम् =अनवलोकनम्, चेटमपि=सेवकमपि, प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायाम्=नवनिर्मितभवनोपरि गृहविशेषे, निगडपूरितम्=शृङ्खलेन समाबद्धम्, कृत्वा=विधाय, स्थापयिष्यामि=स्थापनं करिष्यामि, एवम्=एवं कृते सति, मन्त्रः=रहस्यं, रक्षितः =अप्रकाशितम्, भवति=याति, तत्=तस्मात्, गच्छामि=यामि, अथवा=वा, पश्यामि=अवलोकयामि, एनाम्=वसन्तसेनाम्। किमिति=जिज्ञासायाम्, एषा= वसन्तसेना, मृता=हता? अथवा=वा, पुनरपि=भूयोऽपि, मारयिष्यामि=व्यापादयिष्यामि। (अवलोक्य=दृष्ट्वा) कथमिति प्रश्ने, सुमृता=सम्यक्रूपेण हता। भवतु =यातु, एतेन=पुरोवर्तिना, प्रावारकेण=उत्तरीयवस्त्रेण, एनाम्=मृतां वसन्तसेनाम्,

---

चेट—मालिक का जैसा हुक्म। (ऐसा कहकर चला जाता है।)

शकार—अपने बचाव के लिए विट विलुप्त हो गया। चेट को भी बेड़ी डालकर अपने महल की नई अटारी वाली गली में छोड़ दूँगा। इस तरह इस हत्या का भेद छिपा रह जायेगा। तो, जाता हूँ, अथवा जाने से पहले इसे देख लूँ कि यह मर गई? अथवा और मारूँ (देखकर) यह तो पूरी तरह मर गई। अच्छा तो इस दुपट्टे से इसे ढँक देता हूँ। अथवा—इस दुपट्टे पर तो नाम लिखा है। कोई भी भला

वातालीपुञ्जितेन शुष्कपर्णपुटेन प्रच्छादयामि। भवतु, एवं तावत्, साम्प्रतमधिकरणं गत्वा व्यवहारं लेखयामि। यथा; अर्थस्य कारणात् सार्थवाहचारुदत्तेन मदीयं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं प्रवेश्य वसन्तसेना व्यापादितेति।]

चालुदत्तविणाशाअ कलेमि कवडं णवं।
णअलीए विशुद्धाए पशुघादं व दालुणं॥ ४४॥
[चारुदत्त-विनाशाय करोमि कपटं नवम्।
नगर्यां विशुद्धायां पशुघातमिव दारुणम्॥]

भोदु, गच्छामि। (इति निष्क्रम्य, दृष्ट्वा, सभयम्) अविदमादिके! जेण जेण गच्छामि मग्गेण, तेण ज्जेव एशे दुट्टशमणके गहिदकाशाओदकं चीवलं

प्रच्छादयामि=समाच्छादयामि, अथवा=वा, एषः=प्रावारकः, नामाङ्कितः=नाम्ना लिखितः, "वसन्तसेनायाः इति शकारस्य वेति लिखिताक्षरः' इति पृथ्वीधरः। तत्=तस्मात्, कोऽपि=अज्ञातः, आर्यपुरुषः=अधिकृतजनः, प्रत्यभिजानाति=शकारेण वसन्तसेना मारितेति ज्ञास्यति। भवतु=एवं भवतु, एतेन=पुरोवर्त्तिना, वातालीपुञ्जितेन—वातालिः=वायुसमूहः, तया पुञ्जितम्=एकत्रीकृतम्, तेन, शुष्कपर्णपुटेन=अनार्द्रपत्रपुटसमूहेन, प्रच्छादयामि=आच्छादयामि। (तथा कृत्वा=यथोक्तं विधाय, विचार्य=विचिन्त्य) भवतु=यातु, एवं तावत्=अनेन रूपेण, साम्प्रतम्=अधुना, अधिकरणम्=न्यायालयम्, गत्वा=समागत्य, व्यवहारम्=अभियोगम्, लेखयामि=अभियोगलेखनपञ्जिकायाम्, अङ्कयामि, यथा=येन प्रकारेण, अर्थस्य=धनस्य, कारणात्=लोभात्, हेतुना वा, सार्थवाहचारुदत्तेन=वणिक्पुत्रेण चारुदत्तेन, मदीयम्=मामकीनम्, जीर्णोद्यानम्=पुरातनवाटिकायाम्, प्रवेश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, वसन्तसेना=एतदाख्यगणिका, व्यापादिता=मारितेति।

अन्वयः—(अस्याम्) विशुद्धायाम्, नगर्याम्, दारुणम्, पशुघातम्, इव, चारुदत्तविनाशाय, नवम्, कपटम्, करोमि॥ ४४॥

चारुदत्तेति। अस्याम्, विशुद्धायाम्=पवित्रायाम्, नगर्याम्=पुर्याम्, दारुणम्=नृशंसम्, पशुघातम्=छागादिमारणम्, इव=यथा, चारुदत्तविनाशाय=सार्थवाहस्य नाशाय, नवम्=अभूतपूर्वम्, कपटम्=छलम्, करोमि=विदधामि। पथ्यावक्त्रं वृत्तम्।

भवतु=यातु, गच्छामि=व्रजामि। (इति=एवम् उक्त्वा, निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा

आदमी इसे देखते ही पहचान लेगा। अच्छा तो, हवा के झोंकों से इकट्ठे किये गये इन सूखे पत्तों से ही इसे ढँक दूँ। **(वैसा ही करके, कुछ सोचकर)** अच्छा तो अब ऐसा करूँ; न्यायालय में जाकर रपट लिखवा दूँ कि धन के लोभ से सार्थवाहसुत चारुदत्त ने वसन्तसेना को मेरे पुष्पकरण्डक नामक मेरे पुराने बगीचे में लाकर मार दिया।

इस पवित्र नगरी में दारुण पशुहत्या की तरह आर्य चारुदत्त के विनाश के लिए मैं एक नया छल करता हूँ॥ ४४॥

अच्छा तो अब चलूँ। **(निकल कर, देखकर, डरते हुए)** ओह, जिधर मैं जाता हूँ,

गेण्हिअ आअच्छदि। एशे मए णशिं छिंदिअ वाहिदे किदवेले कदावि मं पेक्खिअ 'एदेण मालिदे' त्ति पआशइश्शदि। ता कधं गच्छामि। (अवलोक्य) भोदु, एदं अद्धपडिदं पाकालखण्डं उल्लंघिअ गच्छामि। [भवतु, गच्छामि। अविदमादिके ! येन येन गच्छामि मार्गेण, तेनैव एष दुष्टश्रमणकः गृहीतकाषायोदकं चीवरं गृहीत्वा आगच्छति। एष मया नासां छत्वा वाहितः कृतवैरः कदापि मां प्रेक्ष्य 'एतेन मारिता' इति प्रकाशयिष्यति। तत् कथं गच्छामि? भवतु एतदर्द्धपतितं प्राकारखण्डमुल्लङ्घ्य गच्छामि।]

एशे म्हि तुलिद-तुलिदे लंका-णअलीए गअणे गच्छंते।
भूमी पाआले हणूमशिहले विअ महेन्दे ॥ ४५ ॥
[एषोऽस्मि त्वरित-त्वरितो लङ्कानगर्यां गगने गच्छन्।
भूम्यां पाताले हनूमच्छिखरे इव महेन्द्रः ॥]
(इति निष्क्रान्तः।)

दृष्ट्वा=विलोक्य, सभयम्=सत्रासम्) अविदमादिके=इति खेदे विस्मये वा अव्ययम्। येन येन, मार्गेण=पथा, गच्छामि=यामि, तेनैव=मार्गेणैव; एषः=असौ, दुष्टः= नीचः, श्रमणकः=बुद्धोपासकः, गृहीतकाषायोदकम्—गृहीतम्=धृतम्, काषायोदकम्= गैरिकवर्णमिश्रितजलम्, येन तत्, चीवरम्=भिक्षुवस्त्रम्, गृहीत्वा=नीत्वा, आगच्छति =समायाति, एषः=असौ, मया=शकारेण, नासाम्=नासिकाम्, छित्वा=भित्वा, बाहितः=बहिष्कृतः, अत एव, कृतवैरः=विहिता शत्रुता येन तादृशः, कदापि=सम्भवतः, माम्=शकारम्, प्रेक्ष्य=अवलोक्य, एतेन=शकारेण, मारिता=व्यापादिता, इति= इत्थं रहस्यम्, प्रकाशयिष्यति=प्रकटयिष्यति। तत्=तस्मात्, कथम्=केन प्रकारेण, गच्छामि=इतो व्रजामि। एतत्=पुरोवर्त्तिनम्, प्राकारखण्डम्=भग्नप्राचीरम्, उल्लङ्घ्य=लङ्घयित्वा, गच्छामि=व्रजामि।

अन्वयः—एषः, अहम्, आकाशे, भूम्याम्, पाताले, हनुमच्छिखरे, लङ्कानगर्याम्, गच्छन्, महेन्द्रः, इव, त्वरितत्वरितः, गच्छामि ॥ ४५ ॥

एष इति। एषः=अयम्, अहम्=शकारः, आकाशे=गगने, भूम्याम्=पृथिव्याम् पाताले=पृथिव्याः अधस्तले, हनुमच्छिखरे=हनुमदाख्यशृङ्गे, महेन्द्रशिखरे इति

उधर ही हाथ में गेरुआ कौपीन लिये यह संन्यासी मुझे मिल जाता है। मैंने इसकी नाक छेदकर इसे अपने बगीचे से बाहर खदेड़ दिया है। अतः यह मेरा नित्य-शत्रु है, मुझे यहाँ देखकर कहीं यह न कह दे कि—'शकार ने ही वसन्तसेना को मारा है।' तो फिर कैसे जाऊँ ? (देखकर) अच्छा तो आधी गिरी हुई इस दीवार को लाँघकर में निकल जाता हूँ।

यह मैं शकार आकाश, पाताल, धरती और हनुमान् पर्वत की चोटी (महेन्द्र पर्वत की चोटी) एवं लंका को जाते हुए महेन्द्र (वस्तुतः हनुमान्) की भाँति तेजी से जा रहा हूँ ॥ ४५ ॥

(प्रविश्य अपटीक्षेपेण)

संवाहको भिक्षुः—पक्खालिदे एशे मए चीवलभण्डे, किं णु क्खु शाहाए शुक्खावइश्शं। इध वाणला विलुप्पन्ति। किं णु क्खु भूमीए? धूलीदोशे होदि। ता कहिं पशालिअ शुक्खावइश्शं? (दृष्ट्वा) भोदु, इध वादालीपुञ्जिदे शुक्ख-वत्त-शंचए पशालइश्शं। (तथा कृत्वा) णमो बुद्धश्श। (इत्युपविशति।) भोदु, धम्म क्खलाइं उदाहलामि। ('पञ्च जणा जेण मालिदा' इत्यादि पूर्वोक्तं पठति) अधवा, अलं मम एदेण शग्गेण। जाव ताए वुद्धोवाशिआए पच्चुवकालं ण कलेमि, जाए दशाणं शुवण्णकाणं किदे जूदिकलेहिं णिक्कीदे, तदो पहुदि ताए कीदं विअ अत्ताणअं अअगच्छामि। (दृष्ट्वा) किं णु क्खु पेण्णोदले शमुश्शशदि? अथवा—[**प्रक्षालितमेतन्मया चीवरखण्डम् किं नु खलु शाखायां शोषयिष्यामि? इह वानरा विलुम्पन्ति। किं नु खलु भूम्याम्? धूलिदोषो भवति। तत् कुत्र प्रसार्य्य शोषयिष्यामि? भवतु, इह वातालीपुञ्जिते शुष्क-पत्रसञ्चये प्रसारयिष्यामि। नमो बुद्धाय। भवतु, धर्माक्षराणि उदाहरामि। अथवा अलं ममैतेन स्वर्गेण। यावत्तस्या बुद्धोपासिकायाः प्रत्युपकारं**

वक्तव्ये, लङ्कानगर्याम्=दशकन्धरपुर्याम्, गच्छन्=चलन्, महेन्द्रः=इन्द्रः, इव=यथा, त्वरितत्वरितः=अतिशीघ्रमेव, गच्छामि=व्रजामि। आर्यावृत्तम् ॥ ४५ ॥

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः।)

(अपटीक्षेपेणप्रविश्य=नेपथ्य पटमुद्घाटय प्रविश्यः)

संवाहको भिक्षुः—प्रक्षालितम्=विमलीकृतम्, एतत्=इदम्, चीवरखण्डम्=कौपीनम्, मया=संवाहकेन, किं नु=कथन्नु, शाखायाम्=द्रुमशाखायाम्, लम्बयित्वा, शोषयिष्यामि=शुष्कम् करिष्यामि, इह=शाखायाम्, वानराः=कपयः, विलुम्पन्ति =छिन्दन्ति, किं नु खलु=कथं नु तर्हि, भूम्याम्=धरण्याम्, प्रसार्य शोषयिष्यामि, धूलिदोषः=धूलिकणेन मलिनः, भवति=जायते, तत्=तदा, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, प्रसार्य=लम्बयित्वा, शोषयिष्यामि, भवतु=यद्भवतु तद्भवतु, इह=अस्मिन्, वातालीपुञ्जिते=वायुसमूहसञ्चितेन, शुष्कः=निरार्द्रः, पत्रसञ्चये=पत्रसमूहे,

---

(निकल जाता है।)

(बिना परदा उठाये ही प्रवेश करके)

संवाहक भिक्षु—इस भगवे को तो मैंने धो लिया है पर, सुखाऊँ कहाँ? अगर पेड़ की डाली पर डाल दूँ, तो बन्दर इसे फाड़ डालेंगे। धरती पर फैला दूँ तो धूल लग जायेगी, तो फिर इसे कहाँ सुखाऊँ? (देखकर) हाँ, हवा ने यहाँ सूखे पत्तों का ढेर लगा दिया है, इसी पर इन्हें सूखने डाल दूँ। (फैलाकर) भगवान बुद्ध को प्रणाम है। (**बैठ जाता है।**) अच्छा तो अब धार्मिक अक्षरों का पाठ करता हूँ, ('पंचजनाः

न करोमि, यया दशानां सुवर्णकानां कृते द्यूतकाराभ्यां निष्क्रीतः, ततः प्रभृति तया क्रीतमिवात्मानमवगच्छामि। किं नु खलु पर्णोदरे समुच्छ्वसिति ? अथवा—]

वादादवेण तत्ता चीवल-तोएण तिम्मिता पत्ता।
एदे विथिण्णपत्ता मण्णे पत्ता विअ फुल्लन्ति ॥ ४६ ॥

[वातातपेन तप्तानि चीवरतोयेन स्तिमितानि पत्राणि।
एतानि विस्तीर्णपत्राणि मन्ये पत्राणीव स्फुरन्ती ॥]

(वसन्तसेना संज्ञां लब्ध्वा हस्तं दर्शयति।)

भिक्षुः—हा हा! शुद्धालंकालभूशिदे इत्थिआ-हत्थे णिक्कमदि। कधं

प्रसरयिष्यामि=लम्बयिष्यामि, नमः=प्रणमामि, बुद्धाय=सुगताय, धर्माक्षराणि= धार्मिकवर्णानि, उदाहरामि=उच्चारयामि, अलम्=व्यर्थम्, मम=शकारस्य, एतेन =बुद्धनामकीर्त्तनजन्यपुण्योदयलभ्येन, स्वर्गेण=देवलोकेनेति। यावत् बुद्धोपासिकायाः =सदयहृदयायाः, वसन्तसेनायाः, प्रत्युपकारम्=उपकारस्य निष्क्रयीभूतमुपकारकम्, न=नहि, करोमि=विदधामि। यया=वसन्तसेनया, दशानाम्=दशसंख्यकानाम्, सुवर्णकानाम्, कृते, द्यूतकराभ्याम्=अक्षिक्रीडकाभ्याम्, निष्क्रीतः=निगृहीतः। ततः प्रभृति=तद्दिनात् एव, तया=वसन्तसेनया, क्रीतमिव=क्रीतदासमिव,आत्मानम्= स्वम्, अवगच्छामि=जानामि, पर्णोदरे=पत्राणाम् मध्ये, समुच्छ्वासं गृह्णाति।

अन्वयः—वातातपेन, तप्तानि, एतानि, पत्राणि, चीवरतोयेन, स्तिमितानि, विस्तीर्णपत्राणि, पक्षिणः, इव, स्फुरन्ति, इति मन्ये ॥ ४६ ॥

वातेति। वातातपेन=पवनसहितघर्मेण, तप्तानि=शुष्कतांगतानि, एतानि=चीवराधारभूतानि, पत्राणि=पर्णानि, चीवरतोयेन=कौपीनजलेन, स्तिमितानि=किञ्चिदार्द्रत्वं प्राप्तानि, सन्ति, विस्तीर्णानि=प्रसृतानि, पर्णानि=पत्राणि येषां तानि पक्षिणः =पतत्रिणः, इव=यथा, स्फुरन्ति=स्पन्दन्ते, इति अहम् मन्ये=स्वीकरोमि। अत्र श्रौत्युपमालङ्कारः, आर्या जातिश्चेति ॥ ४६ ॥

(वसन्तसेना संज्ञाम्=चेतनाम्, लब्ध्वा=प्राप्य, हस्तम्=करम्, दर्शयति।)

भिक्षुः—हा=इति खेदे, शुद्धालङ्कारभूषितः=विशुद्धधातुघटितत्वाद्देदीप्यमाना-

---

येन मारिताः···'इत्यादि पूर्वोक्त श्लोक पढ़ता है।) अथवा इस स्वर्ग से मुझे क्या लाभ? जब तक मैं उस बुद्धोपासिका वसन्तसेना का प्रत्युपकार नहीं करता हूँ, जिसने सुवर्ण के लिए मुझे जुआड़ियों से छुड़ा लिया। तभी से मैं समझता हूँ कि उसने मुझे खरीद लिया। (**देखकर**) अरे, पत्तों के ढेर के बीच से यह साँस कौन ले रहा हूँ अथवा—

हवा और घाम से सूखे ये पत्ते भगवे के पानी से भींगकर मानो ऐसे फैल रहे हैं जैसे कोई पखेरू अपने पंख फैलाकर हिल रहे हों ॥ ४६ ॥

(होश में आकर वसन्तसेना अपना हाथ दिखलाती है।)

भिक्षु—हाय, हाय, यह तो सुन्दर जेवरों से सजा हुआ किसी औरत का हाथ

दुदिए वि हत्थे ? (बहुविधं निर्वर्ण्य) पच्चभिजाणामि विअ एदं हत्थं। अथवा, किं विचालेण ? शच्चं शे ज्जेव हत्थे, जेण मे अभअं दिण्णं। भोदु, पेक्खिश्शं। (नाटयेनोद्घाटय, दृष्ट्वा, प्रत्यभिज्ञाय च) शा ज्जेव बुद्धोवाशिआ। [हा हा शुद्धालङ्कारभूषितः स्त्रीहस्तो निष्क्रामति। कथं द्वितीयोऽपि हस्तः ? प्रत्यभिजानामीव एतं हस्तम्। अथवा, किं विचारेण सत्यं स एव हस्तः, येन मे अभयं दत्तम्। भवतु, प्रेक्षिष्ये। सैव बुद्धोपासिका।]

(वसन्तसेना पानीयमाकाङ्क्षति।)

भिक्षुः—कधं उदअं मग्गेदि, दूले च दिग्घिआ। किं दाणिं एत्थ कलइश्शं ? भोदु, एदं चीवलं शे उवलि गालइश्शं। (तथा करोति।) [कथमुदकं मार्गयति, दूरे च दीर्घिका। किमिदानीमत्र करिष्यामि ? भवतु, एतच्चीवरमस्या उपरि गालयिष्यामि।]

(वसन्तसेना संज्ञां लब्ध्वा उत्तिष्ठति। भिक्षुः पटान्तेन बीजयति)

वसन्तसेना—अज्ज ! को तुमं ? [आर्य ! कस्त्वम् ?]

भिक्षुः—किं मं ण शुमलेदि बुद्धोवाशिआ दश-शुवण्णणिक्कीदं ? [किं मां न स्मरति बुद्धोपासिका दश-सुवर्ण-निष्क्रीतम् ?]

लङ्कारसुशोभितैः, स्त्रीहस्तः=कापि नारीकरः, निष्क्रामति=बहिरवलोकयति। द्वितीयोऽपि=अपरोऽपि, प्रत्यभिजानामि=पूर्वपरिचितोऽस्मि।

(वसन्तसेना, पानीयम्=सलिलम्, आकांक्षति=वाञ्छति।)

भिक्षुः—उदकम्=सलिलम्, मार्गयति=वाञ्छति, दीर्घिका=वापी, चीवरम्=कौपीनम्, गालयिष्यामि=निष्पीडयिष्यामि।

(वसन्तसेना, संज्ञां लब्ध्वा=सचेतना भूत्वा, उत्तिष्ठति। भिक्षु, पटान्तेन=वस्त्राञ्चलेन, बीजयति=वायूकरोति।)

वसन्तसेना—आर्य=मान्य, त्वम्=भवान्, कः=दयालु पुरुषः ?

बाहर निकल रहा है, ये लो, यह दूसरा हाथ भी। (**कुछ गौर कर**) यह हाथ तो कुछ जाना पहचाना-सा लगता है, अथवा—सच यह तो वही हाथ है जिसने जुआड़ियों से मुझे अभयदान दिया था। अच्छा, देखता हूँ। (**अभिनयपूर्वक पत्ते हटाकर, देख और पहचान कर**) यह तो वही बुद्धोपासिका वसन्तसेना है।

(वसन्तसेना इशारे से पानी माँगती है।)

भिक्षु—हाय, यह तो पानी माँग रही है। जलाशय दूर है। अब मैं क्या करूँ ? अच्छा, इस भगवे को निचोड़ता हूँ। (**निचोड़ता है।**)

(वसन्तसेना होश में आकर उठ बैठती है। संन्यासी वस्त्र से हवा करता है।)

वसन्तसेना—मान्यवर, आप कौन हैं ?

भिक्षु—अरी ओ बुद्धोपासिका, तुमने मुझे पहचाना नहीं, दस सोने के सिक्के देकर तुमने ही तो मुझे खरीदा है।

वसन्तसेना—सुमरामि, ण उण जधा अज्जो भणादि। वरं अहं उवरदा ज्जेव। [**स्मरामि, न पुनर्यथा आर्यो भणति। वरमहमुपरतैव।**]

भिक्षुः—बुद्धोवाशिए ! कि ण्णेदं ? [**बुद्धोपासिके ! किं नु इदम् ?**]

वसन्तसेना—(सनिर्वेदम्) जं सरिसं वेसभावस्स। [**यत् सदृशं वेशभावस्य।**]

भिक्षुः—उट्ठेदु उट्ठेदु बुद्धोवासिआ एदं पादव-समीवजादं लदां ओलम्बिआ। (इति लतां नामयति।) [**उत्तिष्ठतु, उत्तिष्ठतु, बुद्धोपासिका, एतां पादप-समीप-जातां लतामवलम्ब्य।**]

(वसन्तसेना गृहीत्वा उत्तिष्ठति।)

भिक्षुः—एदश्शिं विहाले मम धम्मवहिणिआ चिट्ठदि, तहिं शमश्शशिदमणा भविअ उवाशिआ गेहं गमिश्शदि। ता शेणं शेणं गच्छदु बुद्धोवाशिआ। (इति परिक्रामति, दृष्ट्वा) ओशलध अज्जा ! ओशलध। एशा तलुणी

भिक्षुः—किमिति जिज्ञासायाम्, माम्=भिक्षुम्, न=नहि, स्मरसि=स्मरणं करोसि, दससुवर्णनिष्क्रीतम्=मूल्येनाधिगतम्।

वसन्तसेना—स्मरामि=स्मरणं करोमि, न पुनः=भूयः, आर्यः=भवान्, भणति=दशसुवर्णनिष्क्रीतमात्मानं कथयति। अहम्=वसन्तसेना, उपरतैव=मृता एव, वरम्=श्रेष्ठम्, (स्वप्रशंसाश्रवणापेक्षया)।

भिक्षुः—बुद्धोपासिके, इदम्=पत्रसमूहान्तरालेऽचैतन्यावस्थयावस्थानम्, किम्=कथमिति प्रश्ने।

वसन्तसेना—(सनिर्वेदम्=स्वावमाननया सहितम्) यत्=यथा, सदृशम्=उपयुक्तम्, वेशभावस्य=वेश्यात्वस्य।

भिक्षुः—एताम्=पुरोवर्त्तिनीम्, पादपसमीपजाताम्=वृक्षसमीपोत्पन्नाम्, लताम्=वल्लीम्, अवलम्ब्य=गृहीत्वा, सन्यासीभूत्वा स्त्रियं न स्पृशतीति भावः। (इति लतां=व्रततिं, नामयति=अधःकरोति।)

(गृहीत्वा=अवलम्ब्य, उत्तिष्ठति=उत्थिता भवति।)

भिक्षुः—एतस्मिन्=आसन्नवर्तिनि, विहारे=बौद्धाश्रमे, मम=भिक्षोः, धर्मभगिनी=सम्बन्धतः भगिनीभूता कापि नारी न तु सहोदरा तिष्ठति। तस्मिन्=तत्र,

---

वसन्तसेना—याद तो आती हैं पर, जैसे आप कह रहे हैं वैसे नहीं। इससे तो वह मौत ही अच्छी थीं।

भिक्षु—बुद्धोपासिके, यह तुम्हें क्या हुआ है ?

वसन्तसेना—(दुःख के साथ) वेश्यालय में जन्म लेने का उचित फल ही है।

भिक्षु—बुद्धोपासिके, वृक्ष की पार्श्ववर्त्तिनी इस लता के सहारे उठकर खड़ी हो जाओ। (**ऐसा कहकर लता को झुकाता है।**)

(**वसन्तसेना लता के सहारे उठकर खड़ी हो जाती है।**)

भिक्षु—इस बौद्ध मठ में मेरी एक धर्म की बहन रहती है। वहाँ कुछ आराम

इत्थिआ, एशो भिक्खु त्ति शुद्धे मम एशे धम्मे । [एतस्मिन् विहारे मम धर्मभगिनी तिष्ठति । तस्मिन् समाश्वस्तमना भूत्वा उपासिका गेहं गमिष्यति । तत् शनैः शनैः गच्छतु बुद्धोपासिका । अपसरत आर्य्याः ! अपसरत । एषा तरुणी स्त्री, एष भिक्षुरिति शुद्धो मम एष धर्मः ।]

हत्थशंजदो मुहशंजदो इंदिअशंजदो शे क्खु माणुशे ।
किं कलेदि लाअउले तश्श पललोओ हत्थे णिच्चलो ।। ४७ ।।

[हस्तसंयतो मुखसंयत इन्द्रियसंयतः स खलु मानुषः ।
किं करोति राजकुलं तस्य परलोको हस्ते निश्चलः ।।]

(इति निष्क्रान्ताः ।)

इति वसन्तसेनामोटनो नामाष्टमोऽङ्कः ।

समाश्वस्तमनाः=स्वस्थचित्ता, उपासिका=भवती, गेहम्=निजगृहम्, गमिष्यति=व्रजिष्यति । तत्=तस्मात्, शनैः शनैः=मन्दं मन्दं, गच्छतु=चलतु, अपसरत=परतः सरन्तु, आर्याः=मान्याः, एषा=पुरोवर्त्तिनी, तरुणी=युवती, स्त्री=नारी, एषः=अयम्, भिक्षुः=संन्यासी, शुद्धः=दोषरहितः, मम=भिक्षोः, एषः=अयम्, धर्मः=अवश्यकर्त्तव्यकर्म, इति ।

अन्वयः—सः, खलु, मानुषः, हस्तसंयतः, मुखसंयतः, इन्द्रियसंयतः, राजकुलम्, तस्य, किम्, करोति, परलोकः, तस्य, हस्ते, निश्चलः ।। ४७ ।।

हस्तेति । सः खलु=निश्चितम्, मानुषः=मनुष्यत्वेन मान्यः, यः हस्तेन=करेण, संयतः=विविधदोषादिरहितः मुखेन=आननेन, संयतः=नियमितः, इन्द्रियैः=करणैः, संयतः=स्पर्शरूपादिषु अनासक्तः, राजकुलम्=शासकसमूहः, तस्य=जनस्य, किं करोति=किं विदधाति, न किमपीत्यर्थः । परलोकः=स्वर्गः, तस्य=तथाविधजनस्य, हस्ते=करे, निश्चलः=अचल इति । परिसंख्यालङ्कारः, उपगीतिवृत्तम् ।। ४७ ।।

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्ताः=बहिर्गताः पूर्वनिष्क्रान्तविटचेटशकारैः सहानयोर्बहुत्वे, निष्क्रान्ता इति बहुत्वम् ।)

इति, वसन्तसेनायाः मोटनम्=कण्ठनिपीडिनम् यस्मिन् सः वसन्तसेनामोटनं नाम अष्टमोऽङ्कः ।

कर आप घर लौट जाओगी । तो धीरे धीरे बढ़ो । (**ऐसा कहकर घूमता है । देखकर**) लोगो हटो, हटो । यह युवती स्त्री है और मैं सन्यासी हूँ । इसलिये मेरा यह पवित्र कर्त्तव्य है ।

वही मनुष्य वस्तुतः मनुष्य है, जिसका हाथ, मुँह और इन्द्रियाँ वश में रहती हैं । राजकुल उसका क्या बिगाड़ सकता है ? मरने के बाद स्वर्ग तो उसकी मुट्ठी में है ।

(सभी निकल जाते हैं ।)

आठवाँ अङ्क समाप्त ।

नवमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति शोधनकः ।)

शोधनकः—आणत्तम्हि अधिअरणभोइएहिं—'अरे सोहणआ ! ववहार-मण्डवं गदुअ आसणाइं सज्जीकरेहि' त्ति । ता जाव अधिअरणमण्डवं सज्जिदुं गच्छामि । (परिक्रम्यावलोक्य च) एदं अधिअरणमण्डवं, एस पविसामि । (प्रविश्य, सम्मार्ज्य, आसनमाधाय) विवित्तं कारिदं मए अधिअरणमण्डवं, विरइदा मए आसणा, ता जाव अधिअरणिआणं उण णिवेदेमि । (परिक्रम्या-वलोक्य च) कधं एसो रट्ठिअस्सालो दुट्ठदुज्जण-मणुस्सो इदो एव्व आअच्छदि, ता दिट्ठिपधं परिहरिअ गमिस्सं । (इत्येकान्ते स्थितः) [**आज्ञप्तोऽस्मि अधिकरण-भोजकैः—'अरे शोधनक ! व्यवहारमण्डपं गत्वा आसनानि सज्जीकुरु' इति । तद् यावदधिकरणमण्डपं सज्जितुं गच्छामि । इदमधिकरणमण्डपम्, एष प्रविशामि । विविक्तं कारितं मया अधिकरणमण्डपम्, विरचितानि मया आसनानि । तद् यावदधिक-रणिकानां पुनर्निवेदयामि । कथमेष राष्ट्रियश्यालो दुष्ट-दुर्जन-मनुष्य इत एव आगच्छति । तद् दृष्टिपथं परिहृत्य गमिष्यामि ।**]

अथाष्टमेऽङ्के नाटकनायिकायाः वसन्तसेनायाः गलमोटनजन्यजघन्यकर्मवर्णनात् शेषभूतं न्यायालये तद्व्यवहारादिरूपमितिवृत्तं वर्णयिष्यन् कविः शोधनकप्रवेशमाह—**तत इति** । शोधनकः=सम्मार्जनादिकर्त्ता न्यायालयस्य परिचरः ।

शोधनकः—आज्ञप्तोऽस्मि=आदिष्टोऽस्मि, अधिकरणभोजकैः=न्यायाधीशैः, व्यवहारमण्डपम्=न्यायालयम् । तद्यथा—'परस्परमनुष्याणां स्वार्थविप्रतिपत्तिषु, वाक्यान्न्यायाद् व्यवस्थानं व्यवहार उदाहृतः' इति मिताक्षरायाम् । गत्वा=समागत्य, आसनानि=पीठानि, सज्जीकुरु=व्यवस्थितं विधेहि, तत्=तस्मात्, यावदिति अवधारणे, अधिकरणमण्डपम्=विचारभवनम्, सज्जितुम्=यथास्थानं स्थापितुम्, गच्छामि=व्रजामि, इदम्=एतत्, अधिकरणमण्डपम्=न्यायभवनम्, एषः=अहम्, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि । विविक्तम्=सम्मार्जनादिना विशुद्धीकृतम्, मया=शोधनकेन, विरचितानि=व्यवस्थितानि । तत्=तस्मात् अधिकरणिकानाम्—अधिकरणे=

(इसके बाद मंच पर शोधनक आता है ।)

शोधनक—न्यायालय के अधिकारियों ने मुझे आज्ञा दी है—'अरे शोधनक कचहरी में जाकर उपस्करों को झाड़पोंछकर ठीक करो ।' अतः मैं न्यायालय के प्रकोष्ठों को साफ करने जाता हूँ । (**घूमकर और देखकर**) हाँ, यही तो वह विचार-मण्डप है । तो चलूँ, इसमें प्रवेश करूँ । (**भीतर जाकर, साफ सुथरा कर, आसनों को यथास्थान लगा कर**) न्यायमण्डप को साफ सुथरा कर दिया, उपस्करों को भी यथास्थान लगा दिया । तो अब चलकर न्यायाधीशों से चलकर निवेदन कर दूँ ।

(ततः प्रविशति उज्ज्वलवेषधारी शकारः ।)

शकारः—

ण्हादेहं शलिलजलेहिं पाणिएहिं उज्जाणे उववणकाणणे णिशण्णे ।
णालीहिं शह जुवदीहिं इत्थिआहिं गन्धव्वे विअ शुहिदेहि अंगकेहिं ॥१ ॥

[स्नातोऽहं सलिलजलैः पानीयैः उद्याने उपवनकानने निषण्णः ।
नारीभिः सह युवतीभिः स्त्रीभिः गन्धर्व इव सुहितैरङ्गकैः ॥]

खणेण गण्ठी खणजूलके मे खणेण बाला खणकुन्तला वा ।
खणेण मुक्के खण उद्धचूडे चित्ते विचित्ते हगे लाअशाले ॥ २ ॥

[क्षणेन ग्रन्थिः क्षणजूलिका मे क्षणेन बालाः क्षणकुन्तला वा ।
क्षणेन मुक्ताः क्षण ऊर्ध्वचूडा चित्रो विचित्रोऽहं राजश्यालः ॥]

न्यायालये, ये नियुक्तास्तेषाम्, निवेदयामि=सूचयामि, राष्ट्रियश्युालकः=राजश्यालकः शकारः, दुष्टः=प्रकृत्याऽधमः, दुर्जनः=व्यवहारेण निकृष्टजनः, मनुष्यः=केवलं जन्मना नरः, इत एव=अस्यां दिशि एव, आगच्छति=आयाति । तत्=तस्मात्, दृष्टिपथम्=साक्षात्कारम्, परिहृत्य=परित्यज्य, गमिष्यामि=अन्यत्र व्रजामि । (ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति, उज्ज्वलवेशधारी=भव्यपरिधानालङ्कृतः, शकारः ।)

अन्वयः—अहम्, सलिलजलैः, पानीयैः स्नातः, नारीभिः युवतीभिः स्त्रीभिः सह, उद्याने उपवनकानने, निषण्णः, सुहितैः, अङ्गकैः, गन्धर्वः, इव, निषण्णः ॥ १ ॥

स्नात इति । अहम्=विशिष्टाधिकारसम्पन्नः शकारः, सलिलैः जलैः पानीयैः= जलैः, स्नातः=विहितस्नानः, नारीभिः युवतीभिः स्त्रीभिः=वनिताभिः, सह=साकम्, उद्याने उपवनकानने=गृहवाटिकायाम्, निषण्णः=उपविष्टः, सुहितैः=सुसङ्घटितैः, अङ्गकैः=करचरणादि-अवयवैः, गन्धर्वः=देवयोनिविशेषः, इव=यथा, निषण्णः= स्थितोऽस्मि । शकारवचनत्वाद्युक्तमेवात्र जलादिकं पुनरुक्तम्, प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥ १ ॥

अन्वयः—मे, क्षणेन, ग्रन्थिः, क्षणजूलिका, क्षणेन बाला, वा क्षणकुन्तलाः, क्षणेन मुक्ताः, क्षणम्, अर्धचूडाः, अहम्, चित्रः विचित्रः, राजश्यालः (अस्मि) ॥ २ ॥

क्षणेनेति । मे=मम शकारस्य, क्षणेन=क्षणकालम्, ग्रन्थिः=कचान्तं बन्धनम्, क्षणेन=कस्मिंश्चित्समये, जुलिका=उपरिराशिकृतबन्धविशेषः, क्षणेन=किञ्चित्-

---

(**थोड़ा घूमकर और देखकर**) अरे, यह राजा का साला दुष्ट और व्यवहार से दुर्जन आदमी तो इधर ही आ रहा है ? तो फिर इसकी आँख बचाकर ही निकल जाऊँ । (**इस प्रकार एकान्त में खड़ा हो जाता है।**)

(**इसके बाद साफ कपड़े पहने हुए शकार मंच पर आता है**)

शकार—मैंने पानी से नहाया है, सुडौल अङ्गों वाला मैं शकार युवतियों के बीच फुलवाड़ी में बैठा गन्धर्व की तरह लगता हूँ ॥ १ ॥

मेरे शिर के बालों में एकक्षण में गाँठ लगती है तो दूसरे ही क्षण में जुड़ा बँध जाता है; क्षणभर में ये बाल सामान्य वन जाते हैं और क्षण में ही घुँघराले बन जाते

अवि अ। विशगण्ठि-गब्भपविट्ठेण विअ कीडएण अन्तलं मग्गमाणेण पाविदं मए महदन्तलं। ता कश्श एदं किविण-चेट्टिअं पाडइश्शं? (स्मृत्वा) आं शुमलिदं मए—दलिद्द-चालुदत्तश्श एदं किविणचेट्टिअं पाडइश्शं। अण्णं च, दलिद्दे क्खु शे। तश्श शव्वं शम्भावीअदि। भोदु, अधिअलणमंडवं गदुअ अग्गदो, ववहालं लिहावइश्शं। जधा चालुदत्तकेण वशन्तशेणीआ मोडिअ मालिदा। जाव अधिअलणमण्डवं ज्जेव गच्छामि। (परिक्रम्यावलोक्य च) एदं तं अधिअलणमण्डवं। एत्थ पविशामि। (प्रविश्यावलोक्य च) कधं आशणाइं दिण्णाइं चिट्ठन्ति। जाव आअच्छन्ति अधिअलणभोइआ, दाव एदश्शिं दुव्वचत्तले मुहुत्तअं उवविशिअ पडिवालइश्शं। (तथास्थितः।)

[अपि च। बिस-ग्रन्थि-गर्भ-प्रविष्टेनेव कीटकेनान्तरं मार्गमाणेन प्राप्तं मया, महदन्तरम्। तत् कस्येदं कृपणचेष्टितं पातयिष्यामि? आं स्मृतं मया, दरिद्रचारुदत्तस्येदं कृपणचेष्टितं अन्यच्च, दरिद्रः खलु सः। तस्य सर्वं सम्भाव्यते। भवतु, अधिकरणमण्डपं गत्वा

कालान्तरेण, ते=केशाः, बाला=सामान्यकेशाः, वा=अथवा, क्षणकुन्तला=कालान्तरेण कुटिलबाला अथवा 'चिकुरः, कुन्तलो बालाः' इत्यमरेण पुनरुक्तमेव, क्षणेन मुक्ताः =स्वाभावतः लम्बमानाः, क्षणे ऊर्ध्वचूडाः—ऊध्वम्=उपरिभागे, चूडा=शिखा येषां तथाभूताः, अहम्=शकारः, चित्रः विचित्रः=विलक्षणः, राज्ञः=नृपस्य, श्यालः =पत्नीभ्राता अस्मि। उपजातिवृत्तम् ॥ २ ॥

अपि च=अन्यच्च, बिसस्य=कमलदण्डस्य, ग्रन्थेः=पर्वणः, गर्भे=अभ्यन्तरे, प्रविष्टेन=गतेन, कीटकेन=अतिक्षुद्रजन्तुना, इव=यथा, अन्तरम्=अवकाशम् बहिर्गमनाय मार्गं=छिद्रम्, मार्गमाणेन=अन्वेषयता, मया=शकारेण, महदन्तरम्=विशिष्टोपायम्, प्राप्तम्=अधिगतम्। तत्=तस्मात्, कस्य=पुरुषस्य, इदम्=कुकर्म हत्यात्मकम्, कृपणचेष्टितम्=क्षुद्रव्यवहारम्, पातयिष्यामि=स्थापयिष्यामि, आमिति स्मरणार्थकमव्ययम्, मया=शकारेण, स्मृतम्=स्मरणं कृतम्, दरिद्रचारुदत्तस्य==निर्धनचारुदत्तोपरि, इदम्=हत्यात्मकं दुष्कर्मम्, पातयिष्यामि=आरोपयिष्यामि। अन्यच्च=अपरञ्च, सः=असौ चारुदत्तः, दरिद्रः=दुर्गतः अस्ति, तस्य=चारुदत्तस्य, सर्वम्=स्त्रीहननं कृत्वा सर्वस्वापहरणम्, सम्भाव्यते=दरिद्रत्वाद् युज्यते। भवतु=यातु, अधिकरणमण्डपम्=न्यायभवनम्, गत्वा=समुपस्थितो भूत्वा, अग्रतः=प्रथमतः,

---

हैं, क्षणभर में ये बिखर जाते हैं तो दूसरे क्षण ऊपर की ओर उठकर वेणी का आकार लेते हैं। मैं बड़ा विलक्षण हूँ। राजा का साला हूँ ॥ २ ॥

और भी—कमलदण्ड के भीतर घुसे कीड़े की तरह अपनी राह खोजते हुए मैंने भयंकर अपराध कर डाला। तो फिर इस जघन्य अपराध को किस पर थोपूँ। (**कुछ याद करके**) हाँ, एक बात तो याद आई, इस अपराध को निर्धन चारुदत्त पर तो थोपा जा सकता है। दूसरी बात यह भी है कि वह है भी परम दरिद्र, अतः उसके

पातयिष्यामि । अग्रतो व्यवहारं लेखयिष्यामि । यथा चारुदत्तेन वसन्तसेना मोटयित्वा मारिता । तद्यावदधिकरणमण्डपमेव गच्छामि । एतत्तदधिकरणमण्डपम्, अत्र प्रविशामि । कथमासनानि दत्तानि तिष्ठन्ति । यावदागच्छन्ति अधिकरणभोजकाः, तावदेतस्मिन् दूर्वाचत्वरे मुहूर्त्तमुपविश्य प्रतिपालयिष्यामि ।]

शोधनकः—(अन्यतः परिक्रम्य, पुरो दृष्ट्वा) एदे अधिअरणिआ आअच्छन्ति । ता जाव उवसप्पामि । (इत्युपसर्पति ।) [एते अधिकरणिका आगच्छन्ति । तद् यावदुपसर्पामि ।]

(ततः प्रविशति श्रेष्ठि-कायस्थादि-परिवृतोऽधिकरणिकः ।)

अधिकरणिकः—भो भोः श्रेष्ठि-कायस्थौ !

व्यवहारम्=अभियोगम्, लेखयिष्यामि=लेखद्वाराऽङ्कयिष्यामि, यथा=येन रूपेण, चारुदत्तेन मोटयित्वा=गलदेशे निष्पीडच, वसन्तसेना, मारिता=व्यापादिता, (परिक्रम्य =कियत् पदं गत्वा, अवलोक्य=दृष्ट्वा) तत्=तस्मात्, एतत्=पुरोवर्त्ती, अधिकरणमण्डपम्, अत्र=अस्मिन् मण्डपे, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि । कथमिति प्रश्ने, आसनानि=उपस्कराणि, दत्तानि=व्यवस्थितानि, तिष्ठन्ति । यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, आगच्छन्ति=आयान्ति, अधिकरणभोजकाः=न्यायाधीशाः, तावत्= तावत्कालपर्यन्तम्, एतस्मिन् दूर्वाचत्वरे=दूर्वापूर्णप्राङ्गणे, मूहूर्त्तम्=क्षणम्, उपविश्य= उपवेशनं कृत्वा, प्रतिपालयिष्यामि=प्रतीक्षिष्ये ।

शोधनकः—(अन्यतः=अपरस्यां दिशि, परिक्रम्य=कियत् पदानि गत्वा, पुरः= अग्रे, दृष्ट्वा=अवलोक्य, एते अधिकरणिकाः=न्यायभवनाधिकारिणः, आगच्छन्ति= आयान्ति, तत्=तस्मात्, उपसर्पामि=अग्रे गच्छामि । (इति=एवमुक्त्वा, उपसर्पति =अग्रसरो भवति ।)

(ततः=तत्पश्चात्, श्रेष्ठी=वैश्यः, कायस्थः=विषयलेखकः आदिपदेन अपरोऽपि, तैः परिवृतः=वेष्टितः, अधिकरणिकः=न्यायाधीशः, प्रविशति ।)

अधिकरणिकः—भो भो=हे हे, श्रेष्ठी=वैश्यः, कायस्थः=जातिविशेषः तौ,

---

लिए सब कुछ सम्भव माना जा सकता है । अच्छा तो कचहरी जाकर सबसे पहले मैं अभियोग लिखवा दूँ कि चारुदत्त ने वसन्तसेना को गला घोंटकर मार डाला है । तो फिर कचहरी ही चलूँ । (**घूमकर और देखकर**) सामने तो न्यायालय है तो चलूँ भीतर ही । (**भीतर जाकर और देखकर**) कचहरी तो लग गई है, पर न्यायाधीश नहीं आये हैं । तो अच्छा हो इस आँगन की दूब पर बैठकर उनको आने की प्रतीक्षा करूँ । (**उसी प्रकार बैठ जाता है ।**)

शोधनक—(**दूसरी ओर घूमकर और आगे की ओर देखकर**) कचहरी के पदाधिकारीगण अब आ रहे हैं, तो अब उनके पास चलूँ । (**चलता है ।**)

(**इसके बाद व्यापारी, कायस्थ एवं अन्य लोगों के साथ न्यायाधीश का प्रवेश ।**)

न्यायाधीश—अरे ओ व्यापारी एवं कायस्थ (**पेशकार**) ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—आणवेदु अज्जो । [आज्ञापयतु आर्यः ।]

अधिकरणिकः—अहो ! व्यवहारपराधीनतया दुष्करं खलु परचित्तग्रहणमधिकरणिकैः ।

छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा न्यायेन दूरीकृतं
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे रागाभिभूताः स्वयम् ।
तैः पक्षापरपक्षवर्द्धितबलैर्दोषैर्नृपः स्पृश्यते
संक्षेपादपवाद एव सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ।। ३ ।।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—आज्ञापयतु=आदिशतु, आर्यः=मान्यः ।

अधिकरणिकः—अहो=इत्याश्चर्यम्, व्यवहारपराधीनतया—व्यवहारस्य=विवादनिर्णयस्य, पराधीनतया=परायत्ततया । पृथ्वीधरस्तु—"व्यवहारोनाम विवादः, तस्य परायत्ततया तन्मात्रप्रयोज्यत्वेन, परस्य=अन्यस्य, अन्यत् स्मृतिशास्त्रं कामन्दकादिनीतिशास्त्रं बुद्धिश्च नीतिपट्वी, सत्यासत्यपराभिप्रायज्ञानं दुर्ज्ञेयमधिकरणिकैर्न्यायाधीशैरिति तत्त्वम्" इत्येवं व्याख्या विदधाति । दुष्करम्=दुरधिगम्यम्, खलु=निश्चयेन, चित्तग्रहणम्=मनोभावाभिबोधम्, अधिकरणिकैः=न्यायाधीशैरिति ।

अन्वयः—पुरुषाः, न्यायेन, दूरीकृतम्, कार्यम्, छन्नम्, उपक्षिपन्ति, रागाभिभूताः, स्वयम्, स्वान्, दोषान्, अधिकरणे, न, कथयन्ति, पक्षापरपक्षवर्धितबलैस्तैः, दोषैः, नृपः, स्पृश्यते, संक्षेपात्, द्रष्टुः, अपवादः, एव, सुलभः, गुणः, दूरतः ।। ३ ।।

छन्नमिति । पुरुषाः=वादिप्रतिवादिजनाः, न्यायेन=नीत्या, दूरीकृतम्=वर्जितम्, कार्यम्=अभियोगम्, छन्नम्=असत्यम्, उपक्षिपन्ति=उपस्थापयन्ति, रागाभिभूताः=आसक्त्याक्रान्ताः, स्वयम्=स्वकीयम्, स्वान्=आत्मीयान्, दोषान्=दुरितान्, अधिकरणे=न्यायालये, न=नहि, कथयन्ति=वदन्ति, पक्षापरपक्षवर्धितबलैः—पक्षापरपक्षाभ्याम्=दोषसंस्थापननिराकरणपराभ्यां पक्षविपक्षाभ्याम्, वर्द्धितम्=वृद्धिगतम्, बलम्=शक्तिः येषां तादृशैः, तैः=व्यवहारविवेचनोपस्थापितैः, दोषैः=तज्जन्यपापैः, नृपः=भूपतिः, स्पृश्यते=सम्बध्यते, संक्षेपात्=पराजितेन दोषारोपात्, द्रष्टुः=न्यायाधिपतेः, अपवादः=अपयशः, एव सुलभः=सुकरः, गुणाः=कीर्तयः, दूरतः=दूरे तिष्ठति । अस्मिन् श्लोके काव्यालङ्कारः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।।३।।

वणिक-कायस्थ—आर्य, आज्ञा दें ।

न्यायाधीश—न्याय-पराधीन होने के कारण वादी-प्रतिवादी के मनोगत भावों को जान लेना हम न्यायाधीशों के लिए बड़ा ही कठिन काम है । क्योंकि—

वादी और प्रतिवादीगण सच्ची बात छिपाकर अभियोग उपस्थित करते हैं । क्रोध या आसक्ति के कारण अपने दोषों को छिपाकर अभियोग उपस्थित करते हैं । पक्ष-विपक्ष के द्वारा परिवर्धित पाप ही न्यायाधीश तक पहुँच पाता है । संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि न्यायाधीश की बहुधा निन्दा ही होती है । कीर्त्ति तो उससे बहुत दूर रहती है ।। ३ ।।

अपि च—

छन्नं दोषमुदाहरन्ति कुपिता न्यायेन दूरीकृताः
स्वान् दोषान् कथयन्ति नाधिकरणे सन्तोऽपि नष्टा ध्रुवम्।
ये पक्षापरपक्षदोषसहिताः पापानि संकुर्वते
संक्षेपादपवाद एष सुलभो द्रष्टुर्गुणो दूरतः ॥ ४ ॥

यतः, अधिकरणिकः खलु—

शास्त्रज्ञः कपटानुसारकुशलो वक्ता न च क्रोधन-
स्तुल्यो मित्र-पर-स्वकेषु चरितं दृष्ट्वैव दत्तोत्तरः।
क्लीबान् पालयिता शठान् व्यथयिता धर्मेऽतिलोभान्वितो
द्वार्भावे परतत्त्वबद्धहृदयो राज्ञश्च कोपापहः ॥ ५ ॥

अन्वयः—सन्तः, अपि, कुपिताः, न्यायेन, दूरीकृताः, दोषम्, छन्नम्, उदाहरन्ति स्वान्, दोषान्, अधिकरणे, न, कथयन्ति, पक्षापरपक्षदोषसहिताः, ये, पापानि कुर्वते ध्रुवम्, नष्टाः, संक्षेपात्, द्रष्टुः, अपवादः, एव, सुलभः, गुणः, दूरतः ॥ ४ ॥

छन्नमिति। सन्तः=साधवः, अपि=चेत्, कुपिताः=क्रुद्धाः, न्यायेन=नीत्या, सत्येन वा, दूरीकृताः=विरहिताः, दोषम्=अपराधम्, छन्नम्=आवृत्तम्, उदाहरन्ति =उपस्थापयन्ति, स्वान्=आत्मीयान्, दोषान्=अभियोगान्, अधिकरणे=न्यायालये, न=नहि, कथयन्ति=वदन्ति, पक्षापरपक्षदोषसहिताः=वादि-प्रतिवादिपापेन युक्ताः, ये=सत्पुरुषाः, पापानि=कुकृत्यानि, संकुर्वते=कुर्वन्ति, ध्रुवम्=अवश्यम्, नष्टाः= विनष्टाः भवन्ति, संक्षेपात्=संक्षिप्ततः, द्रष्टुः=न्यायदर्शिनः अपवादः=निन्दा, एव सुलभः=अनायासलभ्यः, गुणः=प्रशंसा, तु दूरतः एव=दुष्प्राप्य एव भवति। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ ४ ॥

अन्वयः—शास्त्रज्ञः, कपटानुसारकुशलः, वक्ता, क्रोधनः, न, मित्रपरस्वकेषु, तुल्यः, चरितं, दृष्ट्वा, एव, दत्तोत्तरः, क्लीबान्, पालयिता, शठान्, व्यथयिता, धर्म्ये, अतिलोभान्वितः, द्वार्भावे, परतत्त्वबद्धहृदयः, राज्ञः, कोपापहः, च ॥ ५ ॥

शास्त्रज्ञ इति। शास्त्रज्ञः=राजधर्मनीतिमर्मज्ञः, कपटानुसारकुशलः=कैतवानु-

---

और भी—

क्रुद्ध वादीप्रतिवादी सच्ची बात छिपाकर असत्य अभियोग उपस्थित करते हैं। सज्जन लोग भी अपनी गलती कबूल नहीं करते हैं। अतः ऐसे लोग भी न्यायालय में भ्रष्ट हो जाते हैं। वादी या प्रतिवादी दोनों ही पक्षों से दूषित हो जाते हैं। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विचारक पर दोषारोपण जितना सरल है, उसके गुणों को प्रकट करना उतना ही कठिन ॥ ४ ॥

इसलिए विचारक को—

शास्त्र मर्मज्ञ होना चाहिए, वादी-प्रतिवादी के कपटपूर्ण व्यवहार को समझने में सुदक्ष होना चाहिए : वक्ता एवं क्रोधरहित होना चाहिए। मित्र, शत्रु एवं पुत्रादि में

श्रेष्ठिकायस्थौ—अज्जस्स वि णाम गुणे दोसो त्ति वुच्चदि । जइ एव्वं ता चन्दालोए वि अन्धआरोत्ति वुच्चदि । [आर्यस्यापि नाम गुणे दोष इत्युच्यते । यद्येवं तदा चन्द्रालोकेऽप्यन्धकार इत्युच्यते ।]

अधिकरणिकः—भद्र ! शोधनक ! अधिकरणमण्डपस्य मार्गमादेशय ।

शोधनकः—एदु एदु अधिअरणभोइओ एदु । [एतु एतु अधिकरणभोजक एतु ।]

(इति परिक्रामन्ति ।)

सरणे प्रवीणः, वक्ता=वाग्मी, क्रोधनः=क्रोधी, न=नहि, मित्रपरस्वकेषु=सुहृत-शत्रु-स्वपरिवारेषु च तुल्यः=समन्यायः, चरितम्=व्यवहारम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, एव दत्तोत्तरः=श्रावितनिर्णयः, क्लीबान्=अबलान्, पालयिता=संरक्षकः, शठान्=दुष्टान्, व्यथयिता=दण्डयिता, धर्म्ये=धर्मकार्ये, अतिलोभान्वितः=अतीवेच्छा-युक्तः, द्वार्भावे—द्वाः=उपायः, "द्वारं निर्गमेऽभ्युपायः ।" इति हैमः । तस्य भावे=उपस्थितौ, परतत्त्वबद्धहृदयः=वादि-प्रतिवादियथार्थताज्ञानं दत्तचित्तः, राज्ञः=नृपस्य, कोपापहः=क्रोधापसारकः, भवेत् पूर्वोक्तं वृत्तम् ॥ ५ ॥

श्रेष्ठि-कायस्थौ—आर्यस्याऽपि=भवतः अपि, गुणे=न्यायविधाने, दोषः=त्रुटिः, इति=एवम्, उच्यते=कथ्यते, यदि=चेत्, एवम्=पूर्वोक्तविधम्, तदा=तर्हि, चन्द्रस्य=शशिनः, आलोके=प्रकाशे, अन्धकारः=तमः, इति । यथा चन्द्रस्य चन्द्रिकायां न कश्चिदन्धकारः सिद्धं कर्त्तुं शक्नोति । तथैव भवतः गुणे न कश्चित् दोषमपि निस्सारयितुं समर्थ इति ।

अधिकरणिकः—भद्र शोधनक=हे शोधनक, अधिकरणमण्डपस्य=न्यायालयस्य, मार्गम्=पथम्, आदेशय=दर्शय ।

शोधनकः—एतु एतु=समागच्छन्तु, अधिकरणभोजकः=न्यायाधीशः ।

(इति=एवमुक्त्वा, परिक्रामन्ति=चलन्ति ।)

समदृष्टि होना चाहिए । प्राप्त अभियोग पर विचार कर उचित निर्णय देना चाहिए । उन्हें दुर्बलों का संरक्षण एवं दुष्टों को दण्डित करना चाहिए । उन्हें धर्म में आस्था, लोभशून्यता, सन्दिग्ध वस्तु के तत्त्वान्वेषी तथा राजा के कोप को दूर हटाने वाला होना चाहिए ॥ ५ ॥

वणिक्-कायस्थ—यदि आपके गुणों में भी दोष कहा जाय तो चन्द्रमा की चाँदनी में भी अन्धकार कहा जायेगा ।

न्यायाधीश—भद्र शोधनक, न्यायालय का मार्ग बतलाओ ।

शोधनक—आइए श्रीमान् इधर से, इधर से ।

(**चलते हैं ।**)

शोधनकः—एदं अधिअरणमण्डवं, ता पविसन्तु अधिअरणभोइआ। [एतदधिकरणमण्डपम्, तत्प्रविशन्तु अधिकरणभोजकाः ।]

(सर्वे च प्रविशन्ति ।)

अधिकरणिकः—भद्र शोधनक ! बहिर्निष्क्रम्य ज्ञायताम्—कः कः कार्य्यार्थी इति ।

शोधनकः—जं अज्जो आणवेदि । (इति निष्क्रम्य) अज्जा ! अधिअरणिआ भणन्ति—'को को इध कज्जत्थी' त्ति । [यदार्यं आज्ञापयति । आर्याः ! अधिकरणिका भणन्ति—'कः कः इह कार्यार्थी' इति ।]

शकारः—(सहर्षम्) उवत्थिए अधिअलणिए। (साटोपं परिक्रम्य) हग्गे वलपुलिशे मणुश्शे वाशुदेवे लट्टिअशाले लाअशाले कज्जत्थी। [उपस्थितः अधिकरणिकः । अहं वरपुरुषः मनुष्यः वासुदेवः राष्ट्रियश्यालः राजश्यालः कार्यार्थी ।]

शोधनकः—(ससम्भ्रमम्) हीमादिके ! पढमं ज्जेव रट्टिअशालो कज्जत्थी। भोदु, अज्ज ! मुहुत्तं चिट्ठ, दाव अधिअरणिआणं णिवेदेमि। (उपगम्य) अज्ज ! एसो क्खु रट्टिअशालो कज्जत्थी ववहारे उवत्थिदो। [हन्त ! प्रथम-

---

शोधनकः—एतत्, अधिकरणमण्डपः=न्यायालयः, तत्=तस्मात्, प्रविशन्तु= समायान्तु, अधिकरणभोजकाः । (सर्वे=न्यायाधीशादयः, प्रविशन्ति)

अधिकरणिकः—बहिर्निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा, ज्ञायताम्=अवबुध्यताम्, कः कार्यार्थी =विवादनिर्णयार्थी ।

शोधनकः—यत्=यथा, आर्यं=मान्य, आज्ञापयति=आदिशति । (निष्क्रम्य= बहिर्गत्वा) आर्याः=मान्याः, अधिकरणिकाः=न्यायाधीशाः, भणन्ति=कथयन्ति, 'कः कः कार्यार्थी' इत्यादि ।

शकारः—(सहर्षम्=सानन्दम्) उपस्थितः=समागतः, अहम्=शकारः, वर-पुरुषः=श्रेष्ठजनः, मनुष्यः=लोकः, वासुदेवः=श्रीकृष्णः, राष्ट्रियश्यालः=नृपपत्नी-भ्राता, कायार्थी=व्यवहारार्थी ।

शोधनकः—(ससम्भ्रमम्=सविस्मयम्) हन्त=विस्मयसूचकमव्ययमिदम्, प्रथमम्

शोधनक—यही न्यायालय है । आप सभी इसमें प्रवेश करें ।

(सभी भीतर जाते हैं ।)

अधिकरणिक—शोधनक, बाहर जाकर पता करो, कौन मुकदमा पेश करना चाहते हैं ।

शोधनक—श्रीमान् की जैसी आज्ञा । (**बाहर जाकर**) सज्जनो, न्यायाधीश कहते हैं—'जिन्हें अभियोग उपस्थित करना है, वे हाजिर हों ।'

शकार—(**खुश होकर**) उपस्थित हैं न्यायाधीश, (**दम्भ के साथ, दो चार कदम चलकर**) अरे, मैं प्रधान पुरुष, मनुष्य, श्रीकृष्ण, राजा का साला, अभ्यर्थी हूँ ।

शोधनक—(**घबड़ाकर**) हाय, सबसे पहले राजा का साला ही मुद्दई बनकर हाजिर है । अच्छा, महोदय ! आप एक क्षण रुकें । मैं न्यायाधीशों को सूचित कर दूँ ।

मेव राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी। भवतु, आर्यः ! मुहूर्तं तिष्ठ, तावदधिकरणिकानां निवेदयामि। आर्याः ! एष खलु राष्ट्रियश्यालः कार्यार्थी व्यवहारे उपस्थितः।]

अधिकरणिकः—कथं प्रथममेव राष्ट्रिश्यालः कार्यार्थी। यथा—सूर्योदये उपरागो महापुरुषविनिपातमेव कथयति। शोधनक! व्याकुलेनाद्य व्यवहारेण भवितव्यम्। भद्र, निष्क्रम्य उच्चताम्—गच्छ, अद्य न दृश्यते तव व्यवहार इति।

शोधनकः—जं अज्जो आणवेदि। (निष्क्रम्य, शकारमुपगम्य) अज्ज! अधिअरणिआ भणन्ति—'अज्ज गच्छ, ण दीशदि तव ववहार।' **[यथार्यं आज्ञापयति। आर्य ! अधिकरणिका भणन्ति—'अद्य गच्छ, न दृश्यते तव व्यवहारः।']**

शकारः—(सक्रोधम्) आः ! किं ण दीशदि मम ववहाले ? जइ ण दीशदि, तदो आवुत्तं लाआणं पालअं वहिणीवदिं विण्णविअ वहिणिं अत्तिकं च विण्णविअ एदं अधिअलणिअं दूले फेलिअ एत्थ अण्णं अधिअलणिअं ठावइश्शं। (इति गन्तुमिच्छति।) **[आः किं न दृश्यते मम व्यवहारः ? यदि न दृश्यते, तदा आवुत्तं राजानं पालकं भगिनीपतिं विज्ञाप्य भगिनीं मातरञ्च विज्ञाप्य एतमधिकरणिकं दूरीकृत्य अत्र अन्यमधिकरणिकं स्थापयिष्यामि।]**

=सर्वप्रथमम्, राष्ट्रियश्यालः=नृपपत्नीभ्राता, एव, कार्यार्थी=अभ्यर्थी। भवतु=यातु। आर्य=भवान्, मुहूर्त्तम्=क्षणं, व्यवहारे=व्यवहारनिमित्तम्।

अधिकरणिकः—कथमिति प्रश्ने, सूर्योदये=सूर्योदयकाले, उपरागः=ग्रहणम्, महापुरुषस्य=वरेण्यजनस्य, विनिपातमेव=विनाशमेव, कथयति=सूचयति, व्याकुलेन=विक्षोभितेन, व्यवहारेण=न्यायविचारेण। भद्र=हे शोधनक, निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा, उच्यताम्=कथ्यताम्, गच्छ=याहि, न दृश्यते=न विचार्यते, तव=भवतः।

शोधनकः—(निष्क्रम्य=बहिर्गत्वा, शकारमुपगम्य=समीपं गत्वा) अधिकरणिकाः=न्यायाधिकारिणः, भणन्ति=कथयन्ति।

शकारः—(सक्रोधम्=सकोपम्) किन्नु=कथन्नु, मम=शकारस्य, व्यवहारः=अभियोगः, तर्हि आवुत्तम्=भगिनीपतिम्, विज्ञाप्य=निवेदयित्वा, स्थापयिष्यामि

(न्यायाधीश के पास जाकर) आर्य, राजा का साला मुद्दई बनकर न्याय कराने के लिए उपस्थित है।

अधिकरणिक—क्या पहला वादी राजा का साला है ? जैसे सूर्योदय के समय का ग्रहण किसी महान पुरुष की मृत्यु की सूचना है, आज न्याय परामर्श में व्याकुलता छा जायेगी। भले आदमी बाहर तो निकलो, जाकर कह दो आज तुम्हारे मुकदमे पर विचार नहीं होगा।

शोधनक—जैसी आपकी आज्ञा। **(बाहर निकल कर, शकार के पास जाकर)** न्यायाधीशों का कहना है कि आज आप के अभियोग पर विचार नहीं होगा।'

शकार—**(गुस्साकर)** आह, मेरे मुकदमे पर आज विचार नहीं किया जायेगा ?

शोधनकः—अज्ज ! रट्ठिअशालअ ! मुहुत्तअं चिट्ठ । दाव अधिअरणिआणं णिवेदेमि । (अधिकरणिकमुपगम्य) एसो रट्ठिअशालो कुविदो भणादि । (इति तदुक्तं भणति ।) [**आर्य ! राष्ट्रियश्याल ! मुहूर्त्तकं तिष्ठ, तावदधिकरणिकानां निवेदयामि । एष राष्ट्रियश्यालः कुपितो भणति ।**]

अधिकरणिकः—सर्वमस्य मूर्खस्य सम्भाव्यते । भद्र ! उच्यताम्—आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहारः ।

शोधनकः—(शकारमुपगम्य) अज्ज ! अधिअरणिआ भणन्ति—आअच्छ दीशदि तव ववहारो ! ता पविसदु अज्जो । [**आर्य ! अधिकरणिका भणन्ति—'आगच्छ, दृश्यते तव व्यवहारः' । तत् प्रविशतु आर्यः ।**]

शकारः—पढमं भणन्ति—'ण दीशदि, शम्पदं दीशदि' त्ति । ता णाम

=नियोजयिष्यामि, भगिनीं मातरञ्चेति लोकवेदविरुद्धं तथापि शकारवचनात् उपेक्ष्यमेवेति ।

शोधनकः—आर्य=भवान्, मुहूर्त्तकम्=क्षणम्, तिष्ठ=प्रतीक्षां कुरु, अधिकरणिकानाम्=न्यायपदाधिकारिणाम्, निवेदयामि=सूचयामि (अधिकरणिकम्=न्यायाधीशम्, उपगम्य=समीपं गत्वा) एषः=असौ, राष्ट्रियश्यालः, कुपितः=क्रुद्धः, भणति=कथयति । (इति=एवम्, तदुक्तम्=शकारोक्तम् ।)

अधिकरणिकः—सर्वम्=सकलम्, अस्य=एतस्य, मूर्खस्य=अज्ञस्य, सम्भाव्यते=सम्भावना क्रियते । उच्यताम्=कथ्यताम्, आगच्छ=आगम्यताम्, दृश्यते=निर्णीयते, तव=भवतः, व्यवहारः=विवादः ।

शोधनकः—(शकारमुपगम्य=समीपं गत्वा) आर्य=हे मान्य, अधिकरणिकाः =न्यायाधीशाः, भणन्ति=कथयन्ति, आगच्छ=आगम्यताम्, दृश्यते=विचार्यते, तव=भवतः, व्यवहारः=अभियोगः । तत्=तस्मात्, प्रविशतु=गच्छतु, आर्यः=भवान् ।

शकारः—प्रथमम्=पूर्वम्, भणन्ति=कथयन्ति, न दृश्यते=न निर्णीयते, साम्प्रतम्

अगर आज विचार नहीं किया गया तो अपने बहनोई राजा पालक से कहकर, अपनी बहन-माताजी से कहकर—इस दण्डाधिकारी को हटवा कर दूसरा दण्डाधिकारी इसकी जगह बहाल करवा लूंगा । (**ऐसा कहकर जाना चाहता है ।**)

शोधनक—मान्य महोदय, कुछ देर तो रुकिए, मैं जरा दण्डाधिकारी को आपकी बात तो सूचित कर दूँ । (**न्यायाधीश के पास जाकर**) राजा का साला नाराज होकर कहता है । (**उसकी कही बात दुहराता देता है ।**)

अधिकरणिक—इस मूर्ख से सब कुछ सम्भव है । जाकर, उससे कहो, 'आओ, तुम्हारे मुकदमे पर विचार होगा' ।

शोधनक—(**शकार के पास जाकर**) महाशय, न्यायाधीश आपके मुकदमे पर विचार करने को प्रस्तुत हैं । तो आप भीतर पधारिए ।

शकार—पहले कहा—विचार नहीं होगा, अब विचारने को प्रस्तुत हैं । अच्छा

भीदभीदा अधिअलणभोइआ। जेत्तिअ हग्गे भणिश्शं तेत्तिअं पत्तिआवइश्शं। भोदु, पविशामि। (प्रविश्योपसृत्य) शुशुहं अम्हाणं, तुम्हाणं पि शुहं देमि ण देमि अ। [प्रथमं भणन्ति—'न दृश्यते, साम्प्रतं दृश्यते' इति। तत् नाम भीतभीता अधिकरणभोजकाः। यावदहं भणिष्यामि, तावत् प्रत्याययिष्यामि। भवतु प्रविशामि। सुसुखमस्माकम्, युष्माकमपि सुखं ददामि, न ददामि च।]

अधिकरणिकः—(स्वगतम्) अहो! स्थिरसंस्कारता व्यवहारार्थिनः। (प्रकाशम्) उपविश्यताम्।

शकारः—आ! अत्तणकेलका शे भूमी। ता जहिं मे लोअदि तहिं उपविशामि। (श्रेष्ठिनं प्रति) एश उवविशामि। (शोधनकं प्रति) णं एत्थ उवविशामि। (अधिकरणिकमस्तके हस्तं दत्त्वा) एश उवविशामि। (इति भूमौ उपविशति।) [आः! आत्मीया एषा भूमिः, तद् यस्मिन् मे रोचते, तस्मिन्नुपविशामि। एष उपविशामि। नन्वत्र उपविशामि। एष उपविशामि।]

अधिकरणिकः—भवान् कार्यार्थी?

=अधुना, दृश्यते=विचार्यते। तत्=तस्मात्, अधिकरणभोजकाः=न्यायाधीशाः, भीतभीताः=भयेन सन्त्रस्ताः, यावत्=यथा, अहम्=शकारः, भणिष्यामि=कथयिष्यामि, तावदेव, प्रत्याययिष्यामि=विश्वासमुत्पादयिष्यामि, अस्माकम्=नः, सुसुखम्=सुष्ठु आनन्दम्, युष्माकम्=वः, अपि, सुखम्=आनन्दम्, ददामि=प्रयच्छामि, न ददामि च, यादृशी ममेच्छति भावः।

अधिकरणिकः—अहो=इत्याश्चर्यं, व्यवहारार्थिनः=निर्णयमिच्छतः, स्थिरसंस्कारता=मानसिकसंस्काराणां प्रौढिः। (प्रकाशः=सर्वश्राव्यम्) उपविश्यताम्=आसनं गृह्यताम्।

शकारः—एषा=पुरोवर्त्तमाना, भूमिः=स्थानम्, आत्मीया=स्वकीया, तत्=तस्मात्, यस्मिन्=यत्र, मे=मम, रोचते, तस्मिन्=तत्र। (श्रेष्ठिनम्=वणिजम् प्रति) एषः=अत्र।

अधिकरणिकः—भवान्=त्वम्, कार्यार्थी=व्यवहारार्थी, अस्ति किमिति प्रश्नः।

ही हुआ, डर गये हैं, अब मैं जैसा चाहूँगा, करवा लूँगा। तो भीतर जाता हूँ। **(भीतर जाकर, न्यायाधीश के पास)** हम लोगों को सुख मिलें। तुम लोगों का भी सुख दूँगा, अथवा नहीं दूँगा।

अधिकरणिक—**(मन ही मन)** इस अभियोगी की निर्भीकता कैसी है? **(प्रकट)** बैठ जाइए।

शकार—अरे, यह तो मेरी अपनी भूमि है। इसलिए मेरी जहाँ इच्छा होगी, वहाँ बैठूंगा। **(वणिक् के प्रति)** यहाँ मैं बैठूंगा, **(शोधनक से)** यहाँ मैं बैठूंगा, **(न्यायाधीश के सिर पर हाथ रखकर)** यहाँ बैठता हूँ। **(यह कहकर जमीन पर बैठ जाता है।)**

अधिकरणिक—आप निर्णय चाहते हैं?

शकारः—अध इं। [अथ किम्।]

अधिकरणिकः—तत् कार्यं कथय।

शकारः—कण्णे कज्जं कधइश्शं। एवं बड्ढके मल्लक्कप्पमाणाह कुले हग्गे जादे। [कर्णे कार्यं कथयिष्यामि ! एवं बृहति मल्लकंप्रमाणस्य कुलेऽहं जातः।]

लाअशशुले मम पिदा लाआ तादश्श होइ जामादा।
लाअशिआले हग्गे ममावि बहिणीवदी लाआ॥ ६॥

[राजश्वशुरो मम पिता राजा तातस्य भवति जामाता।
राजश्यालोऽहं ममापि भगिनीपती राजा॥]

अधिकरणिकः—सर्वं ज्ञायते।

किं कुलेनोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति नितरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः॥ ७॥

शकारः—अथ किम्=अस्त्येवम्।

अधिकरणिकः—तत्=तर्हि, कथय=उच्यताम्, कार्यम्।

शकारः—कर्णे=श्रवणे, मल्लकंप्रमाणस्य=कुक्कुरतुल्यस्य, अन्यटीकाकारमते—"मल्लकप्रमाणस्य क्षुद्रः सुरापानपात्रविशेषः मल्लकः तत्सदृशस्य कुलस्य महत्त्वख्यापनार्थम् समुद्रप्रामाण्यस्येति वक्तव्ये मौर्ख्यान्मल्लकंप्रामाण्येमिति वदति"।

अन्वयः—मम, पिता, राजश्वसुरः, राजा, तातस्य, जामाता, भवति, अहम्, राजश्यालः, राजा, अपि, मम, भगिनीपतिः (अस्ति)॥ ६॥

राजेति। मम=शकारस्य, पिता=जनकः, राजश्वसुरः=नृपपत्नीपिता। राजा =नृपः, तातस्य=जनकस्य, जामाता=दुहितुः पतिः, भवति। अहम्=शकारः, राजश्यालः =राज्ञः पत्नीभ्राता, राजाऽपि=नृपोऽपि, मम=शकारस्य, भगिनीपतिः=स्वसुः भर्त्ता, एकस्यैव सम्बन्धस्य भिन्नवाक्यैः कथनं शकारवचनात्॥ ६॥

अधिकरणिकः—सर्वम्=सकलम्, ज्ञायते=अवबुध्यते।

अन्वयः—कुलेन, उपदिष्टेन, किम्? शीलम्, एव, अत्र, कारणम्। सुक्षेत्रे, कण्टकिद्रुमाः, नितराम्, स्फीताः, भवन्ति॥ ७॥

शकार—और क्या?

अधिकरणिक—तो, काम बताइये।

शकार—काम कान में कहूँगा। इस प्रकार मैं विशाल कुत्ते के तुल्य कुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

मेरे पिता राजा के ससुर हैं। राजा भी मेरे पिताजी के दामाद होते हैं। मैं भी राजा का साला हूँ। राजा भी मेरी बहन के पति हैं॥ ६॥

अधिकरणिक—सब कुछ जानते हैं—

कुल की प्रशंसा करने से भला क्या लाभ? यहाँ तो मनुष्य का स्वभाव ही परखा जाता है। सुन्दर उपजाऊ खेत में कटीले बबूल के पेड़ भी खूब फैलते हैं॥७॥

तदुच्यतां कार्यम् ।

शकारः—एव्वं भणामि—अवलद्धाह वि ण अ मे किं पि कलइश्शदि। तदो तेण वहिणीपदिणा परितुट्टेण मे कीलिदुं लक्खिदुं शव्वुज्जाणाणं पवलं पुप्फकलण्डके जिण्णुज्जाणे दिण्णे। तहिं च पेक्खिदुं अणुदिअहं शोशावेदुं शोधावेदुं पोत्थावेदुं लुणावेदुं गच्छामि। देव्वजोएण पेक्खामि ण पेक्खामि वा, इत्थिआशलीलं णिवडिदं। [**एवं भणामि—अपराद्धस्यापि न च मे किमपि करिष्यति। ततस्तेन भगिनीपतिना परितुष्टेन मे क्रीडितुं रक्षितुं सर्वोद्यानानां प्रवरं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं दत्तम्। तत्र च प्रेक्षितुमनुदिवसं शोषयितुं शोधयितुं पोषयितुं लावयितुं गच्छामि। दैवयोगेन प्रेक्षे न प्रेक्षे वा, स्त्रीशरीरं निपतितम्।**]

अधिकरणिकः—अथ ज्ञायते का स्त्री विपन्नेति ?

किमिति। कुलेन=वंशेन, उपदिष्टेन=कथितेन, किम् ? न किमपीत्यर्थः, शीलम्=स्वभावः, एव=निश्चितम्, अत्र=अस्मिन्न्यायालये, कारणम्=हेतुः। सुक्षेत्रे=ऊर्वरभूमौ, कण्टकिद्रुमाः=बर्बुरवृक्षाः, नितराम्=अत्यधिकम्, स्फीताः=पल्लविताः, भवन्ति=जायन्ते। अर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम्॥ ७॥

तत्=तस्मात्, उच्यताम्=कथ्यताम्, कार्यम्=प्रयोजनम्।

शकारः—एवम्=अनेन प्रकारेण, भणामि=कथयामि—अपराद्धस्यापि=कृतापराधोऽपि, मे=मम, राजा किमपि=दण्डादिकम्, न करिष्यति=न दण्डयिष्यति। ततः=तस्मात्, भगिनीपतिना=नृपपालकेन, परितुष्टेन=प्रसन्नो भूत्वा, मे=मम, क्रीडितुम्=खेलितुम्, एवं रक्षितुम्=रक्षार्थम्, सर्वोद्यानानाम्=सर्ववाटिकानाम्, प्रवरः=श्रेष्ठः, जीर्णोद्यानम्=पुरातनवाटिका, प्रदत्तम्=दत्तवान्। तत्र च=तस्मिन् उद्याने, अनुदिवसम्=प्रतिदिनम्, प्रेक्षितुम्=अवलोकयितुम्, शोषयितुम्=शुष्कं कर्त्तुम्, शोधयितुम्=विशुद्धं कर्त्तुम्, पोषयितुम्=जलदानेन वर्द्धयितुम्, लावयितुम्=पुष्पफलादिकं छेदयितुम्, गच्छामि=यामि। दैवयोगेन=सहसा, प्रेक्षे=अवलोकितम्, वा न प्रेक्षे। स्त्रीशरीरम्=नारीदेहम्, निपतितम्=भूमौ पतितम्।

अधिकरणिकः—अथ=अनन्तरम्, का=इति प्रश्ने, विपन्ना=मृता, स्त्री=नारी।

आप अपना काम बतलाइए।

शकार—अच्छा कहता हूँ। कुछ अपराध करने पर भी मेरे बहनोई राजा पालक मुझे दण्डित नहीं कर सकते। एक बार खुश होकर उन्होंने विहार एवं रक्षा के लिए मुझे सभी बगीचों में श्रेष्ठ पुष्पकरण्डक नाम का यह जीर्णोद्यान दिया है। और, वहाँ मैं प्रतिदिन देखभाल करने के लिए, खाद डालने के लिए एवं उसकी कटाई छटाई के लिए जाता हूँ। संयोग से वहाँ पड़ी एक औरत की लाश मैंने देखी अथवा नहीं देखी।

अधिकरणिक—वह किस औरत की लाश थी, यह जानते हो ?

शकारः—हंहो अधिअलणभोइआ ! किं त्ति ण जाणामि तं तादिशिं णअलमण्डणं कंचणशदभूशणिअं । केण वि कुपुत्तेण अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो शुण्णं पुप्फकलण्डकं ज़िण्णुज्जाणं पवेशिअ बाहुपाश-वलक्कालेण वशन्तशेणि आ मालिदा, ण मए । (इत्यर्द्धोक्ते मुखमावृणोति ।) [**हंहो अधिकरणभोजकाः ! किमिति न जानामि तां तादृशीं नगरमण्डनं काञ्चनशतभूषणाम् । केनापि कुपुत्रेण अर्थकल्यवर्त्तस्य कारणात् शून्यं पुष्पकरण्डकं जीर्णोद्यानं प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण वसन्तसेना मारिता, न मया ।**]

अधिकरणिकः—अहो नगररक्षिणां प्रमादः ! भोः श्रेष्ठिकायस्थौ ! न मयेति व्यवहारपदं प्रथममभिलिख्यताम् ।

कायस्थः—जं अज्जो आणवेदि । (तथा कृत्वा) अज्ज ! लिहिदं । [**यदार्य आज्ञापयति । आर्य ! लिखितम् ।**]

शकारः—(स्वगतम्) हीमादिके ! उत्तलाअन्तेण विअ पाअशपिण्डालकेण

शकारः—हंहो=हे हे, अधिकरणभोजकाः=न्यायाधीशाः, किमिति=प्रश्ने, न जानामि=नावगच्छामि, ताम्=वसन्तसेनाम्, तादृशीम्=एतादृशीम्, नगरमण्डनम्=नगरशोभाम्, काञ्चनशतभूषणम्=सुवर्णघटितविविधालङ्कारालङ्कृताम्, केनापि कुपुत्रेण=कुत्सितपुरुषेण, अर्थकल्यवर्त्तस्य=अनित्यातिक्षुद्रधनस्य, कारणात्=हेतुना, शून्यम्=जनहीनम्, पुष्करण्डकम्=एतदाख्यमुद्यानं, बाहुपाशबलात्कारेण=प्रसभं कराभ्यां ग्रीवां निष्पीडयन्, मारिता=व्यापादिता, न=नहि, मया=शकारेण । (इति=एवम्, अर्द्धोक्ते=अर्द्धकथनान्तरे, मुखम्=आननम्, आवृणोति=वस्त्रेणाच्छादयति ।)

अधिकरणिकः—अहो=आश्चर्यम्, नगररक्षिणाम्=प्रहरिणाम्, प्रमादः=आलस्यः, भो=हे श्रेष्ठि-कायस्थौ, 'नं मया'=मया न मारिता । इति व्यवहारपदम्=इति अभियोगशब्दम्, प्रथमम्=सर्वप्रथमम्, अभिलिख्यताम्=अभिलेखः क्रियताम् ।

कायस्थः—यत्=यथा, आर्यः=मान्यः, आज्ञापयति=आदिशति । (तथा=आदेशानुसारेणैव, कृत्वा=विधाय) आर्य=मान्य, लिखितम्=टङ्कितम् ।

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) हन्त=इति खेदे, उत्ताम्यतेन=शीघ्रतां

शकार—अरे ओ न्यायाधीश, उसे कौन नहीं जानता ? वह इस नगरी की शोभा है । सतत् आभूषणों से सजी रहती है । किसी नालायक ने जेवर के लोभ से उसकी हत्या कर दी है । उसे उपवन में लाकर बाहुपाश में जकड़ कर मारा है । मैंने हत्या नहीं की । (**इस तरह आधा कहकर मुंह ढक लेता है ।**)

अधिकरणिक—नगरपक्षक सिपाहियों की असावधानी आश्चर्यजनक है । हे श्रेष्ठि-कायस्थ—'मैंने नहीं मारा है' पहले इस पद को लिखें ।

कायस्थ—जैसी आपकी आज्ञा (**लिखकर**) महाशय, लिख लिया ।

शकार—(**मन ही मन**) आश्चर्य, जल्दीबाजी में मैंने गर्मपायस पीने वाले की

अज्ज मए अत्ता एव्व णिण्णाशिदो। भोदु, एवं दाव। (प्रकाशम्) अहो अधिअलणभोइआ ! णं भणामि, मए ज्जेव दिट्ठा, किं कोलाहलं कलेध ? (इति पादेन लिखितं प्रोञ्छति।) [**हन्त ! उत्ताम्यतेन पायसपिण्डारकेण अद्य मया आत्मैव निर्नाशितः। भवतु, एवं तावत्। अहो अधिकरणभोजकाः ! ननु भणामि— मयैव दृष्टा। किं कोलाहलं कुरुत ?**

अधिकरणिकः—कथं त्वया ज्ञातं यथा खल्वर्थनिमित्तं बाहुपाशेन व्यापादिता ?

शकारः—हंहो ! णूणं पडिशूण्णाए मोघट्ठाणाए गीवालिआए णिशुवण्णकेहिं आहलणट्ठाणेहिं तक्केमि। [**हंहो ! नूनं परिशून्यया मोघस्थानया ग्रीवालिकया निःसुवर्णकैराभरणस्थानैस्तर्कयामि।**]

श्रेष्ठिकायस्थौ—जुज्जदि विअ। [**युज्यत इव।**]

कुर्वता, पायसपिण्डारकेन=पायसान्नभक्षणे असंवृत्तलोभेन, अद्य=सम्प्रति, मया=शकारेण, आत्मैव=स्वकीयैव, निर्नाशितः=विनाशितः, यथा पायसेन पक्वमन्नम् लोभात् झटिति भोक्तुकामः निजजिह्वामेव दग्धां करोति, तथैव त्वरमाणेन मया 'न मया' इति ब्रुवता स्वात्मविनाशः एव कृतः। भवतु=यातु, एवम्=इत्थम्, तावदित्यवधारणे। अधिकरणभोजकाः=न्यायाधीशाः, ननु=निश्चयेन, भणामि=कथयामि, मयेव=शकारेणैव, दृष्टा=अवलोकिता, किम्=कथम्, कोलाहलम्=तुमुलम्, कुरुत। (इति=एवमुक्त्वा, पादेन=चरणेन, लिखितम्=उल्लेखितम्, प्रोञ्छति=प्रच्छालनं करोति।)

अधिकरणिकः—त्वया=शकारेण, कथम्=केन प्रकारेण, ज्ञातम्=बुद्धम्, यथा =यत्, अर्थनिमित्तम्=धनार्थम्।

शकारः—नूनम्=निश्चयेन, परिशून्यया=परितः आभूषणविरहितया, मोघस्थानया—मोघम्=शून्यम्, स्थानन्=गलदेशं यस्या तया, ग्रीवालिकायाः=ग्रीवस्य कण्ठस्य, आलिका=हारसूत्रावली तया, निःसुवर्णकैः=निर्गतसुवर्णालङ्कारैः, आभरणस्थानैः=करवक्षस्थलाद्यवयवैः, तर्कयामि=अनुमिनोमि।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—युज्यते इव=सम्भवेदपि।

तरह अपने आपको नष्ट कर दिया। अच्छा तो ऐसा कहूँ (**प्रकट**) अरे न्यायाधीशो ! मैं कहता हूँ, मैंने ही देखा। आप क्यों हल्ला मचा रहे हैं। (**ऐसा कहकर लिखे हुए को पैर से मिटाता है।**)

अधिकरणिक—यह कैसे जाना तुमने कि धन के लोभ से उसकी हत्या की गई है ?

शकार—महाशय, जेवर पहने के उसके सारे अंगों को सूना देखकर मैंने अनुमान किया है।

श्रेष्ठिकायस्थ—यह कहना सही है।

शकारः—(स्वगतम्) दिट्ठिआ पच्चुज्जीविदम्हि । अविदमादिके ! [**दिष्ट्या प्रत्युज्जीवितोऽस्मि । अविदमादिके ।**]

श्रेष्ठिकायस्थौ—भोः ! कंअ एसो ववहारो अवलम्बदि ? [**भोः ! कमेष व्यवहारोऽवलम्बते ?**]

अधिकरणिकः—इह हि द्विविधो व्यवहारः ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—केरिसौ ? [**कीदृशौ ?**]

अधिकरणिकः—वाक्यानुसारेण अर्थानुसारेण च । यस्तावत् वाक्यानुसारेण, स खल्वर्थिप्रत्यर्थिभ्यः, यश्चार्थानुसारेण, स चाधिकरणिकबुद्धिनिष्पाद्यः ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—ता वसन्तसेणामादरं अवलम्बदि ववहारो ? [**तद् वसन्तसेनामातरमवलम्बते व्यवहारः ?**]

अधिकरणिकः—एवमिदम् । भद्र, शोधनक ! वसन्तसेनामातरमनुद्वेजयन्नाह्वय ।

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) दृष्टचा=भाग्येन, प्रत्युज्जीवितोऽस्मि=पुनर्जीवितोऽस्मि ।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—भोः=इति सम्बोधने कम्=पुरुषविशेषं व्यवहारः=अभियोगनिर्णयः, अवलम्बते=प्रतीक्षते ।

अधिकरणिकः—इह=अस्मिन्, व्यवहारः=निर्णयः, द्विविधः=द्विविधो भवति ।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—कीदृशौ=कीदृशी द्विविधा अस्ति ?

अधिकरणिकः—वाक्यानुसारेण=वादि-प्रतिवादिनोः वाक्यानुसारेण, च=पुनः, अर्थानुसारेण=विचारकबुद्ध्यर्थानुसारेण, अधिकरणिकस्य=न्यायाधीशस्य, बुद्ध्या=विचारेण, निष्पाद्यः=निर्णेयः ।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—तत्=तस्मात्, वसन्तसेनामातरम्=जननीं, अवलम्ब्यते=प्रतीक्ष्यते, व्यवहारः=अभियोगनिर्णयः ।

अधिकरणिकः—एवम् इदम्=इदृशी वार्त्ताऽस्ति, वसन्तसेनामातरं=गणिकाजननीम्, अनुद्वेजयन्=व्याकुलतामजनयन् ।

शकार—(**अपने आप**) भाग्य से फिर जी गया हूँ । मुझे खुशी है ।

श्रेष्ठिकायस्थ—इस विवाद का निर्णय किसकी अपेक्षा रखता है ?

अधिकरणिक—इस विवाद में दो तरह का व्यवहार है ।

श्रेष्ठिकायस्थ—कैसा ?

अधिकरणिक—वाक्य के अनुसार और अर्थ के अनुसार । इनमें जो वाक्य के अनुसार व्यवहार है वह वादी प्रतिवादी के बयान पर आधारित है और जो अर्थ के अनुसार है उसमें सही तथ्य के अनुसार न्यायाधीश अपनी बुद्धि से निर्णय देता है ।

श्रेष्ठिकायस्थ—तब तो यह मुकदमा वसन्तसेना की माता पर निर्भर करता है ।

अधिकरणिक—ऐसा ही है । भले आदमी शोधनक, वसन्तसेना की माता को बुलाओ, और उन्हें कह देना घबड़ाने की जरूरत नहीं है ।

शोधनकः—तह । (इति निष्क्रम्य, गणिकामात्रा सह प्रविश्य) एदु एदु अज्जा । [तथा । एतु एतु आर्या ।]

वृद्धा—गदा मे दारिआ मित्तघरं अत्तणो जोव्वणं अणुभविदुं । एसो उण दीहाऊ भणादि—'आअच्छ, अधिअरणिओ सद्दावेदि ।' ता मोहपरवसमिव अत्ताणअं अवगच्छामि, हिअअं मे थरथरेदि । अज्ज ! आदेसेहि मे अधिअरणमण्डवस्स मग्गं । [गता मे दारिका मित्रगृहमात्मनो यौवनमनुभवितुम् । एष पुनर्दीर्घायुर्भणति—'आगच्छ, अधिकरणिकः शब्दापयति' । तन्मोहपरवशमिवात्मानमवगच्छामि हृदयं मे थरथरायते । आर्य ! आदिश मे अधिकरणमण्डपस्य मार्गम् ।]

शोधनकः—एदु एदु अज्जा । [एतु एतु आर्या ।]

(उभौ परिक्रामतः ।)

शोधनकः—एदं अधिअरमण्डवं, एत्थ पविसदु अज्जा । [एतदधिकरणमण्डपम्, अत्र प्रविशतु आर्या ।]

(इत्युभौ, प्रविशतः=प्रवेशं कुरुतः ।)

शोधनकः—तथा=तथैवास्तु, एतु=समागच्छतु । (गणिका=वेश्या, तस्या मात्रा=जनन्या, सह=सार्थम् ।)

वृद्धाः—गताः=प्रस्थिता, मे=मम, दारिका=पुत्री, आत्मनः=स्वस्य, मित्रगृहम्=मित्रसदनन्, यौवनम्=तारुण्यसुखम्, अनुभवितुम्=भोक्तुम् । दीर्घायुः=आयुष्मान्, शब्दापयति=आकारयति । तत्=तस्माद्धेतोः, मोहपरवशम्=किंकर्त्तव्यविमूढम्, आत्मानम्=स्वम्, अवगच्छामि=जानामि । हृदयम्=चित्तम्, थरथरायते=वेपते । अधिकरणमण्डपस्य=न्यायालयस्य, मार्गम्=पथम्, आदिश=दर्शय ।

शोधनकः—एतु=समागच्छतु ।

(उभौ=द्वौ, परिक्रामतः=भ्रमतः ।)

शोधनकः—एतत्=पुरोवर्त्तिनम्, अधिकरणमण्डपम्=न्यायालयम् ।

(उभौ प्रविशतः=प्रवेशं कुरुतः ।)

शोधनक—बहुत अच्छा, (ऐसा कहकर, निकल कर, फिर बसन्तसेना की माँ के साथ आकर) आइए, आइए, मान्ये ।

वृद्धा—मेरी बेटी जवानी का सुख लूटने, अपने मित्र चारुदत्त से मिलने गई है और इसी बीच यह आयुष्मान् न्यायाधीश का परवाना लेकर आया है । मेरी चेतना समाप्त होती जा रही है । दिल थरथर काँप रहा है । न्यायालय की राह मुझे शीघ्र दिखलाओ ।

शोधनक—इधर से इधर से आइए ।

(दोनों चलते हैं ।)

शोधनक—यही कचहरी है, आप भीतर चलें ।

(दोनों भीतर चले जाते हैं ।)

वृद्धा—(उपसृत्य) सुहं तुम्हाणं भोदु भावमिस्साणं । [**सुखं युष्माकं भवतु भावमिश्राणाम् ।**]

अधिकरणिकः—भद्रे ! स्वागतम् । आस्यताम् ।

वृद्धा—तधा । [**तथा ।**] (इत्युपविष्टा ।)

शकारः—(साक्षेपम् ।) आगदाशि वुड्ढकुट्टणि ! आगदाशि [**आगतासि वृद्धकुट्टिनि ! आगतासि !**]

अधिकरणिकः—अये ! तत् त्वं किल वसन्तसेनाया माता ?

वृद्धा—अध इं । [**अथ किम् ।**]

अधिकरणिकः—अथेदानीं वसन्तसेना क्व गता ?

वृद्धा—मित्तघरअं । [**मित्रगृहम् ।**]

अधिकरणिकः—किं नामधेयं तस्या मित्रम् ?

वृद्धा—(उपसृत्य=समीपमागत्य) युष्माकम्=वः, सुखम्=कल्याणम्, भावमिश्राणाम्—भावेषु=विद्वत्सु, मिश्राणाम्=श्रेष्ठानाम् ।

अधिकरणिकः—भद्रे=हे कल्याणि, स्वागतम्=सत्कारमस्तु, आस्यताम्=उपविश्यताम् ।

वृद्धा—तथा=यथादिशति, तथैव करोति । (इति=एवमुक्त्वा, उपविष्टा ।)

शकारः—(साक्षेपम्=साहङ्कारम्) आगतासि=समागतासि, वृद्धकुट्टिनि—वृद्धा=जरावस्थापन्ना सा चासौ कुट्टिनी=सम्भली, परनारीं पुंसा संयोजयित्री इत्याशयः तत्सम्बुद्धौ ।

अधिकरणिकः—तत्=तर्हि, त्वम्=भवती, वसन्तसेनायाः=तदाख्यगणिकायाः, माता=जननी, अस्ति ?

वृद्धा—अथ किम्=अस्त्वैवम् ।

अधिकरणिकः—इदानीम्=अधुना, वसन्तसेना, क्व=कुत्र, गता=प्रस्थितेति ।

वृद्धा—मित्रगृहम्=सुहृत्सदनम् ।

अधिकरणिकः—किं नामधेयम्=किं नामकम्, तस्या=वसन्तसेनायाः, मित्रम्=सुहृदम् ।

वृद्धा—(**भीतर जाकर**) विद्वानों में श्रेष्ठ आप सबों का कल्याण हो ।

अधिकरणिक—भद्रे, स्वागत है, बैठिए ।

वृद्धा—अच्छा । (**बैठ जाती है ।**)

शकार—(**आक्षेप करते हुए**) आ गयी कुट्टिनी बूढ़िया, आ गयी ।

अधिकरणिक—अजी, तुम वसन्तसेना की माँ हो ?

वृद्धा—जी हाँ ।

अधिकरणिक—अच्छा, तो इस समय वसन्तसेना कहाँ गई है ?

वृद्धा—अपने मित्र के घर ।

अधिकरणिक—उसके मित्र का क्या नाम है ?

वृद्धा—(स्वगतम्) हद्धी हद्धी अदिलज्जणीअं क्खु एदं । (प्रकाशम्) जणस्स पुच्छणीओ अअं अत्थो, ण उण अधिअरणिअस्स [**हा धिक् हा धिक्, अतिलज्जनीयं खल्वेतत् । जनस्य पृच्छनीयोऽयमर्थः, न पुनरधिकरणिकस्य**]

अधिकरणिकः—अलं लज्जया, व्यवहारस्त्वां पृच्छति ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—ववहारो पुच्छदि, णत्थि दोसो, कधेहि । [**व्यवहारः पृच्छति, नास्ति दोषः, कथय ।**]

वृद्धा—कधं ववहारो ! जइ एव्वं ता सुणन्तु अज्जमिस्सा । सो क्खु, सत्थवाह-विणअदत्तस्स णत्तिओ, साअरदत्तस्स तणओ, सुगहिदणामहेओ अज्ज चारुदत्तो णाम सेट्ठिचत्तरे पडिवसदि; तहिं मे दारिआ जोब्बणसुहं अणुभवदि । [**कथं व्यवहारः ? यद्येवं तदा श्रृण्वन्तु आर्यमिश्राः । स खलु सार्थवाह-विनयदत्तस्य नप्ता, सागरदत्तस्य तनयः, सुगृहीतनामधेय आर्यचारुदत्तो नाम श्रेष्ठिचत्वरे प्रतिवसति, तत्र मे दारिका यौवनसुखमनुभवति ।**]

वृद्धा—(स्वगतम्=आत्मगतम्) हा धिक्=हन्त, अतिलज्जनीयम्=लज्जास्पदम्, खलु=निश्चयेन, एतत्=प्रश्नः । जनस्य=साधारणजनस्य, पृच्छनीयः=प्रष्टव्यः । अयमर्थः=त्वया पृष्टः विषयः, न पुनः=न पृच्छनीयः विषयः अधिकरणिकस्य=सर्वलोकमान्यन्यायाधीशस्य ।

अधिकरणिकः—अलम्=व्यर्थम्, लज्जया=त्रपया, व्यवहारः=विवादनिर्णयः, त्वाम्=भवतीम्, पृच्छति=ज्ञातुमिच्छति, न पुनः वैयक्तिकभावनया न्यायाधीशस्त्वां पृच्छति ।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—व्यवहारः=विवादः, पृच्छति=ज्ञातुमिच्छति, अतः मित्रस्य नामकथने, नास्ति दोषः=लज्जा न कर्त्तव्या, तत्कथय=तस्य नाम भण ।

वृद्धा—कथम्=किमर्थम्, व्यवहारः=विवादः, पृच्छति ? यदि=चेत्, एवम्=अनेन रूपेण, तदा=तर्हि, श्रृण्वन्तु=आकर्णयन्तु, आर्यमिश्राः=सम्माननीयजनाः । सः=असौ, खलु=निश्चयेन, सार्थवाहविनयदत्तस्य=एतदाख्यप्रतिष्ठाप्राप्तपुरुषस्य,

---

वृद्धा—(**मन ही मन**) हाय हाय, यह पूछना ही लज्जाजनक है (**प्रकट**) ऐसा प्रश्न तो साधारण लोगों का होता है । न्यायाधीश के उपयुक्त यह प्रश्न नहीं है ।

अधिकरणिक—अरी लजाने की इसमें क्या बात है ? मुकदमे के निर्णय हेतु ही ऐसा पूछा जा रहा है ।

श्रेष्ठिकायस्थ—विवाद-निर्णय के लिए ऐसा पूछा जा रहा है । डरने या लजाने की बात नहीं है । कहो, बतलाओ ।

वृद्धा—क्या कहा, यह प्रश्न मुकदमे से सम्बद्ध है । अगर ऐसी बात है तो आप सभी समादरणीय लोग सुनें । वे व्यापारी विनयदत्त के पौत्र सागरदत्त के पुत्र, स्वनामधन्य आर्य चारुदत्त हैं । ये व्यापारियों के मुहल्ले में रहते हैं । जवानी का आनन्द लेने मेरी बेटी वसन्तसेना वहाँ ही गई है ।

शकारः—शुदं अज्जेहिं ? लिहीअदु एदे अक्खला । चालुदत्तेण शह मम विवादे । [**श्रुतमार्यैः ? लिख्यन्तामेतान्यक्षराणि । चारुदत्तेन सह मम विवादः ।**]

श्रेष्ठिकायस्थौ—चारुदत्तो मित्तो त्ति णत्थि दोसो । [**चारुदत्तो मित्रमिति नास्ति दोषः ।**]

अधिकरणिकः—व्यवहारोऽयं चारुदत्तमवलम्बते ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—एव्वं विअ । [**एवमिव ।**]

अधिकरणिकः—धनदत्त ! वसन्तसेना आर्यचारुदत्तस्य गृहं गतेति लिख्यतां व्यवहारस्य प्रथमः पादः । कथमार्यचारुदत्तोऽपि अस्माभिराह्वाययितव्यः । अथवा व्यवहारस्तमाह्वयति । भद्र ! शोधनक ! गच्छ, आर्यचारुदत्तं स्वैरम-

---

नप्ता=पौत्रः, सागरदत्तस्य=एतदाख्यपुरुषस्य, तनयः=सुतः, सुगृहीतनामधेयः= सुगृहीतम्=प्रातःस्मरणीयम्, नामधेयम्=नाम यस्य तादृशः, आर्य चारुदत्तो नाम, श्रेष्ठिचत्वरे=वणिजाम् आवासभूमौ, प्रतिवसति=निवसति, तत्र=तस्य गृहे, मे=मम, दारिका=पुत्रिका, यौवनसुखम्=कामक्रीडानन्दम्, अनुभवति=अनुभवं करोति ।

शकारः—श्रुतम्=आकर्णितम्, आर्यैः=मान्यैः, लिख्यन्ताम्=आलेखनं क्रियन्ताम्, एतानि=चारुदत्तगृहे मे पुत्री सुरतसुखमनुभवतीति रूपाणि, अक्षराणि=वर्णानि, मम=शकारस्य, विवादः=व्यवहारः ।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—चारुदत्तः, मित्रम्=सुरतसखा, इति हेतोः नास्ति दोषः=न किमपि अपराधः ।

अधिकरणिकः—व्यवहारः=विवादः, अयम्=एषः, चारुदत्तम् अवलम्बते= आश्रयीकरोति ।

श्रेष्ठि-कायस्थौ—एवमिव=उपयुक्तमेवेदम् ।

अधिकरणिकः—धनदत्त=एतन्नामकस्य कायस्थस्य सम्बोधनपदमिति, वृद्धायाः उक्तेः 'वसन्तसेना आर्य चारुदत्तस्य गृहं गता' इति निश्चय इति भावः । तर्हि लिख्यताम् व्यवहारस्य=विवादस्य, प्रथमः=आद्यः, पादः=चरणः, अंश इति । कथमिति प्रश्ने, आर्य चारुदत्तोऽपि, अस्माभिः=अधिकारभिः, आह्वयितव्यः=आकारयितव्यः, अथवा=किं वा, व्यवहारः=विवादनिर्णयः, तम्=चारुदत्तम्, आह्वयति=आकार-

---

शकार—सुना आपने ? यह भी नोट कीजिए । मेरा विवाद अब चारुदत्त के साथ है ।

श्रेष्ठिकायस्थ—चारुदत्त वसन्तसेना के मित्र हैं, इसमें अपराध क्या है ?

अधिकरणिक—यह मुकदमा अब चारुदत्त पर आधारित होता है ।

श्रेष्ठिकायस्थ—हाँ, यह कहना ठीक है ।

अधिकरणिक—धनदत्त, मुकदमा का पहला चरण नोट करो—वसन्तसेना, आर्य चारुदत्त के घर गई है । क्या हमलोग आर्य चारुदत्त को भी बुलावें ? अथवा—विवाद ही उनको बुला रहा है । भद्र शोधनक, तुम जाओ और आर्य चारुदत्त

सम्भ्रान्तमनुद्विग्नं सादरमाह्वय, 'प्रस्तावेनाधिकरणिकस्त्वां द्रष्टुमिच्छति' इति ।

शोधनकः—जं अज्जो आणवेदि । (इति निष्क्रान्तश्चारुदत्तेन सह प्रविश्यच) एदु एदु अज्जो । [यदार्य आज्ञापयति । एतु एतु आर्य ।]

चारुदत्तः—(विचिन्त्य)

परिज्ञातस्य मे राज्ञा शीलेन च कुलेन च ।
यत्सत्यमिदमाह्वानमवस्थामभिशङ्कते ॥ ८ ॥

(सवितर्कं स्वगतम्)

ज्ञातो हि किन्नु खलु बन्धनविप्रयुक्तो
मार्गागतः प्रवहणेन मयाऽपनीतः ।
चारेक्षणस्य नृपतेः श्रुतिमागतो वा
येनाहमेवमभियुक्त इव प्रयामि ॥ ९ ॥

यति । भद्र=प्रिय, शोधनक, गच्छ=याहि । स्वैरम्=मन्दम्, असम्भ्रान्तम्=अव्याकुलम्, अनुद्विग्नम्=अचिन्तितम्, आर्यचारुदत्तम्=वसन्तसेनामित्रम्, सादरम्=आदरसहितम्, आह्वय=आकारय । प्रस्तावेन=अवसरेण, अधिकरणिकः=न्यायाधीशः, त्वाम्=श्रीमन्तम्, द्रष्टुम्=अवलोकितुम्, इच्छति=अभिलषति ।

शोधनकः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति, आर्यः=मान्यः । (एवमुक्त्वा. चारुदत्तेन सह न्यायालये प्रविश्य) एतु एतु=समागच्छतु, आर्य ।

चारुदत्तः—(विचिन्त्य=विचार्य)

अन्वयः—राज्ञा, शीलेन, च, कुलेन, च, परिज्ञातस्य, मे, यत्, इदम्, आत्मानम्, सत्यम्, अवस्थाम्, अभिशङ्कते ॥ ८ ॥

परीति । राज्ञा=नृपेन पालकेन, शीलेन=स्वभावेन, च=पुनः, कुलेन=वंशेन, च, परिज्ञातस्य=परिचितस्य, मे=मम, यत्=यस्मात्, इदम्=अधुनैवाभिगतम्, आह्वानम्=हूतिः, अस्ति तत्=आकरणम्, सत्यम्=निश्चितम्, अवस्थाम्=दुर्गतदशाम्, अभिशङ्कते=आशङ्कते । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ८ ॥

(सवितर्कम्=तर्केन सहितम्, स्वगतम्=आत्मगतम् ।)

को विनम्र होकर बुला लाओ । उन्हें बिना किसी उद्वेग या त्रास के धीरे धीरे आने को कहना । उनसे कहना एक अभियोग के प्रसंग में न्यायाधीश आपको देखना चाहते हैं ।

शोधनक—जैसी आपकी आज्ञा । (**बाहर निकल जाता है, और कुछ देर के बाद चारुदत्त के साथ प्रवेश करता है ।**) चलें, आर्य इधर से ।

चारुदत्त—(**सोचते हुए**) राजा हमारे स्वभाव और खानदान से परिचित हैं । फिर भी कचहरी मेरी बुलाहट । निश्चय ही गरीबी के कारण मुझ पर शंका की गई है । गरीबों पर हर तरह के सन्देह हुआ ही करता है ॥ ८ ॥

(**कुछ सोचते हुए, मन ही मन**)

अथवा, किं विचारितेन, अधिकरणमण्डपमेव गच्छामि। भद्र! शोधनक! अधिकरणस्य मार्गमादेशय।

शोधनकः—एदु एदु अज्जो। [एतु एतु आर्यः।] (इति परिक्रामतः।)

चारुदत्तः—(सशङ्कम्) तत् किमपरम्।

रुक्षस्वरं वाशति वायसोऽयममात्यभृत्या मुहुराह्वयन्ति।
सव्यञ्च नेत्रं स्फुरति प्रसह्य ममानिमित्तानि हि खेदयन्ति॥ १०॥

अन्वयः—बन्धनविप्रयुक्तः, मार्गागतः, सः, मया, प्रवहणेन, अपनीतः, किं नु खलु, चारेक्षणस्य, नृपतेः, ज्ञातः, वा, श्रुतिम्, आगतः, येन, अहम्, अभियुक्तः, इव, एवम्, प्रयामि॥ ९॥

ज्ञात इति। बन्धनविप्रयुक्तः=कारागृहान्निर्गतः, मार्गेण=पथा, आगतः=मयि सम्प्राप्तः, सः=आर्यकः, मया=चारुदत्तेन, प्रवहणेन=स्वशकटेन, अपनीतः=अपवाहितः, किं नु=इति वितर्के, खलु=इति वाक्यालङ्कारे, चारेक्षणस्य=दूतनयनस्य, नृपतेः=राज्ञः, ज्ञातः=विदितः, वा=अथवा, श्रुतिम्=श्रवणम्, आगतः=प्राप्तः, येन=कारणेन, अहम्=चारुदत्तः, अभियुक्तः=अपराधी, इव=यथा, एवम्=इत्थम्, प्रयामि=अधिकरणं गच्छामि। निरङ्गरूपकम्। तथोपमालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम्॥ ९॥

अथवा=किं वा, विचारितेन=विचारकरणेन को लाभः इति, मार्गम्=पथम्, आदेशय।

शोधनकः—एतु एतु=समागच्छतु, आर्यः=मान्यः! (इति=एवमुक्त्वा, परिक्रामतः=उभौ चलतः।)

चारुदत्तः—(सशङ्कम्=ससन्देहम्) तत् किमपरम्=पूर्वापेक्षयाऽन्यानिष्टसूचकमपि किम्, तथाहि—

अन्वयः—अयम्, वायसः, रुक्षस्वरम्, वाशति, अमात्यभृत्याः, मुहुः, आह्वयन्ति, च, सव्यम्, नेत्रम्, च, स्फुरति। मम, अनिमित्तानि, हि, प्रसह्य, खेदयन्ति॥ १०॥

रुक्षस्वरमिति। अयम्=एषः, वायसः=काकः, रुक्षस्वरम्=कर्कशशब्दम्,

---

जेल से छुटकर भागा हुआ आर्यक रास्ते में मेरे पास आया और मैंने उसे अपनी गाड़ी से दूसरी जगह पहुँचा दिया, क्या राजा ने ये सारी बातें अपनी आँखों देखी है या किसी दूत ने राजा को यह खबर दी है; जिससे मैं एक अपराधी की तरह कचहरी में पेश किया जा रहा हूँ॥ १०॥

अथवा इस उधेडबुन से क्या लाभ? कचहरी तो चल ही रहा हूँ। ओ भले आदमी शोधनक! कचहरी की राह तो दिखलाओ।

शोधनक—आइये, आइये, आर्य! **(ऐसा कहकर घूमता है।)**

चारुदत्त—**(आशंकित होकर)** तब यह और क्या?

यह कौआ कर्कश आवाज में चिल्ला रहा है, सचिव के सेवक बुला रहे हैं तथा

शोधनकः—एदु एदु अज्जो सैरं असंभन्तं। [एतु एतु आर्यः स्वैरम-सम्भ्रान्तम्।]

चारुदत्तः—(परिक्रम्याग्रतोऽवलोक्य च)

शुष्कवृक्षस्थितो ध्वाङ्क्ष आदित्याभिमुखस्तथा।
मयि चोदयते वामं चक्षुर्घोरमसंशयम्॥ ११॥

(पुनरन्यतोऽवलोक्य) अये ! कथमयं सर्पः।

मयि विनिहितदृष्टिर्भिन्ननीलाञ्जनाभः
स्फुरित-विततजिह्वः शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः।
अभिपतति सरोषो जिह्मिताध्मातकुक्षि-
र्भुजगपतिरयं मे मार्गमाक्रम्य सुप्तः॥ १२॥

वाशति=रुदति, अमात्यभृत्याः=सचिवानुचराः, मुहुः=बारम्बारम्, आह्वयन्ति=आकारयन्ति, सव्यम्=वामम्, नेत्रम्=लोचनम्, च=पुनः, स्फुरति=स्पन्दते, किमधिकम्, अनिमित्तानि=दुर्लक्षणानि, हि=यतः, प्रसह्य=बलात्, मम=चारुदत्तस्य, खेदयन्ति=क्लेशयन्ति। एतानि दुर्लक्षणानि मम हृदि दारुणपरिणामशङ्कां जनयन्ति। अत्र समुच्चयोऽलङ्कारः, उपजातिर्वृत्तम्॥ १०॥

शोधनकः—एतु=समागच्छतु, स्वैरम्=यथेच्छम्, असम्भ्रान्तम्=अनुद्विग्नम्।

चारुदत्तः—(परिक्रम्य=कियत् पदं गत्वा, अग्रतः=सन्मुखे, अवलोक्य=दृष्ट्वा, च=पुनः,)

अन्वयः—शुष्कवृक्षस्थितः, तथा, आदित्याभिमुखः, ध्वांक्षः, मयि, वामम्, चक्षुः, चोदयते, असंशयम्, घोरम् (वर्त्तते)॥ ११॥

शुष्केति। शुष्कवृक्षस्थितः=नीरसपादपे वर्तमानः, तथा=एवम्, आदित्याभिमुखः=सूर्यस्य सम्मुखे वर्तमानः सन्, ध्वांक्षः=काकः, मयि=चारुदत्ते, वामम्=दक्षिणेतरम्, चक्षुः=लोचनम्, चोदयते=प्रेरयति। असंशयम्=अवश्यमेव, घोरम्=भयङ्करम्, वर्त्तते इति शेषः। पथ्यावक्त्रं वृत्तम्॥ ११॥

(पुनः=भूयः, अन्यतः=अपरस्यां दिशि, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अये=इत्याश्चर्यम् अयम्=एषः, सर्पः=नागः, कथमिति आशङ्कायाम्।

अचानक मेरी बाईं आँख फड़क रही है, ऐसे अकारण अशुभसूचक चिह्न मुझे आतंकित कर रहे हैं॥ १०॥

शोधनक—धीरे-धीरे श्रीमान्, निश्चिन्त होकर इस राह से आगे बढ़े।

चारुदत्त—(**घूमकर और देखकर**) हाय, इस सूखे ठूंठ पर सूर्य की ओर मुँह कर बैठकर यह काला कौआ अपनी बाईं आँख से मुझे देख रहा है, इसमें कोई सन्देह नहीं है कोई विपत्ति आने वाली है॥ ११॥

(**फिर दूसरी ओर देखकर**) अरे यह साँप है—

अपि च, इदम्—

स्खलति चरणं भूमौ न्यस्तं न चार्द्रतमा मही
स्फुरति नयनं वामो बाहुर्मुहुश्च विकम्पते।
शकुनिरपरश्चायं तावद्विरौति हि नैकशः
कथयति महाघोरं मृत्युं न चात्र विचारणा॥ १३॥

अन्वयः—भिन्ननीलाञ्जनाभः, स्फुरितविततजिह्वः, शुक्लदंष्ट्राचतुष्कः, मे, मार्गम् आक्रम्य, सुप्तः, अयम्, भुजगपतिः, सरोषः, जिह्मिताध्मातकुक्षिः, मयि, विनिहित-दृष्टिः, (सन्) अभिपतति॥ १२॥

मयीति। भिन्ननीलाञ्जनाभः—भिन्नम्=पूर्णविकसितम्, अत एव नीलम्=अति-नीलवर्णम्, यत् अञ्जनम्=कज्जलम् तस्य आभा इव आभा=कान्तिः यस्य तादृशः, स्फुरितविततजिह्वः—स्फुरिताः=अतिचञ्चला, वितता=विस्तृता, मुखाद्वहिर्निर्गतेति जिह्वा=रसना यस्य तादृशः, शुक्लम्=श्वेतवर्णम्, दंष्ट्राणाम्=दशनानाम्, चतुष्कः= चतुष्टयम् यस्य सः, मे=मम, मार्गम्=पन्थानम्, आक्रम्य=अभिव्याप्य, सुप्तः= सुप्तवत् निक्षिप्तशरीरः, अयम्=एषः पुरोवर्त्तमानः, भुजगपतिः=नागाधिराजः, सरोषः=सक्रुद्धः, जिह्मिताध्मातकुक्षिः—जिह्मितम्=वक्रीकृतम्, आध्मातम्= वायुभक्षणेन प्रफुल्लम्, कुक्षिः=उदरम्, यस्य सः, मयि=चारुदत्ते, विनिहता= दत्ता, दृष्टिः=लोचनम्, येन तथाभूतः सन्, अभिपतति=सन्मुखे समागच्छति। स्वभावोक्तिरङ्कारः॥ १२॥

अपि च=अन्यच्च, इदम्=एतत्।

अन्वयः—भूमौ, न्यस्तम्, चरणम्, स्खलति, मही, च, न, आर्द्रतमा, नयनम्, स्फुरति, वामः, बाहुः, च, मुहुः, विकम्पते, अपरः, च, अयम्, शकुनिः, तावत्, नैकशः, विरौति, हि, महाघोरम्, मृत्युम्, कथयति, अत्र, विचारणा, न॥ १३॥

स्खलतीति। भूमौ=पृथिव्याम्, न्यस्तम्=प्रदत्तम्, चरणम्=पादः, स्खलति= पश्चात् गच्छति, मही=धरित्री, च=पुनः, न=नहि, आर्द्रतमा=आर्द्रत्वादति-पिच्छला, नयनम्=लोचनम्, स्फुरति=स्पन्दते, वामः=सव्यः, बाहुः=भुजः, च= पुनः, मुहुः=बारम्बारम्, विकम्पते=स्पन्दते, अपरः=अन्यः च, अयम्=एषः,

---

यह काला नाग अपनी जीभ को लपलपाता अपने साफ चार दाँतों को बाहर निकाले हुए, फन फैलाकर हवा से घंट को फुलाये मेरी ओर देखते हुए सामने से ही इस ओर सरक रहा है॥ १२॥

और यह भी—

सूखी धरती पर ही पैर फिसल रहा है, बायीं आँख और बाँहें बार-बार फड़क रही हैं। दूसरे पक्षी भी चिल्ला चिल्लाकर असन्दिग्ध रूप से मेरी मौत की सूचना दे रहे हैं॥ १३॥

सर्वथा देवताः स्वस्ति करिष्यन्ति।

शोधनकः—एदु एदु अज्जो। इमं अधिअरणमण्डवं पविसदु अज्जो। [एतु एतु आर्यः ! इममधिकरणमण्डपं प्रविशतु आर्यः।]

चारुदत्तः—(प्रविश्य समन्तादवलोक्य।) अहो ! अधिकरणमण्डपस्य परा श्रीः। इह हि—

चिन्तासक्त-निमग्न-मन्त्रि-सलिलं-दूतोर्मिशङ्खाकुलं
पर्यन्त-स्थित-चार-नक्र-मकरं नागाश्व-हिंस्राश्रयम्।
नाना-वाशक-कङ्क-पक्षि-रुचिरं कायस्थ-सर्पास्पदं
नीति-क्षुण्ण-तटञ्च राज-करणं हिंस्रैः समुद्रायते ॥ १४ ॥

शकुनिः=पक्षी, तावदित्यवधारणे, नैकशः=मुहुः, विरौति=विकटं शब्दायते, हि=इति निश्चयेन, महाघोरम्=अतिभयप्रदम्, मृत्युम्=विनाशम्, कथयति=विज्ञापयति, अत्र=अस्मिन् विषये, विचारणा=तर्कः, न=नहि, करणीयमिति। विभावना एवं काव्यलिङ्गमलङ्कारः, हरिणीवृत्तम् ॥ १३ ॥

सर्वथा=सर्वप्रकारेण, देवताः=अमराः, स्वस्ति=कल्याणम्, करिष्यन्ति=विधास्यन्ति।

शोधनकः—एतु=समागच्छतु। इमम्=पुरोवर्त्तिनम्, अधिकरणमण्डपम्=न्यायालयम्।

चारुदत्तः—(प्रविश्य समन्तात्=सर्वतः, अवलोक्य=दृष्ट्वा) अधिकरणमण्डपस्य=न्यायालयस्य, परा श्रीः=निरूपमा शोभा। इह=अधिकरणमण्डपे, हि=यतः—

अन्वयः—चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलम्, दूतोर्मिशङ्खाकुलम्, पर्यन्तस्थितचारनक्रमकरम्, नागाश्वहिंसाश्रयम्, नानावाशककङ्कपक्षिरचितम्, कायस्थसर्पास्पदम्, नीतिक्षुण्णतटम्, च, राजकरणम्, हिंस्रैः, समुद्रायते ॥ १४ ॥

चिन्तेति। चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रिसलिलम्–चिन्तायाम्=निर्णयविचारणे, आसक्ताः=संलग्नाः, अत एव निमग्नाः=तल्लीनाः, मन्त्रिणः=परामर्शदातारः, ते एव सलिलानि=जलानि यस्मिन् तत्, दूताः=सन्देशवाहकाः, ते एव ऊर्मयः=बीचयः, शङ्खाः=कम्बवश्च, तैः आकुलम्=परिव्याप्तम्, पर्यन्तेषु=सीमान्तेषु, स्थिताः=

देवता ही मेरी रक्षा करेंगे।

शोधनक—आइए, आइए, महोदय सामने न्यायालय है, भीतर चलें।

चारुदत्त—(**भीतर घुसकर, चारों ओर देखकर**) अहा, न्यायालय की शोभा तो देखते ही बनती है। यहाँ तो—

सोच-विचार में डूबे मन्त्रीगण ही जिसके जल हैं, दूतगण ही तरंग पर लहराते शंख हैं, चारों ओर फैले गुप्तचर ही जिसके मगर और घड़ियाल हैं, हाथी और घोड़े भयंकर जलजन्तु हैं, वादी-प्रतिवादीगण ही जहाँ कङ्क पक्षी की तरह बोल रहे हैं,

भवतु । (प्रविशन् शिरोघातमभिनीय सवितर्कम्) अहह ! इदमपरम् ।

सव्यं मे स्पन्दते चक्षुर्विरौति वायसस्तथा ।
पन्थाः सर्पेण रुद्धोऽयं स्वस्ति चास्मासु दैवतः ।। १५ ।।

तावत् प्रविशामि । (इति प्रविशति ।)

अधिकरणिकः—अयमसौ चारुदत्तः । य एषः—

घोणोन्नतं मुखमपाङ्गविशालनेत्रं नैतद्धि भाजनमकारणदूषणानाम् ।
नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु नह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ।।१६।।

वर्त्तमानाः, चाराः=गुप्तचराः, नक्राः=कुम्भीराः, मकराः=जलकुञ्जराः, यत्र तत् नागाः=गजाः, अश्वाः=घोटकाः, ते एव हिंस्राः=ग्राहादयः, तेषाम् आश्रयः= स्थितिः यस्मिन् तत्, नाना=विविधम्, वाशकाः=वादिनः प्रतिवादिनस्तदितरे जनाः, कङ्कपक्षिणः=मांसप्रियाः, पक्षिविशेषास्तैः, रचितम्=व्याप्तम्. कायस्थाः=मसि-जीविनः, ते एव सर्पाः=नागाः, तेषाम् आस्पदम्=स्थानम्, नीतिः=नयः, तया क्षुण्णम्=भग्नम्, तटम्=कूलम्, इव=यथा, च राजकरणम्=न्यायाधिकरणम्, हिंस्रैः=घातुकैः, समुद्रायते=समुद्रः इवाचरति । उपमारूपकालङ्कारयोरङ्गाङ्गित्वेन-सङ्करः । शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।। १४ ।।

भवतु=यातु, (प्रविशन्=न्यायालये प्रवेश कुर्वन्, शिरोघातमभिनीय) अहह इति खेदे ! इदमपरम्=अन्योऽपि—

अन्वयः—मे, सव्यम्, चक्षुः, स्पन्दते, तथा, वायसः, विरौति, अयम्, पन्थाः, सर्पेण, रुद्धः, अस्मासु, दैवतः, स्वस्ति ।। १५ ।।

सव्यमिति । मे=मम चारुदत्तस्य, सव्यम्=वामम्, चक्षुः=लोचनम्, स्पन्दते= स्फुरति, तथा वायसः=काकः, विरौति=रूक्षं शब्दं करोति, अयम्=पुरोवर्त्तमानः, पन्थाः=मार्गः, सर्पेण=अहिना, रुद्धः=सङ्कीर्णः, अस्मासु=अस्माकम्. दैवतः= भाग्यादेव, स्वस्ति=कल्याणं भविष्यति ।। १५ ।।

तावत्=तर्हि, प्रविशामि=प्रवेशं करोमि । (इति=एवमुक्त्वा, प्रविशति ।)

अधिकरणिकः—अयम्=एषः, असौ=पूर्वोक्तः चारुदत्तः । यः एष—

कायस्थरूपी साँपों का जिसमें बसेरा है, राजनीति के कारण जिसके किनारे टूटे हैं, ऐसे यह न्यायालय घातक लोगों के कारण सागर की तरह लग रहा है ।। १४ ।।

अच्छा (**भीतर घुसते ही शिर टकराने का अभिनय कर, कुछ सोचते हुए**) हाय हाय, यह दूसरा अपशकुन—

मेरी बायीं आँख फड़क रही है, कौए काँव-काँव कर रहे हैं, साँपने राह रोक ली है, अब भाग्य ही बचायेगा ।। १५ ।।

तो फिर भीतर चलूँ । (**ऐसा कहकर भीतर घुसता है ।**)

अधिकरणिक—अरे यह वही चारुदत्त है ।

ऊँची नाक और विस्तृत आँखों से आकर्षक आकृति वाला यह पुरुष अकारण

चारुदत्तः—भोः ! अधिकृतेभ्यः स्वस्ति । हंहो नियुक्ताः ! अपि कुशलं भवताम् ।

अधिकरणिकः—(ससम्भ्रमम्) स्वागतमार्यस्य । भद्र ! शोधनक ! आर्यस्यासनमुपनय ।

शोधनकः—(आसनमुपनीय) एदं आसणं, एत्थ उववसदु अज्जो । [**इदमासनम्, अत्रोपविशतु आर्यः ।**]

(चारुदत्त उपविशति ।)

अन्वयः—घोणोन्नतम्, अपाङ्गविशालनेत्रम्, एतत्, मुखम्, हि, अकारणदूषणानाम्, भाजनम्, न । नागेषु, गोषु, तुरगेषु, तथा, नरेषु, आकृतिः, सुसदृशम्, वृत्तम्, नहि, विजहाति ॥ १६ ॥

घोणोन्नतमिति । घोणोन्नतम्=ऊर्ध्वङ्गतनासिकाम्, अपाङ्गविशालनेत्रम्=आकर्णविशाललोचनम्, एतत्=चारुदत्तसम्बन्धि, मुखम्=आननम्, हि=यतः, अकारणदूषणानाम्=परप्राणधनहरणात्मकपापानां निर्हेतुकानाम्, भाजनम्=पात्रम्, न=न भवितुमर्हति । यतः, नागेषु=गजेषु, गोषु=धेनुषु, तुरगेषु=घोटकेषु, तथा=तेनैव प्रकारेण, नरेषु=पुरुषेषु, आकृतिः=स्वरूपः, सुसदृशम्=तुल्यम्, वृत्तम्=आचरणम्, नहि=न, विजहाति=त्यजति । दीपकः तथाऽर्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तञ्चेति ॥ १६ ॥

चारुदत्तः—भोः=इति सम्बोधने, अधिकृतेभ्यः=निर्णायकेभ्यः, स्वस्ति=मङ्गलम् । हंहो=इत्यपि सम्बोधनपदम्, नियुक्ताः=श्रेष्ठिकायस्थादयः, अपीति प्रश्ने, भवताम्=श्रीमताम्, कुशलम्=कल्याणमस्तीति ।

अधिकरणिकः—(ससम्भ्रमः=सोद्वेगम्) आर्यस्य=मान्यस्य, स्वागतम् । आसनम्=उपवेशनाधारम्, उपनय=आनय ।

शोधनकः—(आसनम्=उपवेशनाधारम्, उपनीय=आनीय) इदम्=एतत्, आसनम्=पीठम्, अत्र=अस्य पीठोपरि, आर्यः=मान्यः, उपविशतु=समासीनो भवतु ।

(चारुदत्तः, उपविशति=आसनग्रहणङ्करोति ।)

किसी के दोषारोपण का पात्र नहीं हो सकता । हाथी, गाय, घोड़े और मानव के गुण आकृति के अनुरूप होते हैं ॥ १६ ॥

चारुदत्त—न्यायाधीशों का कल्याण हो, अधिकारियो, आप सभी कुशल से तो हैं न ?

अधिकरणिक—(व्यस्त भाव से) आपका स्वागत है । शोधनक, आर्य चारुदत्त के लिए आसन लाओ ।

शोधनक—(आसन लाकर) यह आसन है । आप इस पर बैठें ।

(चारुदत्त बैठ जाता है ।)

शकारः—(सक्रोधम्) आगदेशि ले इत्थिआघादआ ! आगदेशि ? अहो। णाए ववहाले ! अहो ! धम्मे ववहाले ! जं एअदाह—इत्थिआघादकाह आशणे दीअदि। (सगर्वम्) भोदु, णं दीअदु। [आगतोऽसि रे, स्त्रीघातक ! आगतोऽसि ? अहो ! न्याय्यो व्यवहारः ! अहो ! धर्म्यो व्यवहारः ! यदेतस्मै स्त्रीघातकाय आसनं दीयते। भवतु ननु दीयताम्।]

अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त ! अस्ति भवतोऽस्या आर्याया दुहित्रा सह प्रसक्तिः प्रणयः प्रीतिर्वा ?

चारुदत्तः—कस्याः ?

अधिकरणिकः—अस्याः। (इति वसन्तसेनामातरं दर्शयति।)

चारुदत्तः—(उत्थाय) आर्ये ! अभिवादये।

शकारः—(सक्रोधम्=सकोपम्) आगतोऽसि=उपस्थितोऽसि, रे=इति-सम्बोधने, स्त्रीघातक=नारीहन्ता, अहो=सोल्लुण्ठेनोक्तिः, न्यायादनपेतः न्याय्यः=न्यायपूर्णः, व्यवहारः=निर्णयः, धर्म्यादनपेतः=धर्मपूर्णः, व्यवहारः=अभियोग-विचारः। यत्=यस्मात्, एतस्मै=चारुदत्ताय, स्त्रीघातकाय=नारीप्राणहर्तृणे, आसनम्=उपवेशनम्, दीयते=प्रदीयते (सगर्वम्=गर्वेण सहितम्) भवतु=यातु, ननु दीयताम्=अस्य फलमचिरादेव प्राप्स्यसि, इति न्यायमवगूहयतीति तात्पर्यः।

अधिकरणिकः—आर्य चारुदत्त=हे मान्यवर, अस्याः पुरोवर्त्तमानायाः आर्यायाः=श्रीमत्याः वसन्तसेनामातुः, दुहित्रा=पुत्र्या वसन्तसेनया, सह=साकम्, भवतः=श्रीमतः, प्रसक्तिः=प्रगाढा मैत्री, प्रणयः=प्रेम, वा=अथवा, प्रीतिः=सामान्य-मित्रतेति।

चारुदत्तः—कस्याः=कस्या आर्याया दुहित्रा इति प्रश्नः।

अधिकरणिकः—अस्याः=पुरोवर्त्तमानायाः। (इति=एवमुक्त्वा, वसन्तसेना-मातरम्=गणिकाया जननीम्।)

चारुदत्तः—(उत्थाय=उत्थितो भूत्वा) आर्ये=मान्ये, अभिवादये=अभिवादनं करोमि।

शकार—(गुस्सा कर) आ गये रे नारी वधिक, आ गये ? अरे, यह कैसा न्यायपूर्ण व्यवहार है ? कैसा धार्मिक आचार है ? जो इस स्त्री के हत्यारे को बैठने के लिए आसन दिया जा रहा है। (अहंकार के साथ) अच्छा दीजिए।

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, इस वृद्धा आर्या की पुत्री के साथ आपका रमण संसर्ग है, यह गहरा प्रणय है कि औपचारिक स्नेह है ?

चारुदत्त—किसकी ?

अधिकरणिक—इसकी। (वसन्तसेना की माता को दिखाता है।)

चारुदत्त—(उठकर) आर्ये, प्रणाम करता हूँ।

वृद्धा—जाद ! चिरं मे जीव ! (स्वगतम्) अअं सो चारुदत्तो । सुणिक्खित्तं क्खु दारिआए जोव्वणं । [जात ! चिरं मे जीव । अयं स चारुदत्तः । सुनिक्षिप्तं खलु दारिकया यौवनम् ।]

अधिकरणिकः—आर्य ! गणिका तव मित्रम् ?

(चारुदत्तः लज्जां नाटयति)

शकारः—

लज्जाए भीलुदाए या चालित्तं अलिए णिगूहिदुं ।
शअं मालिअ अत्थकालणा दाणिं गूहदि ण तं हि भट्टके ।। १७ ।।

[लज्जया भीरुतया वा चारित्रमलीकं निगूहितुम् ।
स्वयं मारयित्वा अर्थकारणादिदानीं गूहति न तद्धि भट्टकः ।।]

श्रेष्ठिकायस्थौ—अज्ज चारुदत्त ! भणाहि, अलं लज्जाए, ववहारो क्खु एसो । [आर्यचारुदत्त ! भण, अलं लज्जया, व्यवहारः खल्वेषः]

वृद्धा—जात=पुत्र, चिरम्=चिरकालम्, मे=मह्यम्, जीव । (स्वगतम्=आत्मगतम्) अयम्=एषः, सः=पूर्वोक्तः चारुदत्तः, सुनिक्षिप्तम्=सुष्ठुतया समर्पितम्, खलु=निश्चयेन, दारिकया=पुत्र्या, यौवनम्=तारुण्यम् ।

अधिकरणिकः—आर्य=हे मान्य, गणिका=वेश्या, तव=भवतः, मित्रम्=रतिबन्धुः, इति प्रश्नः ?

(चारुदत्तः, लज्जाम्=त्रपाम्, नाटयति=अभिनयति ।)

अन्वयः—अर्थकारणात्, स्वयम्, मारयित्वा, इदानीम्, लज्जया, वा, भीरुतया, अलीकम्, चारित्रम्, निगूहितुम्, भट्टकः, हिः, तत्, न, गूहति ।। १७ ।।

लज्जयेति । अर्थकारणात्=धनलिप्सया, स्वयम्=आत्मनैव, मारयित्वा=स्त्रीवधं कृत्वा, इदानीम्=अधुना, लज्जया=त्रपया, वा=अथवा, भीरुतया=भीतिस्वभावेन, अलीकम्=कुत्सितम्, चारित्रम्=चरितम्, निगूहितुम्=गोपयितुम्, यतसे । किन्तु, भट्टकः=राजापालकः, न्यायाधीशो वा, हि=निश्चितम्, तत्=अलीकम्, न=नहि, गूहति=अपह्नुति । वैतालीयं छन्दः ।। १७ ।।

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य चारुदत्त=मान्यवर, भण=कथय, अलम्=व्यर्थम्, लज्जया=त्रपया, व्यवहारः=निर्णयः, खलु=निश्चयेन, एषः=एतत् ।

वृद्धा—बेटे, जीओ । (**मन ही मन**) यही वह चारुदत्त है । जिस पर मेरी बेटी ने अपनी जवानी सौंप दी है ।

अधिकरणिक—आर्य, वेश्या आपकी सङ्गिनी है ।

(**चारुदत्त लज्जा का अभिनय करता है ।**)

शकार—धन के लोभ से किसी औरत को मारकर अब लज्जा से अथवा डर से अपने कुकर्म को छिपाना चाहते हो । पर, राजा उसे नहीं छिपायेगा ।। १७ ।।

श्रेष्ठिकायस्थ—आर्य चारुदत्त, लजाना बेकार है । यह कचहरी है ।

चारुदत्तः—(सलज्जम्) भो अधिकृताः ! मया कथमीदृशं वक्तव्यम्, यथा गणिका मम मित्रमिति अथवा यौवनमत्रापराध्यति, न चारित्रम् ।

अधिकरणिकः—

व्यवहारः सविघ्नोऽयं त्यज लज्जां हृदि स्थिताम् ।
ब्रूहि सत्यमलं धैर्य्यं छलमत्र न गृह्यते ॥ १८ ॥

अलं लज्जया, व्यवहारस्त्वां पृच्छति ।

चारुदत्तः—अधिकृत ! केन सह मम व्यवहारः ?

शकारः—(साटोपम्) अले ! मए शह ववहाले । [**अरे मया सह व्यवहारः ।**]

चारुदत्तः—(सलज्जम्=ससङ्कोचम्) भो अधिकृताः=अधिकारिगणाः, मया=चारुदत्तेन, कथम्=केन प्रकारेण, इदृशं वक्तव्यम्=कथितव्यम्, यथा=येन प्रकारेण गणिका=वेश्या, मम=चारुदत्तस्य, मित्रम्=रतिबन्धुः, अथवा=वा, अत्र=अस्मिन् विषये, यौवनम्=तारुण्यम्, अपराध्यति=अपराधं करोति, न चारित्र्यम्=चरितं न अपराध्यति । यौवनप्रभावाद्विहितमकार्यं न चरितं दूषयतीति ।

अन्वयः—अयम्, व्यवहारः, सविघ्नः, हृदि, स्थिताम्, लज्जाम्, त्यज, सत्यम्, ब्रूहि, धैर्यम्, अलम्, अत्र, छलम्, न, गृह्यते ॥ १८ ॥

व्यवहार इति । अयम्=एषः, व्यवहारः=निर्णयः, सविघ्नः=वाधायुक्तः, अतः हृदि=हृदये, स्थिताम्=उपस्थिताम्, लज्जाम्=त्रपाम्, त्यज=मुञ्च, सत्यम्=यथार्थम्, ब्रूहि=वद, धैर्यम्=धीरत्वम्, अलम्=व्यर्थम्, अत्र=न्यायालये, छलम्=कपटम्, न=नहि, गृह्यते=स्वीक्रियते । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ १८ ॥

अलम्=व्यर्थम्, लज्जया=त्रपया, व्यवहारः=अभियोगनिर्णयः, त्वाम्, चारुदत्तम्, पृच्छति=प्रश्नं करोति ।

चारुदत्तः—अधिकृत=हे मन्त्रिणः, केन=पुरुषेण, सह=साकम्, मम=चारुदत्तस्य, व्यवहारः=निर्णयः ?

शकारः—(साटोपम्=सगर्वम्) मया=शकारेण, सह=सार्धम्, व्यवहारः=अभियोगनिर्णयः ?

चारुदत्त—(**लज्जा के साथ**) ओ अधिकारियो, यह मैं कैसे कहूँ, वेश्या मेरी प्रेमिका है अथवा इस विषय में मेरी जवानी ही दोषी है ।

अधिकरणिक—इस मुकदमे में काफी उलझन है, मन की लाज छोड़ दो, सच बतलाओ, धीरज के साथ चुप रहना बेकार है । यहाँ तुम्हारा कपट नहीं चलेगा ।।१८।।

लजाना बेकार है । यह तो मुकदमे का सवाल है ।

चारुदत्त—दण्डाधिकारीगण, मेरा किसके साथ मुकदमा है ?

शकार—(**सगर्व**) अरे तुम्हारा विवाद तो मेरे साथ है ।

चारुदत्तः—त्वया सह मम व्यवहारः सुदुःसहः ।

शकारः—अले ! इत्थिआघादआ ! तं तादिशिं लअणशदभूशणिअं वशन्तशेणिअं मालिअ, शम्पदं कवडकावडिके भविअ णिगूहेशि । [अरे स्त्रीघातक ! तां तादृशीं रत्न-शत-भूषणिकां वसन्तसेनां मारयित्वा, साम्प्रतं कपट-कापटिको भूत्वा निगूहसि ।]

चारुदत्तः—असम्बद्धः खल्वसि ।

अधिकरणिकः—आर्य चारुदत्त ! अलमनेन । ब्रूहि सत्यम् । अपि गणिका तव मित्रम् ?

चारुदत्तः—एवमेव ।

अधिकरणिकः—आर्य ! वसन्तसेना क्व ?

चारुदत्तः—गृहं गता ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कधं गंदा ? कदा गदा ? गच्छन्ती वा केण अणुगदा ? [कथं गता ? कदा गता ? गच्छन्ती वा केन अनुगता ?]

चारुदत्तः—त्वया=खलशकारेण, मम=साधोः चारुदत्तस्य, व्यवहारः=विवादः, सुदुःसहः=असह्यः ।

शकारः—अरे स्त्रीघातक=नारीहतक, ताम्=वसन्तसेनाम्, तादृशीम्=शुभ-लक्षणाम्, रत्नशतभूषणिकाम्=प्रचुररत्नालङ्कृताम्, वसन्तसेनाम्=गणिकाम्, मारयित्वा=हत्वा, साम्प्रतम्=अधुना, कपटकापटिकः=अतीवधूर्त्तः, भूत्वा=भूय, निगूहसि=गुप्तं करोषि ।

चारुदत्तः—असम्बद्धः=अनर्गलभाषी, खलु=निश्चयेन, असि ।

अधिकरणिकः—अलम्=व्यर्थम्, अनेन=मिथ्याभिभाषिणा शकारेण । सत्यम्=यथार्थम्, वद=कथय, अपि=चेत्, गणिका=वेश्या, तव=भवतः, मित्रम्=रतिबन्धुः ।

चारुदत्तः—एवमेव=इदमित्थमेव ।

अधिकरणिकः—आर्य=हे मान्य, वसन्तसेना=एतदाख्यगणिका, क्व=कुत्र गता ।

चारुदत्तः—गृहम्=सदनम्, गता=प्राप्ता ।

चारुदत्त—तुम्हारे साथ मेरा विवाद, बड़ी खेद की बात है ।

शकार—अरे नारी हत्यारा, रत्नजटित सोने के सैकड़ों आभूषण हड़पकर, वसन्तसेना को मारकर अब अपने इस प्रपंच से उसे छिपाना चाहते हो ।

चारुदत्त—तुम बकवास करते हो ।

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, इस तरह वादविवाद से क्या लाभ ? सच-सच बतलाओ क्या है वह वेश्या सचमुच तुम्हारी चहेती है ?

चारुदत्त—हाँ, है ।

अधिकरणिक—आर्य, तो बतलाओ, वसन्तसेना कहाँ गई ?

चारुदत्त—घर गई ।

चारुदत्तः—(स्वगतम्) किं प्रच्छन्नं गतेति ब्रवीमि ?

श्रेष्ठिकायस्थौ—अज्ज ! कधेहि । [**आर्य ! कथय** ।]

चारुदत्तः—गृहं गता । किमन्यत् ब्रवीमि ।

शकारः—मम केलकं पुप्फकलण्डक-जिण्णुज्जाणं पवेशिअ, अत्थणिमित्तं बाहु-पाश-वलक्कालेण मालिदा । अए ! शम्पदं वदशि घलं गदेत्ति । [**मदीयं क्रीडकं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्य अर्थनिमित्तं बाहुपाशबलात्कारेण मारिता । अये ! साम्प्रतं वदसि—गृहं गतेति** ।]

चारुदत्तः—आः, असम्बद्धप्रलापिन् !

अभ्युक्षितोऽसि सलिलैर्न बलाहकानां
चाषाग्रपक्षसदृशं भृशमन्तराले ।
मिथ्यैतदाननमिदं भवतस्तथापि
हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति ।। १९ ।।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथम् = केन प्रकारेण, गता ? कदा=कस्मिन्समये ? केनानुगता= पुरुषविशेषेण सह गतेति प्रश्नाशयः ।

चारुदत्तः—(स्वगतम् = आत्मगतम्) किमिति प्रश्ने, प्रच्छन्नम् = गुप्तरूपेण, गतेति ब्रवीमि = कथयामि ?

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य = हे मान्य, कथय = वद ।

चारुदत्तः—गृहम् = सदनम् गता, अन्यत् = एतद् भिन्नम्, ब्रवीमि = कथयामि ।

शकारः—मदीयम् = मदधीनम्, क्रीडकम् = खेलनकम्, प्रवेश्य = प्रवेशङ्कृत्वा, अर्थनिमित्तम् = धनहेतुम्, बाहुपाशबलात्कारेण—बाहु = भुजौ, एव पाशः = बन्धनः ताभ्याम् यः बलात्कारः = बलप्रयोगस्तेन, मारिता=हता, अये=इत्याश्चर्ये, साम्प्रतम्= अधुना, वदसि = कथयसि, गृहम् = सदनम्, गतेति ?

चारुदत्तः—आः = हन्त, असम्बद्धप्रलापिन् = अनर्गलभाषिन् ।

अन्वयः—एतत्, मिथ्या, तथाहि, बलाहकानाम्, सलिलैः, अभ्युक्षितः, न, असि,

---

श्रेष्ठिकायस्थ—कैसे गई ? कब गई ? और किसके साथ गई ?

चारुदत्त—(**मन ही मन**) तो कह दूँ वह छिप कर गई है ?

श्रेष्ठिकायस्थ—बोलिए, महाशय ।

चारुदत्त—घर गई है, इसके अलावे और क्या कहूँ ?

शकार—मेरे पुष्करण्डक नामक जीर्णोद्यान में उसे बहकाकर धन के लोभ से जबर्दस्ती तुमने उसका गला दबाकर मार डाला और अब कहते हो घर गई है ।

चारुदत्त—रे झूठ बोलने वाले—

यह एकदम झूठा है—तुम बादलों के जल से भींगे नहीं हो, फिर नीलकंठ की पांख की तरह तुम भींगे हो, हेमन्त कालीन कमल की तरह झूठ बोलने के कारण तुम्हारा मुख मलिन है ।। १९ ।।

अधिकरणिकः—(जनान्तिकम्)

तुलनश्चाद्रिराजस्य समुद्रस्य च तारणम् ।
ग्रहणश्चानिलस्येव चारुदत्तस्य दूषणम् ।। २० ।।

(प्रकाशम्) आर्यचारुदत्तः खल्वसौ कथमिदमकार्यं करिष्यति ! (घोणेत्यादि पठति ।)

शकारः—किं पक्खवादेण ववहाले दीशदि ? [**किं पक्षपातेन व्यवहारो दृश्यते ?**]

तथापि, अन्तराले, चाषाग्रपक्षसदृशम्, भवतः, इदम्, आननम्, हेमन्तपद्मम्, इव, निष्प्रभताम्, उपैति ।। १९ ।।

अभ्युक्षित इति । एतत्=इदम्, तव कथनम्, मिथ्या=अलीकम्, तथाहि=एतस्माद्धेतोः, बलाहकानाम्=जलदानाम्, सलिलैः=जलैः, अभ्युक्षितः=सिक्तः, न असि=न वर्त्तसे, तथापि त्वम्, अन्तराले=कथनमध्ये, चाषः=किकीदिवः, पक्षे—नीलकण्ठः, 'स्वर्णचातक इति' भट्टाचार्यः, तस्य अग्रपक्षः=पत्राग्रभागः, तस्य सदृशम्=तुल्यम्, भवतः=श्रीमतः, इदम्=एतत्, आननम्=मुखम्, हेमन्तस्य=हेमन्तर्तोः, पद्मम्=कमलम्, इव=यथा, निष्प्रभताम्=हतश्रीकृताम्, उपैति=प्राप्नोति । उपमा एवं विभावनालङ्कारो, वसन्ततिलकावृत्तम् ।। १९ ।।

अन्वयः—चारुदत्तस्य, दूषणम्, अद्रिराजस्य, तुलनम्, समुद्रस्य, तारणम्, अनिलस्य ग्रहणमिव (वर्त्तते) ।। २० ।।

तुलनमिति । चारुदत्तस्य=साधुचरितस्य चारुदत्तस्य, दूषणम्=कलङ्कारोपणम्, अद्रिराजस्य=पर्वताधिराजस्य हिमालयस्य, तुलनम्=उत्तोलनम्, इव=यथा, समुद्रस्य=सागरस्य, तारणम्=सन्तरणेन परतीरयानम्, अनिलस्य=वायोः, ग्रहणम्=करे धारणम्, इव=यथा, बर्त्तते । मालोपमालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। २० ।।

(प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) असौ=एषः, खलु=निश्चयेन, आर्य=मान्य, चारुदत्तः कथम्=केन प्रकारेण, इदम्=एतत्, अकार्यम्=दुष्कृत्यम्, करिष्यति=विधास्यति । न करिष्यतीत्यर्थः ।

शकारः—किमिति प्रश्ने, पक्षपातेन=चारुदत्तपक्षग्रहणेन, व्यवहारः=विवादनिर्णयः, दृश्यते=अनुमीयते ।

अधिकरणिक—(**धीरे से**)

हिमालय को हाथों से उठाने की तरह, बाहों से तैरकर सागर को पार करने की तरह, हवा को मुट्ठी में पकड़ने की तरह चारुदत्त पर दोषारोपण बेकार है ।।२०।।

(**प्रकट**) आर्य चारुदत्त जैसे साधु आदमी ऐसे दुष्कर्म कैसे कर सकते हैं ? ('ऊँची नाक वाला...'इत्यादि (९।१६) **श्लोक फिर से पढ़ता है ।)**

शकार—न्याय-निर्णय में पक्षपात देखा जा रहा है ?

अधिकरणिकः—अपेहि मूर्ख !

वेदार्थान् प्राकृतस्त्वं वदसि न च ते जिह्वा निपतिता
मध्याह्ने वीक्षसेऽर्कं न तव सहसा दृष्टिर्विचलिता ।
दीप्ताग्नौ पाणिमन्तःक्षिपसि स च ते दग्धो भवति नो
चारित्र्याच्चारुदत्तं चलयसि न ते देहं हरति भूः ।। २१ ।।

आर्यचारुदत्तः कथमकार्यं करिष्यति ।

कृत्वा समुद्रमुदकोच्छ्रयमात्रशेषं
दत्तानि येन हि धनान्यनपेक्षितानि ।

अधिकरणिकः—अपेहि=दूरमपसर, मूर्ख=हे अज्ञ !

अन्वयः—त्वम्, प्राकृतः, वेदार्थान्, वदसि, ते, जिह्वा, न च, निपतिता । मध्याह्ने अर्कम्, वीक्षसे, तव, दृष्टिः, सहसा, न, विचलिता । दीप्ताग्नौ, अन्तःपाणिम्, क्षिपसि, ते, स, दग्धः, न, भवति । चारित्र्यात्, चारुदत्तम्, चालयसि, च, भूः, ते, देहम्, न, हरति ।। २१ ।।

वेदार्थानिति । त्वम्=शकारः, प्राकृतः=अतिनीचः सन्, वेदार्थान्=श्रुतितात्पर्यान् वदसि=कथयसि, ते=शकारस्य, जिह्वा=रसना, न च निपतिता=भ्रष्टा न भवति, मध्याह्ने=मध्यदिने, अर्कम्=सूर्यम्, वीक्षसे=पश्यसि, तथापि तव दृष्टिः सहसा=हठात्, न विचलिता=विनष्टा न भवति, दीप्ताग्नौ=प्रज्ज्वलितवह्नौ, पाणिम्=करम्, क्षिपसि=प्रवेशयसि, तथापि ते=तव, शकारस्य, स च=पाणिश्च, दग्धः=भस्मसात्, न भवति=न जायते, चारित्र्यात्=शिष्टाचारात् चारुदत्तम्=यशोधनम् चारुदत्तम्, चालयसि=पातयसि, तथापि भूः=धरित्री, ते=तव, देहम्=शरीरम्, न हरति=न ग्रसतीति भावः । निदर्शनामालालङ्कारयोर्मिथो निरपेक्षतया संसृष्टिः, सुमधुरा वृत्तञ्चेति ।। २१ ।।

आर्य चारुदत्तः=मान्यः साधुचारुदत्तः, अकार्यम्=पूर्वोक्तदुष्कर्मम्, कथम्=केन हेतुना, करिष्यति ?

अन्वयः—हि, येन, समुद्रम्, उदकोच्छ्रयमात्रशेषम्, कृत्वा, अनपेक्षितानि, धनानि,

---

अधिकरणिक—दूर हटो मूर्ख,

तू नीच होकर भी वेदों का अर्थ कह रहा है और ऐसा करते तेरी जीभ क्यों नहीं गल जाती है । दोपहर के चमकते सूर्य को तू टकटकी लगाकर देख रहा है, पर ऐसा करने में तेरी आँख चौंधिया क्यों नहीं जाती है ? तू धधकती आग में अपना हाथ डाल रहा है फिर भी तेरे हाथ जल क्यों नहीं जाते ? तू चारुदत्त जैसे साधु पुरुष पर हत्या का दोषारोपण कर रहा है फिर भी धरती तेरे भार को कैसे वहन कर रही है ।। २१ ।।

आर्य चारुदत्त कुकर्म कैसे करेंगे ?

स श्रेयसां कथमिवैकनिधिर्महात्मा
पापं करिष्यति धनार्थमवैरिजुष्टम् ? ॥ २२ ॥

शकारः—किं पक्खवादेण ववहाले दीशदि ? [**किं पक्षपातेन व्यवहारो दृश्यते ?**]

वृद्धा—हदास ! जो तदाणिं णासीकिदं सुवण्णभण्डअं रत्तिं चोरेहिं अवहिदं त्ति तस्स कारणादो चदुस्समुद्दसारभूदं रअणावलिं देदि, सो दाणिं अत्थकल्लवत्तस्स कारणादो इमं अकज्जं करेदि ? हा जादे । एहि मे पुत्ति ! (इति रोदिति ।) [**हताश ! यस्तदानीं न्यासीकृतं सुवर्णभाण्डकं रात्रि चौरैरपहृतमिति । तस्य कारणात् चतुःसमुद्रसारभूतां रत्नावलीं ददाति, स इदानीमर्थकल्यवर्त्तस्य कारणादिदमकार्यं करोति ? हा जाते ! एहि मे पुत्रि !**]

दत्तानि, श्रेयसाम्, एकनिधिः, सः, महात्मा, धनार्थम्, अवैरिजुष्टम्, पापम्, कथमिव, करिष्यति ॥ २१ ॥

कृत्वेति । हि=तथाहि, येन=चारुदत्तेन, समुद्रम्=सागरम्, उदकोच्छ्रयमात्रशेषम्—उदकस्य=जलस्य, उच्छ्रयः=उच्चता, आधिक्यं वा, तन्मात्रम्=तदेव शेषः= अवशिष्टं यस्य तम्, तथाविधम्, कृत्वा=विधाय, अर्थात् दानार्थमखिलरत्नानि तत आहृत्य जलमात्रावशिष्टम् सागरं कृत्वेति तात्पर्यः । अनपेक्षितानि=अनभिलषितानि धनानि=अर्थाः याचकेभ्यः, दत्तानि=समर्पितानि, श्रेयसाम्=कल्याणानाम्, एकनिधिः =अद्वितीयाकरः, सः=जगति प्रसिद्धः, महात्मा=महाशयः, धनार्थम्=अलङ्कारलोभात्, अवैरिजुष्टम्=वैरिणाऽप्यसेवितम्, पापम्=नारीहत्यात्मकं कुकृत्यम्, कथमिव करिष्यति=कथमपि न करिष्यतीति भावः । अतिशयोक्तिः अलङ्कारः, वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २२ ॥

शकारः—किमिति प्रश्ने, पक्षपातेन=पक्षग्रहणेन, व्यवहारः=न्यायनिर्णयः, दृश्यते=अवलोक्यते ।

वृद्धा—हताश—हता=विनष्टा, आशा=वस्तुलाभेच्छा यस्य तत्सम्बुद्धौ=हे खल, यः=चारुदत्तः, तदानीम्=तस्मिन् समये, न्यासीकृतम्=तस्य पार्श्वे स्थापितम्,

---

जिसने समुद्र का सारा धन निकाल कर उसमें केवल जलराशि छोड़ दी । अपने लिए बिना कुछ बचाये गरीबों को सब धन दान कर दिया, वही मंगलमय चारुदत्त जिसने अपने शत्रुओं का धन भी लेना स्वीकार नहीं किया, वह मात्र कुछ आभूषण के लिए इतना बड़ा जघन्य पाप कैसे कर सकता है ॥ २२ ॥

शकार—क्या निर्णय पक्षपातपूर्ण हो रहा है ?

वृद्धा—अरे अभागे, जिस चारुदत्त ने उस समय धरोहर के रूप में रखे गये, सोने के डिब्बे के चोरी जाने पर, अपना बहुमूल्य रत्नहार उसके बदले समर्पित किया था, क्या वही चारुदत्त आज़ तुच्छ आभूषण के लिए ऐसा जघन्य कुकर्म करेगा ? हाय ! मेरी बेटी ! आओ मेरी पुत्री ! (**रोती है ।**)

अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त ! किमसौ पद्भ्यां गता ? उत प्रवहणेनेति ?

चारुदत्तः—ननु ! मम प्रत्यक्षं न गता; तन्न जाने, किं पद्भ्यां गता, उत प्रवहणेनेति ।

(प्रविश्य सामर्षः ।)

वीरकः—पादप्पहार-परिभव-विमाणणा-वद्धगरुअ-वेरस्स ।
अणुसोअन्तस्स इअं कअं पि रत्ती पभादा मे ॥ २३ ॥

[पाद-प्रहार-परिभव-विमानना-बद्ध-गुरुक-वैरस्य ।
अनुशोचत इयं कथमपि रात्रिः प्रभाता मे ॥]

सुवर्णभाण्डकं=स्वर्णाभूषणम्, रात्रिम्=निशायाम्, चोरैः=तस्करैः, अपहृतम्=चोरितम्, तस्य कारणात्=तदर्थम्, चतुःसमुद्रसारभूताम्=बहुमूल्यं स्वकीयरत्नहारं ददाति, सः=असावेव, इदानीम्=अधुना, अर्थकल्यवर्त्तस्य=क्षणिकस्य धनस्य कारणात्=हेतोः, इदम्=एतत्, अकार्यम्=हत्यास्वरूपङ्कुकृत्यम्, करोति=कथमपि नहि । हा जाते=हे पुत्रि, एहि=समागच्छ, मे=मम, पुत्रि=सुतेति ।

अधिकरणिकः—आर्य चारुदत्त ! किमिति प्रश्ने, असौ=सा, वसन्तसेना, पद्भ्याम्=पदातिः, प्रवहणेन=शकटेन ।

चारुदत्तः—ननु=इति निश्चये, मम=चारुदत्तस्य, प्रत्यक्षम्=समक्षम्, न गता=नहि प्रस्थिता, तत्=तस्मात् न जाने=अहं न जानामि, किमिति=प्रश्ने, पद्भ्याम् गता=पादचारी भूत्वा प्रस्थिता, उत्=किं वा, प्रवहणेन=शकटेन ।

(वीरकः, सामर्षः=क्रोधेन सह, प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा ।)

अन्वयः—पादप्रहारपरिभवविमाननाबद्धगुरुकवैरस्य, अनुशोचतः, मे, इयम्, रात्रिः, कथमपि, प्रभाता ॥ २३ ॥

पादेति । पादेन=चरणेन, प्रहारः=आघातः तेन, तेन चन्दनकेन यः परिभवः=अनादरः, तेन या, विमानना=अपमानस्तया बद्धम्=उत्पादितम्, गुरुकम्=महत्, वैरम्=चन्दनकेन वैरभावम्, यस्य तस्य अत एव, अनुशोचतः=चिन्तां कुर्वतः, मे=मम, इयम्=एषा, रात्रिः=निशा, कथमपि=महता कष्टेन, प्रभाता=प्रभातरूपेण परिणता, व्यतीतेति भावः । आर्या वृत्तम् ॥ २३ ॥

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त ! क्या वह पैदल गई है, अथवा गाड़ी से ।

चारुदत्त—वह मेरे सामने नहीं गई है । अतः मैं नहीं जानता हूँ कि वह पैदल गई है या गाड़ी से ?

(गुस्सा के साथ, भीतर आकर ।)

वीरक—चन्दनक ने मुझे लात मारी है, इस अपमान के कारण मैं उसका जानी दुश्मन हो गया हूँ । उससे बदला कैसे लेना चाहिए; यह सोचते-सोचते रात आँखों में ही कट गई ॥ २३ ॥

ता जाव अधिअरणमण्डवं उवसप्पामि। (प्रवेष्टकेन) सुहं अज्जमिस्साणं। [**तद् यावदधिकरणमण्डपमुपसर्पामि। सुखम् आर्यमिश्राणाम्।**]

अधिकरणिकः—अये! नगररक्षाधिकृतो वीरकः। वीरक! किमागमनप्रयोजनम्?

वीरकः—ही! बन्धण-भेअण-सम्भमे अज्जकं अण्णेसन्तो ओवारिदं पवहणं वच्चदि त्ति विआरं करन्तो अण्णेसन्तो 'अरे! तुए वि आलोइदे मए वि आलोइदव्वो' त्ति भणन्तो ज्जेव चन्दणमहत्तरएण पादेण ताडिदो म्हि। एदं सुणिअ अज्जमिस्सा पमाणं। [**ही! बन्धनभेदनसम्भ्रमे आर्यकमन्विष्यन्, अपवारितं प्रवहणं व्रजतीति विचारं कुर्वन् अन्विष्यन्—'अरे! त्वयापि आलोकिते मयापि आलोकयितव्यः' इति भणन्नेव, चन्दनमहत्तरकेण पादेन ताडितोऽस्मि। एतत् श्रुत्वा आर्यमिश्राः प्रमाणम्।**]

तत्=तर्हि, यावदिति वाक्यालङ्कारे, अधिकरणमण्डपम्=न्यायालयम्, उपसर्पामि=गच्छामि (प्रवेष्टकेन—प्रवेष्टः=बाहुः 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इत्यमरः। प्रवेष्टः एव प्रवेष्टकस्तेन दक्षिणभुजेन प्रणम्येति शेषः।) सुखम्=कुशलम्, आर्यमिश्राणाम्=अधिकारिवर्गाणाम्।

अधिकरणिकः—अये=इति सम्बोधने. नगररक्षाधिकृतः=उज्जयिन्याः प्रधानरक्षकः, वीरकः=एतदाख्यनगररक्षायां नियुक्तः प्रधानपुरुषः, वीरक=हे वीरक, आगमनप्रयोजनम्=अत्र प्राप्तेः हेतुः किमिति प्रश्ने?

वीरकः—ही=इति विषादेऽव्ययम्, बन्धनभेदनसम्भ्रमे—बन्धनस्य=कारागारस्य, भेदनम्=त्रोटनम्, तेन यः सम्भ्रमः=त्वरा, तस्मिन्, आर्यकम्=एतदाख्यगोपबालकम् आन्विष्यन्=अन्वेषणं कुर्वन्,—'अरे=इति सम्बोधने, त्वया=चन्दनकेन, अपि=चेत्, आलोकितम्=अवलोकनं कृतम्, मया=वीरकेनापि, अवलोकयितव्यः=अन्वेष्टव्यः। इति=इत्थम्, भणन्=कथयन्, एव चन्दनमहत्तरकेण—चन्दन एव महत्तरः=मत्तः महान् स एव महत्तरकस्तेन, पादेन=चरणेन, ताडितोऽस्मि=

इस बीच न्यायालय में ही प्रवेश करता हूँ। (**दाहिना हाथ ऊपर उठाकर**) आप पदाधिकारीगण सकुशल तो हैं न?

अधिकरणिक—अरे, नगर रक्षा के लिए नियुक्त प्रधान रक्षक वीरक, तुम्हारे यहाँ आने का कारण क्या है?

वीरक—हा, आर्यक जेल के बन्धन को तोड़कर जब भागा था तब जल्दी बाजी में उसकी खोज में मैं निकला था रास्ते में मैंने जाती हुई एक ढकी गाड़ी देखी। मैंने उसकी तलाशी लेनी चाही। पहले चन्दनक ने उसका निरीक्षण किया। जब मैं उसे देखना चाहा तो उसने मुझे लात से मारी है। मेरा यही विवाद है। आप जो चाहें निर्णय दें।

अधिकरणिकः—भद्र ! जानीषे कस्य तत् प्रवहणमिति ?

वीरकः—इमस्स अज्जचारुदत्तस्स, वसन्तसेणा आरूढा, पुप्फकरण्डकजिण्णुज्जाणं कीलिदुं णीअदि त्ति पवहणवाहएण कहिदं। [**अस्य आर्यचारुदत्तस्य, वसन्तसेना आरूढा, पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं क्रीडितुं नीयत इति प्रवहणवाहकेन कथितम्।**]

शकारः—पुणोवि शुदं अज्जेहिं ? [**पुनरपि श्रुतमार्यैः**]

अधिकरणिकः—

एष भो ! निर्मलज्योत्स्नो राहुणा ग्रस्यते शशी।
जलं कूलावपातेन प्रसन्नं कलुषायते ॥ २४ ॥

वीरक ! पश्चादिह भवतो-न्यायं द्रक्ष्यामः। य एषोऽधिकरणद्वारि अश्वस्तिष्ठिति, तमेनमारुह्य गत्वा पुष्पकरण्डकोद्यानं दृश्यताम्--अस्ति तत्र काचिद्विपन्ना स्त्री न वेति ?

प्रहारितोऽस्मि। एतत्=अभियोगम्, श्रुत्वा=आकर्ण्य, आर्यमिश्राः=विद्वांसः, मान्याः वा, प्रमाणम्=चन्दनको दण्ड्यः न वेति निर्णये प्रमाणपुरुषः।

अधिकरणिकः—भद्र=हे गुणिन्, जानीषे=त्वं जानासि, कस्य=पुरुषविशेषस्य, तत् प्रवहणम्=शकटम् ?

वीरकः—अस्य=पुरोवर्त्तिनः, आर्यचारुदत्तस्य=मान्यस्य, वसन्तसेना=एतदाख्या गणिका, आरूढा=समासीना, क्रीडितुम्=रतिक्रीडाकर्त्तुम्, नीयते इति=इत्थम्, प्रवहणवाहकेन=यानचालकेन, कथितम्=निवेदितम्।

शकारः—पुनरपि=भूयोऽपि, श्रुतम्=आकर्णितम्, आर्यैः=मान्यैः श्रेष्ठजनैरिति।

अन्वयः—भोः, निर्मलज्योत्स्नः, एषः, शशी, राहुणा, ग्रस्यते, कूलावपातेन, प्रसन्नम्, जलम्, कलुषायते ॥ २४ ॥

एष इति। भोः=इति खेदे, निर्मला=शुभ्रा, ज्योत्स्ना=चन्द्रिका, यस्य तादृशः, एषः=अयम्, शशी=सुधाकरः, राहुणा=स्वर्भानुना, ग्रस्यते=कवलीक्रियते, कूलावपातेन=तटावभ्रंशनेन, प्रसन्नम्=विमलम्, जलम्=सलिलम्, यथा कलुषायते==मलिनायते। अतिशयोक्तिरलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ २४ ॥

अधिकरणिक—भद्र, जानते हो, वह किसकी गाड़ी थी ?

वीरक—इस आर्य चारुदत्त की गाड़ी थी, वसन्तसेना उस पर सवार थी। गाड़ीवान् ने बतलाया कि वह पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में विहार करने जा रही थी।

शकार—आप लोगों ने फिर सुन लिया न ?

अधिकरणिक—दुःख है निर्मल चाँदनी वाले चन्द्र को राहु ग्रास बना रहा है जैसे तट के गिरने से निर्मल जल गन्दा हो जाता है ॥ २४ ॥

वीरकः—जं अज्जो आणवेदि। (इति निष्क्रान्तः, प्रविश्य च) गदो म्हि तहिं, दिट्टं च मए इत्थिआकलेवरं सावदेहिं विलुप्पन्तं। [**यदार्य आज्ञापयति। गतोऽस्मि तस्मिन्, दृष्टश्च मया स्त्रीकलेवरं श्वापदैर्विलुप्यमानम्।**]

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथं तुम जाणिदं इत्थिआकलेवरं त्ति? [**कथं त्वया ज्ञातं स्त्रीकलेवरमिति।**]

वीरकः—सावसेसेहिं केस-हस्त-पाणि-पादेहिं उवलक्खिदं मए। [**सावशेषैः केश-हस्त-पाणि-पादैरुपलक्षितं मया।**]

अधिकरणिकः—अहो! धिक् वैषम्यं लोकव्यवहारस्य।

यथा यथेदं निपुणं विचार्यते तथा तथा सङ्कटमेव दृश्यते।
अहो! सुसन्ना व्यवहारनीतयो मतिस्तु गौः पङ्कगतेव सीदति॥ २५॥

इह=अत्र, भवतः=तव, न्यायम्=विवादम्, पश्चात्=अनन्तरम्, द्रक्ष्यामः। अधिकरणद्वारि=न्यायालयपार्श्वभूमौ, अश्वः=घोटकः, तिष्ठति=उपस्थितोऽस्ति, आरुह्य=आरूढो भूत्वा, विपन्ना=मृता, स्त्री=नारी, न वेति।

वीरकः—यत्=यथा, आज्ञापयति=आदिशति। (निष्क्रम्य=गत्वा, पुनः प्रविश्य।) स्त्रीकलेवरम्=नारीदेहम्, श्वापदैः=हिंस्रजन्तुभिः, विलुप्यमानम्=भक्ष्यमाणम्, मया=वीरकेन, दृष्टम्=अवलोकितम्।

श्रेष्ठिकायस्थौ—त्वया=वीरकेन, कथम्=केन प्रकारेण. ज्ञातम्=बुद्धम्, स्त्री कलेवरम्=नारीदेहम् इति।

वीरकः—सावशेषैः=भुक्तावशिष्टैः, केशैः=लम्बशिरोरुहैः, हस्तपाणिपादैः=करचरणादिभिः, मया=वीरकेन, उपलक्षितम्=परिज्ञातम्।

अधिकरणिकः—अहो=इत्याश्चर्यम्, लोकव्यवहारस्य=लोकचरितस्य, वैषम्यम्=वैपरीत्यम्, धिक्=निन्दामीत्यर्थः।

अन्वयः—इदम्, यथा, यथा, निपुणम्. विचार्यते, तथा, तथा, सङ्कटम्, एव, दृश्यते, अहो, व्यवहारनीतयः, सुसन्नाः तु, मतिः, पङ्कगता, गौः, इव, सीदति॥२५॥

वीरक, तुम्हारा विवाद पीछे देखा जायेगा। पहले न्यायालय के द्वार पर बँधे घोड़े से शीघ्र जाकर जीर्णोद्यान में देख आओ किसी मृत औरत की लाश तो पड़ी नहीं है।

वीरक—जैसी आज्ञा श्रीमान् की। (**चला जाता है, फिर लौटकर**) वहाँ से देखकर आ रहा हूँ, औरत की लाश को हिंसक जन्तु खा रहे हैं।

श्रेष्ठिकायस्थ—तुमने कैसे जाना कि यह लाश औरत की है।

वीरक—खाकर बचे केश, हाथ और पैर के द्वारा मुझे पता चला कि यह किसी औरत का शव है।

अधिकरणिक—हाय, इस संसार के व्यवहार की विलक्षणता को धिक्कार है। जितनी ही गहराई से इस पर सोचता हूँ, यह मुकदमा उतना ही उलझता जाता

चारुदत्तः—(स्वगतम्)

यथैव पुष्पं प्रथमे विकासे समेत्य पातुं मधुपाः पतन्ति ।
एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति ॥ २६ ॥

अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त ! सत्यमभिधीयताम् ।

चारुदत्तः—

दुष्टात्मा परगुणमत्सरी मनुष्यो
रागान्धः परमिह हन्तुकामबुद्धिः ।
किं यो यद्वदति मृषैव जातिदोषात्
तद् ग्राह्यं भवति ? न तद्विचारणीयम् ॥ २७ ॥

यथेति । इदम्=न्यायनिर्णयम्, यथा यथा=येन येन प्रकारेण, निपुणम्=सम्यक्, विचार्यते=निर्णीयते, तथा तथा=तेन तेन प्रकारेण, सङ्कटम्=दुःखावस्थापन्नम् एव दृश्यते=प्रतीयते, अहो इति विषादे, व्यवहारनीतयः=विवादविचारपद्धतयः, सुसन्नाः=वीरकसाक्ष्यलाभेन संलग्नाः, तु=किन्तु, तथापि मतिः=बुद्धिः, पङ्कगता=कर्दमपतिता, गौः=धेनुः, इव=यथा, सीदति=अवसादं गच्छति । अत्र विभावनाविशेषोक्तिसन्देहाच्चानयोः सन्देहसङ्कारोऽलङ्कारः । पङ्कगता गौरिवात्र श्रौतोपमया सङ्कीर्यते । वंशस्थविलं वृत्तञ्चेति ॥ २५ ॥

अन्वयः—यथैव, प्रथमे, विकाशे, पुष्पम्, पातुम्, भ्रमराः, समेत्य, पतन्ति । एवम्, मनुष्यस्य, विपत्तिकाले, छिद्रेषु, अनर्थाः, बहुलीभवन्ति ॥ २६ ॥

यथैवेति । यथैव=येन प्रकारेणैव, प्रथमे=प्रारम्भिके, विकाशे=उन्मेषे, पुष्पम्, प्रसूनम्, पातुम्=मकरन्दपानं कर्त्तुम्, भ्रमराः=द्विरेफाः, समेत्य=सङ्गम्य, पतन्ति=वेगेनागच्छन्ति । एवम्=इत्थम्, मनुष्यस्य=लोकस्य, विपत्तिकाले=दुःखितावस्थायाम्, छिद्रेषु=रन्ध्रेषु, अनर्थाः=विपत्तयः, बहुलीभवन्ति=स्फारीभवन्ति । अप्रस्तुतप्रशंसा तथोपमालङ्कारः, उपजातिः वृत्तम् ॥ २६ ॥

अधिकरणिकः—आर्य चारुदत्त=हे मान्य चारुदत्त, सत्यम्=यथार्थम्, अभिधीयताम्=कथ्यताम् ।

अन्वयः—इह, दुष्टात्मा, परगुणमत्सरी, रागान्धः, परम्, हन्तुकामबुद्धिः, यः,

---

है । निर्णय के लिए नीतिपूर्वक जितना ही इस पर विचार करता हूँ, उतनी ही मेरी बुद्धि कीचड़ में फँसी गाय की तरह छटपटाने लगती है ॥ २५ ॥

चारुदत्त—(**मन ही मन**) प्रथम विकास के समय फूलों का रस पीने के लिए भौंरे जैसे दल के दल एक साथ आ गिरते हैं; उसी तरह मनुष्य की आपत्ति के समय जरा-सी भूल पाकर भी अनेक अनिष्ट एक साथ जुड़ जाते हैं ॥ २६ ॥

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, सच सच बतलाओ ।

चारुदत्त—संसार में दुष्ट, दूसरों के गुणों से जलने वाले पापी, कामान्ध एवं

अपि च—

> योऽहं लतां कुसुमितामपि पुष्पहेतो-
> राकृष्य नैव कुसुमावचयं करोमि।
> सोऽहं कथं भ्रमरपक्षरुचौ सुदीर्घे
> केशे प्रगृह्य रुदतीं प्रमदां निहन्मि॥ २८॥

शकारः—हंहो अधिअलणभोइआ! किं तुम्हे पक्खवादेण ववहालं पेक्खध? जेण अज्जवि एशे हदाशचालुदत्ते आशणे धालीअदि। [**हंहो अधिकरणभोजकाः! किं यूयं पक्षपातेन व्यवहारं प्रेक्षध्वम्? येन अद्यापि एष हताशचारुदत्त आसने धार्यते।**]

मनुष्यः, जातिदोषात्, मृषा, एव, यत्, वदति, तत्, किम्, ग्राह्यम्, भवति? तत्, न, विचारणीयम्॥ २७॥

दुष्टात्मेति। इह=संसारे, दुष्टात्मा=पापात्मा, परगुणमत्सरी=अन्योत्कर्षेषु ईर्ष्यालुः, रागान्धः=विषयाभिलाषेण विवेकहीनः, परम्=अन्यजनम्, हन्तुकामबुद्धिः =विनाशेच्छामतिः, यः=यः कश्चित्, मनुष्यः=लोकः, जातिदोषात्=नीचकुलोत्पन्नत्वात्, मृषा=असत्यम्, एव यत् वदति=कथयति, तत्=कथनम्, किमिति प्रश्ने, ग्राह्यम्=मान्यम्, भवति=अस्ति? तत्=तस्य वचनम्, न विचारणीयम्=तत्कथनमश्रद्धेयमिति। अप्रस्तुतप्रशंसा एवं परिकरालङ्कारः। प्रहर्षिणी वृत्तञ्चेति॥ २७॥

अन्वयः—यः, अहम्, कुसुमिताम्, लताम्, अपि, पुष्पहेतोः, आकृष्य, पुष्पावचयम्, न करोमि, सः, अहम्, भ्रमरपक्षरुचौ, सुदीर्घे, केशे, प्रगृह्य, रुदतीम्, प्रमदां, कथं, निहन्मि?॥ २८॥

योऽहमिति। यः=दयालुः, अहम्=चारुदत्तः, कुसुमिताम्=प्रफुल्लिताम्, लताम् =वल्लरीम्, अपि=चेत्, पुष्पहेतोः=प्रसूनकारणात्, आकृष्य=नमयित्वा, पुष्पावचयम्= कुसुमत्रोटनम्, न करोमि=न सम्पादयामि, सः=असौ, अहम्=चारुदत्तः, भ्रमरपक्षरुचौ=अतिकृष्णवर्णे, सुदीर्घे=प्रशस्ते, केशे=चिकुरे, प्रगृह्य=गृहीत्वा, रुदतीम् =क्रन्दन्तीम्, प्रमदाम्=बालाम्, कथम्=केन प्रकारेण, निहन्मि=मारयामि। अत्र काव्यलिङ्गालङ्कारः। वसन्ततिलका वृत्तञ्चेति॥ २८॥

शकारः—हंहो=इत्याश्चर्यसूचकमव्ययम्, अधिकरणभोजकाः=न्यायाधीशाः,

दूसरों को विनष्ट करने वाले जीव, अपनी दुर्बलता के वश जो कुछ दूसरों पर मिथ्या दोषारोपण करते हैं, क्या वे विश्वासार्ह हैं? क्या ऐसे लोगों के कथन पर विचार करना न्यायालय के लिए उचित है?॥ २७॥

और भी—विकसित लता को भी झुकाकर या खींचकर मैंने कभी फूल नहीं तोड़ा है। फिर यह कैसे सम्भव हो सकता है कि काले कजरारे लम्बे बालों को खींचकर किसी अबला की मैं हत्या करूँ॥ २८॥

शकार—अरे ओ न्यायाधीशो, क्या आपका यह पक्षपात पूर्ण विचार नहीं है कि

अधिकरणिकः—भद्र शोधनक ! एवं क्रियताम् ।

(शोधनकस्तथा करोति ।)

चारुदत्तः—विचार्यतां भो अधिकृताः ! विचार्यताम् । (इत्यासनादवतीर्य भूमावुपविशति ।)

शकारः—(स्वगतम् । सहर्षं नर्त्तित्वा) ही अणेण मए, कडे पावे अण्णश्श मत्थके णिवडिदं ता जहिं चालुदत्ताके ! उवविशदि, तहिं हग्गे उवविशामि (तथा कृत्वा) चालुदन्ना ! पेक्ख पेक्ख मं, ता भण मए मालिदे त्ति । [**ही, अनेन मया कृतं पापमन्यस्य मस्तके निपातितम् । तद् यत्र चारुदत्त उपविशति, तस्मिन्नहमुपविशामि । चारुदत्त ! प्रेक्षस्व माम्, तद् भण मया मारितेति ।**]

किमिति प्रश्ने, यूयम् पक्षपातेन=पक्षपातं कृत्वा, व्यवहारम्=अभियोगम्, प्रेक्षध्वम् । येन=कारणेन, अद्यापि=अपराधित्वनिश्चयेऽपि, एषः=पुरोवर्तिनः, हताशचारुदत्तः =नीचचारुदत्तः, आसने=उपवेशने, धार्यते=उपवेश्यते ।

अधिकरणिकः—भद्र=हे साधुशोधनक ! एवं क्रियताम्=चारुदत्तम् आसनादवतार्यताम् ।

(शोधनकः तथाकरोति=आसनात्तमवतारयति ।)

चारुदत्तः—भो अधिकृताः=अधिकारिणः, विचार्यताम् । (इति=एवमुक्त्वा, तथाविधं कृत्वा भूमौ=पथिव्याम्, उपविशति=तिष्ठति ।)

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्, सहर्षम्=सप्रसन्नम्, नर्त्तित्वा=नर्त्तनं कृत्वा ।) हीति विस्मयानन्दे, अनेन=एवंविधेन, मया=शकारेण, कृतम्=विहितम्, पापम्=अधर्मम्, अन्यस्य=अपरस्य चारुदत्तस्य, मस्तके=शिरसि, निपातितम्=आरोपितम्, तत्=तस्मात्, यत्र=यस्मिन् स्थाने, चारुदत्त उपविशति=उपवेशनं करोति, तस्मिन्=तत्र, अहम्=शकारः, उपविशामि, माम्=शकारम्, प्रेक्षस्व=अवलोकय, तत्=तस्मात्, भण=कथय, मया=चारुदत्तेन, मारिता=वसन्तसेना हता ।

दोष प्रमाणित होने के बावजूद भी आप अब तक इस पापी चारुदत्त को आसन पर बैठाये हैं ।

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, ऐसा ही करो । (चारुदत्त को आसन से उतारो ।)

(शोधनक चारुदत्त को आसन से नीचे उतार देता है ।)

चारुदत्त—न्यायाधिपतियो, विचार कीजिए । **(आसन से नीचे उतरकर धरती पर बैठ जाता है ।)**

शकार—**(खुशी के साथ, नाचते हुए, मन ही मन)** अहा, इस प्रकार मैंने अपना किया हुआ पाप, दूसरे के माथे थोप दिया । तब जहाँ चारुदत्त बैठा है, वहीं चलकर क्यों न बैठ जाऊँ ? **(बैठकर)** चारुदत्त, देखो मेरी ओर देखो और इसीलिए कहो—'वसन्तसेना को मैंने मारा है ।'

चारुदत्तः—भो अधिकृताः ! ('दुष्टात्मा···' इत्यादि पूर्वोक्तं पठति । सनिःश्वासं, स्वगतम् ।)

मैत्रेय भोः ! किमिदमद्य ममोपघातो
हा ब्राह्मणि ! द्विजकुले विमले प्रसूता ।
हा रोहसेन ! नहि पश्यसि मे विपत्ति
मिथ्यैव नन्दसि परव्यसनेन नित्यम् ॥ २९ ॥

प्रेषितश्च मया तद्वार्त्तान्वेषणाय मैत्रेयो वसन्तसेनासकाशम्, शकटिकानिमित्तञ्च च तस्य प्रदत्तान्यलङ्करणानि प्रत्यर्पयितुम् । तत् कथं चिरयते ?

(ततः प्रविशति गृहीताभरणो विदूषकः ।)

चारुदत्तः—भो अधिकृताः=हे न्यायाधीशाः ! ('दुष्टात्मा' इति पूर्वपठितश्लोकं पुनः पठति ।)

अन्वयः—भो मैत्रेय; इदम्, किम् ? अद्य, मम, उपघातः ? विमले, द्विजकुले प्रसूता, हा, ब्राह्मणि, हा रोहसेन, मे, विपत्तिम्, नहि, पश्यसि, मिथ्या, एव, परव्यसनेन, नित्यम्, नन्दसि ॥ २९ ॥

मैत्रेयेति । भो मैत्रेय=सखे विदूषक, इदम्=एतत्, किम्=कथं जालम्, अद्य=अस्मिन् दिने, मम=चारुदत्तस्य, उपघातः=विनाशः, उपगतः, विमले=निर्मले, द्विजकुले=ब्राह्मणवंशे, प्रसूता=जाता, हा इति शोके, ब्राह्मणि=हे भार्ये धूते ! हा रोहसेन=हे तदाख्यपुत्र ! मे=मम्, विपत्तिम्=आपत्तिम्, नहि पश्यसि=नावलोकयसि । मिथ्यैव=वृथैव, परव्यसनेन=केवलबालक्रीडया, नित्यम्=प्रतिदिनम्, नन्दसि=आनन्दमनुभवसि । वसन्ततिलका वृत्तम् ॥ २९ ॥

प्रेषितः=प्रेरितः, मया=चारुदत्तेन, तद्वार्त्तान्वेषणाय=वसन्तसेनावृत्तान्तज्ञानाय मैत्रेयः=तदाख्यो विदूषकः, शकटिकानिमित्तम्=स्वर्णशकटिकानिर्माणार्थम्, तस्य=रोहसेनस्य, प्रदत्तानि=अर्पितानि, अलङ्करणानि=वसन्तसेनायाः आभूषणानि, प्रत्यर्पयितुम्=तद्दत्तानि आभरणानि तस्यै दातुम्, तत्=तस्मात्, कथम्=केन कारणेन, चिरयते=विलम्बते ।

चारुदत्त—ओ न्यायाधीशो, ('दुष्टात्मा···' **इत्यादि पूर्वपठित श्लोक ही पढ़ता है; लम्बी साँस खींचकर**)

हाय, मित्र मैत्रेय ! यह कैसी विपत्ति आई है, निर्मल ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हा प्रिये धूते ! हाय, बेटे रोहसेन ! तुम मेरी विपत्ति नहीं देख रहे हो, व्यर्थ ही अपने बालसुलभ मात्र खेलों से खुश हो रहे हो ॥ २९ ॥

वसन्तसेना की खोज के लिए मैंने मैत्रेय को भेजा है, रोहसेन को खेलने के लिए गाड़ी बनवाने हेतु उसने अपने जेवर दिये हैं, उन्हें उसे लौटाने के लिए मैत्रेय को भेज दिया है फिर अब तक वह क्यों नहीं लौट रहा है ?

(इसके बाद आभूषण के साथ विदूषक का प्रवेश)

विदूषकः—पेसिदो म्हि अज्जचारुदत्तेण वसन्तसेणासआसं तहिं अलंकरणाइं गेण्हिअ, जधा—'अज्जमित्तेअ ! वसन्तसेणाए वच्छो रोहसेणो अत्तणो अलंकारेण अलंकरिअ जणणीसआसं पेसिदो; इमस्स आहरणं दादव्वं, ण उण गेण्हिदव्वं, ता समप्पेहि त्ति ! ता जाव वसन्तसेणासआसं ज्जेव गच्छामि (परिक्रम्यावलोक्य च, आकाशे) कधं भावरेभिलो। भो भावरेभिल ! किंणिमित्तं तुमं उव्विग्गो उव्विग्गो विअ लक्खीअसि ? (आकर्ण्य) किं भणासि ? 'पिअवअस्सो चारुदत्तो अधिअरणमण्डवे सद्दाइदो त्ति ?' ता ण हु अप्पेण कज्जेण होदव्वं। (विचिन्त्य) ता पच्छा वसन्तसेणासआसं गमिस्सं। अधिअरणमण्डवं दाव गमिस्सं (परिक्रम्यावलोक्य च) इदं अधिअरणमण्डवं, ता जाव पविसामि। (प्रविश्य) सुहं अधिअरणभोइआणं ? कहिं मम पिअवअस्सो ? [**प्रेषितोऽस्मि आर्यचारुदत्तेन वसन्तसेनासकाशम्, तस्मिन्नलङ्करणानि गृहीत्वा, यथा—'आर्यमैत्रेय ! वसन्तसेनया वत्सो रोहसेन आत्मनोऽलङ्कारेणालङ्कृत्य जननीसकाशं प्रेषितः, अस्या आभरणं दातव्यम् न पुनर्ग्रहीतव्यम्, तत् समर्पये'ति। तद्यावत् वसन्तसेनासकाशमेव गच्छामि। कथं भावरेभिलः। भो भावरेभिल ! किंनिमित्तं त्वमुद्विग्न इव लक्ष्यसे ? किं भणसि ? प्रियवयस्यश्चारुदत्तः अधिकरणमण्डपे शब्दायित इति ? तत् न खलु अल्पेन कार्येण भवितव्यम्। तत् पश्चात् वसन्तसेनासकाशं गमिष्यामि। अधिकरणमण्डपं तावत् गमिष्यामि। अयमधिकरणमण्डपः, तद्यावत् प्रविशामि। सुखमधिकरणभोजकानाम् ? कस्मिन् मम प्रियवयस्यः ?**]

(ततः=तत्पश्चात्, गृहीताभरणः=अलङ्काराणि नीत्वा,
विदूषकः=मैत्रेयः प्रविशति।)

विदूषकः—प्रेषितोऽस्मि=प्रस्थापितोऽस्मि, तस्मिन्=वसन्तसेनासन्निधौ, गृहीत्वा=नीत्वा, अस्याः=वसन्तसेनायाः, दातव्यम्=समर्पणीयम्, (आकाशे=आकाशाभिमुखम्, आकाशभाषितम् नाम इदं सम्वादरूपम्, तथाहि दर्पणे—किं ब्रवीषीति यन्नाटचे विना पात्रं प्रयुज्यते। श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम् ॥' रेभिलः=चारुदत्तस्य संगीतविद्या विशारदः अन्तरङ्गः। उद्विग्न इव=अन्यमनस्क इव, लक्ष्यसे=

विदूषक—आर्य चारुदत्त ने मुझे वसन्तसेना के पास उसके जेवरों को देकर यह कहकर भेजा है कि, 'आर्य मैत्रेय ! वसन्तसेना ने अपने आभूषण पुत्र रोहसेन को देकर उसे अपनी माँ धूता के पास भेजा था। हमें उसे आभूषण देने चाहिये, न कि लेने। अतः इन्हें लौटा दो।' मुझे वह आभूषण वसन्तसेना को लौटाना है। अतः मैं उसके पास चलता हूँ। (**घूमकर, आकाश की ओर देखकर**) विद्वन् रेभिल, तुम इतने उद्विग्न क्यों प्रतीत हो रहे हो ? (**सुनकर**) क्या कहा ? मित्र चारुदत्त को न्यायमण्डप में बुलाया गया है। निश्चय ही कोई बड़ी गड़बड़ी है (**कुछ सोंचकर**) तो पहले न्यायालय ही चलूं। वसन्तसेना को बाद में खोज लूंगा। (**घूमकर और**

अधिकरणिकः—नन्वेष तिष्ठति ।

विदूषकः—वअस्स ! सोत्थि दे । [**वयस्य ! स्वस्ति ते ।**]

चारुदत्तः—भविष्यति ।

विदूषकः—अवि क्खेमं दे ? [**अपि क्षेमं ते ?**]

चारुदत्तः—एतदपि भविष्यति ।

विदूषकः—भो वअस्स ! किं णिमित्तं उव्विग्गो उव्विग्गो विअ लक्खीअसि ? कुदो वा सद्दाइदो ? [**भो वयस्य ! किं निमित्तमुद्विग्न उद्विग्न इव लक्ष्यसे ? कुतो वा शब्दायितः ?**]

चारुदत्तः—वयस्य !

मया खलु नृशंसेन परलोकमजानता ।
स्त्री रतिर्वाविशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति ॥ ३० ॥

अवलोक्यसे । (आकर्ण्य=श्रुत्वा) किं भणसि=किं कथयसि ? अधिकरणमण्डपे=न्यायालये, शब्दायितः=आकारितः, अल्पेन=लघुना, कार्येण=प्रयोजनेन, भवितव्यम्=भाव्यम् । (विचिन्त्य=विचार्य) पश्चात्=अनन्तरम् । अधिकरणमण्डपम्=न्यायालयम्, अधिकरणभोजकानाम्=न्यायाधिकारिणाम् ।

अधिकरणिकः—एषः=असौ, तिष्ठति=अस्मिन् स्थाने, उपविशति ।

विदूषकः—वयस्य=हे मित्र, ते=तव, स्वस्ति=मङ्गलमस्तु ।

चारुदत्तः—भविष्यति=सम्प्रति नास्ति, किन्तु भविष्ये भविष्यति ।

विदूषकः—अपि=चेत्, क्षेमम्=कल्याणम्, अस्ति नवेति प्रश्नः ?

चारुदत्तः—एतदपि=रक्षाऽपि, भविष्यति ।

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, किन्निमित्तम्=कस्मिन् हेतौ, उद्विग्नः=विचलितः, इव लक्ष्यसे=प्रतीयसे ? कुतः=कस्मात् हेतोः, वा शब्दायते=आहूत इति ।

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र,

अन्वयः—परलोकम्, अजानता, नृशंसेन, मया, खलु, स्त्री, वा, अविशेषेण, रतिः, शेषम्, एषः, अभिधास्यति ॥ ३० ॥

देखकर) तो यह आ ही गया कचहरी । (**भीतर जाकर**) न्यायाधीशगण सकुशल तो हैं ? मेरे प्रियमित्र चारुदत्त कहाँ हैं ?

अधिकरणिक—वे सामने ही बैठे हैं ।

विदूषक—मित्र, कल्याण हो ।

चारुदत्त—होगा कल्याण ।

विदूषक—आप सकुशल तो हैं न ?

चारुदत्त—कुशल भी होगा ।

विदूषक—मित्र, इतना उदास क्यों हो ? तुम्हें यहाँ किसलिए बुलाया गया है ।

चारुदत्त—मित्र,

विदूषकः—किं किं ? [किं किम् ?]

चारुदत्तः—(कर्णे) एवमेवम् ।

विदूषकः—को एव्वं भणादि ? [क एवं भणति ?]

चारुदत्तः—(संज्ञया शकारं दर्शयति) नन्वेष तपस्वी हेतुभूतः, कृतान्तो मां व्याहरति ।

विदूषकः—(जनान्तिकम्) एवं कीस ण भणीअदि गेहं गदे त्ति ? [एवं केन न भण्यते गेहं गतेति ?]

चारुदत्तः—उच्यमानमप्यवस्थादोषान्न गृह्यते ।

विदूषकः—भो भो अज्जा ! जेण दाव पुरट्ठावण-विहारारामदेउल-तडाग-

मयेति । परलोकम्=लोकान्तरम्, अजानता=अनवगच्छता, नृशंसेन=घातुकेन, मया=चारुदत्तेन, खलु=निश्चितम्, स्त्री=अबला, वा=अथवा, अविशेषेण=अभेदेन, रतिः=मदनपत्नी, शेषम्=वक्तव्यावशिष्टम्, एषः=शकारः, अभिधास्यति=कथयिष्यति । अतिशयोक्तिरलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ३० ॥

विदूषकः—किम्, किम् इति सम्भ्रमे द्विरुक्तिः ।

चारुदत्तः—(कर्णे=श्रवणे) एवमेव=गोप्यवृत्तं स्पष्टयति ।

विदूषकः—कः=पुरुषविशेषः, एवम्='अलङ्कारलाभार्थं त्वया वसन्तसेना मारिता' इति, भणति=कथयति ।

चारुदत्तः—(संज्ञया=सङ्केतेन, शकारं दर्शयति) नन्वेषः=अयम्, तपस्वी=क्षुद्रः, हेतुभूतः=निमित्तमात्रम्, कृतान्तः=भाग्यम्, माम्=चारुदत्तम्, व्याहरति=कथयति ।

विदूषकः—(जनान्तिकम्=अपवार्य) एवं=अनेन रूपेण, केन=हेतुना, न=नहि, भण्यते=कथ्यते, गेहम्=सदनम्, गता=प्राप्तेति ।

चारुदत्तः—उच्यमानमपि=कथ्यमानमपि, अवस्थायाः=दारिद्र्यावस्थायाः दोषात्=धनादरजनकत्वदोषात्, न=नहि, गृह्यते=स्वीक्रियते ।

विदूषकः—भो भो आर्याः=मान्याः, येन=पुरुषेण, पुरस्थापनम्=धर्मशालादि-

---

परलोक से अनभिज्ञ, अतिक्रूर मैंने स्त्री अथवा रति से अभिन्न वसन्तसेना को—शेष बातें यह शकार ही बतलायेगा ॥ ३० ॥

विदूषक—क्या क्या ?

चारुदत्त—(कान में) इस प्रकार ।

विदूषक—ऐसा कौन कहता है ?

चारुदत्त—(इशारे से शकार को बतलाता है) यही नीच इसका प्रत्यक्ष कारण है किन्तु यथार्थतः भाग्य ने मुझे इस प्रकार कहा है ।

विदूषक—(धीरे से) यह क्यों नहीं कहते कि वसन्तसेना घर गई है ।

चारुदत्त—यह कहे जाने के बावजूद सुनता कौन है ?

कूव-जूवेहिं अलङ्किदा णअरी उज्जइणी, सो अणीसो अत्थकल्लवत्तकारणादो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि त्ति ? (सक्रोधम्) अरे रे कोणेलीसुदा ! राअ-स्साल-सण्ठाणआ ! उस्सुंखलआ। किद-जण-दोसभण्डआ ! बहुसुवण्ण-मंडिद-मक्कडआ ! भण भण मम अग्गदो, जो दाणिं मम पिअवअस्सो कुसुमिदं माधवीलदं पि आकिट्टिअ कुसुमावचअं ण करेदि, कदावि आकिट्टिदाए पल्लवच्छेदो भोदित्ति, सो कधं एरिसं अकज्जं उहअलोअविरुद्धं करेदि ? चिट्ठ रे कुट्टिणिपुत्ता ! चिट्ठ। जाव एदिणा तव हिअअकुडिलेण दंडकट्ठेण मत्थअं दे सदखण्डं करेमि। [**भो भो आर्याः ! येन तावत् पुरस्थापन-विहाराराम-देवकुल-तडागकूपयूपैरलङ्कृता नगरी उज्जयिनी, सः अनीशः अर्थकल्यवर्त्तकारणादीदृशमकार्यमनुतिष्ठतीति ? अरे रे काणेलीसुत ! राज्यश्यालसंस्थानक ! उच्छृङ्खलक ! कृतजनदोषभण्ड ! बहुसुवर्णमण्डितमर्कटक ! भण भण ममाग्रतः, य इदानीं मम प्रियवयस्यः कुसुमितां माधवीलतामप्याकृष्य कुसुमावचयं न करोति, आकृष्टतया पल्लवच्छेदो भवतीति; स कथमीदृशमकार्यमुभयलोकविरुद्धं करोति ? तिष्ठ रे कुट्टिनीपुत्र ! तिष्ठ। यावदेतेन तव हृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेन मस्तकं ते शतखण्डं करोमि।**]

निर्माणम्, विहारः=बौद्धाश्रमः, आरामः=उपवनम्, देवकुलम्=देवमन्दिरम्, तडागः=जलाशयः, कूपः=अवटः, यूपः=यज्ञस्तम्भः, तैः, अलङ्कृता=सुशोभिता, नगरी=राजधानी, उज्जयिनी, सः=असौ, अनीशः=निर्धनः, अर्थकल्यवर्त्तस्य=क्षणिकक्षुद्रविभवस्य, कारणात्=हेतोः, ईदृशम्=एतादृशम्, अकार्यम्=नारीहत्या-जन्यपापम्, अनुतिष्ठति=करोति ? (सक्रोधं=रोषेण सहितं) काणेलीसुत !=रे अधम ! राजस्यालसंस्थानक=नृपपत्नी-भ्रातासंस्थानक ! उच्छृङ्खलक=अशिष्ट ! कृतम्=आरोपितम्, जनेषु=प्राणिषु, दोषाणाम्=पापानाम्, भाण्डम्=समूहः, इति येन तत्सम्बुद्धौ ! बहुभिः=अनेकैः, सुवर्णैः=कनकघटितैः भूषणैः, मण्डितः=अलङ्कृतः स चासौ मर्कटश्चेति तत्सम्बोधने ! उभयलोकविरुद्धम्=स्वर्ग्यमर्त्यविगर्हितम्, करोति=सम्पादयति। कुट्टिनीपुत्र=सम्भलीसुत ! तव=ते, हृदयं=अन्तःकरणं तद्वत्, कुटिलेन=वक्रेण, मस्तकम्=शिरम्, शतखण्डम्=भग्नम्, करोमि।

विदूषक—अरे ओ महानुभावो, जिसने उपनगरों का निर्माण, बौद्ध-विहार, बगीचा, मन्दिर, तालाब, कुंआ तथा यज्ञस्तम्भों से उज्जयिनी नगरी को सुशोभित किया है, वही व्यक्ति अभी धनहीन हो जाने के कारण सामान्य तुच्छ धन के लिए नारी बध जैसे कुकर्म कैसे करेगा ? (**क्रुद्ध होकर**) ठहर रे हरामी के बच्चे, राजा के साले संस्थानक, उद्दण्ड, लोगों पर दोष मढ़ने वाले, ढेर आभूषणों से लदे नाचने वाला बन्दर, बोलो मेरे सामने—धोखे से कहीं पत्ते न टूट जाय, इस डर से माधवी लता को भी खींचकर जो फूल नहीं तोड़ता, वही मेरा मित्र इह लोक और परलोक बिगाड़ने वाला ऐसा कुकर्म कैसे करेगा ? ठहर रे कुट्टिनी का बेटा, तेरे हृदय की तरह टेढ़े इस डंडे से मैं तेरा कपाल फोड़ता हूँ।

शकारः—(सक्रोधम्) सुणन्तु सुणन्तु अज्जमिश्शा ! चालुदत्ताकेण शह मम विवादे ववहाले वा, ता कीश एशे काकपदशीशमत्थका मए शिले शदखण्डे कलेदि ? मा दाव। ले दाशीए पुत्ता ! दुट्टवडुका ! [**शृण्वन्तु शृण्वन्तु आर्यमिश्राः ! चारुदत्तेन सह मम विवादो व्यवहारो वा, तत् किमर्थम् एष काकपदशीर्षमस्तकः मम शिरः शतखण्डं करोति ? मा तावत्। रे दास्याः पुत्र ! दुष्टवटुक !**]

(विदूषको दण्डकाष्ठमुद्यम्य पूर्वोक्तं पठति। शकारः सक्रोधमुत्थाय ताडयति। विदूषकः प्रतीपं ताडयति। अन्योन्यं ताडयतो विदूषकस्य कक्षदेशादाभरणानि पतन्ति।)

शकारः—(तानि गृहीत्वा, दृष्ट्वा, ससाध्वसम्) पेक्खन्तु पेक्खन्तु अज्जा ! एदे क्खु ताए तवश्शिणीए केलका अलंकाला। (चारुदत्तमुद्दिश्य) इमश्श अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो एशा मालिदा वावादिदा अ। [**प्रेक्षन्तां प्रेक्षन्ता-**

शकारः—शृण्वन्तु=आकर्णयन्तु, आर्यमिश्राः=विद्वांसः ! चारुदत्तेन=सार्थवाहसुतेन, मम=शकारस्य, विवादः=अभियोगः, वा=अथवा, व्यवहारः=विवादनिर्णयः, तत्=तर्हि, केन=हेतुना, एषः=असौ, काकपदशीर्षमस्तकः=काकपदवत् विषमम्, शीर्षम् यस्य तत्सम्बोधने, शीर्षमस्तकेति शकारवचनत्वात्पुनरुक्तिः। रे दास्याः=सेविकायाः, पुत्र=सुत, दुष्टवटुक=नीचबालक, मा तावत्=एवं मा वद।

(विदूषकः=मैत्रेयः, दण्डकाष्ठम्=दारुदण्डम्, उद्यम्य, ताडयति=ताडनं करोति, प्रतीपम्=विपरीतम्, ताडयति। अन्योन्यम्=परस्परम्, ताडयतः=ताडनं कुर्वतः, विदूषकस्य=मैत्रेयस्य, कक्षदेशात् =बाहुमूलभागात्, आभरणानि=अलङ्काराणि, पतन्ति=स्खलन्ति।)

शकारः—(तानि=आभूषणानि, गृहीत्वा=नीत्वा, ससाध्वसम्=ससम्भ्रमम्) प्रेक्षन्ताम्=अवलोकयन्ताम्, आर्याः=मान्याः ! एते खलु=निश्चयेन, तस्याः=वसन्तसेनायाः, तपस्विन्याः=शोच्यायाः, अलङ्काराः=आभूषणानि, अस्य=एतस्य, अर्थ-

---

शकार—(**गुस्साकर**) महाशयो, मेरा झगड़ा चारुदत्त से है न कि इस कौए के समान माथे वाले ब्राह्मण से। फिर यह मेरा सिर क्यों फोड़ेगा ? ऐसा नहीं करो रे, दासीपुत्र दुष्टब्राह्मण !

(**विदूषक डंडा उठाकर पूर्वोक्त बातें दुहराता है, क्रुद्ध शकार उस पर प्रहार करता है और वह भी जबाब में उसे पीटता है। इस छीना झपटी में विदूषक के कांख से आभूषण गिर जाता है।**)

शकार—(**उन्हें उठा लेता है, भयपूर्वक उन्हें देखकर**) आर्यगण देखिए, ये

मार्याः ! एते खलु तस्यास्तपस्विन्या अलङ्कारा:। अस्य अर्थकल्यवर्त्तस्य कारणादेषा मारिता व्यापादिता च ।]

(अधिकृताः सर्वे अधोमुखाः स्थिताः ।)

चारुदत्तः—(जनान्तिकम्)

अयमेवंविधे काले दृष्टो भूषणविस्तरः ।
अस्माकं भाग्यवैषम्यात् पतितः पातयिष्यति ।। ३१ ।।

विदूषकः—भो ! कीस भूदत्थं ण णिवेदीअदि ? [भोः ! केन भूतार्थो न निवेद्यते ?]

चारुदत्तः—वयस्य !

दुर्बलं नृपतेश्चक्षुर्नैतत् तत्त्वं निरीक्षते ।
केवलं वदतो दैन्यमश्लाघ्यं मरणं भवेत् ।। ३२ ।।

कल्यवर्त्तस्य=क्षणस्थायिनः धनस्य, कारणात्=हेतोः, एषा=वसन्तसेना, मारिता व्यापादिता=हता, शकारवचनात् पुनरुक्तिः ।

(सर्वे=सकलाः, अधिकृताः=अधिकारिणः, अधोमुखाः=नतानताः, स्थिताः=तिष्ठन्ति ।)

चारुदत्तः—(जनान्तिकम्=अपवार्य)

अन्वयः—अस्माकम्, भाग्यवैषम्यात्, एवं विधे, काले, पतितः, दृष्टः, अयम्, भूषणविस्तरः, पातयिष्यति ।। ३१ ।।

अयमिति । अस्माकम्=मम, भाग्यवैषम्यात्=अदृष्टदोषात्, एवंविधे=एतादृशे, काले=समये, पतितः=तव कक्षात् स्खलितः, दृष्टः=अवलोकितः, अयम्=एषः, भूषणविस्तरः=अलङ्कारसमूहः, पातयिष्यति=माम् विपत्सागरे भ्रंशयिष्यति । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। ३१ ।।

विदूषकः—भोः=इति सम्बोधने, केन=कारणेन, भूतार्थः=यथार्थविषयः, न=नहि, निवेद्यते=कथ्यते ?

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र,

आभूषण उसी अभागिनी औरत के हैं। (चारुदत्त की ओर इशारे से) इसी तुच्छ धन के लिए वसन्तसेना मारी गई है।

(यह देखकर न्यायाधीश सिर झुका लेते हैं।)

चारुदत्त—(अलग से)

इस समय हमारे भाग्य के दोष से गिरे हुए ये आभूषण जिन्हें न्यायाधीशों ने भी देखा है—मुझे और गहरी विपत्ति में डाल देंगे ।। ३१ ।।

विदूषक—मित्र, इन्हें सच्ची बातें क्यों नहीं बतला दी जाती हैं ?

चारुदत्त—मित्र !

अधिकरणिकः—कष्टं भोः ! कष्टम् ।

अङ्गारकविरुद्धस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः ।
ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्थितः ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठिकायस्थौ—(विलोक्य, वसन्तसेनामातरमुद्दिश्य) अवहिदा दाव अज्जा एदं सुवण्णभण्डअं अवलोएदु, सो ज्जेव एसो ण वेत्ति । [**अवहिता तावत् आर्या एतत् सुवर्णभाण्डकमवलोकयतु, तदेवेदं न वेति ।**]

वृद्धा—(अवलोक्य) सरिसो एसो, ण उण सो । [**सदृश एषः, न पुनः सः ।**]

अन्वयः—नृपतेः, चक्षुः, दुर्बलम्, एतत्, तत्त्वम्, न, निरीक्षते, केवलम्, दैन्यम्, वदतः, अश्लाघ्यम्, मरणं, भवेत् ॥ ३२ ॥

दुर्बलमिति । नृपतेः=राजप्रतिनिधिभूतस्य न्यायकर्त्तुः, चक्षुः=नयनम्, दुर्बलम्=बलहीनम्, एतत्=नृपनेत्रम्, तत्त्वम्=सत्यार्थम्, न=नहि, निरीक्षते=पश्यति, केवलम्=एकमात्रम्, दैन्यम्=कातर्यम्, वदतः=कथयतः, तेन अश्लाघ्यम्=अतिगर्हितम्, मरणम्=प्राणदण्डम्, भवेत्=सम्पद्येत । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ३२ ॥

अधिकरणिकः—भोः=हे, कष्टम्=खेदम् ।

अन्वयः—अङ्गारकविरुद्धस्य, प्रक्षीणस्य, बृहस्पतेः, पार्श्वे, धूमकेतुः, इव, अयम्, अपरः, ग्रहः, उत्थितः ॥ ३३ ॥

अङ्गारकेति । अङ्गारकविरुद्धस्य=मङ्गलग्रहविपरीतस्य, प्रक्षीणस्य=नीचस्थानस्थितत्या स्वशक्तिहीनस्य, बृहस्पतेः=देवगुरोः, सौम्यग्रहस्य वा, पार्श्वे=समीपे, धूमकेतुः=उत्पातग्रहः, इव=यथा, अयम्=अलङ्कारस्खलनरूपः, अपरः=अन्यः, ग्रहः=विपरीतग्रहः, उत्थितः=उद्गतः । उपमालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठिकायस्थौ—(विलोक्य=दृष्ट्वा, वसन्तसेनामातरम्=जननीम्, उद्दिश्य=उद्देशं कृत्वा) अवहिता=सावधाना, तावदित्यवधारणे, आर्या=मान्या, एतत्=समीपस्थं, सुवर्णभाण्डकम्=कनकाभूषणम्, अवलोकयतु=पश्यतु, तदेव=वसन्तसेनासम्बन्धि, इदम्=आभूषणम्, अस्ति न वेति ।

जिन राज प्रतिनिधियों की आँखें अशक्त होती हैं, वे सही बातें देख नहीं पाते । अतः इनके सामने कुछ कहना केवल गिड़गिड़ाना भर है जो मेरे लिये निन्दनीय मृत्यु तुल्य है ॥ ३२ ॥

अधिकरणिक—कष्ट है, कष्ट,

मंगलग्रह जिसका विपरीत है ऐसे दुर्बल बृहस्पतिग्रह के समीप पुच्छल तारे की तरह ये जेवर गिरकर धूमकेतु की तरह प्रकट हुए हैं ॥ ३३ ॥

श्रेष्ठिकायस्थ—(देखकर, वसन्तसेना की माता से) सावधानी से इन्हें देखकर आप बतलाएँ कि ये जेवर आपके हैं अथवा नहीं ।

वृद्धा—(देखकर) उसी की तरह तो हैं पर वही नहीं हैं ।

शकारः—आ बुड्ढकुट्टिणि ! अक्खीहिं मन्तिदं वाआए मूकिदं । [**आ वृद्धकुट्टिनि ! अक्षिभ्यां मन्त्रितं वाचा मूकितम् ।**]

वृद्धा—हदास ! अवेहि । [**हताश ! अपेहि ।**]

श्रेष्ठिकायस्थौ—अप्पमत्तं कधेहि, सा ज्जेव एसो ण वेत्ति । [**अप्रमत्तं कथय, स एव एष न वेति ।**]

वृद्धा—अज्ज ! सिप्पिकुशलदाये ओबन्धेदि दिट्ठिं, ण उण सो । [**आर्य ! शिल्पिकुशलतया अवबध्नाति दृष्टिम्, न पुनः सः ।**]

अधिकरणिकः—भद्रे ! अपि जानासि एतान्याभरणानि ?

वृद्धा—णं भणामि, ण हु ण हु अणभिजाणिदो अहवा कदावि सिप्पिणा घड़िदो भवे । [**ननु भणामि—न खलु न खलु अनभिज्ञातः, अथवा कदापि शिल्पिना घटितो भवेत् ।**]

वृद्धा—(अवलोक्य=दृष्ट्वा) सदृशः=तत्तुल्यम्, एषः=सुवर्णभाण्डम्, न पुनः=भूयः, सः=तत् ।

शकारः—आ=इति खेदे, वृद्धकुट्टिनि=वृद्धादासी, अक्षिभ्यां मन्त्रितम्=सदृश एव इति कथितम्, किन्तु—वाचा=वचसा, मूकितम्=तिरोहितम् ।

वृद्धा—हताश=रे नराधम, अपेहि=दूरमपसर ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—अप्रमत्तम्=सावधानेन, कथय=वद, स एव=तदेव, एषः=अलङ्करणम्, न वेति=नास्ति वेति ?

वृद्धा—शिल्पिकुशलतया=स्वर्णकारस्य नैपुण्येन, दृष्टिम्=मम लोचनम्, अवबध्नाति=आकर्षति ।

अधिकरणिकः—भद्रे=मान्ये, अपि=चेत्, जानासि=ज्ञातोऽसि, एतानि=पुरोवर्तीनि, आभरणानि=अलङ्काराणि ?

वृद्धा—ननु=निश्चयेन, भणामि=कथयामि, अनभिज्ञातः=अपरिचितः, शिल्पिना=कुशलस्वर्णकारेण, घटितो भवेत्=वसन्तसेनालङ्कारसदृशत्वेन निर्मितो भवेत् ।

शकार—अरी बुढ़िया कुट्टिनी, आंख से कबूल करती हो और बात से नकारती हो ।

वृद्धा—दूर हट, अभागा ।

श्रेष्ठिकायस्थ—आर्ये ! सावधान होकर बतलाओ कि ये आभूषण वे हैं या नहीं ?

वृद्धा—आर्य, सुनारों की कारीगरी मेरी आंखों को तो खींचती हैं, किन्तु ये अलङ्कार वे नहीं हैं ।

अधिकरणिक—भद्रे, इन आभूषणों को आप पहचानती हो ?

वृद्धा—बतलाती हूँ, ये अनजान तो नहीं लगते, किन्तु ये किसी चतुर शिल्पी की अनुकृति हैं ।

अधिकरणिकः—पश्य श्रेष्ठिन् !

वस्त्वन्तराणि सदृशानि भवन्ति नूनं
रूपस्य भूषणगुणस्य च कृत्रिमस्य।
दृष्ट्वा क्रियामनुकरोति हि शिल्पिवर्गः
सादृश्यमेव कृतहस्ततया च दृष्टम्॥ ३४॥

श्रेष्ठिकायस्थौ—अज्जचारुदत्तस्स केरकाइं एदाइं ? [**आर्यचारुदत्तीयान्येतानि।**]

चारुदत्तः—न खलु न खलु।

श्रेष्ठिकायस्थौ—ता कस्स ? [**तत् कस्य ?**]

चारुदत्तः—इहात्रभवत्या दुहितुः।

अधिकरणिकः—पश्य=अवलोकय, श्रेष्ठिन्।

अन्वयः—कृत्रिमस्य, रूपस्य, भूषणगुणस्य, च, सदृशानि, वस्त्वन्तराणि, नूनम्, भवन्ति, हि, शिल्पिवर्गः, कृतहस्तितया, दृष्ट्वा, क्रियाम्, अनुकरोति, सादृश्यम्, च, दृष्टम्, एव॥ ३४॥

वस्त्विर्वति। कृत्रिमस्य=मानवनिर्मितस्य, रूपस्य=आकृतेः, भूषणस्य=आभूषणस्य च=पुनः, सदृशानि=तुल्यानि, वस्त्वन्तराणि=अन्यान्यपि वस्तूनि, नूनम्=निश्चयेन, भवन्ति=जायन्ते, हि=यत्, शिल्पिवर्गः=स्वर्णकारसमूहः, कृतहस्तितया=हस्तकौशलेन, दृष्ट्वा=विलोक्य, क्रियाम्=तत्कृतिम्, अनुकरोति=अनुकरणं करोति सादृश्यम्=साम्यम्, च=पुनः, दृष्टम्=अवलोकितम्, एव=एवेति भावः। अत्राप्रस्तुतालङ्कारः, काव्यलिङ्गञ्चेति। वसन्ततिलका वृत्तम्॥ ३४॥

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य=मान्य, चारुदत्तीयान्येतानि=चारुदत्तस्य इमानि चारुदत्तीयानि।

चारुदत्तः—न खलु=एतानि मदीयानि नाभूषणानि।

श्रेष्ठिकायस्थौ—तत्=तर्हि, कस्य=जनस्य इमानि।

चारुदत्तः—इह=अत्र वर्त्तमानायाः, अत्रभवत्या=पूज्यायाः, दुहितुः=पुत्र्याः।

अधिकरणिक—देखो श्रेष्ठी,

कृत्रिम आभूषणों के अनुरूप निश्चय ही दूसरे आभूषण तैयार कर लिए जाते हैं। शिल्पी समूह अपनी कुशलता के कारण किसी भी वस्तु को देखकर तदनुरूप वस्तु तैयार कर लेते हैं। ऐसी घटनाएँ हम लोगों ने काफी देखी हैं॥ ३४॥

श्रेष्ठिकायस्थ—आर्य चारुदत्त के ये जेवर हैं।

चारुदत्त—नहीं, नहीं।

श्रेष्ठिकायस्थ—तब किसके हैं ?

चारुदत्त—इस मान्या वृद्धा की पुत्री के हैं।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कधं एदाइं ताए विओअं गदाइं ? [कथमेतानि तस्या वियोगं गतानि ?]

चारुदत्तः—एवं गतानि । आं इदम् ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—अज्जचारुदत्त ! एत्थ सच्चं वत्तव्वं । पेक्ख पेक्ख । [आर्यचारुदत्त ! अत्र सत्यं वक्तव्यम् । प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व ।]

सच्चेण सुहं क्खु लब्भइ सच्चालाविं ण होइ पादई ।
सच्चं त्ति दुवेवि अक्खरा मा सच्चं अलिएण गूहेहि ।। ३५ ।।

[सत्येन सुखं खलु लभ्यते सत्यालापी न भवति पातकी ।
सत्यमिति द्वे अपि अक्षरे मा सत्यमलीकेन गूहय ।।]

चारुदत्तः—आभरणानि आभरणानीति । न जाने, किन्त्वस्मद् गृहादानीतानीति जाने ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—कथम्=केन प्रकारेण, एतानि=आभूषणानि, तस्या=वसन्तसेनायाः, वियोगम्=पृथक्त्वम्, गतानि=प्राप्तानि ।

चारुदत्तः—एवम्=अनेन प्रकारेण, गतानि=यातानि । आम्=स्मरणे, इदम्=एतत् ।

श्रेष्ठिकायस्थौ—आर्य चारुदत्त=हे मान्य चारुदत्त, अत्र=अस्मिन् विषये, सत्यम्=यथार्थम्, वक्तव्यम्=कथितव्यम्, प्रेक्षस्व=अवलोकय ।

अन्वयः—सत्येन, खलु, सुखम्, लभ्यते, सत्यालापे, पातकी, न, भवति सत्यम्, इति, द्वे, अपि, अक्षरे, सत्यम्, अलीकेन, मा, गूहय ।। ३५ ।।

सत्यमिति । सत्येन=यथार्थकथनेन, खलु=निश्चयेन, सुखम्=आन्दनम्, लभ्यते=प्राप्यते, सत्यालापे=सत्यभाषणे, पातकी=पापी, न=नहि, भवति=जायते, सत्य इति द्वे अक्षरे=जगति साररूपे द्वे वर्णे स्तः, सत्यम्=यथार्थम्, अलीकेन=अनृतेन, मा=नहि, गूहय=संवृणु ।। ३५ ।।

चारुदत्तः—आभरणानि=अलङ्काराणि, आभरणानि=पूर्वोक्ताभूषणानि एव, इति न जाने=न जानामि किन्तु, अस्मद् गृहात्=सदनात्, आनीतानि=गृहीतानि, इति=एवं, जाने=जानामि ।

श्रेष्ठिकायस्थ—फिर उनसे ये अलग कैसे हुए ?

चारुदत्त—उस तरह गये थे, हाय, यह ।

श्रेष्ठिकायस्थ—आर्य चारुदत्त, यहाँ सच बोलना चाहिए । देखो, देखो—

सत्य से सुख प्राप्त होता है, सत्य बोलने वालों का पतन नहीं होता है । अतः सत्य इन दो तात्विक अक्षरों को असत्य से मत मिलाओ ।। ३५ ।।

चारुदत्त—यह वही अलङ्कार हैं, यह मैं नहीं जानता । पर ये मेरे घर से आये हैं इतना जानता हूँ ।

शकारः—उज्जाणं पवेशिअ पढ़मं मालेशि, कवड-कावेडि-आए शम्पदं णिगूहेशि। [उद्यानं प्रवेश्य प्रथमं मारयसि, कपट-कापटिकया साम्प्रतं निगूहसि।]

अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त ! सत्यमभिधीयताम्।

इदानीं सुकुमारेऽस्मिन् निःशङ्कं कर्कशाः कशाः।
तव गात्रे पतिष्यन्ति सहास्माकं मनोरथैः॥ ३६॥

चारुदत्तः—

अपापानां कुले जाते मयि पापं न विद्यते।
यदि सम्भाव्यते पापमपापेन च किं मया॥ ३७॥

(स्वगतम्) न च मे वसन्तसेनाविरहितस्य जीवितेन कृत्यम्। (प्रकाशम्) भोः ! किं बहुना।

शकारः—उद्यानम्=वाटिकायाम्, प्रथमम्=पूर्वम्, मारयसि=व्यापादयसि, साम्प्रतम्=अधुना, कपटेन=छलेन, कापटिकतया=धूर्त्ततया, निगूहसि=गोपायसि।

अधिकरणिकः—सत्यम्=यथार्थम्, अभिधीयताम्=कथ्यताम्।

अन्वयः—इदानीम्, सुकुमारे, अस्मिन्, तव, गात्रे, कर्कशाः, कशाः, अस्माकम्, मनोरथैः, सह, निःशङ्कम्, पतिष्यन्ति॥ ३६॥

इदानीमिति। इदानीम्=अधुना, सुकुमारे=सुकोमले, अस्मिन्=उपस्थिते, तव=चारुदत्तस्य, गात्रे=देहे, कर्कशाः=अतिकठोराः, कशाः=अश्वादेस्ताडन्यः, अस्माकम्=नः, मनोरथैः=रक्षणाभिलाषैः, सह=साकम्, निःशङ्कम्=शङ्कारहितम्, पतिष्यन्ति=निक्षिप्ताः भविष्यन्ति। अत्र सहोक्तिरलङ्कारः। पथ्यावक्त्रं वृत्तम्॥३६॥

अन्वयः—अपापानाम्, कुले, जाते, मयि, पापम्, न, विद्यते। यदि, पापम्, सम्भाव्यते, अपापेन, च, मया, किम्॥ ३७॥

अपापानामिति। अपापानाम्=निष्पापानाम्, कुले=वंशे, जाते=समुत्पन्ने, मयि=चारुदत्ते, पापम्=हत्याजन्यापराधम्, न=नहि, विद्यते=अस्ति, तथापि यदि=चेत्, पापम्=दुष्कर्मम्, सम्भाव्यते=युष्माभिर्मन्यते, तदा अपापेन=पापरहितेन, च=अपि, मया=चारुदत्तेन, किम्=किं फलमिति, न किमपीत्यर्थः। अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः। पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति॥ ३७॥

शकार—पहले तो बगीचे में ले जाकर इसे मारा, अब इसे छल से छुपाना चाहते हो।

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, सच बोलो—

इस समय तुम्हारे सुकोमल देह पर अभी कठोर कोड़े बरसेंगे, हमारे मनोरथ के साथ ही उन्हें तुम सहो॥ ३६॥

चारुदत्त—निष्कलंक कुल में पैदा होने वाले मुझ में पाप नहीं है और यदि मुझ में पाप की सम्भावना है तो मुझ निष्पाप के जीवित रहने से ही क्या लाभ॥ ३६॥

मया किल नृशंसेन लोकद्वयमजानता ।
स्त्रीरत्नञ्च विशेषेण शेषमेषोऽभिधास्यति ॥ ३८ ॥

शकारः—वावादिदा । अले ! तुमं पि भण—'मये वावादिदा' त्ति । [**व्यापादिता । अरे ! त्वमपि भण—मया व्यापादिता इति ।**]

चारुदत्तः—त्वयैवोक्तम् ।

शकारः—शुणेघ शुणेघ भट्टालका ! एदेण मालिदा, एदेण ज्जेव शंशए छिण्णे । एदश्श दलिद्दचालुदत्तश्श शालीले दण्डे धालीअदु । [**श्रृणुत श्रृणुत भट्टारकाः ! एतेन मारिता, एतेनैव संशयश्छिन्नः । एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य शारीरो दण्डो धार्यताम् ।**]

अधिकरणिकः—शोधनक ! यथाह राष्ट्रियः । भो राजपुरुषाः ! गृह्यतामयं चारुदत्तः ।

(राजपुरुषाः गृह्णन्ति ।)

(स्वगतम्=आत्मगतम्) वसन्तसेनाविरहितस्य=प्रियगणिकाशून्यस्य, मे=मम, जीवितेन=जीवनेन, कृत्यम्=प्रयोजनम्, न च=नास्तीत्यर्थः । किं बहुना=किमधिकेन—

श्लोकमिदं व्याख्यातपूर्वमेव ॥ ३८ ॥ (पश्य ९।३०)

शकारः—वाक्यशेषं पूरयति=व्यापादितेति । त्वमपि भण=स्वयं कथय ।

चारुदत्तः—त्वयैवोक्तम्=मदुक्तेः न प्रयोजनम्, तवैव कथनमधिकारिणः श्रृण्वन्ति इति भावः ।

शकारः—भट्टारकः=राजानः, संशयः=अनेन मारिता नवेति, सन्देहः । छिन्नः=अपाकृतः, शारीरः=दैहिकः ।

अधिकरणिकः—राष्ट्रियः=शकारः, यथाह=दण्डो धार्यताम् । राजपुरुषाः=सैनिकाः गृह्यताम्=अधीनीक्रियताम् ।

(राजपुरुषाः=रक्षिणः, गृह्णन्ति=निरुध्यन्ति ।)

(मन ही मन) मुझे वसन्तसेना के बिना जीना ही बेकार है । **(प्रकट)** कुछ कहना ही बेकार है—

परलोक से अनभिज्ञ मैंने नृशंसतापूर्वक विशेष रूप से स्त्री-रत्न वसन्तसेना को—शेष यह शकार ही बतलायेगा ॥ ३८ ॥

शकार—मार डाला । अरे तुम कहो—मैंने उसे मार डाला ।

चारुदत्त—तुमने तो कह ही दिया ।

शकार—सुनिये, महाशयो, इसी ने मारा है । इसी ने संशय भी समाप्त कर दिया । इस दरिद्र को शरीरदण्ड दीजिए ।

अधिकरणिक—शोधनक, जैसा कि शकार कहता है । सिपाहियो ! चारुदत्त को पकड़ो ।

(सिपाही उसे पकड़ लेते हैं ।)

वृद्धा—पसीदन्तु पसीदन्तुअज्जमिस्सा। ('जो दाव चोरेहिं अवहिदस्स···' इत्यादिपूर्वोक्तं पठति ।) ता जदि वावादिदा मम दारिआ, वावादिदा। जीवदु मे दीहाऊ। अण्णं च—अत्थि-पच्चत्थिणं ववहारो, अहं अत्थिणी, तां मुञ्चध एदं। [**प्रसीदन्तु प्रसीदन्तु आर्यमिश्राः। तद् यदि व्यापादिता मम दारिका, व्यापादिता। जीवतु मे दीर्घायुः। अन्यच्च अर्थिप्रत्यर्थिनोर्व्यवहारः अहमर्थिनी, तत् मुञ्चत एनम्।**]

शकारः—अवेहि गब्भदाशि ! गच्छ, किं तव एदिणा ? [**अपेहि गर्भदासि ! गच्छ, किं तव एतेन ?**]

अधिकरणिकः—आर्ये ! गम्यताम्। हे राजपुरुषाः ! निष्क्रामयतैनाम्।

वृद्धा—हा जाद ! हा पुत्तअ ! (इति रुदती निष्क्रान्ता।) [**हा जात ! हा पुत्रक !**]

शकारः—(स्वगतम्) किदं मए एदश्शं अत्तणो शलिशं। शम्पदं गच्छामि। (इति निष्क्रान्तः।) [**कृतं मया एतस्य आत्मनः सदृशम्। साम्प्रतं गच्छामि।**]

वृद्धा—प्रसीदन्तु=प्रसन्नाः भवन्तु, आर्यमिश्राः=मान्यजनाः, तत्=तस्मात्, यदि=चेत्, मम=मे, दारिका=पुत्री, व्यापादिता=मारिता। तथापि मे=मम, दीर्घायुः=आयुष्मान् चारुदत्तः, जीवतु=वधदण्डोऽस्य मा भवतु। अन्यच्च=अस्मिन् विषयेऽन्यदपि कारणमस्ति, अर्थिप्रत्यर्थिनोर्व्यवहारः=वादि-प्रतिवादिनोर्व्यवहारः= विवादनिर्णयः, अहमर्थिनी=वसन्तसेनायाः मातृत्वादहमर्थिनी, तत्=तस्मात् कारणात्, एनम्=चारुदत्तम्, मुञ्चत=त्यजत।

शकारः—अपेहि=दूरमपसर, गर्भदासि=नीचवृद्धे, गच्छ=याहि। किं तव= किं प्रयोजनमस्ति तव, एतेन=दण्डविधानेनेति।

अधिकरणिकः—आर्ये=मान्ये, गम्यताम्=याहि। हे राजपुरुषाः=हे रक्षिजनाः, एनाम्=वृद्धाम्, निष्क्रामयत=निष्कासनं कुरुत।

वृद्धा—हा=इति खेदे, जात=पुत्र। (.इति=एवमुक्त्वा, रुदती=क्रन्दती, निष्क्रान्ता=बहिर्गता।)

वृद्धा—आप सभी खुश हों, प्रसन्न हों। ('जिसे चोरों ने चुरा लिया··' **इत्यादि फिर दुहराती है।**) यदि मेरी बेटी मारी गई तो मारी गई। यह आयुष्मान् चारुदत्त तो जिन्दा रहे। फिर यह तो वादी-प्रतिवादी का व्यवहार है, बेटी मेरी मारी गई है, वादिनी मैं हूँ और मैं चारुदत्त को छोड़ देने के लिये कह रही हूँ।

शकार—दूर भागो, गर्भदासी ! भाग जा। तुम्हें इससे क्या मतलब ?

अधिकरणिक—आर्ये, जाओ। सिपाहियो, इन्हें दूर हटाओ।

वृद्धा—हाय बेटे, हा पुत्र। (**इस प्रकार रोती हुई निकल जाती है।**)

शकार—(**मन ही मन**) मैंने अपने अनुकूल काम कर दिया है। अब जाता हूँ। (**चला जाता है।**)

अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त ! निर्णये वयं प्रमाणम्, शेषे तु राजा। तथापि शोधनक ! विज्ञाप्यतां राजा पालकः—

अयं हि पातकी विप्रो न वध्यो मनुरब्रवीत् ।
राष्ट्रादस्मात्तु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह ।। ३९ ।।

शोधनकः—जं अज्जो आणवेदि । (इति निष्क्रम्य, पुनः प्रविश्य, सास्रम्) अज्जा ! गदम्हि तहिं । राआ पालओ भणादि—'जेण अत्थकल्लवत्तस्स कारणादो वसन्तसेणा वावादिदा, तं ताइं ज्जेव आहरणाइं गले बन्धिअ डिण्डिमं ताडिअ दक्खिणमसाणं णइअ सूले भज्जेध' त्ति । जो को वि अवरो एरिसं अकज्जं अणुचिट्ठदि, सो एदिणा सणिआरदंडेण सासाअदि ।' **[यदार्य आज्ञापयति । आर्याः ! गतोऽस्मि तस्मिन् । राजा पालको भणति —'येन अर्थकल्यवर्त्तस्य कारणात् वसन्तसेना व्यापादिता, तं तान्येव आभरणानि गले बद्ध्वा**

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कृतम्=विहितम्, मया=शकारेण, एतस्य =अस्य, आत्मनः=स्वस्य, सदृशम्=आत्मयोग्यतानुरूपम् कर्मम्, साम्प्रतम्=अधुना, गच्छामि=अत्रतः प्रस्थानं करोमि ।

अधिकरणिकः—आर्यचारुदत्त, निर्णये=विवादनिर्णये, वयम्=न्यायाधीशः, प्रमाणम्=अधिकारवन्तः, शेषे=एतदतिरिक्ते, राजा=नृप एव प्रमाणम्, विज्ञाप्यताम्=निवेद्यताम्, राजापालकः ।

अन्वयः—अयम्, विप्रः, पातकी, नहि, वध्यः, मनुः, अब्रवीत्, तु, अक्षतैः, विभवैः सह, अस्मात्, राष्ट्रात्, निर्वास्यः ।। ३९ ।।

अयमिति । अयम्=एषः, विप्रः=ब्राह्मणः, पातकी=पापी, अस्ति तथापि नहि वध्यः=वधयोग्यः, इति मनुः=स्मृतिप्रणेता एकः मुनिः, अब्रवीत्=अकथयत्, तु=किन्तु, अक्षतैः=असमग्रैः, विभवैः=सम्पत्तिभिः, सह=साकम्, अस्मात्=तव शासितात्, राष्ट्रात्=राज्यात्, निर्वास्यः=बहिष्करणीयः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ।। ३९ ।।

शोधनकः—आर्याः=महानुभावाः, तत्र=नृपपार्श्वे गतोऽस्मि, राजा=नृपः, भणति=आदिशति येन=जनेन, अर्थकल्यवर्त्तस्य=क्षुद्रविभवस्य, कारणात्=हेतोः, वसन्तसेनाव्यापादिता=मारिता, तम्=चारुदत्तम्, तान्येवाभरणानि=आभूष-

---

अधिकरणिक—आर्य चारुदत्त, हम लोग निर्णायक हैं । दण्ड देने के अधिकारी तो राजा पालक ही है । फिर शोधनक राजा पालक को इसकी सूचता दे दो—

मनु के अनुसार यह हत्यारा ब्राह्मण अवध्य है । अतः सम्पूर्ण सम्पत्ति के साथ इसे इस राज्य से बहिष्कृत कर दिया जाय ।। ३९ ।।

शोधनक—जैसी आपकी आज्ञा (**बाहर चला जाता है, फिर भीतर आकर, सजल आँखों से**) महाशयो, मैं राजा को निवेदित कर लौट आया हूँ । राजा पालक कहते हैं कि जिन क्षणिक आभूषणों के कारण इन्होंने वसन्तसेना की हत्या की है, इनके

डिण्डिमं ताडयित्वा, दक्षिणश्मशानं नीत्वा, शूले भङ्क्त' इति। यः कोऽपि अपरः ईदृशमकार्यमनुतिष्ठति, स एतेन सनिकारदण्डेन शाष्यते।]

चारुदत्तः—अहो ! अविमृश्यकारी राजा पालकः। अथवा—

ईदृशे व्यवहाराग्नौ मन्त्रिभिः परिपातिताः।
स्थाने खलु महीपाला गच्छन्ति कृपणां दशाम् ॥ ४० ॥

अपि च—

ईदृशैः श्वेतकाकीयैः राज्ञः शासनदूषकैः।
अपापानां सहस्राणि हन्यन्ते च हतानि च ॥ ४१ ॥

णानि, गले=कण्ठे, बद्ध्वा=बन्धयित्वा, डिण्डिमम्=पटहम्, ताडयित्वा=ताडनं कृत्वा, भङ्क्त=मारयत। यः कोऽपि अपरः=अन्यः जनः, ईदृशम्=एतत्तुल्यम्, अकार्यम्=पापम्, अनुतिष्ठति=करोति, सः एतेन=अनेन, सनिकारदण्डेन=अनादरेण, शाष्यते।

चारुदत्तः—अहो=इत्याश्चर्यम्, अविमृश्यकारी=विवेकशून्यः, राजा=नृपः। अथवा=वा।

अन्वयः—मन्त्रिभिः, ईदृशे, व्यवहाराग्नौ, परिपातिताः, महीपालाः, कृपणाम्, दशाम्, गच्छन्ति, स्थाने, खलु ॥ ४० ॥

ईदृशे इति। मन्त्रिभिः=सचिवैः, ईदृशे=एतादृशे, व्यवहाराग्नौ=अभियोगविचारवह्नौ, परिपातिताः=मन्त्रदानेन निक्षिप्ताः, महीपालाः=नृपाः, कृपणाम्=कातराम्, दशाम्=अवस्थाम्, गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति, तत्स्थाने खलु=उपयुक्तमेवेति। अप्रस्तुतप्रशंसा रूपकालङ्कारश्च, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ४० ॥

अन्वयः—श्वेतकाकीयैः, राज्ञः, शासनदूषकैः, ईदृशैः, अपापानाम्, सहस्राणि, हन्यन्ते, हतानि, च ॥ ४१ ॥

ईदृशैरिति। श्वेतकाकीयैः=वकतुल्यैः, विवेकशून्यैः, वहिः शुभ्रैः अन्तः कृष्णैः चेति, राज्ञः=नृपतेः, शासनम्=प्रशासनम्, दूषकैः=परिवादकैः, इदृशैः=अधिकरणि-

---

गले में उन आभूषणों को लटका दिया जाय और नगर में इस बात की ढिढोरा पीट कर दक्षिण श्मसान में ले जाकर शूली पर इसे लटका दो। "जो कोई दूसरा भी ऐसा कुकृत्य करेगा, उसे भी ऐसा ही दण्ड दिया जायेगा।" (इससे लोगों को एक शिक्षा मिलेगी।)

चारुदत्त—हाय, राजा पालक तो महान् अविवेकी है। अथवा

मन्त्रियों के द्वारा इस तरह की अभियोग रूपी आग में झोंके गये राजा लोग निश्चय ही शोचनीय दशा को प्राप्त करते हैं, यह ठीक ही है ॥ ४० ॥

और भी—कौए सफेद है, ऐसी बातों पर भी विश्वास करने वाले, नृपति के प्रशासन को दूषित करने वाले न्यायाधीशों के द्वारा हजारों निरपराध लोग मारे गये हैं और अब भी मारे जा रहे हैं ॥ ४१ ॥

सखे मैत्रेय ! गच्छ, मद्वचनादम्बामपश्चिममभिवादयस्व । पुत्रश्च मे रोहसेनं परिपालयस्व ।

विदूषकः—मूले छिण्णे कुदो पादवस्स पालणं ? [मूले छिन्ने कुतः पादपस्य पालनम् ?]

चारुदत्तः—मा मैवम् ।

नृणां लोकान्तरस्थानां देहप्रतिकृतिः सुतः ।
मयि यो वै तव स्नेहो रोहसेने स युज्यताम् ॥ ४२ ॥

विदूषकः—भो वअस्स ! अहं ते पिअवअस्सो भविअ, तुए विरहिदाई पाणाइं धारेमि ? [भो वयस्य ! अहं ते प्रियवयस्यो भूत्वा, त्वया विरहितान् प्राणान् धारयामि ?]

कादिभिर्जनैः, अपापानाम्=धर्मात्मनाम्, सहस्राणि=बहूनि, हन्यन्ते=मार्यन्ते, च==तथा, हतानि=मारितानि । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ ४१ ॥

सखे=हे मित्र मैत्रेय, गच्छ=याहि, मद्वचनात्=चारुदत्तः निवेदयति इति कथयित्वा, अम्बाम्=मातरम्, अपश्चिमम्=अन्तिमम्, अभिवादयस्व=प्रणामं कुर्याः । पुत्रम्=तनयम्, रोहसेनम्=एतदाख्यबालम्, परिपालयस्व=जननीमिव परिपालय ।

विदूषकः—मूले=त्वयि चारुदत्ते, छिन्ने=मृते, पादपस्य=रोहसेनस्वरूपवृक्षस्य, कुतः=कथम्, पालनम्=रक्षणम् ? भवेदिति शेषः ।

चारुदत्तः—मा मैवं=एवं मा वद ।

अन्वयः—सुतः, लोकान्तरस्थानम्, नृणाम्, देहप्रतिकृतिः, मयि, तव, यः, स्नेहः, सः, रोहसेने, वै, युज्यताम् ॥ ४२ ॥

नृणामिति । सुतः, लोकान्तरस्थानाम्=स्वर्गादौ गतानाम्, नृणाम्=जनानाम्, देहप्रतिकृतिः=स्वशरीरप्रतिमा, भवति । अतः मयि=चारुदत्ते, तव=मैत्रेयस्य, यः==अपूर्वः, स्नेहः=प्रीतिः अस्ति, सः=स्नेहः, रोहसेने=मम पुत्रे, वै=निश्चयेन युज्यताम्=अर्प्यताम् । काव्यलिङ्गमलङ्कारम् । पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ ४२ ॥

विदूषकः—भो वयस्य=हे मित्र, अहम्=मैत्रेयः, ते=तव चारुदत्तस्य, प्रियवयस्यो भूत्वा=अनन्यमित्रोभूय, त्वया=चारुदत्तेन, विरहितान्=रहितान्, प्राणान्=जीवनम्, धारयामि=कथमपि न धारयामीति भावः ।

मित्र मैत्रेय, जाओ, मेरी ओर से माता जी को मेरा अन्तिम प्रणाम निवेदन कर देना और मेरी मृत्यु के बाद पुत्र रोहसेन की देखभाल करना ।

विदूषक—जड़ कट जाने पर पेड़ की देखभाल कैसे सम्भव है ?

चारुदत्त—ऐसा मत कहो ।

पुत्र परलोक में गये व्यक्ति का अपना प्रतिनिधि होता है । अतः तुम्हारा जो प्रेम मुझसे है मेरी मृत्यु के बाद उस स्नेह का हकदार रोहसेन ही है ॥ ४२ ॥

विदूषक—हे मित्र, मैं अगर तुम्हारा प्रिय मित्र हूँ तो फिर तुम्हारे बिना मैं कैसे जी सकता हूँ ?

चारुदत्तः—रोहसेनमपि तावद्दर्शय ।

विदूषकः—एव्वं जुज्जदि । [**एवं युज्यते ।**]

अधिकरणिकः—भद्र ! शोधनक ! अपसार्य्यतामयं बटुः ।

(शोधनकस्तथा करोति ।)

अधिकरणिकः—कः कोऽत्र भोः ! चण्डालानां दीयतामादेशः ।

(इति चारुदत्तं विसृज्य निष्क्रान्ताः सर्वे राजपुरुषाः ।)

शोधनकः—इदो आअच्छदु अज्जो । [**इत आगच्छतु आर्यः ।**]

चारुदत्तः—(सकरुणम् 'मैत्रेय भोः ! किमिदमद्य···' इत्यादि पठति । आकाशे)

विष-सलिल-तुलाग्नि-प्रार्थिते मे विचारे
क्रकचमिह शरीरे वीक्ष्य दातव्यमद्य ।

चारुदत्तः—रोहसेनमपि=मम पुत्रमपि, तावदित्यवधारणे, दर्शय=मयि दृष्टि-सन्मुखे आनय ।

विदूषकः—एवं युज्यते=युक्तं कथयसि ।

अधिकरणिकः—भद्र=साधु, शोधनक, अपसार्यताम्=बहिःक्रियताम्, अयम्=एषः, बटुः=विप्रबालः ।

(शोधनकः तथा=आदेशानुसारेण, करोति=सम्पादयति ।)

अधिकरणिकः—कः कोऽत्र भोः=अत्र न्यायालये कः उपस्थितः अस्ति, चाण्डालानाम्=क्रूरकर्मिणाम्, आदेशः=चारुदत्तवधाय आज्ञां, दीयताम्=प्रदेहि ।

(इति=एवमुक्त्वा, चारुदत्तं विसृज्य=निःसारणं कृत्वा, सर्वे=सकलाः, राजपुरुषाः=राजकीयजनाः, निष्क्रान्ताः=बहिर्गताः ।)

शोधनकः—इतः=अस्याम् दिशि, आगच्छतु=चलतु, आर्यः=मान्यः ।

चारुदत्तः—(सकरुणम्=सकातरम्, 'मैत्रेय भोः, किमिद···'इत्यादि पूर्वपठितं श्लोकं पठति । आकाशे=शून्यमवलोक्य ।)

अन्वयः—अद्य, इह, मे, शरीरे, क्रकचम्, दातव्यम्, वीक्ष्य, विचारे, विषसलिल-तुलाग्निप्रार्थिते, अथ, रिपुवचनात्, ब्राह्मणम्, माम्, निहंसि, पुत्रपौत्रैः, समेतः, त्वम्, नरकमध्ये, पतसि ॥ ४३ ॥

चारुदत्त—तो रोहसेन को ही मुझे दिखला दो ।

विदूषक—अच्छा तो ठीक है ।

अधिकरणिक—भद्र शोधनक, इस विप्र वटु को यहाँ से हटाओ ।

(शोधनक वैसा ही करता है ।)

अधिकरणिक—अरे, यहाँ कौन है ? जल्लादों को अब आज्ञा दी जाय ।

(इस प्रकार चारुदत्त को बाहर निकालकर सभी राजपुरुष बाहर निकल जाते हैं ।)

शोधनक—आर्य इधर आयें ।

चारुदत्त—(**करुणापूर्वक, 'मैत्रेय भोः, किमिदम्···' इत्यादि पढ़ता है । आकाश की ओर ।)**

अथ रिपुवचनात्त्वं ब्राह्मणं मा निहंसि
पतसि नरकमध्ये पुत्रपौत्रैः समेतः ॥ ४३ ॥

अयमागतोऽस्मि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति व्यवहारो नाम नवमोऽङ्कः ।

विषेति । अद्य=अधुना, इह=अस्मिन् मामकीने, शरीरे=देहे, क्रकचम्=करपत्रम्, दातव्यम्=नृपस्य दातुमुचितम्, वीक्ष्य=दृष्ट्वा, विचारे=एतदभियोगनिर्णये, विषम्=गरलम्, गरलपानमित्यर्थः, जलम्=सलिलम्, जले मज्जनम्, तुला=तुलारोहणम् इति, अग्निः=वह्नि, वह्निप्रवेशः तैः विषसलिलतुलाग्निभिः=दिव्यसाधनैरिति । याज्ञवल्क्यनिर्दिष्टां (२।१००-१११) दीव्यपरीक्षां विना क्रकचेन मम शरीरछेदनमनुचितमिति, अथ रिपुवचनात्=शत्रुशकारस्य कथनात्, ब्राह्मणम्=निर्दोषद्विजम्, माम्=चारुदत्तम्, निहंसि=मारयसि, चेत् पुत्रपौत्रैः=परिवारैः, समेतः=संयुक्तः, त्वम्=भवान्, नरकमध्ये=निरयान्तरे, पतसि=गमिष्यतीति भावः ।

तथाहि मनुना चोक्तम्—

अदण्डयान् दण्डयन् राजा, दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति, नरकञ्चैव गच्छति ॥

अत्र काव्यलिङ्गमलङ्कारः मालिनी वृत्तञ्चेति ॥ ४३ ॥

अयमागतोऽस्मि='इत आगच्छतु आर्य' इति पूर्वं निवेदितस्योत्तरमाह—अयमागतोऽस्मि ।

(इति=एवमुक्त्वा, सर्वे=नटाः, निष्क्रान्ताः=बहिर्गताः ।)

(इति व्यवहारः=न्याय-विचारः, एव प्रधानं प्रतिपाद्यम्
अभिनेयं वा यत्र तत् व्यवहारो नाम
नवमोऽङ्कः समाप्तः ।)

इति नवमोऽङ्कः ।

इस निर्णय के अनुसार आज मेरी देह पर चाण्डाल आरे चलायेंगे, यह जानकर मैंने प्रार्थना की—कि मुझे विष खिलाकर जांच लो, पानी में डुबाकर परीक्षा कर लो, तुलायन्त्र या अग्नि परीक्षा ही कर लो । किन्तु मेरे शत्रु उस शकार के कहने से ही यदि मुझ निरपराध ब्राह्मण की हत्या करते हो तो निश्चय ही तुम अपने पुत्र-पौत्रों के साथ नरक में जा गिरोगे ॥ ४३ ॥

मैं यह आया ।

(मंच से सभी बाहर निकल जाते हैं ।)

व्यवहार नामक नवम अंक समाप्त

दशमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चाण्डालद्वयेनानुगम्यमानश्चारुदत्तः ।)

उभौ—

तं्किं ण कलअ कालणं णव-वह-बन्ध-णअणे णिउणा ।
अचिलेण शीश-छेअण-शूलालोवेशु कुशलम्ह ॥ १ ॥

[तत् किं न कलय कारणं नव-वध-बन्ध-नयने निपुणौ ।
अचिरेण शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु कुशलौ स्वः ॥]

ओशलध अज्जा ! ओशलध । एशे अज्जचालुदत्ते । [अपसरत आर्याः ! अपसरत । एष आर्यः चारुदत्तः ।]

दिण्ण-कलवील-दामे गहिदे अम्हेहिं बज्झपुलिसेहिं ।
दीवे व्व मन्दणेहे थोअं थोअं खअं जादि ॥ २ ॥

(तत इति । नवमाङ्कवृत्तानन्तरम् । दशमेऽङ्के चारुदत्तं हन्तुं दक्षिण-श्मसानं नयन्तौ चाण्डालौ वर्णयिष्यन् कविः 'अङ्कान्तपात्रैर्वाङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्' इत्युक्तेनाङ्कास्येन दक्षिणश्मसानं नयन्तो चाण्डालाभ्यां सह प्रवेशमाह—तत इति । चाण्डाल-द्वयेन=शूलारोपिद्वयेन, अनुगम्यमानः=ध्रियमाणः ।)

अन्वयः—तत्, किम्, कारणम्, न, कलय, नववधबन्धनयने, निपुणौ, अचिरेण, शीर्षच्छेदनशूलारोपेषु, कुशलौ, स्वः ॥ १ ॥

तदिति । तत्=तु, किमिति प्रश्ने, कारणम्=श्मशानागमनहेतुम्, न=नहि, कलय=अवधारय, नववधाय बन्धः=मारणबन्धनस्थानम्, तत्र नयने=अपराधिनं गृहीत्वा गमने, निपुणौ=परमप्रवीणौ, अचिरेण=अविलम्बेन, शीर्षच्छेदनेषु=मस्तक-कर्त्तनेषु, तथा शूलारोपेषु=जीवनान्तकलौहफलकेषु आरोपणेषु, कुशलौ=निपुणौ, स्वः=वर्त्तावहे । गाथा वृत्तञ्चेति ॥ १ ॥

अपसरत=अस्माकं गमनमार्गात् इतस्ततो भवत, आर्याः=मान्याः ।

अन्वयः—दत्तकरवीरदामा, आवाभ्याम्, वध्यपुरुषाभ्याम्, गृहीतः, मन्दस्नेहः, दीपः, इव, स्तोकम्, स्तोकम्, क्षयम्, याति ॥ २ ॥

(इसके बाद दो चाण्डालों के साथ चारुदत्त का प्रवेश)

दोनों चाण्डाल—आप सभी इस श्मशान में पहुँचने का कारण समझते क्यों नहीं है । हम दोनों हत्या और बन्धन में दक्ष हैं । हम फाँसी लगाने में भी प्रवीण हैं । किसी को वध करने के लिए ही हम उसे इस श्मशान में लाते हैं ॥ १ ॥

हटिए महाशयों यहाँ से हटिए, यह चारुदत्त हैं—

[दत्त-करवीर-दामा गृहीत आवाभ्यां वध्यपुरुषाभ्याम् ।
दीप इव मन्दस्नेहः स्तोकं स्तोकं क्षयं याति ॥]

चारुदत्तः—(सविषादम्)

नयनसलिलसिक्तं पांशुरूक्षीकृताङ्गं
पितृवनसुमनोभिर्वेष्टितं मे शरीरम् ।
विरसमिह रटन्तो रक्तगन्धानुलिप्तं
बलिमिव परिभोक्तुं वायसास्तर्कयन्ति ॥ ३ ॥

चाण्डालौ—**ओशलध अज्जा ! ओशलध । [अपसरत आर्याः ! अपसरत ।]**

किं पेक्खध छिज्जन्तं शप्पुलिशा ! काल-पलशु-धालाहिं ।
शुणअ-शउणाधिवाशं शज्जणपुलिश-द्दुमं एदं ॥ ४ ॥

दत्तेति । दत्तकरवीरदामा=कण्ठे प्रदत्तरक्तकरवीरमाला, आवाभ्याम्=चाण्डालाभ्यां, वध्यपुरुषाभ्याम्=वधकार्ये नियुक्ताभ्याम्, गृहीतः=धृतः, मन्दस्नेहः=क्षीणतैलम्, दीपः=दीपकः, इव=यथा, स्तोकम्-स्तोकम्=मन्दं मन्दम्, क्षयम्=क्षीणम्, याति=गच्छति । श्लेषयुक्तोपमालङ्कारः ॥ २ ॥

चारुदत्तः—(सविषादम्—विषादेन=खेदेन सह)

अन्वयः—इह, विरसम्, रटन्तः, वायसाः, नयनसलिलसिक्तम्, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्, पितृवनसुमनोभिः, वेष्टितम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्, मे, शरीरम्, बलिम्, इव, परिभोक्तुम्, तर्कयन्ति ॥ ३ ॥

नयनेति । इह=अत्र, विरसम्=कर्कशम्, रटन्तः=शब्दं कुर्वन्तः, वायसाः=काकाः, नयनसलिलसिक्तम्=नेत्रजलार्द्रम्, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्=धूलिधूसरीकृतावयवम्, पितृवनसुमनोभिः=श्मशानपुष्पैः, वेष्टितम्=आच्छादितम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्=रक्तचन्दनेन संलिप्तम्, मे=मम चारुदत्तस्य, शरीरम्=देहम्, बलिम्=उपहाररूपेण प्रदत्तान्नपिण्डम्, इव=यथा, परिभोक्तुम्=खादितुम्, तर्कयन्ति=सम्भावयन्ति । श्रौती उपमा, मालिनी वृत्तम् ॥ ३ ॥

चाण्डालौ—अपसरत=मार्गादितस्ततो भवत, आर्याः=मान्याः ।

अन्वयः—हे सत्पुरुषाः, सुजनशकुनाधिवासम्, एतम्, सज्जनपुरुषद्रुमम्, कालपरशुधाराभिः, छिद्यमानम्, किम्, पश्यत ॥ ४ ॥

मृत्यु के समयानुकूल कनेर फूल के माला धारण करने वाले ये चारुदत्त चाण्डाल से ग्रसित हैं । कम तेल वाले दीपक की तरह मन्द-मन्द क्षीण होते जा रहे हैं ॥ २ ॥

चारुदत्त—(**दुःख के साथ**)

काँव-काँव करते ये कौए, आँसुओं से भींगे, धूलिधूसरित अङ्गवाले, श्मशान के फूलों से ढँके, लाल चन्दन से पुते मेरी इस देह को बलि की तरह खाने का विचार कर रहे हैं ॥ ३ ॥

दोनों चाण्डाल—हटो, महानुभावो, हटो ।

[किं प्रेक्षध्वे छिद्यमानं सत्पुरुषाः ! कालपरशु-धाराभ्याम् ।
सुजन-शकुनाधिवासं सज्जन-पुरुषद्रुममेतम् ॥]

आअच्छ ले चालुदत्त ! आअच्छ । [आगच्छ रे चारुदत्त ! आगच्छ ।]

चारुदत्तः—पुरुषभाग्यानामचिन्त्याः खलु व्यापाराः, यदहमीदृशीं दशामनुप्राप्तः ।

सर्वगात्रेण विन्यस्तै रक्तचन्दनहस्तकैः ।
पिष्टचूर्णावकीर्णश्च पुरुषोऽहं पशूकृतः ॥ ५ ॥

(अग्रतो निरूप्य) अहो । तारतम्यं नराणाम् । (सकरुणम्)

अमी हि दृष्ट्वा मदुपेतमेतन्मर्त्यं धिगस्त्वित्युपजातबाष्पाः ।
अशक्नुवन्तः परिरक्षितुं मां स्वर्गं लभस्वेति वदन्ति पौराः ॥ ६ ॥

किमिति । हे सत्पुरुषाः=हे सज्जनाः, सुजनशकुनाधिवासम्=सज्जनाश्रयपदम् एतम्=नीयमानम्, सज्जनपुरुषद्रुमम्—सज्जनपुरुषः=भद्रलोकः एव द्रुमः=वृक्षः, तम्=चारुदत्तम्, कालपरशुधाराभिः=मृत्युकुठारतीक्ष्णाग्रैः, छिद्यमानम्=भिद्यमानम्, किम् पश्यत=किमवलोकयत । रूपकालङ्कारः, आर्या वृत्तञ्चेति ॥ ४ ॥

चारुदत्तः—पुरुषभाग्यानाम्—पुरुषाणां=लोकानाम्, भाग्यानाम्=दैवानाम्, अचिन्त्याः=चिन्तनशून्याः, व्यापाराः=परिवर्त्तनाः, यत्=यस्मात्, अहम्=चारुदत्तः, इदृशीम्=वर्त्तमानाम्, दशाम्=स्थितिम्, अनुप्राप्तः=समागतः ।

अन्वयः—सर्वगात्रेषु, विन्यस्तैः, रक्तचन्दनहस्तकैः, पिष्टचूर्णावकीर्णः, च अहम्, पुरुषः, पशूकृतः ॥ ५ ॥

सर्वेति । सर्वगात्रेषु=सर्वावयवेषु, विन्यस्तैः=प्रदत्तैः, रक्तचन्दनहस्तकैः=लोहितचन्दनहस्तचिह्नैः, पिष्टैः=तण्डुलादीनां विकारैः, चूर्णैः=तिलचूर्णैः, अवकीर्णः=परिव्याप्तश्च, अहम्=चारुदत्तः, पुरुषः=नरः, पशूकृतः=बलिपशुतुल्यः कृतः । रूपकालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्च ॥ ५ ॥

(अग्रतः=सन्मुखे, निरूप्य=दृष्ट्वा) अहो=इत्याश्चर्यम्, नराणाम्=लोकानाम्, तारतम्यम्=विचारवैषम्यम् । (सकरुणम्=सकातरम् ।)

हे सज्जनो, साधुजनरूपी पक्षियों के आधार, भद्रपुरुषरूपी इस वृक्ष को कालरूपी कुल्हाड़ी की तीक्ष्ण धार से काटे जाते हुए क्यों देख रहे हो ॥ ४ ॥

आओ चारुदत्त आओ ।

चारुदत्त—मनुष्य के भाग्य का परिवर्त्तन अचिन्तनीय है जो मैं इस प्रकार की शोचनीय दशा में पहुंच गया ।

सारी देह पर हाथ से रक्त चन्दन का छापा मारा गया है और तिल चावल का चूर्ण लेप दिया गया है । इस तरह मनुष्य होते हुए भी मैं बलि का बकरा बना दिया गया हूँ ॥ ५ ॥

(आगे की ओर देखकर) लोगों का ताँता आश्चर्यजनक है । (दुःख के साथ)

चाण्डालौ—ओशलध अज्जा ! ओशलध। किं पेक्खध ? [अपसरत आर्याः ! अपसरत। किं प्रेक्षध्वे ?]

इन्देप्पवाहिअन्ते, गोप्पसवे संकमं च तालाणं।
शुपुलिश-पाण-विपत्ती चत्तालि इमे ण दट्टव्वा ॥ ७ ॥

[इन्द्रः प्रवाह्यमाणो गोप्रसवः सङ्क्रमश्च ताराणाम्।
सुपुरुषप्राणविपत्तिः चत्वार इमे न द्रष्टव्याः ॥]

एकः—हण्डे आहीन्ता पेक्ख पेक्ख। [हण्डे आहीन्त ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व।]

अन्वयः—हि, अमी, पौराः, एतत्, मदुपेतम्, दृष्ट्वा, मर्त्यम्, धिग्, अस्तु, इति, उपजातबाष्पाः, माम्, परिरक्षितुम्, अशक्नुवन्तः, 'स्वर्गं लभस्व' इति वदन्ति ॥ ६ ॥

अमी इति। हि=यतः, अमी=एते, पौराः=पुरवासिनः जनाः, मत्=मयि चारुदत्ते, उपेतम्=आगतम्, एतत्=चित्रवधरूपमरणम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, मर्त्यम्=मनुष्यम्, धिक्=धिक्कारम्, अस्तु=वर्त्तताम्, इति='हा ईदृशोऽपि जनः वध्यते' इति उक्त्वा, उपजातबाष्पाः=साश्रुनयनाः, माम्=चारुदत्तम्, परिरक्षितुम्=रक्षाकर्त्तुम्, अशक्नुवन्तः=अपारयन्तः, स्वर्गम्=देवलोकम्, लभस्व=प्राप्नुहि, इति=इत्थम्, वदन्ति=कथयन्ति। उपजातिवृत्तम् ॥ ६ ॥

चाण्डालौ—अपसरत=मार्गं देहि, हे आर्याः=मान्याः, किं प्रेक्षध्वे=नावलोकनीयं सद्भिरिति।

अन्वयः—प्रवाह्यमाणः, इन्द्रः, गोप्रसवः, ताराणाम्, सङ्क्रमः, च, सुपुरुषप्राणविपत्तिः, च, एतानि, चत्वारि, न द्रष्टव्यानि ॥ ७ ॥

इन्द्र इति। प्रवाह्यमाणः=सरितादौ प्रवाहयितुं नीयमानः, इन्द्रः=इन्द्रध्वजः, गोप्रसवः=धेनुप्रसूतिः, ताराणाम्=नक्षत्राणाम्, सङ्क्रमः=पतनम्, च=पुनः, सुपुरुषप्राणविपत्तिः=श्रेष्ठजनप्राणनाशः, एतानि=इमानि, चत्वारि=चतुसंख्यकानि, न द्रष्टव्यानि=नावलोकनीयानि। तथाहि कालिकापुराणे—"उत्थापयेत्तूर्यरवैः सर्वलोकस्य वै पुरः। रहोविसर्जयेत्केतुं विशेषोऽयं प्रपूजने। मैथुनश्च गोप्रसवं केतुपातम् सतोवधम्, नक्षत्राणां च सञ्चारः शुभार्थी नावलोकयेत्" ॥ ७ ॥

एकः—हण्डे=नीच सम्बोधनपदमिदम्, आहीन्त=द्वितीयचाण्डालस्य नाम।

मेरे अकारण प्राणदण्ड से दुःखी ये पुरवासीगण, मानव जाति को धिक्कार रहे हैं। ये मुझे बचाने में असमर्थ हैं, फिर भी मेरे अपमान से इनकी आँखें गीली है और मुझे कह रहे हैं तुम मरकर भी अमर हो ॥ ६ ॥

दोनों चाण्डाल—भले आदमी, राह छोड़ो, क्या देख रहे हो ?

विसर्जन के लिए ले जाते हुए इन्द्रध्वज, गायों का प्रसव, तारों का अधःपतन, तथा सज्जनों का वध देखना अनुचित है ॥ ७ ॥

एक—अरे, भाई आहीन्त, देखो, देखो।

णअली-पधाणभूदे वज्झअन्ते कदन्तअण्णाए।
किं लुअदि अन्तलिक्खे ? आदु अणब्भे पडदि वज्जे ? ॥ ८ ॥
[नगरीप्रधानभूते वध्यमाने कृतान्ताज्ञया।
किं रोदिति अन्तरिक्षम् ? अथवा अनभ्रं पतति वज्रम् ?]

द्वितीयः—अले गोहा ! [अरे गोह !]
ण अ लुअदि अन्तलिक्खे णेअ अणब्भे पडदि वज्जे।
महिलाशमूहमेहे णिवडदि णअणम्बु धालाहिं ॥ ९ ॥
[न च रोदित्यन्तरिक्षं नैवानभ्रं पतति वज्रम्।
महिलासमूहमेघात् निपतति नयनाम्बु धाराभिः ॥]

अवि अ [अपि च]—
वज्झम्मि णीअमाणे जणश्श शव्वश्श लोदमाणश्श।
णअणशलिलेहिं शित्ते लच्छादो ण उण्णमइ लेणु ॥ १० ॥

अन्वयः—कृतान्ताज्ञया, नगरीप्रधानभूते, बध्यमाने, किम्, अन्तरिक्षम्, रोदिति अथवा, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति ॥ ८ ॥

नगरीति। कृतान्ताज्ञया=यमराजस्यादेशेन, नगरीप्रधानभूते=उज्जयिनीप्रधान-पुरुषे चारुदत्ते, वध्यमाने=हन्यमाने, किमिति प्रश्ने, अन्तरिक्षम्=आकाशम्, रोदिति =विलपति ? अथवा=वा, अनभ्रम्=मेघरहितम्, वज्रम्=अशनिः, पतति= आकाशादागच्छति। अत्र सन्देहो नामालङ्कारः। आर्यावृत्तम् ॥ ८ ॥

द्वितीयः—अरे गोहः=गां हन्तीति गोहः तत्सम्बुद्धौ, प्रथमचाण्डालस्य नाम।

अन्वयः—न च, अन्तरिक्षम्, रोदिति, नैव, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति, किन्तु महिलासमूहमेघात्, नयनाम्बु, धाराभिः, निपतति ॥ ९ ॥

न चेति। न च=नैव, अन्तरिक्षम्=आकाशम्, रोदिति=विलपति, नैव= न च, अनभ्रम्=मेघशून्यम्, वज्रम्=अशनिः, पतति=गगनादागच्छति, किन्तु, महिलासमूहमेघात्=नारीसमूहरूपजलदात्, नयनाम्बु=नेत्रजलम्, धाराभिः= प्रवाहैः, निपतति=वर्षति। अत्र रूपकालङ्कारः। उपगीति वृत्तम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—वध्ये, नीयमाने, रुदतः, सर्वस्य, जनस्य, नयनसलिलैः, सिक्तः, रेणुः, रथ्यातः, न, उन्नमति ॥ १० ॥

यमराज के हुक्म से इस नगरी के प्रधान पुरुष चारुदत्त के वध की तैयारी देखकर, क्या आकाश रो रहा है ? अथवा बिना बादल के ही वज्र गिर रहा है ॥८॥

दूसरा चाण्डाल—अरे गोह,

न तो आकाश टूट रहा है और न बिना मेघ के वज्र ही गिर रहा है, ये तो नगर की महिलाओं को आंसू रूपी मेघ बरस रहे हैं ॥ ९ ॥

[दत्त-करवीर-दामा गृहीत आवाभ्यां वध्यपुरुषाभ्याम् ।
दीप इव मन्दस्नेहः स्तोकं स्तोकं क्षयं याति ॥]

चारुदत्तः—(सविषादम्)

नयनसलिलसिक्तं पांशुरूक्षीकृताङ्गं
पितृवनसुमनोभिर्वेष्टितं मे शरीरम् ।
विरसमिह रटन्तो रक्तगन्धानुलिप्तं
बलिमिव परिभोक्तुं वायसास्तर्कयन्ति ॥ ३ ॥

चाण्डालौ—ओशलध अज्जा ! ओशलध । [अपसरत आर्याः ! अपसरत ।]

किं पेक्खध छिज्जन्तं शप्पुलिशा ! काल-पलशु-धालाहिं ।
शुणअ-शउणाधिवाशं शज्जणपुलिश-द्दुमं एदं ॥ ४ ॥

दत्तेति । दत्तकरवीरदामा=कण्ठे प्रदत्तरक्तकरवीरमाला, आवाभ्याम्=चाण्डालाभ्यां, वध्यपुरुषाभ्याम्=वधकार्ये नियुक्ताभ्याम्, गृहीतः=धृतः, मन्दस्नेहः=क्षीणतैलम्, दीपः=दीपकः, इव=यथा, स्तोकम्-स्तोकम्=मन्दं मन्दम्, क्षयम्=क्षीणम्, याति=गच्छति । श्लेषयुक्तोपमालङ्कारः ॥ २ ॥

चारुदत्तः—(सविषादम्—विषादेन=खेदेन सह)

अन्वयः—इह, विरसम्, रटन्तः, वायसाः, नयनसलिलसिक्तम्, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्, पितृवनसुमनोभिः, वेष्टितम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्, मे, शरीरम्, बलिम्, इव, परिभोक्तुम्, तर्कयन्ति ॥ ३ ॥

नयनेति । इह=अत्र, विरसम्=कर्कशम्, रटन्तः=शब्दं कुर्वन्तः, वायसाः=काकाः, नयनसलिलसिक्तम्=नेत्रजलार्द्रम्, पांशुरूक्षीकृताङ्गम्=धूलिधूसरीकृतावयवम्, पितृवनसुमनोभिः=श्मशानपुष्पैः, वेष्टितम्=आच्छादितम्, रक्तगन्धानुलिप्तम्=रक्तचन्दनेन संलिप्तम्, मे=मम चारुदत्तस्य, शरीरम्=देहम्, बलिम्=उपहाररूपेण प्रदत्तान्नपिण्डम्, इव=यथा, परिभोक्तुम्=खादितुम्, तर्कयन्ति=सम्भावयन्ति । श्रौती उपमा, मालिनी वृत्तम् ॥ ३ ॥

चाण्डालौ—अपसरत=मार्गादितस्ततो भवत, आर्याः=मान्याः ।

अन्वयः—हे सत्पुरुषाः, सुजनशकुनाधिवासम्, एतम्, सज्जनपुरुषद्रुमम्, कालपरशुधाराभिः, छिद्यमानम्, किम्, पश्यत ॥ ४ ॥

मृत्यु के समयानुकूल कनेर फूल के माला धारण करने वाले ये चारुदत्त चाण्डाल से ग्रसित हैं । कम तेल वाले दीपक की तरह मन्द-मन्द क्षीण होते जा रहे हैं ॥ २ ॥

चारुदत्त—(दुःख के साथ)

काँव-काँव करते ये कौए, आँसुओं से भींगे, धूलिधूसरित अङ्गवाले, श्मशान के फूलों से ढँके, लाल चन्दन से पुते मेरी इस देह को बलि की तरह खाने का विचार कर रहे हैं ॥ ३ ॥

दोनों चाण्डाल—हटो, महानुभावो, हटो ।

[किं प्रेक्षध्वे छिद्यमानं सत्पुरुषाः ! कालपरशु-धाराभ्याम् ।
सुजन-शकुनाधिवासं सज्जन-पुरुषद्रुममेतम् ॥]

आअच्छ ले चालुदत्त ! आअच्छ । [आगच्छ रे चारुदत्त ! आगच्छ ।]

चारुदत्तः—पुरुषभाग्यानामचिन्त्याः खलु व्यापाराः, यदहमीदृशीं दशामनुप्राप्तः ।

सर्वगात्रेण विन्यस्तै रक्तचन्दनहस्तकैः ।
पिष्टचूर्णावकीर्णश्च पुरुषोऽहं पशूकृतः ॥ ५ ॥

(अग्रतो निरूप्य) अहो । तारतम्यं नराणाम् । (सकरुणम्)

अमी हि दृष्ट्वा मदुपेतमेतन्मर्त्यं धिगस्त्वित्युपजातबाष्पाः ।
अशक्नुवन्तः परिरक्षितुं मां स्वर्गं लभस्वेति वदन्ति पौराः ॥ ६ ॥

किमिति । हे सत्पुरुषाः=हे सज्जनाः, सुजनशकुनाधिवासम्=सज्जनाश्रयपदम् एतम्=नीयमानम्, सज्जनपुरुषद्रुमम्—सज्जनपुरुषः=भद्रलोकः एव द्रुमः=वृक्षः, तम्=चारुदत्तम्, कालपरशुधाराभिः=मृत्युकुठारतीक्ष्णाग्रैः, छिद्यमानम्=भिद्यमानम्, किम् पश्यत=किमवलोकयत । रूपकालङ्कारः, आर्या वृत्तञ्चेति ॥ ४ ॥

चारुदत्तः—पुरुषभाग्यानाम्—पुरुषाणां=लोकानाम्, भाग्यानाम्=दैवानाम्, अचिन्त्याः=चिन्तनशून्याः, व्यापाराः=परिवर्त्तनाः, यत्=यस्मात्, अहम्=चारुदत्तः, इदृशीम्=वर्त्तमानाम्, दशाम्=स्थितिम्, अनुप्राप्तः=समागतः ।

अन्वयः—सर्वगात्रेषु, विन्यस्तैः, रक्तचन्दनहस्तकैः, पिष्टचूर्णावकीर्णः, च अहम्, पुरुषः, पशूकृतः ॥ ५ ॥

सर्वेति । सर्वगात्रेषु=सर्वावयवेषु, विन्यस्तैः=प्रदत्तैः, रक्तचन्दनहस्तकैः=लोहितचन्दनहस्तचिह्नैः, पिष्टैः=तण्डुलादीनां विकारैः, चूर्णैः=तिलचूर्णैः, अवकीर्णः=परिव्याप्तश्च, अहम्=चारुदत्तः, पुरुषः=नरः, पशूकृतः=बलिपशुतुल्यः कृतः । रूपकालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्च ॥ ५ ॥

(अग्रतः=सन्मुखे, निरूप्य=दृष्ट्वा) अहो=इत्याश्चर्यम्, नराणाम्=लोकानाम्, तारतम्यम्=विचारवैषम्यम् । (सकरुणम्=सकातरम् ।)

हे सज्जनो, साधुजनरूपी पक्षियों के आधार, भद्रपुरुषरूपी इस वृक्ष को कालरूपी कुल्हाड़ी की तीक्ष्ण धार से काटे जाते हुए क्यों देख रहे हो ॥ ४ ॥

आओ चारुदत्त आओ ।

चारुदत्त—मनुष्य के भाग्य का परिवर्त्तन अचिन्तनीय है जो मैं इस प्रकार की शोचनीय दशा में पहुँच गया ।

सारी देह पर हाथ से रक्त चन्दन का छापा मारा गया है और तिल चावल का चूर्ण लेप दिया गया है । इस तरह मनुष्य होते हुए भी मैं बलि का बकरा बना दिया गया हूँ ॥ ५ ॥

(आगे की ओर देखकर) लोगों का ताँता आश्चर्यजनक है । **(दुःख के साथ)**

चाण्डालौ—ओशलध अज्जा ! ओशलध । किं पेक्खध ? [अपसरत आर्याः ! अपसरत । किं प्रेक्षध्वे ?]

इन्देप्पवाहिअन्ते, गोप्पसवे संकमं च तालाणं ।
शुपुलिश-पाण-विपत्ती चत्तालि इमे ण दट्टव्वा ॥ ७ ॥
[इन्द्रः प्रवाह्यमाणो गोप्रसवः सङ्क्रमश्च ताराणाम् ।
सुपुरुषप्राणविपत्तिः चत्वार इमे न द्रष्टव्याः ॥]

एकः—हण्डे आहीन्ता पेक्ख पेक्ख । [हण्डे आहीन्त ! प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व ।]

अन्वयः—हि, अमी, पौराः, एतत्, मदुपेतम्, दृष्ट्वा, मर्त्यम्, धिग्, अस्तु, इति, उपजातबाष्पाः, माग्, परिरक्षितुम्, अशक्नुवन्तः, 'स्वर्गं लभस्व' इति वदन्ति ॥ ६ ॥

अमी इति । हि=यतः, अमी=एते, पौराः=पुरवासिनः जनाः, मत्=मयि चारुदत्ते, उपेतम्=आगतम्, एतत्=चित्रवधरूपमरणम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य, मर्त्यम्=मनुष्यम्, धिक्=धिक्कारम्, अस्तु=वर्त्तताम्, इति='हा ईदृशोऽपि जनः वध्यते' इति उक्त्वा, उपजातबाष्पाः=साश्रुनयनाः, माम्=चारुदत्तम्, परिरक्षितुम्=रक्षाकर्त्तुम्, अशक्नुवन्तः=अपारयन्तः, स्वर्गम्=देवलोकम्, लभस्व=प्राप्नुहि, इति=इत्थम्, वदन्ति=कथयन्ति । उपजातिवृत्तम् ॥ ६ ॥

चाण्डालौ—अपसरत=मार्गं देहि, हे आर्याः=मान्याः, किं प्रेक्षध्वे=नावलोकनीयं सद्भिरिति ।

अन्वयः—प्रबाह्यमाणः, इन्द्रः, गोप्रसवः, ताराणाम्, सङ्क्रमः, च, सुपुरुषप्राणविपत्तिः, च, एतानि, चत्वारि, न द्रष्टव्यानि ॥ ७ ॥

इन्द्र इति । प्रवाह्यमाणः=सरितादौ प्रवाहयितुं नीयमानः, इन्द्रः=इन्द्रध्वजः, गोप्रसवः=धेनुप्रसूतिः, ताराणाम्=नक्षत्राणाम्, सङ्क्रमः=पतनम्, च=पुनः, सुपुरुषप्राणविपत्तिः=श्रेष्ठजनप्राणनाशः, एतानि=इमानि, चत्वारि=चतुसंख्यकानि, न द्रष्टव्यानि=नावलोकनीयानि । तथाहि कालिकापुराणे—"उत्थापयेत्तूर्यरवैः सर्वलोकस्य वै पुरः । रहोविसर्जयेत्केतुं विशेषोऽयं प्रपूजने । मैथुनञ्च गोप्रसवं केतुपातम् सतोवधम्, नक्षत्राणां च सञ्चारः शुभार्थी नावलोकयेत्" ॥ ७ ॥

एकः—हण्डे=नीच सम्बोधनपदमिदम्, आहीन्त=द्वितीयचाण्डालस्य नाम ।

मेरे अकारण प्राणदण्ड से दुःखी ये पुरवासीगण, मानव जाति को धिक्कार रहे हैं । ये मुझे बचाने में असमर्थ हैं, फिर भी मेरे अपमान से इनकी आँखें गीली है और मुझे कह रहे हैं तुम मरकर भी अमर हो ॥ ६ ॥

दोनों चाण्डाल—भले आदमी, राह छोड़ो, क्या देख रहे हो ?

विसर्जन के लिए ले जाते हुए इन्द्रध्वज, गायों का प्रसव, तारों का अधःपतन, तथा सज्जनों का वध देखना अनुचित है ॥ ७ ॥

एक—अरे, भाई आहीन्त, देखो, देखो ।

णअली-पधाणभूदे वज्झअन्ते कदन्तअण्णाए।
किं लुअदि अन्तलिक्खे ? आदु अणब्भे पडदि वज्जे ? ॥ ८ ॥
[नगरीप्रधानभूते वध्यमाने कृतान्ताज्ञया।
किं रोदिति अन्तरिक्षम् ? अथवा अनभ्रं पतति वज्रम् ?]

द्वितीयः—अले गोहा ! [अरे गोह !]
ण अ लुअदि अन्तलिक्खे णेअ अणब्भे पडदि वज्जे।
महिलाशमूहमेहे णिवडदि णअणम्बु धारार्हि ॥ ९ ॥
[न च रोदित्यन्तरिक्षं नैवानभ्रं पतति वज्रम्।
महिलासमूहमेघात् निपतति नयनाम्बु धाराभिः ॥]

अवि अ [अपि च]—
वज्झम्मि णीअमाणे जणशश सव्वशश लोदमाणशश।
णअणशलिलेर्हि शित्ते लच्छादो ण उण्णमइ लेणु ॥ १० ॥

अन्वयः—कृतान्ताज्ञया, नगरीप्रधानभूते, बध्यमाने, किम्, अन्तरिक्षम्, रोदिति ? अथवा, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति ॥ ८ ॥

नगरीति। कृतान्ताज्ञया=यमराजस्यादेशेन, नगरीप्रधानभूते=उज्जयिनीप्रधान-पुरुषे चारुदत्ते, वध्यमाने=हन्यमाने, किमिति प्रश्ने, अन्तरिक्षम्=आकाशम्, रोदिति =विलपति ? अथवा=वा, अनभ्रम्=मेघरहितम्, वज्रम्=अशनिः, पतति= आकाशादागच्छति। अत्रं सन्देहो नामालङ्कारः। आर्यावृत्तम् ॥ ८ ॥

द्वितीयः—अरे गोहः=गां हन्तीति गोहः तत्सम्बुद्धौ, प्रथमचाण्डालस्य नाम।

अन्वयः—न च, अन्तरिक्षम्, रोदिति, नैव, अनभ्रम्, वज्रम्, पतति, किन्तु महिलासमूहमेघात्, नयनाम्बु, धाराभिः, निपतति ॥ ९ ॥

न चेति। न च=नैव, अन्तरिक्षम्=आकाशम्, रोदिति=विलपति, नैव= न च, अनभ्रम्=मेघशून्यम्, वज्रम्=अशनिः, पतति=गगनादागच्छति, किन्तु, महिलासमूहमेघात्=नारीसमूहरूपजलदात्, नयनाम्बु=नेत्रजलम्, धाराभिः= प्रवाहैः, निपतति=वर्षति। अत्र रूपकालङ्कारः। उपगीति वृत्तम् ॥ ९ ॥

अन्वयः—वध्ये, नीयमाने, रुदतः, सर्वस्य, जनस्य, नयनसलिलैः, सिक्तः, रेणुः, रथ्यातः, न, उन्नमति ॥ १० ॥

यमराज के हुक्म से इस नगरी के प्रधान पुरुष चारुदत्त के वध की तैयारी देखकर, क्या आकाश रो रहा है ? अथवा बिना बादल के ही वज्र गिर रहा है ॥८॥

दूसरा चाण्डाल—अरे गोह,

न तो आकाश टूट रहा है और न बिना मेघ के वज्र ही गिर रहा है, ये तो नगर की महिलाओं को आँसू रूपी मेघ बरस रहे हैं ॥ ९ ॥

[**वध्ये नीयमाने जनस्य सर्वस्य रुदतः ।**
नयनसलिलसिक्तो रथ्यातो न उन्नमति रेणुः ॥]

चारुदत्तः—(निरूप्य, सकरुणम्)

एताः पुनर्हर्म्यगताः स्त्रियो मां वातायनार्द्धेन विनिःसृतास्याः ।
हा ! चारुदत्तेत्यभिभाषमाणा बाष्पं प्रणालीभिरिवोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

चाण्डालौ—आअच्छ ले चालुदत्ता ! आअच्छ। इमं घोशणट्ठाणं। आहणेध डिण्डिमं। घोशेध घोशणं। [**आगच्छ रे चारुदत्त ! आगच्छ। इदं घोषणास्थानम्। आहत डिण्डिमम्। घोषयत घोषणाम्।]**

उभौ—शुणाध अज्जा ! शुणाध। एशे शत्थवाहविणअदत्तश्श णत्तिके

वध्य इति। वध्ये=प्राणादण्डस्थाने, नीयमाने=प्राप्यमाणे सति, रुदतः=विलपतः, सर्वस्य=सकलस्य, जनस्य=लोकस्य, नयनसलिलैः=अश्रुजलैः, सिक्तः=आर्द्रः, रेणुः=धूलिः, रथ्यातः=प्रतोल्याः, न उन्नमति=नोत्तिष्ठति। अत्रातिशयोक्तिरलङ्कारः। आर्या वृत्तञ्चेति ॥ १० ॥

चारुदत्तः—(निरूप्य=दृष्ट्वा, सकरुणम्=करुणापूर्वकम्)

अन्वयः—वातायनार्द्धेन, विनिःसृतास्याः, एताः, पुनः, हर्म्यगताः, स्त्रियः, हा चारुदत्त, इत्यभिभाषमाणाः, प्रणालीभिः, इव, बाष्पम्, उत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

एता इति। वातायनार्द्धेन=गवाक्षस्यैकांशेन, एकभागेनेत्यर्थः, विनिःसृतानि=बहिर्गतानि, आस्यानि=आननानि, यासां ताः, एताः=अवलोक्यमानाः, पुनः=भूयः, हर्म्यगताः=प्रासादस्थिताः, स्त्रियः=नार्यः, हा=इति खेदे, चारुदत्त ! इति=इत्थम्, अभिभाषमाणः=कथयन्त्यः, प्रणालीभिः=सलिलनिःसरणमार्गैः, इव=यथा, बाष्पम्=अश्रुः, उत्सृजन्ति=प्रवाहयन्ति। उत्प्रेक्षालङ्कारः, इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ११ ॥

चाण्डालौ—आगच्छ=समागम्यताम्, इदम्=एतत्, घोषणास्थानम्=प्रख्यापनप्रदेशः, आहत=वादयत, डिण्डिमम्=नक्कारः, घोषणाम्=प्रख्यापनम्, घोषयत=घोषणां कुरुत।

उभौ—शृणुत=श्रवणं कुरुत, आर्याः=मान्याः, नप्ता=पौत्रः, अकार्यकारिणा

और भी—वध के लिये चारुदत्त को ले जाते समय सभी आदमी रो पड़े हैं और उनके नयनजल से गलियाँ भींग गई हैं जिससे धूलि नहीं उड़ रही है ॥ १० ॥

चारुदत्त—(**देखकर, दयापूर्वक**)

महलों में रहने वाली औरतें खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर 'हाय चारुदत्त' कहती हुई, पनाले के जल प्रपात की तरह आँसू बहा रही हैं ॥ ११ ॥

दोनों चाण्डाल—आओ चारुदत्त, आओ। यही तो उद्घोषणा की जगह है, ढोल पीटो, घोषणा करो।

दोनों चाण्डाल—सुनिए महानुभावो, सुनिये। यह व्यापारी विनयदत्त के नाती,

शाअलदत्तश्श पुत्तके अज्जचालुदत्ते णाम। एदिणा किल अकज्जकालिणा गणिआ वशन्तशेणा अत्थकल्लवत्तश्श कालणादो शुण्णं पुप्फकलण्डअ-जिण्णुज्जाणं पवेशिअ बाहुपाशवलक्कालेण मालिदे त्ति, एशे शलोत्ते गहिदे, शअं अ पडिवण्णे। तदो लण्णा पालएण अम्हे आणत्ता एदं मालेदुं। जदि अवले ईदिशं उभअलोअविलुद्धं अकज्जं कलेदि, तं पि लाआ पालए एव्वं ज्जेव शाशदि।
[शृणुत आर्याः ! शृणुत। एष सार्थवाह-विनयदत्तस्य नप्ता सागरदत्तस्य पुत्रक आर्यचारुदत्तो नाम। एतेन किल अकार्यकारिणा गणिका वसन्तसेना अर्थकल्यवर्त्तस्य कारणात् शून्यं पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं प्रवेश्य बाहुपाशबलात्कारेण मारितेति, एष सलोप्त्रो गृहीतः, स्वयञ्च प्रतिपन्नः, ततो राज्ञा पालकेन वयमाज्ञप्ता एतं मारयितुम्। यद्यपर ईदृशमुभयलोकविरुद्धमकार्यं करोति, तमपि राजा पालक एवमेव शास्ति।]

चारुदत्तः—(सनिर्वेदं स्वगतम्)

मख-शत-परिपूतं गोत्रमुद्भासितं मे
सदसि निबिडचैत्यब्रह्मघोषैः पुरस्तात्।
मम मरणदशायां वर्त्तमानस्य पापै-
स्तदसदृशमनुष्यैर्घुष्यते घोषणायाम्॥ १२॥

=दुष्कर्मविधायिना, अर्थकल्यवर्त्तस्य कारणात्=क्षुद्रधनहेतोः, बाहुपाशबलात्कारेण =भुजदण्डघर्षणेन, मारिता=हता, सलोप्त्रेण—अपहृतेन धनेन सहितः सलोप्त्रः= सापहृतधनः, तेन, गृहीतः=धृतः, प्रतिपन्नः=स्वयं स्वीकृतवान्, ततः=तस्मात्, राज्ञा= नृपेन पालकेन, वयम्=चाण्डालाः, एतम्=चारुदत्तम्, मारयितुम्=हन्तुम्, आज्ञप्ताः= आदिष्टाः। यदि=चेत्, अपरः=अन्यः, ईदृशम्=एतादृशम्, उभयलोकविरुद्धम्= लोकपरलोकविपरीतम्, अकार्यम्=निन्दितकार्यम्, करोति=विदधाति, तम्= अकार्यकर्तारम्, अपि, राजा=नृपः, पालकः एवं शास्ति=शासनं करोति।

चारुदत्तः—(सनिर्वेदम्=सखेदम्, स्वगतम्=आत्मगतम्)

अन्वयः—पुरस्तात्, मखशतपरिपूतम्, मे, गोत्रम्, सदसि, निविडचैत्यब्रह्मघोषैः, उद्भासितम्, मरणदशायाम्, वर्त्तमानस्य, मम, तत्, पापैः, असदृश-मनुष्यैः, घोषणायाम्, घुष्यते॥ १२॥

सागरदत्त के पुत्र आर्य चारुदत्त हैं। इसी कुकर्मी ने क्षणस्थायी तुच्छ धन के लिए, वेश्या वसन्तसेना को पुष्पकरण्डक नामक पुराने बगीचे में ले जाकर अपनी बाँहों में जकड़ कर, गला घोंटकर मार डाला है। इसे चोरी के धन के साथ पकड़ा गया है, साथ ही इसने स्वयं इस कुकर्म को कबूल किया है। इसके बाद राजा पालक ने इसे मारने की आज्ञा हमें दी है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति भी लोक-परलोक विरोधी ऐसा पाप करेगा तो उसे भी राजा पालक ऐसा ही दण्ड देंगे।

चारुदत्त—(दुःख के साथ, मन ही मन)

पहले, सैकड़ों यज्ञों से पवित्र जो मेरा कुल धार्मिक अनुष्ठानों में, सभाओं में

(उद्वीक्ष्य, कर्णौ पिधाय) हा प्रिये ! वसन्तसेने !

शशि-विमल-मयूख-शुभ्र-दन्ति !
सुरुचिर-विद्रुम-सन्निभाधरौष्ठि !।
तव वदनभवामृतं निपीय
कथमवशो ह्ययशोविषं पिबामि ।। १३ ।।

उभौ—ओशलध अज्जा ! ओशलध । [अपसरत आर्याः ! अपसरत ।]

एशे गुण-लअणणिहि शज्जणदुक्खाणं उत्तलणशेदू ।
अशुवण्ण-मण्डणअं अवणीअदि अज्ज णअलीदो ।। १४ ।।

मखेति । पुरस्तात्=पूर्वम्, मखशतपरिपूतम्—मखानाम्=यज्ञानाम्, शतैः= शतसंख्यकैः, परिपूतम्=परमपवित्रम्, यत्, मे=मम चारुदत्तस्य, गोत्रम्=कुलम्, सदसि=मण्डपे, निविडचैत्यब्रह्मघोषैः=जनसङ्कुलयज्ञस्थानस्थितवेदपाठैः, उद्भासितम्= प्रकाशितम्, मरणदशायां वर्त्तमानस्य=मरणोन्मुखस्य, मम=चारुदत्तस्य, तत्= पवित्रकुलम्, पापैः=अधर्मशीलैः नीचैः, असदृशमनुष्यैः=अयोग्यजनैः, घोषणायाम् =प्रख्यापनस्थले, घुष्यते=उच्चैःकीर्त्यते, तेन मत्कुलस्य महल्लांच्छनमिति भावः । अत्र पूर्वार्द्धपरार्द्धयोः सङ्घटनाकरणात् विषमालङ्कारः । मालिनी वृत्तञ्चेति ।। १२ ।।

(उद्वीक्ष्य=आकाशे दृष्टिं बद्ध्वा, कर्णौ, पिधाय=आच्छादनङ्कृत्वा ।)

अन्वयः—हे शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति, सुरुचिरविद्रुमसन्निभाधरोष्ठि, तव, वदन-भवामृतम्, निपीय, अवशः, अयशोविषम्, कथम्, पिबामि ।। १३ ।।

शशीति । हे शशिविमलमयूखशुभ्रदन्ति=हे चन्द्रकिरणधवलदशने, हे सुरुचिर विद्रुमसन्निभाधरोष्ठि=हे सुन्दरप्रवालसदृशरक्तवर्णाधरोष्ठि, तव=भवत्याः, वसन्त-सेनायाः, वदनभवामृतम्=मुखोत्पन्नसुधारसम्, निपीय=पीत्वा, अधुना, अवशः= पराधीनः, अयशोविषम्=अपकीर्त्तिगरलम्, कथम्=केन प्रकारेण, पिबामि=पानं करोमि । अत्रोपमा-रूपकविषमालङ्काराः, पुष्पिताग्रा वृत्तञ्चेति ।। १३ ।।

उभौ—अपसरत=अपसरणं कुरुत, आर्याः=मान्याः ।

अन्वयः—गुणरत्ननिधिः, सज्जनदुःखानाम्, उत्तरणसेतुः, असुवर्णम्, **मण्डनकम्**, एषः, अद्य, नगरीतः, अपनीयते ।। १४ ।।

आमन्त्रित जनों से भरे यज्ञमण्डपों में वैदिक ऋचाओं के साथ उद्घोषित हो चुका है, वही मेरा कुल मेरी मरणावस्था में पापी एवं अयोग्य चाण्डालों के द्वारा घोषणा में पुकारा जा रहा है ।। १२ ।।

(**ऊपर की ओर देखकर, कान मूँदकर**) हा प्रिये वसन्तसेने,

ओ चन्द्रमा की निर्मल किरणों की तरह श्वेत दांतों वाली, मनोरम मूँगे की तरह लाल लाल ओठों वाली, प्रियतमे, तुम्हारे मुख रूपी अमृत का पान कर चुकने पर इस समय असहाय होकर मैं कैसे अपयश रूपी जहर पी रहा हूँ ।। १३ ।।

दोनों चाण्डाल—हटिए, सज्जनों, दूर हटिए ।

[एष गुणरत्ननिधिः सज्जनदुःखानामुत्तरणसेतुः ।
असुवर्णमण्डनकम् अपनीयतेऽद्य नगरीतः ॥]

अण्णं च [अन्यच्च]—

शव्वे क्खु होइ लोए लोओ शुहशंठिदाणं तत्तिल्ला ।
विणिबडिदाणं णलाणं पिअकाली दुल्लहो होदि ॥ १५ ॥

[सर्वः खलु भवति लोके लोकः सुखसंस्थितानां चिन्तायुक्तः ।
विनिपतितानां नराणां प्रियकारी दुर्लभो भवति ॥]

चारुदत्तः—(सर्वतोऽवलोक्य)

अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः प्रयान्ति मे दूरतरं वयस्याः ।
परोऽपि बन्धुः समसंस्थितस्य मित्रं न कश्चिद्विषमस्थितस्य ॥ १६ ॥

एष इति । गुणरत्ननिधिः—गुणाः=दयादाक्षिण्यादिगुणाः, एव रत्नानि=मणयः, तेषाम् निधिः=सागरः, तथा सज्जनानाम्=साधूनाम्, दुःखानि=कष्टानि तेषां उत्तरणे=लङ्घने, सेतुः=आलिः, असुवर्णमण्डनम्—न विद्यत सुवर्णम्=कनकम्, मण्डनम् आभूषणम् यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात्तथा अपनीयते=दूरीक्रियते, एषः=चारुदत्तः, अद्य=अस्मिन् दिने, नगरीतः=उज्जयिनीनगर्याः, अपनीयते=अपसार्यते । रूपकालङ्कारः, आर्या वृत्तञ्चेति ॥ १४ ॥

अन्वयः—लोके, सर्वः, लोकः, खलु, सुखसंस्थितानाम्, चिन्तायुक्तः, भवति, किन्तु, विनिपतितानाम्, नराणाम्, प्रियकारी, दुर्लभः, भवति ॥ १५ ॥

सर्व इति । लोके=संसारे, सर्वः=सकलः, लोकः=जनः, खलु=निश्चयेन सुखसंस्थितानाम्=ससुखानाम्, चिन्तायुक्तः=शुभचिन्तनपरायणः, भवति=याति, किन्तु, विनिपतितानाम्=विपन्नानाम्, नराणाम्=मनुष्याणाम्, प्रियकारी=शुभाकांक्षी, दुर्लभः=दुःखेन लब्धुं योग्यः, भवति=जायते । अप्रस्तुतप्रशंसालङ्कारः, गाथा वृत्तञ्चेति ॥ १५ ॥

चारुदत्तः—सर्वतः=चतुर्दिक्, अवलोक्य=दृष्ट्वा ।

अन्वयः—अमी, मे, वयस्याः, वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः, हि, दूरतरम्, प्रयान्ति । सुखसंस्थितस्य, परः, अपि, बन्धुः, विषमस्थितस्य, कश्चित्, मित्रम्, न, भवति ॥१६॥

अमीति । अमी=दूरतः परिदृश्यमानाः, मे=मम, वयस्याः=सुहृदः, वस्त्रान्त-

---

दया, क्षमा प्रभृति गुणों का खजाना, सज्जनों को दुःखरूपी सागर पार कराने में सेतु के सदृश, ये चारुदत्त, इस नगरी के आभूषण होकर भी नगरी से दूर हटाये जा रहे हैं ॥ १४ ॥

और भी—इस संसार में सभी लोग सम्पन्न लोगों के ही शुभचिन्तक होते हैं; विपन्नों के शुभाकाङ्क्षी तो दुर्लभ ही होते हैं ॥ १५ ॥

चारुदत्त—(चारों ओर देखकर) ये मेरे मित्रगण भी कपड़ों में मुँह छिपाकर

चाण्डालौ—ओशालणं किदं, विवित्तं लाअमग्गं, ता आणेध एदं दिण्ण-वज्झचिण्हं। [**अपसारणं कृतम्, विविक्तो राजमार्गः, तदानयतैनं दत्तवध्यचिह्नम्।**]

(चारुदत्तः निःश्वस्य 'मैत्रेय भोः! किमिदमद्य···' इत्यादि पठति।)

(नेपथ्ये) हा ताद! हा पिअवअस्स! [**हा तात! हा प्रियवयस्य।**]

चारुदत्तः—(आकर्ण्य सकरुणम्) भोः स्वजातिमहत्तर! इच्छाम्यहं भवतः सकाशात् प्रतिग्रहं कर्त्तुम्।

चाण्डालौ—किं अम्हाणं हत्थादो पडिग्गहं कलेशि? [**किमस्माकं हस्तात् प्रतिग्रहं करोषि?**]

निरुद्धवक्त्राः=पटाञ्चलाच्छादितमुखाः, हीति निश्चयेन, दूरतरम्=अतिदूरम्, प्रयान्ति =गच्छन्ति, विषमस्थितस्य=विपन्नावस्थाप्राप्तस्य, कश्चित्=कोऽपि, मित्रम्=सुहृत्, न=नहि, भवति=जायते। अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, उपजातिर्वृत्तम्॥ १६॥

चाण्डालौ—अपसारणं कृतम्=दूरीकृतं जनम्, विविक्तः=विजनः 'विविक्तौ पूतविजनौ' इत्यमरः। राजमार्गः=राजपथः, तत्=तस्मात्, आनय=उपस्थापय, एनम्=चारुदत्तम्, दत्तवध्यचिह्नम्=प्रदत्तकरवीरदामादिकम्।

(चारुदत्तः निःश्वस्य=दीर्घश्वासं गृहीत्वा, 'मैत्रेय भो, किमिदमद्य···' इत्यादि पूर्वपठितश्लोकं पठति।)

(नेपथ्ये) 'हा तात्' इति चारुदत्तपुत्ररोहसेनस्योक्तिः, 'हा प्रियवयस्य' इति विदूषकोक्तिः।

चारुदत्तः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा, सकरुणम्=सदयम्, भोः इति सम्बोधने, स्वजाति-महत्तर—स्वजातिषु=चाण्डालवर्गेषु, महत्तरः=अतिमहान्, अहम्=चारुदत्तः, भवतः =तव, सकाशात्=समीपात्, प्रतिग्रहम्=दानम्, अनुग्रहं वा कर्त्तुम्=स्वीकर्त्तुम्, इच्छामि=अभिलषामि।

चाण्डालौ—किमिति प्रश्ने, अस्माकम्=नः, हस्तात्=करात्, प्रतिग्रहं करोषि= दानस्वीकरणं करोषि।

मुझसे दूर हट रहे हैं। सम्पन्नावस्था में अनात्मीयगण भी बन्धु बन जाते हैं किन्तु विपत्ति आने पर अपने मित्र भी बन्धुवत् व्यवहार नहीं करते हैं॥ १६॥

दोनों चाण्डाल—लोगों को रास्ते से अलग हटा दिया गया। सड़क खाली हो गई। शूली पर चढ़ाये जाने के पूर्व धारण करने वाली वस्तुओं से सजाकर अब चारुदत्त को वधस्थल पर ले आओ।

(चारुदत्त गहरी साँस खींच कर 'मैत्रेय, भो किमिदमद्य···' इत्यादि दुहराता है।)

(नेपथ्य में) हा तात, हा प्रिय मित्र,

चारुदत्त—(**सुनकर, अतिदीन भाव से**) अरे ओ चाण्डालों के प्रमुख, मैं तुमसे कुछ प्रतिग्रह चाहता हूँ?

दोनों चाण्डाल—क्या हमारे हाथ से प्रतिग्रह लोगे?

चारुदत्तः—शान्तं पापम् । नापरीक्ष्यकारी दुराचारः पालक इव चाण्डालः। तत् परलोकार्थं पुत्रमुखं द्रष्टुमभ्यर्थये ।

चाण्डालौ—एव्वं कलीअदु । [एवं क्रियताम् ।]

(नेपथ्ये)

हा ताद ! हा आवुक ! [हा तात ! हा आवुक !]

(चारुदत्तः श्रुत्वा सकरुणम् । 'भोः स्वजातिमहत्तर !···'इत्यादि पठति ।)

चाण्डालौ—अले पउला ! खणं अन्तलं देध । एशे अज्जचालुदत्ते पुत्तमुहं पेक्खदु । (नेपथ्याभिमुखम्) अज्ज इदो इदो । आअच्छ ले दालआ ! आअच्छ। [अरे पौराः ! क्षणमन्तरं दत्त । एष आर्यचारुदत्तः पुत्रमुखं प्रेक्षताम् । आर्य ! इत इतः । आगच्छ रे दारक ! आगच्छ ।]

(ततः प्रविशति दारकमादाय विदूषकः ।)

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु भद्दमुहो, पिदा दे मारिदुं णीअदि । [त्वरतां त्वरतां भद्रमुख ! पिता ते मारयितुं नीयते ।]

चारुदत्तः—शान्तं पापम्=नैतद्वाच्यमिति, अपरीक्ष्यकारी=अविमृश्यकारी, दुराचारः=दुष्टाचारः, पालक इव=नृपपालकवत्, चाण्डालः=हतकः, अपि न=नहि । तत्=तर्हि, परलोकार्थम्=परलोके शुभगतिप्राप्त्यर्थम्, पुत्रमुखम्=तनयाननम्, द्रष्टुम्=अवलोकयितुम्, अभ्यर्थये=प्रार्थनां करोमि ।

चाण्डालौ—एवं=यथोक्तं तथैव, क्रियताम्=विधीयिताम् ।

(नेपथ्ये) हा तात=हा पितः, हा आवुक=हा जनक ।

(चारुदत्त श्रुत्वा=आकर्ण्य, सकरुणम्=सखेदम्, 'भो स्वजाति···'इत्यादि पुनः पठति ।)

चाण्डालौ—अरे पौराः=नागरिकाः, क्षणम्=मुहूर्त्तम्, अनन्तरम्=आगमनायावकाशम्, दत्त=प्रदानं कुरुत, एष=पुरोवर्ती, पुत्रमुखम्=दारकाननम्, प्रेक्षताम्=अवलोकयताम् । (नेपथ्याभिमुखम्=वेशरचनागृहाभिमुखम्) आर्य=हे मान्य, इत इतः=अस्यां दिशि, आगच्छ=समागच्छ, रे दारक=बालक ।

(ततः=तत्पश्चात्, दारकम्=बालकम्, आदाय=नीत्वा, विदूषकः=मैत्रेयः ।)

चारुदत्त—हाय, हाय, ऐसा मत कहो, अविचारी एवं दुराचारी राजा पालक की तरह कम से कम चाण्डाल होकर भी तुम लोग वैसे नहीं हो । मैं परलोक के लिए इस अन्तिम क्षण में अपने पुत्र का मुँह देखने की प्रार्थना करता हूँ ।

दोनों चाण्डाल—आप ऐसा ही कीजिए ।

(नेपथ्य में) हे तात, हे जनक ।

(**चारुदत्त सुनकर करुणापूर्वक** 'भोः स्वजाति महत्तर···' **इत्यादि पढ़ता है ।**)

दोनों चाण्डाल—ओ नगरवासियों, राह छोड़ो, आर्य चारुदत्त अपने पुत्र से भेंट करना चाहते हैं । (**नेपथ्य की ओर देखकर**) आर्य इधर से, आओ रे बालक आओ ।

(**इसके बाद बालक को लेकर विदूषक का प्रवेश ।**)

दारकः—हा ताद ! हा आवुक ! [**हा तात ! हा आवुक !**]

विदूषकः—हा पिअवअस्स ! कहिं मए तुमं पेक्खिदव्वो ? [**हा प्रियवयस्य ! कस्मिन् मया त्वं प्रेक्षितव्यः ?**]

चारुदत्तः—(पुत्रं मित्रञ्च वीक्ष्य) हा पुत्र ! हा मैत्रेय ! (सकरुणम्) भोः ! कष्टम् ।

चिरं खलु भविष्यामि परलोके पिपासितः ।
अत्यल्पमिदमस्माकं निवापोदकभोजनम् ।। १७ ।।

किं पुत्राय प्रयच्छामि ? (आत्मानमवलोक्य । यज्ञोपवीतं दृष्ट्वा) आं, इदं तावदस्ति मम च ।

विदूषकः—त्वरताम्=शीघ्रं क्रियताम्, भद्रमुखः=कल्याणकारकं मुखं यस्य सः, चारुदत्तसुतः, ते=तव, पिता=जनकः, मारयितुम्=हन्तुम्, नीयते=नीत्वा गम्यते ।

दारकः—हा तात=हा इति खेदे, तात=पितः, हा आवुक=जनक 'अथावुकः पिता' इत्यमरः ।

विदूषकः—हा प्रियवयस्य=प्रियमित्र, कस्मिन्=स्थानविशेषे, मया=विदूषकेण, त्वम्=चारुदत्तः, प्रेक्षितव्यः=पुनः अवलोकनीयः । अस्मिन् संसारे न कदाचिदपि, इति तात्पर्यः ।

चारुदत्तः—(पुत्रम्=सुतम्, मित्रम्=सुहृदम्, च=पुनः, वीक्ष्य=अवलोक्य) हा पुत्र=हा सुत, हा मैत्रेय=विदूषक ! (सकरुणम्=करुणया सहितम्) भो कष्टम्=दुःखम् ।

अन्वयः—परलोके, खलु, चिरम्, पिपासितः, भविष्यामि, (यतः) अस्माकम्, निवापोदकभोजनम्, इदम्, अत्यल्पम्, (अस्ति) ।। १७ ।।

चिरमिति । अहम् परलोके=अन्यस्मिन् लोके, खलु=निश्चितम्, चिरम्=बहुकालपर्यन्तम्, पिपासितः=सतृष्णः, भविष्यामि=निवसिष्यामि, तर्पणाभावात्, यतः, अस्माकम्=मम वंशीयानाम्, निवापोदकभोजनम्=पितृतर्पणसलिलपानम्, इदम्=एतदपत्यम्, अत्यल्पम्=स्तोकम्, अस्ति । अत्र काव्यालिङ्गमलङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ।। १७ ।।

किमिति जिज्ञासायाम्, पुत्राय=सुताय, प्रयच्छामि=ददामि । (आत्मानम्=

विदूषक—हे बालक जल्दी करो, तुम्हारे पिता को वध करने के निमित्त ले जाया जा रहा है ।

बालक—हा तात, हा पिताजी !

विदूषक—हा प्रिय मित्र, अब मैं तुम्हें कहाँ देख सकूँगा ?

चारुदत्त—**(अपने बेटे और मित्र की ओर देखकर)** हा प्रिय पुत्र, हा मित्र मैत्रेय ! **(करुणापूर्वक)** हा खेद है—

परलोक में अभी बहुत दिनों तक मुझे प्यासा ही रहना पड़ेगा । क्योंकि पितृतृप्तिहेतु जलाञ्जलि देने वाला मेरा यह पुत्र अभी सात साल का बच्चा है ।। १७ ।।

अमौक्तिकमसौवर्णं ब्राह्मणानां विभूषणम् ।
देवतानां पितृणाञ्च भागो येन प्रदीयते ।। १८ ।।

(इति यज्ञोपवीतं ददाति ।)

चाण्डालः—आअच्छ ले चालुदत्ता ! आअच्छ । [आगच्छ रे चारुदत्त ! आगच्छ ।]

द्वितीयः—अले ! अज्जचालुदत्तं णिलुववदेण णामेण आलवशि ? । अले ! पेक्ख । [अरे ! आर्यचारुदत्तं निरुपपदन नाम्ना आलपसि ? अरे पश्य ।]

अब्भुदए अवशाणे तहे अ लत्तिन्दिवं अहदमग्गा ।
उद्दामे व्व किशोली णिअदी क्खु पडिच्छिदं जादि ।। १९ ।।

स्वम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा, यज्ञोपवीतम्=द्विजायनीम्,) आं=अस्तु, स्मरणार्थमिदमव्ययम्, इदम्=यज्ञोपवीतम्, तावदित्यवधारणे, मम च=चारुदत्तस्य च, अस्ति=देयमस्ति ।

अन्वयः—अमौक्तिकम्, असौवर्णम्, ब्राह्मणानाम्, विभूषणम्, येन देवतानाम्, पितृणाम्, च, भागः, प्रदीयते ।। १८ ।।

अमौक्तिकमिति । इदं यज्ञोपवीतम्, अमौक्तिकम्=मुक्ताभिरनिर्मितम्, असौवर्णम्=न कनकघटितम्, ब्राह्मणनाम्=द्विजानाम्, विभूषणम्=विशिष्टालङ्कारम्, येन=यज्ञोपवीतेन, देवतानाम्=सुराणाम्, पितृणाम्=अग्निष्वात्तादीनाञ्च, भागः=अंशः, देवबलिः=पितृपिण्डादिकञ्चेति, प्रदीयते=समर्प्यते । उपवीतिना ब्राह्मणेनैव देवपितृकार्ये चाधिकार विहितः नान्यथेति । उक्तञ्च—

'प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा ।
पित्र्यमानिधनात्कार्यं विधिवद्दर्भपाणिना' ।। १८ ।।

(इति=एवमुक्त्वा, यज्ञोपवीतम्=सावित्रीब्रह्मसूत्रम्, ददाति ।)

चाण्डालः—आगच्छ=अत्रागम्यताम् ।

द्वितीयकः—अरे=इत्याश्चर्यम्, आर्यचारुदत्तम्=एतदाख्यम्, निरुपपदेन=उपाधिशून्येन, नाम्ना=मात्रसंज्ञया, आलपसि=वदसि ।

अन्वयः—अभ्युदये, अवसाने, तथैव, रात्रिन्दिवं, अहतमार्गा, नियतिः, उद्दामा, किशोरी, इव, खलु, प्रतीष्टम्, याति ।। १९ ।।

मैं पुत्र के लिए क्या दूं ? (**अपनी देह पर दृष्टि डालकर तथा जनेऊ देखकर**) अच्छा यह तो मेरे पास है ।

बिना मोती और सोने का यह जनेऊ ही ब्राह्मणों का असली आभूषण है । इससे देवताओं तथा पितरों का भाग दिया जाता है ।। १८ ।।

(**जनेऊ देता है ।**)

चाण्डाल—आओ चारुदत्त इधर आओ ।

दूसरा चाण्डाल—अरे बिना उपाधि के ही चारुदत्त का नाम पुकार रहे हो ?

[अभ्युदयेऽवसाने तथैव रात्रिन्दिवमहतमार्गा ।
उद्दामेव किशोरी नियतिः खलु प्रतीष्टं याति ॥]

अण्णं च [अन्यच्च]—

शुक्खा ववदेशा शे किं पणमिअ मत्थए ण कादव्वं ।
लाहुगहीदे वि चन्दे ण वन्दणीए जणपदश्श ? ॥ २० ॥

[शुष्का व्यपदेशा अस्य किं प्रणम्य मस्तके न कर्त्तव्यम् ।
राहुगृहीतोऽपि चन्द्रो न वन्दनीयो जनपदस्य ? ॥]

दारकः—अरे रे चाण्डाला ! कहिं मे आवुकं णेध ? [अरे रे चाण्डालाः कुत्र मम पितरं नयत ?]

अभ्युदय इति । अभ्युदये=सम्पन्नावस्थायाम्, अवसाने=अभ्युदयावसाने, तथैव=तेनैव प्रकारेण, रात्रिन्दिवम्=अहोरात्रम्, अहतमार्गा=अप्रतिहतगतिः, नियतिः=प्रकृतिः, भाग्यं वेति, उद्दामा=स्वच्छन्दगमना, किशोरी=सद्यःप्राप्तयौवना, इव=यथा, खलु=निश्चितम्, प्रतीष्टम्=यथेष्टम्, याति=गच्छति, पक्षे—उद्दामा=उन्मुक्तम्, दाम=बन्धनम् यस्या सा, किशोरी=हस्तिनी, इव, पाठान्तरे, प्रत्येषितुम्=प्रत्येकं गजं स्वीकर्त्तुम् अथवा आलिङ्गितुम्, याति=गच्छति । अत्र श्रौती उपमा, आर्या जातिः ॥ १९ ॥

अन्वयः—व्यपदेशाः, शुष्काः, तस्य, प्रणम्य, मस्तके, न, कर्त्तव्यम्, किम्, राहुगृहीतः, अपि, चन्द्रः, जनपदस्य, न, वन्दनीयः ॥ २० ॥

शुष्का इति । व्यपदेशाः=कपटस्वरूपाः, शुष्काः=मिथ्याभूताः, अस्य=चारुदत्तस्य कुलशीलादिकम्, प्रणम्य=नत्वा, मस्तके=शिरसि, न कर्त्तव्यम्=न धार्यमिति, पाठान्तरे—अस्य चारुदत्तस्य प्रदेशाः=यशोनामादयः अङ्गानि, शुष्काः=शुष्कताम् प्राप्ताः, अतः, विनमितमस्तकेन=अवनतशिरसा, किम्=किम् फलमिति भावः ? राहुगृहीतः=विधुन्तुद-ग्रस्तः, अपि चन्द्रः=विधुः, जनपदस्य=जनपदवासिनः लोकस्य, न वन्दनीयः=नाभिनन्दनीयः अपितु वन्दनीय एव । अत्र "शुष्का अपि प्रदेशा अङ्गानि, किं विनमितमस्तकेन=अवनतशिरसा किं कर्त्तव्यम् । अस्य स्त्रीहननस्य लज्जया नतशिरसोऽपि न कुत्सेत्यर्थः ।" इति पृथ्वीधरः । अत्र दृष्टान्तालङ्कारः, आर्यावृत्तञ्चेति ॥ २० ॥

बालकः—अरे रे=इति सम्बोधने, चाण्डालाः=मातङ्गाः, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, मम पितरं=जनकं, नयत=नीत्वा गच्छथ ।

उन्नति हो या अवनति, देखते नहीं दिन रात की गति अप्रतिहत रहती है । ठीक इसी तरह उन्मुक्तबन्धना यौवनसम्पन्ना हस्तिनी की तरह नियति नटी भी स्वच्छन्द गति से चलती है । इसकी गति दुर्निवार है ॥ १९ ॥

और भी—असत्य दोषारोपण के कारण आर्य चारुदत्त के कुलशील क्या प्रणम्य नहीं हैं ? राहुग्रसित चन्द्रमा क्या जनता द्वारा पूजनीय नहीं होता ? ॥ २० ॥

बालक—अरे चाण्डालो, मेरे पिताजी को तुमलोग कहाँ लिए जा रहे हो ?

चारुदत्तः—वत्स !

अंसेन बिभ्रत् करवीरमालां स्कन्धेन शूलं हृदयेन शोकम् ।
आघातमद्याहमनुप्रयामि शामित्रमालब्धुमिवाध्वरेऽजः ॥ २१ ॥

चाण्डालः—दालआ ! [दारक !]

ण हु अम्हे चाण्डाला चाण्डालउलम्मि जादपुव्वा वि ।
जे अहिभवन्ति शाहुं ते पावा ते अ चाण्डाला ॥ २२ ॥
[न खलु वयं चाण्डालाश्चाण्डालकुले जातपूर्वा अपि ।
येऽभिभवन्ति साधुं ते पापास्ते च चाण्डालाः ॥]

दारकः—ता कीस मारेध आवुकं ? [तत् केन मारयत आवुकम् ?]

चारुदत्तः—वत्स=हे पुत्र,

अन्वयः—अंसेन, करवीरमालाम्, स्कन्धेन, शूलम्, हृदयेन, शोकम्, बिभ्रत्, अहम्, अध्वरे, आलब्धुम्, शामित्रम्, अजः, इव, अद्य, आघातम्, अनुप्रयामि ॥ २१ ॥

अंसनेति । अंसेन=गलेन, करवीरमालाम्=एतदाख्यसुमनस्रजम्, स्कन्धेन=अंसेन, शूलम्=लोहफलकम्, हृदयेन=चित्तेन, शोकम्=मृत्युजनिताम्, चिन्ताम्, बिभ्रत्=वहन्, अहम्=चारुदत्तः, अध्वरे=यागे, आलब्धुम्=हन्तुम्, शामित्रम्=पशुवध्यस्थानम्, अजः=छागः, इव=यथा, आघातम्=प्रहारम्, अद्य=अधुना, अनुप्रयामि=अनुगच्छामि । अत्र तुल्ययोगिता श्रौती उपमयोश्च परस्परनैरयेक्ष्येण संसृष्टिरलङ्कारः, इन्द्रवज्रावृत्तञ्चेति ॥ २१ ॥

चाण्डालः—दारक=हे बालक,

अन्वयः—चाण्डालकुले, जातपूर्वाः, अपि, वयम्, खलु, चाण्डालाः, न, ये, साधुम्, अभिभवन्ति, ते, पापाः, ते, चाण्डालाः, च ॥ २२ ॥

न खल्विति । चाण्डालकुले=अन्त्यजवंशे, जातपूर्वाः=प्राप्तजन्मानः, अपि=चेत्, वयम्=चारुदत्तं नीयमानाः, खलु=निश्चयेन, चाण्डालाः=वधिकाः, न=नहि, जन्मना चाण्डालाः सन्तोऽपि कार्येण न वयम् चाण्डालाः, यतः ये=जनाः, साधुम्=सज्जनम्, अभिभवन्ति=पीडयन्ति, ते=पालक-शकारादयः, पापाः=पापिनः, चाण्डालाः=कर्मणा चाण्डालपदवाच्याश्चेति । विशेषोक्तिरलङ्कारः, आर्या जातिश्चेति ॥२२॥

दारकः—तत्=तर्हि, केन=पुरुषेण, आवुकम्=पितरम्, मारयत ।

चारुदत्त—बेटे,

कंठ में कनेर की माला, कंधे पर शूल, हृदय में शोक लेकर यज्ञ के बलिदानी बकरे की तरह मैं मारे जाने के लिए बधस्थल की ओर इन चाण्डालों के पीछे-पीछे चल रहा हूँ ॥ २१ ॥

चाण्डाल—बालक,

चाण्डाल कुल में जन्म लेकर भी हम लोग चाण्डाल नहीं हैं, असली चाण्डाल तो वे हैं जो अकारण सज्जनों को सताते हैं; वे ही पापकर्मी है ॥ २२ ॥

बालक—तब मेरे पिता को कौन मारता है ?

चाण्डालः—दीहाओ ! अत्त लाअणिआओ क्खु अवलज्झदि, ण क्खु अम्हे । [दीर्घायुः ! अत्र राजनियोगः खलु अपराध्यति, न खलु वयम् ।]

दारकः—वावादेध मं । मुञ्चध आवुकं । [व्यापादयत माम्, मुञ्चत आवुकम् ।]

चाण्डालः—दीहाओ ! एवं भणन्ते चिलं मे जीव । [दीर्घायुः ! एवं भणन् चिरं मे जीव ।]

चारुदत्तः—(सास्रं पुत्रं कण्ठे गृहीत्वा)

> **इदं तत् स्नेहसर्वस्वं सममाढ्यदरिद्रयोः ।**
> **अचन्दनमनौशीरं हृदयस्यानुलेपनम् ॥ २३ ॥**

('अंसेन बिभ्रत्...' इत्यादि पुनः पठति । अवलोक्य स्वगतम् । 'अमी हि वस्त्रान्तनिरुद्धवक्त्राः...' इत्यादि पुनः पठति ।)

चाण्डालः—दीर्घायुः=चिरञ्जीविन्, अत्र=तव पितुः मारणरूपे कार्ये, राजनियोगः=नृपादेशः, खलु=निश्चयेन, अपराध्यति=अपराधी अस्ति, न=नहि, वयम्=चाण्डालाः ।

दारकः—व्यापादयत=मारयत, माम्=चारुदत्तसुतम्, आवुकम्=पितरम्, मुञ्चत=त्यजत ।

चाण्डालः—दीर्घायुः=चिरञ्जीविन्, एवम्=इत्थम्, भणन्=कथयन्, चिरम्=दीर्घकालपर्यन्तम्, जीव ।

चारुदत्तः—(सास्रम्=सजलनेत्रम्, पुत्रम्=सुतम्, कण्ठे गृहीत्वा=आश्लिष्य)

अन्वयः—इदम्, आढ्यदरिद्रयोः, समम्, तत्, स्नेहसर्वस्वम्, अचन्दनम्, अनौशीरम्, हृदयस्य, अनुलेपनम्, (अस्ति) ॥ २३ ॥

इदमिति । इदम्=सुतस्वरूपम् वस्तु, आढ्यदरिद्रयोः=धनिकनिर्धनयोः, समम्=तुल्यम्, तत्=निरुपमम्, स्नेहसर्वस्वम्=प्रेम्णः प्राणभूतम्, अचन्दनम्=चन्दनसम्पर्कशून्यम्, अनौशीरम्=उशीरसंयोगशून्यम्, हृदयस्य=चित्तस्य, अनुलेपनम्=विलेपनम्, अस्तीति भावः । अत्र रूपकालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ २३ ॥

(अंसेन बिभ्रत्...'इत्यादि (१०।२१) पुनः पठति, अवलोक्य=दृष्ट्वा, स्वगतम्, अमी हि...'इत्यादि (१०।१६) पुनः पठति; पूर्वं व्याख्यातमेव)

चाण्डाल—हे दीर्घायु, इसका अपराधी तो राजा पालक का आदेश है, हम नहीं ।

बालक—तो फिर इनके बदले मुझे मार डालो, इन्हें छोड़ दो ।

चाण्डाल—चिरञ्जीविन्, ऐसा बोलते हुए तुम बहुत दिनों तक जीओ ।

चारुदत्त—(आंसू भरे आँखों वाले बेटे को गले लगा लेता है ।)

बेटे का यह प्रेम धनी और गरीब सबों के लिए समान सर्वस्व है । यह बिना चन्दन और खश का भी हृदय का शीतल लेप है ॥ २३ ॥

('अंसेन बिभ्रत...' इत्यादि श्लोक फिर से पढ़ता है, देखकर, मन ही मन 'अमी हि वस्त्रान्त...' इत्यादि श्लोक दुहराता है ।)

विदूषकः—भो भद्दमुहा ! मुञ्चध पिअवअस्सं चालुदत्तं, मं वावादेध। **[भो भद्रमुखौ ! मुञ्चत प्रियवयस्यं चारुदत्तम्, मां व्यापादयतम् ।]**

चारुदत्तः—शान्तं पापम् । (दृष्ट्वा, स्वगतम् ।) अद्यावगच्छामि । ('समसंस्थित···' इत्यादि पठति । प्रकाशम् । 'एताः पुनर्हर्म्यगताः स्त्रियो माम्...' इत्यादि पुनः पठति ।)

चाण्डालः—ओशलध अज्जा ! ओशलध । **[अपसरत आर्याः ! अपसरत ।]**

किं पेक्खध शप्पुलिशं अजशवशेण प्पणट्ठजीवाशं ।
कूवे खण्डिदपाशं कञ्चणकलशं विअ डुब्बन्तं ।। २४ ।।
[किं प्रेक्षध्वे सत्पुरुषम् अयशोवशेन प्रनष्टजीवाशम् ।
कूपे खण्डितपाशं काञ्चनकलशमिव मज्जन्तम् ।।]

(चारुदत्तः सकरुणम् । 'शशिविमलमयूखम्···' इत्यादि पठति ।)

विदूषकः—भो भद्रमुखौ—भद्रम्=कल्याणकरम् मुखम्=आननम्, ययोस्तौ तत्सम्बुद्धौ, मुञ्चत=त्यजत, प्रियवयस्यम्=प्रियमित्रं, चारुदत्तम्, माम्=तस्य स्थाने माम् विदूषकम्, व्यापादयतम्=मारयतम्,

चारुदत्तः—शान्तम् पापम्='मत्स्थाने विदूषक एव म्रियताम्' इति महदनुचितमिति भावः । (दृष्ट्वा=अवलोक्य, स्वगतम्=आत्मगतम्) अद्य=अधुना, अवगच्छामि=जानामि । ('समसंस्थितस्य···'इत्यादि (१०।१६,) पठति, प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्–'एताः···' इत्यादि (१०।११,) पुनः पठति ।)

चाण्डालः—अपसरत=दूरं गच्छत, आर्याः=मान्याः,

अन्वयः—खण्डितपाशम्, कूपे, मज्जन्तम्, काञ्चनकलशम्, इव, अयशोवशेन, प्रनष्टजीवाशम्, सत्पुरुषम्, किम्, प्रेक्षध्वे ? ।। २४ ।।

किमिति । खण्डितपाशम्=त्रुटितोद्वहनसूत्रम्, कूपे=उदपाने, मज्जन्तम्=ब्रुडन्तम्, काञ्चनकलशम्=कनकघटम्, इव=यथा, अयशोवशेन=वसन्तसेनाहत्यात्मकलाञ्छनेन, प्रनष्टजीवाशम्=दूरीभूतजीवनाशम्, सत्पुरुषम्=साधुजनं चारुदत्तम्, किम्=कथम्, प्रेक्षध्वे=पश्यथ ? अत्र श्रौती उपमा, आर्याजातिश्च ।।२४।। (चारुदत्तः, सकरुणम्=सदयम् 'शशिविमलमयूख—'' इत्यादि (१०।१३) पठति ।)

विदूषक—हे भद्रमुख, मेरे प्रिय मित्र चारुदत्त को छोड़ दो और इनके बदले मेरा ही वध करो ।

चारुदत्त—ऐसा कभी मत कहना । **(देखकर, मन ही मन)** आज समझ रहा हूँ । ('समसंस्थितः···' **इत्यादि पुनः पढ़ता है । प्रकट ।** 'एताः पुनर्हर्म्य···'**इत्यादि पुनः पढ़ता है ।)**

चाण्डाल—राह दीजिए राह, सज्जनो आप लोग हटें ।

रस्सी टूट जाने पर कुँए में गिरते कनक घट की तरह निष्कलंक, जीने की आशा शून्य इस साधु चारुदत्त को आँखें फाड़कर आप लोग क्या देख रहे हैं ? ।।२४।।

(चारुदत्त कारुणिक स्थिति में 'शशिविमलमयूख···'इत्यादि श्लोक दुहराता है ।)

अपरः—अले ! पुणो वि घोशेहि । [अरे ! पुनरपि घोषय ।]

(चाण्डालस्तथा करोति ।)

चारुदत्तः—

प्राप्तोऽहं व्यसनकृशां दशामनार्यां
यत्रेदं फलमपि जीवितावसानम् ।
एषा च व्यथयति घोषणा मनो मे
श्रोतव्यं यदिदमसौ मया हतेति ॥ २५ ॥

(ततः प्रविशति प्रासादस्थो बद्धः स्थावरकः ।)

स्थावरकः—(घोषणामाकर्ण्य, सवैक्लव्यम्) कधं अपावे चलुदत्ते वावादीअदि ! हग्गे णिअलेण शामिणा बन्धिदे । भोदु, आक्कन्दामि । शुणाध अज्जा ! शुणाध, एत्थ दाणिं मए पावेण पवहणपडिवत्तेण पुप्फकलण्डअजिण्णुज्जाणं वशन्तशेणा णीदा । तदो मम शामिणा 'मं ण कामेशि' त्ति कदुअ

अपरः—अरे=इति सम्बोधने, पुनरपि=भूयोऽपि, घोषय=घोषणां कुरु ।

(चाण्डाल तथा=अपरचाण्डालनिर्देशितम्, करोति=विदधति ।)

अन्वयः—अहम्, व्यसनकृशाम्, अनार्याम्, दशाम्, प्राप्तः, यत्र, इदम्, जीवितावसानम्, फलम्, अपि, एषा, च, घोषणा, मे, मनः, व्यथयति, यत्, इदम्, श्रोतव्यम्, असौ, मया, हता, इति ॥ २५ ॥

प्राप्त इति । अहम्=चारुदत्तः, व्यसनकृशाम्—व्यसनेन=विपत्त्या, कृशाम्=हीनाम्, अनार्याम्=साधुजनविगर्हिताम्, दशाम्=स्थितिम्, प्राप्तः=गतः, अस्मि इति शेषः, यत्र=यस्यां स्थित्याम्, इदम्=एतत्, जीवितावसानम्=जीवनहानिरेव, फलम्=परिणामम्, अपि=चेत्, एषा=श्रूयमाणा, घोषणा=उद्घोषः, मे=मम, मनः=चेतः, व्यथयति=पीडयति, यत् इदम्=एतत्, श्रोतव्यम्=श्रवणीयम्, असौ=एषा, मया=चारुदत्तेन, हता=मारिता, इति=एवं स्वरूपेति । प्रहर्षिणीवृत्तम् ॥२५॥

(ततः=तत्पश्चात्, प्रसादस्थः=प्रसादपृष्टे, बद्धः=निगडितः, स्थावरकः।)

स्थावरकः—(घोषणाम्=उद्घोषम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, सवैक्लव्यम्=सविह्वलम्) कथमित्याशङ्कायाम्, अपापः=निरपराधः, चारुदत्तः व्यापाद्यते=हन्तुं नीयते ? अहम्

दूसरा चाण्डाल—अरे ! फिर घोषणा करो ।

(चाण्डाल राजघोषणा फिर दुहराता है ।)

चारुदत्त—शकार के अभियोग रूप विपत्ति के कारण गरीबी से भी बदतर नारी हत्यारा कहलाने की स्थिति में मैं पहुँच गया हूँ, जिसका परिणाम जीवन का अन्त है । 'वसन्तसेना की हत्या मैंने की है' यह घोषणा मेरे हृदय को चोट पहुँचा रही है । ॥ २५ ॥

(इसके बाद कोठे पर बंधे स्थावरक का प्रवेश)

स्थावरक—**(घोषणा सुनकर अतिविह्वल होते हुए)** क्या निरपराध चारुदत्त

बाहुपाशवलक्कालेण मालिदा, ण उण एदिणा अज्जेण। कधं विदूलदाए ण कोवि शुणादि ? ता किं कलेमि ? अत्ताणअं पाडेमि। (विचिन्त्य) जइ एव्वं कलेमि, तदा अज्जचालुदत्ते ण वावादीअदि। भोदु, इमादो पाशादवा-लग्ग-पदोलिकादो एदिणा जिण्णगवक्खेण अत्ताणअ णिक्खिवामि। वलं हग्गे उवलदे, ण उण एशे कुलपुत्तविहगाणं वाशपादवे अज्जचालुदत्ते। एव्वं जइ विवज्जामि, लद्धे मए पललोए। (इत्यात्मानं पातयित्वा) ही ही। ण उवल-दम्हि। भग्गे मे दण्डणिअले। ता चाण्डालघोशं शमण्णेशामि। (दृष्ट्वा, उप-सृत्य) हंहो चाण्डाला ! अन्तलं अन्तलं। [**कथमपापश्चारुदत्तो व्यापाद्यते ? अहं निगडेन स्वामिना बद्धः। भवतु, आक्रन्दामि। शृणुत आर्याः ! शृणुत, अत्र इदानीं मया पापेन प्रवहणपरिवर्तन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं वसन्तसेना नीता, ततो मम स्वामिना 'मां न कामयसी'ति कृत्वा बाहुपाशबलात्कारेण मारिता, न पुनरेतेन आर्येण। कथं विदूरतया न कोऽपि शृणोति ? तत् किं करोमि ? आत्मानं पातयामि। यद्येवं करोमि, तदा आर्य चारुदत्तो न व्यापाद्यते। भवतु, अस्याः प्रासादबालाप्रतोलिकातः एतेन जीर्णगवाक्षेण आत्मानं निक्षिपामि। वरमहमुपरतो न पुनरेष कुलपुत्रविहगानां**

=स्थावरकः, निगडेन=शृंखलया, स्वामिना=शकारेण, बद्धः=संयमितः। भवतु =यातु, आक्रन्दामि=दूरतः आह्वानं करोमि। शृणुत=श्रवणं कुरुत, आर्याः= मान्याः, शृणुत=ध्यानं प्रयच्छत। अत्र=अस्मिन्, इदानीम्=अधुना, मया=शकारेण, पापेन=पापकर्मणा, प्रवहणपरिवर्त्तनेन=यानपरिवर्त्तनेन, वसन्तसेना=एतदाख्यगणिका, नीता=आनीता, ततः=तत्पश्चात्, मम=स्थावरकस्य, स्वामिना=शकारेण, 'माम्= शकारम्, न=नहि, कामयसि=अभिलषसि' इति=इत्थम् कृत्वा=कथयित्वा, बाहुपाश-बलात्कारेण=भुजबन्धनप्रसह्यगमनेन, मारिता=हता, न पुनः=न भूयः, एतेन= पुरोवर्त्तिना, आर्येण=चारुदत्तेन। कथमिति जिज्ञासायाम्, विदूरतया=अतिदूरतया, न कोऽपि=पुरुषविशेषः, शृणोति=आकर्णयति ? तत्=तस्मात्, किमिति=प्रश्ने, करोमि= विदधामि। आत्मानम्=निजशरीरम्, पातयामि=प्रासादात् कूर्दयामि, (विचिन्त्य= किञ्चिद्विचार्य) यदि=चेत्, एवम्=इत्थम्, करोमि=विदधामि, तदा=तर्हि, आर्य चारुदत्तः=मान्य चारुदत्तः, न व्यापाद्यते=न हन्यते, भवतु=यातु, अस्याः=एतस्याः प्रासादबालाग्रप्रतोलिकातः—प्रासादस्य=भवनस्य, यः बालः=नवनिर्मितः, अग्रः

पर हत्या का आरोप कर उसे मारा जा रहा है ? अब मैं क्या करूँ ? शकार ने मुझे बेड़ी से जकड़ दिया है। अच्छा, जोर से चिल्लाता हूँ। अरे ओ महाशयो ! सुनिए, मुझ पापी ने गाड़ी की हेराफेरी के कारण वसन्तसेना को पुष्पकरण्डक नामक पुरानी वाटिका में पहुँचा दिया था। इसके बाद मेरे मालिक शकार ने, 'यह मुझे नहीं चाहती है' यह कहते हुए उसे अपनी बाँहों में जकड़कर गला दबाकर मार डाला है। बेचारा चारुदत्त बिल्कुल निर्दोष है। हाय, दूर होने के कारण मेरी बात कोई सुनता ही नहीं है। तो क्या करूँ? इसी स्थिति में कोठे पर से कूद जाता हूँ। (कुछ सोचकर)

वासपादप आर्यचारुदत्तः । एवं यदि विपद्ये, लब्धो मया परलोकः । ही ही ! नोपरतोऽस्मि । भग्नो मे दण्डनिगडः । तच्चाण्डालघोषं समन्विष्यामि । हंहो चांडालो ! अन्तरमन्तरम् ।]

चाण्डालौ—अले ! के अन्तलं मग्गेदि ? [अरे ! कः अन्तरं मार्गयति ?]

(चेटः 'शुणाध···' इति पूर्वोक्तं पठति ।)

चारुदत्तः—अये !

कोऽयमेवंविधे काले कालपाशस्थिते मयि ।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणमेघ इवोदितः ? ॥ २६ ॥

=ऊर्ध्वभागः, तस्य प्रतोलिकातः=रथ्यातः, एतेन=पुरोवर्त्तिना, जीर्णगवाक्षेण=प्राचीनवातायनेन, आत्मानम्=स्वदेहम्, निक्षिपामि=पातयामि । अहम्=स्थावरकः उपरतः=मृतः, वरम्=श्रेष्ठम्, कुलपुत्राः=कुलीनजनाः, त एव विहगाः=खगाः, तेषाम् वासपादपः=निवासतरुः, एवम्=इत्थं रूपेण, यदि विपद्ये=म्रिये, मया=स्थावरके परलोकः=स्वर्गः, लब्धः=प्राप्तः । (इति=एवं विचार्य, आत्मानम्=निजदेहम्, पातयित्वा=निक्षिप्त्वा) नोपरतोऽस्मि=न मृतोऽस्मि, भग्नः=त्रुटितः, मे=मम, दण्डनिगडः=बन्धनरूपश्रृंखलः, तद्=तर्हि, चाण्डालघोषम्=मातङ्गघोषणशब्दम्, समन्विष्यामि=अन्वेषणं करिष्यामि । (दृष्ट्वा=अवलोक्य, उपसृत्य=समीपं गत्वा) अन्तरम् अन्तरम्=किञ्चिद्देहि ममावकाशम्, किमपि वक्तव्यमस्तीति भावः ।

चाण्डालौ—अरे=इत्याश्चर्यम्, कः=पुरुषः, अनन्तरम्=अवकाशम्, मार्गयति=अन्वेषयति ।

(चेटः, 'श्रृणुत···' इत्यादि पूर्वोक्तं पठति ।)

चारुदत्तः—अये=इत्याश्चर्यसूचकमव्ययम् ।

अन्वयः—अनावृष्टिहते, सस्ये, द्रोणमेघः, इव, मयि, एवंविधे, काले, कालपाशस्थिते, अयम्, कः, उदितः ? ॥ २६ ॥

यदि ऐसा करता हूँ तब चारुदत्त की जान बच सकती है, अच्छा तो कोठे के नये बरामदे की पुरानी खिड़की से कूद जाता हूँ । सज्जनरूपी पक्षियों के आश्रयभूत विशाल वृक्षस्वरूप चारुदत्त की अपेक्षा मेरा मरना ही उचित है । यदि इस तरह मेरी मौत भी होती है तो मेरे लिए स्वर्ग निश्चित है । (**कूद जाता है**) हा, मैं मरा तो नहीं पर मेरी बेड़ी अवश्य टूट गई । कहाँ से घोषणा हो रही है, उसे ही खोजूं (**देखकर तथा वहाँ जाकर**) अरे ओ चाण्डालो रुको, रोको अपनी-अपनी घोषणा को ;

दोनों चाण्डाल—अरे कौन यह अवकाश खोज रहा है ?

(**चेट** 'श्रुणुत आर्याः !···' **इत्यादि पूर्वोक्त बात को फिर से दुहराता है ।**)

चारुदत्त—अरे, अनावृष्टि के कारण सूखती फसलों पर द्रोण नामक मेघ की तरह इस प्रकार की विपत्ति के समय, मौत के जबड़े में फँसे मेरी सहायता के लिए कौन आया है ? ॥ २६ ॥

भोः ! श्रुतं भवद्भिः ?

न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः ।
विशुद्धस्य हि मे मृत्युः पुत्रजन्मसमो भवेत् ॥ २७ ॥

अन्यच्च—

तेनास्म्यकृतवैरेण क्षुद्रेणात्यल्पबुद्धिना ।
शरेणेव विषाक्तेन दूषितेनापि दूषितः ॥ २८ ॥

चाण्डालौ—थावलअ ! अवि शच्चं भणाशि ? [**स्थावरक ! अपि सत्यं भणसि ?**]

फ इति । सस्ये=धान्यादौ, अनावृष्टिहते=अवर्षणेन म्रियमाणे, द्रोणमेघः=सस्यपूरको जलदः, इव=यथा, एवम् विधे=एवं प्रकारे, काले=मरणासन्नसमये, मयि=चारुदत्ते, कालपाशस्थिते=शूलाग्रे हन्तुमुपस्थापिते, अयम्=एषः, कः=जनः, उदितः=आगतः ? उपमालङ्कारः पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ २६ ॥

भोः श्रुतम्=आकर्णितम्, भवद्भिः=श्रीमद्भिः ?

अन्वयः—मरणात् (अहम्) भीतः, न, अस्मि, केवलम्, यशः, दूषितम् । विशुद्धस्य, मे, मृत्युः, हि, पुत्रजन्मसमः, भवेत् ॥ २७ ॥

न भीत इति । मरणात्=मृत्योः, भीतः=भयाक्रान्तः, न=नहि, अस्मि=भवामि, केवलम्=एकमात्रम्, यशः=कीर्त्तिः, दूषितम्=मलिनम् । विशुद्धस्य=वसन्तसेनाहननजन्यकलङ्कशून्यस्य, मे=मम, मृत्युः=मरणम्, पुत्रजन्मसमः=सुतोत्पत्ति-सदृशः, भवेत्=स्यात् । आर्थी उपमा, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—अकृतवैरेण, क्षुद्रेण, अल्पबुद्धिना, दूषितेन, अपि, तेन, विषाक्तेन, शरेण, इव, दूषितः, अस्मि ॥ २८ ॥

तेनेति । अकृतवैरेण=नानुष्ठितवैरभावेन, क्षुद्रेण=नीचेन, अल्पबुद्धिना=क्षीण-विवेकशक्त्या, दूषितेन=स्त्री हत्यापराधिना, अपि=चेत्, तेन=शकारेण, विषाक्तेन=गरललिप्तेन, शरेण=बाणेन, इव=यथा, दूषितः=कलङ्कितः, अस्मि=भवामि । श्रौती उपमा, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ २८ ॥

चाण्डालौ—स्थावरक, अपि=चेत्, सत्यम्=मिथ्यारहितम्, भणसि=कथयसि ?

अजी आप लोगों ने सुना ?

मैं मौत से नहीं डरता हूँ, डर केवल मुझे इस बात का है कि मेरी धवल कीर्त्ति कलंकित हो गई है । यदि आज मेरी मौत निष्कलंक होती तो निश्चय ही मुझे पुत्र जन्म की तरह सुख अनुभूत होता ॥ २७ ॥

और भी—इस दुर्बुद्धि नीच शकार ने मुझसे अकारण बैर ठाना है । वसन्तसेना की हत्या स्वयं कर उसका दोष मुझ पर आरोपित कर दिया है । लगता है जैसे किसी विषैले बाण से सम्पूर्ण शरीर दूषित हो गया हो ॥ २८ ॥

दोनों चाण्डाल—स्थावरक क्या सच कह रहे हो ?

चेटः—शच्चं । हग्गे वि, मा कश्श वि कधइश्शशि त्ति पाशादवालग्ग-पदोलिकाए दण्डणिअलेण वन्धिअ णिक्खित्ते । [सत्यम् । अहमपि, 'मा कस्यापि कथयिष्यसी'ति प्रासादबालाग्र-प्रतोलिकायां दण्डनिगडेन बद्ध्वा निक्षिप्तः ।]

(प्रविश्य)

शकारः—(सहर्षम्)

मंशेण तिक्खामिलकेण भत्ते शाकेण शूपेण शमच्छकेण ।
भूत्तं मए अत्तणअश्श गेहे शालिश्श कूलेण गुलोदणेण ।। २९ ।।

[मांसेन तिक्ताम्लेन भक्तं शाकेन सूपेन समत्स्यकेन ।
भुक्तं मया आत्मानो गेहे शालीयकूरेण गुडौदनेन ।।]

(कर्णं दत्त्वा) भिण्ण-कंश-खङ्खणाए चाण्डालवाआए शलशंजोए जधा अ एशे उक्खालिदे वज्झडिण्डिमशद्दे पडहाणं अ शुणीअदि, तधा तक्केमि, दलिद्द-चालुदत्ताके वज्झट्ठाणं णीअदि त्ति । ता पेक्खिश्शं । शत्तुविणाशे णाम

चेटः—सत्यम्=यथार्थमेव कथयामि । अहमपि=स्थावरकोऽपि । मा कस्यापि कथयिष्यसि=शकारस्योक्तिमनुवदन्नाह—कस्यापि जनस्य समीपे वसन्तसेना वध-वृत्तान्तं न वदिष्यसि, इति=इत्थम् विचार्य, प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायाम्=भव्य-भवननवनिर्मितोर्ध्वरथ्यायाम्, दण्डनिगडेन=बन्धनशृङ्खलया, बध्वा=संयमनङ्कृत्वा, निक्षिप्तः=स्थापितः ।

(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा)

शकार:—(सहर्षम्=सप्रसन्नम्)

अन्वयः—मया, आत्मनः, गेहे, तिक्ताम्लेन, मांसेन, शाकेन, समत्स्यकेन, सूपेन, शालीयकूरेण, गुडौदनेन, भक्तम्, भुक्तम् ।। २९ ।।

मांसेनेति । मया=शकारेण, आत्मनः=स्वस्य, गेहे=सदने, तिक्ताम्लेन=तिक्ताम्लरसान्वितेन, मांसेन=पललेन, शाकेन=सुसंस्कृतपत्रादिना, समत्स्यकेन=मीनसहितेन, सूपेन=द्विदलेन, शालीयकूरेण=शालेर्भक्तेन, गुडौदनेन=गुडमिश्रितौदनेन पायसेनेत्यर्थः, भक्तम्=सुपक्वतण्डुलम्, मया भुक्तम्=भक्षितम् । उपजातिर्वृत्तम् ।।२९।।

(कर्णं दत्वा=श्रवणमुद्रामभिनीय) भिन्नम्=स्फुटितम्, यत् कांस्यम् तद्वत् खङ्खन्या

चेट—हाँ जी, बिल्कुल सच । कहीं इस दुर्घटना का रहस्य मैं किसी दूसरे के सामने खोल न दूँ, इसी के डर से मेरा मालिक शकार मुझे बाँधकर अपने महल की नई प्रतोली में डाल आया था ।

(प्रवेश कर)

शकार—(खुशी के साथ) मैंने अपने घर में शाली चावल का भात और मांस, खट्टा तीता साग, दाल तथा रोहू मछली के साथ काफी गुड़ मिलाकर खूब खाया है ।।२९।।

(कान देकर) फूटे हुए काँसे के वर्तन की तरह खन-खनाने वाली वधिकों की

मम महन्ते हलक्कश्श पलिदोशे होदि । शुदं अ मए, जे वि किल शत्तुं वावाद-अन्तं पेक्खदि तश्श अण्णश्शि जम्मन्तले अक्खिलोगे ण होदि । मए क्खु विश-गण्ठिगब्भपविट्टेण विअ कीडएण किं पि अन्तलं मग्गमाणेण उप्पादिदे ताह दलिद्द-चालुदत्ताह विणाशे । शंपदं अत्तणकेलिकाए पाशादवालग्ग-पदोलि-काए अहिलुहिअ अत्तणो पलक्कमं पेक्खामि । (तथा कृत्वा, दृष्ट्वा च) ही ही ! एदाह दलिद्द-चालुदत्ताह वज्झं णीअमाणाह एवड्ढे जणशम्मद्दे, जं वेलं अम्हालिशे पवले वलमणुश्शे वज्झं णीअदि, तं वेलं कीदिशे भवे ? (निरीक्ष्य) कधं एशे शे णव-वलद्दके विअ मण्डिदे दक्खिणं दिशं णीअदि । अध किं णिमित्तं मम केलिकाए पाशादवालग्गपदोलिकाए शमीवे घोशणा णिवडिदा णिवालिदा अ ? (विलोक्य) कधं थावलके चेडे वि णत्थि इध ? मा णाम तेण इदो गदुअ मन्तभेदे किडे भविश्शदि । ता जाव णं अण्णेशामि । (इत्यवतीर्य उपसर्पति ।) [**भिन्नकांस्यखङ्खनायाश्चाण्डालवाचायाः स्वरसंयोगः । यथा च एष उद्गीतो बध्यडिण्डिमशब्दः पटहानाञ्च श्रूयते, तथा तर्कयामि, दरिद्रचारुदत्तो वध्यस्थानं नीयत इति । तत् प्रेक्षिष्ये । शत्रुविनाशो नाम मम महान् हृदयस्य परितोषो भवति । श्रुतञ्च मया, योऽपि किल शत्रुं व्यापाद्यमानं प्रेक्षते, तस्य अन्यस्मिन् जन्मान्तरे अक्षिरोगो न भवति । मया खलु विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेनेव कीटकेन, किमपि अन्तरं मार्गयता उत्पादितस्तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य विनाशः । साम्प्रतमात्मीयायां प्रासाद-**

खन् खन् इति शब्दायमानायाः, चाण्डालवाचायाः=हतकघोषणायाः, स्वरसंयोगः= ध्वनिसम्बन्धः, यथा=येन प्रकारेण, एषः=असौ, उद्गीतः=उच्चैर्जायमानः, बध्य-डिण्डिमशब्दः=वधार्थनीयमानस्य चर्मनद्धवाद्यविशेषध्वनिः, च=तथा, पटहानाम् =आनकानाम्—'आनकः पटहो स्त्री' इत्यमरः । शब्दः श्रूयते=आकर्ण्यते, तथा= तेन प्रकारेण, तर्कयामि=चिन्तयामि, दरिद्रचारुदत्तः=अकिञ्चनचारुदत्तः, वध्यस्थानम् =मारणभूमिम्, नीयत=नीत्वा गम्यत इति । तत्=तस्मात्, प्रेक्षिष्ये=अवलोकयिष्ये, शत्रुविनाशे=अरिसंहारे, महान्=अतीव, हृदयस्य=चित्तस्य, परितोषः=सन्तुष्टिः, भवति=जायते । श्रुतञ्च=आकर्णितञ्च, मया=शकारेण, योऽपि=यः कोऽपि, शत्रुम् =अरिम्, व्यापाद्यमानम्=हन्यमानम्, प्रेक्षते=दृश्यते, तस्य=पुरुषस्य, अन्यस्मिन् =अपरस्मिन्, जन्मान्तरे=अन्यत् जन्मजन्मान्तरं तस्मिन्, अक्षिरोगः=नेत्रव्याधिः,

---

आवाज सुनाई पड़ रही है । किसी के बधकालीन शोरगुल के साथ नगाड़े की आवाज भी सुनाई पड़ रही है जिससे अन्दाज करता हूँ कि दरिद्र चारुदत्त को बध्य-स्थल की ओर ले जाया जा रहा है । तो इसे मैं देखूंगा, क्योंकि दुश्मन की मौत देखकर मेरे हृदय में बड़ी शान्ति होती है । मैंने सुना भी है कि जो लोग अपने दुश्मन की मौत अपनी आंखों से देखते हैं, उन्हें जन्मान्तर में नेत्ररोग नहीं होता है । जहर की गांठ के भीतर घुसे हुए कीड़े की तरह कोई छेद खोजते हुए मैंने उस

बालाग्र-प्रतोलिकायामधिरुह्य आत्मनः पराक्रमं प्रेक्षे। ही ही ! एतस्य दरिद्रचारुदत्तस्य वध्यं नीयमानस्य एतावान् जनसमर्द्दः; यां वेलामस्मादृशः प्रवरो वरमनुष्यो वध्यं नीयते तां वेलायां कीदृशो भवेत्। कथमेष स नवबलीवर्द्द इव मण्डितो दक्षिणां दिशं नीयते। अथ किं निमित्तं मदीयायाः प्रासाद-बालाग्र-प्रतोलिकायाः समीपे घोषणा निपतिता निवारिता च ? कथं स्थावरकश्चेटोऽपि नास्तीह ? मा नाम तेन इतो गत्वा मन्त्रभेदः कृतो भविष्यति। तद् यावदेनमन्विष्यामि।]

न भवति=न जायते, मया=शकारेण, खलु=निश्चयेन, विषग्रन्थिगर्भप्रविष्टेन=गरलपादपपर्वणान्तर्गतेन, कीटकेनेव=क्षुद्रजन्तुनेव, किमपि=किञ्चित्, अन्तरम्=छिद्रम्, मार्गयता=अन्वेषणं कुर्वता, उत्पादितस्य=उपस्थापितस्य, चारुदत्तस्य विनाशः=संहारः। साम्प्रतम्=अधुना, आत्मीयायाम्=स्वकीयायाम्, प्रासादबालाग्र-प्रतोलिकायाम्=नवनिर्मितभव्यभवनस्य उच्चरथ्यायाम्, अधिरुह्य=आरोहणङ्कृत्वा, आत्मनः=स्वकीयः, पराक्रमः=बलम्, प्रेक्षे=अवलोकायामि, हीति विस्मये। तदतिशये च द्विरुक्तिः। एतस्य=पुरोवर्त्तिनः, दरिद्रचारुदत्तस्य=अकिंचनचारुदत्तस्य, वध्यं, नीयमानस्य=वधार्थं नीत्वा गम्यमानस्य, एतावान् जनसम्मर्दः=अनियन्त्रितजनसमुदयः, यां वेलाम्=कालम्, यस्यां वेलायामित्यर्थः, अस्मादृशः=मच्छदृशः, प्रवरः=श्रेष्ठः, वरमनुष्यः=प्रधानपुरुषः, वध्यं नीयते=वधार्थं नीयते, तां वेलां=तस्मिन्काले, कीदृशः=केन रूपेण, भवेत्=जायेत् (निरीक्ष्य=दृष्ट्वा) कथमिति प्रश्ने, एषः=पुरोवर्त्तिनः, सः=असौ, नवबलीवर्दः=युवा वृषभः, इव=यथा, दक्षिणां=दक्षिणस्यां, दिशम्, नीयते=नीत्वा गम्यते, अथ=अनन्तरम्, किं निमित्तम्=केन हेतुना, मदीयायाः=मदधीनायाः, प्रासादबालाग्रप्रतोलिकायाः=भव्यभवनस्य नवनिर्मितरथ्यायाः, समीपे=पार्श्वे, घोषणा=उद्घोषं, निपतिता=उद्घोषिता, निवारिता च=निर्वात्तिता च (विलोक्य=दृष्ट्वा) कथमित्याशङ्कायाम्, इह=अत्र, नास्ति=न विद्यते। मा नाम इति सम्भावनायाम्, तेन=स्थावरकेन, इतः=अत्रतः, गत्वा=गमनं कृत्वा, मन्त्रभेदः=वसन्तसेनावधरूपगुप्तरहस्यप्रकाशम्, कृतः=विहितः, भविष्यति। तत्=तस्मात्,

---

दरिद्र चारुदत्त का विनाश उपस्थित कर दिया है। अब इस समय अपने भव्य भवन के नवनिर्मित प्रतोलिका के ऊपर चढ़कर अपने पराक्रम को देखूँगा। (**वैसा करके और देखकर**) अरे इस दरिद्र चारुदत्त को फाँसी देने के लिए वध्यस्थल की ओर ले जाते समय लोगों की इतनी भीड़ लगी है तो फिर हमारे जैसे प्रधान पुरुष को वधार्थ अगर वध्यस्थल की ओर ले जाया जाय तो उस समय कैसी भीड़ लगेगी। (**देखकर**) क्या वह वही चारुदत्त है जिसे नये साँड़ की तरह सजाकर दक्षिण दिशा की ओर ले जाया जा रहा है। तो फिर मेरे महल की ओर जो घोषणा हो रही थी उसे अचानक ही क्यों रोक दिया गया ? (**देखकर**) क्या यहाँ स्थावरक भी नहीं है ? कहीं ऐसा न हो कि यहाँ से भागकर वह लोगों के बीच जाकर सारा भेद खोल दे। तो अब उसे ही खोजता हूँ। (**उतर कर समीप जाता है**)

चेटः—(दृष्ट्वा) भट्टालआ ! एशे शे आगडे । [भट्टारकाः ! एष स आगतः ।]

चाण्डालौ—

ओशलध, देध मग्गं दालं ढक्केध होध तुण्हीआ ।
अविणअ-तिक्ख-विशाणे दुट्ठवइल्ले इदो एदि ।। ३० ।।

[अपसरत, दत्त मार्गम्, द्वारं पिधत्त भवत तूष्णीकाः ।
अविनयतीक्ष्णविषाणो दुष्टवलीवर्द्द इत एति ।।]

शकारः—अले ! अले ! अन्तलं अन्तलं देध । (उपसृत्य) पुत्तका ! थावलका ! चेडा । एहि गच्छम्ह । [अरे ! अरे ! अन्तरमन्तरं दत्त । पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! एहि गच्छावः ।]

चेटः—ही ही ! अणज्ज ! वशन्तशेणिअं मालिअ ण पलितुट्टेशि । शम्पदं पणइजण-कप्पपादवं अज्ज चालुदत्तं मालइदुं ववशिदेशि । [ही ही ! अनार्य !

यावदित्यवधारणे, एनम्=स्थावरकम्, अन्विष्यामि=अन्वेषणम् करोमि । (इति=एवं विचार्य, अवतीर्य=प्रासादात् अधो आगम्य, उपसर्पति=समीपमागच्छति ।)

चेटः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) भट्टारकाः=स्वामिनः, एषः=अयम्, सः=असौ, आगतः ।

अन्वयः—अपसरत, मार्गम्, दत्त, द्वारम्, पिधत्त, तूष्णीकाः, भवत, अविनयतीक्ष्णविषाणः, दुष्टवलीवर्दः, इतः, एति ।। ३० ।।

अपसरतेति । अपसरत=दूरं गच्छत, मार्गम्=पन्थानम्, दत्त=अर्पयत, द्वारम्=प्रवेशपन्थानम्, पिधत्त=कपाटावृत्तं कुरुध्वम्, तूष्णीकाः=मौनाङ्गीकारिणः, भवत=जायत, अन्यथा, अविनयतीक्ष्णविषाणः=औद्धत्य-निशितशृङ्गः, दुष्टवलीवर्दः=दुष्टवृषभः, इतः=अस्यां दिशि, एति=समागच्छति । अत्राप्रस्तुतप्रशंसा, रूपकः, काव्यलिङ्गालङ्काराः, आर्यावृत्तञ्चेति ।। ३० ।।

शकारः—अरे अरे=औद्धत्यवशात् तत्रस्थान् सर्वान् जनान् नीचसम्बोधनेन सम्बोधयति, अन्तरमन्तरम्=यातुमवकाशम्, दत्त=प्रदानं कुरुत, पुत्रक=हे सुत, एहि आगच्छ, गच्छावः=चलावः आवाम् ।

चेटः—ही=इति विषादद्योतकमव्ययम्, कष्टाधिक्यं द्योतयितुम् द्विरुक्तिः, अनार्य=रे नीच, वसन्तसेनिकाम्=एतदाख्यगणिकाम्, मारयित्वा=हत्वा, न=नहि,

---

चेट—(देखकर) मालिक देखिए, वह इधर ही आ रहा है ।

दोनों चाण्डाल—हटो, रास्ता दो, दरवाजा बन्द कर लो, सभी चुप हो जाओ । क्योंकि यह नीच तेज शृंगवाला दुष्ट वृषभरूप शकार इधर ही आ रहा है ।।३०।।

शकार—अरे रे, रास्ता दो, रास्ता । (पास जाकर) बेटे स्थावरक, चेट ! आओ हम चलें ।

वसन्तसेनिकां मारयित्वा न परितुष्टोऽसि ? साम्प्रतं प्रणयिजनकल्पपादपम् आर्यंचारुदत्तं मारयितुं व्यवसितोऽसि ।]

शकारः—णहि लअणकुंभशलिशे हग्गे इत्थिअं वावादेमि । [**नहि रत्न-कुम्भसदृशोऽहं स्त्रियं व्यापादयामि ।**]

सर्वे—अहो ! तुए मारिदा, ण अज्जचारुदत्तेण । [**अहो ! त्वया मारिता, न आर्य चारुदत्तेन ।**]

शकारः—के एव्वं भणादि ? [**क एवं भणति ।**]

सर्वे—(चेटमुद्दिश्य) णं एसो साहु । [**नन्वेष साधुः ।**]

शकारः—(अपवार्य सभयम्) अविदमादिके अविदमादिके ! कधं थावलके चेडे सुट्ठु ण मए शंजदे । एशे क्खु मम अकज्जश्श शक्खी । (विचिन्त्य) एव्वं दाव कलइश्शं (प्रकाशम्) अलिअं भट्टालका ! हंहो ! एशे चेडे शुवण्ण-चोलिआए मए गहिदे, पिट्टिदे, मालिदे वद्धे अ । ता किदवेले एशे जं भणादि, कि शच्चं ? (अपवारितकेन चेटस्य कटकं प्रयच्छति । स्वैरकम्) पुत्तका ! थावलका ! चेडा ! एदं गेण्हिअ अण्णधा भणाहि । [**हन्त ! कथं स्थावरक-**

परितुष्टः=सन्तुष्टः, असि ? साम्प्रतम्=अधुना, प्रणयिजनकल्पपादपम्=याचकानामभीष्टपूरकम्, मारयितुम्=हन्तुम्, व्यवसितोऽसि=व्यापृतोऽसि ।

शकारः—रत्नकुम्भसदृशः=मणिघटवत् श्रेष्ठः, अहम्=शकारः, स्त्रियम्=अबलाम्, व्यापादयामि=मारयामि ?

सर्वे—अहो=सम्बोधनम्, त्वया=शकारेण, मारिता=व्यापादिता, न=नहि, आर्यचारुदत्तेन ।

शकारः—एवम्=अनेन प्रकारेण, कः=व्यक्तिविशेषः, भणति=कथयति ?

सर्वे—(चेटम्=स्थावरकम्, उद्दिश्य=अभिलक्ष्य) ननु=निश्चयार्थकमव्ययम्, एषः=अयम्, साधुः=सज्जनः ।

शकारः—(अपवार्य=जनान्तिकम्, सभयम्=सत्रासम्) 'अविदमादिके' इति भयविस्मयसूचकमव्ययपदमिदम्, भयाधिक्याद् द्विरुक्तिः । कथमिति प्रश्ने, सुष्ठु=साधु,

---

चेट—अरे नीच, वसन्तसेना की हत्या करने पर भी तुम्हारा मन सन्तुष्ट नहीं हुआ, अब याचकों के कल्पतरु इस आर्य चारुदत्त को मरवाने के लिए कमर कसे हो ।

शकार—मणिकलशसदृश मेरे जैसा सत्पुरुष क्या नारी-हत्या करता है ?

सभी—अहो, वसन्तसेना की हत्या तुम्हीं ने की है, आर्य चारुदत्त ने नहीं ।

शकार—कौन ऐसा कहता है ?

सब—(**चेट की ओर इशारा करके**) यही बेचारा भला आदमी,

शकार—**(अलग से डरकर)** खेद है, स्थावरक को मैंने ठीक से बांधा नहीं था ? यही मेरे कुकर्म का साक्षी है । **(सोचकर)** तो फिर ऐसा करता हूँ । **(सबको सुनाकर)**

इचेटः सुष्ठु न मया संयतः । एष खलु मम अकार्यस्य साक्षी । एवं तावत् करिष्यामि । अलीकं भट्टारकाः ! अहो ! एष चेटः सुवर्णचोरिकया मया गृहीतः, पीडितः, मारितः, बद्धश्च । तत् कृतवैर एष यद्भणति किं सत्यम् ? पुत्रक ! स्थावरक ! चेट ! एतद् गृहीत्वा अन्यथा भण ।]

चेटः—(गृहीत्वा) पेक्खध पेक्खध, भट्टालका ! हंहो ! शुवण्णेण मं पलोभेदि । [प्रेक्षध्वं प्रेक्षध्वं भट्टारकाः ! हंहो ! सुवर्णेन मां प्रलोभयति ।]

शकारः—(कटकमाच्छिद्य) एशे शे शुवण्णके, जश्श कालणादो मए बड्ढे । (सक्रोधम्) हंहो चाण्डाला ! मए क्खु एशे शुवण्णभण्डाले णिउत्ते, शुवण्णं चोलअन्ते मालिदे, पिट्टिदे, ता जदि ण पत्तिआअध, ता पिट्टिं दाव पेक्खध । [एतत् तत् सुवर्णकम् । यस्य कारणात् मया बद्धः । हंहो चाण्डालौ ! मया

मया=शकारेण, न=नहि, संयतः=निगडेन बद्धः । एष=अयम्, खलु=निश्चयेन, मम=शकारस्य, अकार्यस्य=दुष्कर्मस्य, साक्षी=प्रत्यक्षद्रष्टा, एवम्=अनेन प्रकारेण, तावदित्यवधारणे, करिष्यामि । भट्टारकाः=सज्जनाः ! अलीकम्=असत्यम्, अहो, एष चेटः=अयं स्थावरकः, सुवर्णचोरिकया=कनकाभूषणचौर्येण, मया=शकारेण, गृहीतः=धृतः, पीडितः=भर्त्सितः, मारितः=ताडितः, बद्धः=संयतः । तत्=तस्मात्, कृतवैरः=विहितशत्रुता । एषः=स्थावरकः, यत्=यथा, भणति=कथयति, तत् किम् सत्यम् नेत्यर्थः । (अपवारितकेन=दर्शकेभ्यः संगोप्यकथनेन, चेटस्य=स्थावरकस्य, कटकम्=स्वर्णकङ्कणम्, प्रयच्छति=ददाति, स्वैरकम्) पुत्रक=हे सुत, स्थावरक, चेट, एतत्=कङ्कणम्, गृहीत्वा=नीत्वा, अन्यथा=अन्यप्रकारेण, भण=वद ।

चेटः—(गृहीत्वा=धृत्वा) प्रेक्षध्वम्=अवलोकयत, हंहो=आश्चर्यार्थकमिदमव्ययम्, सुवर्णेन=कनकेन, माम्=चेटम्, प्रलोभयति=चारुदत्तेन वसन्तसेना व्यापादितेति मिथ्यावक्तुं प्रेरयति ।

शकारः—(कटकम्=स्वर्णभूषणम्, आच्छिद्य=तद्धस्तादवलादाकृष्य) एतत्=एषः, तत्=पूर्वोक्तः, सुवर्णकम्=कनकभूषणम्, यस्य कारणात्=हेतोः, मया=शकारेणायं, बद्धः=संयतः, सुवर्णभाण्डारे=स्वर्णागारे, नियुक्तः=रक्षकेन स्थापितः,

---

सज्जनो, यह झूठा है । इसने मेरा सोना चुराया है । इस अपराध के लिए इसे पकड़ कर मैंने बाँधा है, पीटा है, सताया है, तो फिर दुश्मनी के कारण मेरे विरुद्ध यह जो कुछ कहता है क्या वह सच है ? (छिपे-छिपे चेट को कंकण देता है, और धीरे से) बेटे चेट, ले, इसे रख ले और मेरे विरुद्ध बोलना बन्द कर ।

चेट—(लेकर) सज्जनो, देखिये यह सोने का प्रलोभन देकर मुझसे झूठ बोलवाना चाहता है ।

शकार—(हाथ से कंकण छीनकर) यह वही सोने का कंकण है जिसके लिए इसे बाँधा था । (क्रोधपूर्वक) अरे चाण्डालो ! इसे मैंने स्वर्णभाण्डार में नियुक्त

खल्वेष सुवर्णभाण्डारे नियुक्तः सुवर्णं चोरयन् मारितः, पीडितः। तद् यदि न प्रत्ययध्वे, तदा पृष्ठं तावत् प्रेक्षध्वम्।]

चाण्डालौ—(दृष्ट्वा) शोहणं भणादि। वितत्ते चेडे किं ण प्पलवदि ? [शोभनं भणति। वितप्तश्चेटः किं न प्रलपति ?]

चेटः—हीमादिके ! ईदिशे दाशभावे, जं शच्चं कं पि ण पत्तिआअदि। (सकरुणम्) अज्जचालुदत्त ! एत्तिके मे विहवे। (इदि पादयोः पतति।) [हन्त ! ईदृशो दासभावः यत् सत्यं कमपि न प्रत्याययति। आर्यचारुदत्त ! एतावान् मे विभवः।]

चारुदत्तः—(सकरुणम्)

उत्तिष्ठ भोः ! पतितसाधुजनानुकम्पिन् !
निष्कारणोपगतबान्धव ! धर्मशील ! ।
यत्नः कृतोऽपि सुमहान् मम मोक्षणाय
दैवं न संवदति किं न कृतं त्वयाऽद्य ॥ ३१ ॥

सुवर्णम्=कनकम्, चोरयन्=चौर्यं कुर्वन्, मारितः=ताडितः, पीडितः=भर्त्सितः। तत्=यदि, न=नहि, प्रत्ययध्वे=विश्वासं कुरुथ, तदा=तर्हि, अस्य पृष्टम्=पश्चिमाङ्गं, चौर्याभियोगे, मत्कृतप्रहारचिह्नं प्रेक्ष्यध्वम्=पश्यत।

चाण्डालौ—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) शोभनम्=सुष्ठु, भणति=वदति। वितप्तश्चेटः=कठोरप्रहारेण क्षुभितः चेटः, किं न प्रलपति=प्रलापं करोति।

चेटः—हीमादिके=दुःखविस्मयादिकमव्ययपदम्। दासभावः=दासता, यत्=यथा, सत्यम्=यथार्थम्, कमपि=व्यक्तिविशेषः, न=नहि, प्रत्याययति=विश्वासयति (सकरुणम्=सदयम्) आर्यचारुदत्त, एतावान्=एतदेव, मे=मम, चेटस्य विभवः=शक्तिरितोऽधिकं कर्त्तुमशक्यमिति। (एवम्=इत्थमुक्त्वा, पादयोः=चरणयोः, पतति।)

चारुदत्तः—(सकरुणम्=सदयम्)

अन्वयः—भो पतितसाधुजनानुकम्पिन्, निष्कारणोपगतबान्धव, धर्मशील, उत्तिष्ठ,

---

किया था, स्वर्ण की चोरी करने के कारण इसे मैंने पीटा था। इस पर भी यदि आप सबों को विश्वास नहीं हो, तो इसकी पीठ उघार कर देख लीजिए, उस पर मार का चिह्न है या नहीं ?

दोनों चाण्डाल—(देखकर) आपका कहना बिल्कुल सच है। मार खाया चेट कुछ भी कह सकता है ?

चेट—खेद है, दासता ऐसी बुरी वस्तु होती है कि दास की सच बात पर भी कोई विश्वास नहीं कर पाता ? (दुःख के साथ) आर्य चारुदत्त, इतना ही मेरा वश था। (ऐसा कहकर पैरों पर गिरता है।)

चारुदत्त—(दया के साथ)

हे विपत्सागर में डूबते सज्जनों के सहारे, अकारण आगत बन्धु, धर्मशील

चाण्डालौ—भट्टके ! पिट्टिअ एदं चेडं णिक्लालेहि । [**भट्टक ! पीडयित्वा एतं चेटं निष्कासय ।**]

शकारः—णिक्कमक ले ! । (इति निष्क्रामयति ।) अले चाण्डाला ! किं विलम्बेध ? मालेध एदं । [**निष्क्रम रे ! अरे चाण्डालौ ! किं विलम्बध्वे ! मारयत एनम् ।**]

चाण्डालौ—जदि तुवलशि, ना शअं ज्जेव मालेहि । [**यदि त्वरयसे, तत् स्वयमेव मारय ।**]

रोहसेनः—अले चाण्डाला ! मं मारेध, मुञ्चध आवुकं । [**अरे चाण्डालौ ! मां मारयतम्, मुञ्चतमावुकम् ।**]

मम, मोक्षणाय, सुमहान्, यत्नः, अपि, कृतः, दैवम्, न, संवदति, अद्य, त्वया, किम्, न, कृतम् ।। ३१ ।।

उत्तिष्ठेति । भोः पतितान्=विपत्सागरे निमग्नाम्, साधुजनान्=सुपुरुषान्, अनुकम्पते=दयिते इति साधुजनानुकम्पी तत्सम्बुद्धौ, निष्कारणम्=अकारणम् यथा स्यात्तथा, उपगतः=प्राप्तः यः बान्धवः=सखा तत्सबोधने, धर्मे=धार्मिककृत्ये शीलम् स्वभावम् यस्य तत्सम्बुद्धौ, उत्तिष्ठ=उत्थितो भव, मम=चारुदत्तस्य, मोक्षणाय=मुक्तिहेतवे, सुमहान्=विशिष्टतमः, यत्नः=प्रयासः, कृतः=सम्पादितः, किन्तु दैवम् =मम दुर्भाग्यम्, न संवदति=अनुकूलं न भवति, अन्यथा अद्य=सम्प्रति, त्वया=चेटेन, किं न कृतम्=सर्वं कृतमिति । परिकरालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तम् ।।३१।।

चाण्डालौ—भट्टक=प्रभो, पीडयित्वा=ताडयित्वा, एतम्=पुरोवर्त्तिनम्, चेटम् =स्थावरकम्, निष्कासय=बहिष्कुरु ।

शकारः—निष्क्रम रे=अरे नीच बहिर्गच्छ, रे चाण्डालौ=बधिकौ, किम्=कथम्, विलम्बेथे=विलम्बं कुरुथः, एनम्=चारुदत्तम्, मारयत=व्यापादयत् ।

चाण्डालौ—यदि=चेत्, त्वरयसे=आशुकार्यं समीहसे, तत्=तर्हि, स्वयमेव=आत्मनैव, मारय=व्यापादय ।

रोहसेनः—अरे चाण्डालौ=मातङ्गौ, माम्=रोहसेनम्, मारयतम्=व्यापादयतम्, मुञ्चताम्=त्यजताम्, आवुकम्=मम पितरम् ।

स्थावरक, मुझे छुड़ाने के लिए तुमने घोर प्रयास किया, किन्तु मेरा भाग्य ही मुझे साथ नहीं दे रहा है । मेरे लिए तुमने आज क्या नहीं किया ? ।। ३१ ।।

दोनों चाण्डाल—स्वामिन्, इस चेट को पीट कर बाहर कर दीजिए ।

शकार—भाग रे नीच ! (**बाहर निकाल देता है ।**) क्यों रे चाण्डालो, देर क्यों कर रहे हो, इस चारुदत्त को शीघ्र मार दो ।

दोनों चाण्डाल—यदि आपको इतनी जल्दी है तो, खुद मारिये ।

रोहसेन—चाण्डालो ! मुझे मारो, मेरे पिताजी को छोड़ दो ।

शकारः—शपुत्तं ज्जेव एदं मालेध। [सपुत्रमेव एतं मारयतम्।]

चारुदत्तः—सर्वमस्य मूर्खस्य सम्भाव्यते। तद् गच्छ पुत्र ! मातुः समीपम्।

रोहसेनः—किं मए गदेण कादव्वं ? [किं मया गतेन कर्त्तव्यम् ?]

चारुदत्तः—

आश्रमं वत्स ! गन्तव्यं गृहीत्वाद्यैव मातरम्।
मा पुत्र ! पितृदोषेण त्वमप्येवं गमिष्यसि॥ ३२॥

तद्वयस्य ! गृहीत्वैनं व्रज।

विदूषकः—भो वअस्स ! एव्वं तुए जाणिदं, तुए विणा अहं पाणाइं धारेमि त्ति ? [भो वयस्य ! एवं त्वया ज्ञातम्, त्वया बिना अहं प्राणान् धारयामीति ?]

शकारः—सपुत्रमेव=पुत्रसहितेव, एतम्=इमम्, मारयतम्=व्यापादयतम्।

चारुदत्तः—सर्वम्=सकलम्, अस्य=एतस्य, मूर्खस्य=प्रचण्डस्य, सम्भाव्यते=सम्भावना क्रियते। तत्=तस्मात्, पुत्र=हे सुत, गच्छ=याहि, मातुः=जनन्याः, समीपम्=सकाशम्।

रोहसेनः—किमिति प्रश्ने, मया=रोहसेनेन, गतेन=चलितेन, कर्त्तव्यम्=तत्र करणीयमिति, उपदिश।

अन्वयः—वत्स, मातरम्, गृहीत्वा, अद्य, एव, आश्रमम्, गन्तव्यम्, पुत्र, मा, पितृदोषेण, त्वम्, अपि, एवम्, गमिष्यसि॥ ३२॥

आश्रममिति। वत्स=हे आयुष्मन्, मातरम्=निजजननीम्, गृहीत्वा=नीत्वा, अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने, आश्रमम्=तपोवनम्, गन्तव्यम्=गन्तुं योग्यम्। पुत्र=हे सुत, मा=इति निषेधे, पितृदोषेण=जनकस्यापराधेन, त्वम्=रोहसेनः, अपि=चेत्, एवम्=अहमिव प्राणदण्डम्, गमिष्यसि=यास्यसि। मात्रा सह त्वया अद्यैव वनं गन्तव्यम्, अन्यथा शकारः त्वामपि मिथ्यापराधोपरोधेन, घातयिष्यतीति भावः। अत्र पथ्या-वक्त्रं वृत्तम्॥ ३२॥

तत्=तस्मात्, वयस्य=हे मित्र, एनम्=बालम्, गृहीत्वा=नीत्वा, व्रज=गच्छ।

विदूषकः—वयस्य=हे मित्र, एवम्=इत्थम्, त्वया=भवता, ज्ञातम्=बुद्धम्, त्वया=भवता, विना, अहम्=मैत्रेयः, प्राणान्=जीवनम्, धारयामि=धारणं करोमि।

शकार—बेटे के साथ ही बाप को मारो।

चारुदत्त—इस मूर्ख से सब कुछ सम्भव है; अतः हे पुत्र, अपनी माँ के पास लौट जाओ।

रोहसेन—माँ के पास जाकर क्या करूँगा ?

चारुदत्त—हे बेटे, इसी क्षण अपनी माँ को लेकर तपोवन चले जाओ। कहीं ऐसा न हो कि मेरे दोष के कारण तुम भी मेरी तरह निरपराध मारे जाओ॥ ३२॥

अतः हे मित्र ! तुम अब इस बालक को यहाँ से ले जाओ।

विदूषक—मित्र, तुम नहीं जानते कि तुम्हारे बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता।

चारुदत्तः—वयस्य ! स्वाधीनजीवितस्य न युज्यते तव प्राणपरित्यागः ।

विदूषकः—(स्वगतम्) जुत्तं णणेदं । तधावि ण सक्कुणोमि पिअवअस्सविरहिदो पाणाइं धारेदुं त्ति । ता वम्हणीए दारअं समप्पिअ पाणपरिच्चाएण अत्तणो पिअवअस्सं अणुगमिस्सं । (प्रकाशम्) भो वअस्स ! पराणेमि एदं लहुं । (इति सकण्ठग्रहं पादयोः पतति ।) [**युक्तम् नेदम् । तथापि न शक्नोमि प्रियवयस्यविरहितः प्राणान् धारयितुमिति । तत् ब्राह्मण्यै दारकं समर्प्य प्राणपरित्यागेनात्मनः प्रियवयस्यमनुगमिष्यामि । भो वयस्य ! पराणयामि एनं लघु ।**]

(दारकोऽपि रुदन्पतति ।)

शकारः—अले ! णं भणामि शपुत्ताकं चालुदत्ताकं वावादेध त्ति । [**अरे ! ननु भणामि सपुत्रकं चारुदत्तकं व्यापादयतमिति ।**]

(चारुदत्तो भयं नाटयति ।)

चारुदत्तः—वयस्य=हे मित्र, स्वाधीनजीवितस्य=स्ववशजीवनस्य, न=नहि, युज्यते=युक्तम्, तव=भवतः, प्राणपरित्यागः—प्राणानाम्=असूनाम्, परित्यागः=मोचनम् ।

विदूषकः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) इदम्=एतत्, यद्यपि न=नहि, युक्तम्=उचितम्, तथापि न=नहि, शक्नोमि=समर्थोऽस्मि, प्राणान्=असून्, धारयितुम्=धारणं कर्त्तुम्, तत्=तस्मात्, ब्रह्मण्याः=धूतायाः, दारकम्=सुतम्, समर्प्य=समर्पणं कृत्वा, प्राणपरित्यागेन=जीवनदानेन, आत्मनः=स्वस्य, प्रियवयस्यम्=प्रियमित्रचारुदत्तम्, अनुगमिष्यामि=अनुगमनं करिष्यामि । (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) भो वयस्य=हे मित्र, एनम्=रोहसेनम्, लघु=शीघ्रम्, पराणयामि=इतोऽपनयामि । (इति, सकण्ठग्रहं=कण्ठग्रहपूर्वकं, पादयोः=चरणयोः पतति ।)

(दारकः=बालकः रोहसेनः, अपि, रुदन्=क्रन्दन्, पादयोः, पतति ।)

शकारः—अरे=इति नीचसम्बोधने, ननु भणामि=कथयामि, सपुत्रकम्=पुत्रसहितम्, चारुदत्तकम्, व्यापादयतम्=मारयतम्, इति ।

चारुदत्त—मित्र, तुम्हारा जीवन तुम्हारे हाथ में है, अतः तुम्हें इस तरह प्राण नहीं छोड़ना चाहिए ।

विदूषक—(**मन ही मन**) यद्यपि यह उचित नहीं है, फिर भी प्यारे मित्र के बिना मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं है । इसलिए ब्राह्मणी को यह बालक सौंपकर तब अपने प्राणों को छोड़कर मैं मित्र चारुदत्त की अनुसरण करूंगा । (**प्रकट**) मित्र मैं इस बालक को पहले यहाँ से हटाता हूँ । (**यह कहकर, आँसू रोकते हुए पैरों में गिरता है ।**)

(**रोहसेन भी रोता हुआ पैरों में गिरता है ।**)

शकार—अरे, मैं कहता हूँ, बेटे के साथ चारुदत्त को मारो ।

चाण्डालौ—णहि अम्हाणं ईदिशी लाआण्णत्ती, जधा शपुत्तं चालुदत्तं वावादेध त्ति। ता णिक्कम ले दालआ ! णिक्कम। (इति निष्क्रामयतः।) इमं तइअं घोशणट्ठाणं। ताडेध डिण्डिमं। (पुनर्घोषयतः।) [**नहि अस्माकमीदृशी राजाज्ञप्तिः, यथा सपुत्रं चारुदत्तं व्यापादयतमिति। तत् निष्क्रम रे दारक ! निष्क्रम। इदं तृतीयं घोषणास्थानम्। ताडयत डिण्डिमम्।**]

शकारः—(स्वगतम्) कधं एशे ण पत्तिआअन्ति पौला। (प्रकाशम्) हंहो चालुदत्ता ! वडुका ! ण पत्तिआअदि एशे पौलजणे। ता अत्तणकेलिकाए जीहाए भणाहि मए वशन्तशेणा मालिदे त्ति। [**कथमेतद् न प्रत्ययन्ते पौराः। अरे चारुदत्त ! बटुक ! न प्रत्ययते एष पौरजनः, तदात्मीयया जिह्वया भण–'मया वसन्तसेना मारिता' इति।**]

(चारुदत्तस्तूष्णीमास्ते)

शकारः—अले चाण्डालगोहे ! ण भणादि चालुदत्तवडुके। ता भणावेध

(चारुदत्तः भयं=त्रासम्, नाटयति=अभिनयति।)

चाण्डालौ—नहि=न, अस्माकम्=नः, इदृशीम्=एतादृशीम्, राजाज्ञप्तिः=आज्ञा, यथा=येन प्रकारेण, सुपुत्रम्=पुत्रसहितम्, चारुदत्तम्, व्यापादयतम्=मारयतम्, इति, तत्=तस्मात्, निष्क्रम=बहिर्गच्छ, रे दारक=बालक, निष्क्रम=बहिर्गच्छ। इदम्=एतत्, तृतीयम्, घोषणास्थानम्=प्रख्यापनस्थानम्, ताडयत=ताडनं कुरुत, डिण्डिमम्=ढक्कामिति।

शकारः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कथमिति प्रश्ने, एतत्=चारुदत्तस्य साधुशीलत्वात् तस्मिन् वसन्तसेनायाः मारणम् न प्रत्ययन्ते, पौराः=नगरनिवासिनः। (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्) न=नहि, एषः=असौ, पौरजनः=नगरवासिनः न प्रत्ययते, तद्=तस्मात्, आत्मीयया=स्वकीयया, जिह्वया=रसनया, भण=वद, मया चारुदत्तेन, मारिता=घातिता, इति=इत्थम्।

(चारुदत्तः, तूष्णम्=मौनम्, आस्ते=तिष्ठति।)

शकारः—अरे चाण्डालगोह=तयोर्मध्ये एकस्य नाम गोह इति, न भणति=

(चारुदत्त भय का अभिनय करता है।)

दोनों चाण्डाल—राजा का आदेश ऐसा नहीं है कि बेटे के साथ चारुदत्त को मारो। अतः भाग रे बालक भाग यहाँ से। (**उसे हटाते हैं।**) यह तीसरा घोषणा स्थान है, नगाड़ा पीटो। (**पुनः घोषणा करते हैं।**)

शकार—(मन ही मन) ये नागरिक इस पर विश्वास क्यों नहीं करते। **(प्रकट)** अरे चारुदत्त ! नगरनिवासीजन इस बात पर विश्वास नहीं करते हैं। अतः अपने मुँह से तुम इन्हें कहो कि मैंने वसन्तसेना को मारा है।

(चारुदत्त मौन रहता है।)

इमिणा जज्जल-वंशखण्डेण शङ्खलेण तालिअ तालिअ। [**अरे चाण्डाल गोह ! न भणति चारुदत्तवटुकः। तद्भणयत अनेन जर्ज्जरवंशखण्डेन शङ्खलेन ताडयित्वा ताडयित्वा।]**

चाण्डालः—(प्रहारमुद्यम्य) भो चालुदत्त ! भणाहि। [**भोः चारुदत्त ! भण।**]

चारुदत्तः—(सकरुणम्)

प्राप्यैतद्व्यसनमहार्णवप्रपातं
न त्रासो न च मनसोऽस्ति मे विषादः।
एको मां दहति जनापवादवह्नि-
र्वक्तव्यं यदिह मया हता प्रियेति॥ ३३॥

कथयति चारुदत्तः। तद्=तस्मात्, भणयत=वादयत, अनेन=पुरोवर्त्तिना, जर्जरेण =जीर्णताङ्गतेन, वंशखण्डेन=वेणुशकलेन, शृंखलेन=वादनदण्डेन, ताडयित्वा= ताडनङ्कृत्वेति।

चाण्डालः—(प्रहारम्=आघातम्, उद्यम्य=उपक्रम्य) भो चारुदत्त भण=कथय।

चारुदत्तः—(सकरुणम्=करुणापूर्वकम्)

अन्वयः—एतत् व्यसनमहार्णवप्रपातम्, प्राप्य, अपि, मे, मनसः, न, त्रासः, न च, विषादः, अस्ति। एकः, जनापवादवह्निः, माम्, दहति, यत्, इह, इति, वक्तव्यं, मया, प्रिया, हता॥ ३३॥

प्राप्येति। एतत्=अनुभूयमानम्, व्यसनम्=विपत्तिः, एव महार्णवः=महासमुद्रः, तस्मिन् प्रपातः=पतनम्, प्राप्य=लब्ध्वा, अपि=चेत्, मे=मम चारुदत्तस्य, मनसः=चेतसः, न=नहि, त्रासः=मरणभयम्, न च विषादः=मानसिकं क्लेशम्, अस्ति=वर्त्तते। किन्तु एकः=केवलम्, जनापवादवह्निः=लोकापवादस्वरूपकमपयशः एव वह्निः=अग्निः, माम्=निर्दोषं चारुदत्तम्, दहति=दग्धं करोति, यत्=यस्मात् इह=एकत्रिते महति लोकसमक्षे, इति='धनलोभेन=मया वसन्तसेना मारिता' एवं रूपेण, वक्तव्यम्=कथितव्यम्, मया=चारुदत्तेन, प्रिया=प्रेमिका, मारिता=व्यापादितेति। रूपकालङ्कारः, प्रहर्षिणीवृत्तञ्चेति॥ ३३॥

शकार—अरे चाण्डाल गोह, यह ब्राह्मण चारुदत्त ऐसे नहीं कहेगा, इस फटही बांस से नगाड़े की तरह पीट पीट कर तब इससे कहलाओ।

चाण्डाल—(लाठी तानकर) बोल रे चारुदत्त बोल।

चारुदत्त—(करुणापूर्वक)

हाय, विपत्ति के इस महासागर में गिरकर भी मुझे न तो मौत का डर है और न किसी तरह का विषाद ही है। किन्तु एक मात्र लोकनिन्दा की वह आग जला रही है जिसमें मैं यह कबूल करूँ कि अपनी प्रियतमा वसन्तसेना की हत्या मैंने की है।

(शकारः पुनस्तथैव)

चारुदत्तः—भो भोः पौराः ! ('मया खलु नृशंसेन···' इत्यादि पुनः पठति ।)

शकारः—वावादिदा । [**व्यापादिता ।**]

चारुदत्तः—एवमस्तु ।

प्रथमः—अले ! तव अत्त वज्झवालिआ । [**अरे ! तवात्र वध्यपालिका ।**]

द्वितीयः—अले ! तव । [**अरे ! तव ।**]

प्रथमः—अले ! लेक्खअं कलेम्ह । (इति बहुविधं लेखकं कृत्वा ।) अले ! जदि ममकेलिका वज्झवालिआ, ता चिट्ठदु दाव मुहुत्तअं । [**अरे ! लेखकं कुर्मः अरे ! यदि मदीया वध्यपालिका, तदा तिष्ठतु तावन्मुहूर्त्तम् ।**]

द्वितीयः—किं णिमित्तं ? [**किं निमित्तम् ?**]

(शकारः, पुनः=भूयः, तथैव=पूर्वोक्त प्रकारेणैव कथयतीति शेषः ।)

चारुदत्तः—भोः भोः पौराः=हे नागरिकाः, ('मया खलु नृशंसेन···'९।३०, ३८) इत्यादि पुनः=भूयः, पठति=वक्ति ।)

शकारः—व्यापादिता=मारिता मयेति वद ।

चारुदत्तः—एवमस्तु=तथास्तु ।

प्रथमः—अरे=इति नीचसम्बोधने, तव=भवतः, अत्र=अद्य, वध्यस्य=चारुदत्तवधस्य, पालिका=वारः अस्ति ।

द्वितीयः—अरे तव=भवतः पालिकाऽस्ति, एतेन द्वयोः क्रमिकत्वं हनने प्रतीयते ।

प्रथमः—अरे लेखकम्=गणनाम्, कुर्मः=वयं कुर्म इति । (इति=एवमुक्त्वा, बहुविधम्=अनेकरूपेण, लेखकम्=गणनाम्, कृत्वा=विधाय) अरे यदि=चेत्, मदीया=मामकीया, वध्यपालिका=वध्यवधस्य वारः, तदा=तर्हि, मुहूर्त्तम्=क्षणम्, तिष्ठतु=प्रतीक्षतु, अतिवाहयतु वेति ।

(शकार फिर वैसा ही कहता है ।)

चारुदत्त—ओ नागरिको, ('मया खलु...' **इत्यादि** (९।३०, ३८) **श्लोक फिर से दुहराता है ।)**

शकार—'तुमने वसन्तसेना को मारा है ।'

चारुदत्त—जैसा कहते हो, ठीक है ।

प्रथम चाण्डाल—अरे, आज बध करने की बारी तुम्हारी है ।

दूसरा—नहीं, बारी तुम्हारी है ।

पहला—अच्छा तो आओ हिसाब लगा ले । (**अनेक तरह से गिनती करके ।**) अगर वध करने की वारी मेरी है तो पलभर रुक जाओ ।

दूसरा—ऐसा क्यों ?

प्रथमः—अले ! भणिदोम्हि पिदुणा शग्गं गच्छन्तेण । जधा 'पुत्त ! वीरअ ! जइ तुह वज्झवाली होदि, मा शहशा वावादअशि वज्झं । [अरे ! भणितोऽस्मि पित्रा स्वर्गं गच्छता । यथा—'पुत्र ! वीरक ! यदि तव वध्यपाली भवति, मा सहसा व्यापादयसि वध्यम्' ।]

द्वितीयः—अले ! किं णिमित्तं ? [अरे ! किं निमित्तम् ?]

प्रथमः—कदावि कोवि शाहू अत्थं दइअ वज्झं मोआवेदि । कदावि लण्णो पुत्ते होदि, तेण वद्धावेण शब्बवज्झाणं मोक्खे होदि । कदावि हत्थी बंधं खण्डेदि, तेण शम्भमेण वज्झे मुक्के होदि । कदावि लाअपलिवत्ते होदि, तेण शव्ववज्झाणं मोक्खे होदि । [कदापि कोऽपि साधुरर्थं दत्त्वा वध्यं मोचयति । कदापि राज्ञः पुत्रो भवति, तेन वृद्धिमहोत्सवेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति । कदापि हस्ती बन्धं खण्डयति, तेन सम्भ्रमेण वध्यो मुक्तो भवति । कदापि राजपरिवर्त्तो भवति, तेन सर्ववध्यानां मोक्षो भवति ।]

शकारः—किं किं लाअपलिवत्ते होदि ? [किं किं राजपरिवर्त्तो भवति ।]

द्वितीयः—किम्=कस्मै, निमित्तम्=प्रयोजनाय ?

प्रथमः—अरे स्वर्गम्=देवलोकम्, गच्छता=व्रजता, पित्रा=जनकेन, भणितोऽस्मि=कथितोऽस्मि, रे वीरक=वीरश्रेष्ठ, यदि=चेत्, तव=भवतः, वध्यपाली=हननस्य वारः, भवति=याति, तदा सहसा=झटिति, वध्यम्=वधयोग्यपुरुषम्, मा व्यापादयसि=न मारयसि ।

द्वितीयः—अरे किं निमित्तम्=कस्मै प्रयोजनाय ?

प्रथमः—कदापि=कदाचित्, कोऽपि=कश्चन्, साधुः=सज्जनः, अर्थम्=धनम्, दत्त्वा=प्रदानं कृत्वा, बध्यम्=वधयोग्यजनम्, मोचयति=मोचनं करोति, मुक्तं कारयति वा, राज्ञः=नृपस्य, पुत्रो भवति=सुतः सञ्जायते, तेन=कारणेन, वृद्धिमहोत्सवेन=कुलाधिक्यादधर्षेण, सर्ववध्यानाम्=अखिलवध्यपुरुषाणाम्, मोक्षो भवति=मुक्तिः सञ्जायते, हस्ती=गजः, बन्धम्=बन्धनश्रृंखलाम्, खण्डयति=त्रोटयति, तेन तदुत्पन्नेन, सम्भ्रमेण=त्वरया, वध्यः मुक्तो भवति=रोधकहन्त्रादीनां तदानीं पलायनसम्भवात्, राजपरिवर्त्तः=राज्यपरिवर्तनम्, राज्ञः परिवर्तनम् वा ।

शकारः—किं किमिति उद्वेगे द्विरुक्तिः, किमुक्तं त्वयेति ज्ञातुमिच्छति ।

पहला—अरे, स्वर्ग जाते समय मेरे पिताजी ने मुझसे कहा था, वीर बेटे अगर किसी वध करने का तुम्हारी वारी हो तो वध्य को सहसा मत मारना ।

दूसरा—अरे किसलिए ?

पहला—कभी कोई सज्जन धन देकर वध्य पुरुष को छुड़ा लेता है । कभी पुत्र जन्मोत्सव की खुशी में राजाज्ञा से सभी छूट जाते हैं । कभी सिक्कर तोड़ कर हाथी उन्मत्त हो जाता है तो घबड़ाहट में ही वध्य पुरुष मुक्त हो जाता है । कभी राज्य परिवर्त्तन के कारण सभी वध्य स्वतः मुक्त हो जाते हैं ।

शकार—क्या-क्या ? राज्यपरिवर्त्तन होता है ?

चाण्डालः—अले ! वज्झवालिआए लेक्खअं कलेम्ह । [**अरे ! बध्यपालिकाया लेखकं कुर्मः ।**]

शकारः—अले ! शिग्घं मालेध चालुदत्तं । (इत्युक्त्वा चेटं गृहीत्वा एकान्ते स्थितः ।) [**अरे ! शीघ्रं मारयतं चारुदत्तम् ।**]

चाण्डालः—अज्ज चालुदत्त ! लाअणिओओ क्खु अवलज्झदि, ण क्खु अम्हे चाण्डाला । ता शुमलेहि जं शुमलिदव्वं । [**आर्यचारुदत्त ! राजनियोगः खलु अपराध्यति, न खलु वयं चाण्डालाः । तत् स्मर यत् स्मर्त्तव्यम् ।**]

चारुदत्तः—

प्रभवति यदि धर्मो दूषितस्यापि मेऽद्य
प्रबलपुरुषवाक्यैर्भाग्यदोषात् कथञ्चित् ।
सुरपतिभवनस्था यत्र तत्र स्थिता वा
व्यपनयतु कलङ्कं स्वस्वभावेन सैव ॥ ३४ ॥

चाण्डालः—अरे वध्यपालिकायाः, लेखकम्=गणनाम्, कुर्मः, तस्य क्रमेण राजपरिवर्तोऽप्युत्थितः ।

शकारः—अरे शीघ्रम्=सत्वरम्, मारयतम्=व्यापादयतम्, चारुदत्तम् । (इत्युक्त्वा=एवमुक्त्वा, चेटं गृहीत्वा=स्थावरकं नीत्वा, एकान्ते=जनशून्यस्थाने, स्थितः=वर्त्तमानः ।)

चाण्डालः—राजनियोगः=राजाज्ञा, खलु=निश्चयेन, अपराध्यति=अपराधं करोति, तत्=तेन हि, स्मर=स्मरणं कुरु, यत्=यः, स्मर्त्तव्यम्=स्मरणीयम् ।

अन्वयः—भाग्यदोषात्, अद्य, प्रबलपुरुषवाक्यैः, दूषितस्य, अपि, मे, धर्मः, यदि, कथञ्चित्, प्रभवति, तदा सुरपतिभवनस्था, वा, यत्र, तत्र, स्थिता, सा, एव, स्वस्वभावेन, मे कलङ्कम्, व्यपनयतु ॥ ३४ ॥

प्रभवतीति—भाग्यदोषात्=दुर्भाग्यवशात्, अद्य=अस्मिन्दिने, प्रबलपुरुषवाक्यैः=न्यायाधीशवचनैः, दूषितस्य=कलुषितस्य, अपि=चेत्, मे=मम, धर्मः=सुकृतम्, यदि=चेत्, कथञ्चित्=किञ्चिन्मात्रमपि, प्रभवति=समर्थः, अस्ति । तदा=तर्हि,

---

चाण्डाल—अरे, हम तो वध करने की किसकी बारी है; इसकी गणना कर रहे हैं ।

शकार—अरे, चारुदत्त का वध जल्द ही करो । (**यह कहकर चेट को पकड़कर एकान्त में चला जाता है ।**)

चाण्डाल—आर्य चारुदत्त ! तुम्हारे वध का अपराधी राजा का हुक्म है हम लोग नहीं । अतः अपने अभीष्ट का स्मरण कर लो ।

चारुदत्त—मेरे दुर्भाग्य से अथवा न्यायाधीशों के कथन से आज मैं निरपराध होते हुए भी कलङ्की बन गया हूँ । मेरे धर्म में यदि कुछ भी प्रभाव हो तो चाहे इन्द्र

भोः ! क्व तावन्मया गन्तव्यम् ?

चाण्डालः—(अग्रतो दर्शयित्वा) अले ! एदं दीशदि दक्खिणमशाणं, जं पेक्खिअ वज्झा झत्ति पाणाइं मुंचन्ति । पेक्ख पेक्ख । [**अरे ! एतत् दृश्यते दक्षिणश्मशानम्, यत् प्रेक्ष्य वध्या झटिति प्राणान् मुञ्चन्ति । प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व ।**]

अद्धं कलेवलं पडिवुत्तं कट्टन्ति दीहगोमाआ ।
अद्धं पि शूललग्गं वेशं विअ अट्टहाशश्श ॥ ३५ ॥
[**अर्द्धं कलेवरं प्रतिवृत्तं कर्षन्ति दीर्घगोमायवः ।**
अर्द्धमपि शूललग्नं वेश इवाट्टहासस्य ॥]

चारुदत्तः—हा ! हतोऽस्मि मन्दभाग्यः । (इति सावेगमुपविशति ।)

सुरपतिभवनस्था=अमरावतीस्था, वा=अथवा, यत्र तत्र=यस्मिन् कस्मिन् स्थाने, स्थिता=वर्तमाना सा, एव=वसन्तसेना एव, स्वस्वभावेन=निज अभिप्रायप्रकाशनेन, कलङ्कम्=दोषम्, मे, व्यपनयतु=दूरीकरोतु । मालिनी वृत्तम् ॥ ३४ ॥

भो=हे चाण्डाल, क्व=कुत्र, मया=चारुदत्तेन, गन्तव्यम्=चलितव्यम् ।

चाण्डालः—(अग्रतः=सन्मुखे, दर्शयित्वा=सङ्केतङ्कृत्वा) अरे एतत्=पुरोवर्त्तिनः, दृश्यते=अवलोक्यते, दक्षिणश्मशानम्=वध्यस्थानम्, यत्=श्मशानम्, प्रेक्ष्य =दृष्ट्वा, वध्या=वधार्हपुरुषाः, प्राणान्=असून्, मुञ्चन्ति=त्यजन्ति, प्रेक्षस्व= अवलोकय ।

अन्वयः—दीर्घगोमायवः, प्रतिवृत्तम्, अर्द्धम्, कलेवरम्, कर्षन्ति, शूललग्नम्, अर्द्धम् अपि, अट्टहासस्य, वेशः, इव (प्रतिभाति) ॥ ३५ ॥

अर्द्धमिति । दीर्घगोमायवः=शूलारोपितशवभक्षणार्थं प्रसारितशरीराः शृगालाः, प्रतिवृत्तम्=लम्बितम्, अर्द्धम्=आंशिकम्, कलेवरम्=देहम्, कर्षन्ति=भक्ष्ययितुमाकर्षन्ति, शूललग्नम्=लौहफलके सक्तम्, अर्द्धमपि=आंशिकशरीरमपि, अट्टहासस्य= विकटहासस्य, वेश इव=रूपमिव प्रतिभाति । रूपकालङ्कारः, आर्यावृत्तञ्चेति ॥३५॥

चारुदत्तः—हा हतोऽस्मि=मारितोऽस्मि । (इति=एवमुक्त्वा, सावेगम्=वेगेन सहितम्, उपविशति ।)

के भवन में हो या जहाँ कहीं भी वसन्तसेना हो, अपने स्वभाव से मेरे इस कलङ्क को दूर कर दे ॥ ३४ ॥

बतलाओ, अब मुझे कहाँ चलना है ।

चाण्डाल—(**आगे की ओर दिखाकर**) अरे, यह दक्षिण श्मशान दीख रहा है, जिसे देखते ही वध्य पुरुष मारने से पहले ही मारा जाता है । देखो, देखो—

कोई सियार अपनी देह को ऊपर की ओर खींचकर शूल से लटके शव को खाने की चेष्टा कर रहा है । शूल में बिंधीं देह का ऊपरी भाग अर्थात् दाँत और मुँह के खुले रहने के कारण लगता है जैसे कोई प्रेत विकट हास्य कर रहा हो ॥ ३५ ॥

चारुदत्त—हाय, मैं अभागा मारा गया । (**यह कहते हुए जल्दी से बैठ जाता है।**)

शकारः—ण दाव गमिश्शं, चालुदत्ताकं वावादअन्तं दावं पेक्खामि। (परिक्रम्य दृष्ट्वा) कधं उपविट्टे। [न तावद् गमिष्यामि, चारुदत्तं व्यापाद्यमानं तावद् प्रेक्षे। कथमुपविष्टः।]

चाण्डालः—चालुदत्त ! किं भीदेशि ? [चारुदत्त ! किं भीतोऽसि ?]

चारुदत्तः—(सहसोत्थाय) मूर्ख ! ('न भीतो मरणादस्मि केवलं दूषितं यशः।…' इत्यादि पुनः पठति।)

चाण्डालः—अज्जचालुदत्त ! गअणदले पडिवशन्ता चन्दशुज्जा वि विपत्तिं लहन्ति, किं उण जणा मलणभीलुआ माणवा वा। लोए कोवि उट्ठिदो पडदि, को वि पडिदो उट्ठेदि। [आर्य चारुदत्त ! गगनतले प्रतिवसन्तौ चन्द्रसूर्यावपि विपत्तिं लभेते; किं पुनर्जना मरणभीरुका मानवा वा। लोके कोऽपि उत्थितः पतति, कोऽपि पतितोऽपि उत्तिष्ठति।]

उट्ठन्तपडन्ताह वशणपाडिआ शवश्श उण अत्थि।
एदाइ हिअए कदुअ सन्धालेहि अत्ताणअ॥ ३६॥
[उत्तिष्ठत्पततो वसनपातिका शवस्य पुनरस्ति।
एतानि हृदये कृत्वा सन्धारयात्मानम्॥]

शकारः—न=नहि, तावदित्यवधारणे, गमिष्यामि=याष्यामि, व्यापाद्यमानम् हन्यमानम्।

चाण्डालः—चारुदत्त, किम्=कथम्, भीतोऽसि=भयाक्रान्तोऽसि।

चारुदत्तः—(सहसा=सत्वरमेव, उत्थाय=उत्थितो भूत्वा) मूर्खं=रे अज्ञ, ('न भीतो मरणादस्मि…' इत्यादि पुनः पठति।)

चाण्डालः—गगनतले=आकाशप्रान्ते, प्रतिवसन्तौ=निवसन्तौ, चन्द्रसूर्यावपि= निशाकरदिवाकरावपि, विपत्तिम्=अस्तगमनग्रहणादिरूपम्, लभेते, जनाः=जनधर्माणः, मरणभीरुकाः=मरणशीलाः, मानवाः।

अन्वयः—उतिष्ठत्पततः, शवस्य, पुनः, वसनपातिका, अस्ति, एतानि, हृदये, कृत्वा, आत्मानम्, सन्धारय॥३६॥

शकार—मैं अभी नहीं जाऊँगा। मारे जाते हुए चारुदत्त को देखकर ही जाऊँगा (घूमकर और देखकर) यह बैठ क्यों गया ?

चाण्डाल—चारुदत्त, तुम डर गये क्या ?

चारुदत्त—(सहसा उठकर) मूर्ख, मैं मौत से नहीं डरता। ('न भीतो मरणात्…' इत्यादि (१०।२७) फिर से पढ़ता है।)

चाण्डाल—आर्य चारुदत्त आकाश में रहने वाले चन्द्र और सूर्य भी विपद्ग्रस्त होते हैं फिर हमारे तुम्हारे जैसे मौत से डरने वाले मानव का क्या कहना है ? संसार में कोई ऊपर उठकर गिरता है और कोई गिरकर ऊपर उठता है।

उठकर गिरते हुए वस्त्र-खण्ड (अथवा प्रताका) की तरह (शरीर) का भी

(द्वितीयचाण्डालं प्रति) एदं चउट्ठं घोशणट्ठाणं । ता उग्घोशम्ह । [एतत् **चतुर्थं घोषणास्थानम् । तदुद्घोषयावः ।]**

(पुनस्तथैव उद्घोषयतः ।)

चारुदत्तः—हा प्रिये ! वसन्तसेने ! ('शशिविमलमयूख···' इत्यादि पुनः पठति ।)

(ततः प्रविशति ससम्भ्रमा वसन्तसेना भिक्षुश्च ।)

भिक्षुः—हीमाणहे ! अट्ठाणपलिश्शन्तं शमश्शाशिअ वशन्तशेणिअं णअन्ते अणुग्गहिदम्हि पव्वज्जाए। उवाशिके ! कहिं तुमं णइश्शं ? [**हीणामहे ! अस्थानपरिश्रान्तां समाश्वास्य वसन्तसेनां नयन् अनुगृहीतोऽस्मि प्रव्रज्यया । उपासिके ! कुत्र त्वां नेष्यामि ।]**

उत्तिष्ठदिति । उतिष्ठत्पततः=पूर्वमुद्गच्छतः पश्चात् नीचैः व्रजतः, शवस्य=मृतदेहस्य, पुनः=भूयः, वसनपातिका=वस्त्रस्येव पतनक्रिया, अस्ति=भवति, एतानि=अमूनि, तथ्यानि, हृदये=चित्ते, कृत्वा=अवबुध्य, आत्मानम्=स्वम्, सन्धारय=संस्थापय । आर्यावृत्तम् ॥ ३६ ॥

(द्वितीयचाण्डालम्प्रति=अपरमातङ्गमुद्दिश्य) एतत्=पुरोवर्त्ती, चतुर्थघोषणास्थानम्=प्रख्यापनपृष्टम्, तत्=तस्मात्, उद्घोषयावः=घोषणां करिष्यावः ।)

(पुनः=भूयः, तथैव=पूर्वरीतया, करोति=उद्घोषयति ।)

चारुदत्तः—हा=इति खेदे, प्रिये=प्रियतमे, वसन्तसेने ! ('शशिविमल···' इत्यादि १०।१३ पुनः पठति ।)

(ततः=तत्पश्चात्, प्रविशति=प्रवेशं करोति, ससम्भ्रमा=व्याकुला, भिक्षुः=बौद्धसंन्यासी ।)

भिक्षुः—हीमाणहे=आश्चर्यसूचकमव्ययम्, अस्थाने=अनुचितक्षेत्रे, परिश्रान्ताम्=शकारकृतघातेन मूर्च्छिताम्, समाश्वास्य=उपचारेण सुस्थिरीकृत्य, वसन्तसेनां नयन्=समुचितस्थानं प्रापयन्, प्रव्रज्यया=बौद्धसंन्यासाश्रयणेन, अनुगृहीतोऽस्मि=अनुकम्पितोऽस्मि, उपासिके=वसन्तसेने, कुत्र=कस्मिन् स्थाने, त्वाम्=भवतीम्, नेष्यामि=नीत्वा गमिष्यामि ।

उत्थान के बाद पतन होता है । ऐसा मन में निश्चित करके अपनी आत्मा को स्थिर करो ॥ ३६ ॥

(दूसरे चाण्डाल से) घोषणा का यह चौथा स्थान है; अतः आओ हम चौथी घोषणा करें ।

(फिर उसी तरह घोषणा करते हैं ।)

चारुदत्त—हा प्रिये, वसन्तसेने । ('शशिविमलमयूख···' **इत्यादि (१०।१३) फिर से पढ़ता है ।)**

(इसके बाद व्याकुल वसन्तसेना के साथ बौद्धसन्यासी का प्रवेश ।)

भिक्षु—हाय, अनुचित स्थान में मूर्च्छित वसन्तसेना को उचित परिचर्या से इसे ठीककर ले जाते हुए मैं कृतकृत्य हो गया । उपासिके, तुम्हें कहाँ ले चलूँ ?

वसन्तसेना—अज्जचारुदत्तस्स ज्जेव गेहं। तस्स दंसणेण मिअलांछणस्स विअ कुमुदिणिं आणंदेहि मं। [**आर्यचारुदत्तस्यैव गेहम्। तस्य दर्शनेन मृगलाञ्छनस्येव कुमुदिनीमानन्दय माम्।**]

भिक्षुः—(स्वगतम्) कदलेण मग्गेण पविशामि? (विचिन्त्य) लाअमग्गेण ज्जेव पविशामि। उवाशिके! एहि, इमं लाअमग्गं। (आकर्ण्य) किं णु खु एशे लाअमग्गे महंते कलअले शुणीअदि? [**कतरेण मार्गेण प्रविशामि? राजमार्गेणैव प्रविशामि। उपासिके! एहि, अयं राजमार्गः। किं नु खल्वेष राजमार्गे महान् कलकलः श्रूयते?**]

वसन्तसेना—(अग्रतो निरूप्य) कधं पुरदो महाजणसमूहो? अज्ज! जाणाहि दाव किं ण्णेदं त्ति। विसमभरक्कंता विअ वसुन्धरा एअवासोण्णंदा उज्जइणी बट्टदि। [**कथं पुरतो महाञ्जनसमूहः? आर्य! जानीहि तावत्किन्विदमिति। विषमभरक्रान्तेव वसुन्धरा एकवासोन्नतोज्जयिनी वर्तते।**]

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्तस्यैव, गेहम्=सदनम्, तस्य=चारुदत्तस्य, दर्शनेन=साक्षात्कारेण, मृगलाच्छनस्य=चन्द्रस्य, कुमुदिनीमिव=कुमुद्वतीमिव, माम्=वसन्तसेनाम्, आनन्दय=प्रसन्नतां देहि।

भिक्षुः—(स्वगतम्=आत्मगतम्) कतरेण=केन, मार्गेण=पथा, प्रविशामि=तत्र गच्छामि? (विचिन्त्य=विचार्य) राजमार्गेणैव=प्रशस्तनृपमार्गेणैव, प्रविशामि=गच्छामि, उपासिके=बुद्धोपासिके, एहि=आगच्छ, अयम्=एषः, राजपथः। (आकर्ण्य=श्रुत्वा) किं न खलु=जिज्ञासायाम्, एष राजमार्गे=नृपपथि, महान्=अति, कलकलः=कोलाहलः, श्रूयते=आकर्ण्यते।

वसन्तसेना—(अग्रतः=पुरतः, निरूप्य=अवलोक्य) कथमिति जिज्ञासायाम्, पुरतः=अग्रतः, महाञ्जनसमूहः=लोकसमुदयः, आर्य=हे मान्य, जानीहि=अवगतोऽसि, विषमभराक्रान्तेव=असमगुरुत्वाभिभूतेव, अथवा भयङ्करभारेण पीडिता, वसुन्धरा=पृथ्वी, एकवासोन्नता—एकवासे=एकस्मिन् स्थाने, उन्नता=उद्गता, एकत्रिता, उज्जयिनी=एतदाख्यनगरी, अस्ति=वर्त्तते।

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त के ही घर ले चलें। उनके दर्शन से मुझे उसी प्रकार आनन्दित करें जैसे चन्द्रमा के दर्शन से कुमुदिनी प्रसन्न होती है।

भिक्षु—(मन ही मन) किस रास्ते से चलूं। (कुछ सोचकर) राजमार्ग ही पकड़ता हूं। उपासिके आओ, यह राजपथ है। (सुनकर) अरे, इधर बहुत जोर का कोलाहल क्यों सुनाई पड़ रहा है?

वसन्तसेना—(आगे की ओर देखकर) अरे, आगे यह इतनी भीड़ क्यों है? आर्य जरा पता तो करें यह कैसा हंगामा है? एक तरफ का बोझ से धँसी हुई धरती की तरह उज्जयिनी नगरी एक ही जगह पर उमड़ी आ रही है।

चाण्डालः—इमं अ पच्छिमं घोशणट्ठाणं, ता तालेध डिंडिमं उग्घोशेध घोशणं। (तथा कृत्वा) भो चालुदत्त ! पडिवालेहि। मा भाआहि, लहुं ज्जेव मालीअशि ! [**इदं च पश्चिमं घोषणास्थानम्, तत्ताडयत डिण्डिमम्। उद्घोषयत घोषणाम्। भोश्चारुदत्त ! प्रतिपालय। मा भैः, शीघ्रमेव मार्यसे।**]

चारुदत्तः—भगवत्यो देवताः !

भिक्षुः—(श्रुत्वा, ससंभ्रमम्) उवासिके ! तुमं किल चालुदत्तेण मालिदाशि त्ति चालुदत्तो मालिदुं णीअदि। [**उपासिके ! त्वं किल चारुदत्तेन मारितासीति चारुदत्तो मारयितुं नीयते।**]

वसन्तसेना—(ससंभ्रमम्) हद्धी हद्धी, कधं मम मंदभाइणीए किदे अज्जचालुदत्तो वावादीअदि ? भो ! तुरिदं तुरिदं आदेसेहि मग्गं। [**हा धिक् हा धिक्, कथं मम मन्दभागिन्याः कृते आर्य-चारुदत्तो व्यापाद्यते ? भोः ! त्वरितं त्वरितमादिश मार्गम्।**]

भिक्षुः—तुवलदु तुवलदु बुद्धोवाशिआ अज्जचालुदत्तं जीअंतं शमश्शाशिदुं। अज्जा ! अंतलं अंतलं वेध। [**त्वरतां त्वरतां बुद्धोपासिकाऽऽर्यचारुदत्तं जीवन्तं समाश्वासयितुम्। आर्याः ! अन्तरमन्तरं दत्त।**]

चाण्डालः—इदम् च=एतच्च, पश्चिमम्=अन्तिमम्, घोषणास्थानम्=प्रख्यापनस्थानम्, तत्=तस्मात्, ताडयत=ताडनं कुरुत, डिण्डिमम्=ढक्काम्, उद्घोषयत्=प्रख्यापयत, घोषणाम्=प्रख्यापनम्। (तथा=तेनैव प्रकारेण, कृत्वा) प्रतिपालय=प्रतीक्षां कुरु, मा भैः=भयं मा कुरु, शीघ्रमेव=त्वरितमेव, मार्यसे=म्रियसे।

चारुदत्तः—भगवत्यो देवताः=जगज्जननी, शरणं गच्छामि।

भिक्षुः—(श्रुत्वा=आकर्ण्य, ससम्भ्रमम्=सव्याकुलम्) उपासिके=वसन्तसेने ! त्वम्=भवती, चारुदत्तेन मारितासि=व्यापादितासि, इति=हेतौ, मारयितुं=हन्तुं, नीयते=वध्यस्थलं नीत्वा गम्यते।

वसन्तसेना—हा, इति खेदे। धिक्=इति न्यक्कारम्, कथमिति प्रश्ने, मम=वसन्तसेनायाः, मन्दभागिन्याः=हतभागिन्याः, कृते=विहिते, आर्यचारुदत्तः, व्यापाद्यते=मार्यते, भोः=इति सम्बोधने, त्वरितम्=शीघ्रम्, आदिश=निर्दिश, मार्गम्=पन्थानम्।

भिक्षुः—त्वरताम्=शीघ्रं क्रियताम्, बुद्धोपासिका=उपासिका वसन्तसेना,

---

चाण्डाल—यह आखिरी घोषणा की जगह है, तो नगाड़ा पीटो और राजाज्ञा घोषित करो। (**वैसा करके**) ऐ चारुदत्त, अब प्रहार की प्रतीक्षा करो, डरो मत, अब जल्द ही मारे जाओगे।

चारुदत्त—हा भगवती !

भिक्षु—(**सुनकर, व्यग्रता के साथ**). उपासिके ! तुम्हें चारुदत्त ने मारा है, इसीलिये उन्हें वध के लिए ले जाया जा रहा है।

वसन्तसेना—(**घबड़ाकर**) हाय मुझ अभागिन के लिए आर्य चारुदत्त मारे जा रहे हैं। हाय, शीघ्र मुझे उस रास्ते पर ले चलिए।

वसन्तसेना—अंतलं अंतलं । [**अन्तरमन्तरम् ।**]

चाण्डालः—अज्जचालुदत्त ! शमिणिओओ अवलज्झदि । ता शुमलेहि जं शुमलिदव्वं । [**आर्य चारुदत्त ! स्वामिनियोगोऽपराध्यति । तत्स्मर यत्स्मर्तव्यम् ।**]

चारुदत्तः—किं बहुना । ('प्रभवति—' इत्यादि श्लोकं पठति ।)

चाण्डालः—(खड्गमाकृष्य) अज्जचालुदत्ते ! उत्ताणे भविअ समं चिट्ठ । एक्कप्पहालेण मालिअ तुमं शग्गं णेम्ह । [**आर्यचारुदत्त । उत्तानो भूत्वा समं तिष्ठ । एक प्रहारेण मारयित्वा त्वां स्वर्गं नयावः ।**]

(चारुदत्तस्तथा तिष्ठति ।)

आर्यचारुदत्तम्, जीवन्तम्=जीवनधारणार्थम्, समाश्वसयितुम्=आश्वासयितुम्, आर्याः =हे महाशयाः, अन्तरम्=आवयोर्गन्तुमवकाशम्, दत्त=मार्गात्किञ्चिदपसरत ।

वसन्तसेना—अन्तरम्=अवकाशम्, अन्तरम्=मार्गं देहीत्यर्थः ।

चाण्डालः—आर्यचारुदत्त ! स्वामिनः=नृपतिपालकस्य, नियोगः=निर्देशः, अपराध्यति=त्वद् वधादेशेन अपराधं करोति । अस्मिन् वधकर्मणि नास्ति, अस्माकं किमप्यपराध इति । तत्=तस्मात्, यत्=यम्, स्मर्तव्यम्=स्मरणीयम्, तत्स्मर= स्मरणं कुरु ।

चारुदत्तः—किं बहुना=किमितोऽधिकम् । ('प्रभवति···' इत्यादि १०।३८ श्लोकं पुनः पठति ।)

चाण्डालः—(खड्गम्=करवालम्, आकृष्य=निष्काषनङ्कृत्वा) उत्तानोभूत्वा= ऊर्ध्वाननोभूय, अर्थात् पृष्टतः शयानोभूत्वा, समम्=सरलं यथास्यात्तथा, तिष्ठ= स्थितो भव । एक प्रहारेण=एकेनैव प्रहारेण, त्वाम्=चारुदत्तम्, मारयित्वा=व्यापादयित्वा, स्वर्गम्=अमरावतीम्, नयावः=प्रेषयावः ।

(चारुदत्तः, तथा=निर्देशानुसारेण, तिष्ठति=स्थितो भवति ।)

भिक्षु—बुद्ध की उपासिके, जल्द करो । आर्य चारुदत्त के जीवन को ढाढस बंधाने के लिए जल्द करें । महाशयो, रास्ता दें, बगल हट जाँय ।

वसन्तसेना—रास्ता, रास्ता ।

चाण्डाल—आर्य चारुदत्त, आप राजा के आदेश से मारे जा रहे हैं, तो आप जिसे याद करना चाहते हो, याद कर लो ।

चारुदत्त—और अधिक क्या ? ('प्रभवति···'इत्यादि (१०।३४) श्लोक फिर से पढ़ता है ।)

चाण्डाल—(**तलवार खींचकर**) आर्य चारुदत्त, ऊपर की ओर मुँह कर पीठ के बल सीधे लेट जाओ तलवार की एक ही चोट में हम तुम्हें मारकर स्वर्ग पहुँचा देंगे ।

(चारुदत्त उसी प्रकार लेट जाता है ।)

चाण्डालः—(प्रहर्तुमीहते, खड्गपतनं हस्तादभिनयन्) ही, कधं। [**ही कथम्।**]

आअट्ठिदे शलोशं मुट्ठीए मुट्टिणा गहीदे वि।
धलणीए कीशं पडिदे दालुणके अशणिशण्णिहे खग्गे ॥ ३७ ॥

[आकृष्टः सरोषं मुष्टौ मुष्टिना गृहीतोऽपि।
धरण्यां किमर्थं पतितो दारुणकोऽशनिसन्निभः खड्गः ॥]

जधा एदं शंवुत्तं, तधा तक्केमि ण विवज्जदि अज्जचालुदत्ते त्ति। भअवदि शज्झवाशिणि ! पशीद पशीद। अबि णाम चालुदत्तश्श मोक्खे भवे, तदो अणुगहीदं तुए चाण्डालउलं भवे। [**यथैतत्संवृत्तम्, तथा तर्कयामि न विपद्यत आर्यचारुदत्त इति। भगवति सह्यवासिनि। प्रसीद प्रसीद। अपि नाम चारुदत्तस्य मोक्षो भवेत्, तदानुगृहीतं त्वया चाण्डालकुलं भवेत्।**]

चाण्डालः—(प्रहर्त्तुम्=प्रहारं कर्त्तुम्, इहते=वाञ्छति, हस्तात्=करात्, खङ्गपतनम्=करवालभ्रंशनम्, अभिनयन्=नाटयन्) हीति खेदे, कथमिति करवालपतनजन्यजिज्ञासायाम्।

अन्वयः—मुष्टौ, मुष्टिना, गृहीतः, अपि, सरोषम्, आकृष्टः, अशनिसन्निभः, दारुणः, खड्गः, धरण्याम्, किमर्थम्, पतितः ॥ ३७ ॥

आकृष्ट इति। मुष्टौ=त्सरौ, "त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यात्" इत्यमरः। मुष्टिना=बद्धहस्तेन 'हस्तो मुष्टया तु बद्धया' इत्यमरः। गृहीतोऽपि=धृतोऽपि, सरोषम्=बलपूर्वकम्, आकृष्टः=कोशान्निष्कासितः, अशनिसन्निभः=वज्रतुल्यः, दारुणः=अतिकठोरः, खड्गः=कृपाणः, धरण्याम्=भूतले, किमर्थम्=केन हेतुना, पतितः=भ्रष्टो भवति। आर्थी उपमा, उद्गीतिः जातिरिति पृथ्वीधरः ॥ ३७ ॥

यथा=येन प्रकारेण, एतत्=कृपाणपतनम्, संवृत्तम्=सञ्जातम्, तथा=तेन प्रकारेण, तर्कयामि=अनुमिनोमि, न विपद्यते=न मरिष्यते, चारुदत्त इति। भगवति सह्यवासिनि=हे देवि दुर्गे, सह्यवासिनी प्रायः चाण्डालकुलस्य प्रमुखदेवतेति प्रतीयते। प्रसीद प्रसीद=प्रसन्ना भव। अपि नाम=यदि चेत्, चारुदत्तस्य मोक्षः=मुक्तिः, भवेत्

चाण्डाल—(**मारना चाहता है। हाथ से तलवार गिरने की अभिनय करते हुए**) हाय, यह क्या ?

कसकर तलवार की मूठ मुठ्ठी से पकड़ कर आघात के लिए खींचकर ऊपर उठाते ही यह वज्रतुल्य भयङ्कर तलवार अपने आप धरती पर क्यों गिर गई ? ॥३७॥

क्योंकि तलवार अचानक ही हाथ से छूटकर धरती पर गिर गई, इससे मैं अनुमान लगाता हूँ कि अब इसकी मौत नहीं होगी। हे भगवति सह्यवासिनि खुश हो जाओ, यदि चारुदत्त मौत के मुख से छूट जाय तो हम सम्पूर्ण चाण्डाल कुल तुससे अनुगृहीत होंगे।

अपरः—जधाणत्तं अणुचिट्ठम्ह । [यथाज्ञप्तमनुतिष्ठावः ।]

प्रथमः—भोदु, एव्वं कलेम्ह । [भवतु, एवं कुर्वः ।]

(इत्युभौ चारुदत्तं शूले समारोपयितुमिच्छतः ।)

(चारुदत्तः 'प्रभवति—' इत्यादि पुनः पठति ।)

भिक्षुर्वसन्तसेना च—(दृष्ट्वा) अज्जा ! मा दाव मा दाव । अज्जा ! एसा अहं मंदभाइणी, जाए कारणादो एसो वावादीअदि । [आर्याः ! मा तावन्मा तावत् । आर्याः एषाहं मन्दभागिनी यस्याः कारणादेष व्यापाद्यते ।]

चाण्डालः—(दृष्ट्वा)

का उण तुलिदं एशा अंशपडंतेण चिउलभालेण ।
मा मेत्ति वाहलंती उट्ठिदहत्था इदो एदि ॥ ३८ ॥

[का पुनस्त्वरितमेषांसपतता चिकुरभारेण ।
मा मेति व्याहरन्त्युत्थितहस्तेत एति ॥]

=स्यात्, तदा=तर्हि, त्वया=भवत्या, चाण्डालकुलम्=समस्तचाण्डालवंशमेव, अनुगृहीतं भवेत्=कृतकृत्यो भविष्यति, सज्जनचारुदत्तस्य जीवनरक्षणेन कीर्त्युदयादिति भावः ।

अपरः—यथा=येन प्रकारेण, आज्ञप्तम्=आदिष्टम्, तथैवानुतिष्ठावः, अर्थात् कृपाणपतने जाते शूलारोपेण मारयावः ।

प्रथमः—भवतु=यातु, एवम्=अनेन प्रकारेण, कुर्वः ।

(इति=इत्थं विचार्य, चारुदत्तम्, शूले=अयःकीले, समारोपयितुम्=अधिरोहयितुम्, इच्छतः=अभिलषतः ।)

(चारुदत्तः 'प्रभवति···' इत्यादि १०।३४ पुनः पठति ।)

भिक्षुर्वसन्तसेना च—(दृष्ट्वा=अवलोक्य) आर्याः=मान्याः, मा=इति निषेधे, तावत्=चारुदत्तं न मारय, एषा=वसन्तसेनाहं जीवामि, मन्दभागिनी=हतभागिनी, यस्याः=वसन्तसेनायाः, कारणात्=हेतोः, एषः=चारुदत्तः, व्यापाद्यते=मार्यते ।

चाण्डालः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य)

अन्वयः—अंसपतता, चिकुरभारेण, उत्थितहस्ता, मा मा, इति, व्याहरन्ती, एषा, का, पुनः, त्वरितम्, इतः, एति ॥ ३८ ॥

दूसरा—हम लोगों को राजाज्ञा के अनुसार ही काम करना चाहिए ।

प्रथम—ठीक, ऐसा ही करें ।

(ऐसा कहने के बाद दोनों मिलकर चारुदत्त को शूली पर चढ़ाना चाहते हैं ।)

(चारुदत्त 'प्रभवति···' इत्यादि १०।३४ श्लोक फिर से पढ़ता है ।)

भिक्षु और वसन्तसेना—(**देखकर**) आर्यो, ऐसा नहीं करें, नहीं करें । यह वह अभागिन मैं ही हूँ जिसके कारण आर्य चारुदत्त मारे जा रहे हैं ।

चाण्डाल—(**देखकर**)

वसन्तसेना—अज्जचालुदत्त ! किं ण्णेदं ? [**आर्य चारुदत्त ! किं न्विदम् ?**]

(इत्युरसि पतति ।)

भिक्षुः—अज्जचालुदत्त ! किं ण्णेदं ? [**आर्य चारुदत्त ! किं न्विदम् ?**]

(इति पादयोः पतति ।)

चाण्डालः—(सभयमुपसृत्य) कधं वशंतशेणा ? णं खु अम्हेहिं शाहु ण वावादिदे । [**कथं वसन्तसेना ? ननु खल्वस्माभिः साधुर्न व्यापादितः ।**]

भिक्षुः—(उत्थाय) अअं, जीवदि चालुदत्ते । [**अरे, जीवति चारुदत्तः ।**]

चाण्डालः—जीवदि वशशदं । [**जीवति वर्षशतम् ।**]

का पुनरिति । अंसपतता=स्कन्धविपर्यस्तेन, चिकुरभारेण=केशसमूहेन, उत्थितहस्ता=चारुदत्तवधनिषेधार्थम् उद्गतकरा, मा मा=नहि, नहि, इति=इत्थम्, व्याहरन्ती=उच्चारयन्ती, एषा=पुरो धावमाना, का=नारीविशेषा, पुनः=भूयः त्वरितम्=शीघ्रम्, इतः=अस्यां दिशि, एति=समागच्छति । आर्या जाति ॥ ३८ ॥

वसन्तसेना—आर्यचारुदत्त=मान्यवर, इदम्=एतत्, किमिति प्रश्ने ?

(इति=एवमुक्त्वा, उरसि=वक्षस्थले, पतति ।)

भिक्षुः—आर्यचारुदत्त=मान्यचारुदत्त ! किं नु इदम्=एतत् किमापतितम् ? इति जिज्ञासायां शोके वा ।

(इति पादयोः=चरणयोः, पतति)

चाण्डालः—(सभयम्=सत्रासम्, उपसृत्य=समीपमागत्य) कथम्=आश्चर्यमिति, वसन्तसेना=जीवितैसा ननु=निश्चयेन, अस्माभिः=चाण्डालैः, साधुः=भाग्यवशादेव, न व्यापादितः=न मारितः ।

भिक्षुः—(उत्थाय=उत्थानङ्कृत्वा) अरे, इति हर्षसूचकम्, जीवति चारुदत्तः=चारुदत्तः जीवनं धारयति ।

यह औरत कौन है ? इसके बाल अस्तव्यस्त होकर कन्धे पर बिखरे हैं, यह दोनों हाथ उपर की ओर उठाये—'नहीं नहीं' कहती हुई बड़ी तेजी से इधर ही दौड़ती आ रही है । ॥ ३८ ॥

वसन्तसेना—आर्य चारुदत्त यह क्या है ?

(कहकर उसकी छाती पर पछाड़ खाकर गिरती है ।)

भिक्षु—मान्य चारुदत्त, क्या बात है ?

(कहकर पैरों पर गिरता है ।)

चाण्डाल—(**डरकर और पास आकर**) क्या ? यह वसन्तसेना है ? हमने चारुदत्त को नहीं मार कर ठीक ही किया ।

भिक्षु—(**उठकर**) अरे, चारुदत्त तो जीवित हैं !

चाण्डाल—सौ साल तक जीयें ।

वसन्तसेना—(सहर्षम्) पच्चुज्जीविदम्हि । [**प्रत्युज्जीवितास्मि ।**]

चाण्डालः—ता जाव एदं वुत्तं लाइणो जण्णवाडगदश्श णिवेदेम्ह । [**तद्याबदेतत् वृत्तं राज्ञो यज्ञवाटगतस्य निवेदयावः ।**]

(इति निष्क्रमतः ।)

शकारः—(वसन्तसेनां दृष्ट्वा, सत्रासम्) हीमादिके, केण गब्भदाशी जीवाविदा ? उक्कंताइं मे पाणाइं । भोदु, पलाइश्शं । [**आश्चर्यम्, केन गर्भदासी जीवनं प्रापिता ? उत्क्रान्ता मे प्राणाः । भवतु, पलायिष्ये ।**] (इति पलायते।)

चाण्डालः—(उपसृत्य) अअं, णं अम्हाणं ईदिशी लाआणत्ती—जेण शा वावादिदा, तं मालेध त्ति । ता लट्टिअशालअं ज्जेव अण्णेशम्ह । [**अरे, नन्वस्माकमीदृशी राजाज्ञप्तिः—येन सा व्यापादिता, तं मारयतेति । तद्राष्ट्रियश्यालमेवान्विष्यावः ।**]

चाण्डालः—जीवति वर्षशतम्=वर्षाणां शतं जीविष्यति कालमुखतो निःसरणात् ।

वसन्तसेना—(सहर्षम्=सानन्दम्) प्रत्युज्जीविताऽस्मि = चारुदत्तजीवनेनाहमपि जीविताऽस्मि, अन्यथा मम मरणमपि निश्चितमेवेति भावः ।

चाण्डालः—तत्=तस्माद्, यावदित्यवधारणे, एतत्=वर्त्तमानम्, वृत्तम्=वसन्तसेनागमनरूपवृत्तान्तम्, यज्ञवाटगतस्य=यज्ञशालायामुपस्थितस्य, राज्ञः पालकस्य, निवेदयावः=कथयावः ।

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रामतः=वहिर्गच्छतः ।)

शकारः—(वसन्तसेनां दृष्ट्वा=अवलोक्य, सत्रासम्=सभयम्) हीमादिके=शकारभाषायां भयविस्मयसूचकमव्ययम्, केन=कथम्, गर्भदासी=नीचकुलोत्पन्ना, जीवनम्=प्राणम्, प्रापिता=लब्धा ? मे=मम शकारस्य, प्राणाः=असून्, उत्क्रान्ताः=भिक्षुसाक्ष्यात् वसन्तसेनासाक्षात्काराच्च निर्गताः, भवतु=यातु, पलायिष्ये=पलायनं करिष्यामि । (इति=एवं निश्चित्य, पलायते=पलायनं करोति ।)

चाण्डालः—अरे=इति नीचसम्बोधने, अस्माकम्=नः, इदृशी=एतादृशी,

वसन्तसेना—(खुशी के साथ) इन्हें पाकर तो मैं फिर से जीवित हो गई ।

चाण्डाल—तो जब तक यह समाचार यज्ञशाला में गये हुए राजा से कह आऊँ।

(इतना कहकर बाहर निकल जाता है ।)

शकार—(वसन्तसेना को देखते ही डरकर) आश्चर्य है, इस गर्भदासी को किसने जिला दिया ? मेरे तो प्राण ही निकल रहे हैं । अच्छा, तो अब यहाँ से भागूँ। (इतना कह कर भाग जाता है ।)

चाण्डाल—(पास आकर) राजा का हुक्म है—'वसन्तसेना को जिसने मारा है, उसे मारो' तो अब राजा के साले शकार को ही खोजूं ।

(इति निष्क्रान्तौ ।)

चारुदत्तः—(सविस्मयम्)

केयमभ्युद्यते शस्त्रे मृत्युवक्त्रगते मयि ।
अनावृष्टिहते सस्ये द्रोणवृष्टिरिवागता ॥ ३९ ॥

(अवलोक्य च)

वसन्तसेना किमियं द्वितीया समागता सैव दिवः किमित्थम् ।
भ्रान्तं मनः पश्यति वा ममैनां वसन्तसेना न मृताऽथ सैव ॥ ४० ॥

राजाज्ञप्तिः=महीपतेः आदेशः, येन=पुरुषेण, सा=वसन्तसेना, व्यापादिता=मारिता, तम्=पुरुषम्, मारयत=व्यापादयत, तत्=तस्मात्, राष्ट्रीयश्यालम्=शकारम्, एवान्विष्याव:=मारयितुमन्वेषणं करिष्यावः ।

(इति=एवमुक्त्वा, निष्क्रान्तौ=निष्क्रमितुं प्रवृत्तौ ।)

चारुदत्तः—(सविस्मयम्=साश्चर्यम्)

अन्वयः—शस्त्रे, अभ्युद्यते, मयि, मृत्युवक्त्रगते, अनावृष्टिहते, सस्ये, द्रोणवृष्टिः, इव, इयम्, का, आगता ? ॥ ३९ ॥

केयमिति । शस्त्रे=कृपाणरूपायुधे, अभ्युद्यते=मद्वधार्थमुत्थापिते, मयि=चारुदत्ते मृत्युवक्त्रगते=कालमुखप्राप्ते, अनावृष्टिहते=अवर्षणेन हतप्राये, सस्ये=धान्यादौ, द्रोणवृष्टिः=अतिवृष्टिकरमेघविशेषः, इव=यथा, इयम्=पुरोवर्त्तमाना, का=नारी, आगता=उपस्थिता मां प्रत्युजीवयितुमित्यर्थः । श्रौती उपमा, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥ ३९ ॥

(च=पुनः, दृष्ट्वा=अवलोक्य)

अन्वयः—किम्, इयम्, द्वितीया, वसन्तसेना ? किम्, सा. एव, दिवः, इत्थम्, समागता ? वा, भ्रान्तम्, मनः, एनाम्, पश्यति ? अथवा, वसन्तसेना, न, मृता, सा, एव ॥ ४० ॥

वसन्तसेनेति । किमिति सन्देहे, इयम्=पुरोवर्त्तमाना, द्वितीया=अपरा, वसन्तसेना=तदाख्या मम प्रिया ? वा=अथवा, सा एव=वसन्तसेना एव, दिवः=स्वर्गात् इत्थम्=स्वदेहेनैव, समागता=अत्रोपस्थिता ? वा=अथवा, मम=चारुदत्तस्य,

---

(यह कहकर दोनों निकल जाते हैं ।)

चारुदत्त—(आश्चर्य के साथ) मेरे ऊपर प्रहार के लिए हथियार उठ चुकने पर एवं मुझे मौत के जबड़े में चले जाने पर, वर्षा के विना सूखी फसलों पर द्रोण वृष्टि की तरह यह कौन औरत आ गई है ? ॥ ३९ ॥

(देखकर) क्या यह दूसरी वसन्तसेना है ? या वही वसन्तसेना उसी देह से स्वर्ग उतर आई है अथवा—मेरा भ्रान्तमन इस औरत को वसन्तसेना समझ रहा है ? या वसन्तसेना मरी ही नहीं, वही सन्मुख खड़ी है ? ॥ ४० ॥

अथवा—

किं नु स्वर्गात्पुनः प्राप्ता मम जीवातुकाम्यया ।
तस्य रूपानुरूपेण किमुतान्येयमागता ॥ ४१ ॥

वसन्तसेना—(सास्रमुत्थाय, पादयोर्निपत्य) अज्जचालुदत्त ! सा ज्जेव अहं पावा, जाए कारणादो इअं तुए असरिसी अवत्था पाविदा । [**आर्यचारुदत्त ! सैवाहं पापा, यस्याः कारणादियं त्वयाऽसदृश्यवस्था प्राप्ता ।**]

(नेपथ्ये) अच्चरिअं, अच्चरिअं, जीवदि वसंतसेना । [**आश्चर्यमाश्चर्यं, जीवति वसन्तसेना ।**] (इति सर्वे पठन्ति ।)

चारुदत्तः—(आकर्ण्य, सहसोत्थाय स्पर्शसुखमभिनीय निमीलिताक्ष एव हर्षगद्गदाक्षरम्) प्रिये ! वसन्तसेना त्वम् ?

भ्रान्तम्=विक्षिप्तम्, मनः=चेतः, एनाम्=वसन्तसेनाम्, पश्यति=अवलोकयति ? अथवा=वा, वसन्तसेना=मम प्रिया, न=नहि, मृता=हता, सा=पुरोवर्त्तमाना, एव । अत्र सन्देहालङ्कारः, उपजातिः वृत्तञ्चेति ॥ ४० ॥

अन्वयः—मम, जीवातुकाम्यया, स्वर्गात्, पुनः, प्राप्ता, किन्नु ? उत्, तस्याः, रूपानुरूपेण, इयम्, अन्या, आगता, किम् ? ॥ ४१ ॥

किमिति । मम=चारुदत्तस्य, जीवातुकाम्यया=जीवनेच्छया, स्वर्गात्=देवलोकात्, पुनः=भूयः, प्राप्ता=आगता, किन्नु=इति वितर्के, उत=अथवा, तस्याः=वसन्तसेनायाः, रूपानुरूपेण=रूपसादृश्येनोपगता, इयम्=एषा, अन्या=अपरा, आगता=प्राप्ता, किमिति प्रश्ने । सन्देहालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तञ्चेति ॥४१॥

वसन्तसेना—(सास्रम्=सजलनेत्रम्, उत्थाय=उत्थिता भूत्वा, पादयोः=चरणयोः, निपत्य=पतित्वा) पापा=पापयुक्ता, यस्याः=वसन्तसेनायाः, कारणात्=हेतोः, त्वया=भवता, इयम्=एषा, असादृश्या=अयोग्या, अवस्था=दशा, प्राप्ता=लब्धा ।

(नेपथ्ये=वेशरचनागृहे) आश्चर्यम्=चमत्कारः, वसन्तसेना जीवति=जीविताऽस्ति । (इति=इत्थम्, सर्वे=सकलाः, पठन्ति ।)

अथवा—मेरी रक्षा के लिए स्वर्ग से लौट कर वही वसन्तसेना आई है क्या ? या उसकी आकृति से मिलती जुलती आकृति वाली यह कोई दूसरी औरत आ गई है क्या ? ॥ ४१ ॥

वसन्तसेना—(**डबडबायी आँखों से उठकर तथा चारुदत्त के पैरों पर गिरकर**) आर्य चारुदत्त मैं वही हतभाग्या वसन्तसेना हूँ जिसके कारण आपकी स्थिति ऐसी दयनीय बन गई है ।

(नेपथ्य में) चमत्कार है, चमत्कार, वसन्तसेना जीवित है । (सभी यही कहते हैं ।)

वसन्तसेना—सा ज्जेवाहं मंदभाआ । [सैवाहं मन्दभाग्या]

चारुदत्तः—(निरूप्य सहर्षम्) कथं वसन्तसेनैव ? (सानन्दम्)

कुतो बाष्पाम्बुधाराभिः स्नपयन्ती पयोधरौ ।
मयि मृत्युवशं प्राप्ते विद्येव समुपागता ॥ ४२ ॥

प्रिये वसन्तसेने !

त्वदर्थमेतद्विनिपात्यमानं देहं त्वयैव प्रतिमोचितं मे ।
अहो प्रभावः प्रियसङ्गमस्य मृतोऽपि को नाम पुनर्ध्रियेत ? ॥ ४३ ॥

चारुदत्तः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा, सहसा=अकस्मात्, स्पर्शसुखमभिनीय=स्पर्शजन्यानन्दमनुभूय, निमीलिते=अनुद्घाटिते, अक्षिणी=नेत्रे यस्य तादृशः, हर्षगद्गदाक्षरम्=सप्रसन्नकम्पायमानस्वरसंयुक्तवर्णम्) प्रिये=प्रियतमे, त्वम्=भवती, वसन्तसेना=एतदाख्या मम प्रियाऽस्ति किम् ?

वसन्तसेना—सैव=असावेव, अहम्=वसन्तसेना, मन्दभागिनी=हतभागिनी अस्मि ।

चारुदत्तः—(निरूप्य=दृष्ट्वा, सहर्षम्=समुदम्) कथमिति जिज्ञासायाम्, वसन्तसेनैव त्वम् । (सानन्दम्=सहर्षम्)

अन्वयः—मयि, मृत्युवशम्, प्राप्ते, बाष्पाम्बुधाराभिः, पयोधरौ, स्नपयन्ती, विद्या, इव, कुतः, समागता ॥ ४२ ॥

कुत इति । मयि=चारुदत्ते, मृत्युवशम्=कालस्याधिकारम्, प्राप्ते=गते सति, बाष्पाम्बुधाराभिः=नयनसलिलप्रवाहैः, पयोधरौ=कुचौ, स्नपयन्ती=क्षालयन्ती, विद्या=मृतसञ्जीवनीविद्या, इव=यथा कुतः=कस्मात् स्थानात्, समागता=सम्प्राप्तेति । श्रौती उपमालङ्कारः, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ४२ ॥

प्रिये=प्रियतमे, वसन्तसेने,

अन्वयः—त्वदर्थम्, विनिपात्यमानम्, मे, एतत्, देहम्, त्वया, एव, प्रतिमोचितम्, प्रियसङ्गमस्य, अहो, प्रभावः, मृतः, अपि, कः, नाम, पुनः, ध्रियेत ? ४३ ॥

त्वदर्थमिति । त्वदर्थम्=त्वद्वधापराधहेतो, विनिपात्यमानम्=वध्यमानम्, मे=

चारुदत्त—यह सुनते ही अकस्मात् उठकर वसन्तसेना कि अङ्गस्पर्शजन्य सुख का अनुभव करते हुए आँख बन्दकर प्रसन्न गद्गद चित्त से) प्रिये, क्या सचमुच तुम वसन्तसेना हो ?

वसन्तसेना—हाँ, आर्य, मैं वही अभागिन हूँ ।

चारुदत्त—(देखकर, खुशी के साथ) क्या वसन्तसेना ही हो ? (अतिप्रसन्न भाव से)

जब मैं मौत के मुंह में था तो अचानक ही आँसुओं की धाराओं से अपने दोनों स्तनों को भिगाती हुई, मृत संजीविनी विद्या की तरह तुम कहाँ से आ गई ॥ ४२ ॥

प्रिये वसन्तसेने, तुम्हारे कारण मारी जाती मेरी यह देह तुम्हारे द्वारा ही बचा

अपि च प्रिये ! पश्य—

रक्तं तदेव वरवस्त्रमियं च माला
कान्तागमेन हि वरस्य यथा विभाति ।
एते च वध्यपटहध्वनयस्तथैव
जाता विवाहपटहध्वनिभिः समानाः ॥ ४४ ॥

वसन्तसेना—अदिदक्खिणदाए किं ण्णेदं ववसिदं अज्जेण ? [**अतिदक्षिणतया किं न्विदं व्यवसितमार्येण ?**]

मम चारुदत्तस्य एतत्=तव पुरोवर्त्ति, देहम्=शरीरम्, त्वया=वसन्तसेनया, एव प्रतिमोचितम्=शूलादवतार्य रक्षितम्, प्रियसङ्गमस्य=प्रियजनसम्मेलनस्य, अहो=आश्चर्यजनकः, प्रभावः=सामर्थ्यम्, अन्यथा मृतः=हतः किं वा मृतकल्पः, अपि कः=पुरुषविशेषः, नाम=इति सम्भावनायाम्, पुनः=मुहुः, ध्रियेत=जीवेत् । अत्रार्थान्तरन्यासोऽलङ्कारः, उपजातिवृंत्तश्च ॥ ४३ ॥

अपि च=अन्यच्च, प्रिये=प्रियतमे ! पश्य=अवलोकय—

अन्वयः—कान्तागमेन, तदेव, रक्तम्, वरवस्त्रम्, इयम्, माला, च, वरस्य, यथा, हि, विभाति, च, तथैव, एते, वध्यपटहध्वनयः, विवाहपटहध्वनिभिः, समानाः, जाताः ॥ ४४ ॥

रक्तमिति । कान्तागमेन=भार्य्यायाः प्राप्त्या, तदेव=प्रथमं वध्यचिह्नभूतम्, रक्तम्=रक्तवर्णम्, वरवस्त्रम्=परिणेतुः, रक्तवर्णवस्त्रम्, वा श्रेष्ठवध्यवस्त्रम्, इयम्=एषा, माला=स्रक्, च=अपि, वरस्य=परिणेतुः, यथा=येन प्रकारेण, हि=यतः, विभाति=शोभते, तथैव=तेनैव प्रकारेण, एते=श्रूयमाणाः, वध्यपटहस्य=प्राणदण्डप्राप्तजनस्य वधकाले वाद्यमानानकस्य, ध्वनयः=शब्दाः, विवाहपटहध्वनिभिः=विवाहकाले वाद्यमानपटहशब्दैः, समानाः=तुल्याः, जाताः=सम्पन्नाः । अत्रोपमालङ्कारः, वसन्ततिलकावृत्तञ्चेति ॥ ४४ ॥

वसन्तसेना—अतिदक्षिणतया=अतिसरलस्वभावतया, किन्नु=कथन्नु, इदम्=आत्मवधनिमित्तकं कार्यम्, व्यवसितम्=अनुष्ठितम्, आर्येण=मान्यचारुदत्तेन—

ली गई । आह, प्रियजन का मिलना भी कितना प्रभावकारी होता है ? मर कर भी भला अब तक कोई जी सका है ॥ ४३ ॥

और भी, प्रिये देखो—प्रियतमा की प्राप्ति के समय, या विवाहकाल में जिस प्रकार वर की सजावट होती है, उसी प्रकार लाल लाल देखो मेरे सुन्दर वस्त्र हैं तथा वैसी ही माला भी है । बधकालीन नगाड़े की आवाज तो ठीक विवाह कालीन बाजे की तरह ही लग रही है ॥ ४४ ॥

वसन्तसेना—आपने अपनी अत्यधिक भलमनसाहत के कारण ही ऐसा क्यों कर लिया ?

चारुदत्तः—प्रिये ! त्वं किल मया हतेति—

पूर्वानुबद्धवैरेण शत्रुणा प्रभविष्णुना।
नरके पतता तेन मनागस्मि निपातितः ॥ ४५ ॥

वसन्तसेना—(कर्णौ पिधाय) संतं पावं । तेण म्हि राअसालेण वावादिदा। [**शान्तं पापम् । तेनास्मि राजश्यालेन व्यापादिता ।**]

चारुदत्तः—(भिक्षुं दृष्ट्वा) अयमपि कः ?

वसन्तसेना—तेण अणज्जेण वावादिदा, एदिणा अज्जेण जीवाविदम्हि । [**तेनानार्येण व्यापादिता; एतेनार्येण जीवं प्रापितास्मि ।**]

चारुदत्तः—कस्त्वमकारणबन्धुः ?

चारुदत्त—प्रिये=हे प्रियतमे, त्वम्=भवती, किल=निश्चयेन, मया=चारुदत्तेन, हता=मारिता—

अन्वयः—पूर्वानुबद्धवैरेण, प्रभविष्णुना, नरके, पतता, तेन, शत्रुणा, मनाक्, निपातितः अस्मि ॥ ४५ ॥

पूर्वेति । पूर्वम्=पूर्वकालादेव, अनुबद्धम्=आरोपितम्, वैरम्=शत्रुत्वम् येन तादृशेन, प्रभविष्णुना=राजश्यालत्वेन शक्तिशालिना, नरके=निरये, पतता=पतनं गच्छता, तेन=शकारेण, शत्रुणा=वैरिणा, मनाक्=किञ्चित्, निपातितः=कलङ्कितः अस्मि । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ४५ ॥

वसन्तसेना—(कर्णौ=श्रवणौ, पिधाय=आवृत्य) शान्तं पापम्=नैवं वाच्यम्, तेन=पूर्वोक्तेन, राजश्यालेन=शकारेण, व्यापादिता=मारिता, अस्मि=अहमस्मि ।

चारुदत्तः—(भिक्षुम्=बौद्धभिक्षुम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य) अयमपि=एषः जनोऽपि, कः=पुरुषः ?

वसन्तसेना—तेन=शकारेण, अनार्येण=असभ्येन, व्यापादिता=मारिता, अनेन =संन्यासिना, आर्येण=मान्येन, जीविता=जीवनं प्रापितेति ।

चारुदत्तः—कः=पुरुषविशेषः, त्वम्=भवान्, अकारणं=अहेतुकं, बन्धुः= मम मित्रम् ?

चारुदत्त—तुम जो मुझसे मारी गई ।

पहले से ही वैर साधने वाले, अत्यन्तशक्तिशाली, नरकगामी शत्रु शकार ने जो मुझे कलंकित कर दिया ॥ ४५ ॥

वसन्तसेना—(**दोनों कान ढँककर**) ऐसा नहीं हो सकता । राजा के साले उस नीच शकार ने मेरी हत्या की थी ।

चारुदत्त—(**भिक्षु को देखकर**) ये महाशय कौन हैं ?

वसन्तसेना—उस नीच शकार ने मेरी हत्या की और इस महाशय ने मेरी जान बचाई है ।

चारुदत्त—अकारण बन्धु तुम कौन हो ?

भिक्षुः—ण पच्चभिजाणादि मं अज्जो ? अहं शे अज्जश्श चलणशंवाहचिंतए शंवाहके णाम। जूदिअलेहिं गहिदे एदाए उवाशिकाए अज्जश्श केलके त्ति अलंकालपणणिक्कीदे म्हि। तेण अ जूदणिव्वेदेण शक्कशमणके शंवुत्ते म्हि। एशा वि अज्जा पवहणविपज्जाशेण पुप्फकलंडकजिण्णुज्जाणं गदा। तेण अ अणज्जेण ण मं बहु मण्णेशि त्ति बाहुपाशबलक्कालेण मालिदा मए दिट्ठा। [**न प्रत्यभिजानाति मामार्यः ? अहं स आर्यस्य चरणसंवाहचिन्तकः संवाहको नाम द्यूतकरैर्गृहीत एतयोपासिकयाऽऽर्यस्यात्मीय इत्यलङ्कारपणनिष्क्रीतोऽस्मि। तेन च द्यूतनिर्वेदेन शाक्यश्रमणकः संवृत्तोऽस्मि। एषाऽप्यार्या प्रवहणविपर्यासेन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं गता। तेन चानार्येण न मां बहुमन्यसे इति बाहुपाशबलात्कारेण मारिता मया दृष्टा।**]

(नेपथ्ये कलकलः।)

भिक्षुः—आर्यः=मान्यः, न=नहि, माम्=उपस्थितजनम्, प्रत्यभिजानाति=परिचिनोति ? अहं सः आर्यस्य=भवतः, चरणसंवाहचिन्तकः=पादमर्द्दनविचारकः, संवाहको नाम=एतदाख्यसेवकः, द्यूतकरैः=अक्षक्रीडकैः, गृहीतः=धृतः। एतया=सन्मुखोपस्थितया, उपासिकया=बुद्धोपासिकया वसन्तसेनया, आर्यस्य=भवतः, आत्मीयः=स्वकीयः जनः इति ज्ञात्वा, अलङ्कारपणः=निष्क्रियीभूतं द्रव्यम्, तदर्पणेन निष्क्रीतोऽस्मि=अवक्रीतोऽस्मि। तेन=कारणेन, द्यूतनिर्वेदेन=कैतवकृतसंसारत्यागेच्छया, शाक्यश्रमणकः=बौद्धसन्यासी, संवृतः=संजातः, अस्मि=भवामि। एषा=पुरोवर्त्तमाना, अपि=चेत्, आर्या=वसन्तसेना, प्रवहणविपर्यासेन=शकटपरिवर्त्तनेन पुष्पकरण्डकजीर्णोद्यानं गता। तेन=शकारेण, अनार्येण=दुष्टेन, न मां बहुमन्यसे=माम् किमपि न गण्यते, इति=एवमुक्त्वा, बाहुपाशबलात्कारेण=बाहुभ्यां गृहीत्वा बलपूर्वकेन, कण्ठनिपीडनेनेत्यर्थः, मारिता=व्यापादिता, मया=संन्यासिना, दृष्टा=अवलोकितेति भावः।

(नेपथ्ये कलकलः=वेशरचनागृहे ध्वनिः।)

भिक्षु—आर्य, आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं ? आपके चरण दबाने की चिन्ता करने वाला आपका सेवक मैं संवाहक हूँ। एक बार कुछ जुआरियों ने मुझे पकड़ लिया था। इस उपासिका वसन्तसेना को जब यह पता चला कि मैं आपका सेवक हूँ तो इन्होंने हारे हुए धन के स्थान पर आभूषण देकर मुझे छुड़ा लिया था। उसी जुए के दुःख से मैं बौद्धसंन्यासी हो गया। यह आर्या गाड़ी बदल जाने के कारण पुष्पकरण्डक जीर्णोद्यान में पहुँच गई, जहां उस दुष्ट शकार ने—मुझे तुम नहीं चाहती हो, ऐसा कहकर बाँहों में जकड़ लिया और इनकी हत्या कर दी। यह मैंने अपनी आँखों देखा है।

(नेपथ्य में कोलाहल।)

जयति वृषभकेतुर्दक्षयज्ञस्य हन्ता
तदनु जयति भेत्ता षण्मुखः क्रौञ्चशत्रुः ।
तदनु जयति कृत्स्नां शुभ्रकैलासकेतुं
विनिहतवरवैरी चार्यको गां विशालाम् ।। ४६ ।।

(प्रविश्य, सहसा ।)

शर्विलकः—

हत्वा तं कुनृपमहं हि पालकं भो-
स्तद्राज्ये द्रुतमभिषिच्य चार्यकं तम् ।
तस्याज्ञां शिरसि निधाय शेषभूतां
मोक्ष्येऽहं व्यसनगतं च चारुदत्तम् ।। ४७ ।।

अन्वयः—दक्षयज्ञस्य, हन्ता, वृषभकेतुः, जयति । तदनु, भेत्ता, क्रौञ्चशत्रुः, षण्मुखः, जयति । तदनु, विनिहतवरवैरी, आर्यकः, च, शुभ्रकैलाशकेतुम्, कृत्स्नाम्, विशालाम्, गाम्, जयति ।। ४६ ।।

जयतीति । दक्षयज्ञस्य=प्रजापतेः यागस्य, हन्ता=विध्वंशकर्त्ता, वृषकेतुः= वृषभध्वजः, जयति=सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । तदनु=तत्पश्चात्, भेत्ता=शत्रुविदारकः, क्रौञ्चशत्रुः=क्रौञ्चाख्यपर्वतविदारकः, षण्मुखः=कार्त्तिकेयः, जयति=विजयते, तदनु=तदनन्तरम्, विनिहतवरवैरी—विनिहतः=विघातितः, वरः=प्रमुखः, वैरी= शत्रुः पालकः येन सः, आर्यकः=गोपालदारकः, च=पुनः, शुभ्रकैलाशकेतुम्=धवल-कैलाशपर्वत एव केतुः=पताका यस्याः तादृशीम्, कृत्स्नाम्, विशालाम्=विस्तृताम्, गाम्=पृथ्वीम्, जयति=सर्वतोभावेन विजयताम् ।। मालिनी वृत्तम् ।। ४६ ।।

(प्रविश्य=प्रवेशङ्कृत्वा, सहसा=हठात्)

अन्वयः—भोः, अहम्, हि, तम्, कुनृपम्, हत्वा, तद्राज्ये, द्रुतम्, तम्, आर्यकम्, अभिषिच्य, च, तस्य, शेषभूताम्, आज्ञाम्, शिरसि, निधाय, व्यसनगतम्, चारुदत्तम्, मोक्ष्ये ।। ४७ ।।

हत्वेति । भोः=लोकाः, अहम्=शर्विलकः, तम्=प्रख्यातम्, कुनृपम्=कुत्सित-भूपतिम्, हत्वा=व्यापाद्य, तद्राज्ये=तस्य राज्ये, द्रुतम्=शीघ्रम्, तम्=पूर्वोक्तम्,

---

दक्षयज्ञविनाशक वृषभध्वज महादेव की जय हो । इसके बाद शत्रुहन्ता क्रौञ्च-विदारक, कुमार कार्त्तिकेय की विजय हो । फिर, अपने प्रधान शत्रु पालक को मारने वाला राजा आर्यक जिसकी धवल कैलास ही पताका है, इस विशाल धरती को जीत कर जयी बने ।। ४६ ।।

(सहसा प्रवेश कर)

शर्विलक—मैं दुष्ट राजा पालक को मारकर, उसकी गद्दी पर आर्यक को अभिषिक्त कर, उसकी अवशिष्ट आज्ञा माथे पर रखकर अब मैं चारुदत्त का उद्धार करूँगा ।। ४७ ।।

हत्वा रिपुं तं बलमन्त्रिहीनं पौरान्समाश्वास्य पुनः प्रकर्षात् ।
प्राप्तं समग्रं वसुधाधिराज्यं राज्यं बलारेरिव शत्रुराज्यम् ॥ ४८ ॥

(अग्रतो निरूप्य) भवतु, अत्र तेन भवितव्यम्, यत्रायं जनपदसमवायः । अपि नामायमारम्भः क्षितिपतेरार्यकस्यार्यचारुदत्तस्य जीवितेन सफलः स्यात् ? (त्वरिततरमुपसृत्य) अपयात जाल्माः ! (दृष्ट्वा, सहर्षम्) अपि ध्रियते चारुदत्तः सह वसन्तसेनया ? सम्पूर्णाः खल्वस्मत्स्वामिनो मनोरथाः ।

दिष्टया भो व्यसनमहार्णवादपारा-
दुत्तीर्णं गुणधृतया सुशीलवत्या ।

आर्यकम्=गोपदारकम्, अभिषिच्य=राज्याभिषेकं कृत्वा, च=पुनः, तस्य=राज्ञः, शेषभूताम्=अन्तिमाम्, आज्ञाम्=आदेशम्, शिरसि=मस्तके, निधाय=धृत्वा, अहम्=शर्विलकः, व्यसनगतम्=विपत्तौ पतितम्, चारुदत्तम्=एतदाख्यब्राह्मणम्, मोक्ष्ये=मोक्षयिष्यामि । श्रौती उपमा, इन्द्रवज्रा वृत्तञ्चेति ॥ ४७ ॥

अन्वयः—प्रकर्षात्, बलमन्त्रिहीनम्, तम्, रिपुम्, हत्वा, पुनः, पौरान्, समाश्वास्य, बलारेः, राज्यम्, इव, वसुधाधिराज्यम्, समग्रम्, शत्रुराज्यम्, प्राप्तम् ॥ ४८ ॥

हत्वेति । प्रकर्षात्=भाग्योदयात्, बलमन्त्रिहीनम्=सैन्यामात्यरहितम्, तम्=पूर्वोक्तं पालकनामकम्, रिपुम्=शत्रुम्, हत्वा=व्यापाद्य, पुनः=मुहुः, पौरान्=पुरवासिनः, समाश्वास्य=अभयदानेनाश्वस्तं कृत्वा, बलारेः=इन्द्रस्य, राज्यम्=साम्राज्यम्, इव=यथा, वसुधाधिराज्यम्=पृथिव्याः स्वाम्यम्, समग्रम्=सम्पूर्णम्, शत्रुराज्यम्=पालकस्य साम्राज्यम्, प्राप्तम्=अधिगतम् ॥ ४८ ॥

(अग्रतः=सन्मुखे, निरूप्य=दृष्ट्वा,) भवतु=यातु, अत्र=अस्मिन् स्थाने, तेन=चारुदत्तेन, भवितव्यम्=स्थातव्यम्, यत्र=यस्मिन् स्थाने, अयम्=एषः, जनपदसमवायः=जनसमूहः । अपि नाम, आरम्भः=कार्यं:, क्षितिपतेः=पृथ्वीपतेः, (त्वरिततरम्=शीघ्रतरम्, उपसत्य=समीपमागत्य) अपयात=पलायत, जाल्माः=पामराः, ध्रियते=प्राणान् धारयति, अस्मत् स्वामिनः=आर्यकस्य, मनोरथाः=इच्छा ।

अन्वयः—भोः, दिष्टया, गुणधृतया, सुशीलवत्या, नावा, इव, प्रियतमया, अपा-

---

सेना और मन्त्रियों से हीन पालक को मारकर सिद्धों के कथनानुसार प्रबल योग से आर्यक राजा बना । पुरवासियों को आश्वस्त कर, इन्द्र के राज्य के समान सर्व-श्रेष्ठ पालक का राज्य आर्यक ने प्राप्त कर लिया ॥ ४८ ॥

(**आगे की ओर देखकर**) आर्य चारुदत्त को यहीं कहीं होना चाहिए । यहाँ लोगों भीड़ लगी है राजा पालक का राज्यारम्भ चारुदत्त की रक्षा से ही प्रारम्भ हो । (**शीघ्र पहुँचकर**) वधिको, हटो (**देखकर, खुशी के साथ**) क्या वसन्तसेना के साथ चारुदत्त जीवित हैं ? मेरे स्वामी आर्यक का मनोरथ पूरा हो गया ।

नावेव प्रियतमया चिरान्निरीक्षे
ज्योत्स्नाढ्यं शशिनमिवोपरागमुक्तम् ॥ ४९ ॥

तत्कृतमहापातकः कथमिवैनमुपसर्पामि ? (अथवा) सर्वत्रार्जवं शोभते। (प्रकाशमुपसृत्य, बद्धाञ्जलिः) आर्यचारुदत्त !

चारुदत्तः—ननु को भवान् ?

शर्विलकः—

येन ते भवनं भित्वा न्यासापहरणं कृतम्।
सोऽहं कृतमहापापस्त्वामेव शरणं गतः ॥ ५० ॥

रात्, व्यसनमहार्णवात्, उत्तीर्णम्, उपरागमुक्तम्, ज्योत्स्नाढ्यम्, शशिनम्, इव, चिरात्, निरीक्ष्ये ॥ ४९ ॥

दिष्ट्येति। भोः=जनाः, दिष्टया=भाग्येन, गुणधृतया=दयादिभिः, पक्षे—रज्जुभिः आकृष्टया, सुशीलवत्या=सुन्दरस्वभावसम्पन्नया, नावा=नौकया, इव=यथा, प्रियतमया=वसन्तसेनया, अपारात्=अनुलङ्घनीयात्, व्यसनमहार्णवात्=विपत्सागरात्, उत्तीर्णम्=पारङ्गतम्, उपरागमुक्तम्=निवृत्तग्रहम्, ज्योत्स्नाढ्यम्=चन्द्रिकोज्ज्वलम्, शशिनम्=चन्द्रम्, इव=यथा, चिरात्=बहोः कालात्परम्, निरीक्ष्ये=पश्यामि। अत्रोपमा, श्लेषरूपकालङ्कारााणि, प्रहर्षिणीवृत्तञ्चेति ॥ ४९ ॥

तत्=तस्मात्, कृतमहापातकः, कृतम्=सम्पादितम्, महापातकम्=स्तेयरूपं महापापम्, स्तेयस्य महापातकेषु गणना भवति, अस्यैव चारुदत्तस्य सदने स्तेयं सम्पाद्यास्यैव समीपे गन्तुं लज्जामनुभवति। तेन कथम्=केन प्रकारेण, एनम्=चारुदत्तम्, उपसर्पामि=समीपं गच्छामि। अथवा=किंवा, सर्वत्र=सर्वस्मिन्स्थाने, आर्जवम्=ऋजोर्भावः अर्थात् सारल्यम्, शोभते=सुष्ठुप्रतिभाति (प्रकाशम्=सर्वश्राव्यम्, उपसृत्य=चारुदत्तसमीपं गत्वा, वद्धाञ्जलिः=करबद्धो भूत्वा) आर्यचारुदत्त=हे मान्यचारुदत्त—

चारुदत्तः—ननु=प्रश्नसूचकवलार्थमव्ययम्, कः=पुरुषविशेषः, भवान्=त्वम् ?

अन्वयः—येन, ते, भवनम्, भित्वा, न्यासापहरणम्, कृतम्, सः कृतमहापापः, अहम्, त्वामेव, शरणम्, गतः ॥ ५० ॥

सौभाग्य से सद्गुणों से आकृष्ट सुन्दर स्वभाव वाली नौका के समान प्रियतमा वसन्तसेना के द्वारा अपार विपत्तिसागर से पार हुए चारुदत्त को राहुमुख से मुक्त चाँदनीयुक्त चन्द्रमा की तरह बहुत दिनों के बाद देख रहा हूँ ॥ ४९ ॥

महापाप करने वाला मैं भला इनके पास कैसे जाऊँ ? (**अथवा**) सरलता सब जगह शोभा पाती है। (**सामने आकर तथा हाथ जोड़कर, प्रकट में**) आर्य चारुदत्त !

चारुदत्त—आप कौन हैं ?

शर्विलक—जिसने आप के घर की दीवार में सेंध लगाकर धरोहर की चोरी की थी, वही आदमी आज आपकी शरण में आया हूँ ॥ ५० ॥

चारुदत्तः—सखे ! मैवम् । त्वया असौ प्रणयः कृतः । (इति कण्ठे गृह्णाति ।)

शर्विलकः—अन्यच्च ।

आर्यकेणार्यवृत्तेन कुलं मानञ्च रक्षता ।
पशुवद्यज्ञवाटस्थो दुरात्मा पालको हतः ॥ ५१ ॥

चारुदत्तः—किम् ?

शर्विलकः—

त्वद्यानं यः समारुह्य यतस्त्वां शरणं पुरा ।
पशुवद्वितते यज्ञे हतस्तेनाद्य पालकः ॥ ५२ ॥

येनेति । येन=शर्विलकेन, ते=चारुदत्तस्य, भवनम्=सदनम्, भित्वा=भित्तिं-विदार्य, न्यासापहरणम्=निक्षेपस्य चौर्यम्, कृतम्=सम्पादितम्, सः=असौ शर्विलकः, कृतमहापातकः=विहितमहत्पातकम् । तदुक्तं मनुना—"ब्रह्महत्यासुरापानम् स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सहेति ।" इति । अहम्=शर्विलकः, त्वामेव=चारुदत्तमेव, शरणम्=रक्षितारम्, गतः=प्राप्तः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५० ॥

चारुदत्तः—सखे=हे मित्र, मैवम्=चौर्येण हेतुनाऽऽत्मनोऽवमानना न कर्त्तव्यः । त्वया=भवता, असौ=चौर्यं, प्रणयः=स्नेहः, कृतः=सम्पादितः । (इति=एवमुक्त्वा, कण्ठे=गलप्रदेशे, गृह्णाति=आलिङ्गनङ्करोति ।)

शर्विलकः—अन्यच्च=अपरञ्चेति—

अन्वयः—आर्यवृत्तेन, कुलम्, मानम्, च, रक्षता, आर्यकेण, यज्ञवाटस्थः, दुरात्मा, पालकः, पशुवत्, हतः ॥ ५१ ॥

आर्यकेणेति । आर्यवृत्तेन=पवित्राचरणेन, कुलम्=वंशम्, च=पुनः, मानम्=आत्मगौरवम्, रक्षता=पालयता, आर्यकेण=गोपदारकेण, यज्ञवाटस्थः=यज्ञशालायां स्थितः, दुरात्मा=दुष्टप्रकृतिः, पालकः=तदाख्यनृपतिः, पशुवत्=छागादिवत्, हतः=मारितः । आर्थी उपमा, पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५१ ॥

चारुदत्तः—किमिति जिज्ञासायाम् ?

अन्वयः—यः, पुरा, त्वत्, यानम्, समारुह्य, त्वाम्, शरणम्, गतः । तेन, अद्य, वितते, यज्ञे, पालकः, पशुवत्, हतः ॥ ५२ ॥

चारुदत्त—मित्र, ऐसा नहीं कहते । तुमने तो उस दिन भी कृपा ही की थी । **(यह कहकर उसे गले लगाता है ।)**

शर्विलक—और भी—

साधु चरित वाले आर्यक ने कुल और मान की रक्षा करते हुए यज्ञशाला में पशु की तरह आज राजा पालक को मार डाला ॥ ५१ ॥

चारुदत्त—क्या कहा ?

शर्विलक—कुछ दिन पहले आपकी ही गाड़ी पर चढ़कर जो आप की शरण में

चारुदत्त.—शर्विलक ! योऽसौ पालकेन घोषादानीय निष्कारणं कूटागारे वद्ध आर्यकनामा त्वया मोचितः ?

शर्विलकः—यथाह तत्रभवान् ।

चारुदत्तः—प्रियं नः प्रियम् ।

शर्विलकः—प्रतिष्ठितमात्रेण तव सुहृदार्यकेणोज्जयिन्यां वेणातटे कुशावत्यां राज्यमतिसृष्टम् । तत् प्रतिमान्यतां प्रथमः सुहृत्प्रणयः । (परिवृत्य) अरे रे ! आनीयतामयं पापी राष्ट्रियशठः ।

त्वदिति । यः=आर्यकः, पुरा=पूर्वम्, त्वत्=भवतः, यानम्=वसन्तसेनायै योजितं शकटम्, समारुह्य=आरोहणं कृत्वा, त्वाम्=चारुदत्तम्, शरणम्=आश्रयम्, गतः=प्राप्तः, तेन=आर्यकेण, अद्य=अस्मिन्नेव दिने, वितते=विशाले, यज्ञे=मखे, पालकः=भूतपूर्वः राजा, पशुवत्=यथा यज्ञे पशुः हन्यते तद्वत्, हतः=विनाशितः । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५२॥

चारुदत्तः—शर्विलक, इति सम्बोधनम्, यः असौ=आर्यकः, पालकेन=भूतपूर्वराज्ञा, घोषात्=आभीरपल्याः, आनीय=गृहीत्वा, निष्कारणम्=अकारणम्, कूटागारे=कारागारे, बद्धः=शृङ्खलितः, त्वया=शर्विलकेन, मोचितः=कारागारात् निःसारितः ।

शर्विलकः—यथा=येन प्रकारेण, तत्रभवान्=पूज्यः, आह=उक्तवान् तथैव ।

चारुदत्तः—प्रियम्=अभिलषितम्, नः=अस्माकिम्, प्रियम् ।

शर्विलकः—प्रतिष्ठितमात्रेण=राजसिंहासने अभिषिक्तमात्रेण, तव=भवतः, सुहृदा=मित्रेण, आर्यकेण=गोपदारकेण, उज्जयिन्याम्=एतदाख्यनगर्याम्, वेणायाः=एतदाख्यनद्याः, तटे वर्त्तमानायाम्, कुशावत्याम्=तन्नाम्ना प्रसिद्धायाम् नगर्याम्, राज्यं अतिसृष्टम्=सङ्कल्पादिकं कृत्वा भवते दत्तम् । तत्=तस्मात्, प्रतिमान्यताम्=आद्रियताम्, सुहृदः=मित्रस्य, प्रणयः=प्रार्थना । (परिवृत्य=परावर्त्तनं कृत्वा)

आया था उसी आर्यक ने आज उस विशाल यज्ञशाला में बलि बकरे की तरह पालक को मार डाला ॥ ५२ ॥

चारुदत्त—शर्विलक, जिस आर्यक को अकारण पालक ने घर से खींच कर कारागार में डाल दिया था और जिसे जेल से तुमने मुक्त किया था ?

शर्विलक—हाँ, जैसा आप कह रहे हैं ?

चारुदत्त—हमारे लिए, बड़ा ही सुखद समाचार है ।

शर्विलक—उज्जयिनी के राज्य सिंहासन पर बैठते ही राजा आर्यक ने सर्वप्रथम वेणा नामक नदी के किनारे स्थित कुशावती नगरी का राज्य विधिवत् आप को समर्पित किया है । अतः अपने मित्र का यह पहला अनुरोध आप स्वीकार करें । (घूमकर) हाँ रे पालक के साले नीच शकार को पकड़कर सामने हाजिर करो ।

(नेपथ्ये) यथाज्ञापयति शर्विलकः।

शर्विलकः—आर्य ! नन्वयमार्यको राजा विज्ञापयति; इदं मया युष्मद्-गुणोपार्जितं राज्यम्, तदुपयुज्यताम् ।

चारुदत्तः—अस्मद्गुणोपार्जितं राज्यम् ।

(नेपथ्ये) अरे रे राष्ट्रियश्यालक ! एह्येहि। स्वस्याविनयस्य फलमनुभव ।

(ततः प्रविशति पुरुषैरधिष्ठितः पश्चाद्बाहुबद्धः शकारः ।)

शकारः—हीमादिके ! [हन्त !]

एव्वं दूलमदिक्कन्ते उद्दामे विअ गद्दहे।
आणीदे क्खु हगे बद्ध हुडे अण्णे व्व दुक्कले ॥ ५३ ॥

अरे रे=आश्चर्यसूचकमव्ययम्, आनीयताम्=समर्पय, अयम्=एषः, पापी=अधर्मी, राष्ट्रीयशठः=दुरात्मा शकारः ।

(नेपथ्ये=रंगशालायाम्) यथा=येन प्रकारेण, शर्विलकः=एतदाख्यः पुरुषः, आज्ञापयति=आदिशति ।

शर्विलकः—आर्य=हे मान्य, ननु=इत्यव्ययम्, अयम्=एषः, राजा=नृपतिः, विज्ञापयति=सूचयति, इदम्=राज्यम्, मया=आर्यकेण, युष्माकम्=चारुदत्तस्य, पूज्यत्वाद् बहुवचनम्, गुणेन=कृपया, उपार्जितम्=अधिकृतम्, तत्=तस्मात्, उपयुज्यताम्=उपभोगः क्रियताम् ।

चारुदत्तः—अस्माकम् गुणेन=शक्त्या, उपार्जितम्=अर्जितम् । काक्वा अधिक्षिपति नास्मद्गुणोपार्जितम् ।

(नेपथ्ये=वेशरचनागृहे) एहि एहि=समागच्छ, अविनयस्य=स्वकृतधृष्टतायाः, फलम्=परिणामं, अनुभव=प्राप्तं कुरु ।

(ततः=तत्पश्चात्, पुरुषैः=शर्विलकानुचरैः, अधिष्ठितः=
धृतः, पश्चात्=पृष्टदेशे, बाहुबद्धः शकारः ।)

शकारः—हीमादिके=हन्त,

अन्वयः—उद्दामः, गर्दभः, इव, एवम्, दूरम्, अतिक्रान्तम्, अहम्, खलु, आनीतः, (तथा) दुष्करः, अन्यः, कुक्कुरः, इव, बद्धः ॥ ५३ ॥

(**नेपथ्य में**) शर्विलक के आदेशानुसार ही करो ।

शर्विलक—आर्य, राजा आर्यक सूचित करते हैं कि—मैंने इस राज्य को आपके ही बल पर प्राप्त किया है, अतः इस राज्य का उपभोग आप ही करें ।

चारुदत्त—क्या कहा, हमारे बल से राज्य प्राप्त किया ?

(**नेपथ्य में**) अरे ओ राजा के साले शकार, आओ, आओ, अपनी करनी का फल भोगो ।

(इसके बाद पीठ पर उलटा कर हाथ बाँधकर शकार को कुछ लोग मंच पर ले आते हैं ।)

शकार—हाय,

[एवं दूरमतिक्रान्तः उद्दाम इव गर्दभः।
आनीतः खल्वहं बद्धः कुक्कुरोऽन्य इव दुष्करः ॥]

(दिशोऽवलोक्य) शमन्तदो उवट्ठिदे एशे लट्ठिअबन्धू। ता कं दाणि अशलणे शलणं वजामि ? (विचिन्त्य) भोदु, तं ज्जेव अब्भुववण्ण-शलणं-वच्छलं गच्छामि। (इत्युपसृत्य) अज्जचालुदत्त ! पलित्ताआहि, पलित्ताआहि। (इति पादयोः पतति ।) [**समन्तत उपस्थित एष राष्ट्रियबन्धुः तत् कमिदानीमशरणः शरणं व्रजामि ? भवतु, तमेव अभ्युपपन्नशरणवत्सलं गच्छामि। आर्यचारुदत्त ! परित्रायस्व परित्रायस्व ।**]

(नेपथ्य) अज्जचालुदत्त ! मुंच मुंच, वावादेम्ह एदं। [**आर्यचारुदत्त ! मुञ्च, मुञ्च । व्यापादयाम एतम् ।**]

शकारः—(चारुदत्तं प्रति) भो अशलणशलणे ! पलित्ताआहि। [**भो अशरणशरण ! परित्रायस्व ।**]

एवमिति । उद्दामः=बन्धनविनिर्मक्तः, गर्दभः=खरः, इव=यथा, एवम्=इत्थम्, दूरम्=निवासदेशाद्दूरम्, अतिक्रान्तः=पलायितः, अहम्=शकारः, खलु=निश्चितम्, आनीतः=उपस्थापितः, तथा दुष्करः=अतिक्रूरः, अन्यः=अपरः, कुक्कुरः=श्वा, इव=यथा, बद्धः=संयमितोऽस्मि, पथ्यावक्त्रं वृत्तम्, उपमाऽलङ्कारश्चेति ॥ ५३ ॥

(दिशः=आशाः, अवलोक्य=दृष्ट्वा) समन्ततः=सर्वतः, उपस्थितः=वर्त्तमानः, एषः=असौ, राष्ट्रियबन्धुः=राज्ञः पालकस्य बन्धुसमूहः, शकारस्य शत्रुसमूहः इत्यर्थः। तत्=तर्हि, कम्=पुरुषम्, इदानीम्=अधुना, अशरणः=रक्षकरहितः, शरणम्=आश्रयम्, व्रजामि=गच्छामि ? (विचिन्त्य=विचार्य) भवतु=यातु, तमेव=चारुदत्तमेव, अभ्युपपन्नशरणवत्सलम्=शरणागतरक्षकम्, गच्छामि=यामि। आर्यचारुदत्त, परित्रायस्व=रक्षां कुरु।

(नेपथ्ये=रङ्गशालायाम्) आर्यचारुदत्त, मुञ्च=त्यजताम्, एतम्=दुष्टशकारम् । वयम्, व्यापादयामः=मारयामः ।

बन्धन तोड़कर दूर भागे हुए गदहे को लोग जैसे पकड़ लाते हैं उसी तरह मुझे पकड़ कर ले आया गया है और वदतमीज कुत्ते की तरह बांधकर छोड़ दिया गया है ॥ ५३ ॥

(**चारों ओर देखकर**) हाय, सब ओर राजा आर्यक के ही आत्मीय दिखाई पड़ रहे हैं। तो इस विपत्ति में मैं किसकी शरण जाऊँ। (**कुछ सोचकर**) अच्छा, तो अब मैं उसी शरणवत्सल की शरण में जाता हूँ। (**पास जाकर**) आर्य चारुदत्त, रक्षा करो, रक्षा करो। (**पैरों पर गिर जाता है।**)

(**नेपथ्य में**) आर्यचारुदत्त, आप इसे छोड़ दें—हम लोग इसे जिन्दा नहीं छोड़ेंगे।

शकार—(**चारुदत्त के प्रति**)ओ आश्रयहीनों के आश्रयदाता, मेरी रक्षा करो।

चारुदत्तः—(सानुकम्पम्) अहह ! अभयमभयं शरणागतस्य ।

शर्विलकः—(सावेगम्) आः, अपनीयतामयं चारुदत्तपार्श्वात् । (चारुदत्तं प्रति) ननु, उच्यतां किमस्य पापस्यानुष्ठीयतामिति ।

आकर्षन्तु सुबद्ध्वैनं ? श्वभिः संखाद्यतामथ ? ।
शूले वा तिष्ठतामेषः पाट्यतां क्रकचेन वा ? ॥ ५४ ॥

चारुदत्तः—किमहं यद् ब्रवीमि तत् क्रियते ?

शर्विलकः—कोऽत्र सन्देहः ?

शकारः—भट्टालआ ! चालुदत्त ! शलणागदेम्हि । ता पलित्ताआहि पलित्ताआहि । जं तुए शलिशं, तं कलेहि । पुणो ण ईदिशं कलिश्शं । [**भट्टारक ! चारुदत्त ! शरणागतोऽस्मि । तत् परित्रायस्व, परित्रायस्व । यत्तव सदृशम्, तत् कुरु । पुनर्न ईदृशं करिष्यामि ।**]

शकारः—(चारुदत्तम्प्रति) भो अशरणशरण=हे आश्रयहीनरक्षक, परित्रायस्व=रक्ष माम् ।

चारुदत्तः—(सानुकम्पम्=अनुकम्पया सहितम्) अहह=इति खेदे, अभयम् =भयस्याभावोऽभयम्, शरणागतस्य=शरणापन्नस्येति ।

शर्विलकः—(सावेगम्=आवेगेन सह) आः अपनीयताम्=दूरीक्रियताम्, अयम्= शकारः, पार्श्वात्=समीपात् । उच्यताम्=कथ्यताम्, अस्य पापस्य=दुष्टस्य, किम्= केन प्रकारकेण दण्डम्, अनुष्ठीयताम्=दातव्यमिति ।

अन्वयः—एनम्, सुबद्ध्वा, (जनाः) आकर्षन्तु, अथ, एषः, श्वभिः, संखाद्यताम्, वा शूले, तिष्ठताम् वा, क्रकचेन, पाट्यताम् ॥ ५४ ॥

आकर्षन्त्विति । एनम्=दुष्टशकारम्, सुबद्ध्वा=रज्ज्वादिना सम्यक् संयम्य, जनाः, आकर्षन्तु=धरण्यामितस्ततः कर्षन्तु, अथ=वा, एषः=नीचशकारः, श्वभिः= कुक्कुरैः, संखाद्यताम्=भोज्यताम्, वा=किं वा, शूले=लोहफलके, तिष्ठताम्= वर्त्तताम्, वा=अथवा, क्रकचेन=करपत्येन, पाट्यताम्=विदार्यताम्, पथ्यावक्त्रम् वृत्तम् ॥ ५४ ॥

चारुदत्तः—अहम्=चारुदत्तः, यत्=यथा, ब्रवीमि=कथयामि, तत्= तेन प्रकारेण, क्रियते=सम्पाद्यते किम् ?

शर्विलकः—कोऽत्र संदेहः=नास्ति अस्मिन् विषये किमपि सन्देहः ।

चारुदत्त—(दया से भरकर) आह, शरणागत का भय दूर हो ।

शर्विलक—(आवेशपूर्वक) अरे, इसे इनके पास से दूर हटाओ । (**चारुदत्त के प्रति**) आज्ञा दीजिए, इस पापी को कैसी सजा दी जाय ?

इसे हाथ पैर बाँधकर घसीट कर मारा जाय, अथवा कुत्ते से नुचवाया जाय, अथवा शूली पर लटका दिया जाय या फिर आरा से चिरवा दिया जाय ॥ ५४ ॥

चारुदत्त—तो फिर जो मैं कहूँगा, वही होगा ?

शर्विलक—निश्चय ही वही होगा ।

(नेपथ्य) पौराः वावादेध, किं णिमित्तं पादकी जीवावीअदि ? [पौराः व्यापादयत, कि निमित्तं पातकी जीव्यते ?]

(वसन्तसेना वध्यमालां चारुदत्तस्य कण्ठादपनीय शकारस्योपरि क्षिपति ।)

शकारः--गब्भदाशीधीए ! पशीद पशीद, ण उण मालइश्शं, ता पलित्ताआहि । [गर्भदासीपुत्रि ! प्रसीद प्रसीद, न पुनर्मारमिष्यामि, तत् परित्रायस्व ।]

शर्विलकः--अरे रे ! अपनयत ! आर्यचारुदत्त ! आज्ञाप्यताम्--किमस्य पापस्यानुष्ठीयताम् ।

चारुदत्तः—किमहं यद् ब्रवीमि तत् क्रियते ?

शर्विलकः—कोऽत्र सन्देहः ।

शकारः—भट्टारक=हे देव, यत्=यथा, तव सदृशम्=स्वानुरूपम् कुरु, पुनः=भूयः, ईदृशम्=पूर्वविहितप्रकारकं, न करिष्यामि=सम्पादयिष्यामि ।

(नेपथ्ये=वेशरचनागृहे) पौराः=नागरिकाः, व्यापादयत=मारयत, किं निमित्तम्=केन हेतुना, पातकी=अधर्मी, जीव्यते=जीवितः अस्तीत्यर्थः ।

(वसन्तसेना, वध्यमालाम्=कर्णिकारस्रजम्, चारुदत्तस्य कण्ठात्=गलदेशात्, अपनीय=अपसार्य, शकारस्योपरि क्षिपति=पातयति)

शकारः--गर्भदासीपुत्रि=हे आजन्मसेवावृत्तिकायाः सुते, प्रसीद=प्रसन्ना भव, पुनः=भूयः, न=नहि, मारयिष्यामि=हनिष्यामि, तत्=तस्मात्, परित्रायस्व=माम् रक्ष, अज्ञत्वाद् अधुनाऽपि वसन्तसेनां गालीदानं करोति ।

शर्विलकः—अरे रे अपनयत=दूरमपसारय, आज्ञाप्यताम्=आदेशः दीयताम्, अस्य पापस्य=पापकर्मिणः, किम्=किम्प्रकारम्, अनुष्ठीयताम्=दण्डविधानं कर्त्तव्यम् ।

चारुदत्तः—अहम्=चारुदत्तः, यद् ब्रवीमि=कथयामि, तत्=तदेव, क्रियते=विधीयते ?

शर्विलकः—कोऽत्र सन्देहः=न किमप्यत्र सन्देहः ।

शकार—स्वामी चारुदत्त, शरणगत हूँ, मेरी रक्षा करो, अपने अनुरूप करो, फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा ।

(नेपथ्य में) नागरिको ! इसे मार डालो । यह पापी क्यों जी रहा है ।

(वसन्तसेना, वध्यमाला चारुदत्त के गले से निकाल कर शकार के ऊपर फेंक देती है ।)

शकार—अरी गर्भदासी की बेटी, खुश होओ, अब कभी नहीं मारूँगा । मुझे बचा लो ।

शर्विलक—अरे, इसे हटाओ यहां से । आर्य चारुदत्त, आदेश दीजिए—इस नीच के साथ केसा व्यवहार किया जाय ।

चारुदत्त—क्या मैं जो कहूँगा वही होगा ?

शर्विलक—इसमें क्या सन्देह ?

चारुदत्तः—सत्यम् ?

शर्विलक—सत्यम् ।

चारुदत्तः—यद्येवम्; शीघ्रमयम्—

शर्विलकः—किं हन्यताम् ?

चारुदत्तः—नहि नहि, मुच्यताम् ।

शर्विलकः—किमर्थम् ?

चारुदत्तः—

शत्रुः कृतापराधः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः ।
शस्त्रेण न हन्तव्यः ... ...

शर्विलकः—एवम् । तर्हि श्वभिः खाद्यताम् ।

चारुदत्तः—सत्यम्=किं यत् ब्रवीषि तत् सत्यम् ?

शर्विलकः—सत्यम्=निश्चितमेव ।

चारुदत्तः—यदि=चेत्, एवम्=पूर्वोक्तकथनम्, सत्यम्, तर्हि, शीघ्रम्=त्वरितम्, अयम्=एषः ।

शर्विलकः—किं हन्यताम्=व्यापाद्यताम् ।

चारुदत्तः—नहि नहि, मुच्यताम्=बन्धनान्मुक्तः क्रियताम् ।

शर्विलकः—किमर्थम्=कस्मै प्रयोजनाय ?

अन्वयः—कृतापराधः, शत्रुः, शरणम्, उपेत्य, पादयोः, पतितः (तर्हि) शस्त्रेण, न, हन्तव्यः, तु, उपकारहतः, कर्त्तव्यः ।

शत्रुरिति । कृतापराधः=सम्पादितपापम्, शत्रुः=अरिः, शरणम्=आश्रयम्, उपेत्य=समागत्य, पादयोः=चरणयोः, पतितः=लुण्ठितः भवति । तर्हि स शस्त्रेण=आयुधेन, न=नहि, हन्तव्यः=मारणीयः ।

शर्विलकः—एवम्, यदि=अर्थात् आयुधेन मारणमनुचितम्, तर्हि श्वभिः=कुक्कुरैः खाद्यताम्=भक्षयित्वा व्यापाद्यताम् ।

चारुदत्त—सच ?

शर्विलक—हाँ, सच ।

चारुदत्त—यदि ऐसी बात है तो शीघ्र ही इसे···

शर्विलक—क्या समाप्त कर दिया जाय ।

चारुदत्त—अरे नहीं नहीं, छोड़ दिया जाय ।

शर्विलक—किसलिए ?

चारुदत्त—अपराधी शत्रु, यदि शरण में आकर पैरों पर गिरता है तो उसे हथियार से कभी नहीं मारना चाहिए······।

शर्विलक—अगर ऐसी बात है तो कुत्तों से ही नुचवा दिया जाय ।

चारुदत्तः—नहि ।

उपकारहतस्तु कर्त्तव्यः ॥ ५५ ॥

शर्विलकः—अहो ! आश्चर्यम् । किं करोमि, वदत्वार्यः ।

चारुदत्तः—तन्मुच्यताम् ।

शर्विलकः—मुक्तो भवतु ।

शकारः—हीमादिके ! पच्चुज्जीविदम्हि । (इति पुरुषैः सह निष्क्रान्तः ।) [हन्त ! प्रत्युज्जीवितोऽस्मि ।]

(नेपथ्ये कलकलः ।)

(पुनर्नेपथ्ये) एसा अज्जचारुदत्तस्स बहुआ अज्जा धूदा पदे वसणंचले विलग्गन्तं दारअं आक्खिवन्ती वाप्फभरिद-णअणेहिं जणेहिं णिवारिज्जमाणा पज्जलिदे पावए पविसदि । [एषा आर्यचारुदत्तस्य बधूरार्या धूता पदे वसनाञ्चले विलगन्तं दारकमाक्षिपन्ती बाष्पभरित-नयनैर्जनैर्निवार्यमाणा प्रज्वलिते पावके प्रविशति ।]

चारुदत्तः—नहि=न,

तु=किन्तु, उपकारहतः—उपकारेण, हतः=विनष्टः, कर्त्तव्यः=विधेय ॥५५॥

शर्विलकः—अहो आश्चर्यम्=विस्मयः । किं करोमि=मया किं कर्त्तव्यम्, वदतु=कथयतु, आर्यः=मान्यः ।

चारुदत्तः—यद्येवम् तत्=तर्हि, मुच्यताम्=त्यजताम् ।

शर्विलकः—मुक्तः=बन्धनमुक्तः, भवतु=यातु ।

शकारः—हीमादिके=हन्त, प्रत्युज्जीवितोऽस्मि=पुनः जीवनं प्राप्तोऽस्मि (इति पुरुषैः सह=अनुचरैः सार्धं, निष्क्रान्तः=बहिर्गतः)

(नेपथ्ये कलकलः=अव्यक्तध्वनिः ।)

(पुनः=भूयः, नेपथ्ये) एषा=पुरोवर्त्तमाना, आर्यचारुदत्तस्य वधू=मान्यचारुदत्तस्य पत्नी, आर्या=मान्या, धूता, पदे=चरणे, वसनाञ्चले=वस्त्रप्रान्ते, विगलन्तम्=

चारुदत्त—अरे भई नहीं ।

इसे उपकार के भार से दबा देना चाहिए ॥ ५५ ॥

शर्विलक—अहो, आश्चर्य है । तो मैं क्या करूँ ? आप ही बतलाइए ।

चारुदत्त—तो छोड़ दिया जाय ।

शर्विलक—छोड़ दिया ।

शकार—हाय, फिर से नई जिन्दगी मिल गई । (अनुचरों के साथ बाहर निकल जाता है ।)

(नेपथ्य में कोलाहल ।)

(पुनः नेपथ्य में) यह आर्य चारुदत्त की पत्नी धूता जलती आग में प्रवेश करना चाह रहीं हैं । कदम-कदम पर बालक रोहसेन उसके आँचल में लटककर उसे रोक रहा है । नागरिकों की आँखें भरीं हैं, वे भी उसे अग्निप्रवेश से रोक रहे हैं; फिर भी वह आगे ही बढ़ रही हैं ।

शर्विलकः—(आकर्ण्य नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथं चन्दनकः ? चन्दनक ! किमेतत् ?

चन्दनकः—(प्रविश्य) किं ण पेक्खदि अज्जो ? महाराअप्पासादं दक्खिणेण महन्तो जणसंमद्दो वट्टदि । ('एषा···'इत्यादि पुनः पठति) कधिदं अ मए तीए, जधा—'अज्जे ! मा साहसं करेहि, जीवदि अज्जचारुदत्तो' त्ति । परंतु दुक्ख-वावुडदाए को सुणेदि ? को पत्तिआअदि । [**किं न प्रेक्षते आर्यः ? महाराजप्रासादं दक्षिणेन महान् जनसम्मर्दो वर्त्तते । कथितं च मया तस्यै, यथा—'आर्ये ! मा साहसं कुरु, जीवति आर्यचारुदत्त' इति । परन्तु दुःखव्यापृततया कः शृणोति ? कः प्रत्ययते ?**]

चारुदत्तः—(सोद्वेगम्) हा प्रिये ! जीवत्यपि मयि किमेतत् व्यवसितम् ।

संसक्तम्, दारकम्=रोहसेननामकसुतम्, आक्षिपन्ती=सङ्गान्निवारयन्ती, बाष्पभरितनयनैः=अश्रुपूरितनेत्रैः, जनैः=लोकैः, निवार्यमाणा=अवरुध्यमाणा, प्रज्ज्वलिते, पावके=वह्नौ, प्रविशति=प्रवेशङ्करोति ।

शर्विलकः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा, नेपथ्याभिमुखम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा) कथमिति प्रश्ने, चन्दनकः, एतत् किम् ?

चन्दनकः—(प्रविश्य=मञ्चे समागत्य) किमिति प्रश्ने, आर्यः=मान्यः, प्रेक्ष्यते=अवलोक्यते ? महाराजस्य=राज्ञः आर्यकस्य, प्रासादात्=भव्यभवनात्, दक्षिणे=दक्षिणस्यां दिशि, महान्=अतीव, जनसम्मर्दः=लोकानां समूहः, वर्त्तते=अस्ति, ('एषा···' इत्यादि पुनः पठति ।) मया=चन्दनकेन, कथितम्=उक्तम्, तस्यै=धूतायै, आर्ये=मान्ये, साहसम्=धाष्टर्यम्, मा=नहि, कुरु, आर्यचारुदत्तः=मान्यचारुदत्तः, जीवति=जीवित एवाऽस्ति । परन्तु=किञ्च, दुःखव्यापृततया=कष्टेन व्याकुलतया, कः शृणोति=कः मम कथने ध्यानं ददाति, कः प्रत्ययते=विश्वसिति ? नैव कोऽपीत्यर्थः ।

चारुदत्तः—(सोद्वेगम्=उद्विग्नो भूत्वा) हा=इति खेदे, जीवत्यपि=जीविते सत्यपि, मयि=चारुदत्ते, एतत्=यच्छ्रुतम्, तत् किमिति प्रश्ने, व्यवसितम्=अनुष्ठितम् ।

शर्विलक—(**सुनकर तथा नेपथ्य की ओर देखकर**) क्या चन्दनक, क्या बात है ?

चन्दनक—(**पास आकर**) महाशय, क्या आप नहीं देख रहे हैं, राजमहल की दाहिनी ओर लोगों की कैसी भीड़ उमड़ पड़ी है । ('एषा···' **इत्यादि फिर से पढ़ता है ।**) उनसे मैंने कहा—'मान्ये, आग में जलने का दुःसाहस मत करो, आर्य चारुदत्त जीवित हैं' किन्तु, वह तो दुःख से इतना व्याकुल थी, कि मेरी बातें सुनी ही नहीं या सुनती भी तो विश्वास क्यों करती ?

चारुदत्त—(**व्यग्र होकर**) हा, प्रिये, मैं तो जिन्दा हूँ, फिर तुमने यह क्या कर लिया ?

(ऊर्ध्वमवलोक्य दीर्घं निःश्वस्य च)

न महीतलस्थितिसहानि भवच्चरितानि चारुचरिते ! यदपि ।
उचितं तथापि परलोकसुखं न पतिव्रते ! तव विहाय पतिम् ॥ ५६ ॥

(इति मोहमुपगतः ।)

शर्विलकः—अहो ! प्रमादः ।

त्वरया सर्पणं तत्र मोहमार्योऽत्र चागतः ।
हा धिक् प्रयत्नवैफल्यं दृश्यते सर्वतोमुखम् ॥ ५७ ॥

वसन्तसेना—समस्ससिदु अज्जो । तत्थ गदुअ जीवावेदु अज्जां । अण्णधा अधीरत्तणेण अणत्थो संभावीअदि । [**समाश्वसितु आर्यः । तत्र गत्वा जीवयतु आर्याम् । अन्यथा अधीरत्वेन अनर्थः सम्भाव्यते ।**]

(ऊर्ध्वम्=उपरि, अवलोक्य=दृष्ट्वा, दीर्घम्=लम्बम्, निःश्वस्य=निःश्वासं नीत्वा)

अन्वयः—हे चारुचरिते, यदपि, भवच्चरितानि, महीतलस्थितिसहानि, न । तथापि, हे पतिव्रते, पतिम्, विहाय, तव, परलोकसुखम्, न, उचितम् ॥ ५६ ॥

नेति । हे चारुचरिते=हे विशुद्धशीले, यदपि=यद्यपि, भवत्याः=श्रीमत्याः, चरितानि=आचरणानि, महीतले=पृथ्वीतले, स्थितिसहानि=स्थातुं योग्यानि, न=नहि । तथापि, हे पतिव्रते=पतिभक्तिसम्पन्ने, पतिम्=भर्त्तारम्, विहाय=त्यक्त्वा, तव=भवत्याः, परलोकसुखम्=स्वर्गीयसुखम्, न=नहि, उचितम्=योग्यम् । काव्यलिङ्गालङ्कारः, प्रमिताक्षरा वृत्तञ्च ॥ ५६ ॥

(इति=एवमुक्त्वा, मोहम्=अचैतन्यम्, उपगतः=प्राप्तः ।)

शर्विलकः—अहो=इत्याश्चर्यम्, प्रमादः=अनवधानता ।

अन्वयः—तत्र, त्वरया, सर्पणम्, अत्र, च, आर्यः, मोहम्, आगतः । हा धिक्, सर्वतोमुखम्, प्रयत्नवैफल्यम्, दृश्यते ॥ ५७ ॥

त्वरयेति । तत्र=धूतायाः अग्निप्रवेशस्थाने, त्वरया=झटिति, सर्पणम्=गमनम्, अत्र च=अस्मिन् स्थाने च, आर्यः=मान्यः चारुदत्तः, मोहम्=अचैतन्यम्, आगतः=प्राप्तः । हा धिक् सर्वतोमुखम्=सर्वप्रकारेण, प्रयत्नवैफल्यम्=उद्योगविफलता दृश्यते=अवलोक्यते । पथ्यावक्त्रं वृत्तम् ॥ ५७ ॥

(ऊपर देखकर और गहरी साँस खींचकर)

हे विशुद्ध चरित्र वाली प्रिये धूते तुम्हारा चरित्र इस धरती पर रहने योग्य नहीं है, फिर भी हे पतिव्रते, पति को धरती पर छोड़कर अकेले परलोक का सुख भोगना तुम्हारे लिए उचित नहीं है ॥ ५६ ॥

(यह कहकर मूच्छित हो जाता है ।)

शर्विलक—हाय, महा विपत्ति आ गई,

वहाँ धूता के पास शीघ्र चलना चाहिए और इधर ये बेहोश हो गये हैं; लगता है इन्हें बचाने का सारा प्रयास ही बेकार हो जायेगा ॥ ५७ ॥

चारुदत्तः—(समाश्वस्य, सहसोत्थाय च) हा प्रिये ! क्वासि ? देहि मे प्रतिवचनम् ।

चन्दनकः—इदो इदो अज्जो । [**इत इत आर्यः ।**]

(इति सर्वे परिक्रामन्ति ।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा धूता चेलाञ्चलमाकर्षन्
विदूषकेणानुगम्यमानो रोहसेनो रदनिका च ।)

धूता—(सास्रम्) जाद ! मुंचेहि मं, मा विग्घं करेहि। भीआमि अज्जउत्तस्स अमंगलाकण्णणदो । (इत्युत्थाय, अञ्चलमाकृष्य, पावकाभिमुखं परिक्रामति ।) [**जात ! मुञ्च माम्, मा विघ्नं कुरु । बिभेमि आर्यपुत्रस्य अमङ्गलाकर्णनात् ।**]

वसन्तसेना—समाश्वसितु=धैर्यं धारय, आर्यः=समादरणीयः । तत्र=अग्निप्रवेशस्थाने, गत्वा=व्रजित्वा, जीवयतु=जीवनदानं करोतु, आर्याम्=धूताम् । अन्यथा, अधीरत्वेन=अधैर्यत्वेन, अनर्थः=हानिः, सम्भाव्यते=सम्भावना क्रियते ।

चारुदत्तः—(समाश्वस्य=आश्वासनं प्राप्य, सहसा=हठात्, उत्थाय=उत्थितो भूत्वा) हा=इति खेदे, प्रिये=प्रियतमे धूते, क्वासि=कुत्र त्वमसि, देहि=दीयताम्, मे=मह्यम्, प्रतिवचनम्=समीचीनमुत्तरम् ।

चन्दनकः—इत इतः=अस्यां दिशि, आर्यः=समादरणीयः ।

(इति=अनन्तरम्, सर्वे=सकलाः, परिक्रामन्ति=परिचलन्ति ।)

(ततः=तत्पश्चात्, यथानिर्दिष्टा=पूर्वोक्तप्रकारका वह्निप्रवेशमाचरन्ती, धूता, तस्याः चेलाञ्चलम्=वस्त्रप्रान्तभागम् आकर्षन्, विदूषकेणामुगम्यमानो रोहसेनः =चारुदत्तसुतः, रदनिका=चारुदत्तदासी च ।)

धूता—(सास्रम्=अश्रुपूर्णनयनम्) जात=हे पुत्र, मुञ्च=परित्यज, माम्=स्वमातरम्, विघ्नम्=व्याघातम्, मा कुरु=न त्वया कर्त्तव्यम्, यतो हि बिभेमि=भयार्ता भवामि, आर्यपुत्रस्य=पत्युः चारुदत्तस्य, अमङ्गलम्=प्राणदण्डस्वरूपमशुभम्, आकर्णनात्=श्रवणात् ।

वसन्तसेना—आर्य धीरज रखिए, वहाँ चलकर शीघ्र धूता को बचाइये, नहीं तो देर होने से वह विचारी अधीर होकर प्राण गवाँ देगी ।

चारुदत्त—(**धीरज के साथ, एकाएक उठकर**) हा प्रियतमे, कहाँ हो, जबाब दो न ।

चन्दनक—इधर से, इधर से आर्य ।

(**सभी चलते हैं ।**)

(**इसके बाद यथानिर्दिष्ट धूता, आँचल खींचता और विदूषक द्वारा अनुसरण किया जाता हुआ रोहसेन, रदनिका प्रवेश करते हैं ।**)

धूता—(**आँखों से आँसू बहाती हुई**) अच्छे बेटे, मुझे छोड़ दो । मुझे अपने काम से मत रोको । आर्यपुत्र के अमङ्गल सुनने की आशङ्का से मैं बुरी तरह डर रही हूँ । (**बेटे के हाथ से आँचल छुड़ाकर आग की ओर बढ़ती है ।**)

रोहसेनः—माद ! अज्जए ! पडिवालेहि मं, तुए विणा ण सक्कुणोमि जीविदं धारेदुं । (इति त्वरितमुपसृत्य पुनरञ्चलं गृह्णाति ।) [मातः ! आर्ये ! प्रतिपालय माम्, त्वया विना न शक्नोमि जीवितं धारयितुम् ।]

विदूषकः—भोदीए दाव बम्हणीए भिण्णत्तणेणं चिदाधिरोहणं पावं उदाहरन्ति रिसीओ । [भवत्यास्तावत् ब्राह्मण्या भिन्नत्वेन चिताधिरोहणं पापमुदाहरन्ति ऋषयः ।]

धूता—वरं पावाचरणं, ण उण अज्जउत्तस्स अमंगलाकण्णणं । [वरं पापाचरणम्, न पुनरार्यपुत्रस्य अमङ्गलाकर्णनम् ।]

शर्विलकः—(पुरोऽवलोक्य) आसन्नहुतवहा आर्या । तत् त्वर्यतां त्वर्यताम् ।

(चारुदत्तः त्वरितं परिक्रामति ।)

धूता—रअणिए ! अवलम्ब दारअं, जाव अहं समीहिदं करेमि । [रदनिके ! अवलम्बस्व दारकम्, यावदहं समीहितं करोमि ।]

रोहसेनः—मातः=हे जननि, आर्ये=हे मान्ये, माम्=एकमात्रसुतं रोहसेनम्, प्रतिपालय=पालनम् कुरु, त्वया=भवत्या, विना=रहिते सति, जीवितम्=निजजीवनम्, धारयितुम्=धारणं कर्तुम्, न शक्नोमि=समर्थो न भवामि ।

विदूषकः—भवत्याः=श्रीमत्याः, ब्राह्मण्याः=ब्राह्मणपत्न्याः, भिन्नत्वेन=पत्युः पृथक्त्वेन, चिताधिरोहणम्=चितायामवस्थानम्, पापम्=पापजनकम्, ऋषयः=मुनयः, उदाहरन्ति=प्रस्तुवन्ति, तद्यथा उशनाः—"पृथक् चितिं समारुह्य न विप्राः गन्तुमर्हति । अन्यासामेव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः ॥"

धूता—आर्यपुत्रस्य=पत्युः, अमङ्गलाकर्णनम्=अशुभश्रवणम्, न=नोचितम्, तदपेक्षया, पापाचरणम्=पत्युः जीवितावस्थायामेवाग्निप्रवेशजन्यपापकरणम्, वरम्=श्रेष्ठमिति ।

शर्विलकः—(पुरः=अग्रतः, अवलोक्य=दृष्ट्वा) आर्या=समादरणीया धूता, आसन्नहुतवहा=बह्निसमीपवर्त्तिनी । तत्=तस्मात्, त्वर्यताम्=शीघ्रतां कुरु ।

(चारुदत्तः, त्वरितम्=यथाशीघ्रम्, परिक्रामति=तत्र कियत्पदं सञ्चरति ।)

रोहसेन—माँ, आर्ये, मेरी देख-रेख कौन करेगा ? तुम्हारे बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकता । (दौड़कर फिर से धूता का आँचल फिर से थाम लेता है ।)

विदूषक—ऋषियों ने आप जैसी ब्राह्मणियों को पति से अलग चिता की अग्नि में प्रवेश को पाप कहा है ।

धूता—पति के अमङ्गल सुनने की अपेक्षा यह पाप करना अच्छा है ।

शर्विलक—(आगे की ओर देखकर) मान्या धूता, अग्नि में प्रवेश करना ही चाह रही है अतः आप जल्दी करें, जल्दी करें ।

(चारुदत्त तेज चलते हैं ।)

चेटी—(सकरुणम्) अहं पि पधोवदेसिणि म्हि भट्टिणीए। [अहमपि पथोपदेशिन्यस्मि भट्टिन्याः।]

धूता—(विदूषकमवलोक्य) अज्जो दाव अवलम्बेदु। [आर्यस्तावदवलम्बताम्।]

विदूषकः—(सावेगम्) समीहिद-सिद्धिए पउत्तेण बम्हणो अग्गदो कादव्वो। अदो भोदीए अहं अग्गणी होमि। [समीहितसिद्धयै प्रवृत्तेन ब्राह्मणः अग्रतः कर्त्तव्यः। अतो भवत्या अहमग्रणीर्भवामि।]

धूता—कधं पच्चादिट्ट म्हि दुवेहिं। (बालकमालिङ्ग्य) जाद ! तुमं ज्जेव पज्जवट्ठावेहि अत्ताणं अम्हाणं तिलोदअदाणाअ। अदिक्कन्ते किं मणोरहेहिं। (सनिःश्वासम्) ण क्खु अज्जउत्तो तुमं पज्जवट्ठाविस्सदि। [कथं प्रत्यादिष्टास्मि द्वाभ्याम्। जात ! त्वमेव पर्यवस्थापय आत्मानम् अस्माकं तिलोदकदानाय। अतिक्रान्ते किं मनोरथैः। न खल्वार्यपुत्रस्त्वां पर्यवस्थापयिष्यति।]

धूता—रदनिके, दारकम्=सुतं रोहसेनम्, अवलम्बस्व=गृहाण, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, अहम्=धूता, समीहितम्=अग्निप्रवेशरूपमभिलषितम्, करोमि=सम्पादयामि।

चेटी—(सकरुणम्=सदयम्) भर्त्र्याः=स्वामिन्याः, अहमपि=चेट्यपि, पथोपदेशिनी=मार्गनिर्देशकर्त्री, अस्मि=भवामि।

धूता—(विदूषकम्=चारुदत्तस्य नर्मसचिवम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा) आर्यः=मान्यः, त्वमेव तावत् अवलम्बताम्=बालकं गृहाण।

विदूषकः—(सावेगम्=उद्वेगेन सहितम्) समीहितसिद्धये=सङ्कल्पितकार्यपूर्णतायै, ब्राह्मणः=विप्रः, अग्रतः=पुरतः, कर्त्तव्यः=करणीयः। तद्यथा—'ब्राह्मणं पुरतः कृत्वा कुर्वीत फलसिद्धये' इति स्मरणात्। अतो ममैव पुरःप्रवेशनमुचितमित्याशयः। अतः=अस्मात् कारणात्, भवत्या=श्रीमत्या, वह्निप्रवेशे अहम्=अग्रणीर्भवामि=अग्रे गच्छामि।

धूता—कथमिति प्रश्ने, द्वाभ्याम्=रदनिकाविदूषकाभ्याम्, प्रत्यादिष्टा=प्रत्याख्याता, अस्मि=भवामि। (बालकम्=सुतम्, आलिङ्ग्य=कण्ठाश्लेषं कृत्वा)

धूता—मेरी अच्छी रदनिके, थोड़ी देर के लिए इस बालक को पकड़ो, ताकि मैं अग्नि में प्रवेश करूँ।

चेटी—(करुणापूर्वक) हाँ, मालकिन, आपको स्वर्ग की राह दिखलाने के लिए आपके आगे-आगे तो मुझे ही चलना है न।

धूता—(विदूषक की ओर देखकर) तो आप ही इसे पकड़िये।

विदूषक—(उद्वेग के साथ) अभिलषित किसी कार्य की सिद्धि के लिए ब्राह्मण को ही आगे करना चाहिए। अतः आपसे पहले तो मैं ही आग में प्रवेश करता हूँ।

धूता—तो क्या दोनों ने अस्वीकार कर दिया ? (बेटे को गले लगाकर) हे बेटा, हम लोगों को तिलोदक देने के लिए अपनी रक्षा तुम आप कर लो। तुम्हारे मर जाने

चारुदत्तः—(आकर्ण्य सहसोपसृत्य) अहमेव पर्यवस्थापयामि बालिशम् ।

(इति बालकं बाहुभ्यामुत्थाप्य वक्षसाऽऽलिङ्गति ।)

धूता—(विलोक्य) अम्महे ! अज्जउत्तस्स ज्जेव स्सरसंजोओ । (पुनर्निपुणं निरूप्य, सहर्षम्) दिट्ठिआ अज्जउत्तो ज्जेव एसो । पिअं मे पिअं । [**अहो ! आर्यपुत्रस्यैव स्वरसंयोगः । दिष्ट्या आर्यपुत्र एवैषः । प्रियं मे प्रियम् ।**]

बालकः—(विलोक्य, सहर्षम्) अम्हो ! आवुको मं परिस्सजदि । (धूतां प्रति) अज्जए ! वड्ढवीअसि । आवुको ज्जेव मं पज्जवट्ठावेदि ! (इति प्रत्यालिङ्गति) [**अहो ! आवुको मां परिष्वजति । आर्ये ! वर्द्धयसे । आवुक एव मां पर्यवस्थापयति ।**]

जात=हे पुत्र, त्वमेव=स्वयमेव, पर्यवस्थापय=पालय, आत्मानम्=आत्मशरीरम्, अस्माकम्=नः, तिलोदकदानाय=पितृतर्पणहेतवे, अतिक्रान्ते=त्वयि मृते सति मनोरथैः=अस्माकमभिलाषैः, यथा पुत्र रोहसेन मह्यं तिलोदकं दास्यति, इति किम्=व्यर्थं भवति । (सनिःश्वासम्=दीर्घनिःश्वासं त्यक्त्वा) आर्यपुत्रः=मम पतिः चारुदत्तः, त्वाम्=रोहसेनम्, न=नहि, पर्यवस्थापयिष्यति=पालयिष्यति ।

चारुदत्तः—(आकर्ण्य=श्रुत्वा, सहसा=शीघ्रम्, उपसृत्य=समीपमागत्य) अहम्=चारुदत्तः एव, बालिशम्=बालकम्, पर्यवस्थापयामि=पालनं करोमि ।

(इति=एवमुक्त्वा, बालकम्=रोहसेनम्, बाहुभ्याम्=दोर्भ्याम्, वक्षसा=उरसा, आलिङ्गति=आश्लेषं करोति ।)

धूता—(विलोक्य=दृष्ट्वा) अहो=इत्याश्चर्ये, आर्यपुत्रस्य=मम भर्त्तुः, स्वरसंयोगः=कण्ठध्वनिः । (पुनः, निपुणं दृष्ट्वा=सम्यगवलोक्य, सहर्षम्=सानन्दम्) दिष्टया=भाग्येन, आर्यपुत्र एव=मम भर्त्ता एव, एषः=अयम्, प्रियम्=सुखकरम्, मे=मह्यं ।

बालकः—(विलोक्य=दृष्ट्वा, सहर्षम्=सप्रसन्नम्) अहो=इत्याश्चर्ये, आवुकः=पिता, माम्=रोहसेनम्, परिष्वजति=आलिङ्गयति, आर्ये=मान्ये, आवुक एव=पितैव, माम्=शिशुम्, पर्यवस्थापयति=पालयति ।

पर तो हमें कोई जलाञ्जलि भी नहीं दे सकेगा । हमारा सारा मनोरथ बेकार होगा । **(गहरी सांस लेकर)** हाय, आर्यपुत्र भी तो अब तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेंगे ।

चारुदत्त—(आवाज सुनकर, अचानक पहुँचकर) मैं ही बालक की रक्षा करूँगा ।

(बालक को दोनों हाथों से उठाकर छाती से लगा लेता है)

धूता—(देखकर) आश्चर्य है, यह आवाज तो आर्यपुत्र की तरह है । **(फिर गौर से देखकर और खुशी के साथ)** भाग्य से ये आर्यपुत्र ही हैं; मेरे लिए यह बड़ा ही सुखद क्षण है ।

बालक—(देखकर, खुशी के साथ) अहा, पिताजी मुझे छाती से लगा रहे हैं । **(माँ के प्रति)** मान्ये, बढ़ रही हो, पिताजी ही तो मेरी देखरेख कर रहे हैं । **(फिर से चिपट जाता है ।)**

चारुदत्तः—(धूतां प्रति)

हा प्रेयसि ! प्रेयसि विद्यमाने कोऽयं कठोरो व्यवसाय आसीत् ।
अम्भोजिनी लोचनमुद्रणं किं भानावनस्तं गमिते करोति ? ॥५८॥

धूता—अज्जउत्त ! अदो ज्जेव सा अचेतणेत्ति चुम्बीअदि । [आर्यपुत्र ! अत एव सा अचेतनेति चुम्ब्यते ।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा सहर्षम्) ही ही भो ! एदेहिं ज्जेव अच्छीहिं पिअवअस्सो पेक्खीअदि । अहो ! सदीए पहावो । जदो ज्जलणप्पवेशव्ववसाएण ज्जेव पिअसमागमं पाविदा । (चारुदत्तं प्रति) जेदु जेदु पिअवअस्सो । [ही ही भोः ! एताभ्यामेवाक्षिभ्यां प्रियवयस्यः प्रेक्ष्यते । अहो ! सत्यः प्रभावः यतो ज्वलनप्रवेशव्यवसायेनैव प्रियसमागमं प्रापिता । जयतु जयतु प्रियवयस्यः ।]

चारुदत्तः—(धूतां प्रति=स्वपत्नीमभिलक्ष्य)—

अन्वयः—हा प्रेयसि, प्रेयसि, विद्यमाने, कः, अयम्, कठोरः, व्यवसायः आसीत् । किम्, भानौ, अनस्तङ्गमिते, अम्भोजिनी, लोचनमुद्रणम्, करोति ॥ ५८ ॥

हेति । हा प्रेयसि=हा प्रियतमे, प्रेयसि=पत्यौ, विद्यमाने=वर्त्तमाने अपि, कः=कीदृशः, अयम्=एषः, कठोरः=जीविताग्निप्रवेशरूपदारुणः, व्यवसायः=उद्यमः, आसीत्=अभूत्, किम्भानौ=सूर्ये, अनस्तङ्गमिते=उदिते सति, अपि अम्भोजिनी=कमलिनी, लोचनमुद्रणम्=सङ्कोचम्, करोति=विदधाति । दृष्टान्तानुप्रासयोः समुदायसंसृष्टिः, इन्द्रवज्रावृत्तम् ॥ ५८ ॥

धूता—आर्यपुत्र=हे मान्य, अत एव=अनेन कारणेन, सा=कमलिनी, अचेतना=चेतनाशून्या इति=एवम्, चुम्ब्यते=उच्यते, 'जडा' इति कथ्यते ।

विदूषकः—(दृष्ट्वा=अवलोक्य, सहर्षम्=सप्रसन्नम्) ही ही भो=अहो आश्चर्यम्, एताभ्याम्=अनुपदमेव मित्रामङ्गलं विचार्य रुदद्भ्यामेव, अक्षिभ्याम्=नेत्राभ्याम्, प्रियवयस्यः=प्रियसुहृदः, प्रेक्ष्यते=अवलोक्यते, अहो=इत्याश्चर्यम्, सत्याः=पतिव्रतायाः, प्रभावः=महिमा, यतः ज्वलने=वह्नौ, प्रवेशे=गमने, व्यवसाये नैव=निश्चयेनैव, प्रियस्य=चारुदत्तस्य, समागमम्, प्रापिता=लब्धा । (चारुदत्तम्=मित्रम्, प्रति=अभिलक्ष्य) प्रियवयस्यः=प्रियमित्रम्, जयतु जयतु=सर्वतोभावेन विजयताम् ।

चारुदत्त—(धूता के प्रति)

हा प्रियतमे, मेरे जीवित रहते ही तुमने अग्नि प्रवेश के लिए कैसा दारुण निर्णय लिया था ? बिना सूर्य डूबे कभी कोई कमलिनी संकुचित हुई है क्या ? ॥ ५८ ॥

धूता—आर्यपुत्र, इसीलिए तो वह अचेतन कहलाती है ।

विदूषक—(**देखकर खुशी के साथ**) क्या यह वही आँखें हैं जिनसे से अपने प्रिय मित्र को देख रहा हूँ । हाय, यह तो सती धूता के सतीत्व की ही महिमा है । क्योंकि उसके अग्नि में प्रवेश करने के निर्णय से ही उसे प्रियसमागम हुआ है । (**चारुदत्त के प्रति**) प्रिय मित्र की जय हो ।

चारुदत्तः—एहि मैत्रेय ! (इत्यालिङ्गति ।)

चेटी—अहो ! संविधाणअं । अज्ज ! वन्दामि । (इति चारुदत्तस्य पादयोः पतति ।) [**अहो ! संविधानकम् । आर्य वन्दे ।**]

चारुदत्तः—(पृष्ठे करं दत्त्वा) रदनिके ! उत्तिष्ठ । (इत्युत्थापयति ।)

धूता—(वसन्तसेनां दृष्ट्वा) दिट्ठिआ कुसलिणी बहिणीआ ? [**दिष्टया कुशलिनी भगिनी ?**]

वसन्तसेना—अहुणा कुसलिणी संवुत्तम्हि । (इत्यन्योऽन्यमालिङ्गतः ।) [**अधुना कुशलिनी संवृत्तास्मि ।**]

शर्विलकः—दिष्टया जीवितसुहृद्वर्ग आर्यः ।

चारुदत्तः—युष्मत्प्रसादेन ।

शर्विलकः—आर्ये ! वसन्तसेने ! परितुष्टो राजा भवतीं वधूशब्देनानुगृह्णाति ।

चारुदत्तः—एहि=आगच्छ, मैत्रेय=हे मित्र । (इति=एवमुक्त्वा, आलिङ्गति=आश्लेषं करोति ।)

चेटी—अहो=प्रसन्नतासूचकमव्ययम्, संविधानकम्=दैवस्य विधानम्, आर्य=हे मान्य, बन्दे=वन्दनाम् करोमि । (इति=एवमुक्त्वा, चारुदत्तस्य पादयोः=चरणयोः पतति=निजशरीरं क्षिपति ।)

चारुदत्तः—(पृष्टे=पृष्टभागे, करम्=सदयहस्तम्, दत्त्वा=स्पर्शं कृत्वा) उत्तिष्ठ=उत्थिता भव ।

धूता—(वसन्तसेनाम्, दृष्ट्वा=अवलोक्य) दृष्टया=भाग्येन, कुशलिनी=जीविता, भगिनी=मम स्वसा ।

वसन्तसेना—अधुना=सम्प्रति, कुशलिनी=मंगलवाहिनी, संवृत्ताऽस्मि=भवामि । (इति=एवमुक्त्वा, अन्योऽन्यम्=परस्परम्, आलिङ्गतः ।)

शर्विलकः—दिष्ट्या=भाग्येन, जीवितसुहृद्वर्गः—जीवितः, सुहृदाम्=भार्यापुत्र मित्रादीनाम् वर्गः=समूहो यस्य सः, आर्यः=मान्यो भवान् ।

चारुदत्तः—युष्मत् प्रसादेन=आर्यकशर्विलकचन्दनकानां कृपया ।

चारुदत्त—आओ मैत्रेय । (**आलिङ्गन करता है ।**)

चेटी—अहा, कैसा शुभ संयोग है । आर्य प्रणाम करती हूँ । (**चारुदत्त के पैरों पर गिरती है ।**)

चारुदत्त—(**पीठ पर हाथ रखकर**) रदनिके उठो । (**उठाता है ।**)

धूता—(**वसन्तसेना को देखकर**) भाग्य से बहन, सकुशल तो हो न ?

वसन्तसेना—अब कुशलिनी हो गई हूँ बहन । (**कहकर दोनों गले लगती हैं ।**)

शर्विलक—दैवयोग से आर्य चारुदत्त सपरिवार मित्रों के साथ सकुशल हैं ।

चारुदत्त—मित्र, तुम्हारी ही कृपा से ।

वसन्तसेना—अज्ज ! किदत्थम्हि । [आर्य ! कृतार्थास्मि ।]

शर्विलकः—(वसन्तसेनामवगुण्ठ्य चारुदत्तं प्रति) आर्य ! किमस्य भिक्षोः क्रियताम् ?

चारुदत्तः—भिक्षो ! किं तव बहुमतम् ?

भिक्षुः—इमं ईदिशं अणिच्चत्तणं पेक्खिअ दिउणे मे पव्वज्जाए बहुमाणे संवुत्ते । [इदमीदृशमनित्यत्वं प्रेक्ष्य द्विगुणो मे प्रव्रज्यायां बहुमानः संवृत्तः ।]

चारुदत्तः—सखे ! दृढोऽस्य निश्चयः । तत्पृथिव्यां सर्वविहारेषु कुलपतिरयं क्रियताम् ।

शर्विलकः—यथाह आर्यः ।

शर्विलकः—आर्ये=मान्ये, वसन्तसेने, परितुष्टः=अतिप्रसन्नः, राजा=नवनृपतिः, आर्यकः, भवतीम्=श्रीमतीम्, वधूशब्देन=आर्यचारुदत्तस्य परिणीता पत्नी वसन्तसेनाऽस्तीति वाचिकव्यवहारेण, अनुगृह्णाति=अनुग्रहं करोति ।

वसन्तसेना—आर्य=हे मान्य, कृतार्थाऽस्मि=कृतकृत्याऽस्मि ।

शर्विलकः—(वसन्तसेनाम् अवगुण्ठ्य=अवगुण्ठनङ्कृत्वा, चारुदत्तम् प्रति=चारुदत्तमभिलक्ष्य) आर्य=पूज्य, अस्य=पुरोवर्त्तिनः, भिक्षोः=संन्यासिनः, किं क्रियताम्=किं दातुमिच्छसि ?

चारुदत्तः—भिक्षो=हे संन्यासिन्, तव=भवतः, किं बहुमतम्=अतिरुचिकरमस्ति ।

भिक्षुः—ईदृशम्=एतादृशम्, अनित्यत्वम्=अनेकविधमस्थिरकार्यम्, प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा, द्विगुणः=द्विगुणितोभूत्वा, मे=मम, प्रव्रज्यायाम्=संन्यासे, बहुमानः=आदरः, संवृत्तः=सञ्जातः ।

चारुदत्तः—सखे=हे मित्र, अस्य=भिक्षोः, निश्चयः=निर्णयः, दृढः=स्थिरोऽस्ति । तत्=तस्मात्, पृथिव्याम्=भूमौ, सर्वविहारेषु=अखिलबौद्धमठेषु, कुलपतिः=धर्माध्यक्षः, क्रियताम् ।

शर्विलकः—यथा=येन प्रकारेण, आर्यः=मान्यः, आह ।

शर्विलक—माननीये वसन्तसेने, नये राजा आर्यक ने आपके लिए 'वधू' शब्द का प्रयोग किया है ।

वसन्तसेना—आर्य, मैं धन्य हो गई ।

शर्विलक—(वसन्तसेना का घूँघट निकाल कर, चारुदत्त के प्रति) आर्य, इस संन्यासी के लिए क्या कहते हैं ?

चारुदत्त—भिक्षु, अपनी इच्छा बतलाओ ।

भिक्षु—संसार की ऐसी नश्वरता देखकर प्रव्रज्या में मेरा दूना समादर हो गया है ।

चारुदत्त—मित्र, इसने दृढ़ निश्चय कर लिया है । अतः संसार के सम्पूर्ण बौद्ध-मठों का इसे मठाधीश बना दिया जाय ।

शर्विलक—आपकी जैसी इच्छा हो ।

भिक्षुः—पिअं णो पिअं। [**प्रियं नः प्रियम्।**]

वसन्तसेना—संपदं जीवाविदम्हि। [**साम्प्रतं जीवापिताऽस्मि।**]

शर्विलकः—स्थावरकस्य किं क्रियताम्।

चारुदत्तः—सुवृत्त अदासो भवतु। ते चाण्डालाः सर्वचाण्डालानामधिपतयो भवन्तु। चन्दनकः पृथिवीदण्डपालको भवतु। तस्य राष्ट्रियश्यालस्य यथैव क्रिया पूर्वमासीत्, वर्तमाने तथैवास्य अस्तु।

शर्विलकः—एवं यथाह आर्यः। परमेनं मुञ्च मुञ्च, व्यापादयामि।

चारुदत्तः— अभयं शरणागतस्य। ('शत्रुः कृतापराध······'इत्यादि पठति।)

शर्विलकः—तदुच्यतां किं ते भूयः प्रियं करोमि ?

भिक्षुः—प्रियम्=अभिमतम्, नः=अस्माकम्, प्रियम्=रुचिकरमस्ति।

वसन्तसेना—साम्प्रतम्=इदानीम्, जीवापितास्मि, भिक्षुकृतोपकारस्य प्रत्युपकारकरणादिति भावः।

शर्विलकः—स्थावरकस्य=शकारभृत्यस्य, किं क्रियताम्=किं दातव्यमित्याशयः। यतोहि अयमपि सत्साक्ष्यदानेन सम्मानार्हः।

चारुदत्तः—सुवृत्तः=सच्चरित्रः, अदासो भवतु=शकारस्य क्रीतदासोऽपि दास्यान्मुक्तो भवतु। ते चाण्डालाः=मम वधार्थं ये मातङ्गाः समादिष्टास्ते, सर्वचाण्डालानाम्=सकलमातङ्गानाम्, अधिपतयः=स्वामिनः, भवन्तु=यान्तु। चन्दनकः, पृथ्वीदण्डपालकः=प्रधानसेनानायकः भवतु। तस्य राष्ट्रीयश्यालस्य=शकारस्य, यथैव क्रिया पूर्वम्=प्रथमम्, आसीत्=अभूत्, तथैव=तेनैव प्रकारेण, वर्त्तमाने=वर्त्तमानकालेऽपि अस्तु=भवतु।

शर्विलकः—एवम्=इत्थम्, यथाह आर्यः=भवतोक्तं सर्वं तथैवास्तु, किन्तु=परम्=केवलम्, एनम्=शकारम्, मुञ्च=त्यज, एनम् व्यापादयामि=मारयामि।

चारुदत्तः—अभयं=भयाभावम्, शरणागतस्य। ('शत्रुः कृतापराधः······' इत्यादि पुनः पठति।)

भिक्षुक—हमारे लिए यह अभिलषित सुसमाचार है।

वसन्तसेना—इससे मुझे पुनः जीवनदान मिला।

शर्विलक—स्थावरक का क्या किया जाय !

चारुदत्त—सदाचारी स्थावरक को दासता से मुक्त कर दिया जाय। वे चाण्डाल भी सभी चाण्डालों के अधिपति बना दिया जाय। चन्दनक को प्रधान सेनापति का पद दिया जाय। और, इस राजा के साले का काम पहले जैसा था, वैसा ही रहने दिया जाय।

शर्विलक—आपने जैसा कहा है, सब कुछ वैसा ही होगा। केवल आप इस शकार को छोड़ दीजिए, इसे मैं मारता हूँ।

चारुदत्त—शरणागत को अभयदान। ('शत्रुः कृतापराध···'प्रभृति श्लोक को दुहराता है।)

शर्विलक—तो फिर बतलाइये, आपका और क्या प्रिय किया जाय।

चारुदत्तः—अतः परमपि प्रियमस्ति ?

लब्धा चारित्रशुद्धिश्चरणनिपतितः शत्रुरप्येष मुक्तः
प्रोत्खातारातिमूलः प्रियसुहृदचलामार्यकः शास्ति राजा ।
प्राप्ता भूयः प्रियेयं प्रियसुहृदि भवान् सङ्गतो मे वयस्यो
लभ्यं किञ्चातिरिक्तं यदपरमधुना प्रार्थयेऽहं भवन्तम् ॥ ५९ ॥
कांश्चित्तुच्छयति प्रपूरयति वा कांश्चिन्नयत्युन्नतिं
कांश्चित् पातविधौ करोति च पुनः कांश्चिन्नयत्याकुलान् ।
अन्योन्यं प्रतिपक्षसंहतिमिमां लोकस्थितिं बोधय-
न्नेष क्रीडति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः ॥ ६० ॥

शर्विलकः—तत्=तस्मात्, उच्यताम्=कथ्यताम्, ते=तव, भूयः=इतोप्यधिकम्, प्रियम्=अभिमतम्, किं करोमि=किं सम्पादयामि ।

चारुदत्तः—अतः परमपि=इतोऽधिकमपि, अस्ति=भवति ?

अन्वयः—चारित्र्यशुद्धिः, लब्धाः । चरणनिपतितः, एषः, शत्रुः, अपि, मुक्तः । प्रोत्खातारातिमूलः, प्रियसुहृद, आर्यकः, राजा, अचलाम्, शास्ति । इयम्, प्रिया, भूयः, प्राप्ता । प्रियसुहृदि, सङ्गतः, भवान्, मे, प्रियवयस्यः । अतिरिक्तम्, किम्, लभ्यम् ? यत्, अपरम्, अहम्, अधुना, भवन्तम्, प्रार्थये ॥ ५९ ॥

लब्धेति । चारित्र्यशुद्धिः=स्वकीयविशुद्धाचरणस्य निर्मलता, लब्धा=पुनः प्राप्ता । चरणनिपतितः=पादयोः लुण्ठितः, एषः=अयम्, शत्रुः=रिपुः शकारः, अपि मुक्तः=अभयं प्रापितः । प्रोत्खातारातिमूलः=विनिहतशत्रुः, प्रियसुहृद्=प्रियसखा, आर्यकः=गोपदारकः, राजा=नृपतिः, भूत्वा अचलाम्=पृथिवीम्, शास्ति=प्रशासनं करोति । इयम्=एषा, प्रिया=प्रियतमा वसन्तसेना, भूयः=मुहुः, प्राप्ता=लब्धा । प्रियसुहृदि=प्रियमित्रे आर्यके, सङ्गतः=मित्रत्वेन मिलितः, भवान्=त्वम्, मे=मम, प्रियवयस्यः=प्रियसुहृत्, जातः । अतिरिक्तम्=इतोऽधिकम्, किम्=किं वस्तुम्, लभ्यम्=प्राप्तव्यम् ? यदपरम्=यदन्यवस्तु, अहम्=चारुदत्तः, अधुना=इदानीम्, भवन्तम्=त्वाम्, प्रार्थये=याचे । अत्र समुच्चयकाव्यालिङ्गमलङ्कारो । स्रग्धरा वृत्तञ्चेति ॥ ५९ ॥

अन्वयः—इमाम्, लोकस्थितिम्, अन्योन्यप्रतिपक्षसंहतिम्, बोधयन्, कूपयन्त्र-

---

चारुदत्त—क्या इससे भी अधिक कुछ और प्रिय है ?

अपने विशुद्ध चरित्र की खोई निर्मलता मैंने फिर से प्राप्त कर ली शरण में आया शत्रु शकार भी मुक्त हो गया। शत्रु राजा पालक को जड़ से उखाड़ फेंकने वाला मेरा प्रिय मित्र आर्यक इस सम्पूर्ण धरित्री का अखण्ड साम्राज्य कर रहा है। प्रियतमा वसन्तसेना बिछुड़ कर फिर मिल गई। प्रियमित्र आर्यक के सम्पर्क से तुम भी हमारे एक मित्र बन गये। इनके अतिरिक्त और कौन सी वह वस्तु है जिन्हें पाने की मैं इच्छा व्यक्त करूँ ॥ ५९ ॥

कूपयन्त्र रहट की क्षुद्रघटिका के अनुसरण में रत यह विधि परस्पर विरोधियों

तथापीदमस्तु भरतवाक्यम्—

क्षीरिण्यः सन्तु गावो, भवतु वसुमती सर्वसम्पन्नसस्या,
पर्जन्यः कालवर्षी, सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्तां जन्मभाजः, सततमभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः, पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः ॥६१॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

संहारो नाम दशमोऽङ्कः ।

घटिकान्यायप्रसक्तः, एषः, विधिः, कांश्चित् तुच्छयति, प्रपूरयति वा, कांश्चित्, उन्नतिम्, नयति, कांश्चित्, पातविधौ, करोति, पुनः, कांश्चित्, आकुलान्, नयति ।

कांश्चिदिति । इमाम्=अनुभूयमानाम्, लोकस्थितिम्=संसृतिदशाम्, अन्योऽन्य-प्रतिपक्षसंहतिम्=परस्परविरोधिनां समूहः यत्र तादृशीम्, बोधयन्=ज्ञापयन्, कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तः—कूपयन्त्रस्य=कूपाज्जलोद्धारणयन्त्रस्य, या घटिका=स्वल्पघटम्, तस्य न्याये=पद्धतौ, प्रसक्तः=संलग्नः, एषः=अयम्, विधिः=दैवम्, कांश्चित्=कियतः, तुच्छयति=तुच्छं करोति, अर्थात् धनरहितान् करोति, वा=अथवा, कांश्चिज्जनान् प्रपूरयति=धनदानेन पूर्णं करोति, वा=अथवा, कांश्चित्=कियतः, उन्नतिम्=समृद्धिम्, नयति=प्रापयति, कांश्चित्=कियतः, पातविधौ=पतनप्रक्रियायाम्, करोति=सम्पादयति, पुनः=भूयः, कांश्चित्=जनान्, आकुलान्=व्याकुलान्, नयति=करोति । निदर्शनालङ्कारः, शार्दूलविक्रीडितं वृत्तञ्चेति ॥ ६० ॥

तथापि=पुनश्च, इदम्=एतत्, अस्तु=भवतु, भरतवाक्यम्—नटवाक्यमित्यर्थः, नाटकाभिनयसमाप्तौ सामाजिकेभ्यो नटेन आशीर्दीयते, अत्र प्रस्तावनानन्तरं नटानामेव तत्पात्ररूपेण रङ्गालये आविर्भूततया पुनस्तद्रूपेणाविर्भावासम्भवात् भरतवाक्य-मित्युक्तमिति बोध्यम् ।

अन्वयः—गावः, क्षीरिण्यः, सन्तु, वसुमती, सर्वसम्पन्नसस्या, भवतु, पर्जन्यः, कालवर्षी, भवतु, सकलजनमनोनन्दिनः, वाताः, वान्तु, जन्मभाजः, मोदन्ताम्, ब्राह्मणाः, सततम्, अभिमताः, सन्तः, सन्तु, श्रीमन्तः, प्रशमितरिपवः, च, धर्मनिष्ठाः, भूपाः, पृथिवीम्, पान्तु ॥ ६१ ॥

की उन्नति अवनति के समष्टिरूप इस संसारगति का बोध कराते हुए खिलवाड़ करता है । किसी को दरिद्र बनाकर उसे हीन कर देता है तो किसी को समृद्धि से भर कर पूर्ण कर देता है । किसी को उन्नत कर देता है तो किसी को पतन की ओर ढकेल देता है । किसी को कष्ट से व्याकुल कर देता है । अर्थात् सुख दुःख सभी विधि के हाथ में हैं; उसी के इशारे पर सारा संसार नाचता रहता है ॥ ६० ॥

क्षीरिण्य इति। गावः=सुरभयः, क्षीरिण्यः=पयस्विन्यः, सन्तु=भवन्तु, वसुमती धरित्री, सर्वसम्पन्नसस्या=सर्वस्मिन् समये सम्पन्नानि सञ्जातानि, सस्यानि=बहुविधान्नानि यस्यां सा तथाभूता, भवतु=यातु, पर्जन्यः=मेघः, कालवर्षी=यथावसरजलदः, भवतु=यातु, सकलजनमनोनन्दिनः=अखिललोकचित्तरञ्जकाः, वाताः=वायवः, वान्तु=प्रवहन्तु जन्मभाजः=शरीरिणः, मोदन्ताम्=प्रसन्नतां प्राप्नुवन्तु, ब्राह्मणाः=विप्राः, सततम्=सर्वदा, अभिमताः=सकललोकैः अभिनन्दिताः, सन्तः=सज्जनाः, सन्तु=भवन्तु, श्रीमन्तः=धनसम्पन्नाः जनाः, प्रशमितरिपवः=विनष्टशत्रवः, च=पुनः, धर्मनिष्ठाः=धर्मकर्मरताः, भूपाः=नृपतयः, पृथिवीम्=वसुन्धराम्, पान्तु=रक्षन्तु। समुच्चयकाव्यलिङ्गालङ्कारयोः परस्परनैरपेक्ष्येण संसृष्टिः। स्रग्धरा वृत्तञ्चेति ॥ ६१ ॥

(इति=एवमुक्तौ सत्याम्, सर्वे=भरताः, निष्क्रान्ताः=रङ्गभूमितः प्रस्थिताः।)

(इति मृच्छकटिकाभिधे प्रकरणे, कार्य-फलागम-निर्वहण-पूर्वकोपसंहार-कथनात् संहारः संहरणात्मकत्वात् तदभिधेयो दशमोऽङ्कः)

इति दशमोङ्कः समाप्तः।

फिर भी यह भरतवाक्य हो—

गायें दुधारू हों, हर तरह की फसलों से धरती भरी हों, मेघ समय पर पानी दे, सबके मन को हरने वाली हवा बहें, संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणी सुखी हों, ब्राह्मण लोग सदा सबके समादरणीय एवं सदाचारी हों, लक्ष्मीवान् शत्रुओं का शमन करने वाले हों तथा धार्मिक राजा धरती का शासक हो ॥ ६१ ॥

(यह कहकर सभी अभिनेता मंच से चले जाते हैं।)

संहारनामक दसवाँ अङ्क समाप्त।

मृच्छकटिक की डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र कृत 'विमला'-संस्कृत-हिन्दी-व्याख्या समाप्त हुई।

श्लोकानुक्रमणिका

मृच्छकटिकस्यातिलघूत्तरीयाणि लघूत्तरीयाणि च प्रश्नोत्तराणि

(१) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य रचयिता कः ?

उत्तरम्—मृच्छकटिकस्य रचयिता महाकविः **शूद्रकः**।

(२) प्रश्नः—मृच्छकटिकं कीदृशी रचना अस्ति ?

उत्तरम्—मृच्छकटिकं दृश्यकाव्यस्य **प्रकरण**भेदात्मकमस्ति।

(३) प्रश्नः—प्रकरणस्य किं लक्षणम् ?

उत्तरम्—प्रकरणस्य लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः॥

(४) प्रश्नः—रूपकस्य कति भेदाः सन्ति ?

उत्तरम्—रूपकस्य दश भेदाः भवन्ति। तदुक्तं साहित्यदर्पणे—

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥

(५) प्रश्नः—प्रकरणस्य नायकः कीदृशः भवति ?

उत्तरम्—प्रकरणस्य नायकः **धीरप्रशान्तः** भवति।

(६) प्रश्नः—धीरप्रशान्तस्य लक्षणं लिख ?

उत्तरम्—धीरप्रशान्तस्य लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

सामान्यगुणैर्भूयान्द्विजादिको धीरशान्तः स्यात्।

(७) प्रश्नः—नायकस्य सामान्यलक्षणं लिखत।

उत्तरम्—नायकस्य लक्षणमुक्तं साहित्यदर्पणे—

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता॥

(८) प्रश्नः—नायकः कतिविधः भवति ?

उत्तरम्—नायकः चतुर्विध उक्तः तद्यथा साहित्यदर्पणे—

धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्तः इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः॥

(९) प्रश्नः—मृच्छकटिके कः नायकः ?

उत्तरम्—मृच्छकटिके नायकः **चारुदत्तः**।

(१०) प्रश्नः—मृच्छकटिके मुख्यः रसः कः ?

उत्तरम्—मृच्छकटिके मुख्यः रसः **शृङ्गारः**।

(११) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य कथावस्तु कीदृशोऽस्ति ?
उत्तरम्—मृच्छकटिकस्य कथावस्तु **कविकल्पितोऽ**स्ति।

(१२) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य नायिका का ?
उत्तरम्—मृच्छकटिकस्य नायिका **वसन्तसेना** अस्ति।

(१३) प्रश्नः—वसन्तसेना कीदृशी नायिका ?
उत्तरम्—वसन्तसेना साधारणी स्त्रीति कथ्यते।

(१४) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य प्रतिनायकः कः ?
उत्तरम्—मृच्छकटिकस्य प्रतिनायकः **शकारोऽ**स्ति।

(१५) प्रश्नः—शर्विलकः कोऽस्ति ?
उत्तरम्—अप्रतिग्रही कस्यचित् चतुर्वेदिब्राह्मणकुलस्य शर्विलकः **उत्साह-सम्पन्नः युवकः** अस्ति।

(१६) प्रश्नः—मृच्छकटिके विदूषकस्य किं नामास्ति ?
उत्तरम्—मृच्छकटिके विदूषकस्य नाम **मैत्रेयोऽ**स्ति।

(१७) प्रश्नः—धूता कास्ति ?
उत्तरम्—धूता चारुदत्तस्य स्वीया पत्नी अस्ति।

(१८) प्रश्नः—मदनिका कास्ति ?
उत्तरम्—मदनिका वसन्तसेनाया **क्रीतदासी** अस्ति।

(१९) प्रश्नः—मृच्छकटिके कति अङ्काः सन्ति ?
उत्तरम्—मृच्छकटिके दस अङ्काः सन्ति।

(२०) प्रश्नः—रदनिका का अस्ति ?
उत्तरम्—रदनिका **चारुदत्तस्य दासी** अस्ति।

(२१) प्रश्नः—चारुदत्तस्य पुत्रस्य किं नामासीत् ?
उत्तरम्—चारुदत्तस्य पुत्रस्य नाम **रोहसेनः** आसीत्।

(२२) प्रश्नः—बन्धुलः कः आसीत् ?
उत्तरम्—बन्धुलः वेश्यापुत्रः आसीत्।

(२३) प्रश्नः—चन्दनकः कः आसीत् ?
उत्तरम्—चन्दनकः राज्ञः पालकस्य **बलपतिरासीत्**।

(२४) प्रश्नः—कीदृशः शूद्रकः अग्निं प्रविष्टः ?
उत्तरम्—दशदिनसहितं शताब्दं चायुः लब्ध्वा शूद्रकः अग्निं प्रविष्टः।

(२५) प्रश्नः—कस्य गृहं शून्यम् ?
उत्तरम्—अपुत्रस्य गृहं शून्यम्।

(२६) प्रश्नः—कस्य सर्वं शून्यम् ?
उत्तरम्—दरिद्रस्य सर्वं शून्यं भवति।

(२७) प्रश्नः—चारुदत्तः कुत्र वसति स्म ?
उत्तरम्—अवन्तिपुर्यां चारुदत्तः वसति स्म।

(२८) प्रश्नः—कस्य गुणानुरक्ता गणिका वसन्तसेना ?
उत्तरम्—चारुदत्तस्य गुणानुरक्ता गणिका वसन्तसेना।

(२९) प्रश्नः—सुखं कदा शोभते ?
उत्तरम्—सुखं **दुःखान्यनुभूय** शोभते।

(३०) प्रश्नः—किमनन्तकं दुःखम् ?
उत्तरम्—दारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्।

(३१) प्रश्नः—कस्य सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति ?
उत्तरम्—नष्टधनाश्रयस्य सौहृदादपि जनाः शिथिलीभवन्ति।

(३२) प्रश्नः—दारिद्र्यात् किमेति ?
उत्तरम्—दारिद्रयात् **ह्रियमेति**।

(३३) प्रश्नः—कस्मात् शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते ?
उत्तरम्—दारिद्र्यात् शीलशशिनः कान्तिः परिम्लायते।

(३४) प्रश्नः—अपरं षष्ठं महापातकं किमस्ति ?
उत्तरम्—निर्धनता अपरं षष्ठं महापातकमस्ति।

(३५) प्रश्नः—कैः शस्त्रवन्तोऽपि निर्जिताः भवन्ति ?
उत्तरम्—गुणशस्त्रैः शस्त्रवन्तोऽपि निर्जिताः भवन्ति।

(३६) प्रश्नः—नारी कुत्र गृह्यते ?
उत्तरम्—नारी **हृदये** गृह्यते।

(३७) प्रश्नः—का बहुदोषा भवति ?
उत्तरम्—शर्वरी बहुदोषा भवति।

(३८) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य प्रथमाङ्कस्य किमभिधानम् ?
उत्तरम्—मृच्छकटिकस्य प्रथमाङ्कस्यालङ्कारन्यासो नाम।

(३९) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य द्वितीयाङ्कस्य कि नामास्ति ?
उत्तरम्—मृच्छकटिकस्य द्वितीयाङ्कस्य द्यूतकरसंवाहको नामास्ति।

(४०) प्रश्नः—असमुद्रोत्थितं रत्नं किमस्ति ?
उत्तरम्—वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नम्।

(४१) प्रश्नः—मृच्छकटिके चौरकर्म कः प्रशंसति।

उत्तरम्—मृच्छकटिके चौरकर्म शर्विलकः प्रशंसति।

(४२) प्रश्नः—किं ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्?
उत्तरम्—यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्।

(४३) प्रश्नः—लोकेऽस्मिन् का शङ्कनीया?
उत्तरम्—लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता शङ्कनीया।

(४४) प्रश्नः—दरिद्रेषु किं दुर्लभम्?
उत्तरम्—दरिद्रेषु सत्यं दुर्लभम्।

(४५) प्रश्नः—कथं वेश्याजनःअलीकदक्षिणो भवति?
उत्तरम्—नानापुरुषसङ्गेन वेश्याजनः अलीकदक्षिणो भवति।

(४६) प्रश्नः—मनुष्यः कथं शङ्कितो भवति?
उत्तरम्—मनुष्यः स्वैर्दोषैः शङ्कितो भवति।

(४७) प्रश्नः—कुत्र रागः न कार्यः?
उत्तरम्—स्त्रीषु रागः न कार्यः।

(४८) प्रश्नः—कं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति?
उत्तरम्—रक्तं पुरुषं स्त्रियः परिभवन्ति।

(४९) प्रश्नः—निसर्गादिव के पण्डिताः?
उत्तरम्—स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादिव पण्डिताः।

(५०) प्रश्नः—पुरुषाणां पाण्डित्यं कैरेवोपदिश्यते?
उत्तरम्—पुरुषाणान्तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।

(५१) प्रश्नः—सुसमृद्धानां ग्रामाणां रक्षां कः करोति?
उत्तरम्—सुसमृद्धानां ग्रामाणां रक्षां सेना करोति।

(५२) प्रश्नः—रमणाभिमुखाः स्त्रियः किं न गणयन्ति?
उत्तरम्—रमणाभिमुखाः स्त्रियः शीतोष्णं न गणयन्ति।

(५३) प्रश्नः—चारुदत्तस्य पुत्रस्य किं नामासीत्?
उत्तरम्—चारुदत्तस्य पुत्रस्य नाम रोहसेन आसीत्।

(५४) प्रश्नः—क्षितिपतयः कया पश्यन्ति?
उत्तरम्—क्षितिपतयः चारदृष्ट्या पश्यन्ति।

(५५) प्रश्नः—मधुपाः किं न परित्यजन्ति?
उत्तरम्—सुचरितचरितं विशुद्धदेहं न हि कमलं मधुपाः परित्यजन्ति।

(५६) प्रश्नः—प्रसन्नं जलं कथं कलुषायते?
उत्तरम्—कूलावपातेन प्रसन्नं जलं कलुषायते।

(५७) प्रश्नः—कस्य कश्चित् मित्रं न ?

उत्तरम्—मित्रं न कश्चिद्विषमस्थितस्य।

(५८) प्रश्नः—कीदृश्यः गावः सन्तु ?

उत्तरम्—क्षीरिण्यः गावः सन्तु।

(५९) प्रश्नः—वसुमती कीदृशी भवतु ?

उत्तरम्—भवतु वसुमती सर्वसम्पन्नसस्या।

(६०) प्रश्नः—कीदृशाः भूपाः पृथिवीं पान्तु ?

उत्तरम्—श्रीमन्तः प्रशमितरिपवः धर्मनिष्ठाश्च भूपाः पृथिवीं पान्तु।

(६१) प्रश्नः—मृच्छकटिके दशमाङ्कस्य कः नामधेयम् ?

उत्तरम्—मृच्छकटिके दशमाङ्कस्य संहारो नामधेयोऽस्ति।

मृच्छकटिके लघूत्तरीयाणि प्रश्नोत्तराणि

(१) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य शब्दार्थो लेख्यः ?

उत्तरम्—मृदः = मृत्तिकायाः, शकटिका क्षुद्रशकटं मृच्छकटिका तदधिकृत्य कृतं काव्यं मृच्छकटिकम्, चारुदत्तपुत्ररोहसेनस्य क्रीडनार्थं षष्ठेऽङ्के वर्णितमृत्तिकानिर्मितं क्षुद्रशकटं, मृच्छकटिका तदधिकृत्य कृतं काव्यं मृच्छकटिकम्। यद्वा मृदः शकटम्, अथ अस्तीति मृच्छकटिकम् अतः इनिठनां (पा. ५.२.११५) इति सूत्रेण ठन्। अन्वितार्थनामकं प्रकरणमिदम्।

(२) प्रश्नः—प्रकरणस्य लक्षणं लिखत ?

उत्तरम्—आचार्येण भरतेन प्रकरणस्य लक्षणमुक्तम्—यत्र कविरात्मबुद्ध्या वस्तुशरीरं नायकं चैव औत्पत्तिकं प्रकुरुते प्रकरणमिति तद्बुधैर्ज्ञेयम्।

(३) प्रश्नः—नान्द्याः लक्षणं किमस्ति ?

उत्तरम्—आचार्यभरतेन नान्दयाः लक्षणं लिखितम्, तद्यथा—

आशीर्वचनसंयुक्ताः स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता॥

(४) प्रश्नः—मृच्छकटिके कीदृशी नान्दी प्रयुक्ता ?

उत्तरम्—मृच्छकटिके **पत्रावली** नाम्नी नान्दी प्रयुक्ता, तस्याः लक्षणम्, यथा—

यस्यां बीजस्य विन्यासो ह्यभिधेयस्य वस्तुनः।
श्लेषेण वा समासोक्त्या नान्दी पत्रावलीति सा॥

(५) प्रश्नः—नीलकण्ठस्य कीदृशः कण्ठः वः पातु ?

उत्तरम्—यत्र कण्ठे गौरीभुजलता विद्युल्लेखा इव राजते एवं श्यामाम्बुदोपमः श्रीनीलकण्ठस्य कण्ठः वः पातु।

(६) प्रश्नः—सूत्रधारस्य किं लक्षणम् ?

उत्तरम्—सूत्रं (कथासूत्रम्) धारयतीति सूत्रधारः नटाध्यक्षः प्रधानः नट इत्यर्थः। तस्य लक्षणमुक्तम्—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते॥

(७) प्रश्नः—प्ररोचनायाः लक्षणं लिखत ?

उत्तरम्—कविप्रशस्त्या श्रोतृणां सामाजिकानां प्रवृत्युन्मुखीकरणं प्ररोचना। यथा दशरूपके—

उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः प्ररोचना।

भरतमुनिनाप्युक्तम्—

अथाभ्युदयिनी चैव मङ्गल्याविजयावहा।
सर्वपापप्रशमनी पूर्वरङ्गे प्ररोचना॥
उपक्षेपेण काव्यस्य हेतुमुक्तिसमाश्रया।
सिद्धेनामन्त्रणा या तु विज्ञेया सा प्ररोचना॥ (नाटयशास्त्रे, २०. २८-२९)

(८) प्रश्नः—आमुखस्य किं लक्षणम् ?

उत्तरम्—आसमन्ताद् भावेन मुखमामुखम्।

अत्रोच्यते—

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते॥
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा॥

(९) प्रश्नः—मृतः कः जीवति ?

उत्तरम्—यः सुखात् दरिद्रतां याति, सः नरः शरीरेण धृतः मृतः जीवति।

(१०) प्रश्नः—भाग्यक्रमेण कानि भवन्ति यान्ति च ?

उत्तरम्—भाग्यक्रमेण धनानि भवन्ति यान्ति च।

(११) प्रश्नः—वेश्या कीदृशी भवति ?

उत्तरम्—वेश्या वापीव लतेव नौरिव सर्वजनसुलभा भवति।

(१२) प्रश्नः—केन दृष्टिर्विफलतां गता ?

उत्तरम्—असत्पुरुषसेवेव तमसा दृष्टिर्विफलतां गता।

(१३) प्रश्नः—वसन्तसेनां कानि सूचयिष्यन्ति ?

उत्तरम्—वसन्तसेनां माल्यसमुद्भवः गन्धः मुखराणि नूपुराणि च सूचयिष्यन्ति।

(१४) प्रश्नः—निर्धनता कथं षष्ठमपरं महापातकं मन्यते ?

उत्तरम्—यतो हि कोऽपि जनः निर्धनस्य सङ्गं न कुरुते। आदरात् तेन न वदति, उत्सवेषु धनिनां गृहं समागतः निर्धनः तिरस्कारभावनया दृश्यते, पर्याप्तवस्त्रविहीनः

निर्धनः जनः लज्जया महाजनस्य मार्गं दूरादेव त्यजति, इत्यहं मन्ये यत् निर्धनता अपरं प्रकृष्टं पञ्चमहापातकातिरिक्तं षष्ठं महापातकमस्ति।

(१५) प्रश्नः—चारुदत्तः दारिद्र्यविषये किं शोचति ?

उत्तरम्—चारुदत्तः कथयति—हे दारिद्र्य भवन्तमेवं शोचामि यदस्मच्छरीरे मित्रमिति बुद्ध्या वासं विधाय मन्दभाग्ये चारुदत्ते मृते त्वं क्व गमिष्यसि इति चारुदत्तस्य चिन्ता।

(१६) प्रश्नः—चारुदत्तस्य गुणसमूहं श्लोकेनैकेन वर्णयत ?

उत्तरम्—शकार वचनं तिरस्कृत्य विटः चारुदत्तस्य गुणसमूहं वर्णयति श्लोकेऽस्मिन्—

दीनानां कल्पवृक्षः स्वगुणफलनतः सज्जनानां कुटुम्बी
आदर्शः शिक्षितानां सुचरितनिकषः शीलवेलासमुद्रः।
सत्कर्ता नावमन्ता पुरुषगुणनिधिर्दक्षिणोदारसत्त्वो
ह्येकः श्लाघ्यः स जीवत्यधिकगुणतया चोच्छ्वसन्ती व चान्ये॥

(१७) प्रश्नः—कः पुरुषः कान्तारगतोऽपि न विपद्यते ?

उत्तरम्—यः पुरुषः आत्मबलं ज्ञात्वा तुलितं भारं वहति तस्य स्खलनं न जायते, सः कान्तारगतोऽपि न विपद्यते।

(१८) प्रश्नः—कथं वीणा असमुद्रोत्थितं रत्नम् ?

उत्तरम्—विरहाकुलजनस्य मनोनुरूपा प्रियसखीस्वरूपा, प्रणयिनि जने दत्तसङ्केते विलम्बं कुर्वाणे सति श्रेष्ठः विनोदः, विरहव्याकुलानां प्राणप्रिया, कामुकजनस्य रागपरिवृद्धकरः मनोरञ्जनं वीणा अस्ति, तस्माद् वीणा हि नाम असमुद्रोत्थितं रत्नं कथ्यते।

(१९) प्रश्नः—निद्रायाः गुणं श्लोकेनैकेन वर्णय ?

उत्तरम्—इयं हि निद्रा नयनावलम्बिनी
ललाटदेशादुपसर्पतीव माम्।
अदृश्यरूपा चपला जरेव या
मनुष्यसत्त्वं परिभूय वर्द्धते॥

(२०) प्रश्नः—शर्विलकः चौरकर्म कथं प्रशंसति ?

उत्तरम्—शर्विलकः चौरकर्म प्रशंसन् कथयति—

कामं नीचमिदं वदन्तु पुरुषाः स्वप्ने च यद्वर्द्धते
विश्वस्तेषु च वञ्चनापरिभवश्चौर्यं न शौर्यं हि तत्।
स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्धो न सेवाञ्जलिः
मार्गो ह्येष नरेन्द्रसौप्तिकवधे पूर्वं कृतो द्रौणिना॥

(२१) प्रश्नः—शर्विलकः कथं परमार्थसुप्ततां निर्धारयति ?

उत्तरम्—शर्विलकः परमार्थसुप्ततां निर्धारणन् कथयति—

विश्वासोऽस्य न शङ्कितः सुविशदः तुल्यान्तरं वर्तते
दृष्टिर्गाढनिमीलिता न विकला नाभ्यन्तरे चञ्चला।
गात्रं स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शय्याप्रमाणाधिकं
दीपञ्चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि॥

(२२) प्रश्नः—लोकेऽस्मिन् दरिद्रता कथं शङ्कनीया ?

उत्तरम्—चारुदत्तः कथयति—

अस्मिन् संसारे निष्प्रतापा दरिद्रता शङ्कनीया भवति, जनः यथार्थघटिततथ्यं न विश्वसिस्यति, अखिललोकः अकिञ्चनं चारुदत्तं तूलवत् लघुकरिष्यति।

(२३) प्रश्नः—अनृतं कस्य कारणं भवति ?

उत्तरम्—अनृतं चारित्र्यभ्रंशस्य कारणं भवति।

(२४) प्रश्नः—पुरुष कथं नारी, नारी च कथं पुरुषः भवति ?

उत्तरम्—चारुदत्तः स्वकीयां मनोव्यथां प्रकटयन् कथयति—

स्वदैवविनष्टविभवः पत्नीप्रदत्तधनेन अनुगृहीतः पुरुषः अर्थितः धनाद्वा नारी, पोष्यसाम्यत्वात्, या सहाय्यविधायिनी नारी अर्थात् पुमान्। धनदानात् धूता पुंस्त्वमाचरति तथा तद्द्रव्येण कृतसहाय्य अहं नारीपदवीमधिरोहामि।

(२५) प्रश्नः—प्रत्यय एव न्यासस्य मूल्यं कथम् ?

उत्तरम्—चारुदत्तः विदूषकं प्रति कथयति—

वसन्तसेनया यत् प्रत्ययं समालब्ध्य मादृशनिर्धनेषु न्यासः सम्पादितः। तस्य महतः प्रत्ययस्य विश्वासस्य एव इयं रत्नावली मूल्यं दीयते।

(२६) प्रश्नः—शर्विलकेन स्त्रीकल्यवर्त्तस्य कारणेन किमुभयमपि संशये विनिक्षिप्तम् ?

उत्तरम्—शर्विलकेन स्त्रीकल्यवर्त्तस्य कारणेन **शरीरं चरित्रञ्चोभयमपि** संशये विनिक्षिप्तम्।

(२७) प्रश्नः—शर्विलकस्य मतिः चौर्य्येऽपि कथं स्थिता ?

उत्तरम्—शर्विलकः मदनिकां प्रति कथयति—

अर्थलिप्सुरहं शर्विलकः प्रस्फुटितपुष्पां लतामिव भूषणधारिणीं नारीं न मुष्णामि, ब्राह्मणविभवं यज्ञनिष्पादनार्थं सञ्चितं धनञ्च न हरामि। कुत्रचिदपि मातुः क्रोडे स्थितं बालकं न चोरयामि, अतः चौर्य्येऽपि मम मतिः सर्वदा कार्याकार्यविचारिणी स्थिता वर्तते।

(२८) प्रश्नः—के निष्फलत्वं यान्ति ?

उत्तरम्—इह संसारे अखिलविभवरूपफलयुक्ताः कुलपुत्रमहाद्रुमाः वेश्या-विहगभक्षिताः अलं निष्फलत्वं यान्ति।

(२९) प्रश्नः—नराणां यौवनानि धनानि कुत्र हूयन्ते ?

उत्तरम्—सम्भोगवह्निज्वाले प्रणयेन्धने लोकप्रख्याते मदनानले नराणां यौवनानि धनानि च हूयन्ते भस्मीक्रियन्ते।

(३०) प्रश्नः—के पुरुषाः अपण्डिताः मताः ?

उत्तरम्—ये पुरुषाः स्त्रीषु च श्रीषु च विश्वसन्ति ते अपण्डिताः मताः।

(३१) प्रश्नः—नरेण वेश्याः कथं वर्जनीयाः ?

उत्तरम्—शर्विलकः कथयति—

एताः हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो-
र्विश्वासयन्ति पुरुषं न तु विश्वसन्ति।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन
वेश्याः श्मशानसुमना इव वर्जनीयाः ॥

(३२) प्रश्नः—स्त्रियः कथं चपलाः ?

उत्तरम्—शर्विलकः कथयति—स्त्रियो नाम चपलाः—

अन्यं मनुष्यं हृदयेन कृत्वा
ह्यन्यं ततो दृष्टिभिराह्वयन्ती।
अन्यत्र मुञ्चन्ति मदप्रसेक-
मन्यं शरीरेण च कामयन्ते ॥

(३३) प्रश्नः—पुरुषैः गुणेष्वेव कथं प्रयत्नः कर्तव्यः ?

उत्तरम्—पुरुषैः सदा दयादाक्षिण्यादिषु गुणेषु प्रयत्नः कर्त्तव्यः, यतो हि गुणयुक्तः दरिद्रः अपि गुणहीनैः धनसम्पन्नैः पुरुषैः श्रेष्ठः भवति।

(३४) प्रश्नः—गुणानां किञ्चिद् प्राप्यतमं कथं न भवति ?

उत्तरम्—पुरुषेण दयादाक्षिण्यादिगुणेषु प्रयत्नः कार्यः, यतो हि गुणसम्बलितानां जनानां किञ्चिदपि वस्तु अप्राप्यतमं दुर्लभं नास्ति, चन्द्रमसा गुणप्रकर्षाद् अलङ्घ्यं शम्भोः शिरः आरूढम्।

(३५) प्रश्नः—लोके नराणां किं द्वयमतीव प्रियं भवति ?

उत्तरम्—लोके नराणां सुहृद् वनिता चेदं द्वयमतीव प्रियं भवति।

(३६) प्रश्नः—कुत्र सुहृद्विहङ्गाः सुखमाश्रयन्ति ?

उत्तरम्—गुणप्रवालं विनयप्रशाखं
विश्रम्भमूलं महनीयपुष्पम्।
तं साधुवृक्षं स्वगुणैः फलाढ्यं
सुहृद्विहङ्गाः सुखमाश्रयन्ति ॥

(३७) प्रश्नः—किदृश्यः स्त्रियः रोद्धुं न शक्याः ?

उत्तरम्—दयितं प्रति प्रस्थिताः स्त्रियः रोद्धुं न शक्याः।

(३८) प्रश्नः—वसन्तसेनया विद्युत् कथमुपलभ्यते ?

उत्तरम्—चारुदत्तस्य गृहं प्रति प्रस्थिता वसन्तसेना विद्युदमुपालभति—

यदि मेघः गर्जति तत्तु गर्जतु नाम, यतः पुरुषाः निष्ठुराः भवन्ति, किन्तु अयि विद्युत्! त्वं स्त्री भूत्वापि कामपीडितानां कामिनीनां कामजन्यपीडां न जानासि ? इति महद्दुःखमेतत्, विद्युदपि मुहुः स्फुरणेन भीषयति वसन्तसेनामतः उपलभ्यते विद्युत्।

(३९) प्रश्नः— कस्य कोपप्रसादाः विफलीभवन्ति ?

उत्तरम्—लोके धनैः वियुक्तस्य नरस्य जन्मतः एव प्रसादश्च प्रतीकारनिरर्थकत्वाद् विफलीभ्वन्ति।

(४०) प्रश्नः—के लोके तुल्यं भवन्ति ?

उत्तरम्—पक्षविकलः पक्षी, नीरसस्तरुः, जलेन हीनं सरः, उत्पाटितदशनः सर्पः दरिद्रश्च लोके तुल्यं भवति।

(४१) प्रश्नः—केषां जीवितानि धन्यानि ?

उत्तरम्—ये जनाः गृहमागतानां मदनविह्वलानां सुन्दरीणां मेघानामुदकैः शीतलानि गात्राणि स्वकीयाङ्गेषु गाढमालिङ्गन्ति तेषां जनानां जीवितानि खलु धन्यानि सन्ति।

(४२) प्रश्नः—धाराः कथं पतन्ति ?

उत्तरम्—सङ्गीताङ्गतालानुसारेण ताड्यमानाः सङ्गीततन्त्री इव जलधाराः तालवनेषु तारम्, वृक्षशाखासु गुरुगम्भीरम्, शिलासु रुक्षम्, सलिलेषु चण्डं पतन्ति।

(४३) प्रश्नः—एककार्यनियोगेऽपि कथं न तुल्यशीलता ?

उत्तरम्—एकस्मिन् समाने कार्ये नियोजने अपि द्वयोः तुल्यशीलता न वर्तते, यथा विवाहे, पुनः चितायामपि द्वयोः उभयोः स्थितयोः पावकयोः समरूपता न भवति, एकस्य मङ्गलजनकत्वात्, अपरस्यामाङ्गलिकत्वादिति।

(४४) प्रश्नः—शरणागतस्य त्यागेन किं भवति ?

उत्तरम्—यः पुरुषविशेषः शरणागतं जनं त्यजति तं जयश्रीः परित्यागं करोति, मित्राणि च तं त्यजन्ति, बन्धुजनः पुनः तं त्यजति, सदा उपहसनीयश्च भवति।

(४५) प्रश्नः—वसुन्धरा कैः भाराक्रान्ता भवति ?

उत्तरम्—विपर्यस्तमनश्चेष्टैः शिलाशकलवर्ष्मभिः।
मांसवृक्षैरियं मूर्खैर्भाराक्रान्ता वसुन्धरा॥

(४६) प्रश्नः—हंसी हंसं परित्यज्य वायसं कथं समुपस्थिता ?

उत्तरम्—हंसी शरदकालीनचन्द्रतुल्यं नद्यास्तोयोत्थितभागस्य अपरतटे शयानं हंसं परित्यज्य वायसं समुपस्थिता यतो हि हंसीव सुगमना वसन्तसेना शरच्चन्द्रवत् कीर्तिधवलं सर्वगुणसम्पन्नं चारुदत्तं विहाय काकमिव सर्वथा मलिनं शकारं सेवितुमागता।

(४७) प्रश्नः—के सुकृतिदुष्कृतिसाक्षिभूताः ?

उत्तरम्—विटः निर्जनेऽपि साक्षिभूतान् ज्ञापयति शकारम्—
पश्यन्ति मां दश दिशो वनदेवताश्च
चन्द्रश्च दीप्तिकिरणश्च दिवाकरोऽयम्।
धर्मानिलौ च गगनञ्च तथान्तरात्मा
भूमिस्तथा सुकृति-दुष्कृति-साक्षिभूताः॥

(४८) प्रश्नः—कार्याकार्ये शीलं कारणं कथं भवति ?

उत्तरम्—कुलेन कथितेन न किमपीत्यर्थः, यतोऽत्र कार्याकार्ये शीलं स्वभावः एव कारणम्, उच्चकुलोत्पन्नोऽपि कुकर्मी भवति, पुष्कलेऽपि समुत्पन्ना व्यक्तिः शिष्टो भवति नात्र कुलं कारणम्, तथा हि उत्कृष्टभूमौ वदर्यादिकण्टकयुताः वृक्षाः सुतरां वृद्धिमुपगताः जायन्ते। तेन कथितम्—

किं कुलोपदिष्टेन शीलमेवात्र कारणम्।
भवन्ति सुतरां स्फीताः सुक्षेत्रे कण्टकिद्रुमाः ॥

(४९) प्रश्नः—पणस्त्रीणां का शोभा ?

उत्तरम्—सद्वंशोत्पन्नः चरित्रवान् पुरुषः दरिद्रोऽपि यत्नेन सेवनीयोऽस्ति, यतो हि अनुरूपकान्तविषयकः कामः अनुरागः पणस्त्रीणां वारविलसिनीनां शोभा प्रशंसनीया भवति।

(५०) प्रश्नः—केषु सुसदृशमाकृतिः वृत्तं न विजहाति ?

उत्तरम्—नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु
न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ॥

(५१) प्रश्नः—किं हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति ?

उत्तरम्—चारुदत्तः कथयति—

अभ्युक्षितोऽसि सलिलैर्न बलाहकानां
चाषाग्रपक्षसदृशं भृशमन्तराले।
मिथ्यैतदाननमिदं भवतस्तथापि
हेमन्तपद्ममिव निष्प्रभतामुपैति ॥

(५२) प्रश्नः—छिद्रेष्वनर्थाः कथं बहुलीभवन्ति ?

उत्तरम्—येन प्रकारेण प्रथमे विकासे पुष्पस्य मकरन्दपानं कर्तुं भ्रमराः सङ्गम्य पतन्ति, एवं मनुष्यस्य विपत्तिकाले छिद्रेषु अनर्थाः विपत्तयः बहुलीभवन्ति।

(५३) प्रश्नः—पातकी विप्रः किं कर्तव्यः ?

उत्तरम्—एष विप्रः पातकी अस्ति तथापि वधयोग्यः न भवतीति स्मृतिप्रणेता मनुरब्रवीत्। किन्तु असमग्रैः सम्पत्तिभिः सह राष्ट्राद् बहिष्करणीयः।

(५४) प्रश्नः—विषमस्थितस्य कश्चित् कथं न मित्रम् ?

उत्तरम्—चारुदत्तः सर्वतोऽवलोक्य कथयति—

दूरतः परिदृश्यमानाः मम वयस्याः पटाञ्चलाच्छादितमुखाः दूरतरं प्रयान्ति, विषमस्थितस्य कश्चिदपि सुहृत् न भवति।

(५५) प्रश्नः—ब्राह्मणानां विभूषणं किम् ?

उत्तरम्—यज्ञोपवीतं मुक्ताभिरनिर्मितं न कनकघटितं ब्राह्मणानां विभूषणं विशिष्टालङ्कारं, येन यज्ञोपवीतेन देवतानां पितृणां चांशः देवबलिः, पितृपिण्डादिकञ्च समर्प्यते।

(५६) प्रश्नः—अचन्दनमनौशीरं हृदयानुलेपनं किम् ?

दिवाकर शुक्ल

उत्तरम्—इदं सुतस्वरूपं वस्तु आढ्यदरिद्रयोः समं निरुपमं स्नेहसर्वस्वं चन्दनसम्पर्कशून्यमुशीरसंयोगशून्यं हृदयस्यानुलेपनमस्तीति।

(५७) प्रश्नः—चारुदत्तः मरणात् कथं बिभेति ?

उत्तरम्—चारुदत्तः कथयति, यत् मरणात् भीतः नास्मि, केवलं यशः दूषितम्, विशुद्धस्य वसन्तसेनाहननजन्यकलङ्कशून्यस्य मम मृत्युः सुतोत्पत्तिसदृशः भवेत्।

(५८) प्रश्नः—शत्रुः कथं हन्तव्यः ?

उत्तरम्—कृतापराधं शत्रुः शरणमुपेत्य पादयोः पतितः भवति, तर्हि स शस्त्रेण न हतव्यः, किन्तु उपकारेण हतः विनष्टः कर्त्तव्यः।

(५९) प्रश्नः—विधिः कथं क्रीडति ?

उत्तरम्—इमामनुभूयमानां लोकस्थितिं परस्परविरोधिनां संहतिं बोधयन् कूपाज्जलोद्धारणयन्त्रस्य घटिकान्याये प्रसक्तः अयं विधिः कांश्चित् तुच्छयति अर्थात् धनरहितान् करोति अथवा कांश्चिज्जनान् धनदानेन पूर्णं करोति, अथवा कांश्चित् समृद्धिं प्रापयति, कांश्चित् पतनक्रियायां सम्पादयति पुनः कांश्चित् जनान् व्याकुलान् करोति।

(६०) प्रश्नः—मृच्छकटिकस्य भरतवाक्यं लिखत ?

उत्तरम्—क्षीरिण्यः सन्तु गावो भवतु वसुमती सर्वसम्पन्नसस्या
पर्जन्यः कालवर्षी सकलजनमनोनन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्तां जन्मभाजः सततमभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्तः पान्तु पृथ्वीं प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्च भूपाः॥

(६१) प्रश्नः—किं नाम भरतवाक्यम् ?

उत्तरम्—नाटकाभिनयसमाप्तौ सामाजिकेभ्यो नटेन आशीर्दीयते, अत्र प्रस्तावनानन्तरं नटानामेव तत्पात्ररूपेण रङ्गालये आविर्भूततया पुनस्तद् रूपेणा-विर्भावासम्भवाद् भरतवाक्यमित्युक्तम्।

●

अन्य उपयोगी ग्रन्थ

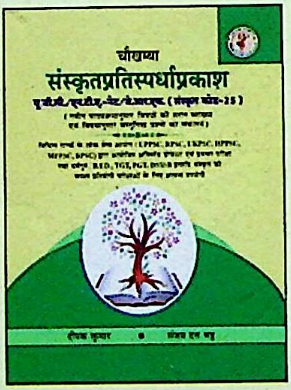


(Set in 2 Vols.)

प्रस्तुत पुस्तक में वैदिक काल से आरंभ कर के वर्ष 2017 तक लिखे गये समग्र संस्कृत साहित्य का विशद विवरण, समीक्षण तथा आकलन प्रस्तुत किया गया है। इसकी भूमिका में संस्कृत भाषा के इतिहास, अन्य भारतीय भाषाओं से उसके संबंध तथा संस्कृत साहित्य के इतर साहित्यों से संवाद पर भी विमर्श किया गया है। संस्कृत-साहित्येतिहासलेखन की समस्याएँ, संस्कृत भाषा और उसके साहित्य पर महत्त्वपूर्ण अध्ययन-अनुसंधान करने वाले पाश्चात्य पंडितों का परिचय, संस्कृत साहित्य में इतिहास की अवधारणा, संस्कृत और वर्त्तमान विश्व आदि विषयों पर जो जानकारियाँ भूमिका में दी गई हैं, वे संस्कृतसाहित्य के अध्ययन को परिपर्णता प्रदान करती है।

संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास में अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों पर पहली बार विचार हुआ है। संस्कृत कविता में लोकभाषाओं का प्रभाव, लोकोक्तियाँ और मुहावरे, संस्कृत में जनजीवन की कविता परंपरा, संस्कृत कवियों की समीक्षा परंपरा आदि अछूते विषय इस ग्रंथ में विवेचित हैं। मानांक कवि का वृन्दावनकाव्य, चन्द्रगोमिन् का लोका-नन्द नाटक आदि उपेक्षित, अज्ञातप्राय शताधिक ऐसे काव्यों व नाटकों पर यहाँ विस्तार से चर्चा की गई है, संस्कृत साहित्य के इतिहास के निर्माण में जिनकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। प्रमुख महाकवियों की पारंपरिक समीक्षा का विशद विवेचन भी इस ग्रंथ की अपनी विशेषता है।

संस्कृत साहित्य के जाने माने अध्येता **प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी** ने इस ग्रंथ में संस्कृत साहित्य की सतत विकासयात्रा को उद्भवकाल, स्थापनाकाल, समृद्धि-काल, विस्तारकाल तथा आधुनिक- काल– इन पाँच कालखंडों में प्रस्तुत करते हुए उसके ऐतिहासिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिये सही दृष्टि दी है।



- यू.जी.सी.-नेट/जे.आर.एफ. संस्कृत के नवीन पाठ्यक्रम पर आधारित।
- उदाहरण, चार्ट, टेबल आदि माध्यमों से विषयों का प्रतिपादन तथा सरल, सहज एवं रुचिपूर्ण भाषा में विषयों का प्रस्तुतीकरण।
- अध्यायों व विषयों की आगामी परीक्षाओं में संभावित प्रश्नों की दृष्टि से विशद व्याख्या।
- पाठकों की बोधगम्यता एवं पुस्तक की गुणवत्ता हेतु नूतन पाठ्यक्रमानुसार प्रत्येक बिन्दु की सरल व्याख्या।
- विभिन्न राज्यों द्वारा आयोजित असिस्टेंट प्रोफेसर, एवं कमीशन, धर्मगुरु, PGT, TGT, DSSSB इत्यादि सभी परीक्षाओं हेतु अत्यन्त उपयोगी।
- विभिन्न विश्वविद्यालयों (JNU, BHU, DU) इत्यादि द्वारा आयोजित M.A, M.Phil, Ph.D. एवं शिक्षाशास्त्री (B.Ed.) के लिये भी उपयोगी।
- 1250 से अधिक विषयानुसार वस्तुनिष्ठात्मक अभ्यास प्रश्न एवं 2015 से 2020 तक के पुरातन प्रश्नपत्रों का संकलन।

महाकविभवभूतिप्रणीतम्

उत्तररामचरितम्

छात्रोपयोगी विस्तृत भूमिका, अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद, संस्कृतटीका, समास, व्याकरण टिप्पणी, विवृति से युक्त

कृष्णकान्त त्रिपाठी • विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

ISBN : 978-93-81484-57-9

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी- 221001
chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
www.chaukhamba.co.in
: @chaukhambabooks : @chaukhamba

9 789381 484579